पं० श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

गृहस्थ : एक तपोवन

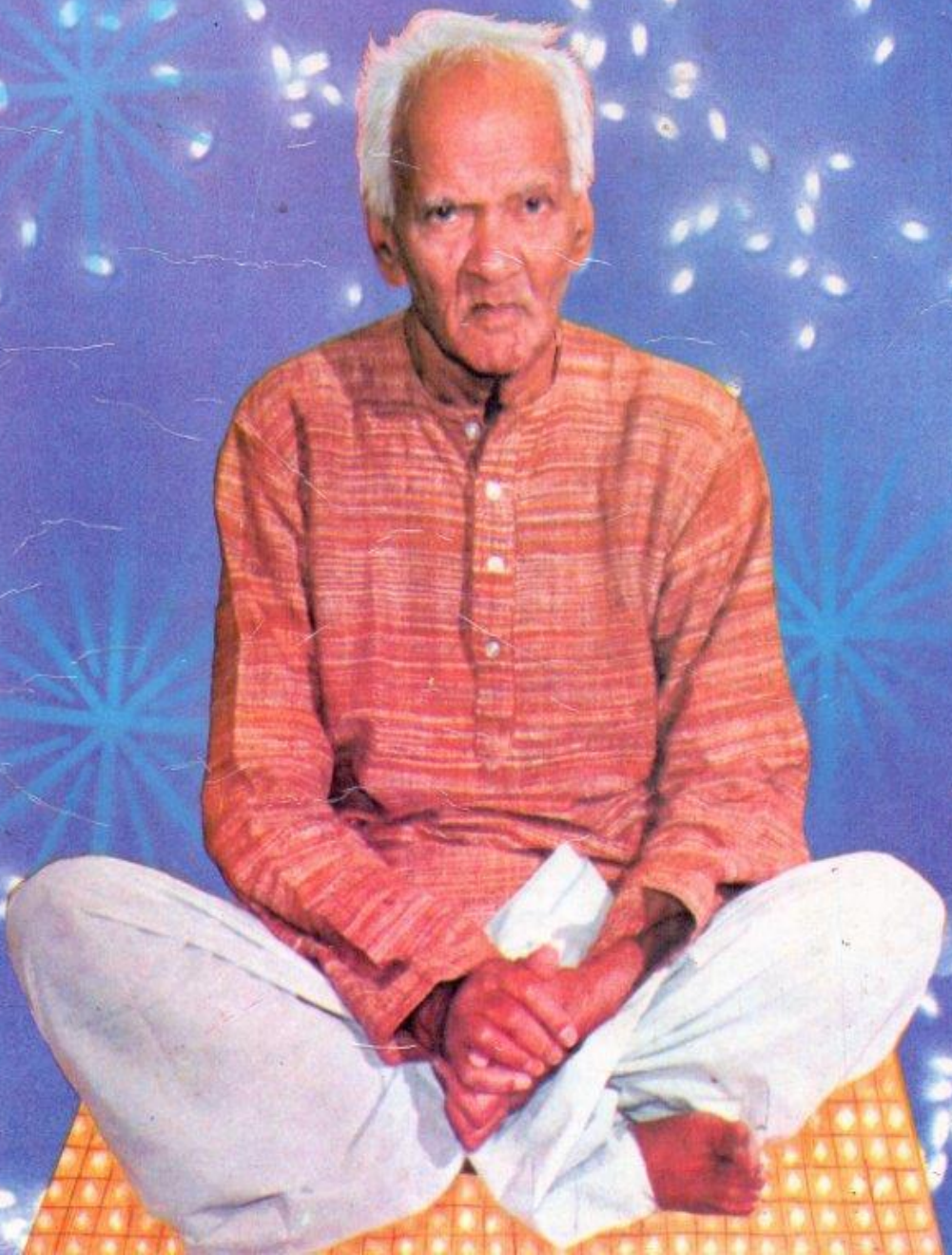

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय

गृहस्थ : एक तपोवन

प्रकाशक :

अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

❐
प्रकाशक
अखण्ड ज्योति संस्थान
मथुरा-२८१ ००३

❐
© सर्वाधिकार सुरक्षित

❐
द्वितीय संस्करण १९९८

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

❐
मूल्य १२५)

❐
मुद्रक
जनजागरण प्रेस, मथुरा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

समर्पणम्

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम् ।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ।।

मातृवत् लालयित्री च पितृवत् मार्गदर्शिका ।
नमोऽस्तु गुरुसत्तायै श्रद्धा-प्रज्ञा युता च या ।।

भगवत्याः जगन्मातुः, श्रीरामस्य जगद्गुरोः ।
पादुकायुगले वन्दे, श्रद्धाप्रज्ञास्वरूपयोः ।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मै गायत्रीरूपिणे सदा ।
यस्य वागमृतं हन्ति विषं संसारसंज्ञकम् ।।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

असम्भवं सम्भवकर्तुमुद्यतं प्रचण्डझञ्झावृतिरोधसक्षमम् ।
युगस्य निर्माणकृते समुद्यतं परं महाकालममुं नमाम्यहम् ।।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।

विराट गायत्री परिवार एवं उसके संस्थापक-संरक्षक एक संक्षिप्त परिचय

इतिहास में कभी-कभी ऐसा होता है कि अवतारी सत्ता एक साथ बहुआयामी रूपों में प्रकट होती है एवं करोड़ों ही नहीं, पूरी वसुधा के उद्धार-चेतनात्मक धरातल पर सबके मनों का नये सिरे से निर्माण करने आती है। परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य को एक ऐसी ही सत्ता के रूप में देखा जा सकता है जो युगों-युगों में गुरु एवं अवतारी सत्ता दोनों ही रूपों में हम सबके बीच प्रकट हुई, अस्सी वर्ष का जीवन जीकर एक विराट् ज्योति प्रज्ज्वलित कर उस सूक्ष्म ऋषि चेतना के साथ एकाकार हो गयी जो आज युग परिवर्तन को सन्निकट लाने को प्रतिबद्ध है। परमवंदनीया माताजी शक्ति का रूप थीं जो कभी महाकाली, कभी माँ जानकी, कभी माँ शारदा एवं कभी माँ भगवती के रूप में शिव की कल्याणकारी सत्ता का साथ देने आती रही हैं। उनने भी सूक्ष्म में विलीन हो स्वयं को अपने आराध्य के साथ एकाकार कर ज्योतिपुरुष का एक अंग स्वयं को बना लिया। आज दोनों सशरीर हमारे बीच नहीं हैं किन्तु, नूतन सृष्टि कैसे ढाली गयी, कैसे मानव गढ़ने का साँचा बनाया गया, इसे शान्तिकुंज, ब्रह्मवर्चस, गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान एवं युगतीर्थ आँवलखेड़ा जैसी स्थापनाओं तथा संकल्पित सृजन सेनानीगणों के वीरभद्रों की करोड़ों से अधिक की संख्या के रूप में देखा जा सकता है।

परमपूज्य गुरुदेव का वास्तविक मूल्यांकन तो कुछ वर्षों बाद इतिहासविद, मिथक लिखने वाले करेंगे किन्तु, यदि उनको आज भी साक्षात कोई देखना या उनसे साक्षात्कार करना चाहता हो तो उन्हें उनके द्वारा अपने हाथ से लिखे गये उस विराट परिमाण में साहित्य के रूप में युग संजीवनी के रूप में देखा सकता है जो वे अपने वजन से अधिक भार के बराबर लिख गये। इस साहित्य में संवेदना का स्पर्श इस बारीकी से हुआ है कि लगता है लेखनी को उसी की स्याही में डुबोकर लिखा गया हो। हर शब्द ऐसा जो हृदय को छूता, मन को व विचारों को बदलता चला जाता है। लाखों-करोड़ों के मनों के अंत:स्थल को छूकर उसने उनका कायाकल्प कर दिया। रूसो के प्रजातंत्र की, कार्लमार्क्स के साम्यवाद की क्रान्ति भी इसके समक्ष बौनी पड़ जाती है। उनके मात्र इस युग वाले स्वरूप को लिखने तक में लगता है कि एक विश्वकोश तैयार हो सकता है, फिर उस बहुआयामी रूप को जिसमें वे संगठनकर्ता, साधक, करोड़ों के अभिभावक, गायत्री महाविद्या के उद्धारक, संस्कार परम्परा का पुनर्जीवन करने वाले, ममत्व लुटाने वाले एक पिता, नारी जाति के प्रति अनन्य करुणा बिखेरकर उनके ही उद्धार के लिए धरातल पर चलने वाला नारी जागरण अभियान चलाते देखे जाते हैं, अपनी वाणी के उद्बोधन से एक विराट् गायत्री परिवार एकाकी अपने बलबूते खड़े करते दिखाई देते हैं तो समझ में नहीं आता, क्या-क्या लिखा जाये, कैसे छन्दबद्ध किया जाय, उस महापुरुष के जीवनचरित को।

आश्विन कृष्ण त्रयोदशी विक्रमी संवत् १९६७ (२० सितम्बर, १९११) को स्थूल शरीर से आँवलखेड़ा ग्राम जनपद आगरा जो जलेसर मार्ग पर आगरा से पन्द्रह मील की दूरी पर स्थित है, में जन्मे श्रीराम शर्मा जी का बाल्यकाल-कैशोर्य काल ग्रामीण परिसर में ही बीता। वे जन्मे तो थे एक जमींदार घराने में, जहाँ उनके पिता श्री पं. रूपकिशोर जी शर्मा आप-पास के, दूर-दराज के राजघरानों के राजपुरोहित, उद्भट विद्वान, भागवत कथाकार थे किन्तु, उनका अंत:करण मानव मात्र की पीड़ा से सतत विचलित रहता था। साधना के प्रति उनका झुकाव बचपन में ही दिखाई देने लगा। जब वे अपने सहपाठियों को, छोटे बच्चों को अमराइयों में बिठाकर स्कूली शिक्षा के साथ-साथ सुसंस्कारिता अपनाने वाली आत्मविद्या का शिक्षण दिया करते थे, छटपटाहट के कारण हिमालय की ओर भाग निकलने व पकड़े जाने पर उनने संबंधियों को बताया कि हिमालय ही उनका घर है एवं वहीं वे जा रहे थे। किसे मालूम था कि हिमालय की ऋषि चेतनाओं का समुच्चय बनकर आयी यह सत्ता वस्तुत: अगले दिनों अपना घर वहीं बनाएगी। जाति-पाँति का कोई भेद नहीं। जातिगत मूढ़ता भरी मान्यता से ग्रसित तत्कालीन भारत के ग्रामीण परिसर में एक अछूत वृद्ध महिला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

की जिसे कुष्ठ रोग हो गया था, उसी के टोले में जाकर सेवा कर उनने घरवालों का विरोध तो मोल ले लिया पर अपना व्रत नहीं छोड़ा। उस महिला ने स्वस्थ होने पर उन्हें ढेरों आशीर्वाद दिये। एक अछूत कहलाने वाली जाति का व्यक्ति जो उनके आलीशान घर में घोड़ों की मालिश करने आता था, एक बार कह उठा कि मेरे घर कथा कौन कराने आएगा, मेरा ऐसा सौभाग्य कहाँ। नवनीत जैसे हृदय वाले पूज्यवर उसके घर जा पहुँचे एवं कथा पूरे विधान से कर पूजा की, उसको स्वच्छता का पाठ सिखाया, जबकि सारा गाँव उनके विरोध में बोल रहा था।

किशोरावस्था में ही समाज सुधार की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ उनने चलाना आरम्भ कर दी थीं। औपचारिक शिक्षा स्वल्प ही पायी थी किंतु, उन्हें इसके बाद आवश्यकता भी नहीं थी क्योंकि जो जन्मजात प्रतिभासम्पन्न हो वह औपचारिक पाठ्यक्रम तक सीमित कैसे रह सकता है। हाट-बाजारों में जाकर स्वास्थ्य-शिक्षा प्रधान परिपत्र बाँटना, पशुधन को कैसे सुरक्षित रखें तथा स्वावलम्बी कैसे बनें, इसके छोटे-छोटे पैम्फलेट्स लिखने, हाथ की प्रेस से छपवाने के लिए उन्हें किसी शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वे चाहते थे, जनमानस आत्मावलम्बी बने, राष्ट्र के प्रति स्वाभिमान उसका जागे, इसलिए गाँव में जन्मे इस लाल ने नारी शक्ति व बेरोजगार युवाओं के लिए गाँव में ही एक बुनताघर स्थापित किया व उसके द्वारा हाथ से कैसे कपड़ा बुना जाय अपने पैरों पर कैसे खड़ा हुआ जाय यह सिखाया।

पंद्रह वर्ष की आयु में वसंत पंचमी की वेला में सन् १९२६ में उनके घर की पूजास्थली में, जो उनकी नियमित उपासना का तब से आगार थी, जबसे महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी ने उन्हें काशी में गायत्री मंत्र की दीक्षा दी थी, उनकी गुरुसत्ता का आगमन हुआ अदृश्य छायाधारी सूक्ष्म रूप में। उनने प्रज्ज्वलित दीपक की लौ में से स्वयं को प्रकट कर उन्हें उनके द्वारा विगत कई जन्मों में सम्पन्न क्रिया-कलापों का दिग्दर्शन कराया तथा उन्हें बताया कि वे दुर्गम हिमालय से आये हैं एवं उनसे अनेकानेक ऐसे क्रियाकलाप कराना चाहते हैं, जो अवतारी स्तर की ऋषिसत्ताएँ उनसे अपेक्षा रखती हैं। चार बार कुछ दिन से लेकर एक साल तक की अवधि तक हिमालय आकर रहने, कठोर तप करने का भी उनने संदेश दिया एवं उन्हें तीन संदेश दिए- १. गायत्री महाशक्ति के चौबीस-चौबीस लक्ष्य के चौबीस महापुरश्चरण जिन्हें आहार के कठोर तप के साथ पूरा करना था। २. अखण्ड घृतदीप की स्थापना एवं जन-जन तक इसके प्रकाश को फैलाने के लिए समय आने पर ज्ञानयज्ञ अभियान चलाना, जो बाद में अखण्ड ज्योति पत्रिका के १९३८ में प्रथम प्रकाशन से लेकर विचार-क्रान्ति अभियान के विश्वव्यापी होने के रूप में प्रकटा तथा ३. चौबीस महापुरश्चरणों के दौरान युगधर्म का निर्वाह करते हुए राष्ट्र के निमित्त भी स्वयं को खपाना, हिमालय यात्रा भी करना तथा उनके संपर्क से आगे का मार्गदर्शन लेना।

यह कहा जा सकता है कि युग निर्माण मिशन, गायत्री परिवार, प्रज्ञा अभियान, पूज्य गुरुदेव जो सभी एक-दूसरे के पर्याय हैं, की जीवन यात्रा का यह एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था, जिसमें भावी रीति-नीति का निर्धारण कर दिया। पूज्य गुरुदेव अपनी पुस्तक 'हमारी वसीयत और विरासत' में लिखते हैं कि- ''प्रथम मिलन के दिन समर्पण सम्पन्न हुआ। दो बातें गुरुसत्ता द्वारा विशेष रूप से कही गईं- संसारी लोग क्या करते हैं और क्या कहते हैं, उसकी ओर से मुँह मोड़कर निर्धारित लक्ष्य की ओर एकाकी साहस के बलबूते चलते रहना एवं दूसरा यह कि अपने को अधिक पवित्र और प्रखर बनाने की तपश्चर्या में जुट जाना- जौ की रोटी व छाछ पर निर्वाह कर आत्मानुशासन सीखना। इसी से वह सामर्थ्य विकसित होगी जो विशुद्धतः परमार्थ प्रयोजनों में नियोजित होगी। वसंत पर्व का यह दिन गुरु अनुशासन का अवधारण ही हमारे लिए नया जन्म बन गया। सद्गुरु की प्राप्ति हमारे जीवन का अनन्य एवं परम सौभाग्य रहा।''

राष्ट्र के परावलम्बी होने की पीड़ा भी उन्हें उतनी ही सताती थी जितनी कि गुरुसत्ता के आदेशानुसार तपकर सिद्धियों के उपार्जन की ललक उनके मन में थी। उनके इस असमंजस को गुरुसत्ता ने ताड़कर परावाणी से उनका मार्गदर्शन किया कि युगधर्म की महत्ता व समय की पुकार देख-सुनकर तुम्हें अन्य आवश्यक कार्यों को छोड़कर अग्निकाण्ड में पानी लेकर दौड़ पड़ने की तरह आवश्यक कार्य भी करने पड़ सकते हैं। इसमें स्वतंत्रता संग्राम सेनानी के नाते संघर्ष करने का भी संकेत था। १९२७ से १९३३ तक का समय उनका एक सक्रिय स्वयं सेवक-स्वतंत्रता सेनानी के रूप में बीता, जिसमें घरवालों के विरोध के बावजूद

पैदल लम्बा रास्ता पार कर वे आगरा के उस शिविर में पहुँचे, जहाँ शिक्षण दिया जा रहा था, अनेकानेक मित्रों-सखाओं-मार्गदर्शकों के साथ भूमिगत हो कार्य करते रहे तथा समय आने पर जेल भी गये। छह-छह माह की उन्हें कई बार जेल हुई। जेल में भी वे जेल के निरक्षर साथियों को शिक्षण देकर व स्वयं अँग्रेजी सीखकर लौटे। आसनसोल जेल में वे श्री जवाहरलाल नेहरू की माता श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, श्री रफी अहमद किदवई, महामना मदनमोहन मालवीय जी, देवदास गाँधी जैसी हस्तियों के साथ रहे व वहाँ से एक मूलमंत्र सीखा जो मालवीय जी ने दिया था कि जन-जन की साझेदारी बढ़ाने के लिए हर व्यक्ति के अंशदान से, मुट्ठी फण्ड से रचनात्मक प्रवृत्तियाँ चलाना। यही मंत्र आगे चलकर एक घण्टा समयदान, बीस पैसा नित्य या एक दिन की आय एक माह में तथा एक मुट्ठी अन्न रोज डालने के माध्यम से धर्मघट की स्थापना का स्वरूप लेकर लाखों-करोड़ों की भागीदारी वाला गायत्री परिवार बनाता चला गया, जिसका आधार था प्रत्येक व्यक्ति की यज्ञीय भावना का उसमें समावेश।

स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान कुछ उग्र दौर भी आये, जिनमें शहीद भगतसिंह को फाँसी दिये जाने पर फैले जनआक्रोश के समय श्री अरविन्द के किशोर काल की क्रान्तिकारी स्थिति की तरह उनने भी वे कार्य किये, जिनसे आक्रान्ता शासकों के प्रति असहयोग जाहिर होता था। नमक आन्दोलन के दौरान वे आततायी शासकों के समक्ष झुके नहीं, वे मारते रहे परन्तु, समाधि स्थिति को प्राप्त राष्ट्र देवता के पुजारी को बेहोश होना स्वीकृत था पर आन्दोलन से पीठ दिखाकर भागना नहीं। बाद में फिरंगी सिपाहियों के जाने पर लोग उठाकर घर लेकर आये। जरारा आन्दोलन के दौरान उनने झण्डा छोड़ा नहीं जबकि, फिरंगी उन्हें पीटते रहे, झण्डा झीनने का प्रयास करते रहे। उनने मुँह से झण्डा पकड़ लिया, गिर पड़े, बेहोश हो गये पर झण्डे का टुकड़ा चिकित्सकों द्वारा दाँतों में भींचे गये टुकड़े के रूप में जब निकाला गया तब सब उनकी सहनशक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें तब से ही आजादी के मतवाले उन्मत्त श्रीराम मत्त नाम मिला। अभी भी आगरा में उनके साथ रहे या उनसे कुछ सीख लिए अगणित व्यक्ति उन्हें मत्तजी नाम से ही जानते हैं। लगानबन्दी के आँकड़े एकत्र करने के लिए उनने पूरे आगरा जिले का दौरा किया व उनके द्वारा प्रस्तुत वे आँकड़े तत्कालीन संयुक्त प्रान्त के मुख्यमंत्री श्रीगोविन्द वल्लभ पंत द्वारा गाँधीजी के समक्ष पेश किये गये। बापू ने अपनी प्रशस्ति के साथ वे प्रामाणिक आँकड़े ब्रिटिश पार्लियामेण्ट भेजे, इसी आधार पर पूरे संयुक्त प्रान्त के लगान माफी के आदेश प्रसारित हुए। कभी जिनने अपनी इस लड़ाई के बदले कुछ न चाहा उन्हें सरकार ने अपना प्रतिनिधि भेजकर पचास वर्ष बाद ताम्रपत्र देकर शांतिकुंज में सम्मानित किया। उसी सम्मान व स्वाभिमान के साथ सारी सुविधाएँ व पेंशन उनने प्रधानमंत्री राहत फण्ड के नाम समर्पित कर दीं। वैरागी जीवन का सच्चे राष्ट्र संत होने का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है?

१९३५ के बाद उनके जीवन का नया दौर शुरू हुआ, जब गुरुसत्ता की प्रेरणा से वे श्री अरविन्द से मिलने पाण्डिचेरी, गुरुदेव ऋषिवर रवीन्द्रनाथ टैगोर से मिलने शांति निकेतन तथा बापू से मिलने साबरमती आश्रम, अहमदाबाद गये। सांस्कृतिक, आध्यात्मिक मोर्चे पर राष्ट्र को कैसे परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त किया जाय, यह निर्देश लेकर अपना अनुष्ठान यथावत् चलाते हुए उनने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया, जब आगरा में 'सैनिक' समाचार पत्र के कार्यवाहक संपादक के रूप में श्रीकृष्णदत्तपालीवाल जी ने उन्हें अपना सहायक बनाया। बाबू गुलाब राय व पालीवाल जी से सीख लेते हुए सतत स्वाध्यायरत रहकर उनने अखण्ड ज्योति नामक पत्रिका का पहला अंक १९३८ की वसंत पंचमी पर प्रकाशित किया। प्रयास पहला था, जानकारियाँ कम थीं अतः पुनः सारी तैयारी के साथ विधिवत् १९४० की जनवरी से उनने परिजनों के नाम पाती के साथ अपने हाथ से बने कागज से बने कागज पर पैर से चलने वाली मशीन से छापकर 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका का शुभारंभ किया जो पहले तो दो सौ पचास पत्रिका के रूप में निकली, किन्तु क्रमशः उनके अध्यवसाय घर- घर पहुँचाने, मित्रों तक पहुँचाने वाले उनके हृदयस्पर्शी पत्रों द्वारा बढ़ती-बढ़ती नवयुग के मत्स्यावतार की तरह आज दस लाख से भी अधिक संख्या में विभिन्न भाषाओं में छपती व एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों द्वारा पढ़ी जाती है।

पत्रिका के साथ-साथ 'मैं क्या हूँ' जैसी पुस्तकों का लेखन आरम्भ हुआ। स्थान बदला, आगरा से मथुरा आग गये, दो-तीन घर बदलकर घीयामण्डी में जहाँ आज अखण्ड ज्योति संस्थान है, आ बसे। पुस्तकों

का प्रकाशन व कठोर तपश्चर्या, ममत्व विस्तार तथा पत्रों द्वारा जन-जन के अंत:स्थल को छूने की प्रक्रिया चालू रही। साथ देने आ गयीं परमवंदनीया माताजी भगवती देवी शर्मा, जिन्हें भविष्य में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका अपने आराध्य इष्ट गुरु के लिए निभानी थी। उनके मर्मस्पर्शी पत्रों ने, भाव भरे आतिथ्य, हर किसी को जो दु:खी था- पीड़ित था, दिये गये ममत्व भरे परामर्श ने गायत्री परिवार का आधार खड़ा किया, इसमें कोई सन्देह नहीं। यदि विचारक्रांति में साहित्य ने मनोभूमि बनायी तो भावात्मक क्रान्ति में ऋषियुगल के असीम स्नेह ने ब्राह्मणत्व भरे जीवन ने शेष बची भूमिका निभायी।

'अखण्ड ज्योति' पत्रिका लोगों के मनों को प्रभावित करती रही, इसमें प्रकाशित 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ से लोगों को गायत्री व यज्ञमय जीवन जीने का संदेश मिलता रहा, साथ ही एक आना से लेकर छह आना सीरज की अनेकानेक लोकोपयोगी पुस्तकें छपती चली गयीं। इस बीच हिमालय के बुलावे भी आये, अनुष्ठान भी चलता रहा जो पूरे विधि-विधान के साथ १९५३ में गायत्री तपोभूमि की स्थापना, १०८ कुण्डी यज्ञ व उनके द्वारा दी गयी प्रथम दीक्षा के साथ समाप्त हुआ। गायत्री तपोभूमि की स्थापना के निमित्त धन की आवश्यकता पड़ी तो परमवंदनीया माताजी ने जिनने हर कदम पर अपने आराध्य का साथ निभाया, अपने सारे जेवर बेच दिये, पूज्यवर ने जमींदारी के बाण्ड बेच दिये एवं जमीन लेकर अस्थायी स्थापना कर दी गयी। धीरे-धीरे उदारचेताओं के माध्यम से गायत्री तपोभूमि एक साधना पीठ बन गयी। २४०० तीर्थों के जल व रज की स्थापना वहाँ की गयी, २४०० करोड़ गायत्री मंत्र लेखन वहाँ स्थापित हुआ, अखण्ड अग्नि हिमालय के एक अति पवित्र स्थान से लाकर स्थापित की गयी जो अभी तक वहाँ यज्ञशाला में जल रही है। १९४१ से १९७१ तक का समय परमपूज्य गुरुदेव का गायत्री तपोभूमि, अखण्ड ज्योति संस्थान में सक्रिय रहने का समय है। १९५६ में नरमेध यज्ञ, १९५७ में सहस्रकुण्डी यज्ञ करके लाखों गायत्री साधकों को एकत्र कर उनने गायत्री परिवार का बीजारोपण कर दिया। कार्त्तिक पूर्णिमा १९५८ में आयोजित इस कार्यक्रम में दस लाख व्यक्तियों ने भाग लिया, इन्हीं के माध्यम से देशभर में प्रगतिशील गायत्री परिवार की दस हजार से अधिक शाखाएँ स्थापित हो गयीं। संगठन का अधिकाधिक कार्यभार पूज्यवर परमवंदनीया माताजी पर सौंपते चले गये एवम् १९५९ में पत्रिका का संपादन उन्हें देकर पौने दो वर्ष के लिए हिमालय चले गये, जहाँ उन्हें गुरुसत्ता से मार्गदर्शन लेना था, तपोवन नंदनवन में ऋषियों से साक्षात्कार करना था तथा गंगोत्री में रहकर आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना था। तब तक वे गायत्री महाविद्या पर त्रिश्वकोश स्तर की रचना गायत्री महाविज्ञान के तीन खण्ड लिख चुके थे, जिसके अब तक प्राय: पैंतीस संस्करण छप चुके हैं। हिमालय से लौटते ही उनने महत्वपूर्ण निधि के रूप में वेद, उपनिषद्, स्मृति, आरण्यक, ब्राह्मण, योगवाशिष्ठ, मंत्र महाविज्ञान, तंत्र महाविज्ञान जैसे ग्रन्थों को प्रकाशित कर देव संस्कृति की मूलथाती को पुनर्जीवन दिया। परमवंदनीया माताजी ने उन्हीं वेदों को पूज्यवर की इच्छानुसार १९९१-९२ में विज्ञानसम्मत आधार देकर पुनर्मुद्रित कराया एवं वे आज घर-घर में स्थापित हैं।

युग निर्माण योजना व 'युग निर्माण सत्संकल्प' के रूप में मिशन का घोषणा पत्र १९६३ में प्रकाशित हुआ। तपोभूमि एक विश्वविद्यालय का रूप लेती चली गयी तथा अखण्ड ज्योति संस्थान एक तप-पूत की निवास स्थली बन गया, जहाँ रहकर उनने अपनी शेष तप साधना पूरी की थी, जहाँ से गायत्री परिवार का बीज डाला गया था। तपोभूमि में विभिन्न शिविरों का आयोजन किया जाता रहा, पूज्यवर स्वयं छोटे-बड़े जन सम्मेलनों के द्वारा विचार क्रान्ति की पृष्ठभूमि बनाते रहे, पूरे देश में १९७०-७१ में पाँच १००८ कुण्डी यज्ञ आयोजित हुए। स्थायी रूप से विदाई लेते हुए एक विराट सम्मेलन (जून १९७१) में परिजनों को विशेष कार्य-भार सौंप परमवंदनीया माताजी को शांतिकुंज, हरिद्वार में अखण्ड दीप के समक्ष तप हेतु छोड़कर स्वयं हिमालय चले गये। एक वर्ष बाद वे गुरुसत्ता का संदेश लेकर लौटे एवं अपनी आगामी बीस वर्ष की क्रिया-पद्धति बतायी। ऋषि परम्परा का बीजारोपण, प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी व कल्प साधना सत्रों का मार्गदर्शन जैसे कार्य उनने शांतिकुंज में सम्पन्न किये।

सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थापना अपनी हिमालय की इस यात्रा से लौटने के बाद ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की थी, जहाँ विज्ञान और अध्यात्म के समन्वयात्मक प्रतिपादनों पर शोध कर एक नये धर्म वैज्ञानिक धर्म के मूलभूत आधार रखे जाने थे। इस सम्बन्ध में पूज्यवर ने विराट परिमाण में साहित्य लिखा, अदृश्य जगत के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

अनुसंधान से लेकर मानव की प्रसुप्त क्षमता के जागरण तक, साधना से सिद्धि एवं दर्शन-विज्ञान के तर्क, तथ्य, प्रमाण के आधार पर प्रस्तुतीकरण तक। इसके लिए एक विराट ग्रन्थागार बना व एक सुसज्जित प्रयोगशाला। वनौषधि उद्यान भी लगाया गया तथा जड़ी-बूटी, यज्ञ विज्ञान तथा मंत्र शक्ति पर प्रयोग हेतु साधकों पर परीक्षण प्रचुर परिमाण में किये गये। निष्कर्षों ने प्रमाणित किया कि ध्यान साधना, मंत्र चिकित्सा व यज्ञोपैथी एक विज्ञानसम्मत विधा है। गायत्री नगर क्रमशः एक तीर्थ, संजीवनी विद्या के प्रशिक्षण का, एकेडमी का रूप लेता चला गया एवं जहाँ ९-९ दिन के साधना प्रधान, एक-एक माह के कार्यकर्त्ता निर्माण हेतु युगशिल्पी सत्र सम्पन्न होने लगे।

कार्यक्षेत्र में विस्तार हुआ। स्थान-स्थान पर शक्तिपीठें विनिर्मित हुईं, जिनके निर्धारित क्रियाकलाप थे- सुसंस्कारिता व आस्तिकता संवर्धन एवं जन-जाग्रति के केन्द्र बनना। ऐसे केन्द्र जो १९८० में बनना आरंभ हुए थे, प्रज्ञासंस्थान, शक्तिपीठ, प्रज्ञामण्डल, स्वाध्याय-मण्डल के रूप में पूरे देश व विश्व में फैलते चले गये। ७६ देशों में गायत्री परिवार की शाखाएँ फैल गयीं, ४६०० से अधिक भारत में निज के भवन वाले संस्थान विनिर्मित हो गये, वातावरण गायत्रीमय होता चला गया।

परमपूज्य गुरुदेव ने सूक्ष्मीकरण में प्रवेश कर १९८५ में ही पाँच वर्ष के अंदर अपने सारे क्रिया-कलापों को समेटने की घोषणा कर दी। इस बीच कठोर तपसाधना कर मिलना-जुलना कम कर दिया तथा क्रमशः क्रिया-कलाप परमवंदनीया माताजी को सौंप दिये। राष्ट्रीय एकता सम्मेलनों, विराट दीप यज्ञों के रूप में नूतन विधा को जन-जन को सौंप कर राष्ट्र देवता की कुण्डलिनी जगाने हेतु उनने अपने स्थूल शरीर छोड़ने व सूक्ष्म में समाने की, विराट से विराटतम होने की घोषणा कर गायत्री जयन्ती २ जून, १९९० को महाप्रयाण किया। सारी शक्ति वे परमवंदनीया माताजी के दे गये व अपने व माताजी के बाद संघशक्ति की प्रतीक लाल मशाल को ही इष्ट-आराध्य मानने का आदेश देकर ब्रह्मबीज से विकसित ब्रह्मकमल की सुवास को देवसंस्कृति दिग्विजय अभियान के रूप में आरंभ करने का माताजी को निर्देश दे गये।

एक विराट श्रद्धांजलि समारोह व शपथ समारोह जो हरिद्वार में सम्पन्न हुए, में लाखों व्यक्तियों ने अपना समय समाज के नवनिर्माण, मनुष्य में देवत्व के उदय व धरती पर स्वर्ग लाने का गुरुसत्ता का नारा साकार करने के निमित्त देने की घोषणा की। परमवंदनीया माताजी द्वारा भारतीय-संस्कृति को विश्वव्यापी बनाने, गायत्री रूपी संजीवनी घर-घर पहुँचाने के लिए पूज्यवर द्वारा आरम्भ किये गये युग संधि महापुरश्चरण की प्रथम व द्वितीय पूर्णाहुति तक विराट अश्वमेध महायज्ञों की घोषणा की गयी। वातावरण के परिशोधन, सूक्ष्मजगत के नवनिर्माण एवं सांस्कृतिक व वैचारिक क्रान्ति ने सारी विश्ववसुधा को गायत्री व यज्ञमय, वासंती उल्लास से भर दिया। स्वयं परमवंदनीया माताजी ने अपनी पूर्व घोषणानुसार चार वर्ष तक परिजनों का मार्गदर्शन कर सोलह यज्ञों का संचालन स्थूल शरीर से किया व फिर भाद्रपद पूर्णिमा १९ सितम्बर, १९९४ महालय श्राद्धारंभ वाली पुण्य वेला में अपने आराध्य के साथ एकाकार हो गयीं। उनके महाप्रयाण के बाद, दोनों ही सत्ताओं के सूक्ष्म में एकाकार होने के बाद मिशन की गतिविधियाँ कई गुना बढ़ती चली गयीं एवं जयपुर के प्रथम अश्वमेध यज्ञ (नवम्बर ९२) से छब्बीसवें अश्वमेध यज्ञ शिकागो (यू. एस ए. जुलाई ९५) तक प्रज्ञावतार का प्रत्यक्ष रूप सबको दीखने लगा है।

गुरुसत्ता के आदेशानुसार सतयुग के आगमन तक १०८ महायज्ञ देवसंस्कृति को विश्वव्यापी बनाने हेतु सम्पन्न होने हैं। युग संधि महापुरश्चरण की अंतिम पूर्णाहुति उसी के बाद होगी। प्रथम पूर्णाहुति नवम्बर १९९४ में कार्त्तिक पूर्णिमा के अवसर पर युगपुरुष पूज्यवर की जन्मभूमि आँवलखेड़ा में मनायी गई। उनके द्वारा लिखे गये समग्र साहित्य के वाङ्मय का जो एक सौ आठ खण्डों में फैला है, विमोचन भी यहीं सम्पन्न हुआ। विनम्रता एवं ब्राह्मणत्व की कसौटी पर खरे उतरने वाले वरिष्ठ प्रज्ञापुत्र ही उनके उत्तराधिकारी कहे जाएँगे, यह गुरुसत्ता का उद्घोष था एवं इस क्षेत्र में बढ़-चढ़कर आदर्शवादी प्रतिस्पर्धा करने वाले अनेकानेक परिजन अब उनके स्वप्नों को साकार करने आगे आ रहे हैं। 'हम बदलेंगे-युग बदलेगा' का उद्घोष दिग-दिगन्त तक फैल रहा है एवं इक्कीसवीं सदी उज्ज्वल भविष्य, सतयुग की वापसी का स्वप्न साकार होता चला जा रहा है, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा है। ❑❑❑

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूमिका

'धन्यो गृहस्थाश्रमः' कहकर हमारे ऋषि-मुनियों ने चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही धन्य कहे जाने योग्य है, ऐसा श्रुति में कहा है। जिस तरह समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं, उसी तरह सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं। वस्तुतः किसी भी समाज या राष्ट्र के विकास के लिए परिवार संस्था का स्वस्थ, समर्थ व सशक्त होना जरूरी है। यह सहजीवन के व्यावहारिक शिक्षण की प्रयोगशाला है। बिना किसी बाह्य दण्ड, भय या कानून के चलने वाली यह एकमात्र ऐसी संस्था है जो आनुवंशिक संस्कारों एवं पारस्परिक विश्वास पर निर्भर रह, अविच्छृंखल स्थिति में न जाकर सतत गतिशील रहती आयी है। बिना स्वार्थों का त्याग किए, कष्ट सहन किए सहजीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती एवं त्याग, सहिष्णुता, सेवा की धुरी पर यह संस्था मात्र भारतीय संस्कृति की ही विशेषता है एवं सदा रहेगी।

परमपूज्य गुरुदेव ने गृहस्थाश्रम को समाज को सुनागरिक देने की खान मानते हुए इसे एक आदर्श समाज की अनिवार्य आवश्यकता माना है। मनुष्य की सहज वृत्ति कामवासना को पति-पत्नी में एक दूसरे के प्रति कर्तव्यनिष्ठा में परिवर्तित कर कामोपभोग को एक सांस्कृतिक संस्कार बनाकर सामाजिक मूल्य का रूप देना गृहस्थाश्रम की ही देन है। गृहस्थाश्रम कामोपभोग का प्रमाण पत्र नहीं, अपितु संयम-ब्रह्मचर्य मूलक होने का प्रतीक माना गया है।

गृहस्थ तप और त्याग का जीवन कहा गया है। इस धर्म के परिपालन के लिए किया गया कोई भी प्रयास किसी तप से कम नहीं है। गृहस्थ में स्वयं मनुष्य को अपनी वृत्तियों पर अंकुश लगाना पड़ता है। चिकित्सा, भोजन, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए सब प्रबन्ध करने हेतु अपना पेट काट कर सारी व्यवस्था करनी होती है, एक जिम्मेदारी से भरा जीवन जीना पड़ता है। सचमुच गृहस्थाश्रम एक यज्ञ है, जिसमें प्रत्येक सदस्य उदारता पूर्वक सहज ही एक दूसरे के लिए कष्ट सहते हैं, एक दूसरे के लिए त्याग करते हैं। गृहस्थाश्रम समाज के संगठन, मानवीय मूल्यों की स्थापना, समाजनिष्ठा, भौतिक विकास के साथ-साथ मनुष्य के आध्यात्मिक, मानसिक विकास का भी क्षेत्र है एवं इस प्रकार समाज के व्यवस्थित स्वरूप कर मूलाधार है।

श्रेष्ठ संतान, सुसंतति देने की खान गृहस्थ धर्म को ही माना गया है। भक्त, ज्ञानी, संत, महात्मा, महापुरुष, विद्वान, पण्डित गृहस्थाश्रम से ही निकल कर आते हैं। उनके जन्म से लेकर शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण, ज्ञानवर्धन गृहस्थाश्रम के बीच ही हो पाता है। परिवार के बीच ही महामानव प्रशिक्षण पाकर निकलते व किसी समाज के विकास का निमित्त बन पाते हैं। इसी कारण इस संस्था के महत्व को सर्वोपरि बताते हुए पूज्यवर वाङ्मय के इस खण्ड में दाम्पत्य जीवन के निर्वाह, सफल दाम्पत्य जीवन के मूलभूत सिद्धान्त, संतानों की संख्या नहीं स्तर बढ़ाया जाय तथा दाम्पत्य जीवन को एक स्वर्ग जैसा मानते हुए वैसा जीवन जिया जाय, इन सभी पक्षों पर विस्तार से प्रकाश डालते हैं।

आज इस संस्था में विघटन पैदा होता दीख पड़ता है। मध्यकाल में आई कुरीतियों के कारण कच्ची उम्र में विवाह, छूँछ हो गए जीवनी-शक्ति विहीन शरीरों द्वारा कमजोर संततियों को जन्म, लड़का-लड़की में भेद के कारण संतानों की बढ़ती संख्या, पारस्परिक मनोमालिन्य व द्वेष के कारण नारकीय वातावरण, रूप-सज्जा व कामुकता पर अधिक ध्यान होने से विवाहेतर सम्बन्धों में अधिकता, यौन स्वच्छन्दता से लेकर पति-पत्नी दोनों की निजी मनोवैज्ञानिक त्रुटियों के कारण बोझ बन गया गृहस्थी का संसार-यह कुछ ऐसा विकृत स्वरूप है जिस पर आज सर्वाधिक ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है। बढ़ती आधुनिकता व फैशन फिजूलखर्ची की होड़ में अधिकाधिक परिवार संस्कार विहीन, दरिद्र एवं सुख-शांति से विहीन होते देखे जा सकते हैं। कैसे वह पुरुषार्थ किया जाय कि संस्कारों को पुनर्जीवित करने वाली यह संस्था पुनः अपना पूर्व वाला स्वरूप ले सके, यह आग युगपुरुष पूज्य गुरुदेव के अंतःकरण में सतत धधकती रही। उसी आग को सुव्यवस्थित रूप देते हुए उनने वाङ्मय के इस खण्ड में गृहस्थ रूपी तपोवन के मानदण्ड बताए एवं व्यावहारिक तथ्य समझाए हैं।

परमपूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि दाम्पत्य प्रेम एवं सहयोग की सफलता में अब पुरुष को पहल करनी पड़ेगी, क्योंकि चिरअतीत में पुरुषों के अंतःपुरों-हरमों में लाखों स्त्रियों ने उत्पीड़न सहे व आँसू बहाते दिन बिताए हैं। वे

सावित्री . जगदीश प्रसाद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

लिखते हैं कि अब पुरुषों को ही आगे आना होगा, प्रायश्चित्य करना होगा ताकि इतने लम्बे समय तक शोषण सहती आ रहीं स्त्रियाँ न्याय पा सकें। परमपूज्य गुरुदेव का नारी जाग्रति अभियान पूर्णत: इसी पर टिका है कि नर व नारी एक ही गाड़ी के दो पहियों की तरह एक साथ मिलकर दायित्व निर्वाह करते हुए एक सफल समर्थ गृहस्थ संस्था का निर्माण कर प्रजातंत्र को सशक्त व रूढ़िवादिता-प्रतिगामिता से मुक्त बनाएँ।

आज समाज में अविवाहित कन्याओं की उम्र भी बढ़ती जाती है एवं संख्या भी। सुयोग्य जोड़ियाँ न मिल पाने के कारण अन्तर्जातीय विवाह के लिए मानसिकता न बन पाने के कारण विवाह प्रक्रिया पश्चिम की तरह एक खिलवाड़ बनती चली जा रही है। एक भारी दायित्व जिसे माना गया है यदि वह कामवासना की पूर्ति का एक माध्यम मात्र बन जायगा तो समाज जीवित कैसे रहेगा-जिम्मेदार नागरिक कहाँ से पैदा होंगे? यह सभी ज्वलन्त प्रश्न 'गृहस्थ योग' रूपी इस शोध प्रबन्ध स्तर के खण्ड में रखे व उनके समाधान दिए गए हैं। यह खण्ड आज के टूटते समाज के नैतिक मूल्यों पर करारी चोंट कर सामयिक समाधान देता है तथा एक ऐसी व्यवस्था की बात करता है जिससे परिवार संस्था सशक्त, समर्थ बने एवं राष्ट्र पुन: अपनी गौरव-गरिमा को प्राप्त हो सके।

-ब्रह्मवर्चस

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विषय-सूची

१. विवाह और दाम्पत्य जीवन का निर्वाह १.१
विवाह खिलवाड़ नहीं, भारी दायित्व है १.१
विवाह इस प्रकार हों १.३
विवाह दिवसोत्सव कैसे मनावें ? १.६
परिवार संस्था का सुसंचालन १.१४
परिवार का मूल—दाम्पत्य-जीवन १.१६
पतिव्रत धर्म की गरिमा १.१९
पत्नीव्रत-धर्म की आवश्यकता १.२२
दाम्पत्य जीवन आदर्शों पर आधारित रहे १.२४
दाम्पत्य जीवन का निर्वाह १.२७
समय से पूर्व विवाह करने की विवेकहीनता १.२७
योग्यता संवर्धन अनिवार्य रूप से आवश्यक १.२८
पारस्परिक आत्मीयता का व्यवहार हो १.२८
रूप-लावण्य को प्रधानता न मिले १.२८
विवाह पूर्व की भूलों को अप्रकट ही रखें १.२९
एक-दूसरे का सम्मान करें १.२९
पति का कर्त्तव्य १.३०
प्रजनन की विडम्बना १.३१
पुरुषों का दायित्व १.३१
अर्धांग को समुन्नत बनाने में लाभ-ही-लाभ है १.३२
उत्पीड़न के विरुद्ध आन्दोलन हो १.३२
विवेक और साहस की आवश्यकता १.३३

२. सफल दाम्पत्य जीवन के मूलभूत आधार २.१
दाम्पत्य-जीवन में परस्पर समर्पण ही सफल होता है २.१
पत्नी अपने पति की वास्तविक सहायक हों २.३
इतने व्यस्त न रहें कि दाम्पत्य जीवन नीरस बन जाय २.५
दाम्पत्य जीवन का आचार संहिता २.६
संतुलित दाम्पत्य जीवन और पत्नी की भूमिका २.८
दाम्पत्य-जीवन ढोयें नहीं सँजोयें २.१०
सहधर्मिणी के प्रति कर्त्तव्य-निष्ठ रहिए २.१२
धर्मपत्नी की उपेक्षा न करें २.१४
सफल दाम्पत्य के सुदृढ़ आधार २.१५
दाम्पत्य-जीवन में सार्थकता की समान कसौटी २.१६
पारिवारिक सुख-शान्ति का मार्ग २.१८
सुखी दाम्पत्य-जीवन इस तरह बनता है २.२०
पति-पत्नी परस्पर सामंजस्य रखें २.२२
दाम्पत्य-जीवन इस तरह निभता है २.२३
पति-पत्नी—ब्रह्म और प्रकृति २.२५
पति-पत्नी सच्चे मित्र बनकर रहें २.२६
पति-पत्नी के बीच स्नेह, सहयोग और सम्मान २.२८
सफल दाम्पत्य जीवन के मूलभूत—आधार २.२९
माता-पिता बनने से पहले श्रेष्ठ दम्पति बनें २.३१
सफल दाम्पत्य के लिये पूर्व तैयारी आवश्यक २.३४
दाम्पत्य-जीवन में आदर्शवादिता का समावेश २.३६
दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए २.३६
दाम्पत्य-जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ २.३८
दाम्पत्य-जीवन सफल कैसे बने ? २.४०
पति होने का अहंकार त्यागिये २.४२
मधुर दाम्पत्य के मूल आधार २.४४
दाम्पत्य-जीवन की सफलता सघन प्रेम पर निर्भर २.४६
सुशिक्षितों का दाम्पत्य जीवन २.४७
दाम्पत्य-जीवन के स्नेह-सूत्र टूटने न पायें २.४७
छोटी-छोटी बातें बड़ा रूप ले लेती हैं २.४८
दाम्पत्य-जीवन में प्रसन्नता अक्षुण्ण रहे २.५०
दाम्पत्य प्रेम का सन्तति पर प्रभाव २.५०
दाम्पत्य-जीवन की सफलता के रहस्य २.५२
दाम्पत्य-जीवन का सुख प्राप्त कीजिए २.५३
दाम्पत्य-जीवन की सफलता का मार्ग २.५४
पत्नी सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी बने २.५५
पति-पत्नी के सहजीवन के आधार २.५७
दाम्पत्य-जीवन और प्रेम २.५९
दाम्पत्य-जीवन की सफलता २.६१
दाम्पत्य-जीवन की साधना के मन्त्र २.६२
दाम्पत्य प्रेम स्थिर कैसे रहे ? २.६३
दाम्पत्य-जीवन में सुख-सृष्टि कैसे हो ? २.६५
पति ही नहीं, पति के कर्त्तव्य भी हैं २.६७
दाम्पत्य-धर्म की मर्यादाएँ समझें २.६९
सुखी दाम्पत्य-जीवन इस प्रकार बनता है २.७०

३. दाम्पत्य जीवन की असफलता—कारण और निवारण ३.१
दाम्पत्य जीवन की असफलता का मूल कारण ३.१
पत्नी को दासी नहीं, साथी मानिये ३.३
दाम्पत्य जीवन में दुराव की दरार ३.४
विवाह के आदर्श और दाम्पत्य अपराध ३.५
दाम्पत्य जीवन की असफलता का अभिशाप ३.८
अहंकार और दाम्पत्य प्रेम में एक रह सकता है, दोनों नहीं ३.९
भौतिकता की बाढ़ मारकर छोड़ेगी ३.११
असफल दाम्पत्य जीवन—कारण और निवारण ३.१२
पत्नी-अनुवर्तिनी नहीं सहधर्मिणी ३.१४

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पतिव्रत ही नहीं, पत्नीव्रत भी निभाया जाय ३.१६
बुद्धिवाद के इस अभिशाप से समाज को मुक्ति दिलायें ३.१८
दाम्पत्य जीवन का सुखद निर्वाह ३.१९
दाम्पत्य जीवन और सहचरत्व ३.२१
दाम्पत्य प्रेम : छोटा स्वर्ग सोपान ३.२३
पति के विकास में पत्नी का सहयोग ३.२४
सुखी दाम्पत्य के स्वर्णिम सूत्र ३.२५
पति और पत्नी का सम्बन्ध ३.२६
धर्मपत्नी के प्रति पति के कर्तव्य ३.२७
पति-पत्नी परस्पर मन-मुटाव से बचें ३.२८
सफल दाम्पत्य—सघन-आत्मीयता पर निर्भर ३.३०
दाम्पत्य-जीवन को नारकीय होने से बचावें ३.३१
दाम्पत्य जीवन की आधारशिला ३.३३
मर्यादा टूटी नहीं, औचित्य छूटा नहीं ३.३४
सफल दाम्पत्य जीवन में पत्नी की भूमिका ३.३४
लोकमान्य तिलक तथा उनकी धर्म-पत्नी ३.३६
एक और ताजमहल ३.३९
दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने वाले कुछ स्वर्ण-सूत्र ३.३९
दाम्पत्य-जीवन की सफलता का रहस्य ३.४२
गृहस्थाश्रम की सार्थकता ३.४४
लोकेषणा की हेय लालसा ३.४६
वित्तेषणा की डाकिन ३.४८
नर एवं नारी एक-दूसरे के सहचर ३.५१
प्रेम की पावन पाठशाला ३.५२
कौस्तुभ मणिवत-'कौस्तुभ दम्पत्ति' ३.५३
दाम्पत्य सुख का प्रमुख आधार—विवेकशीलता ३.५४
हमारे सम्बन्ध—स्नेह-सौहार्द्रपूर्ण कैसे रहें ? ३.५६
बड़ी उम्र में पिता बनना चाहिए ३.५९
काम के साथ शारीरिक वासनाएँ जोड़ना अहितकर ३.६०
सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (१) ३.६२
सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (२) ३.६४
सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (३) ३.६६
सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (४) ३.६८
सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार ३.७०
दाम्पत्य जीवन में आनन्द की सृष्टि ३.७१
कण-कण जोरे मन जुरै ३.७३
गृहस्थ योगी ३.७५
दाम्पत्य जीवन एक आध्यात्मिक योग साधना ३.७६
यागपरः पुरुषधर्मः तपः प्रधानो नार्याः ३.७७
गृहस्थ में संन्यास ३.७८
गृहस्थ में रहकर भी मुक्ति लाभ संभव है ३.८०

४. संतान की संख्या नहीं, स्तर बढ़ायें ४.१
सन्तान न होना-कोई दुर्भाग्य तो है नहीं ४.१
क्या सन्तान न होना दुर्भाग्य है ? ४.२
सन्तानहीन होना एक सौभाग्य भी ४.४
सन्तान के लिए अधीरता क्यों ? ४.६
एक सार्थक उदाहरण ४.८
कन्या की उपेक्षा न हो ४.९
पुत्र और कन्या की तुलना ४.११
सन्तानोत्पादन हेतु इतनी आतुरता क्यों ? ४.१४
जन्म-दर आखिर कैसे घटे ? ४.१५
सन्तान की अविवेकपूर्ण आकांक्षा ४.१६
कामुकता की कुदृष्टि ४.१८
पतन के मार्ग पर तो न चलें ४.१९
संख्या नहीं; समर्थता जिन्दा रहेगी ४.२०
अमर्यादित प्रजनन की विभीषिका हम सबको ले डूबेगी ४.२२
निरंकुश भोगवाद की परिणति ४.२४
यौन स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाना ही होगा ४.२६
यौनाचार और प्रजनन का दायित्व ४.२८
प्रजनन का दायित्व लेने से पूर्व कई बार सोचें ४.२९
विवाह और प्रजनन की नई समीक्षा ४.३१
सन्तानोत्पादन को निरुत्साहित किया जाय ४.३३
संतानोत्पादन की वज्रमूर्खता ४.३४
अन्धाधुन्ध प्रजनन हर दृष्टि से अदूरदर्शितापूर्ण ४.३६
हर प्रकार घाटा ही घाटा ४.३७
सन्तानों की संख्या बढ़ाना व्यक्ति और समाज के लिए घातक है ४.३८
अनियंत्रित प्रजनन-सर्वनाश का आह्वान ४.४०
संयम ही हमें नष्ट होने से अब बचायेगा ४.४२
सन्तान सीमित ही रखें ४.४३
सन्तानोत्पादन का उत्तरदायित्व समझ-बूझ कर ही उठायें ४.४५
अधिक बच्चे उत्पन्न कर सिर दर्द न बढ़ाइए ४.४७
अभिभावक हैं, तो उत्तरदायित्व भी निभाइये ४.४८
उद्धत यौनाचार के भयावह दुष्परिणाम ४.५०
कामुकता का यह अतिवाद और भी हानिकारक ४.५२
धरती खिसक जाय तो आश्चर्य नहीं ४.५३
बदलती परिस्थितियों में विचार भी बदलें ४.५३
सन्तान की लालसा एक मूर्खतापूर्ण स्वार्थपरता ४.५५
संतानहीनता की स्थिति से परेशान न हों ४.५७
अधिक बच्चे उत्पन्न करना सामाजिक अपराध है ४.५९

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संतान बढ़ाना-दुःख-दारिद्रय को न्यौत बुलाना ४.६०
सन्तान के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण साफ करें ४.६१
संतान न होना ईश्वर की कृपा ही समझिये ४.६४
राष्ट्रीय स्वास्थ्य और सन्तानोत्पत्ति ४.६५
समय रहते संभलने की समझदारी ४.६६
सन्तानोत्पादन आवश्यक न माना जाए ४.६७
अमर्यादित प्रजनन की समस्या और समाधान ४.७०
जन्मदर घटाने में इस प्रकार योगदान दीजिए ४.७१
अवांछनीय प्रजनन से हाथ खींचें ४.७२
अधिक सन्तान या जान की आफत ४.७४
सुसंतुलित परिवार-सुखी परिवार ४.७४
भगवान ने दिया बेटा ४.७५
बच्चे यों न बढ़ाइये कि उन्हें पालते-पालते मर जाना पड़े ४.७६
सन्तान की संख्या नहीं, स्तर बढ़ाइये ४.७७
अधिकारी व्यक्ति ही सन्तान उत्पन्न करें ४.७९
व्यभिचार से दूर रहो ४.८१
वरदायी आविष्कार ४.८३
संतति नियमन के कुछ सुलभ उपाय ४.८४
असह्य भार, बड़ा परिवार, सीमित सन्तान—सदा बलवान् ४.८६
संयम बनाम समर्थता बनाम सुनिश्चित जीवन ४.८७
सन्तान की संख्या नहीं, उत्कृष्टता बढ़ायें ४.८८
बालकों को जन्म ही न दें—उनका निर्माण भी करें ४.८९
सन्तानोत्पादन—भारी दायित्व ४.९०
सुसंतति प्राप्ति के शाश्वत सिद्धान्त ४.९२
उत्तम संतान कैसे प्राप्त हो ? ४.९३
अभ्यागत आत्मा के स्वागत की तैयारी ४.९५
अभीष्ट सन्तति कैसे जन्मे ४.९६
मनचाही सन्तान प्राप्त करें ४.९७
परिष्कृत और समुन्नत पीढ़ियाँ ही नवयुग का आधार बनेंगी ४.९८

दाम्पत्य जीवन का स्वर्ग ५.१

मनुष्य अपने आप में अपूर्ण है ५.१
गृहस्थ धर्म एक योग-साधना ५.२
गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता महान है ५.२
दाम्पत्य जीवन की सफलता ५.५
दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने वाले स्वर्ण सूत्र ५.७
सौन्दर्य की निस्सारता ५.९
वैवाहिक असफलता के कारण ५.१०
अपनी पत्नी से शिष्ट व्यवहार ५.११
दाम्पत्य जीवन का सच्चा सार ५.११
झगड़ों का निपटारा शीघ्र करें ५.१३
दाम्पत्य मनोरंजन ५.१६
उपयोगी मनोरंजन ५.१७
मित्रता की आवश्यकता एवं उसका निर्वाह ५.१९
दाम्पत्य जीवन का सुख यों प्राप्त करें ५.२०
हमारे उत्सव तथा त्यौहार ५.२१
बचे हुए समय का उपयोग कैसे होना चाहिए ? ५.२२
शान्तिमय गृहस्थ जीवन ५.२४
महापुरुषों का दाम्पत्य-जीवन ५.२६
परिवार छोटा रहे ५.२७
अपने साथी की सुविधा-सामर्थ्य का ध्यान रखिए ५.३०
दाम्पत्य प्रेम का सन्तान पर प्रभाव ५.३१

६. गृहस्थ एक तपोवन है ६.१

घर-गृहस्थी मायाजाल या साधना भूमि ६.१
आश्रम व्यवस्था पर एक दृष्टि ६.३
ऋषियों की गृहस्थ-साधना-गृहस्थ योग ६.५
गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्व साधना से कम नहीं ६.८
गृहस्थ धर्म तुच्छ नहीं है ६.१०
धन्यो गृहस्थाश्रमः ६.१२
ब्रह्मचर्य और निरालस्य का व्रत धारण ६.१४
अध्यात्म की एक पुण्य परम्परा ६.१७
गृहस्थ की समुन्नति के लिए समय का सदुपयोग ६.१७
सद्गृहस्थ और असद्गृहस्थ में अन्तर ६.१८
गृहस्थ में वैराग्य ६.२१
दृष्टिकोण का परिवर्तन ६.२२
भोग से योग तक ६.२३
गृहस्थ योग के कुछ मन्त्र ६.२५
गृहस्थ योग से परम पद ६.२८

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

विवाह और दाम्पत्य जीवन का निर्वाह

विवाह खिलवाड़ नहीं, भारी दायित्व है

सड़े-गले विचारों वाले दकियानूसी समुदाय में यह अपेक्षा की जाती है कि विवाह के उपरान्त जल्दी ही सन्तान होनी चाहिए। उसे सौभाग्य समझा जाता है। विवाह हुए कुछ समय निकल जाये और सन्तान न हो तो चिन्ता की जाने लगती है। वधू को बन्ध्या कहकर उस पर दोषारोपण का सिलसिला चल पड़ता है। दूसरा विवाह कर लेने की बात सोची जाने लगती है। खाली गोद नारी को अभागी कहा जाने लगता है। जबकि ऐसे अधिकांश मामलों में पुरुष की दुर्बलता ही आधारभूत कारण होती है। लड़कों में बचपन से ही कुटेबें पड़ जाती हैं और वे अपना पुरुषत्व खो बैठते हैं। ऐसी दशा में पुरुष की हीनता का दोष नारी के सिर पर मढ़ने का रिवाज ही व्यापक होते देखा गया है। जिनके जल्दी-जल्दी कई बच्चे हो जाते हैं उन्हें भाग्यवान कहा जाता है। लड़के हुए तो सोचा जाता है कि कमाई से घर भरेगा। लड़कियाँ होने लगें तो लड़कों की प्रतीक्षा में उस संदर्भ में और भी जल्दबाजी के प्रयोग किये जाते हैं। कई बार तो इसी प्रयोग में ढेरों लड़कियों से घर भर जाता है और उनके लिए जननी को लज्जित-तिरस्कृत किया जाता है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या विवाह के उपरान्त जल्दी ही बच्चे होने चाहिए और उनकी संख्या बढ़ती ही रहनी चाहिए ? समय को देखते हुए यह चिन्तन सर्वथा अनुपयुक्त ही कहा जा सकता है। ईसा के चार हजार वर्ष पूर्व संसार भर में मनुष्य की जनसंख्या पाँच करोड़ के करीब थी। अब वह बढ़कर ६०० करोड़ हो गयी है। यह बढ़ोत्तरी यदि इसी चक्रवृद्धि गति से चलती रही तो अगले पचास वर्ष में यह गणना १००० करोड़ तक पहुँच सकती है।

वर्तमान स्थिति का पर्यवेक्षण करने से पाया गया है कि जितने मनुष्य अभी हैं उनके लिए खाद्य पदार्थ कम पड़ रहे हैं। ईंधन बेतहाशा घट रहा है। लकड़ी, कोयला, तेल, बिजली आदि को अधिक मात्रा में उपलब्ध किये जाने की पग-पग पर आवश्यकता अनुभव की जाती है। बढ़ती हुई आबादी के लिए रोजी, शिक्षा, चिकित्सा, मकान आदि सभी जीवनोपयोगी वस्तुएँ कम पड़ती जाती हैं। अनुमान है कि यह संकट अगले पचास वर्ष में अत्यधिक भयावह रूप धारण कर लेगा। कारखानों की बढ़ोत्तरी से हवा और पानी विषाक्त होता चला जाता है। खाद्य के साथ खनिजों की भी कमी पड़ेगी। धरती का जितना दोहन संभव है, उसकी चरमसीमा पर जा पहुँचा है। जनसंख्या बढ़ते रहने पर दुर्भिक्ष पड़ेंगे। बेरोजगारी, बीमारी, अशिक्षा का अनुपात बढ़ेगा। ऐसी दशा में प्रगति के लिए किये जाने वाले सभी प्रयास ओछे पड़ते जायेंगे। मनुष्य जाति क्रमशः मुसीबत के अधिक गहरे दलदल में फँसती जायगी।

विज्ञजनों की पुकार है कि अब धरती का बोझ न बढ़ाया जाय। सन्तानोत्पादन रोका जाय। इस कारण जो भारी विपत्ति बढ़ रही है उसे यहीं पर विराम दिया जाय। कुछ वर्षों तक सन्तानोत्पादन को समाज द्रोह घोषित किया जाय। जो समझाने पर नहीं समझते उन्हें कड़ा दण्ड दिया जाय। जिस भी उपाय से प्रजनन रुकता हो उसे काम में लाया जाय। परिवार नियोजन की आवश्यकता जनसाधारण को समझाने के लिए सरकारें विपुल धन खर्च कर रही है, पर अनगढ़ों की कमी नहीं। वे अपने लिए स्वयं विपत्ति मोल लेने से बाज नहीं आ रहे हैं। यह भारी चिन्ता का विषय है और भयानक दुर्गति की संभावना का भी। लगता है कि नासमझी की विकल्प प्रताड़ना ही हो सकती है। भले ही वह शासन द्वारा, समाज द्वारा या प्रकृति द्वारा दी जाय।

कुछ समय पहले यह समझा जाता था कि विवाह एक अनिवार्य आवश्यकता है। जिसे हर किसी को करना चाहिए। अयोग्य लड़कियों और लड़कों को भी किसी प्रकार इस बन्धन में बाँध दिया जाता था। विवाह का अर्थ यौनाचार की खुली छूट भी है। यौनाचार का प्रतिफल है सन्तानोत्पादन। यह क्रम चल पड़े तो फिर बहुत समय तक चलता ही रहता है। एक-एक जोड़ा कई-कई सन्तानें जनता है। उनकी संख्या कई बार तो दस बारह तक पहुँचती है। औसत प्रजनन चार-पाँच तक तो होता ही है। इनमें से दो-तीन मर भी जायें तो भी हर पचास वर्ष में आबादी दूनी हो जाती है और फिर वह चक्रवृद्धि दर से बढ़ती है। इनमें से अधिकांश अनगढ़ और अशिक्षित होते हैं। उनके शरीर के लिए उपयुक्त

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आहार, जल, हवा और मस्तिष्क के लिए शिक्षा संगति का प्रबन्ध न होने पर भी उस उत्पादन को अनगढ़ होना ही चाहिए।

इस जमाने में बच्चा पालना हाथी खरीदने के समान है। उसे स्वस्थ और सुयोग्य बनाने के लिए भरण-पोषण की बहुमुखी सुविधाएँ चाहिए। पर अकेली जननी उन सब को घेर-बटोर कर बैठती-सोती है। तो सबके लिए समुचित स्थान, वस्त्र, आहार, शिक्षा, चिकित्सा, खेल, विनोद, संगति आदि का प्रबन्ध न के बराबर हो पाता है। ऐसी दशा में वे किसी प्रकार जीते-मरते घास-फूँस की तरह बढ़ते और बनते-बिगड़ते रहते हैं। सही रीति से पालन करने के लिए बच्चे पर भी उतना ही खर्च आता है जितना हाथी बाँधने पर। जिनके पास अपने पत्नी के परिवार के निर्वाह के उपयुक्त साधन नहीं वे किस प्रकार इस बढ़े हुए नये उत्पादन की व्यवस्था करें ? कैसे उन्हें सुयोग्य, सुविकसित बनायें ?

हर व्यक्ति का विवाह-हर विवाह में ढेरों खर्च, हर दम्पत्ति द्वारा ढेरों प्रजनन—हर बच्चे की ढेरों आवश्यकताएँ-उन्हें जुटाने के लिए साधनों का अभाव-यह समूचा गोरखधंधा ऐसा है जिसके फलस्वरूप अगणित प्रकार के अभाव और संकट उत्पन्न होते हैं। उन्हें सुलझाने का जितना प्रयत्न बन पड़ता है उससे अनेक गुनी नई आवश्यकताएँ सामने आती हैं। वे अपूर्ण रहने पर अभिभावको के लिए ही नहीं समूचे विश्व के लिए विपत्तियों के घटाटोप बनकर घुमड़ती-बरसती हैं। इस जंजाल से निपटने के लिए कुपित प्रकृति ऐसे भयंकर उपाय करती है जिनके कारण सर्वत्र हाहाकार ही उमड़ता है। शान्ति संतुलन बुरी तरह खतरे में पड़ जाता है।

इस अनसुलझी गुत्थी को सुलझाने का एक ही उपाय है कि विवाहों की वर्तमान परिपाटी, प्रक्रिया और परिणिति पर रोक लगायी जाय। असमर्थ नर-नारी विवाह न करें। जो इसके बिना न रह सकें वे सन्तानोत्पादन न करें। परिणिति को समझें। गर्भ धारण करने पर नारी की जीवनी शक्ति निचुड़ती है। इसके अतिरिक्त उसे अपना रक्त दूध के रूप में बच्चे को पिलाना पड़ता है। यह प्रथम चरण है जिसकी विपत्ति जननी को ही खोखला बना देती है। अब पिता की बारी आती है, उसे भरण-पोषण की सामग्री जुटानी पड़ती है। शिक्षा, चिकित्सा, शादी, रोजी आदि की एक से एक भारी व्यवस्था करनी पड़ती है। यह सब जुटाने में उसका भी कचूमर निकल जाता है। जुगाड़ बिठाने में कमर टेढ़ी हो जाती है। ईमानदारी, बेईमानी का अन्तर भुलाकर जैसे भी, जो करते बन पड़े करना पड़ता है। इसके बाद भी असंस्कृत बालक स्वयं जिस प्रकार दुःख पाते, अभिभावकों को दुःख देते और समाज में व्यापक अनाचार फैलाते हैं, उसे देखते हुए एक स्वर में यही कहा जा सकता है कि कामक्रीड़ा के लिए किये गये विवाह इतने अलाभदायक होते हैं कि उन्हें नरक भुगतने के समतुल्य कहा जा सकता है।

भगवान ने जिन्हें आगा-पीछा सोचने की सामर्थ्य नहीं दी है उन विमूढ़ों को क्या कहा जाय ? वे तो अंधे होकर चलते हैं। जगत गति उन्हें व्यापती ही नहीं। मक्खी-मच्छरों की तरह पेट प्रजनन में निरत रहते हैं और निरर्थक जीते निरर्थक मरते हैं। विवेकहीन-अदूरदर्शी जो भी कर गुजरें उसे कम ही मानना चाहिए।

इस संदर्भ में उच्चस्तरीय विज्ञ वर्ग में एक ऐसी योजना पर विचार किया जा रहा है कि साँपों का सफाया तो न किया जाय। अपितु उन सुन्दर एवं उपयोगी प्राणी को विषहीन बनाकर जीवित रहने दिया जाय। तात्पर्य यह है कि विवाह तो होते रहें पर वे बच्चे पैदा न करें, परिवार नियोजन इस कार्य पद्धति का नाम है। इस योजना पर प्रायः सभी विचारशील देश और वर्ग अत्यन्त गंभीरतापूर्वक चिन्तनरत हैं। इस निमित्त कितने ही उपकरण विनिर्मित किये गये हैं, पर उनके आधे-अधूरे प्रयोग किन्हीं विरलों ही द्वारा किये जाने के कारण सफलता नाममात्र को ही मिल रही है। विभाग अपनी जगह काम करता रहता है और प्रजनन अपनी रीति से अपनी राह पर चलता रहता है। समझदार लोग रोकथाम के उपाय करते हैं पर उन पिछड़े लोगों के लिए क्या कहा जाय जो इस प्रकरण में लाभ-हानि जैसा कुछ सोचते ही नहीं और जो होता है उसे होने देने में संकोच नहीं करते।

विज्ञ समाज मे यह सरल माना गया है कि विवाहों की रोकथाम किये बिना भी किस प्रकार प्रजनन वृद्धि से बचा जा सकता है। इसके लिए जंजाल भरे उपायों से पीछे हटकर एक अत्यन्त निरापद और सर्वसुलभ उपाय पाया गया है कि "वीर्यपात योनि से बाहर किया जाय।" इसमें किसी खर्च या झंझट की आवश्यकता नहीं पड़ती। समझदार लोग इतनी भर सतर्कता आसानी से बरत सकते हैं और विवाहित रहते हुए भी ब्रह्मचारी जैसी उपलब्धि से लाभान्वित हो सकते हैं।

ऐसे अनेक लोकसेवियों, मनीषियों के उदाहरण सामने हैं जिनने विवाह से मिलने वाली सुविधा का लाभ तो उठाया पर थोड़ी सतर्कता बरतकर सन्तानोत्पादन के जंजाल से बच गये। जो शक्ति बच्चों के भरण-पोषण मे लगती, उसे बचाकर उनने अपने दाम्पत्य जीवन को सुविकसित बनाया, मिल-जुलकर महत्त्वपूर्ण कार्य किये और जितनी परिवार की जिम्मेदारियाँ पहले से ही गिर पर थीं उन्हें निभाया। अमेरिका में इससे भी एक कदम बढ़कर ऐसा प्रचलन आरम्भ हुआ है कि स्त्री-स्त्री से विवाह कर ले और मिल-जुलकर समुन्नत निश्चिन्त जीवन जिये।

कौन क्या उपाय अपनाये यह ऐच्छिक विषय है। अविवाहित रहने से लेकर परिवार नियोजन के कृत्रिम उपायो तक जिसे जो सूझ पड़े वह उस राह को अपनाये, पर ध्यान इतना अवश्य रहे कि यह समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आँखें बन्द करके संतानोत्पादन करते रहने का नहीं है। प्राचीनकाल में इसके लिए ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम उपाय था। उसे साहसी और संयमी व्यक्ति अभी भी अपना सकते हैं।

जिन्हें बच्चे पालने की इच्छा है वे पिछड़े लोगों के बहुप्रजनन में से कुछ अण्डे बच्चे अपने घोंसले में रखकर उन्हें पोसने और पढ़ाने, स्वावलम्बी बनाने का पुण्य परमार्थ जैसा कार्य अपने लिए चुन सकते हैं।

जिनके पास कोई स्थायी सम्पत्ति नहीं है। जो रोज कमाते और रोज खाते हैं, जिनकी स्त्रियाँ कमाने-धमाने की स्थिति में नहीं हैं। ऐसे लोग भी अपने पीछे कई-कई बच्चे छोड़कर मर जाते हैं। इन स्त्रियों की सबसे अधिक दुर्दशा होती है। सहानुभूति के अभाव में ससुराल वाले या पिता के घर वाले भी इस बड़े कुटुम्ब का पालन करने में उत्साह नहीं दिखाते, ऐसी दशा में इन अनाथ बालकों की भी जो दयनीय दुर्दशा होती है, उसे देखकर कलेजा काँपता है। कई परित्यक्ताओं के बालकों को भी ऐसी स्थिति में निर्वाह करना पड़ता है।

जिनकी संतानें नहीं हैं। यदि हैं तो अधिक बच्चे पालने की स्थिति में हैं उन्हें ऐसे बच्चों को भरण-पोषण के लिए एकत्रित कर लेना चाहिए और उन्हें स्वावलम्बी बनाने के बाद स्वतन्त्र जीवनयापन के लिए छोड़ अपने पैरों खड़ा हो जाने देना चाहिए।

उत्तराधिकारी बनाने के लिए, वंश चलाने के लिए जो किसी का बच्चा गोद रख लेते हैं, वे भारी गलती करते हैं। ऐसे बच्चे तनिक समझदार होते ही यह चाहने लगते हैं कि गोद रखने वाला कितनी जल्दी मरे और उन्हें गुलछर्रे उड़ाने के लिए कब धन-दौलत हाथ लगे। मुफ्त का धन हर किसी को दुर्व्यसनी, दुर्गुणी बना देता है। इसलिए गोद रखने की और बिना संतान वालों को मन नहीं ललचाना चाहिए। इसमें बुढ़ापे में सहायता पाने का स्वार्थ है जो उल्टी प्रतिक्रिया पैदा करता है। गोद लिया हुआ बच्चा कदाचित् ही उन लालची अभिभावकों की इच्छा पूर्ति करता हो, जो समर्थ हैं उन्हें तोता, कबूतर, कुत्ता, बिल्ली आदि पालने का शौक पूरा करने की अपेक्षा यही उचित है कि असमर्थ लोगों द्वारा अंधाधुन्ध बच्चे पैदा कर लेने और उन्हें पाल न सकने की स्थिति जहाँ भी देखी जाय वहाँ उदार सहायता का हाथ बढ़ाया जाय और अपने घर को ही एक अनाथालय बना लिया जाय।

संभव हो तो आश्रयहीन, साधनहीन महिलाओं, परित्यक्ताओं, विधवाओं के भरण-पोषण का ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए, जिससे वे घर रहकर भी कुछ उद्योग धंधों के सहारे कमा लिया करें। कुछ सहायता प्राप्त कर लिया करें। जिनके मर जाने पर पत्नी तथा संतान की ऐसी दुर्दशा होने की संभावना है उन्हें विवाह का दायित्व नहीं ओढ़ना चाहिए। ओढ़ ही लिया है तो बच्चे पैदा नहीं करने चाहिए। यदि कर ही बैठे हैं तो इतनी रकम का बीमा करा लेना चाहिए, जिससे आश्रितों का भरण-पोषण होता रहे। भाइयों के भरोसे उन अनाथों को छोड़ जाना व्यर्थ है। स्वार्थान्ध हो वे विधवाओं की बची पूँजी हड़पने का जो प्रयत्न करते हैं। सहायता तो क्यों देंगे ?

विवाह एक अत्यन्त जोखिम भरा और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। उसे खेल-खिलवाड़ न समझा जाय। जो उसे अन्त तक निभा सकने की क्षमता अपने में पायें वे ही इस हेतु कदम बढ़ायें।

विवाह इस प्रकार हों

शारीरिक और मानसिक दृष्टि से परिपुष्ट परिवार बनने में समय लगता है। यदि ऐसी ही जोड़ी तलाशनी हो तो वह बड़ी आयु की ही मिलेगी। लड़कों को पढ़ने-लिखने की, आने-जाने की, ट्यूशन की सुविधा अधिक मिलती है। इसलिए वे जितने दिन में अमुक पढ़ाई पूरी करते हैं। योग्यता अर्जित करते हैं। उतनी करने में स्वभावत: लड़कियों को अधिक समय लग जाता है। लड़कों का छोटी उम्र से ही बालमन्दिरों में जाने का सिलसिला शुरू हो जाता है। इसमें लगने वाली फीस भी घर वाले खुशी-खुशी बर्दाश्त कर लेते हैं। किन्तु कन्याओं को यह लाभ नहीं मिलता। वे प्राय: पाँच वर्ष से अधिक की हो जाती हैं तब कहीं प्रायमरी स्कूल में भर्ती होती हैं। लड़कों के लिए जल्दी दर्जा चढ़ाने और फेल न होने देने के लिए ट्यूशन भी लगाये जाते हैं। पर लड़कियों को ऐसी सुविधा मात्र बड़े घरानों में ही मिलती है। इस फेर में लड़कियाँ आयु और कक्षा के हिसाब से कुछ पीछे ही रहती हैं।

इसके अतिरिक्त शिक्षित लड़कियों के लिए उपयुक्त लड़का ढूँढने में भी दसियों देखभालें रद्द करनी पड़ती हैं। लड़कियों की आयु बढ़ जाती है। जबकि लड़कों को बड़ा नहीं होने देते। उस हुण्डी को जितनी जल्दी भुनाया जा सके भुना लेते हैं। लड़कियाँ पढ़ाई पूरी करने में बड़ी हो जाती हैं। सयानी लड़कियों की रुचि भी देखनी पड़ती है। वे अनुपयुक्त स्थानों में जाने की अपेक्षा कुमारी रहना अधिक पसन्द करती हैं। सुयोग्य लड़के एक तो कम उम्र में ही घिर जाते हैं फिर उनकी कीमत भी इतनी होती है कि सामान्य स्तर का व्यक्ति उतना जुटा नहीं पाता। ऐसी दशा में कितनी ही लड़कियाँ बड़ी उम्र की हो जाती हैं। फिर उनसे भी बड़ी उम्र का लड़का खाली मिलना और भी कठिन हो जाता है।

अपने समाज में एक रिवाज यह भी है कि लड़की से लड़का बड़ा होना चाहिए। लड़की वाले भी यही चाहते हैं और लड़के वाले भी। डर यह रहता है कि बड़ी आयु की लड़की होगी तो वह विकसित स्तर की होगी। लड़का-बुद्धू होगा तो उससे दबेगी नहीं। मारपीट गाली-गलौज भी न सहेगी। इसलिए लड़की की उम्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपेक्षाकृत छोटी ही होनी चाहिए ताकि उसे कारणवश या अकारण ही चाहे जब डराया-धमकाया मारा-पीटा जा सके और वह स्वाभिमान जाग्रत न हो पाने के कारण उस सबको सहती सुनती रहे। वर से छोटी लड़की ढूँढ़ने के ऐसे ही कुछ कारण हो सकते हैं।

वस्तुतः मनुष्य, मनुष्य है और प्रकृति, प्रकृति। नर और नारी दोनों के ही शारीरिक, मानसिक विकास की आयु समान है। पच्चीस वर्ष तक दोनों के शरीर समान रूप से बढ़ते और परिपक्व होते हैं। यह आयु विवाह की मानी जाती है। प्रचलन के अनुसार लड़की, लड़के से कम उम्र की पसंद की जाती है। जबकि ऐसा कोई वास्तविक कारण है नहीं। दोनों समान आयु के भी हो सकते हैं।

यदि छोटे-बड़े की बात आवश्यक समझी जाती हो तो यह भी हो सकता है कि लड़की बड़ी हो और लड़का कुछ छोटा हो। कच्ची आयु में तो छोटे-बड़े का कुछ कारण समझा भी जा सकता है किन्तु जब दोनों तरुण हो गये तो अन्तर देखने की बात समाप्त हुई समझी जानी चाहिए। लड़की बड़ी भी हो सकती है और लड़का कुछ छोटा भी। नैपेलियन की, अबाहम लिंकन की पत्नियाँ उनसे कई वर्ष बड़ी थीं। इस्लाम धर्म के संस्थापक हजरत मुहम्मद साहब की धर्म पत्नी फातिमा पति की अपेक्षा बीस से भी अधिक वर्ष बड़ी थीं। कृष्ण के बड़े भाई बलराम की पत्नी रेवती उनसे बहुत बड़ी थीं। इस अन्तर से उनके दाम्पत्य जीवन में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ा। वे लोग सुखपूर्वक अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते रहे। यदि लड़की से लड़का कई वर्ष बड़ा हो सकता है तो इसमें क्या हर्ज हो सकता है कि वर से वधू भी कई वर्ष बड़ी हो सकती है। बड़ी आयु की पत्नी घर-गृहस्थी को संभालने में, बच्चों को सुविकसित स्थिति में जन्म देने में अधिक सफल हो सकती है। पति के ऊपर भार न रहकर उसे वे अच्छे साथी और सहयोगी की भूमिका निभा सकती हैं।

यदि किसी की लड़की बड़ी हो गई और कुछ वर्ष छोटे लड़के से विवाह का सुयोग बनता है तो उसमें पुरातन मान्यता के कारण किसी प्रकार की अड़चन नहीं पड़ने देना चाहिए। वरन् सच तो यह है कि जिसे समझदार साथी की जरूरत है उसे अपने से बड़ी आयु की वधू ही तलाश करनी चाहिए। वह विधवा भी हो सकती है। जब विधुर को कुमारी कन्या के साथ विवाह करने का अधिकार है तो यह क्यों नहीं हो सकता कि विधवा वधू का विवाह कुँआरे वर के साथ हो। इसमें किसी भी दृष्टि से कोई अड़चन नहीं है। जिसके कारण ऐसे चयन में कोई बाधा समझी या अटकाई जाय। प्रचलन के अनुसार वधू की आयु तो वर से कुछ कम होने की बात एक मान्यता बनी ही हुई है। अब समझदारी का तकाजा है कि वधू बड़ी हो तो भी वर पक्ष को उससे कोई आपत्ति नहीं करनी चाहिए। क्योंकि वे नफे में ही रहते हैं। इस आधार पर उन्हें शरीर की परिपुष्टता और बुद्धि की परिपक्वता के दोनों ही लाभ अतिरिक्त रूप में मिलते हैं।

जिनके सामने कोई बड़े लक्ष्य हैं। समय की कमी तथा मानसिक व्यस्तता है। समाज सेवा जैसे कार्यों में उत्कट लगन है। जो बिना विवाह अपना सीधा-सादा जीवन जी सकते हैं, वे अविवाहित रहें तो भी कुछ हर्ज नहीं। कितनी ही बाल-विधवाएँ अपना जीवन पवित्रतापूर्वक काट लेती हैं। कई साधु, ब्रह्मचारी विवाह से पूर्व ही संन्यास ले लेते हैं और अपनी व्रतशीलता निभाये रहते हैं। अतएव विवाह करना अनिवार्य नहीं है। कई बड़ी लड़कियाँ पिता के न रहने पर स्वयं नौकरी करती और छोटे भाई-बहिनों को पढ़ा-लिखाकर सुयोग्य बनाती देखी गई हैं।

विवाह का प्रमुख उद्देश्य काम तृप्ति समझा जाता है। घर बसाना भी। दो साथियों में से एक घर सम्भाले दूसरा उपार्जन कर्म में जुटा रहे, तो दोनों ही पक्ष अपने-अपने हिस्से का काम ठीक तरह निपटाते रह सकते हैं। इन सबसे बढ़कर है दो सच्चे मित्रों का एकजुट होकर जीवन नौका को सहयोगपूर्वक खेकर पार करना। यह कार्य एकाकी उतनी अच्छी तरह नहीं बन पड़ता जितना कि युग्म मिलकर उसे पार करता है। गाड़ी के दो पहिये मिलकर चल सकते हैं। चलने में दोनों पैरों का योगदान रहता है। हाथ से बन पड़ने वाले कार्यों में दोनों ही मिलकर किसी व्यवस्था को सम्पन्न करते हैं। मनुष्य के जीवन में भी विवाह के रूप में ऐसी ही आवश्यकता पड़ती है। यह सरल भी है और सुविधाजनक भी। फिर भी यह अनिवार्य नहीं है। जो साथी की गहरी मित्रता अर्जित करने में अपने को अयोग्य अनुभव करते हों वे अपने ऊपर अंकुश लगाकर भी अविवाहित रहने में भी अधिक सुविधा अनुभव करते एवं सुखी रहते हैं।

विवाहोत्सव—ऐसा ही पारिवारिक हर्षोल्लास आयोजन है जैसे—दिवाली, दशहरा आदि मनाये जाते हैं। इनमें घर परिवार के लोग एकत्रित होते हैं, मंगल गीत गाते, मिल-जुलकर जलपान, प्रीतभोज आदि सामूहिक क्रिया-कृत्य करते हैं। लड़की की विदाई, लड़के के घर में नया प्रवेश यह अवसर प्रसन्नता भरा माना जा सकता है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए घर में कुछ रौनक हो, दीपक जलें, गीतवाद्यों का शुगल हो, खान-पान चले, दोनों पक्ष के स्वजन-सम्बन्धी उस समारोह में सम्मिलित हों। विवाह संस्कार के मन्त्रोच्चार हवन आदि उपक्रम रहें तो कुछ हर्ज की बात नहीं है। इस सारे समारोह में सौ, दो सौ रुपये खर्च हो जायें तो भी हर्ज नहीं। यह समारोह दोनों पक्षों के लिए समान प्रसन्नता का है। इसलिए उसका खर्च दोनों पक्ष मिल-जुल कर वहन करें तो ज्यादा अच्छा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। इसमें समानता का बाँध भी होता है और यह प्रतीत होता है कि किसी पर किसी का बोझ लदा नहीं है।

दोनों ने इस मिलन सम्मेलन में समान रूप से हाथ बँटाया है। किसी ने किसी को विवश बाधित नहीं किया। दोनों पक्षों की अभिव्यक्ति समान रही। हमें इसी प्रचलन का शुभारम्भ करना चाहिए। विदेशों में भी विवाह होते हैं, पर उनका स्वरूप ऐसी ही सादगी से जुड़ा रहता है। किसी को इसके लिए आर्थिक चिन्ता नहीं करनी पड़ती। छोटे घरेलू उत्सव में धन-दौलत की बड़ी सी फिजूलखर्ची हो भी नहीं सकती। बौद्धों, ईसाइयों, मुसलमानों में भी विवाह संस्कार कुछ घण्टों में निपट जाते हैं। जो बहुत दूर से आये हैं वे रात को ठहर भी जाते हैं अन्यथा निकटवर्ती, पड़ौसी, सम्बन्धी उस आयोजन में अपनी हाजिरी दर्ज कराने के उपरान्त अपने-अपने घर जाते हैं।

इन दिनों अपने यहाँ वे रिवाज बने हुए हैं, जो सामन्तकाल में कन्या अपहरण के दिनों प्रयुक्त किए जाते थे। वर पक्ष के लोग डकैतों की तरह फौज बनाकर बन्दूकें चलाते हुए बेटी वाले के घर पर धाबा बोलते थे। लड़की को रोती-कलपती उठाकर ले जाते थे। बेटी वाले में यदि सामना करने की शक्ति न हुई तो आत्म समर्पण कर देता था। घर में जो थाली, बर्तन, कपड़ा, जेवर, पैसा आदि होता उसे विजेता की तरह लूट ले जाते थे। यह लूट उसने मान्य करली, इसके प्रमाणस्वरूप जो लुटेरा समुदाय आया था उसकी आव भगत करनी पड़ती थी। मिष्ठान्न, पकवानों की दावत-जेवनार देनी पड़ती थी और कन्या को सज-धज के साथ विदा करना पड़ता था। इसमें आक्रामकों की विजय और जिन पर आक्रमण हुआ उनकी पराजय माननी पड़ती थी। वे अपनी हार गिड़गिड़ाते हुए, भेंट-उपहार देते हुए स्वीकार करते थे। कन्या बलपूर्वक अपहरण की हुई मानी जाती थी। उस पर पूरा अधिकार ससुराल वालों का वैसा ही हो जाता था, जैसा खरीदे गए पशु पर। उसे दासी की तरह आजीवन इच्छा से, अनिच्छा से विजेताओं के घर उचित-अनुचित सेवा करनी पड़ती थी। प्रतिबन्ध में रहना और आदेश मानना पड़ता था।

उसी प्रकार के ध्वंसावशेष अभी तक बने हुए हैं। बरातियों की लम्बी-चौड़ी सेना की सज-धज करनी पड़ती है। तरह-तरह की फरमाइशें करते हैं। बेटी वालों की सभी खुशहाली दहेज के नाम पर लूट ली जाती है। चाहे उनके घर में पीछे के लिए गुजारे भर के लिए न रहे। चाहे ऋण लेना पड़े, पर ससुराल वालों को इसमें सहानुभूति जताने की आवश्यकता नहीं होती। वे जितनी राजी, बेराजी में हाथ लगे उतना निचोड़ लेते हैं। यह कृत्य-कौतुक हो जाने के उपरान्त भी लड़की को सताते रहते हैं कि वह बाप, भाइयों को अपनी कष्ट कथा सुनाये और जो कुछ अधिक से अधिक उनसे रोकर-गिड़गिड़ाकर-खुशामद से ला सकती है वह बाद में भी लाती रहे। न ला सकने पर कितनी ही लड़कियों को परित्यक्ता बनना पड़ता है। आत्महत्या कर लेने के लिए विवश होना पड़ता है। हिन्दू समाज में हर साल इस प्रकार की आत्महत्याएँ बड़ी संख्या में होती हैं। कितनी ही उत्पीड़न सह-सहकर अपमानपूर्वक जीवन इसलिए जीती हैं कि वे ससुराल वालों की फरमाइशें पूरी न कर सकीं।

इस कुप्रथा का अब अन्त होना चाहिए। सामन्तकाल चला गया। आक्रमण, अपहरण की प्रथा भी अब नहीं है। इस परिवर्तन का कोई चिन्ह विवाह-शादियों में भी परिलक्षित नहीं होना चाहिए।

कन्या को विदा कराने के लिए वर परिवार के खास-खास व्यक्ति जाएँ। बरात के लिए जाने-अनजानों का जमघट एकत्रित न करें। बरात को सज-धज के साथ बाजार में निकालने की कोई आवश्यकता नहीं है। कन्या के पिता ने यदि लड़की को विदाई के समय कुछ वस्त्र उपहार दिया है, तो उसे विशुद्ध रूप में उसी का स्त्री धन माना जाय। इस पर ससुराल वाले किसी प्रकार अधिकार न जताएँ और न ऐसा प्रदर्शन करें जिससे बेटी वाले की सम्पन्नता या गरीबी का ढिंढोरा पिटता हो। दहेज तो वस्तुतः ससुराल वालों को देना चाहिए। जिन्हें सुयोग्य कन्या सम्मानपूर्वक मुफ्त में मिली है घर में गृहलक्ष्मी का प्रवेश हुआ है, इस सौभाग्य की अभिव्यक्ति करने के लिए वे लोग अपनी-अपनी इच्छा या हैसियत के अनुसार वधू को भेंट-उपहार प्रस्तुत करें और जो दोनों पक्षों से मिला है, उसे लड़की के नाम किसी बैंक में जमा कर दिया जाय ताकि वह ब्याज समेत बढ़ता रहे और जीवन में कभी कोई विपत्ति आ खड़ी हो तो काम आये।

अब हमें इसी प्रकार का नया प्रचलन आरम्भ करना चाहिए। इसमें पारिवारिक उत्सव से बढ़कर किसी प्रकार की अनावश्यक धूम-धाम या दान-दहेज का प्रसंग न चले। कन्यादान अपने आप में इतना बड़ा दान है जिसके लिए ससुराल वालों को आजीवन कृतज्ञ रहना चाहिए। वर को अपने जीवन में एक बड़े आभार की पूर्ति मानकर उन लोगों का चरण वंदन करना चाहिए जिनने कृपापूर्वक इतना बड़ा अनुदान प्रदान किया है। गृहीता को दानी का अहसान मानना चाहिए न कि उलटे ऐंठ-अकड़ दिखाई जाय और ग्रहण करने में अपना बड़प्पन दिखाते हुए साथ ही और भी बहुत कुछ पाने का दबाव डाला जाय।

अब तक जिस प्रकार भी विवाह होते रहे उस बात को भूल जाना चाहिए। भूल का, अनुपयुक्तता का प्रायश्चित्त करना चाहिए। आगे के लिए सुधार किया जाना आवश्यक है। विवाहपूर्ण सादगी के साथ हों, उसका भार कन्या पक्ष पर तो किसी प्रकार पड़ना ही नहीं चाहिए। कुछ खर्च करना भी हो तो बेटे वालों के लिए अनायास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही कन्या पक्ष सह लेता है। उन्हीं को कृतज्ञ एवं विनम्र भी होना चाहिए।

विवाहोत्सव धूम-धाम से ही करने का मन हो तो गायत्री परिवार के किसी यज्ञ आयोजन में उसे कर लेना चाहिए। शान्तिकुञ्ज में भी वैसी व्यवस्था है। जिससे दोनों पक्ष वहाँ ठहर कर तीर्थयात्रा का आनन्द भी लें और विवाह भी विधि-पूर्वक करने के उपरान्त अपने-अपने घर लौट जायँ। यहाँ देन-दहेज या वस्तु प्रदर्शन का कोई अड़ंगा खड़ा नहीं करने दिया जाता।

विवाह दिवसोत्सव कैसे मनावें ?

एकाकी मनुष्य अपूर्ण है। पति-पत्नी दोनों के सम्बन्ध से एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। स्त्री और पुरुष की अपनी-अपनी कुछ ऐसी विशेषतायें हैं, जो दूसरे में नहीं। इन दोनों के समन्वय से वे अभाव दूर होते हैं, जिनके कारण मानसिक शान्ति और सांसारिक सुख-सुविधाओं का द्वार रुका पड़ा रहता है। गाड़ी के दो पहियों की तरह मानव-जीवन पति-पत्नी के दो आधारों पर चलता है। दो आँख, दो कान, दो हाथ, दो पैर की तरह मनुष्य जीवन भी दो अंगों में विभक्त है। दोनों से मिलकर शरीर शोभा पाता है अन्यथा एकाकीपन काने, लँगड़े, लूले, बूचे व्यक्ति की तरह कुरूप एवं अव्यवस्थित बनकर रह जाता है। उसमें एक अभाव का, एक कसक का निरन्तर अनुभव होता रहता है।

योगी, ज्ञानी, परमार्थी, महामानव अपनी सांसारिक आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को समाप्त कर ज्ञान, परमार्थ एवं ब्रह्म चिन्तन के उस उच्चस्तर पर जा पहुँचते हैं, जहाँ जीवन की, लौकिक सुव्यवस्था की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। उनके लिए अविवाहित रहना उपयुक्त हो सकता है किन्तु जिन्हे स्वाभाविक एवं सरल जीवन जीना है, उनके लिए जोड़े से रहने में जो सुविधा है वह और किसी प्रकार नहीं। अपवाद सब में होते हैं, जो एकाकी जीवन बिना किसी क्षोभ या अभाव का अनुभव किये जी सकते हैं, वे सराहनीय हैं। पर उन्हें कहा अपवाद ही जायगा। साधारणतया हर मनुष्य को अपने समय पर गृहस्थ बनकर रहने की ही आवश्यकता पड़ती है। उसी में सुविधा भी है।

विवाह प्रगति में सहायक—कई व्यक्ति आध्यात्मिक प्रगति में दाम्पत्य-जीवन को बाधक मानते हैं और सोचते हैं कि एकाकी रहेंगे तो उन्हें वैरागी माना जायगा, भजन अच्छा बनेगा या स्वर्ग-मुक्ति का लाभ जल्दी भी मिल जायगा। ऐसे लोगों को प्राचीनकाल में ऋषियों के जीवन पर दृष्टिपात करना चाहिए, पुराण पढ़ने चाहिए। एक-दो को छोड़कर प्राय: सभी ऋषि गृहस्थ थे और सबके सन्तानें थीं। सिख धर्म के प्राय: सभी गुरु गृहस्थ हुए हैं। भगवान् राम, कृष्ण, शंकर एवं समस्त देवता गृहस्थ थे। यदि दाम्पत्य-व्यवस्था आध्यात्मिक प्रगति मे बाधक रही होती, तो हमारा सारा इतिहास ही दूसरे ढंग का होता, गृह-त्याग की व्यवस्था तो बुद्ध सम्प्रदाय की देन है। भारतीय धर्म का अंग वह कभी नहीं रही। चार आश्रमों की व्यवस्था में हर व्यक्ति को गृहस्थ होना चाहिए। तीसरेपन में वानप्रस्थ लेकर पत्नी समेत समाज सेवा में लगना चाहिए और अन्त में संन्यास लेना हो तो भी ऋषियों की तरह उस व्यवस्था में भी पत्नी को साथ रखा जा सकता है।

कहने का तात्पर्य इतना भर है कि दाम्पत्य जीवन की श्रेष्ठता, उपयोगिता एवं आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। उससे दो अभावग्रस्त पक्ष एकत्रित होकर अपनी विशेषता से दूसरे का अभाव पूरा करते और एक पूर्ण व्यक्तित्व के निर्माण की व्यवस्था बनाते हैं। मानव-जन्म पाने के बाद दूसरा सबसे बड़ा सौभाग्य विवाह ही माना गया है। इसी से तो 'या बेटा जाये या बेटा विवाहे' की उक्ति के अनुसार जन्म और विवाह की खुशी को समान माना गया है वरन् सच तो यह है कि जन्म से विवाह का आनन्द हमारे समाज में अधिक माना जाता है। जन्म के अवसर पर जितने गीत, मंगल, उत्सव, गाजे-बाजे आदि के खर्च की व्यवस्था होती है, उससे कई गुनी अधिक विवाह के अवसर पर होती है। जन्म की अपूर्णता को विवाह पूर्ण करता है, इसलिए आनन्द, उल्लास एवं लाभ किसी भी प्रकार कम नहीं। एक बैल से खेती करना मुश्किल पड़ता है। इसी प्रकार एकाकी जीवन में असुविधायें ही भरी रहती हैं। असुविधा को सुविधा में, अवरोध को प्रगति में, अवसाद को उल्लास में परिणत कर देने वाला विवाह सचमुच मानव प्राणी का असाधारण सौभाग्य ही है।

नये समाज का नया निर्माण—हर व्यक्ति एक निर्माता ब्रह्मा है, वह एक नये समाज का सृजन, निर्माण एवं विकास करता है। कहते हैं कि यह सृष्टि आदम और हब्बा, मनु-शतरूपा ने मिलकर बनाई। हर गृहस्थ अपने आप में एक आदम-हब्बा, मनु-शतरूपा बनता है और एक नई सृष्टि का सृजन, पालन एवं विकास करता है। यदि यह उत्तरदायित्व ठीक तरह निबाहा जा सके, तो उससे नये समाज का, नये संसार का निर्माण होगा। हर गृहस्थ अपना दाम्पत्य कर्तव्य, गृहस्थ संचालन ठीक तरह करने लगे तो बीस वर्ष उपरान्त नये युग, नये समाज, नये संसार का वातावरण आँखो के सामने उपस्थित हो सकता है। हर गृहस्थ एक गुरुकुल है, जिसमें जन्मे, पले-बढ़े बालक वैसे ही बनते हैं, जैसे कि उस गुरुकुल के संचालक माता-पिता होते हैं। हर गृहस्थ, विशाल मानव समाज की एक सुगठित इकाई है। समाज परिवारों के रूप में ही तो विभक्त है। शासन को जैसे छोटे-छोटे थानों में बाँट दिया जाता है, उसी तरह यह विश्व या समाज गृहस्थों के रूप में विभक्त है। इन घटनाओं की जैसी भली-बुरी स्थिति होती है, उसी के अनुरूप समाज

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बन जाता है। समाज का जैसा भी स्वरूप अभीष्ट हो हमें उसका ढाँचा गृहस्थ जीवन में खड़ा करना होगा। राष्ट्र का नया निर्माण गृहस्थ जीवन से ही संभव है। पूरे खेत में एक साथ पानी नहीं भरा जा सकता, सिंचाई क्यारियों द्वारा ही होती है। युग का निर्माण, गृहस्थ निर्माण के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

विकृतियों का समाधान—आज हमारा समाज अगणित उलझनों और समस्याओं से घिरा, व्यथा-वेदनाओं से, क्लेश-कलह से, दु:ख-दारिद्र से संत्रस्त हो रहा है। इसका कारण हमारे गृहस्थ जीवनों में, दाम्पत्य सम्बन्धों में फैल रही विकृतियाँ ही हैं। ऐसे सौभाग्यशाली गृहस्थ बहुत कम ही मिलेंगे, जिनमें पति-पत्नी दूध-पानी की तरह एक होकर रहे हों, अपना आपा दूसरे में घुला चुके हों, दो मिलकर एक हो चुके हों, जिनमें तनिक भी दु:ख, अविश्वास या सन्देह न हो, जिनमें दोनों की इच्छायें-आकांक्षायें मिलकर एक हो गई हों, जिनने जीवन के कर्तव्य और उत्तरदायित्वों का भार समान रूप से उसी तरह अपने कंधों पर लाद लिया हो जैसे दो बैल एक जुए को कंधों पर रखकर वहन करते हैं।

आज तो इससे सर्वथा विपरीत स्थिति है। लोक-लज्जा, बच्चों का मोह, गृह व्यवस्था, वासना आदि के कच्चे धागों से परस्पर किसी प्रकार बँधे तो हुए हैं, पर मन जिनके सर्वथा विपरीत हैं। एक-दूसरे के प्रति असीम घृणा और अविश्वास भरे हुए हैं। मजबूरियों ने उन्हें जोड़ तो रखा है, पर मन एक-दूसरे से फटे दूध की तरह बिलग-बिलग बने हुए हैं। सांसारिक व्यवस्था तो एक को दूसरे की रखनी पड़ती है, पर मन में भावना नहीं, जिससे एक को देख दूसरा जिये-जैसी स्थिति का अनुभव हो। मनों में भरा हुआ यह दुर्भाव सन्तान के मन:क्षेत्र का विकृत सृजन करता है। पति-पत्नी के शरीरों में मिल कर बच्चे का शरीर बनता है और मनों से मिलकर मन। मात-पिता का जैसा रंग-रूप, कद, कलेवर, ढाँचा तथा स्वास्थ्य होगा, उसी से मिलता-जुलता बच्चों का भी होता है। ठीक इसी प्रकार पति-पत्नी के बीच जैसे सम्बन्ध, जैसे मनोभाव चल रहे होंगे, उसी भली या बुरी स्थिति के अनुरूप बालक का मन:क्षेत्र विनिर्मित होगा। परस्पर द्वेष, दुर्भाव रखने वाले पति-पत्नी केवल क्रोधी, उद्दण्ड, उच्छृंखल, ईर्ष्यालु, द्वेषी, स्वार्थी एवं निकृष्ट धरातल के मन:क्षेत्र वाले बालकों को ही जन्म दे सकते हैं।

छोटे बच्चे अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। गर्भ से लेकर पाँच वर्ष की आयु तक वे अपनी मनोभूमि का ढाँचा खड़ा कर लेते हैं। इसके बाद तो स्कूली और कामकाजी पढ़ाई ही शेष रह जाती है। माता-पिता द्वारा घर का सूक्ष्म वतावरण जैसा भी कुछ बना रखा गया है, उसी के अनुरूप भाव तरंगें बालकों के कोमल अन्त:करण पर स्वयमेव जमती चली जाती हैं। उनके व्यक्तित्व का तीन-चौथाई निर्माण इसी स्थिति में हो जाता है। बड़े होकर वे वैसे ही बनते हैं। आज नई पीढ़ी में हमें जो दोष-दुर्गुण दिखाई पड़ते हैं, इसका अधिकांश दोष उनके माता-पिता का है। यदि वे ठीक तरह अपने दाम्पत्य-प्रेम को सुरक्षित रख सके होते और दैनिक जीवन में सद्भावनाओं का उल्लास भरा वातावरण बनाये रख सके होते तो निश्चय ही उन घरों में महापुरुष, नर-रत्नों की फसल उपजी होती।

क्षोभ को उल्लास में बदलें—व्यक्तिगत जीवन के आनन्द-उल्लास एवं सामाजिक जीवन की सुख-शान्ति का आधार यदि सफल दाम्पत्य जीवन को कहा जाय तो उसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं। यह क्षेत्र जितना उपेक्षित एवं विकृत पड़ा रहेगा उसी अनुपात से हर व्यक्ति अतिरिक्त क्षोभ में जलता-कुढ़ता प्रगति की ओर अग्रसर होने से वंचित बना रहेगा और उसी अनुपात से समाज में अशान्ति, विपत्ति एवं अव्यवस्था बनी रहेगी। इस स्थिति को यदि बदलना हो तो हमें नींव को सींचना होगा। दाम्पत्य सम्बन्धों में स्नेह-सद्भावना, कर्तव्य-उत्तरदायित्वों का परिपूर्ण समावेश ही एकमात्र वह उपाय है जिससे व्यक्ति, परिवार एवं समाज की प्रगति एवं समृद्धि सम्भव हो सकती है। इस तथ्य की उपेक्षा करके हम सुख-शान्ति की अभिवृद्धि के जो भी उपाय करेंगे वे अधूरे एवं अवास्तविक होने के कारण असफल ही रहेंगे। उपवन को हरा-भरा, फला-फूला देखना हो तो धोने से नहीं, जड़ सींचने से काम चलेगा, हमें वस्तुस्थिति समझनी चाहिए और समस्याओं का उद्भव जहाँ से होता है, उसी स्थान पर उनके सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए।

दाम्पत्य जीवन की सफलता रूप, सौन्दर्य, शिक्षा, आजीविका, सुविधा आदि पर ठहरी हुई नहीं है। यह बातें जहाँ परिपूर्ण मात्रा में मौजूद हैं। वहाँ भी परस्पर घोर दुर्भाव रहना पाया जाता है। इसके विपरीत कुरूप, दरिद्र, अशिक्षित एवं नासमझ पति-पत्नी के बीच भी गहरी निष्ठा एवं आत्मीयता पाई जाती है। कारण भावना की उत्कृष्टता-निकृष्टता है। जहाँ भावना और कर्तव्य निबाहने की समुचित मात्रा होगी वहाँ सारी कमियाँ एक ओर रखी रह जायेंगी और ममता, आत्मीयता एवं जिम्मेदारी का तनिक-सा उभार सारे अभावों और कठिनाइयों को सहन कर लेगा। इसके विपरीत यदि उस आत्मीय उत्कृष्टता में कमी रही तो छोटे-छोटे अभाव एवं दोष पहाड़ जैसे दिखाई देंगे और तिल का ताड़ बनता रहेगा। सारे अभाव या सारे अप्रिय प्रसंग दूर नहीं हो सकते, अपूर्ण मानव-जीवन में कुछ तो अपूर्णताये बनी ही रहेंगी। उनका समाधान पारस्परिक विश्वास, प्रेम, उत्सर्ग की भावनाओं द्वारा ही हो सकता है। यह भावना जिन पति-पत्नियों के बीच जितनी मात्रा में भी बढ़ सकी, उनका वैवाहिक जीवन उतना ही सफल माना जायेगा। हमारे प्रयत्न यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होने चाहिए कि हम दाम्पत्य जीवन में कर्तव्य, उत्तरदायित्व, प्रेम, सद्भावना, आत्मीयता और सहिष्णुता की भावना अधिकाधिक मात्रा में बढ़ावें। इस रचनात्मक कार्य में जितनी सफलता मिल सकेगी उतना ही सुख-शान्ति भरा वातावरण, वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन विनिर्मित होगा। नव निर्माण का केन्द्र बिन्दु यही कार्यस्थल है।

विवाह संस्कार की महत्ता—भारतीय तत्त्व-वेत्ताओं ने विवाह संस्कार का महान् विधि-विधान इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए विनिर्मित किया था। उस समय बोले जाने वाले मंत्र, देवाह्वान, यज्ञ एवं अन्यान्य कर्मकाण्डों का एक वैज्ञानिक महत्त्व है। उनके कारण वर-वधू के अन्तःकरणों में एक विशेष प्रकार की आद्रता आती है और वे अनायास ही एक-दूसरे में घुलने लगते हैं। प्राचीनकाल के सुयोग्य कर्मकाण्डी पण्डित जिन विवाहों को पूर्ण विधि-व्यवस्था के साथ कराते थे, उनमें आजीवन मधुरता बनी रहती थी और दुर्भाव के दोष नहीं आने पाते थे। अब जल्दी से बेगार भुगताने की तरह विवाह संस्कार निपटा दिये जाते हैं। उस समय जो प्रशिक्षण वर-वधू को होता था, उसका तो अब नामोनिशान भी नहीं रह गया। दोनों पक्ष के पण्डित अडंग-पडंग करते रहते हैं। उस समय की बर्बादी में उस उत्सव-आयोजन में आये हुए लोगों में से बहुत कम सम्मिलित होते हैं। वर-वधू भी यह चाहते हैं कि यह जंजाल जितनी जल्दी सिमट जाय उतना अच्छा। ऐसे औंधे ढंग से कराये गये विवाह संस्कार का वास्तविक प्रयोजन सिद्ध नहीं कर सकते। इसके लिए तो हर दृष्टि से प्रभावोत्पादक वातावरण बनाना होगा और वर-वधू को उनके कर्तव्य-उत्तरदायित्वों के प्रशिक्षण की भावनापूर्ण व्यवस्था करनी पड़ेगी। तभी ऋषि परम्परा का लाभ मिल सकने की सम्भावना रहेगी।

मंगल पर्व की जयन्ती—जिनके विवाह नहीं हुए हैं, उनके संस्कार को सुयोग्य व्यवस्थापकों एवं पुरोहितों द्वारा अत्यन्त प्रभावोत्पादक बनाया जाना चाहिए। पर जिनके विवाह हो चुके हैं, उनके सम्बन्ध में हो गया सो हो गया कहकर छुटकारा नहीं पाया जा सकता। उनको वह लाभ पुनः मिलना चाहिए जो औंधे-सीधे ढंग से बेगार भुगताने की भगदड़ में उन्हें नहीं मिल पाया है। इसके लिए सबसे उत्तम, सरल और उपयोगी तरीका विवाह दिवसोत्सव मनाया जाना ही हो सकता है। जिस दिन विवाह हुआ था, हर वर्ष उस दिन एक छोटा-सा उत्सव समारोह मनाया जाय। मित्र-परिजन एकत्रित हों, विवाह का पूरा कर्मकाण्ड तो नहीं पर उनमें प्रयुक्त होने वाली कुछ क्रियायें फिर की जायें और जो मोटे-मोटे संकल्प हैं वे पति-पत्नी द्वारा हर वर्ष किये जायें तथा विवाह के कर्तव्य उत्तरदायित्वों को नये सिरे से पुनः समझा-समझाया जाय।

हर वर्ष इस प्रकार का व्रत धारण, प्रशिक्षण, संकल्प एवं धर्मानुष्ठान किया जाता रहे तो उससे दोनों को अपने कर्तव्य एवं उत्तरदायित्वों को पालने, निबाहने की निश्चय ही अधिक प्रेरणा मिलेगी। उसी दिन दोनों परस्पर विचार-विनिमय करके अपनी-अपनी भूलों को सुधारने तथा एक-दूसरे के अधिक समीप आने के उपाय सुझाने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। विवाह दिन की पुरानी आनन्दमयी-स्मृति का स्मरण कर पुनः अन्तःकरण को प्रफुल्लित कर सकते हैं। इस प्रकार वह सुनहरा दिन एक दिन के लिए हर साल नस-नाड़ियों में उल्लास भरने के लिए आ सकता है और विवाह कर्तव्य को नये सिरे से निबाहने की प्रेरणा दे सकता है।

परम्परा प्रचलन—जन्मदिवसोत्सव की तरह विवाह दिवसोत्सव मनाने की परम्परा भी हमें प्रचलित करनी चाहिए। यदि यह प्रचलन हो सकता तो लोगों को अपने वैवाहिक उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों को निवाहने की प्रेरणा का हर वर्ष एक भावनात्मक अवसर मिलता रहेगा। उपस्थित इष्ट-मित्रों के सामने जो हर वर्ष उन पुण्य-प्रतिज्ञाओं को दुहराते हैं यदि वे उन्हें तोड़ेंगे तो लोग-हँसाई होगी। इस लोक-लाज से भी उन्हें अपने को संभाले रहना पड़ेगा। अपने भीतर जो हलचल इस धर्मानुष्ठान के द्वारा उत्पन्न होगी, उससे भी लोगों को अपने रवैयों को सुधारने-सम्भालने की कम प्रेरणा न मिलेगी। फिर उस उत्सव में जो लोग उपस्थित हैं, उन्हें भी तो यह सब देखने-सुनने को अवसर मिलेगा, जिससे उनमें भी आत्म-निरीक्षण करने और अपने को सुधारने की भावना उठेगी। विवाह दिवसोत्सवों का यदि प्रचलन हो सके तो उससे दाम्पत्य कर्तव्यों के पालन में आशातीत प्रगति होगी और फलस्वरूप नये समाज का निर्माण सरल हो जायगा।

बन्दूकों के लाइसेन्स हर साल बदलने पड़ते हैं, मोटरों के लाइसेन्स का भी हर साल नवीनीकरण कराना पड़ता है। 'युग निर्माण पत्रिका' का हर साल रजिस्टर नम्बर नया कराना पड़ता है। अखबारी कागज का परमिट प्राप्त करने के लिए हमें हर वर्ष अर्जी देनी पड़ती है। विवाह के कर्तव्यों को ठीक तरह पालने का लेखा-जोखा उपस्थित करने, भूल-चूक को सुधारने और अगले वर्ष अधिक सावधानी बरतने को विवाह-लाइसेन्स का यदि हर वर्ष नवीनीकरण कराया जाय तो इसमें कुछ हानि नहीं हर दृष्टि से लाभ ही लाभ है। संसार के अन्य देशों में यह उत्सव सर्वत्र मनाये जाते हैं। अन्तर इतना ही है कि वे केवल खुशी बढ़ाने के मनोरंजन तक ही उसे सीमित रखते हैं, हमें उसे धर्म-कर्तव्यों की प्रेरणा से ओत-प्रोत करने वाले धर्मानुष्ठानों की तरह नियोजित करना है।

संकोच अनावश्यक—इस प्रथा के प्रचलन में एक बड़ी कठिनाई यह है कि हमारे देश में विवाह को, दाम्पत्य जीवन को एक झिझक, संकोच एवं लज्जा का विषय माना जाने लगा है। उसे लोग छिपाते हैं। दूसरों को देखकर स्त्रियाँ अपने पतियों से घूँघट काढ़ लेती हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और पति अपनी पत्नी की तरफ से आँखें नीची कर लेता है। विवाह के अवसर पर वधू बड़े संकोच के साथ डरती-झिझकती कदम उठाकर आती है। कहीं-कहीं तो उसे गोदी में उठाकर ले जाते हैं। यह अनावश्यक संकोचशीलता निरर्थक है। भाई-भाइयों की तरह पति-पत्नी भी दो साथी हैं। विवाह न तो चोरी है, न पाप। दो व्यक्तियों का धर्मपूर्वक द्वैत को अद्वैत में परिणत करने का व्रत-बंध ही विवाह अथवा दाम्पत्य संबंध है। अवश्य ही अश्लील चेष्टायें अथवा भाव-भंगिमायें खुले रूप से निषिद्ध मानी जानी चाहिए पर साथ-साथ बैठने-उठने, बात करने की मानवोचित रीति-नीति में अनावश्यक संकोच बरता जाय, इसमें न तो कोई समझदारी है न कोई तुक। इस बेतुकी को यदि हटा दिया जाय, तो इससे मर्यादा का तनिक भी उल्लंघन नहीं होता। जब अनेक अवसरों पर पति-पत्नी पास-पास बैठ सकते हैं, कोई हवन आदि धर्म कृत्य कर सकते हैं, साथ-साथ तीर्थयात्रा आदि कर सकते हैं, तो विवाह दिवसोत्सव पर किये जाने वाले साधारण से हवन में किसी को क्यों संकोच होना चाहिए ? गायत्री हवन के साथ-साथ चार-पाँच छोटे-छोटे अन्य विधि-विधान जुड़े हुए हैं और प्रवचनों का विषय दाम्पत्य जीवन होता है, इसके अतिरिक्त और कुछ भी बात तो ऐसी नहीं है, जिसके लिए झिझक एवं संकोच किया जाय। विवाह की चर्चा करने पर जैसे वर-वधू सकुचाते हैं, वैसी ही कुछ झिझक विवाह दिवसोत्सव के अवसर पर दिखाई देती है। इसमें औचित्य तनिक भी नहीं, विचारशील लोगों के लिए यह अकारण की संकोचशीलता छोड़ने में कुछ अधिक कठिनाई न होनी चाहिए।

संगठित प्रयास की आवश्यकता—जन्मदिन मनाने के लिए युग निर्माण शाखायें अपनी जो तीन या पाँच सदस्यों की समितियाँ बनावें, उन्हीं को जन्म दिवसोत्सव की तरह विवाह दिवसोत्सव मनाने का काम हाथ में लेना चाहिए। जो अधिक झेंपू हों, उन्हें छोड़कर कुछ उत्साही एवं प्रगतिशील लोगों को इसके लिए तैयार करना चाहिए। हर महीने एक उत्सव भी इस प्रकार का मनाया जाने लगे और एक वर्ष तक यह क्रम चलता रहे तो झेंपू लोग अपनी झिझक एवं संकोच की निरर्थकता समझ जायेंगे और वे भी इस उत्सव के आधार पर मिल सकने वाले लाभों से लाभान्वित होने के लिए प्रस्तुत दिखाई देंगे।

जन्म दिवसोत्सव की तरह ही सारी तैयारी करनी होती है। उसी तरह तारीखें नोट करना, नियत तिथि पर हवन आदि की तैयारी, मण्डप-वेदी आदि को सुसज्जित, मित्र-परिचितों एवं शाखा सदस्यों को आमन्त्रण, अतिथियों का सस्ता आतिथ्य आदि सब कुछ उसी ढंग से होगा। पूजा स्थान पर पति-पत्नी दोनों जन्मदिन की भाँति ही बैठेंगे। पीत वस्त्र धारण करना जन्मदिन पर उतना आवश्यक नहीं था, पर विवाह के दिन पर तो यदि बहुत अड़चन न हो तो दोनों को पीतवस्त्र ही धारण करने चाहिए। विवाह पर भी वर-वधू के वस्त्रों में कुछ विशेषता-नवीनता रहती है। इस अवसर पर भी रहे तो अच्छा है। मन्त्रोच्चार के लिए अधिकाधिक लोगों के हाथों में पुस्तकें रहें और जो भी ठीक तरह उन्हें पढ़ या बोल सकें एक लय, एक स्वर एवं कण्ठ में साथ-साथ उच्चारण करना चाहिए। इन उच्चारण-कर्ताओं को दूसरों का संस्कार कर सकने की ट्रेनिंग इस प्रकार होती चलेगी।

पाँच विशेष कृत्य—साधारण हर संस्कार में सामान्य गायत्री यज्ञ का विधान ही प्रमुख होता है। उसकी विधि सब के अभ्यास में रहनी चाहिए। उस विधान में, रक्षा विधान के पश्चात् और अग्नि स्थापना से पूर्व (१) ग्रन्थि बन्धन (२) अश्मारोहण (३) पाणिग्रहण (४) सप्तपदी (५) सुमंगली यह पाँच कृत्य विशेष रूप से करने पड़ते हैं। विवाह दिवसोत्सव का विशेष कृत्य इतना ही है। शेष सारी क्रिया गायत्री यज्ञ की ही रहती है।

(१) पति-पत्नी दोनों के कन्धों पर रहने वाले दुपट्टों के छोरों को लेकर उनके बीच में चावल, पुष्प, दूर्वा, हल्दी, सुपाड़ी रखकर कोई सम्भ्रान्त माननीय व्यक्ति गाँठ बाँधते हैं। इस क्रिया को ग्रन्थि बन्धन कहते हैं। **'ॐ समंजन्तु विश्वे देवाः .....'** इसका मंत्र है।

(२) एक पत्थर के टुकड़े पर पति-पत्नी दोनों अपना दाहिना पैर रखते हैं। इस क्रिया का नाम 'अश्मारोहण' है। **'ॐ आरोहे मश्मान .....'** यह इसका मंत्र है।

(३) पत्नी का दाहिना हाथ पति और पति का बाँया हाथ पत्नी पकड़ती है। यह पाणिग्रहण क्रिया है। **'ॐ यदैषि मनसा दूरं .....'** यह इसका मंत्र है।

(४) पति-पत्नी कदम मिलाकर सात बार पैर उठाते हैं। सात कदम साथ-साथ चलते हैं। **'ॐ इषे एक पदीयव .....'** इसका मंत्र है।

(५) पति द्वारा पत्नी की माँग में सिन्दूर भरने अथवा मस्तक पर तिलक करने की क्रिया को सुमंगली कहते हैं। इसका मंत्र **'ॐ सुमंगलीरियं वधू .....'** है।

ग्रन्थि बन्धन—ग्रन्थि बन्धन क्रिया कराते समय उपस्थित लोगों को तथा पति-पत्नी को समझाना चाहिए कि इस कृत्य का तात्पर्य दो आत्माओं के अलग अस्तित्वों का अब एक में घुल जाना है। दोनों ने परस्पर बँधकर अपने अस्तित्व को एक-दूसरे के लिए समर्पित कर दिया और एक नया साझे का, सामूहिक समग्र व्यक्तित्व विनिर्मित किया। इसे दाम्पत्य व्यक्तित्व कहा जायगा। इसमें दोनों की इच्छाओं तथा आवश्यकताओं को समान रूप से स्थान मिलेगा। दो तालाबों के पानी का स्तर नीचा-ऊँचा होने पर भी यदि एक नाली द्वारा उन्हें आपस में जोड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिया जाय तो ऊँचे स्तर वाले तालाब का पानी नीचे में चलने लगता है और दोनों की सतह एक समान ऊँची हो जाती है। उसी तरह इस ग्रन्थि बन्धन को एक नाली माना जाय, जो दो तालाबों को एक करती है। इसका प्रभाव यह होना चाहिए कि दोनों में से जिसका व्यक्तित्व छोटा हो, उसे ऊँचे व्यक्तित्व वाला निरन्तर प्रयत्न करके अपने समान ही ऊँचा उठाने का प्रयत्न करे। अपनी शक्ति-सामर्थ्य उसे समर्पित करे, जिससे कोई नीचा-ऊँचा, अविकसित न रह जाये। जिस तरह एक सूत्र से गुँथे हुए पुष्प एक साथ ही माला बनकर रहते हैं और जीते हैं। उसी प्रकार पति-पत्नी को एक-दूसरे का सहचर बनकर रहना चाहिए। जीवन की रीति-नीति अब एक को ही निर्धारित नहीं करनी चाहिए, वरन् दोनों के सम्मिलित निर्णय से ही सारी विधि-व्यवस्था बना करेगी, कोई किसी पर अपनी इच्छा थोपेगा नहीं, वरन् एक-दूसरे की स्थिति, आवश्यकता और भावना का ध्यान रखते हुए समझौते की नीति पर चलेंगे। ग्रन्थि बन्धन ऐसा अटूट है जिसे जीवन भर निबाहने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं। एक-दूसरे की कमियों को सहन करते हुए, सुधारते-सम्भालते हुए इस विश्वास के साथ रहें कि अब हर हालत में परस्पर एक-दूसरे को निबाहना ही है, यदि साथी में असंख्य त्रुटियाँ होंगी तो भी सुधारने के प्रयत्न करते हुए अन्ततः सहन करने को भी तत्पर रहा जायगा। छोटा बच्चा निपट अनाड़ी होता है फिर भी माता उसे अपार प्रेम के साथ छाती से लगाये रहती है और उसकी त्रुटियों पर उद्विग्न न होकर उसे दुलारते-पुचकारते हुए सुयोग्य बनाने का प्रयत्न करती है। वैसी ही भावना, वैसी ही चेष्टा एक-दूसरे के लिए आजीवन करते रहें, यह ग्रन्थि बन्धन का उद्देश्य है।

अश्मारोहण—पत्थर की शिला पर पति-पत्नी अपने पैर इस विश्वास के साथ रखते हैं कि यह शिलाखण्ड जैसे अपने आप में सुदृढ़ है वैसे ही हम भी विवाह के साथ जुड़े हुए कर्तव्य एवं विश्वास के ऊपर सुदृढ़ रहेंगे। अंगद ने रावण की सभा में जिस तरह पैर गाढ़ दिया था और वह फिर किसी से भी नहीं हटा-उठा था, उसी प्रकार अश्मारोहण के संकल्प द्वारा भी पति-पत्नी को वैसी ही दृढ़ता प्रकट करनी होती है। प्रतिज्ञाओं को जवानी जमा खर्च का विषय नहीं बनाया जा सकता। एक-दूसरे से अपना स्वार्थ सिद्ध करने की तो आशा रखें, पर साथ के साथ स्नेह का उत्तरदायित्व निबाहने में जो कष्ट सहना पड़ता है, त्याग करना पड़ता है उससे कतरायें तो फिर ग्रन्थि बन्धन कहाँ हुआ ? यह तो स्वार्थ बन्धन कहलाया। ऐसी दशा में तो जिसका स्वार्थ जिससे सिद्ध न होगा, अथवा कहीं अन्यत्र अधिक सुविधा दिखाई देगी तो वह उधर मुड़ जायगा। ऐसी दशा में विवाह-विवाह न रहकर वासना एवं सुविधा के लिए किया गया अस्थायी समझौता मात्र कहलायेगा। भारतीय धर्म में ऐसे ओछे समझौते घृणित, गर्हित, निन्दनीय एवं पाप माने गये हैं। विवाह पाप के लिए नहीं, धर्म के लिए किया जाता है। इसी से पत्नी को धर्मपत्नी कहते हैं। पति तो धर्म का देवता है ही। विवाह का प्रयोजन है एक-दूसरे को अपना पूरा-पूरा प्रेम प्रदान करना। प्रेम की कसौटी लाभ नहीं त्याग है। जो अपने प्रेमी के लिए जितना अधिक त्याग कर सकता है, उससे जितनी कम अपेक्षायें करता है, उसका प्रेम उतना ही सच्चा माना जायगा। अश्मारोहण करते हुए, शिला पर पैर जमाते हुए दोनों को यह सोच लेना चाहिए कि वे ग्रन्थि बन्धन के साथ कन्धों पर आये हुए उत्तरदायित्वों को भली प्रकार निबाहेंगे। दाम्पत्य जीवन को आदर्श बनाने के लिए बड़े से बड़ा कष्ट सहेंगे और त्याग करेंगे। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहेंगे। देवताओं की, अग्नि की साक्षी में, उपस्थित संभ्रान्त लोगों के सामने पत्थर पर पैर अड़ा देने का दृश्य उपस्थित करते हुए दोनों यह घोषणा करते हैं कि हमने उत्तरदायित्वों को समझा है और उसे पूरी दृढ़ता के साथ आजीवन निबाहने का निश्चय किया है। अश्मारोहण की भावना यही है।

पाणिग्रहण—एक-दूसरे को सहारा देकर ऊपर उठाना, संसार की हर विभीषिका एवं विषम परिस्थिति में एक-दूसरे का हाथ पकड़े रहना, पाणिग्रहण क्रिया है। जीवन में ऐसे अवसर आ सकते हैं जब दूसरा साथी रुग्ण, विक्षिप्त, निर्धन, कुरूप, असमर्थ हो जाय और उसका साथ निबाहना अपने को घाटे का सौदा प्रतीत होने लगे। ऐसी स्थिति में भी उसी दृढ़ता से साथी का हाथ पकड़े रहना चाहिए, जैसा कि वह स्वस्थ, सानन्द, चतुर, सम्पन्न एवं सर्वसमर्थ होने पर अपनाया जाता। विवाह के माध्यम से एक-दूसरे पर अवलम्बित होते हैं, एक-दूसरे की नाव पर सवार होते हैं। एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर जीवन क्षेत्र में उतरते हैं। कुसमय में किसी को किसी का साथ नहीं छोड़ना है। ऐसा करना विश्वासघात होगा। दोनों में से कोई भी दूसरे के प्रति कभी भी विश्वासघाती न बने यह प्रेरणा पाणिग्रहण की है।

ऊँचे स्थान पर खड़ा साथी अपने जिस साथी का हाथ पकड़ेगा, उसे यदि वह नीचा खड़ा होगा तो नीचे ही नहीं रहने देगा वरन् हाथ का सहारा देकर ऊपर उठा लेगा और अपनी बराबर कर लेगा। पति-पत्नी में से जो कम शिक्षित, कम चतुर, कम अनुभवी, कम योग्य हो, उसकी कमियों को दूर करना उसका कर्तव्य है, जो ऊँचा है। रास्ते में दो मित्र हाथ पकड़ कर चले तो उन्हें एक सीध में रहकर ही कदम-कदम मिलाकर चलना पड़ता है। ऐसा नहीं हो सकता कि हाथ में हाथ मिला कर चलें पर एक पीछे और एक आगे रहे। जीवन क्षेत्र में भी यही होना चाहिए। यदि साथी अपने से कम पढ़ा या कम कुशल है तो उसकी इन कमियों को पूरा करने के लिए तुरन्त व्यवस्था बनानी चाहिए। केवल भोजन, वस्त्र, निवास, वासना जैसी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देने से ही साथी का कर्तव्य पूरा नहीं होता वरन् उसे उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तित्व भी संभालना-उठाना पड़ता है। अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार दोनों एक-दूसरे को इस प्रकार ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्नशील रहें और पाणिग्रहण का उद्देश्य पूरा करें।

सप्तपदी—सात बार कदम मिला कर आगे बढ़ने का प्रयोजन यह है कि गृहस्थ जीवन के साथ उद्देश्यों की पूर्ति दोनों कन्धे से कन्धा, पैर से पैर, हाथ से हाथ, मन से मन मिलाकर विचार और कर्म करते रहें। गाड़ी के दो पहिए जब साथ-साथ चलते हैं तभी गतिशीलता उत्पन्न होती है। जीवन मे प्रगति के लिए पति-पत्नी का हर क्षेत्र में कदम से कदम मिलाकर फौजी सैनिकों की तरह आगे बढ़ चलना आवश्यक है।

(१) आहार व्यवस्था (२) शारीरिक बल-बुद्धि (३) अर्थ व्यवस्था (४) विनोद-मनोरंजन (५) पारिवारिक उत्तरदायित्व (६) गृह व्यवस्था (७) पारस्परिक स्नेह-सद्भाव यह सात उद्देश्य गृहस्थ निर्माण के होते हैं। पति-पत्नी इन सातों की सुव्यवस्था में ध्यान लगाये रहते हैं। गृहस्थ की सुख-शान्ति और प्रगति इन सात तथ्यों पर अवलम्बित रहती है।

(१) भोजन सात्विक, पौष्टिक, उपयोगी, सुरुचिपूर्ण हो। उसमें तामसिक, फूहड़पन एवं चटोरेपन का समावेश न रहे। आहार के अनुरूप ही विचार बनते हैं। विचारों पर ही जीवन का स्वरूप ही अवलम्बित है। इसलिए गृहस्थ का कर्तव्य है कि आहार की सात्विकता एवं पवित्रता नष्ट न होने दे। तामसी योजना दुर्भाव ही पैदा करेगी, उससे पति-पत्नी के सम्बन्ध ही नही बिगड़ेंगे वरन् परिवार में अशान्ति फैलेगी और बच्चों का स्वभाव बिगड़ेगा। गृहस्थ के स्वस्थ विकास में आहार की सात्विकता का असाधारण योग होता है, इसे भुलाया नहीं जाना चाहिए।

(२) शारीरिक स्वास्थ्य को बनाये रहने के लिए उचित परिश्रम, उचित विश्राम, उचित ब्रह्मचर्य, उचित दिनचर्या, सफाई, परिचर्या, चिकित्सा आदि का आवश्यक ध्यान अपना ही नहीं साथी का भी रखना चाहिए। परिवार का एक भी सदस्य रुग्ण न रहने पावे, तभी गृहस्थ की सफलता है। इस दिशा में तनिक भी उपेक्षा न बरती जाय और बिगड़ती स्थिति संभाल ली जाय तो घर में नीरोगता का वातावरण रखा जा सकता है।

(३) अधिक उपार्जन के लिए अधिक श्रम और अधिक प्रयास करना होता है। फिजूलखर्ची एक पैसे के भी न होने दी जाय। पारिवारिक उत्कर्ष के दूरदर्शितापूर्ण कार्यों में मुक्तहस्त से खर्च किया जाय, कुसमय के लिए कुछ बचत हर गृहस्थ को रखनी चाहिए। बजट बनाकर खर्च करना चाहिए। ठग और धूर्तों से बचना चाहिए। सामाजिक उत्कर्ष के लिए अपनी कमाई का एक अंश नियमित रूप से देना चाहिए। फैशन, शेखीखोरी, निरर्थक शृंगार, नशेबाजी, व्यसन एवं सामाजिक कुरीतियों में होने वाले निरर्थक खर्च को कड़ाई के साथ रोकना चाहिए। घर में जिनके पास जो समय बचता है, उसे वे उपार्जन में लगायें। कोई ठाली न बैठे, ऐसा प्रबन्ध करें। गृह उद्योगों व टूट-फूट ठीक करने का अभ्यास करें। इस प्रकार वे उपाय करने चाहिए जिससे घर की अर्थव्यवस्था सुसंतुलित बनी रहे।

(४) घर की मनहूसी, खिन्नता, कुढ़न, रूठना, मटकना, मनमुटाव, ताने कसना, लड़ना-झगड़ना, आवेश-उत्तेजना का वातावरण नहीं रहना चाहिए। कुढ़न से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य नहीं टिकता है, प्रगति रुक जाती है और समृद्धि चली जाती है। ऐसे घरों में दुःख और दारिद्र डेरा डाले पड़े रहते हैं। ऐसा दुस्वभाव जिस किसी का भी हो, उसे एक बुरी किस्म का बीमार समझकर प्रेम एवं सौजन्य से सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। हँसी-खुशी का स्वभाव बनायें और जो समस्यायें हों उन्हें सौम्यता, सज्जनता, नम्रता एवं शिष्टता के वातावरण में सुलझायें तो वे अपेक्षाकृत आसानी से सुलझ जाती हैं। घर में खेलकूद, गायन-वाद्य, कथा-कहानी, सुसज्जा, स्वच्छता का मनोरंजक वातावरण रहे, कभी-कभी घूमने-देखने भी जाया करे, उत्सव आयोजनों में भी सम्मिलित होते रहें। प्रसन्नता की स्थिति परिवार में बनाये रहना मानसिक स्वस्थता के विनोद-मनोरंजन का वातावरण रखने के लिए आवश्यक समझा जाना चाहिए।

(५) परिवार में जितने सदस्य हों उन सभी की आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाय। ऐसा न हो कि पुरुष जो कमाये उस पर पत्नी ही पूरा अधिकार कर ले और अपने बच्चों के अतिरिक्त और किसी को उसका लाभ न लेने दे। माता-पिता, भाई-बहिन सभी तो एक भले कुटुम्ब के सदस्य होते हैं। उनके भरण-पोषण, शिक्षण, विवाह, चिकित्सा आदि मे होने वाला खर्च निरर्थक न समझा जाय। कमाने के कारण अहंकार और न कमाने के कारण तिरस्कार नहीं होना चाहिए। घर के हर सदस्य को उचित सम्पत्ति, उचित प्रोत्साहन और उचित विकास साधन मिलते रहें, इसका पूरा ध्यान रखना भी विवाह का उद्देश्य है। सप्तपदी का पाँचवा कदम इसी उत्तरदायित्व को निबाहने के लिए उठाया जाता है।

(६) गृह प्रबन्ध में उपयोगी हर वस्तु की, हर कार्य की सुव्यवस्था रखनी चाहिए। कपड़े, बर्तन, खाद्य पदार्थ, जूते, पुस्तकें, बिस्तर, फर्नीचर आदि हर चीज यथास्थान, ठीक क्रम से, संभाल कर रखी जानी चाहिए। चीजों का फटे-टूटे, बिखरे, अव्यवस्थित रीति से पटके रहना घर को कुरुचिपूर्ण बनाना तो है ही, दरिद्रता का आह्वान करना भी है। घर की हर चीज को यथास्थान, सुव्यवस्थित और सुन्दर रीति से संभाल कर रखा जाना सद्गृहस्थ का लक्षण है। छतों पर जाले, कौने में कूड़ा, टूटी और निरर्थक चीजों का झंझट नही लगा रहना चाहिए। नाली, टट्टी, पाखाने गंदे नहीं रहने चाहिए। हर चीज का स्थान नियत रहे और वह वहीं रखी जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टूटी-फूटी चीजों की मरम्मत करने की कला आनी चाहिए, यदि स्वयं वैसा न कर सकें तो बाहर मरम्मत करा लें। इस प्रकार गृह व्यवस्था का उचित ध्यान रखा जाना पत्नी का ही नहीं, पति का भी काम है। दोनों इस प्रक्रिया में सहयोग करें और घर के सब लोगों को ऐसा शिक्षण दें कि वे भी सफाई और व्यवस्था के लिए सावधानी बरतें और श्रम करें। गन्दगी एवं अव्यवस्था घर में न फैलने पावे, सप्तपदी का छठा कदम इसी कर्तव्य के पालन करने के लिए है।

(७) पारस्परिक सद्भाव एवं विश्वास गृहस्थ के सफल होने का मूल आधार है। एक-दूसरे को अविश्वास और सन्देह की दृष्टि से देखें तो उसकी छोटी-छोटी आकस्मिक भूलें भी जानबूझ कर की गई दुष्टता जैसी प्रतीत होती हैं। संदेह से संदेह और अविश्वास से अविश्वास बढ़ता है। इसलिए परस्पर छिद्रान्वेषण करने और अपने प्रति दुर्भाव रखने की बात को गृहस्थ-जीवन में आग लगाने वाली चिन्गारी की तरह सदा दूर ही रखना चाहिए। गलतियों को भूल-विवशता या उपेक्षा या नादानी ही माना जाय और कभी सहन करने तथा कभी मीठी चुटकी लेते हुए उसे सुधारने के लिए सौहार्द्रपूर्वक अनुरोध करना चाहिए। यदि सुधार न भी हो सके तो भी सुधार न होने के साथ-साथ दुर्भाव बढ़ने की दूनी हानि क्यों उठायी जाय ? सुधार नहीं होता है तो उससे एक हानि है, दुर्भाव बढ़ने से तो दूनी हानि होगी। इसलिए सुधार का कोई मार्ग न दीखे तो भी सद्भाव एवं विश्वास तो बनाये ही रखना चाहिए। मित्रता पर आँच किसी की कारण नहीं आने देनी चाहिए। सप्तपदी का सातवाँ कदम इसी तथ्य की पूर्ति के लिए उठाया जाता है।

यह व्याख्या सप्तपदी के सात कदम पति-पत्नी द्वारा साथ-साथ उठाये जाने की क्रिया का उद्देश्य समझाते हुए करनी चाहिए। ऊपर कुछ संकेत मात्र ही दिये गये हैं। कुशल वक्ता जिन्होंने गृहस्थ जीवन की समस्याओं का विस्तृत अध्ययन किया है, वे घटनाओं, उदाहरणों, प्रसंगों और समाचारों का पुट देकर उसे बहुत ही आकर्षक बना सकते हैं। इसके लिए दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी अनेक पुस्तकों का पढ़ना तथा उनसे उत्पन्न होती रहने वाली समस्याओं का स्वरूप तथा हल जानना आवश्यक है। वक्ताओं का इस क्षेत्र में विशाल अध्ययन तथा चिन्तन-मनन होना चाहिए।

सुमंगली—पाँचवी क्रिया विवाह-दिवसोत्सव की 'सुमंगली' है। पति पत्नी को और पत्नी पति को तिलक लगाती है। पति द्वारा पत्नी की माँग में सिन्दूर भरना उसके सुहाग को सफल एवं सार्थक बनाने के आश्वासन के रूप में होता है। पति इस क्रिया द्वारा यह आश्वासन देता है कि उसका सौभाग्य सिन्दूर निरर्थक सिद्ध न होगा। पत्नी को यह पश्चात्ताप न करना पड़ेगा कि ऐसे निखट्टू पति की अपेक्षा तो अविवाहित रहना ही अच्छा था। वह भार नहीं सहारा बनेगा। दबाने या सताने में नहीं वरन् हँसाने और उठाने में विवाह की सार्थकता है।

इस प्रथा का दूसरा रूप एक-दूसरे के मस्तक पर तिलक करने का भी है। पति केवल पत्नी के तिलक करे इतना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् यह भी उचित है कि पत्नी भी पति के मस्तक पर तिलक करे। तिलक नीचे से ऊपर की ओर लकीर खींच कर किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि मानसिक स्तर को ऊपर की ओर उठाने का प्रयास होना चाहिए। किसी का वास्तविक उत्थान-पतन उसकी भावना एवं आकांक्षा का ऊँचा या नीचा होने में ही है। पति-पत्नी में से हर एक का यह प्रयत्न होना चाहिए कि वह अपने साथी को किसी प्रलोभन या भय के कारण निकृष्ट मार्ग पर चल पड़ने की दुर्बलता में पड़ने से बचाये। कठिनाइयाँ रहकर भी धर्म-कर्तव्य और औचित्य को अपनाये रहने की हिम्मत बढ़ाता रहे।

मस्तिष्कीय ज्ञान, शिक्षा ,विवेक, अनुभव एवं जानकारी की बढ़ोत्तरी भी मानसिक शक्ति के विकास का एक प्रकार है। दोनों में से जो भी अधिक ज्ञानवान् है उसे चाहिए कि साथी को वह अवसर दे, जिससे उसे अपना मानसिक स्तर कम से कम उतना ही अन्यथा और भी अधिक विकसित करने की सुविधा प्राप्त कर सकना सम्भव हो जाय। सुमंगली क्रिया के अवसर पर किया गया तिलक इसी प्रेरणा का प्रतीक माना गया है।

उपरोक्त पाँचों क्रियाओं को करते हुए उपरोक्त आधार पर विस्तृत व्याख्या-विवेचनाएँ की जानी चाहिए। जिनका विवाह-दिवसोत्सव मनाया जा सकता है, उनके दाम्पत्य-जीवन में क्या कमियाँ हैं, उनका पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए और उन अभावों की पूर्ति के संबंध में रचनात्मक उपाय प्रस्तुत करने चाहिए, यह सब कहने में रचनात्मक दृष्टि से एवं सामान्य विवेचना के ढंग से कहा जाना चाहिए अन्यथा जिसकी त्रुटि बताई जा रही होगी वह अपनी उस बात को प्रकट होने और सबके सामने हेय बात ठहराये जाने की बात सोचकर वक्ता पर कुपित होगा और सुधारने की अपेक्षा और अधिक चिढ़ जायगा। यह भूल किसी प्रवक्ता को नहीं करनी चाहिए। कहना इस ढंग से चाहिए कि न तो किसी का भेद खुले और न भर्त्सना प्रतीत हो । सुधारने का कार्य बड़ा कठिन है, समझाने के ढंग में समुचित प्रेम, आत्मीयता, प्रतीक्षा, प्रोत्साहन की मात्रा है तभी उससे किसी के सुधरने की आशा की जा सकती है। इस उत्सव का उद्देश्य जीवन में अधिक मधुरता उत्पन्न करना तथा विकृतियों का समाधान करना है, इसलिए प्रशिक्षण इस ढंग से होना चाहिए कि किसी को कटु, मर्मभेदी प्रतीत न हो। अपनी भूल बताने पर आमतौर से लोग रुष्ट होते, चिढ़ते तथा अपमान अनुभव करते हैं। इस मानवीय मनोवैज्ञानिक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्बलता का ध्यान रखते हुए जब जो कहा-समझाया जायगा वह अवश्य प्रभावशाली सिद्ध होगा।

व्रत धारण की आवश्यकता—जिस प्रकार जन्मदिवस के अवसर पर कोई बुराई छोड़ने और कोई अच्छाई अपनाने के सम्बन्ध में प्रतिज्ञायें की जाती हैं। इसी तरह विवाह के दिवस, उपलक्ष्य में भी पतिव्रत और पत्नीव्रत को परिपुष्ट करने वाले छोटे-छोटे नियमों का पालन करने की कम से कम एक-एक प्रतिज्ञा इस अवसर पर लेनी चाहिए। परस्पर 'आप या तुम शब्द का उपयोग करना' 'तू' का अशिष्ट एवं लघुता प्रकट करने वाला सम्बोधन न करना जैसी प्रतिज्ञायें तो आसानी से ली जा सकती हैं।

पति द्वारा इस प्रकार की प्रतिज्ञायें ली जा सकती हैं। (१) कटु वचन या गाली आदि का प्रयोग न करना। (२) कोई दोष या भूल हो तो उसे एकान्त में ही बताना, समझना बाहर के लोगों के सामने उसकी तनिक भी चर्चा न करना (३) युवा स्त्रियों के साथ अकेले में बाते न करना (४) पत्नी पर सन्तानोत्पादन का कम से कम भार लादना (५) उसे पढ़ाने के लिए कुछ नियमित व्यवस्था बनाना (६) खर्च का बजट पत्नी की सलाह से बनाना और पैसे पर उसी का प्रभुत्व रखना (७) गृह व्यवस्था में पत्नी का हाथ बँटाना (८) उसके सद्गुणों की समय-समय पर प्रशंसा करना (९) बच्चों की देखभाल, साज-संभाल तथा शिक्षा-दीक्षा पर समुचित ध्यान देकर पत्नी का काम सरल करना (१०) पर्दा का प्रतिबन्ध न लगाकर उसे अनुभवी, स्वावलम्बी होने की दिशा में बढ़ने देना (११) पत्नी की आवश्यकताओं तथा सुविधाओं पर समुचित ध्यान देना, आदि-आदि।

पत्नी द्वारा भी इसी प्रकार की प्रतिज्ञायें की जा सकती हैं। जैसे—(१) छोटी-छोटी बातों पर कुढ़ने, झल्लाने या रूठने की आदत छोड़ना (२) बच्चों से कटु शब्द कहना, गाली देना या मारना-पीटना बन्द करना (३) सास, ननद, जिठानी बड़ों आदि को अपशब्द या कटु शब्दों में उत्तर न देना (४) हँसने-मुस्कराते रहने और सहन कर लेने की आदत डालना (५) साबुन, सुई, बुहारी इन तीनों को दूर न जाने देना, सफाई और मरम्मत की ओर पूरा ध्यान रखना (६) उच्छृंखल फैशन बनाने में पैसा या समय तनिक भी खर्च न करना (७) पति से छिपा कर कोई काम न करना (८)अपनी शिक्षा, योग्यता बढ़ाने के लिए नित्य कुछ समय निकालना (९) पति को समाज सेवा एवं लोकहित के कार्यों में भाग लेने से रोकना नहीं वरन् प्रोत्साहित करना (१०) स्वास्थ्य के नियमों के पालन कराने में उपेक्षा न बरतना (११) घर में पूजा का वातावरण बनाये रखना, भगवान की पूजन आरती और भोग का नित्य क्रम रखना, (१२) पर्दा के बेकार बन्धन की उपेक्षा करना (१३) पति, सास आदि के नित्य चरण-स्पर्श करना आदि-आदि।

हर दाम्पत्य-जीवन की अपनी-अपनी समस्यायें होती हैं। अपनी कमजोरियाँ, भूलों, दुर्बलताओं और आवश्यकताओं को वे स्वयं अच्छी तरह समझते हैं, इसलिए उन्हें स्वयं ही यह सोचना चाहिए कि किन बुराइयों-कमियों को उन्हें दूर करना है और किन अच्छाइयों को अभ्यास में लाना है। जो उन्हें उपयुक्त एवं सामयिक प्रतीत हों, उसकी प्रतिज्ञा लेनी चाहिए और उपस्थित लोगों के सामने घोषणा भी करनी चाहिए ताकि उन्हें उसके पालने में लोक-लाज का ध्यान रहे, साथ ही जो उपस्थित हैं उन्हें भी वैसी ही प्रतिज्ञाएँ करने और उन पर आरूढ़ रहने के लिए प्रोत्साहन मिले।

यह तथ्य ध्यान में रखें—गृहस्थ एक प्रकार का प्रजातंत्र है, जिसमें डिक्टेटरशाही की गुञ्जायश नहीं। दोनों को एक-दूसरे को समझना, सहना और निबाहना होगा। दोनों में से जो हुक्म चलाना भर जानता है, अपना पूर्ण आज्ञानुवर्ती बनाना चाहता है, वह गृह-शान्ति में आग लगाता है। दो मनुष्य अलग प्रकृति के ही होते और रहते हैं। उनका पूर्णतया एक में घुल-मिल जाना संभव नहीं। जिनमें अधिक सामंजस्य और कम मतभेद दिखाई पड़ता हो, समझना चाहिए कि वे गृहस्थ हैं। मतभेद और प्रकृति भेद को पूर्णतया मिटा सकना कठिन है। कोई आत्म समर्पण करने वाले महात्मा या खरीदे हुए गुलाम ही पूर्ण आज्ञानुवर्ती हो सकते हैं। सामान्य स्थिति में कुछ न कुछ विभेद बना ही रहता है, इसे जो लोग शान्ति और सहिष्णुता के साथ सहन कर लेते हैं, वे समन्वयवादी व्यक्ति ही गृहस्थ का आनन्द ले पाते हैं।

यह आशा करना कि पत्नी वैसी ही मिलेगी जैसी कि कल्पना या आशा की गई थी-निरर्थक है। साथी को पकाया हुआ पकवान नहीं कच्चा राशन समझना चाहिए जिसे अपनी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, सहनशीलता, उदारता एवं आत्मीयता के आधार पर अपने ढंग का, अपनी रुचि का बनाया जाता है। इसके लिए काफी धैर्य रखने की आवश्यकता पड़ती है। उतावली में काम बिगड़ जाता है। अमीर व्यक्ति कटुता, भर्त्सना, तिरस्कार, निन्दा, लांछनों का सहारा लेकर साथी का आन्तरिक सौमनस्य खो बैठते हैं। आत्मीयता के सम्बन्ध गहरे रहें तो दैनिक जीवन में जो मतभेद रहते हैं वे क्रोध या द्वेष का कारण नहीं बनते। एक-दूसरे को समझकर किसी प्रकार झंझट निपटा लेते हैं।

भूलना न चाहिए कि हर व्यक्ति अपना मान चाहता है। दूसरे को तिरस्कृत कर उसे सुधारने की आशा नही की जा सकती। अपमान से चिढ़ा हुआ व्यक्ति भीतर ही भीतर क्षुब्ध रहता है, उसकी शक्तियाँ रचनात्मक दिशा में नहीं विघटनात्मक दिशा में लगती हैं, पति या पत्नी में से कोई भी गृह व्यवस्था के बारे में उपेक्षा दिखाने लगें तो उसका परिणाम आर्थिक एवं भावनात्मक क्षेत्रों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विघटनात्मक ही होते हैं। इसलिए यों तो क्रोध से सभी जगह सदा ही बचना चाहिए पर दाम्पत्य जीवन में तो इसका विशेष सतर्कतापूर्वक ध्यान रखना चाहिए। दोनों के बीच यह समझौता रहना चाहिए कि यदि किसी कारणवश एक को क्रोध आ गया तो दूसरा तब तक चुप रहेगा, जब तक कि दूसरे का क्रोध शान्त न हो जाय। क्रोधपूर्ण उत्तर-प्रत्युत्तर अनिष्टकर परिणाम ही प्रस्तुत करता है। इन तथ्यों को दोनों ही ध्यान में रखें।

हवन का शेष कृत्य समाप्त होने पर युग निर्माण का सत्संकल्प दुहराया जाय। यह कार्य प्रत्येक संस्कार में अनिवार्य रूप से आवश्यक है। हर उत्सव आयोजन में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति को युग निर्माण की व सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना और प्रेरणा को भी हृदयंगम करते हुए जाना चाहिए।

सभी संस्कारों में उपस्थित सभी लोग शुभ कामना के रूप में आशीर्वाद मंत्र का उच्चारण करते हुए अक्षत वर्षा करते हैं। इस उत्सव में पुष्प वर्षा का विशेष प्रबन्ध करना चाहिए। पूरे फूल या गुलाब, गेंदा आदि बिखरने वाले फूलों की पंखुड़ियाँ पहले से ही एक टोकरी में रखी जायें जो उत्सव के अन्त मे सभी को वितरित कर दी जायें। आयोजन समाप्त होने पर ग्रन्थि-बन्धन खोल दिया जाय और वे दोनों सभी उपस्थित लोगों का अभिवादन करें। इसके प्रत्युत्तर मे उपस्थित लोग शुभकामना के प्रतीक रूप पुष्प अक्षत बरसायें, तिलक करें और मंगल वचन बोलें।

नया उल्लास, नया आरम्भ—पति-पत्नी को नये वर्ष का, नये उल्लास एवं नये आनन्द से परिपूर्ण जीवन बनाने-बिताने की नई प्रेरणा के साथ अपना नया कार्य-क्रम बनाना चाहिए। अब तक का वैवाहिक जीवन अस्त-व्यस्त रहा हो तो रहा हो, पर अब अगले वर्ष के लिए यह प्रेरणा लेनी चाहिए, ऐसी योजना बनानी चाहिए कि वह अधिकाधिक उत्कृष्ट, आदर्श एवं आनन्ददायक हो। उस दिन को अधिक मनोरंजक बनाने के लिए छुट्टी के दिन के रूप में मनोरंजक कार्यक्रम के साथ बिताने की व्यवस्था बन सके, तो वैसा भी करना चाहिए। विवाह का दिन केवल कर्मकाण्ड की दृष्टि से ही नहीं भावना, उल्लास एवं उत्साह की दृष्टि से भी विवाह दिन की अभिव्यक्तियों के पुनःसंस्करण के रूप में मनाया जा सके, ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए। इस प्रेरणाप्रद दिन में एक कार्यक्रम यह भी होना चाहिए कि दोनों एकान्त में बैठ कर अब तक के जीवन की समीक्षा करें। जो भूलें हुई हों, उसके लिए एक-दूसरे से क्षमा माँगें। जो प्रसन्नतावर्धक काम हुए हों उसके लिए एक-दूसरे के प्रति कृतज्ञता प्रकट करें और भावी जीवन की ऐसी सुव्यवस्थित योजना बनावें जिस पर चलते हुए गृहस्थ मे स्वर्ग के अवतरण का आनन्द लिया जा सके।

परिवार संस्था का सुसंचालन

विवाह मे वर कन्या का ही गठबन्धन नही होता, दो परिवार भी आपस में बँधते हैं। एक दूसरे के सहयोग-परामर्श से अपनी कठिनाइयों से निबटने और उन्नति की दिशा में बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। दो पड़ौसी परस्पर सहानुभूति के आधार पर मित्र बन जाते हैं और दुःख बँटाने, सुख बाँटने में यथासम्भव सहायता करते हैं तो कोई कारण नहीं कि कन्या और वर के परिवार मिल-जुलकर एकता स्थापित न करें और एक दूसरे के शुभचिन्तक बनकर न रहें। उन्हें स्थिति के अनुरूप एक-दूसरे की सहायता भी करनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि कन्या पक्ष ही वर पक्ष की आजीवन सहायता करता रहे। यदि सम्भव हो तो और आवश्यकता पड़े तो वर पक्ष को भी कन्या पक्ष वालों की सहायता करनी चाहिए। घनिष्ठ सहानुभूति तो रखनी ही चाहिए। विवाह के बाद कन्या से पूरी तरह पल्ला नहीं छुड़ा लेना चाहिए। विवाह के बाद कन्या बिक नहीं जाती वरन् अपना अधिकार अभिभावकों पर भी बनाये रहती है। जिससे छुटकारा पा लेना आजीवन सम्भव नहीं होता। इस तथ्य को सदा ध्यान मे रखा जाय और कन्या को समय-समय पर बुलाते चलाते रहा जाय। इसकी कुछ पारिवारिक गुत्थियाँ हों तो उन्हें सुलझाने मे सहायता करते रहना भी कर्तव्य है। जिस प्रकार अपने घर परिवार के झगड़े-झंझट सुलझाये जाते हैं उसी प्रकार बेटी के घर की समस्याओं को सुलझाने में भी समुचित योगदान देते रहना चाहिए। बेटी को सर्वथा उपेक्षित-असहाय छोड़ देने पर उसके परिवार के कर्कश निष्ठुर लोगों की बन आती है। यह स्थिति नहीं ही बनने पाये इसके लिए कन्या पक्ष को भी ध्यान रखे रहने की आवश्यकता है।

विवाह पति-पत्नी के बीच ही नहीं होता वरन् उसके माध्यम से विवाहितों का पूरा परिवार उनकी सेवा-सहायता के लिए आकांक्षी बन जाता है। विवाह से पूर्व लड़के के भरण-पोषण, शिक्षा-दीक्षा आदि मे जो समय और धन लगाया जाता रहा है, उसे एक विश्वस्त व्यवसाय में लगी हुई पूँजी समझी जा सकती है। विवाह के दिनों दम्पति स्वावलम्बन के नजदीक पहुँच चुके होते है। वे समर्थ भी हो चले होते हैं। ऐसी दशा में उनका कर्तव्य हो जाता है कि परिवार को सुखी-समुन्नत, व्यवस्थित एवं सुसंस्कृत बनाने के लिए जो भी सम्भव हो सके वह करे। यह अहसान करना नहीं वरन् ऋण चुकाना है।

परिवार में कई सदस्य तो समर्थ और स्वावलम्बी होते है, पर कई बाल, वृद्ध ऐसे होते है जिन्हें आर्थिक एवं भावनात्मक सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। प्रौढ़ भी सम्मान-शिष्टाचार तो चाहते ही हैं। इन आवश्यकताओं को पूरी करते रहना दम्पति का कर्तव्य है। ऐसा भी होता है कि बड़े लड़कों को पढ़ाने में घर की पूँजी चुक जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। सोचा जाता है कि लड़का जब समर्थ हो जायेगा तो उस पूँजी को लौटा देगा। घर के अन्य असमर्थों को समर्थ बनाने में अपना योगदान देगा, पर देखा जाता है कि उनका दृष्टिकोण बदल जाता है। सोचते हैं कि अपनी कमाई को पति-पत्नी के बीच ही खर्च करके अधिक विलासी और खुशहाल जीवन क्यों न बितायें ? घर वालों की सहायता में अपनी कमाई क्यों लगायें ? इस स्वार्थपरता से प्रेरित नवयुवक अलग हो जाते हैं या कहीं अन्यत्र बदली करा लेते हैं। जो कमाते हैं उसे अपने ऊपर ही खर्च कर लेते हैं। परिवार के लोगों को निराश ही रहना पड़ता है। यह बुरी बात है। होना यह चाहिए कि पति-पत्नी मिलकर पहले परिवार के अंग बनकर रहें। उन पर जो समय तथा धन खर्च हुआ है, उसे सेवा सहायता करते हुए चुकाने में लगे रहें। इस संदर्भ की सभी आवश्यकताएँ जब पूरी हो चलें, छोटे बहिन-भाइयों की शिक्षा, शादी पूरी हो जाय तब इसके उपरान्त बच्चे पैदा करने की तथा घर-परिवार बसाने की बात सोचें अन्यथा यह परिवार का ऋण भार लेना ऐसा ही है जैसा कि किसी साहूकार या बैंक का दिया हुआ ऋण लेकर भाग जाना। यह स्थिति उत्पन्न न करना ही भलमनसाहत है अन्यथा अपनी पढ़ाई, शादी, भरण-पोषण में घर की अधिकांश राशि खर्च करा लेना और पीछे वालों को असहाय छोड़ देना बुरी बात है।

परिवार संस्था को हमें टूटने नहीं देना चाहिए। उसका वातावरण सही रहने में इस खदान से नर रत्नों का उत्पादन होता है। परिवार की एक कड़ी व्यक्ति निर्माण के साथ जुड़ती है। दूसरी समाज निर्माण के साथ। बच्चे और बड़े अपने गुण, कर्म, स्वभाव के भले-बुरे होने का अभ्यास परिवार की पाठशाला में ही करते हैं। इस प्रकार वह व्यक्ति निर्माण का आधार है। परिवारों की कड़ियाँ मिलकर ही समाज बनता है। समाज की अलग से कोई सत्ता नहीं, वह परिवारों का ही समुच्चय है। परिवारों की जो व्यवस्था तथा सभ्यता होती है, उसी को व्यक्ति अपनाते जायें तो वैसा ही समाज बन जायगा। इसलिए समाज निर्माण मे नवदम्पति को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। क्योंकि नई प्रतिभा के रूप में उनका दबाव सब पर पड़ता है। फिर जो कमाकर लाते हैं वह घर में ही तो रखते हैं इसलिए उनका अहसान भी घर के सभी लोग मानते हैं। शत-प्रतिशत नहीं तो उनकी बातें अधिकांश में मानी जाती हैं।

विवाह के उपरान्त पति-पत्नी को परस्पर तनाव उत्पन्न नहीं करना चाहिए। लड़-झगड़ की राह अपनाने की मूर्खता नही करनी चाहिए। यह अपेक्षा नही रखनी चाहिए कि दूसरा पक्ष अपने ही संकेतों पर चलेगा। उसका अपना भी मानस है, अपना स्वभाव भी, उसे पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सकता। समझदारी इसी में है कि जितना सम्भव हो। उस हद तक तालमेल बिठा लिया जाय और जो मतभेद रह जायँ, उन्हें उपेक्षा के गर्त मे डाल दिया जाय। तेतीस प्रतिशत नम्बर लाने पर बच्चे पास हो जाते हैं। पचास प्रतिशत पर सैकिण्ड डिवीजन और साठ से ऊपर लाने पर फर्स्ट डिवीजन। पति-पत्नी का तालमेल जिस अनुपात में मिल जाता हो उसी को सौभाग्य और सुयोग मानकर संतोष करना चाहिए और प्रसन्न रहना चाहिए। दोषों को भुला दिया जाय, गुणों को स्मरण रखा जाय तो इतने भर से दाम्पत्य जीवन की अधिकांश सफलता सिद्ध हो जाती है। शत-प्रतिशत एक दूसरे के अनुगामी होंगे, इसकी अपेक्षा नहीं ही करनी चाहिए। गुणों को बढ़ाने का तरीका यह है कि दूसरो के सामने साथी के जो गुण हों उनकी प्रशंसा की जाय। जो दोष हों उनके सम्बन्ध में चुप्पी साध ली जाय। उन्हे चर्चा का विषय न बनाया जाय। मतभेदों को आपस में मिलजुल कर सुलझाया जाय। इसके लिए तर्क, उदाहरण प्रस्तुत किये जायँ। अहंकार को आगे रखकर रूठ बैठना और आवेश में भरकर अपमानजनक व्यवहार करने लगना ऐसा दुर्व्यवहार है जिसके आधार पर खाई चौड़ी होती है। गुत्थी सुलझने की सम्भावना तो रहती ही नहीं। दबाव देकर साथी को इच्छानुरूप चलने के लिए बाधित करना जंगली कानून है। वह स्वाभिमानी मनुष्यों पर प्रयोग नहीं किया जा सकता, जो हठवादिता अपनाते है वे घाटे में रहते हैं। सरल और सुखी दाम्पत्य जीवन बिताने का तरीका यही है कि दोनों में से कोई हठवादी न बने। विचार-विनिमय का द्वार खुला रखा जाय और जिस सीमा तक सहमति बन पड़े उसी में सन्तोष किया जाय।

परिवार के सदस्यों में शिष्टाचार, मितव्ययिता, श्रमशीलता, सुव्यवस्था और उदार सहकारिता का बीजारोपण करना चाहिए। किसी को भी उद्दण्ड, उच्छृंखल नहीं बनने देना चाहिए। अपनी गलती तलाश करने और उसे सुधारने की आदत सभी को डालनी चाहिए। नशेबाजी जैसे दुर्व्यसनों को घर में प्रवेश नहीं करने दिया जाय। अपव्यय की आदत पड़ जाती है तो उचित-अनुचित किसी भी तरीके से धन प्राप्त करने की ललक बनी रहती है। इसका प्रतिफल चरित्र पतन के रूप में सामने आता है। आलसी व्यक्ति श्रम बचाता है, पर इसके बदले योग्यता बुद्धि से वंचित रह जाता है। जो दूसरों के काम में हाथ नहीं बँटाता उसे कामचोर, स्वार्थी और आलसी समझा जाता है। ऐसे स्वभाव वाले दूसरों की आँखों में खटकते है। भर्त्सना के पात्र बनते है। इसमे उनमें आत्महीनता या विद्वेष की भावना उत्पन्न होती है। हँसी-खुशी की उस सौगात से वंचित रह जाते हैं जो उत्साह, श्रमशील, सेवाभावी होने की स्थिति में उनको सहज ही मिलती रह सकती है।

परिवार में बड़े-बूढ़ों का आग्रह पुराणपंथी मान्यताओं में अटका रहता है। विवाह-शादियों में बाल-विवाह, धूम-धाम, दहेज का लेन-देन उन्हीं के आग्रह से होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मृतक-भोज, भूत-पलीत, देवी-देवता, छूत-छात, पर्दा-घूँघट जैसा निरर्थक बुढ़िया पुराण उन्हीं का चलता है। पीर-फकीरों से वे ही ठगाती रहती हैं। हर पुरानी परिपाटी को वे पत्थर की लकीर मानती हैं। अपनी बातों पर बड़े-बूढ़े बहुत जोर देते हैं। कई बार तो उन्हें प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते हैं। इन बातों को हँसी की उपेक्षा में टाल देना चाहिए। इन बातों पर झगड़ना तो नहीं चाहिए पर उन मूढ़-मान्यताओं को चलने भी नहीं दिया जाना चाहिए। सुधार के लिए उन्हें बदलते जमाने और समय की माँग को ही प्रधान तर्कों के रूप में प्रस्तुत करना चाहिए, इन प्रसंगों में ऐसी बुद्धिमत्ता से काम लेना चाहिए कि अन्धविश्वासों को प्रश्रय न भी मिलने पाये और कोई बड़ा सा झगड़ा-झंझट भी खड़ा न हो।

बड़े-बूढ़ों का पुराने ढंग का कड़ा अनुशासन और नई पीढ़ी का सामयिक स्वतन्त्रता का उपयोग इन दोनों ही बातों से आये दिन टकराहट होती रहती है और घर झगड़े-झंझटों के अखाड़े बने रहते हैं। इस गृह युद्ध को गम्भीर होकर नहीं हल्के-फुल्के मन से हँसी-मजाक में ही टाला जा सकता है। दोनों पक्षों को थोड़ा-थोड़ा झुकना चाहिए ताकि मिलकर चलने के बिन्दु पर आ सकें। जो इतना कर पायें उन्हें शासन चला सकने की नीति कुशलता में प्रवीण-पारंगत कहा जायगा।

जहाँ स्वार्थपरता, चालबाजी, धूर्तता, अनीति का समावेश हो उन बातों को नहीं ही चलने देना चाहिए। इसमें अपना सहयोग, विरोध या संघर्ष भी खड़ा किया जा सकता है, ऐसे प्रसंग पुराने ढंग की विवाह-शादियों के सम्बन्ध में हो सकते हैं। बालविवाह, दहेज, धूमधाम के प्रसंगों में नई पीढ़ी को बड़े-बूढ़ों के सामने अपनी आदर्शवादी मान्यता स्पष्ट कर देनी चाहिए। कहना चाहिए कि मूढ़ परम्परा उन्हें किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं। वे आजीवन कुँवारे रह सकते हैं, पर उनका रिश्ता स्वीकार नहीं करेंगे जो देन-दहेज या धूमधाम को आवश्यक मानते हैं। लड़की हो या लड़का दोनों को ही इस आदर्शवादिता पर अड़ जाना चाहिए। किसी गरीब को साथी बना लेना चाहिए, पर उस कुप्रथा को सहन नहीं करना चाहिए, जिससे घर बर्बाद होते हैं और समाज में गरीबी, बेईमानी का माहौल बनता है।

पाश्चात्य देशों में स्वेच्छाचार की बाढ़ आने से परिवार संस्था टूट गई। बूढ़ों को सरकारी बूढ़े खानों में आश्रय लेकर मौत के दिन पूरे करने पड़ते हैं। पति-पत्नी के बीच तनिक सा मनमुटाव होते ही तलाक ले लिये जाते हैं। बिना विवाह के न स्त्रियाँ रह पाती हैं न पुरुष। ऐसी दशा में बच्चों को जहाँ-तहाँ छोड़कर नया घर बसाने की उतावली पड़ती है। ऐसे बच्चे, बच्चा खानों में पल तो जाते हैं पर अभिभावकों की स्वार्थपरता और हृदयहीनता उन्हें आजीवन खटकती रहती है। फलतः वे अनेक दुर्गुणों और मानसिक रोगों के शिकार हो जाते हैं। ऐसे परित्यक्त बालकों की संख्या उन देशों में निरन्तर बढ़ती जाती है।

भारत में दूसरे तरह की समस्याएँ हैं। पति-पत्नी की ओर से बदल जाने पर पूरा परिवार अपने-पराये के उस मतभेद में अपने की हिमायत करता है। पत्नी को ही दोषों की खान ठहराया जाता है और प्रयत्न यह किया जाता है कि किसी प्रकार उससे पीछा छुड़ाकर नई बहू लाने का जुगाड़ बिठाया जाय।

विधवा और परित्यक्ता की स्थिति प्रायः एक जैसी होती है। दोनों के ही बच्चे दुर्दशाग्रस्त रहते हैं और माताएँ छाती पर पत्थर रखकर किसी प्रकार वह सब सहन करती रहती हैं। आवेश आने पर उन्हें नीच-ऊँच कदम भी उठाने पड़ते हैं।

पाश्चात्य देशों की और भारत की पारिवारिक स्थितियों में अन्तर तो हैं, पर दोनों को ही हेय अनुपयुक्त कहा जा सकता है। यह ढर्रा देर तक नहीं चल सकता। अतिवाद सदा निभता नहीं। उसके अपने-अपने ढंग के दुष्परिणाम खड़े होते रहते हैं।

सर्वसुलभ समाधान यह है कि "लार्जर फेमिली" कम्यून स्तर की सहकारी समितियाँ गठित की जायँ। उसमें सभी सदस्यों की सुविधा, जिम्मेदारी तथा आदर्श व्यवस्था सुरक्षित रहे। सौदा खरीदना, बच्चों को खिलाना, पढ़ाना, भोजन बनाना, कपड़े धोना, मनोरंजन आदि काम सहकारी स्तर पर हों उसी में एक खण्ड ऐसा भी रहे कि सदस्यों में से जो अनाथ, अपंग हो जाय उसका भी लार्जर फेमिली द्वारा निर्वाह चलता रहे। ऐसी समितियाँ साम्यवादी देशों में गठित भी की गई हैं और वे सफलतापूर्वक चल भी रही हैं। सामर्थ्य भर श्रम करने, आवश्यकता के अनुरूप लेने का सिद्धान्त ऐसा है जिसे अपना लेने पर केन्द्रीय सम्पन्नता बढ़ती रहती है। उसका लाभ हर सदस्य को मिलता है। न कोई पिसता है—न कोई पीसता है। सभी की स्वतन्त्रता और जिम्मेदारी अक्षुण्ण बनी रहती है।

परिवार संस्था को जीवन्त और सक्षम रहना आवश्यक है। इसके लिए न्यायोचित और सुविधाजनक तरीका 'लार्जर फेमिली' वाला ही है। वह जहाँ जितने अंशों में सम्भव हो कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

परिवार का मूल—दाम्पत्य-जीवन

दाम्पत्य-जीवन के ऊपर पारिवारिक, सामाजिक, व्यक्तिगत सभी तरह की उन्नति, विकास निर्भर करते हैं। पति-पत्नी के सहयोग, एकता, परस्पर आत्मोत्सर्ग, त्याग, सेवा आदि से दाम्पत्य जीवन की सुखद और स्वर्गीय अनुभूति सहज ही की जा सकती है। इससे मनुष्य के आंतरिक और बाह्य जीवन के विकास में बड़ा योग मिलता है। सभी भाँति स्वस्थ, संतुलित, सुन्दर दाम्पत्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जीवन स्वर्ग की सीढ़ी है और मानव विकास का प्रेरणा-स्रोत है।

जीवन लक्ष्य की लम्बी मंजिल को तय करने के लिए पति-पत्नी का अनन्य संयोग यात्रा को सहज और सुगम बना देता है। नारी शक्ति है तो पुरुष पौरुष। बिना पौरुष के शक्ति व्यर्थ ही धरी रह जाती है तो बिना शक्ति के पौरुष भी किसी काम नहीं आता, वह अपंग है। शक्ति और पौरुष का समान प्रवाह, संयोग एकता, नव-सृजन के लिए नव-निर्माण के लिए आवश्यक है। इनकी परस्पर असंगति, असमानता ही अवरोध, हानि, अवनति का कारण बन जाती है। पति-पत्नी में यदि परस्पर विग्रह, आपा-धापी, स्वार्थपरता, द्वेष, स्वेच्छाचार की आग सुलग जायगी तो दाम्पत्य जीवन का सौंदर्य विकास, प्रगति, महत्त्वपूर्ण संभावनाओं का स्वरूप अपने गर्भ में ही नष्ट हो जायगा।

पति-पत्नी संसार पथ पर चलने वाले जीवन रथ के दो पहिए हैं, जिनमें एक की स्थिति पर दोनों की गति, प्रगति निर्भर करती है। दोनों का चुनाव जितना ठीक होगा दाम्पत्य जीवन उतना ही सुखद, स्वर्गीय, उन्नत एवं प्रगतिशील बनेगा। दोनों में से एक भी अयोग्य, कमजोर हो तो दाम्पत्य जीवन का रथ डगमगाने लगेगा और पता नहीं, वह कहीं भी दुर्घटनाग्रस्त होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा अथवा मार्ग में ही अटक जायगा। इससे न केवल पति-पत्नी वरन् परिवार, समाज के जीवन में गतिरोध पैदा होगा। क्योंकि दाम्पत्य जीवन पर ही परिवार का भवन खड़ा होता है और परिवारों से ही समाज बनता है। इसलिए पति-पत्नी का चुनाव एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

बड़ी-बड़ी आशा, आकांक्षाओं के साथ नवयुवक और नवयुवतियाँ दाम्पत्य-जीवन के सूत्र में बँधते हैं। बड़ी-बड़ी रस्में अदा होती हैं। विवाह के रूप में बड़ा समारोह मनाया जाता है। गाजे-बाजे, रोशनी, दावतें, लेन-देन, बरात, जुलूस आदि के साथ दो प्राणी विवाह-सूत्र में बँधते हैं। परस्पर के नये आकर्षण से प्रारम्भिक दिनों दोनों का जीवन बड़ा सुखद बीतता है किन्तु यह स्थिति अधिक दिन नहीं रहती और दाम्पत्य-जीवन कलह, अशांति, द्वेष, असंतोष की आग में जलने लगता है।

परिपाटी के तौर पर जो प्रतिज्ञायें धर्म पुरोहित उच्चारण कर देते हैं, उनका व्यावहारिक जीवन में नाम भी नहीं रहता। दाम्पत्य-जीवन एक दूसरे के लिए बोझा बन जाता है। इसका कोई बाह्य कारण नहीं। अपितु पति-पत्नी दोनों के ही परस्पर व्यवहार, आचरणों में विकृति पैदा होने पर ही अक्सर ऐसा होता है। यदि इन छोटी-छोटी बातों में सुधार कर लिया जाय तो दाम्पत्य-जीवन परस्पर सुख-शांति, आनन्द का केन्द्र बन जाय।

दाम्पत्य जीवन की सुख, समृद्धि एवं शान्ति के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि व्यवहार में एक दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखें। एक मोटा-सा सिद्धांत है कि मनुष्य दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करे जैसा वह स्वयं के लिए चाहता है। पति-पत्नी भी सदैव एक दूसरे की भावनाओं, विश्वासों का ध्यान रखें। किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग अपनी भावना, विचारों में इतना खो जाते हैं कि दूसरे के विचारों, भावों का कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता। व उन्हें निर्ममता के साथ कुचल भी देते हैं। इस तरह दोनों की एकता, सहयोग के स्थान पर असंतोष का उदय हो जाता है। अपनी इच्छानुसार पत्नी को जबरदस्ती किसी काम के लिए मजबूर करना, उसकी इच्छा न होते हुए भी दबाव डालना पति के प्रति पत्नी के मन में असंतोष की आग पैदा करना है। इसी तरह कई स्त्रियाँ अपने पति के स्वभाव, रुचि, आदेशों का ध्यान न रखकर अपनी छोटी-छोटी बातों में ही उन्हें उलझाये रखना चाहती हैं। फलतः उन लोगों को विवाह एक बोझा-सा लगने लगता है। दाम्पत्य जीवन के प्रति उन्हें घृणा, असंतोष होने लगता है और यही असंतोष उनके परस्पर के व्यवहार में प्रकट होकर दाम्पत्य जीवन को विषाक्त बना देता है। यदि किसी की मानसिक स्थिति ठीक न हो तो परस्पर लड़ाई-झगड़े होने लगते हैं। एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते रहते हैं।

पति-पत्नी का सदैव एक दूसरे के भावों, विचारों एवं स्वतंत्र अस्तित्व का ध्यान रखकर व्यवहार करना, दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। इसी के अभाव में आजकल दाम्पत्य जीवन एक अशांति का केन्द्र बन गया है। पति की इच्छा न होते हुए, साथ ही आर्थिक स्थिति भी उपयुक्त न होने पर स्त्रियों की बड़े-बड़े मूल्य की साड़ियाँ, सौन्दर्य प्रसाधन, सिनेमा आदि की माँग पतियों के लिए असंतोष का कारण बन जाती है। इसी तरह पति का स्वेच्छाचार भी दाम्पत्य जीवन की अशांति के लिए कम जिम्मेदार नहीं है। यही कारण है कि कोई घर ऐसा नहीं दीखता जहाँ स्त्री-पुरुषों में आपस में नाराजगी-असंतोष दिखाई न देता हो।

परस्पर एक दूसरे की भावनाओं और स्वतंत्रता का ध्यान न रखने में एक मुख्य कारण अशिक्षा भी है। यह कमी अधिकतर स्त्रियों में पाई जाती है। पर्याप्त शिक्षा-दीक्षा के अभाव के कारण भी मानसिक विकास नहीं होता, जिसके कारण एक दूसरे की भावनाओं, व्यावहारिक जीवन की बातों के बारे में मनुष्य को जानकारी नहीं मिलती। इसके निवारण के लिए प्रत्येक पुरुष को कुछ न कुछ समय निकाल पत्नी को पढ़ाने, उसका ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जीवन-साथी का समकक्ष होना आवश्यक है। अपने साथी की ज्ञानवृद्धि, विकास एवं कल्याण के लिए भी अन्य आवश्यक कार्यों की तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ही प्रयत्न करना आवश्यक है, तभी वह जीवन में सहयोग, एकता, सामंजस्य का आधार बन सकती है किन्तु देखा जाता है अधिकांश लोग इसमें दिलचस्पी नहीं लेते। मन, बुद्धि के विकास के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सुखी और समृद्ध नहीं बन सकता।

योग्य होकर भी, एक दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए कभी-कभी स्वभावत: ऐसा व्यवहार हो जाता है जो पति-पत्नी में से एक-दूसरे को अखरने लगता है। ऐसी स्थिति में किसी भी एक पक्ष को क्षमाशीलता, सहिष्णुता का परिचय देकर विक्षोभ उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न करना आवश्यक है। साथ ही दूसरे पक्ष को भी अपनी भूल को महसूस कर क्षमा माँग कर परस्पर मनों को साफ करना चाहिए, अन्यथा परस्पर मनोमालिन्य बढ़ जाता है और दाम्पत्य-जीवन में कटुता पैदा हो जाती है। महात्मा सुकरात, टालस्टाय, संत तुकाराम जैसे महापुरुषों ने अपनी फूहड़ और लड़ाका स्त्रियों को सहनशीलता, क्षमा, उदारता के साथ जीवन में निबाहा था।

स्त्रियाँ तो बेचारी सदा से ही अपने पतियों के कटु स्वभाव. व्यवहार, निर्दयता, स्वेच्छाचार को भी सहन करके दाम्पत्य-जीवन की गाड़ी को चलाने में योग देती रही हैं। भारतीय नारी का महान् आदर्श इसी त्याग, सहिष्णुता और पतिव्रत-धर्म से निर्मित रहा है। पति-पत्नी में से जब किसी एक में भी कोई स्वाभाविक कमजोरी दीखती हो तो उसका सहनशीलता के द्वारा निराकरण करके गृहस्थ की गाड़ी को चलाने में पूरा-पूरा प्रयत्न करते रहना आवश्यक है।

पति-पत्नी दोनों का जीवन एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों में अभिन्नता है, एक्य है। भारतीय संस्कृति में तो पुरुष और स्त्री को आधा-आधा अंग मानकर एक शरीर की व्याख्या की गई है, जिसमें पुरुष को अर्द्धनारीश्वर तथा स्त्री को अर्द्धांगिनी कहा गया है। दाम्पत्य जीवन स्त्री-पुरुष की अनन्यता का गठबंधन है। अत: परस्पर किसी तरह का दुराव, छिपाव, दिखावा, बनावटी व्यवहार करना, परस्पर अविश्वास एक दूसरे के प्रति घृणा को जन्म देता है और इसी से दाम्पत्य-जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अपनी प्रत्येक चेष्टा में स्पष्टता, दुराव-छिपाव का अभाव रखकर अभिन्नता प्रकट करते हुए पति-पत्नी को एक-दूसरे का विश्वास, मानसिक एकता प्राप्त करनी चाहिए। वैसे जहाँ तक बने प्रत्येक व्यक्ति को अपने बाह्य जीवन में भी रहस्य, छल, बनाव, दिखावे से बचना चाहिए। क्योंकि इस बाहरी व्यवहार को देखकर भी पति-पत्नी एक दूसरे पर संदेह करने लगते हैं। वे सोचते हैं—"हो सकता है यही व्यवहार हमसे किया जा रहा हो।" और संदेह की भूल-भुलैया में ही अनेकों दम्पत्तियों का जीवन क्लिष्ट, उलझा हुआ, दुरूह बन जाता है।

पति-पत्नी दोनों अपने मानसिक क्षेत्र में बहुत बड़ा कुटुम्ब होते हैं। अपनी मानसिक आवश्यकताओं के आधार पर पति-पत्नी से ही विभिन्न समय मे, सलाहकार की तरह मंत्री की-सी योग्यता, भोजन करते समय माँ की वात्सल्यता, आत्म-सेवा के लिए आज्ञापालक नौकर, जीवन-पथ में एक अभिन्न मित्र, गृहिणी, रमणी आदि की आकांक्षा रखता है। इसी तरह पत्नी भी पति से जीवन-निर्वाह के क्षेत्र में माँ-बाप, दु:ख-दर्द में अभिन्न साथी, कल्याण और उन्नति के लिए सद्गुरु, कामनाओं की तृप्ति के लिए भर्तार, सुरक्षा-संरक्षण के लिए भाई आदि के कर्तव्यपूर्ति की आशा रखती है। जब परस्पर इन मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तो एक दूसर में असंतोष, अशांति पैदा हो जाती है।

एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए, एक दूसरे की योग्यता वृद्धि, खासकर पुरुषों द्वारा स्त्रियों के ज्ञानवर्द्धन में योग देकर परस्पर क्षमाशीलता, उदारता, सहिष्णुता, अभिन्नता, एक दूसरे की मानसिक तृप्ति करते हुए दाम्पत्य जीवन को सुखी, समृद्ध बनाया जा सकता है। अधिकतर इसके लिए पुरुषों को ही अधिक प्रयत्न करना आवश्यक है। वे अपने प्रयत्न और व्यवहार से गृहस्थ-जीवन की काया पलट कर सकते हैं। अपने सुधार के साथ ही स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा, ज्ञानवृद्धि, उनके कल्याण के लिए हार्दिक प्रयत्न करेंगे दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाया जा सकता है। धैर्य और विवेक के साथ एक दूसरे को समझते हुए अपने स्वभाव, व्यवहार में परिवर्तन करके ही दाम्पत्य-जीवन को सुख-शांतिपूर्ण बनाया जा सकता है।

पति-पत्नी की परस्पर आलोचना दाम्पत्य-जीवन के मधुर संबंधों में खटाई पैदा कर देती है। इससे एक दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी स्त्री की बात-बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन-सहन, वस्त्र, ओढ़ने-पहनने, बोलचाल आदि तक में नुक्ताचीनी करते है। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की उपस्थिति उन्हें बोझा-सी लगती है और वे उनकी उपेक्षा तक करने लग जाती हैं।

स्त्रियाँ सदैव यह चाहती है कि पति उनके काम, रहन-सहन आदि की प्रशंसा करें। वस्तुत: पति के मुँह से निकला हुआ प्रशंसा का एक शब्द पत्नी को वह प्रसन्नता प्रदान करता है जो किसी बाह्य साधन, वस्तु से उपलब्ध नहीं हो सकती। पति की प्रशंसा पाकर स्त्री अपनत्व तक भी भूल जाती है। दाम्पत्य-जीवन में जो परस्पर प्रशंसा करते नहीं अघाते वे सुखी, संतुष्ट और प्रसन्न रहते हैं।

जिन स्त्रियों को पतियों की कटु आलोचना सुननी पड़ती है वे सदैव यह चाहती है कि कब यह यहाँ से हटें और पति की अनुपस्थिति में वह अन्य माध्यमों से अपने दबे हुए भावों की तृप्ति करती है। सखियों के साथ गप-शप लड़ाती है। तरह-तरह के बनाव, शृंगार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके बाजार में निकलती हैं और यहाँ तक कि कई तो पर-पुरुषों की प्रशंसापात्र बनकर अपने भावों को तृप्त करने का भी प्रयत्न करती हैं जो प्रेम और प्रशंसा उसे पति से मिलने चाहिए थे, वह उन्हें अन्यत्र ढूँढ़ने का प्रयत्न करती है। कई स्त्रियाँ अन्य मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं अथवा क्रोधी, चिड़चिड़े स्वभाव की झगड़ालू बन जाती हैं। घर उन्हें सूना-सूना और उजड़ा हुआ-सा लगता है। जहाँ स्त्री को पति की प्रेमयुक्त प्रशंसा के स्थान पर कटु आलोचनाएँ सुननी पड़ती हैं, वहाँ सहज प्रेम तो धीरे-धीरे समाप्त हो ही जाता है। पतिगृह में नारी के लिए जो आकर्षण, प्रसन्नता और उल्लास का वातावरण होना चाहिए वह निराशा, खिन्नता, रुखाई और श्मशानवत् नीरवता में बदल जाता है, जहाँ सद्भावना, प्रेम, आत्मीयता के जीवन से रहित पति-पत्नी के जड़ शरीर हिलते-डुलते नजर आते हैं।

इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा, आलोचना करना भी इतना ही विषैला है। पुरुषों को अपने काम से थक कर आने पर घर में प्रेम एवं उल्लास का उमड़ता हुआ समुद्र लहराता मिलना चाहिए, जिसमें उनकी दिनभर की थकान, क्लांति, परेशानी धुल जाय। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु आलोचना, व्यंग्य-वाण, बच्चों की धर-पटक, हाय-हल्ले का सामना करना पड़े तो उस व्यक्ति की क्या हालत होगी, भुक्तभोगी इसका सहज ही अनुमान लगा सकते हैं।

अच्छे-अच्छों का धैर्य उस समय डिग जाता है जब पत्नी के कटु-कर्कश व्यवहार का सामना पुरुष को लगातार करना पड़ता है। फ्रांस का सम्राट नेपोलियन तृतीय अपनी पत्नी की आलोचना और रुखाई से तंग आकर वेश्याओं के यहाँ जाने लगा था। उसने अंत में एक स्त्री से भी अपना संबंध बना लिया था। लिकन जैसा महापुरुष अपने अच्छे स्वभाव और सद्गुणों के बल पर दाम्पत्य-जीवन को काफी समय तक निभाता रहा किन्तु अंत में उसे अलग होना पड़ा। महान् विचारक टालस्टाय अपनी स्त्री के कर्कश स्वभाव को सहते रहे किन्तु अंत में बयासी वर्ष की उम्र में परेशान होकर घर छोड़कर चले गये और मार्ग में ही निमोनिया के प्रभाव से उनकी मृत्यु हो गई।

इस तरह के अनेकों उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। पत्नी की कर्कशता से तंग आकर व्यक्ति यदि आदर्शवादी होता है तो वह दार्शनिक विचार तथा क्रियाओं की ओर मुड़ जाता है-जैसे सुकरात, भर्तृहरि आदि। इसके विपरीत साधारण मानसिक शक्ति और सामान्य बुद्धि वाला हुआ तो वह वेश्यागामी, शराबी, व्यसनी बन जाता है। जिन लोगों को घर में स्त्रियों का प्रेम, सद्भाव नहीं मिलता वे अन्यत्र उस प्रेम की पूर्ति करना चाहते हैं अथवा नशेबाजी आदि व्यसनों में अपनी परेशानी भुलाना चाहते हैं। घर के कटुतापूर्ण, रुक्ष, आलोचना प्रधान वातावरण के कारण कितने ही लोगों का जीवन अपराधी बन जाता है।

पति-पत्नी का एक समान संबंध है, जिसमें न कोई छोटा, न कोई बड़ा है। जीवन-यात्रा के पथ पर पति-पत्नी परस्पर अभिन्न-हृदय साथियों की तरह होते हैं। दोनों का अपने-अपने स्थान पर समान महत्त्व है। पुरुष जीवन-क्षेत्र में पुरुषार्थ और श्रम के सहारे प्रगति का हल चलाता है तो नारी उसमें नव-जीवन, नव-चेतना, नव-सृजन के बीज वपन करती है। पुरुष जीवन-रथ का सारथी है तो नारी रथ की धुरी। पुरुष जीवन-रथ में जूझता है तो नारी उसकी रसद व्यवस्था और साधना-सुविधाओं की सुरक्षा रखती है। किन्तु अज्ञान और अभिमानवश पुरुष नारी के इस सम्मान का पालन नहीं करता। दाम्पत्य-जीवन में विषवृद्धि का एक कारण परस्पर असम्मान और आदर-भावनाओं का अभाव भी है।

पतिव्रत धर्म की गरिमा

शास्त्रों में पतिव्रत धर्म की महिमा का मुक्त कंठ से वर्णन किया गया है और बताया गया है कि पतिपरायण नारी वह सद्गति सहज में प्राप्त कर लेती है जो योगी-यती एवं ज्ञानी-ध्यानी बड़ी कठिनाइयाँ सहते हुए प्राप्त करते हैं। पतिव्रता नारियों के गौरवमय चरित्रों से भारतीय इतिहास का पन्ना-पन्ना भरा पड़ा है।

अंधे पति से अपनी स्थिति अच्छी रहने देने की अनिच्छुक धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने आँखों में आजीवन पट्टी बाँधे रहने का व्रत लिया और उसे सदैव निभाया। शैव्या ने हरिश्चन्द्र के साथ, दमयंती ने नल के साथ, सीता ने राम के साथ कठिन समय आने पर अपने त्याग और प्रेम का अद्भुत परिचय दिया। सत्यवती ने सत्यवान के साथ, सुकन्या ने वृद्ध च्यवन के साथ कितना उत्कृष्ट संबंध निबाहा ? अरुंधती, अनुसूइया, बेहुला, शकुंतला, भारती आदि कितनी ही नारियों के ऐसे दिव्य चरित्र मिलते हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि पतिपरायणता को इस देश का नारी समाज अत्यंत उच्च भावनाओं के साथ निबाहता रहा है।

पत्नियों के साथ परलोक में भी रहने की भावना से प्रेरित होकर उनके मृत शरीरों के साथ जलकर कितनी ही नारियाँ इस बात का परिचय देती रही हैं कि उनने आदर्श के लिए चिता में जीवित जलने का मर्मांतक कष्ट सहकर भी भावनाओं को ऊँचा उठाये रहना उचित समझा। पतियों की शान पर रत्ती भर भी आँच न आने देने और पतिव्रत धर्म की रक्षा के लिए चित्तौड़ की रानियों ने जो अपूर्व बलिदान का परिचय दिया, उसकी महिमा किन शब्दों में कही जाय ? अभी भी स्थान-स्थान पर सतियों के मंदिर और स्मारक जहाँ-तहाँ देखने को मिलते हैं, इससे प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल में भारतीय नारी ने अपने आदर्शवाद की कितने कष्ट सहकर भी रक्षा की है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पतिव्रत धर्म को एक योग साधन माना गया है। उसका अवलंबन करने से नारी को आध्यात्मिक उत्कर्ष, श्रेष्ठ सद्गति का प्राप्त होना स्वाभाविक है। आत्मसमर्पण एक उच्चस्तरीय साधना है। भगवान को भक्त जब अपना समर्पण करता है तो वह अपने 'अहम्' को समाप्त कर देता है और स्वतन्त्र इच्छाओं का परित्याग कर भगवान की इच्छा को अपनी इच्छा बना लेता है। इस प्रकार द्वैत को मिटाने और अद्वैत को प्राप्त करने का साधन बन जाता है। तृष्णा, अहंता, कामना, लोभ, मोह, मान और स्वार्थ की समाप्ति आत्म-समर्पण के साथ ही होती है और साधक को वह मनोभूमि प्राप्त होती है, जिसमें भक्तिमार्ग की सारी कठिनाइयों से सहज ही छुटकारा मिल जाता है। गीता में आत्म-समर्पण योग को साधना मार्ग का मुकुटमणि कहा है। योगी अरविंद तथा अन्य अनेक तत्त्वदर्शियों ने इसी माध्यम से आत्मोत्कर्ष का प्रयास किया और उसे उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए वैसा ही पाया भी जैसा कि शास्त्रकारों ने वर्णन किया है।

भगवान की उपासना उनका कोई भी रूप मानकर की जा सकती है। पौधों में तुलसी, वृक्षों में पीपल, नदियों में गंगा, पत्थरों में शालिग्राम भगवान का प्रतीक मानकर पूजे जाते हैं। मंदिर में देव प्रतिमायें पाषाण एवं धातुओं की होती हैं। उनमें श्रद्धा विश्वास का आरोपण कर जब यह आस्था जमा ली जाती है कि यह भगवान् हैं तो उसी भावना की प्रतिध्वनि उन्हीं मान्य स्वरूपों से टकरा कर लौटती है और वही फल मिल जाता है जो साक्षात् भगवान की भक्ति करने पर उसके प्रत्यक्ष अनुग्रह द्वारा प्राप्त होता है। पतिव्रत धर्म को पालन करने में भी यही प्रयोजन सिद्ध होता है। पति को भगवान मानकर साधना करने में कोई अड़चन नहीं। जब पत्थर, नदी, वृक्ष, पौधों को भगवान माना जा सकता है और उनकी पूजा की जा सकती है तो मनुष्य शरीरधारी आत्मा के प्रति वैसी मान्यता बनाने में क्या कठिनाई हो सकती है ? योग साधना के प्रथम चरण में गुरुभक्ति को ईश्वर भक्ति का प्रारम्भ माना जाता है। गुरु को आत्मसमर्पण करके शिष्य ईश्वर परायणता का भी अभ्यास करता है और जब उसमें निष्ठा जम जाती है तब उसी का विकसित स्वरूप परमात्मा में आत्मा का लय करने देने का निमित्त बन जाता है। तात्पर्य इतना ही है कि मनुष्य को भी भगवान का स्वरूप मानकर उसके माध्यम से आत्मसमर्पण का अभ्यास किया जा सकता है और योग साधन का लक्ष्य प्राप्त करने में इस सरल माध्यम से आगे बढ़ा जा सकता है।

भारतीय नारियाँ इसी विचार से पतिव्रत धर्म को आत्म-कल्याण की भावना मानकर उसे अपनाती रही हैं। पति की दुर्बलताओं और त्रुटियों की उनने उपेक्षा की है। अच्छी भावनाओं की उत्कृष्टता बनी रहना तभी संभव है जब साधक अपने इष्ट के दोष, दुर्गुण एवं दुर्बलताओं की उपेक्षा करता हुआ अपने कर्तव्य एवं सद्भाव में रत्ती भर भी कमी न आने दे। पतिव्रता यही तो करती है। पति को अपना सर्वस्व मानकर उसकी इच्छानुगामिनी कोई नारी जब उसे आत्मिक प्रगति का, आत्म-समर्पण साधना का माध्यम समझती हुई एक भावुक भक्त की भूमिका में उतरती है तो उसके लिए आत्म-कल्याण का लक्ष्य प्राप्त कर लेना कुछ भी कठिन नहीं रह जाता।

आत्मिक प्रगति के साथ-साथ पतिव्रत धर्म के पालन में लौकिक प्रगति की असंख्य संभावनाएँ निहित रहती हैं। संघर्ष तभी होता है जब दोनों के मन में भिन्नता रहती है। एक की राह पूर्व, दूसरे की पश्चिम होती है तभी मन-मुटाव का अवसर आता है। यदि पति-पत्नी में से एक दूसरे का इच्छानुवर्ती बन जाय तो फिर संघर्ष का कोई कारण न रहेगा। सुधार की दृष्टि से प्रेमपूर्वक भी प्रयत्न किये जा सकते हैं, कुमार्गगामी को सन्मार्ग पर लाने के लिए प्रेम और त्याग की अपनत्व भरी लड़ाई भी की जा सकती है। इस प्रकार भी हृदय परिवर्तन हो सकता है। सुधार के लिए कटु संघर्ष अनिवार्य नहीं। पति-पत्नी के बीच कोई मतभेद हो तो उसे सुलझाने में बिना संघर्ष किये ही अपनी सद्भावना शक्ति से भी बहुत कुछ प्रयोजन सिद्ध हो सकता है। त्याग से बढ़कर और कोई शक्ति नहीं, प्रेम से बढ़कर और कोई शस्त्र नहीं। इस शक्तिशाली शस्त्र को अपनाकर कोई भावनाशील पतिव्रता नारी अपने कुमार्गगामी पति को भी सन्मार्ग पर ला सकती है और यदि न भी ला सके तो वह अपना कर्तव्य करती हुई आत्मसंतोष कर ही सकती है। संघर्ष को तो बचा ही सकती है।

पति सुधरा हुआ हो तब तो कहना ही क्या है पर यदि उसका स्तर घटिया हो, विचार, चरित्र एवं व्यवहार की दृष्टि से वह उपयुक्त स्थिति से नीचा हो तब भी उसे निबाहने की भावना रखने वाली नारी पारिवारिक कलह को बचा सकती है और दाम्पत्य जीवन को क्लेश-द्वेष की आग में जलने से तो सुरक्षित रख ही सकती है। पारिवारिक शांति का भौतिक जीवन में इतना बड़ा स्थान है कि उस पर धन, समृद्धि एवं अन्य अनेक सुख-सुविधाओं को निछावर किया जा सकता है। संतोषी स्वभाव की सहिष्णु परिस्थितियों के अनुरूप अपने को ढालने वाली, कर्तव्यपरायण एवं हँसमुख विनम्र स्वभाव की स्त्री को 'गृहलक्ष्मी' कहते हैं। जिस घर में ऐसी देवियाँ रहती हैं वहाँ सुख-शान्ति को भी विवश होकर रहना पड़ता है।

सत्यवादिता के एक ही सद्गुण को अपना लेने से छोटे-छोटे अनेकों सद्गुण मनुष्य में स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार पतिव्रत धर्म अपना लेने पर नारी में वे अनेकों विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण वह पति परिवार में साम्राज्ञी बनी रहे। महाभारत में द्रोपदी-सत्यभामा संवाद प्रसिद्ध है। उस प्रसंग में द्रौपदी ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यही बताया है कि वह काली-कलूटी होते हुए भी अपने पतियों के हृदय पर अपने पतिव्रत एवं श्रेष्ठ स्वभाव के कारण किस प्रकार शासन करती है। उस प्रयोग को कोई भी स्त्री कर सकती है और बुरे से बुरे पारिवारिक वातावरण को अपने सद्गुणों के आधार पर स्वर्गीय सुख-शांति का केन्द्र बना सकती है। जहाँ पतिव्रत की प्रगाढ़ आस्था होगी, आत्मसमर्पण का भाव रहेगा वहाँ भावनागत कोमलता के कारण पति को सुखी और संतुष्ट बनाने की आकांक्षा की जायेगी और उस आकांक्षा की पूर्ति के लिए अपने गुण, कर्म, स्वभाव को उसी ढाँचे में ढालना पड़ेगा जिससे अभीष्ट परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकें। अपने सद्गुणों से ही तो पति तथा उसके परिवार को सन्तुष्ट रखा जाता है। पतिव्रता नारी को अनिवार्यत: अपनी स्वेच्छाचारिता त्याग कर अपनी इच्छाओं एवं स्वभाव को नरम बनाकर अनुकूलता उत्पन्न करके कुछ बदलना पड़ता है। पतिव्रता में ऐसा परिवर्तन अनायास ही होता भी है।

पर-पुरुष से कुकर्म न करने का नाम ही पतिव्रत नहीं है। यह तो उसका एक छोटा-सा अंग-मात्र है। वस्तुत: आत्म-समर्पण की भावना का नाम ही पतिव्रत धर्म है। उसका स्तर ईश्वर भक्ति जैसा होता है। इस आध्यात्मिक साधना को अपनाने वाली नारी अहंताजन्य अगणित पाप-दोषों से मुक्त होकर द्वैत की मंजिल पार करती हुई अद्वैत की, ब्रह्म निर्माण की जीवन स्थिति प्राप्त करती है और अपने सद्गुणों के कारण जिस घर में रहती है वहाँ स्वर्गीय सुख-शांति का वातावरण प्रस्तुत कर देती है। पतिव्रत का यह एक ही लाभ भौतिक दृष्टि से इतना बड़ा है कि उसे अन्य सफलताओं एवं संपन्नताओं से कहीं अधिक बढ़-चढ़ कर माना जायगा। दो आत्माएँ एक बनकर जब जीवन-यापन करती हैं तो उनका बल, साहस एवं अंतस्तल इतना अधिक विकसित होने लगता है, जिसके माध्यम से अनेक कठिनाइयों से लड़ते हुए प्रगति पथ पर बढ़ते चलना और शक्तिमय, सार्थक जीवनयापन कर सकना सहज ही संभव हो जाता है। प्रगतिशील लोगों के जीवन में उनकी धर्मपत्नियों का भारी सहयोग रहा है। यदि उन्हें ऐसी नारी न मिली होती जो मनोबल बढ़ाने और जीवन को व्यवस्थित रखने में सहायता कर सके तो संभवत: वे गिरी स्थिति में ही गुजर करते और महापुरुष एवं प्रगतिशील बनने के लाभ से वंचित ही रह जाते। पतिव्रता नारी किसी पति के लिए दैवी वरदान ही कही जा सकती है।

सुसंतति का मूल आधार दाम्पत्ति प्रेम है। बच्चे को विकसित, सुशिक्षित एवं सुसंस्कारी बनाने के लिए जितने भी उपाय हो सकते हैं, उन सबसे अधिक प्रभावशाली मार्ग यह है कि पति-पत्नी में आंतरिक प्रेम रहे। रज-वीर्य के मिलने से बच्चे का शरीर बनता है पर उसका अंत:करण माता-पिता के परस्पर प्रेम और सद्भाव पर निर्भर रहता है। जिन पति-पत्नी के बीच अगाध प्रेम होगा उसके गर्भोत्पादक परमाणु एक ही विद्युत धारा से प्रभावित होकर अनुकूलता की दिशा में गतिशील रहेंगे। गर्भ में बालक के शरीर की वृद्धि माता के रस व रक्त से होती है पर चेतना एवं भावना-संस्थान माता-पिता के परस्पर प्रेमभाव की विद्युत धाराओं के आधार पर ही विकसित होता है, उन दोनों के बीच यदि द्वेष, घृणा, मनोमालिन्य रहे, असंतोष के भाव रहें तो उसकी प्रतिक्रिया गर्भस्थ बालक के मानसिक विकास पर अत्यन्त घातक होती है। माता जैसी उद्विग्न, असंतुष्ट रहती है उसी के अनुरूप बालक का मन विकृतियों एवं मानसिक ग्रन्थियों से भर जाता है और बड़ा होने पर वह अवज्ञाकारी, उद्दंड, अविवेकी, असंयमी, आसुरी प्रकृति का होता है। आज ऐसे ही दुर्गुणी बालकों का बाहुल्य हो रहा है। उसका प्रमुख कारण पति-पत्नी के बीच रहने वाला दुर्भाव होता है।

वर्णशंकर बालकों को हेय इसलिए माना गया है कि गुप्त व्यभिचार से उनका जन्म होने के कारण माता-पिता उसके आगमन को अशुभ मानते हैं, छिपाते हैं, पछताते हैं और गर्भस्थ आत्मा को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा न भी करें तो भी उस नव-निर्माण से उन्हें कोई प्रसन्नता नहीं होती। उस स्थिति में माता-पिता के बीच परस्पर दुर्भाव ही बढ़ते रहते हैं। इसका प्रभाव बालक की मनोभूमि पर पड़ता है और वह बड़ा होने पर एक असभ्य नागरिक बनता है। विदेशों में कुमारी माताओं के गर्भ से उत्पन्न जारज संतानों के पालन का राज्य की ओर से प्रबंध है। हर वर्ष लाखों बच्चे इस प्रकार उत्पन्न होते और पलते हैं। पर देखा यह जाता है कि वे मानसिक दृष्टि से विकसित नहीं होते, ऊँची शिक्षा मिलने पर भी वे घटिया कामों के योग्य ही बन पाते हैं। यही बात उन बालकों के बारे में लागू होती है पर माता-पिता के मनोमालिन्य के कारण मानसिक दृष्टि से अविकसित ही रह जाते हैं। इन्हें स्पष्टत: वर्णशंकर नहीं कहा जा सकता पर लगभग वैसी ही मनोभूमि माता-पिता की रहने से बच्चे भी उत्कृष्ट भावना स्तर से वंचित रह जाते हैं। हमारी आगामी पीढ़ियों में नैतिकता, मानवता, चरित्र एवं आदर्शवादिता के तत्त्व क्रमश: घटते चले जा रहे हैं। इसका एक बहुत बड़ा कारण दाम्पत्य जीवन में आत्मीयता की प्रगाढ़ता न होना भी है ही।

पतिव्रत धर्म सुसंतति को जन्म देने के लिए नितांत आवश्यक है। बालकों से ही किसी परिवार का भविष्य उज्ज्वल बनता है। अपने वंश, कुल और परिवार का गौरव बढ़ाने वाले बालक वहीं जन्मेंगे, जहाँ माता ने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पतिव्रत धर्म को उचित महत्त्व दिया होगा। यह तत्त्व जहाँ जितना ही कम होगा वहाँ उसी अनुपात से बालकों के शरीर और मन में अगणित विकृतियाँ भरी रहेंगी। जो अभिभावक अपनी संतान में मनोवांछित स्वास्थ्य, सौन्दर्य एवं सद्गुण देखना चाहते हैं उन्हें उसकी सबसे बड़ी तैयारी यही करनी चाहिए कि पति-पत्नी के बीच प्रगाढ़ प्रेम और विश्वास बना रहे।

पत्नीव्रत-धर्म की आवश्यकता

नारी के लिए जो महत्त्व पतिव्रत का है वही ज्यों का त्यों नर के लिए पत्नीव्रत का है। जिस प्रकार नारी पतिव्रत धर्म का अवलंबन करके अपने आत्म-कल्याण, पारिवारिक स्वर्ग एवं सुसंतति की संभावना उत्पन्न करती है, उसी प्रकार पुरुष पत्नीव्रत धर्म का पालन करते हुए इन्हीं विभूतियों एवं सिद्धियों को उपलब्ध करता है।

पतिव्रत धर्म और पत्नीव्रत धर्म एक दूसरे के पूरक हैं। नर और नारी की रचना इस प्रकार हुई है कि एक दूसरे की अपूर्णताओं को पूर्ण करके पारस्परिक सहयोग से एक सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण करें। पत्नी को अर्द्धांगिनी कहा गया है, यही बात पति के लिए भी कही जा सकती है। दोनों का सम्मिलित स्वरूप ही एक परिपूर्ण इकाई बनता है। दो हाथ, दो पैर, दो आँखें, दो नथुने, दो कान, दो फेंफड़े मिलकर जिस प्रकार एक जोड़ा बनता है, उसी प्रकार नर-नारी भी एक सर्वांगपूर्ण जीवन की आवश्यकता पूरी करते हैं। आँख, नाक, कान, हाथ, पाँव, नथुने, फेंफड़े आदि युग्मों में से एक यदि नष्ट हो जाय, बीमार, अशक्त, दुर्बल या अव्यवस्थित हो तो शरीर में उपहासास्पद कुरूपता बढ़ती है। लोग उसे काना, भेंडा, लँगड़ा, टोंटा, नकटा आदि कहकर चिढ़ाते हैं। बात वास्तविक होती है फिर भी उसमें अपमान अनुभव किया जाता है, क्योंकि अपूर्णता अपमान की बात होती भी है। मानव जीवन भी गाड़ी के दो पहियों की तरह पति-पत्नी रूपी दो संतुलित माध्यमों पर ठीक प्रकार लुढ़कता है। इनका पारस्परिक ताल-मेल न खाता हो तो गाड़ी को कुछ दूर तक घसीट भले ही लिया जाय, उसमें लंबी यात्रा पूरी नहीं हो सकती। पति-पत्नी के बीच यदि संतुलन और सामंजस्य न हो तो किसी भी गृहस्थ का भविष्य अंधकारमय ही बना रहेगा।

जिन्हें सार्वजनिक सेवा या किसी विशेष लक्ष्य से इतनी तन्मयता होती है कि गृहस्थ पालन एवं आजीविका उत्पादन में समय का एक अंश भी बर्बाद न हो ऐसे विशिष्ट मनस्वी लोगों के लिए बिना गृहस्थ बनाये भी काम चल सकता है। वे आजीवन अविवाहित रहना चाहें तो रह भी सकते हैं। जिन्हें कोई शारीरिक या मानसिक रोग है और गृहस्थ के उत्तरदायित्वों को निबाहने में असमर्थ हैं उनके लिए भी अविवाहित रहना ठीक है। पर सामान्य मनुष्य को गृहस्थ बनना ही पड़ता है, इसके बिना उसकी अपूर्णता प्रगति के पक्ष में भारी अड़चन उत्पन्न करती है और उस अड़चन के कारण शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में मनुष्य पिछड़ा हुआ ही पड़ा रहता है।

प्राचीनकाल के इतिहास पर दृष्टि डालने से प्रतीत होता है कि कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी ऋषि गृहस्थ थे। योग-साधन एवं वनवास में रहते समय भी उनकी पत्नियाँ साथ रहती थीं। ब्रह्मचर्य पालन या न पालन मनुष्य की मनोदशा पर निर्भर है। गृहस्थ में भी आवश्यक ब्रह्मचर्य रह सकता है और अविवाहित लोग भी अपना सत्यानाश करते रह सकते हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए गृहस्थ मुनि भी सपत्नीक रहते थे। वशिष्ठ ऋषि के बालकों को विश्वामित्र द्वारा मार डाले जाने की कथा प्रसिद्ध है। लोमश ऋषि के बालक श्रृंगी ऋषि ने अपने पिता के अपमान से क्रुद्ध होकर परीक्षित को शाप दिया था। इस प्रकार की कथाओं का वर्णन यहाँ किया जाय तो प्रायः प्रत्येक ऋषि की धर्मपत्नी और बालकों की सुविस्तृत चर्चा की जा सकती है। पत्नी बच्चों को त्याग कर भाग खड़े होने का वैराग्य तो अवैदिक, अशास्त्रीय और अनैतिक है। यह प्रथा तो बुद्धकाल में पड़ी थी, जिसका वैदिक धर्मानुयायी सदा से विरोध करते चले आ रहे हैं। वानप्रस्थ तो पत्नी समेत होता ही है। संन्यास में पत्नी की रुचि और सुविधा प्रधान रहती है। वह चाहे तो अपने पुत्र-पौत्रों के साथ रहे, चाहे तो पति के साथ परिव्रजा या कुटीचक्र के रूप में उनका सहचरत्व ग्रहण करके वैराग्य धर्म का पालन करती रहे।

देवताओं में से सभी गृहस्थ हैं। ईश्वर के अवतारों में भी अधिकांश ने अपना गृहस्थ बनाया है। ब्रह्मा की पत्नी सावित्री, विष्णु की लक्ष्मी, शंकर की पार्वती, इन्द्र की शची, वृहस्पति की अरुंधती प्रसिद्ध हैं। भगवान राम और कृष्ण जिनका नाम लेकर हम भव-सागर से पार होते हैं, गृहस्थ ही तो थे। ये दाम्पत्य-जीवन की आवश्यकता एवं उपयोगिता को स्वीकार करते थे। उन्होंने मर्यादा पालन के लिए एक सद्गृहस्थ के रूप में ही अपना चरित्र प्रस्तुत किया है। जीवन की सुविधा तो दाम्पत्ति-जीवन में बढ़ती है साथ ही कितने ही जीवन लक्ष्यों की पूर्ति में भी भारी सहायता मिलती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जो सुविधा नारी को नर का सान्निध्य स्वीकार करने में है वही नर के लिए नारी का आश्रय लेने में है। तत्वत: वे दोनों एक दूसरे की अपूर्णताओं को अपनी-अपनी विशेषताओं के द्वारा पूर्ण करते हैं। इनमें से कोई न बड़ा है, न छोटा। न किसी का अधिकार कम है, न अधिक। न किसी का गौरव न्यून है, न अधिक। हाथ, पैर, कान, आँख में से किसे ऊँच कहा जाय, किसे नीचा ? किसे बड़ा माना जाय, किसे छोटा ? गाड़ी के दो पहियों में से किसे महत्त्वपूर्ण माना जाय, किसे महत्त्वहीन ? वस्तुत: दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं, इनमें से किसी को भी तुच्छ नहीं कहा जा सकता। यदि श्रेष्ठता, कनिष्ठता ढूँढ़ी भी जाय तो नारी का पलड़ा ही भारी पड़ता है। बालक को जन्म देने में माता का अनुदान ही अधिक रहता है इसलिए पिता से माता को श्रेष्ठ माना गया है। पति-पत्नी में भी नारी प्रधान है। भगवान् के नाम-युग्मों में पत्नी का नाम पहले है पति का पीछे। लक्ष्मी-नारायण, उमाशंकर, सीताराम, राधेश्याम जैसे नामों में इसी तथ्य का प्रतिपादन होता है। पतिव्रत धर्म पालन करती हुई नारी जिस प्रकार अपने जीवन को सार्थक और संबंधित वातावरण को स्वर्गीय बनाती है, ठीक वही बात पत्नीव्रत धर्म पालन करते हुए पुरुष भी करता है। इसलिए शास्त्रकारों ने पतिव्रत धर्म और पत्नीव्रत धर्म को एक ही न्याय तुला में तौला है और नर-नारी को समान निष्ठा के साथ अपने-अपने इन धर्म-कर्तव्यों का पालन करने का निर्देश किया है। पत्नी को अपने शरीर का आधा अंग मानकर उसे आत्मसात् करने में, उसकी प्रगति, प्रसन्नता एवं सुविधा के लिए अधिकाधिक त्याग-बलिदान करने में पति की सदाशयता उसी प्रकार परखी जाती है, जैसी प्रत्नी की आत्म-समर्पण करते हुए पतिव्रत पालन करने में। वह एकांगी हो तो फलप्रद न होगा, एक पक्ष चाहे तो कर्तव्य भावना में उसे किसी प्रकार निबाहता रह सकता है पर उसका विकास संभव न होगा, विकास तो दूसरे पक्ष के आवश्यक सहयोग पर ही निर्भर है। ताली दोनों हाथों से बजती है। राम का पत्नीव्रत सीता को पतिव्रता बनाये रहा पर मंदोदरी ने रावण को मरते ही विभीषण से पुनर्विवाह कर लिया। यह तथ्य बताते हैं कि सुविकसित सजीव पतिव्रत तभी संभव है, जब पति भी पत्नीव्रत के प्रति वैसा ही निष्ठावान हो जैसी कि सती-साध्वी नारियाँ अपने धर्म-कर्तव्य के प्रति गहन आस्था धारण किये रहती हैं।

पिछले दिनों परिस्थितियों से अनुचित लाभ उठाने की दुष्प्रवृत्ति ने मानव तन में घुस बैठने का जोरों से प्रयत्न किया है, फलस्वरूप जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भयानक प्रवृत्तियों का बोलवाला हो चला है। शिशुओं का पालन और गृह व्यवस्थापिका का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व संभालने के कारण नारी का कार्य-क्षेत्र घर रहा है। घर में रहते हुए बौद्धिक विकास, चातुर्य एवं अनुभव संपादन करने के अवसर कम मिलते हैं। फलत: नारी बौद्धिक दृष्टि से कुछ पिछड़ी रह जाती है। भाग-दौड़ एवं कठिन श्रम जैसा कि नर को करना पड़ता है वैसा नारी को नहीं करना पड़ता फिर प्रसव एवं शिशुपालन का प्रत्यक्ष दबाव उस पर पड़ता है, जिससे स्वास्थ्य भी कुछ न कुछ पिछड़ा ही रहता है। उपार्जन के माध्यम घर से बाहर होते हैं। पुरुष की स्थिति उसे इस कार्य के लिए समर्थ बनाती है इसलिए वह 'कमाऊ' कहलाता है और नारी उससे भी अधिक श्रम करती रहने पर भी 'बिना कमाऊ' रहती है। पुरुष कमाकर लाने पर गर्व करता है और इसके बदले में अपना वर्चस्व एवं अधिकार प्रदर्शित करता है। परिस्थितियों ने बुद्धि, स्वास्थ्य और उपार्जन की दृष्टि से नारी को नर से पिछड़ा रहने दिया है पर उसका अर्थ यह कदापि नहीं कि यह क्षमताएँ उनमें नहीं हैं या कम हैं। जिन देशों में उन्हें समुचित अवसर मिलता है, वहाँ के पुरुषों की तुलना में अपनी उपयोगिता कुछ बढ़-चढ़कर ही सिद्ध करती हैं।

शिक्षा, स्वास्थ्य और उपार्जन के कार्य-क्षेत्र में समाज ने नारी को पीछे छोड़ा और नर को आगे बढ़ाया। इससे पुरुष को अधिक विनम्र, अधिक कृतज्ञ और अधिक उदार होना चाहिए था। नारी ने गृह-क्षेत्र के कठिन उत्तरदायित्व को स्वीकार कर पुरुष को अधिक समर्थ बनने का अवसर दिया तो इसमें उदारता उसी की मानी जायगी। यदि नारी यह स्वीकार न करती, अपने स्वतंत्र विकास पर अड़ जाती तो नर को चूल्हा, चौका और गृह व्यवस्था स्वयं ही सँभालनी पड़ती। कितने ही देशों में पुरुषों को शिशु-पालन, भोजन-छाजन तथा दूसरे गृह कार्य करने पड़ते हैं और नारी उपार्जन तथा अन्य सामाजिक कार्यों को सँभालती हैं। वहाँ उनकी प्रतिभा एवं स्थिति नर से कहीं अच्छी होती है। ऐसे देशों की स्त्रियों के लिए यही उचित है कि वे पुरुषों को धन्यवाद दें कि गृह कार्यक्रम का अपेक्षाकृत कहीं अधिक कठिन कार्य उनने अपने कंधे पर लेकर उन्हें बाहर का सरल और मनोरंजक कार्य करने की छूट दे दी। इसी प्रकार जिन देशों में वह सुविधा पुरुषों को प्राप्त है, वहाँ उनका धर्म है कि नारी की उदारता से प्राप्त हुए इस अवसर का आभार मानें और इसका प्रत्युपकार चुकाने के लिए उचित से भी अधिक सौहार्द्र, सज्जनता एवं उदारता का परिचय दें।

खेद की बात यह है कि नारी की उदारता से प्राप्त सुविधा का प्रत्युपकार चुकाने के स्थान पर उसे हेय और हीन माना जाने लगा और अपनी विकसित सामर्थ्य के अहंकार में नारी को पददलित, गतिबंधित एवं उत्पीड़ित किया गया। ऐसे नियम-उपनियम बनाये गये जिससे उसके मानवीय अधिकार भी छिन गये। पर्दा प्रथा भले ही यवन शासन काल में हिन्दू ललनाओं के सतीत्व की रक्षा के लिए सदुद्देश्य से प्रचलित की गई हो, पीछे तो उसने एक कानून एवं परंपरा का रूप धारण कर लिया। पुरुष की अपेक्षा हेय एवं हीन, असभ्य एवं अविश्वस्त होने की क्रूरता आधी मानवता की नियति पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानवता पर्दा प्रथा के पीछे छिप-छिप कर व्यंग्य करती रहती है। मनुष्य को मनुष्य के आगे मुँह ढँक कर रहना पड़े, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के आगे खुले शब्दों में बोल न सके यह प्रतिबंध मानवीय सभ्यता का इतना बड़ा तिरस्कार है कि हमें अपनी इस अनैतिकता को धर्म-मान्यता घोषित करते हुए शर्म से डूब कर ही मर जाना चाहिए।

भारतीय नारी का वर्तमान पिछड़ापन पुरुष वर्ग की अमानुषिक क्रूरता का प्रतिफल है। इस पिछड़ेपन को उसने ईश्वर प्रदत्त वरदान माना और प्राप्त सुविधा का बुरे से बुरा दुरुपयोग करने का प्रयत्न किया। इसी दुरुपयोग का एक बड़ा प्रमाण यह है कि पतिव्रत धर्म नारी के लिए तो आवश्यक माना जाता है पर पुरुष उस प्रतिबंध से बचा रहना चाहता है और स्वयं इस संबंध में अनैतिकता एवं स्वच्छंदता का आचरण करना चाहता है। कामी, विषयी, लंपटी, दुराचारी और अनेकों अश्लील कुकर्मों में लगे हुए पुरुष भी अपनी पत्नी को सीता, सावित्री से कम नहीं देखना चाहते।

बंधन, उत्पीड़न, त्रास एवं दमन के बल पर नारी को शारीरिक काम-वासनात्मक पतिव्रत निभाने के लिए विवश किया जा सकता है। पर पतिव्रत तो एक योग-साधन है, इसका संबंध श्रद्धा से है। श्रद्धा सज्जन के लिए, सद्गुणों के लिए उत्पन्न होती है, दुराचारी के लिए तो घृणा और द्वेष का उठना ही स्वाभाविक है। साधक भगवान की, देवताओं की उपासना, आराधना इसलिए करते हैं कि अनेकों श्रेष्ठताओं की परिपूर्णता पर विश्वास रहता है। भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस की पूजा कोई दुष्ट-दुरात्मा ही कर सकता है। आमतौर से उनके प्रति सार्वभौम घृणा ही रहती है। उनके न तो कहीं मंदिर देखे जाते हैं और न कोई विवेकशील उनकी आराधना करता है। यही बात सदाचारी एवं दुराचारी पुरुषों के बारे में लागू होती है। जिन पुरुषों ने शारीरिक और मानसिक व्यभिचार के लिए अपने को स्वच्छंद माना है वे पत्नी से उस श्रद्धा की आशा नहीं कर सकते जो पतिव्रत धर्म का मूल है।

मनुष्यों की सद्भावनाएँ एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करती हैं, प्रेम से प्रेम और द्वेष से द्वेष की वृद्धि होती है। बलवान का उत्तरदायित्व दुर्बल से अधिक है। आज पुरुष समर्थ है तो उसका कर्तव्य है कि अपने आचरण और व्यवहार से ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे, जिनके रहते हुए पत्नी पत्नीव्रत के अतिरिक्त और कोई बात सोच ही न सके। स्त्रियाँ स्वभावतः देवी होती हैं। उनके नाक के आगे देवी शर्त लगाने की प्रथा, परंपरा वास्तविकता के आधार पर ही प्रचलित हुई है। भगवती देवी, शकुंतला देवी, राधा देवी, सावित्री देवी, विमला देवी आदि नामों से इस सचाई का ही उद्घोष है कि नारी में दैवी तत्त्व अत्यधिक मात्रा में विद्यमान है। यह मात्रा अक्षुण्ण बनी रहे, सुविकसित हो और परिपुष्ट होती चले इसके लिए यह आवश्यक है कि पुरुष अपना आंतरिक स्वरूप देवताओं जैसा बनाये रहे। भारतीय नारी स्वभावतः पतिव्रता होती हैं। कुलटा तो उसे पुरुषों की दुष्टता बहका कर ही बना देती है। पति परायणता की भावनाएँ विद्रोह न करने लगें, इतना ध्यान रखना पति का काम है। उसे अपने को आदर्श पति के रूप में रखना चाहिए और निष्ठापूर्वक पतिव्रत धर्म का पालन करना चाहिए, जैसे सती-साध्वी नारी पतिव्रत धर्म का पालन करती है। उभय-पक्षीय कर्तव्य पालन से ही वह परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं जिसमें मनुष्य का गृहस्थ जीवन सार्थक हो और परिवार में स्वर्गीय वातावरण का आनन्द लाभ किया जा सके।

दाम्पत्य जीवन आदर्शों पर आधारित रहे

विवाहित जीवन बिताना एक बड़ा उत्तरदायित्व है। इसे उन्हीं को वहन करना चाहिए जो वर-वधू अपने को इस योग्य समझते हों। साथी पर भार बनने की अपेक्षा उसे ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने, आवश्यक सहयोग, सहायता कर सकने में अपने को उपयुक्त समझते हों। जो अपना निज का भार नहीं उठा सकते, उन्हें दूसरे को सुखी-समुन्नत बनाने की जिम्मेदारी अपने सिर पर नहीं लेनी चाहिए। अच्छा हो असमर्थ पक्ष स्वेच्छापूर्वक अविवाहित रहे। उसके स्वजन-संबंधी भी ऐसा ही परामर्श दें। असमर्थों को उकसाया-भड़काया न जाय, यह अनिवार्य न माना जाय कि हर किसी का विवाह होना ही चाहिए, सेना में भर्ती होने वाले सैनिकों की हर प्रकार जाँच-पड़ताल कर ली जाती है। ठीक इसी प्रकार जिनको विवाह का उत्तरदायित्व वहन करना है, उन्हें शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से इतना समर्थ होना चाहिए कि अपना निज का भार तो स्वयं वहन कर ही सकें। साथ ही साथी के लिए आवश्यक सुविधाएँ भी जुटा सकें। जिन्हें पीढ़ियों तक चलने वाला रोग किसी प्रकार लग गया हो उन्हें विवाह का विचार ही छोड़ देना चाहिए। इसे अनिवार्य विषय न बनाया जाय। ऐच्छिक ही रखा जाय। जो इच्छुक हैं उनकी भी जाँच-पड़ताल कर ली जाय कि वे इस भार वहन में समर्थ हैं भी या नहीं।

दोनों पक्षों पर यह उत्तरदायित्व आता है कि साथी की योग्यता, समर्थता, प्रतिभा बढ़ाने में योगदान करें। कन्यादान का तात्पर्य ही यह है कि पिता अपनी भरण-पोषण से लेकर योग्यता बढ़ाने तक की सभी जिम्मेदारियाँ वर के कंधे पर स्थानान्तरण करता है। इस कार्य में ससुराल वालों को भी पूरा सहयोग करना चाहिए। पिता के घर कन्या जैसा स्वास्थ्य और जितनी शिक्षा-प्रतिभा साथ लेकर आई थी, उसमें काफी समय तक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिवृद्धि होनी चाहिए। सोचा तो यह भी जा सकता है कि पिता ने कन्या का जितना विकास किया उतना ही ससुराल वालों को करके अपनी ली हुई जिम्मेदारी पूरी करनी चाहिए। उसे अधिक सुशिक्षित, अधिक स्वस्थ, अधिक सुसंस्कृत बनाने के लिए जो संभव हो शक्ति भर करना चाहिए। वर-वधू को इतना अवसर मिलना चाहिए कि वे एक दूसरे की सहायता किस प्रकार कर सकते हैं, इसकी योजना बनायें और कार्यान्वित करें। इसके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि विवाह के उपरान्त कई वर्ष सन्तानोत्पादन से बचा जाय अन्यथा दम्पति प्रेम, सहयोग, विचार-विनिमय, विनोद, सहयोग आदि के सभी अवसर चले जाते हैं। उसकी शिक्षा प्रगति के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं। गर्भवती एक प्रकार से रोगिणी जैसी स्थिति में जा पहुँचती है। उसे अपनी परिचर्या के लिए दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। ऐसी दशा में वह अपने और दूसरों के लिए भारभूत होकर ही रह सकती है। बच्चे होने के बाद तो उसे इतना अवसर ही नहीं मिलता कि आगे की प्रगति का सिलसिला जारी रख सके। इसलिए विवाह के अवसर पर ही यह प्रतिज्ञा भी लेनी चाहिए कि कम से कम पाँच वर्ष पत्नी का दायित्व समझने और उससे लाभ लेने का अवसर उसे मिले। बच्चे की भारी आवश्यकता पड़ रही हो तो ही उस संदर्भ में विवाह के पाँच वर्ष बाद विचार करना चाहिए। इस संदर्भ में जल्दबाजी करने से कन्यादान का वह उद्देश्य नष्ट होता है जिसमें पिता ने अपनी पुत्री को अधिक समर्थ, अधिक शिक्षित एवं अधिक स्वावलम्बी-सुसंस्कृत बनाने के लिए वर के-ससुराल वालों के सुपुर्द किया था। उस प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए आवश्यक समय मिलना चाहिए। सन्तानोत्पादन के कुचक्र में आरम्भ से ही बाँध देने पर तो समझना चाहिए कि पिता के घर से जो स्वास्थ्य शिक्षा लेकर आई थी, उसमें भी बुरी तरह कटौती आरम्भ हो जायेगी। दाम्पति जीवन को सुखी-समुन्नत, हँसी-खुशी से भरे रहने का जो समय मिला था वह बेकार चला गया। बच्चे तो जन्म भर हो सकते हैं, पर यह अवसर लौटकर फिर कभी नहीं आ सकता, इसलिए आरम्भिक दिनों में पति-पत्नी एक दूसरे का सहयोग करके परस्पर अधिक प्रगतिशील बनने-बनाने में एक दूसरे की सहायता करें। इस बीच इतनी घनिष्ठ आत्मीयता सम्पादित कर लें जो जीवन भर संचित पूँजी की तरह काम देती रहे।

विवाह के दिन तो दोनों पक्ष एक दूसरे से अपरिचित होते हैं। बाद में पहचान आरम्भ होती है। इसे सुदृढ़ बनाने के लिए चार सिद्धान्तों का दृढ़तापूर्वक निरन्तर प्रयोग करना चाहिए (१) स्नेह (२) सहयोग (३) सम्मान (४) विश्वास। आत्मीयता को सघन बनाने के ये चार स्तम्भ हैं, इन्हें जितना अधिक सम्भव हो सुदृढ़, परिपक्व एवं कार्यान्वित करना चाहिए।

स्नेह आत्मिक सम्पदा है। उसमें यह सोचा जाता है कि हम दूसरे पक्ष की सम्पत्ति हैं। साथ ही दूसरे को अपने लिए खरीद कर आत्मसात कर लिया गया है। दो शरीर एक प्राण। एक दूसरे पर निछावर। द्वैत में अद्वैत। इतनी घनिष्ठ मित्रता कि एक दूसरे की निकटता चाहें और एक दूसरे के लिए क्या कर सकते हैं यह सोचें। स्मरण रहे प्रेम में अपनी इच्छा-अभिलाषाओं, स्वार्थों को दूसरे के हित में विसर्जित किया जाता है। उसमें लेने का-बदला चाहने का भाव कभी भी नहीं होता। दूसरा यदि बदला भी नहीं चुका सके तो उसका कोई मलाल मन में न आने देना। यही मैत्री का चिह्न है। वह एकपक्षीय भी हो सकती है। अपनी ओर से घनिष्ठ आत्मीयता का प्रयोग-प्रदर्शन करते रहना और साथी की ओर से कुछ चढ़कर अपेक्षा न करना। हो सकता है कि साथी संकोची स्वभाव का हो, उसे मुखर होने की, खिल पड़ने की प्रकृति प्राप्त नहीं हुई हो। ऐसी दशा में दूसरे को अपने अनुरूप बनाने की अपेक्षा अपने को ही दूसरे के स्वभाव के साथ तालमेल बिठाने वाला परिवर्तन करना चाहिए। दूसरे को बदलना कठिन है पर अपने आपका परिवर्तन तो आसानी से किया जा सकता है। प्रेम का सुनिश्चित निर्वाह इसी प्रकार किया जाता है।

सहयोग का तात्पर्य है हाथ बढ़ाना। इनके जिम्मेवाले कार्यों में जान-बूझकर सहयोग देना। भले ही दूसरे को उनकी आवश्यकता प्रतीत न होती हो। पत्नी के घरेलू कार्यों में पति समय-समय पर हाथ बँटाता रहे तो इस क्रिया-कलाप में आनन्द भी बहुत आता है और सुविधा भी बहुत रहती है। पत्नियाँ आमतौर से पतियों के बीसियों काम प्रचलन के आधार पर भी करती रहती हैं, पर पति ही अपने बड़प्पन का अहंकार इसमें समझते हैं कि पत्नी के किसी काम में हाथ न बँटायें। उसके समय और सुविधा का ध्यान न रखें। इस प्रथा को उलटकर उसके बदले में श्रद्धा और आत्मीयता खरीदनी चाहिए। स्वास्थ्य संवर्धन के लिए व्यायाम, मालिस, शिक्षा संवर्धन के लिए अध्यापक की भूमिका निभाना, अनुभव बढ़ाने के लिए घर से बाहर साथ ले जाना जैसे छोटे-छोटे कार्यों में भी सहयोग की गंध आती है। होना यह चाहिए कि पत्नी के श्रम में हाथ बँटाना और उसे अधिक स्वस्थ-समुन्नत बनाने के लिए सामयिक परिस्थितियों को देखते हुए कुछ कर गुजरने के लिए प्रयास करना आवश्यक है। इस दिशा में स्त्रियाँ पहले से ही सहयोगिनी से बढ़कर सेविका की भूमिका निभाती हैं। उन्हें यह ध्यान रखना चाहिए कि वह सब बेगार भुगतने की तरह नहीं वरन् परिपूर्ण उत्साह और श्रद्धा के साथ करना चाहिए। इस प्रकार किया हुआ किसी भी पक्ष का कर्म अत्यधिक आनन्ददायक और उत्साहवर्धक बन जाता है। उसके बदले प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष श्रद्धा भी मिलती है और मन जीत लिया जाता है। यह व्यवहार पति-पत्नी तक ही सीमित न रहे वरन् समूचे परिवार के साथ परिस्थिति और आवश्यकता के अनुरूप

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करना चाहिए। छुट-पुट कामों में से किसी का कुछ घिसता नहीं वरन् बदले में दूसरों की सद्भावना जितनी अधिक मात्रा में मिलती है। उसे असाधारण उपलब्धि ही कहा जा सकता है।

मैत्री की घनिष्ठता का तीसरा पक्ष है—सम्मान। आमतौर से स्त्रियों से अपेक्षा की जाती है कि वे पुरुषों का सम्मान करें, पर पुरुष वैसा करने में अपनी हेटी समझते हैं। इस समानता के युग में उस पुरातन परिपाटी को बदलकर दोनों ही पक्षों को एक दूसरे का समुचित सम्मान करना चाहिए। शिष्टाचार से किसी को भी च्युत नहीं होना चाहिए। अपने को छोटा और साथी को बड़ा मानकर चला जाय और अपने को सभ्य समाज का सदस्य माना जाय तो स्वभावतः मधुर भाषण, सम्मति सूचक सम्बोधन एवं शिष्टाचार के सभी पक्षों का अनायास ही निर्वाह होने लगेगा। आते-जाते समय प्रसन्नता, सांत्वना जैसी मुद्राएँ बनती रहें तो बाह्य व्यवहार से भी यह प्रकट होता रहता है कि साथियों के बीच स्नेह की, सम्मान की समुचित भावना है। रूखा स्वभाव रखना अथवा उपेक्षा बरतना, अहंकार को आड़े देना सम्मान के प्रकटीकरण में बाधक होता है। इस बाधा को मैत्री में व्यवधान नहीं बनने देना चाहिए। आत्मीयता के प्रकटीकरण में सम्मान, शिष्टता को कार्यान्वित करते रहना भी आवश्यक मानकर चलना चाहिए। इस सामान्य सी प्रक्रिया से घनिष्टता के संवर्धन में आशातीत योगदान मिलता देखा गया है।

चौथा आधार है विश्वास। एक दूसरे का परिपूर्ण विश्वास किया जाय। किसी प्रकार का छल करने की आवश्यकता न की जाय। कहीं कुछ ऐसा होता भी हो तो उसे भुला देना चाहिए और अपनी कल्पना की त्रुटि माननी चाहिए। कमाने का काम पुरुष का है, घर खर्च चलाने का स्त्री का। व्यावसायिक पूँजी को सुरक्षित रखने की बात दूसरी है। पर घर खर्च के निमित्त अर्जित आजीविका को पत्नी के या माता के हाथ पर रखना चाहिए और उन दोनों के परामर्श से ही बजट बनाकर खर्च करना चाहिए। माता के न होने पर या उसकी समझदारी में कमी होने पर उस अधिकार का उपयोग पत्नी ही करती है। खर्च में से कुछ बचा लिया होगा। फिजूलखर्ची के लिए घर की सम्पदा में से छिपाकर बचाया होगा, ऐसा संदेह नहीं ही करना चाहिए। कभी कुछ ऐसा होता भी हो तो उसे हँसी-उपहास तक ही रहने देना चाहिए। गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। ऐसा तभी होता है जब स्त्री समझती है कि मेरा धन और पति का धन अलग-अलग है। जब पूरी सम्पदा पर अधिकार का भाव बन चले तो चोरी करने जैसे प्रसंग का आरम्भ ही नहीं होता।

पति-पत्नी के बीच चरित्र, व्यभिचार संबंधी आशंका का जन्म भी नहीं होना चाहिए। विवाह से पूर्व किन्हीं का किन्हीं से कुछ लगाव रहा हो तो उस बात को दर-गुजर कर देना चाहिए। यह नहीं सोचना चाहिए कि इतने भर से कोई सदा के लिए अविश्वास-पात्र या चरित्रहीन हो गया। हो सकता है कि वहाँ विवाहवार्ता ही चल रही हो और बाद में टूट गई हो। पतिव्रत धर्म या पत्नीव्रत धर्म वस्तुतः विवाह हो जाने के बाद ही आरम्भ होता है। इससे पूर्व जो सिलसिला कहीं किसी प्रकार चलता रहा है, उसे लगभग पूर्व जन्म की घटना मानकर विवाह के बाद हुए इस नये जन्म पर कोई प्रभाव न डालने वाली ही मानकर चलना चाहिए। विवाह संस्कार के समय में एक प्रायश्चित होम भी होता है, जिसका तात्पर्य है कि विवाह से पूर्व यदि किसी ने किसी से सम्पर्क बनाया है तो उस घटना को विवाह के समय सदा के लिए भुलाकर सदा के लिए प्रायश्चित हुआ समझना चाहिए। विवाह से पूर्व की घटनाओं को लेकर जीवन भर उलाहना देते रहना व्यर्थ है। वस्तुतः विवाह के बाद ही एक दूसरे से परिचित होते हैं और वफादार बनते हैं। मनुष्य का स्वभाव परिवर्तनशील है। जो कभी गलत राह पर चल गया है, वह समझदारी-जिम्मेदारी आने पर अपनी राह को सुधार भी सकता है।

सामान्यतया मेले-ठेले, हाट-बाजार, विवाह-शादी आदि आयोजनों में कई नर-नारी मिल जुलकर जाते हैं तो उसमें अविश्वास को आड़े आने नहीं देना चाहिए। महिलायें काम-धन्धे के लिए, सौदा-सामान खरीदने के लिए बाहर जाती हैं तो उनके साहस को सराहना चाहिए। इन अवसरों का उपयोग वे दुश्चरित्रता के लिए करेंगी ऐसा सन्देह नहीं उपजना चाहिए। विश्वास से विश्वास बढ़ता है और संदेह से संदेह। दुराचारी अपनी साँठ-गाँठ सौ प्रकार से लगा सकते हैं और साहसी अनाचारियों के बीच अपने शील की रक्षा कर सकते हैं। गाँव, घर, मुहल्ले का कोई व्यक्ति कुशल-क्षेम पूछने कहने यदि घर आया है तो उसका आतिथ्य करना चाहिए। यह नहीं सोचना चाहिए कि इस प्रकार का आगमन सदा दुर्बुद्धि से ही होता है। कड़ी नजर उन्हीं पर रखनी चाहिए, जिनका स्वभाव एवं चरित्र संदिग्ध हो।

पर्दे की प्रथा अनुचित है। जबकि पुरुष स्त्रियों के बीच बिना घूँघट के आ जा सकते हैं तो स्त्रियों को ही किसलिए अप्रामाणिक माना जाय। वे भी पुरुषों की ही तरह निर्भीक, साहस, सदाचारी क्यों न समझी जायँ ? संदेह, अविश्वास के कारण नारी को पर्दे में कैद रखने की परम्परा उनके साहस, मनोबल को गिराने और डरपोक, हीन भावना बनाने जैसी है।

मिल-जुलकर कार्य करने का अभ्यास घर में भी रहना चाहिए और दुकान व्यवसाय में भी। किसान, मजदूर अपनी स्त्रियों समेत काम निपटाते हैं, फिर व्यापार व्यवसाय में वैसा ही प्रयोग क्यों नहीं किया जा सकता ? इससे पुरुषों की भाँति नारी स्वावलम्बी अनुभवी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बनती है और समय पड़ने पर उस कर्म को बिना पुरुष की सहायता के भी चलाती रह सकती है।

नारी के प्रति समानता का भाव रखा जाय। उसे कामिनी, रमणी, भोग्या, वेश्या न माना जाय। दो भाई-भाई अथवा भाई-बहिन किन्हीं कार्यों को मिल-जुलकर कर सकते हैं तो पति-पत्नी के बीच भी ऐसी ही सहकारिता-विश्वसनीयता क्यों नहीं होनी चाहिए। पाश्चात्य देशों में नर की ही भाँति नारियाँ भी सरकारी पद सम्भालती, व्यवसाय करती तथा सार्वजनिक सेवा में क्षेत्र में बढ़-चढ़कर काम करती हैं। हमें अपने घरों की महिलाओं को ऐसी ही निर्भीक, कर्मठ तथा स्वावलम्बी बनाना चाहिए। कुदृष्टि से न उन्हें देखना चाहिए और न देखने देना चाहिए।

दाम्पत्य जीवन का निर्वाह

बचपन अनाड़ीपन में बीत जाता है। बच्चे वस्तुओं, संबंधियों और अपने-पराये का भेद करना सीखते हैं, पदार्थों के रूप-गुण पहचानते और खेलने-कूदने में समय बिताते हैं। बहुत हुआ तो अपने बलबूते स्वच्छता का नियम पालने लगते हैं। दस वर्ष तक की आयु बचपन है। इसमें कुछ आरम्भिक पढ़ना-लिखना भी आरम्भ कर देते हैं, बुद्धि की पकड़ तो कमजोर ही होती है।

इसके बाद किशोरावस्था आरम्भ होती है। वह बीस वर्ष तक चलती है। इस अवधि में शरीर के कल-पुर्जे बढ़ते और परिपक्व होते हैं। बीस वर्ष की आयु तक परिपक्वावस्था आती है, समझ का विकास होता है और उत्तरदायित्वों का स्वरूप वह समझने लगता है। इसके उपरान्त ही यौवन का शरीर में प्रवेश होता है। स्त्रियों में यह एकाध वर्ष पहले भी आरम्भ हो जाता है।

विवाह की यही आयु है। विवाह का प्रयोजन प्रजनन है। संतानोत्पत्ति की वय इससे पूर्व नहीं होती; क्योंकि जिन अंगों का शरीर के प्रजनन अंगों से संबंध है वे तब तक पूर्ण नहीं होते हैं। कच्चों से काम लिया जाय तो प्रयत्न भी सफल नहीं होता और साथ ही कच्चे फल को तोड़ने के समान हानि भी होती है।

आम-अमरूद पर फल तो जल्दी ही आ जाते हैं, पर वे कच्चे होने के कारण स्वाद एवम् उपयोग की दृष्टि से इस योग्य नहीं होते कि उनकी तुलना पके फलों में से की जा सके। समय के पहले तोड़ना एक प्रकार से उन्हें बर्बाद करना और अपनी हानि करना है। इससे पेड़ की नयी पीढ़ी बनना भी बन्द हो जाती है।

समय से पूर्व विवाह करने की विवेकहीनता

विवाह के संबंध में भी यही बात लागू होती है। उसके दो स्वरूप हैं—एक शारीरिक दूसरा मानसिक। शारीरिक दृष्टि से किशोरावस्था बढ़ने और परिपक्व होने की आयु है। उसे छेड़ा नहीं जाना चाहिए। स्वास्थ्य संवर्धन, शिक्षा-विकास एवं अनुभव का एकीकरण, यही सब बातें हैं जो किशोरावस्था के लिए निर्धारित हैं। बहते पानी को निर्धारित दिशा में जाने देने की अपेक्षा यदि उसे इधर-उधर फैलने दिया जाय तो नियत स्थान तक उसका पहुँचना यत्किंचित ही हो पाता है। बीच के छेद ही उसे इधर-उधर फैला देते हैं और सिंचाई का प्रयोजन जहाँ पूरा होना है, वहाँ तक उसका पहुँचना ही ठीक तरह नहीं हो पाता।

उच्छृंखल लड़के गोंद के लोभ में नन्हें पेड़ों में जहाँ-तहाँ छेद कर देते हैं, फलतः वहाँ से गोंद निकलने लगता है। गोंद को बेच कर पैसे तो प्राप्त किये जाते हैं, पर उस पेड़ का बढ़ना रुक जाता है। वह दुर्बल होने लगता है बौना रह जाता है और सूख जाता है। यह बात उन लोगों पर लागू होती है, जो युवावस्था आने से पूर्व ही लड़कों या लड़कियों का विवाह कर देते हैं। मनुष्यों की बनावट एक सी ही है, चाहे नर हो, चाहे नारी। दोनों की परिपक्वता एक ही समय में आती है। यह सोचना गलत है कि लड़कियों का बारह-चौदह वर्ष की आयु में विवाह कर दिया जाय तो हर्ज नहीं। लड़कों की आयु के बारे में सोलह-अठारह की बात सोची जाती है। यह शरीरविज्ञान और मनोविज्ञान दोनों की दृष्टि से अनुचित है। बीस वर्ष तक की आयु शारीरिक अभिवृद्धि के लिए है और बीस से पच्चीस वर्ष तक की मानसिक अभिवृद्धि के लिए।

पच्चीस वर्ष से कम की आयु को 'गधा पच्चीसी' कहते हैं। इसका मोटा अर्थ है कि इस आयु के होने तक मनुष्य बौद्धिक दृष्टि से अपरिपक्व होता है। उसकी मानसिक क्षमता, अनुभव सम्पदा उतनी नहीं हो पाती, जिसे परिपक्व कहा जा सकता है। कच्ची शारीरिक या मानसिक स्थिति में प्रजनन कर्म की ओर कदम बढ़ने लगे तो उसका सीधा प्रभाव शारीरिक या मानसिक परिपक्वता विकसित होने से पहले ही व्यवधान उत्पन्न कर देता है। शरीरगत पुष्टि के बाद क्षमताएँ मस्तिष्क की ओर बढ़ती हैं। बीस से पच्चीस वर्ष तक की आयु मानसिक विकास के लिए है। निर्धारित समय से पूर्व छेड़छाड़ कर देने का सीधा अर्थ है कि विकास का जो क्रम स्वाभाविक रूप से चलता है, उसे न चलने दिया जाय। जो लोग बाल-विवाह के खिलवाड़ के लिए आतुर रहते हैं वे प्रकारान्तर से अपने ही शारीरिक, मानसिक विकास में बाधा डालते हैं और जीवन भर इन दोनों ही क्षेत्रों में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दुर्बल बने रहते हैं। यह जल्दबाजी हर दृष्टि से हानिकारक है। यह तथ्य हर समझदार लड़की-लड़के या उनके अभिभावकों को समझ लेना चाहिए अन्यथा बाल-विवाह के शिकंजे में कस दिये जाने वाले बालक स्वयं तो कायिक और बौद्धिक दृष्टि से दुर्बल रहते हैं, उनकी संतानें और भी गयी-गुजरी होती हैं। कच्चे बीज को बो देने पर यदि उनके अंकुर निकले भी तो वे हर दृष्टि से दुर्बल होंगे।

कच्ची नींद से बच्चे को जगा देने पर वह रोने-मचलने लगता है। पूरी नींद सो लेने के उपरान्त वह हँसता-खेलता हुआ उठता है। कच्ची उम्र में विवाह करने के दुष्परिणाम जनक-जननी को ही नहीं, उस बच्चे को भी भुगतना पड़ता है, जो कच्चे साधनों से उत्पन्न हुआ है। पिछड़े समुदायों में प्राय: जल्दी विवाह कर देने की प्रथा है। वे इसे बड़े भार से निश्चिन्त होना मान बैठते हैं, पर यह भूल जाते हैं कि वे अपनी संतान और अगली पीढ़ियों के लिए कितना अनर्थ उपस्थित कर रहे हैं। बाल-विवाह की हानि हर वयस्क और अवयस्क को समझायी जानी चाहिए और कहा जाना चाहिए कि यदि शरीर को पूर्ण आयु तक दुर्बलता और रुग्णता रहित होकर जीना है, तो इस कुप्रथा से बचने में ही लाभ है।

योग्यता संवर्धन अनिवार्य रूप से आवश्यक

पुराने जमाने में यह रिवाज था कि मर्द कमाते थे और औरतें बैठ कर खाती थीं, पर आज की महँगाई और शिक्षा, चिकित्सा इतनी महँगी हो गई है कि मात्र लड़के को ही नहीं, लड़की को भी कमाने की स्थिति अर्जित कर लेना चाहिए। दुर्भाग्यवश पति किसी कारण न रहे, दुर्भाग्यग्रस्त हो जाय, परित्यक्ता या विधवा बनना पड़े तो पैतृक सम्पत्ति से नहीं, हाथ-पाँव की कमाई से गुजारा कर सकने की स्थिति, योग्यता लड़की की होनी चाहिए। संयुक्त परिवार में विधवा या परित्यक्ता के हाथ कुछ नहीं पड़ता। उसे अन्यान्यों की लूट-खसोट का ही सामना करना पड़ता है। इसलिए स्वावलम्बन, जीवन की महती आवश्यकता है, न केवल लड़के के लिए वरन् लड़की के लिए भी उतनी ही महत्त्व की बात है।

लड़के के हिस्से में पैतृक सम्पदा कितनी आती है, यह देखने की अपेक्षा दृष्टि यह रखी जानी चाहिए कि निजी कमाऊ योग्यता एवं प्रतिभा क्या है ? पैतृक सम्पदा का कोई ठिकाना नहीं कि वह कब तक टिकेगी और काम आयेगी।

पारस्परिक आत्मीयता का व्यवहार हो

विवाह को लड़की-लड़के की आदर्शसम्मत भावभरी मित्रता समझा जाना चाहिए। दोनों के बीच सम्मान और सहकार की गहराई रहनी चाहिए। मुद्दतों पुराने यह कुसंस्कार चले आते हैं कि नारी को हेय और नर को श्रेष्ठ माना जाता है, इसलिए आमतौर से पुरुष पत्नी के साथ ऐसा व्यवहार किया करते हैं, मानो वह हेय, हीन, नौकरानी स्तर की हो। यह मान्यता घातक है। हँसी-मजाक में कोई किसी पर व्यंग्य भी कर सकते हैं, पर जहाँ तक गम्भीरता का प्रश्न है, वहाँ ऐसी स्थिति न आने देनी चाहिए, जिसमें गाली-गलौज, मार-पीट, ताना-उलाहना आदि का पुट हो। विवाह से पूर्व देखा जा सकता है कि रंग-रूप अनुकूल रहा या नहीं, किन्तु विवाह के बाद इस प्रसंग की चर्चा छोड़ ही देनी चाहिए और साथी की सेवा और समर्पण के प्रति कृतज्ञता ही प्रकट करनी चाहिए। कुरूपतापरक व्यंग्य तो किसी भी दशा में नहीं करना चाहिए। यह गाली-गलौज से भी बुरे किस्म का व्यंग्य है, जो कभी-कभी ऐसी गहरी खाई खड़ी कर देती है जो पटने में नहीं आती। साथी के रूप पर छींटाकशी करने का प्रयत्न का अर्थ यह होता है कि उससे संतोष नहीं है। इस आधार पर यह भी फलितार्थ निकलता है कि साथी चरित्रहीन है या उसकी प्रवृत्ति उस ओर मुड़ चली है।

रूप-लावण्य को प्रधानता न मिले

वस्तुत: अपने देश के निवासी मध्यम रंग-रूप के ही होते हैं। न भारत योरोप है, जहाँ गोरे-चिट्टे नर-नारी होते हों और न यह अफ्रीका है, जहाँ की प्राकृतिक बनावट मोटे नाक और मोटे होठों जैसी हो, फिर जो जिस देश का निवासी है, वह अपने देशवासियों के मध्यवर्ती रंग-रूप से ही संतुष्ट होता है। यदि नख-शिख की बनावट को प्रधानता देते हुए किसी को स्वीकृत या अस्वीकृत किया है, तो उसे बाजारू किस्म के घटिया दृष्टिकोण का समझा जाना चाहिए। जब हमारी बहिन, माता, भतीजी, भावज, चाची, ताई आदि मध्यम निख-शिख की होते हुए भी गृहस्थ चला लेती हैं तो हमारे लिए यह कैसे उचित हो सकता है कि सिनेमा के एक्टर जैसे नख-शिख वाले साथी चाहिए ? रूप यौवन की चमक दो-चार वर्ष रहती है, बाल-बच्चे होते ही वह गायब हो जाती है और औसत नर या औसत नारी की तरह ही हर किसी को रहना पड़ता है। जो लड़की लड़का साथी की शक्ल-सूरत को अतिशय महत्त्व देता हो, एक को पसंद दूसरे को ना पसंद करता फिरता हो, अभिभावकों की पसंदगी पर विश्वास न करता हो, उसके बारे में समझना चाहिए कि यह व्यक्तित्व जोखिम है। कदाचित् अपने से अधिक कोई रंग-रूप आँखों में चढ़ गया तो अपनी ओर से आँखें भी फेर सकता। रूप-सौन्दर्य की तलाश वस्तुत: ओछी दृष्टि है।

सम्मान ऐसी वस्तु है जिसकी भूख हर प्राणी को होती है। यहाँ तक कि कुत्ते-बिल्ली तक उनके पीछे लगते हैं, जो अपेक्षाकृत उन्हें अधिक प्यार देते हैं। छोटे बच्चों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक में यह विशेषता पाई जाती है कि जो अधिक प्यार भरी दृष्टि से देखते हैं, उनकी गोदी में चढ़ने की कोशिश करते हैं। यद्यपि वे प्यार, तिरस्कार के वेधक शब्दों का अर्थ नहीं जानते किन्तु आँखों को देखने मात्र से पढ़ लेते हैं कि उन्हें कौन, कितना, किस स्तर का प्यार करता है उसी अनुपात से वे भी अपनी आत्मीयता और उपेक्षा करते हैं। यह बात वयस्क और समझदार व्यक्ति पर तो और भी अधिक मात्रा में लागू होती है। जब झूठा प्रेम प्रकट करके प्रवंचक दूसरों को ठग लेते हैं, वेश्याएँ कितनों को फँसा लेती हैं और ठग कितनों की शील सम्पदा पर हाथ साफ कर लेते हैं, तो सच्चे प्यार का तो कहना ही क्या ? आँखें आँखों को पढ़ती हैं और हृदय हृदय को। अक्षरों को पढ़ने-समझने में भूल हो सकती है, पर अन्त:करण को पढ़ने में अन्त:करण कदाचित् ही भूल करता हो।

ऐसी घटना तो अनेकों बार हुई है कि प्रेमपत्र यह सोचकर लिखे गये कि वे तथाकथित प्रेमी तक ही सीमित रहेंगे। पर हुआ उसी का उल्टा। उन्हें वे दूसरों को दिखा दिए और लिखने वाले को बदनाम कर दिया। कई बार तो इन्हें प्रकट कर देने की धमकी देकर चिरकाल तक शोषण किया जाता है। इसलिए समझदार माताएँ-बहनें नासमझ लड़कियों को सदा समझाती रहती हैं कि कदाचित् कहीं प्रेमालाप चल रहा हो तो उस संदर्भ में कोई पत्र लिखकर न दें अन्यथा वह लिखा पत्र ही कभी उनके लिए जान का बबाल बन जायेगा। प्रेम प्रसंगों में अनेक बार ऐसे विश्वासघात होते रहते हैं कि बहकावे में आने पर जान देकर भी पिण्ड नहीं छूटता। पर होता तभी है जब प्रेम का उन्माद छाया रहता है। वस्तुस्थिति को परखने के लिए यदि पहले से ही सावधानी रखी गई हो तो झूठ की कलई खुलने में देर नहीं लगती और पक्षी जाल में फँसने से बच जाते हैं।

विवाह पूर्व की भूलों को अप्रकट ही रखें

इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य है कि विवाह होने से पूर्व यदि कहीं कुछ अनुचित बन पड़ा हो उसे विवाह के समय होने वाले प्रायश्चित होम की आहुतियों में ही होम देना चाहिए। पीछे न कुछ पूछना चाहिए और न बताना चाहिए। गड़े मुर्दे उखाड़ने से लाभ कुछ नहीं और हानि असीम है। मनुष्य के स्वभाव में विश्वास की अपेक्षा अविश्वास अधिक मात्रा में भरा पड़ा है। भोलेपन और सच्चाई प्रकट करने के निमित्त भूतकाल की भूल प्रकट कर दी जाय तो आमतौर से साथी अपनी भूलें तो भूल जाता है और साथी के स्वभाव पर लांछन लगाता रहता है। उसमें प्राय: ऐसी उदारता कम ही पाई जाती है कि उस कटु प्रसंग को अनदेखा-अनजाना मान कर मन में से सदा-सर्वदा के लिए निकाल दे। इसलिए मनुष्य स्वभाव को ध्यान में रखते हुए यही उचित है कि प्रायश्चित होम की आहुति देते हुए एक-दूसरे को परम पवित्र मानें। उस समय तक एक दूसरे को पूर्ण पतिव्रता और पत्नीव्रता मानें और किसी कोने में कोई विषाक्त आशंका के लिए स्थान न रहने दें। 'बीती ताहि बिसारि दे' की नीति को अपनायें। यह मान कर चलना चाहिए कि वह जमाना चला गया जब द्रोपदी पाँच पतियों के लिए समान प्राणप्रिय बन कर रहती थी। देहरादून प्रदेश के जौनसार बाबर क्षेत्र में अभी भी यह प्रथा है कि बड़े भाई का विवाह होता है और शेष भाई उसी को पत्नी के रूप में बिना किसी झगड़े-झंझट के समान रूप से स्वीकार करते हैं। पिछला जमाना बहुपत्नीवाद का रहा है, पर ऐसे प्रसंग कदाचित् कभी आये हैं, जब बहुपति प्रथा को मान्यता मिली हो। कुंती-द्रोपदी जैसे अपवाद खोजने पर कदाचित् ही कहीं कभी मिलते हों। इस प्रकार जीवन में सदा ध्यान रखने योग्य बात यह है कि विवाह के बाद ऐसे प्रसंग किसी ओर से भी प्रस्तुत न हों। दोनों पक्ष अपने प्रेम को एक बिन्दु पर केन्द्रित रखें और वफादारी का समुचित निर्वाह करें। इस प्रसंग में खाई पड़ने पर प्राय: ऐसा ही देखा गया कि मन फट जाते हैं और फिर वैसा सघन विश्वास उत्पन्न नहीं होता जैसा कि होना चाहिए।

एक-दूसरे का सम्मान करें

विवाह की सफलता में एक बहुमूल्य तथ्य यह है कि एक-दूसरे का भरपूर सम्मान करें। व्यंग्य-विनोद में भी हल्का-फुल्का असम्मान न करें। क्योंकि प्रेम की भाषा सम्मान ही है। जहाँ गहरे सद्भाव होंगे वहाँ अपमान के प्रसंग न प्रत्यक्ष में आवेंगे न परोक्ष में। यहाँ तक कि क्रोध-आवेश में भी ऐसे शब्द मुँह से न निकलें जो अगले को महत्त्वपूर्ण और दूसरे को हेय ठहराते हों। इसलिए यह अभ्यास आरम्भ से ही डालना चाहिए कि कटु वचनों का आदान-प्रदान किसी भी रूप में चलने न पाये।

वह समय गुजर गया जब लोग दास-दासियों से, स्त्री-बच्चों से कैसा भी अपमानजनक व्यवहार कर लिया करते थे और वे दूसरों का बड़प्पन अपनी लघुता को ध्यान में रखते हुये कटु और अपमानजनक व्यवहार को भी सहन कर लेते थे पर अब वह स्थिति बहुत पीछे रह गई। हर किसी को दूसरों से सम्मान की आकांक्षा रहती है। भले ही वह वास्तविक न होकर शिष्टाचार ही क्यों न हो। पत्नी पति के कटुवचन विवशता समझ कर सह तो सकती है पर उसके हृदय में चोट न लगती हो ऐसी बात नहीं है। अस्तु, यदि दाम्पत्य जीवन को सरल रखना है तो उसमें प्रेम भावना ही नहीं शिष्टाचार और मधुर भाषण का समावेश चाहिए। समय ने अशिष्ट आचरण और व्यवहार को एक प्रकार अस्वीकार ही कर दिया है। पिछड़ी प्रथाओं को फिर से प्रयोग करके उनके दुष्परिणामों को दुहराने वाले समझदार नहीं मूर्ख कहे जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य जीवन की घनिष्ठता और एकता का एक स्वरूप यह है कि घर का बजट मिल-जुलकर बनाया और चलाया जाय। घर की आर्थिक स्थिति की जानकारी दोनों को समान रूप से होनी चाहिए और खर्च करने में समान सहमति भी। पुरुष कमाता है इसका उसे अहंकार न होना चाहिए और न स्त्री को इसलिए हेय मानना चाहिए कि वह कमाती नहीं है। वास्तविकता यह है कि घर का काम-काज करने, निरन्तर चौकीदारी करने में, भोजन बनाने, सफाई करने, कपड़े संभालने आदि का श्रम यदि पैसे के हिसाब से गिना जाय और वह जो खाती-पहनती है, उसका खर्च काट लिया जाय तो स्त्री की कमाई भी प्रायः उतनी ही होती है जितनी पुरुष की।

फिर माता के उपरान्त पत्नी का प्रेम ही ऐसा होता है जिसे अनन्य कह सकते हैं। उसका मूल्यांकन तो पैसे से हो ही नहीं सकता। सन्तानोत्पादन में उसे गर्भकाल से लेकर, प्रसव और शिशुपालन में जो एकाकी कष्ट उठाना पड़ता है उसका भी मूल्य जोड़ा जाय तो पत्नी का ऋण भार पति के ऊपर कम नहीं वरन् अधिक ही बैठता है। सुख-दुःख का बाँटकर ही उपयोग किया जा सकता है, इस बँटवारे में पत्नी जितना हाथ बँटाती है उतना संसार का और कोई संबंधी कदाचित् ही बाँट पाता हो।

पत्नी अपना घर छोड़ कर पति के यहाँ जाती है और नौकरानी जैसा निर्वाह स्वीकार करती है। पति ऐसा नहीं करता। छोटी-छोटी बातों के लिए भी पति की इच्छा और आज्ञा का अनुशरण करती है, जबकि पति उस प्रकार का ब्यौरा देने के लिए बाधित नहीं होता।

सदा दानी का पद ऊँचा और ग्रहीता का नीचा माना गया है। पत्नी दानी है और पति ग्रहीता। इस दृष्टि से भी उसे सम्मान पाने और सहयोग लेने का अधिकार है। पति को इन दोनों के संबंध में कृपणता नहीं बरतनी चाहिए। वरन् स्त्रियों का मानस अधिक संवेदनशील होता है। उन्हें मान-अपमान अधिक प्रभावित करता है। इस दृष्टि से स्त्रियाँ कदाचित् ही चूक करती हैं पर पुरुष जान-अनजान में—उपेक्षा और अहंकार में—ऐसी भूलें प्रायः करते रहते हैं। इस संबंध में दोनों को ही एक दूसरे की वरिष्ठता और प्रसन्नता का ध्यान रखना चाहिए। विशेषतया पति को। क्योंकि हृदय की संरचनाएँ ही ऐसी होती है जिस पर भावनाओं का अधिक भला-बुरा प्रभाव पड़ता है।

अक्सर आमदनी पति अपने हाथ रखते हैं और स्त्रियों को घर खर्च जितने ही पैसे देते हैं। यह व्यवहारतः कमाने वाले को अतिरिक्त श्रेय मिलना हुआ। होना यह चाहिए कि नौकरी आदि की जो निश्चित आमदनी हो वह पत्नी या माता के हाथ सौंपी जाय। उन्हें गृहलक्ष्मी माना जाय। जो खर्च हो बताकर या पूछकर कर लिया जाय। ऐसी नीति अपनाने से स्त्रियों का मान बढ़ता है। दूसरे अनावश्यक खर्च होने का डर भी नहीं रहता। पुरुष यदि सभी कमाई जेब में ही रखे रहें तो स्वभावतः पैसा अधिक खर्च हो जायेगा और कोई दुर्व्यसन पीछे लग जाने का भी डर रहेगा। स्त्रियों का स्वभाव कम खर्च में काम चलाने का होता है इसलिए वे कुछ बचत भी कर लेती हैं, जो समय पड़ने पर काम आता है।

पति का कर्त्तव्य

स्त्री अपने पिता के घर से जैसा स्वास्थ्य, शिक्षा, ज्ञान, हर्षोल्लास, अधिकार साथ लेकर आई थी उसमें कमी न पड़ने पाये यह पति का कर्तव्य है। कन्यादान दिये जाने का तात्पर्य ही यह है कि अब तक जो जिम्मेदारियाँ कन्या को विकसित करने की पिता की थीं वे सब अब पति को सौंप दी गईं। कन्यादान सबसे बड़ा दान माना गया है। उसे ग्रहण करते समय उसके श्रेष्ठतम् सदुपयोग की जिम्मेदारी पति के मस्तिष्क में निरन्तर रहनी चाहिए। स्त्रियों को प्रचलन में हेय समझा जाता है खासतौर से नववधुओं को जिन्हें श्रम भी अधिक करना पड़ता और अपमान अधिक सहना पड़ता है। पूरे परिवार में उन्हें बाहर से आया हुआ विराना समझा जाता है, इसलिए उनके साथ अनुचित बीतती है तो उसकी परवाह भी कोई नहीं करता। यह पति का कर्त्तव्य है कि जो साथी पर अनुचित बीते, उसके निराकरण में शिष्टाचार को ध्यान में रखते हुये सहायता करे। जिस घर में पत्नी का मान पति करते हैं उनका दूसरे भी मान करते हैं और जहाँ पति की ओर से उपेक्षा-अवमानना होती है, वहाँ दूसरों को भी 'गिरे में दो लातें जमाने' की हिम्मत पड़ती रहती है। संयुक्त कुटुम्ब की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये पति का यह कर्त्तव्य है कि अनावश्यक रूप से ऐसा संकोच न बरते, जिससे उसे अपने को सर्वथा असहाय अनुभव करना पड़े। प्रायः ऐसे ही प्रसंगों में स्त्रियाँ आत्महत्या तक कर बैठती हैं।

पत्नी का लगाव पिता के घर में भी होता है क्योंकि जीवन का प्रारम्भिक बड़ा भाग उन्हीं लोगों के यहाँ बीता है। उनकी हारी-बीमारी या कठिनाई में वह किसी काम न आये, यह भी बनता नहीं, इसलिए ससुराल वालों को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पिता के घर आने-जाने पर अनुचित बंधन न लगाये।

अनुचित आग्रह करने पर प्रेम से समझाया या कड़ाई से धमकाया भी जा सकता है पर वह व्यवहार ऐसी भूमिका के साथ होना चाहिए, जिससे बात बिगड़ने तक की नौबत न आये। घर के छोटे दायरों में रहने के कारण स्त्रियों का व्यावहारिक ज्ञान कम होता है इसलिए कई बार उनके आग्रह ऐसे भी होते हैं जो अनुचित लगें। ऐसे प्रसंगों में तर्क, तथ्य, उदाहरण और प्रमाण प्रस्तुत करते हुये समझाने-बुझाने की नीति ही अपनानी चाहिए वह इतनी न बढ़ जाय कि छोटी सी बात बड़ी सी कटुता का निमित्त कारण बन जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रजनन की विडम्बना

स्त्रियों के साथ बुरे किस्म का अत्याचार, अनावश्यक यौनाचार है। इसमें मर्दानगी नहीं अदूरदर्शिता का गहरा पुट है। स्त्रियों की जननेन्द्रिय अति कोमल होती है। उनमें अनावश्यक दबाव सहने की क्षमता नहीं होती। वासना की दृष्टि से भी स्त्रियाँ पुरुषों से बहुत पीछे हैं। इसलिए प्रेम प्रदर्शन में यौनाचार को समेटना और सन्तानोत्पत्ति के सम्बन्ध में तो अत्यधिक सावधानी बरतनी चाहिए। उनके स्वास्थ्य को बिगड़ने का यही सबसे बड़ा कारण है। फिर अधिक संख्या में संतानें होने पर उनकी न तो समुचित देखभाल हो सकती है और न सुसंस्कारी ही बनाया जा सकता है। बच्चे लगते ही छोटे हैं उनकी प्रत्येक आदत और क्रिया का ध्यान रखना पड़ता है। यदि उपेक्षा बरती जाय तो आगे चल कर वही एक बड़ी कठिनाई के रूप में प्रकट होती है।

वे जमाने गये जब बच्चे जानवर चराने और घास खोदने के कारण घर वालों के लिए भारी नहीं पड़ते थे। अब शिक्षा, चिकित्सा, कपड़े से लेकर अनेक फरमाइशें ऐसी हो गयी हैं कि बच्चों को यदि आदमी की तरह रखा जाय तो उन पर लगभग बड़े आदमी जितना खर्च आता है। फिर वातावरण चारों ओर ऐसा है कि उससे बचा कर न रखा जाय तो वे बड़े होने पर आवारा हो जाते हैं और फिर काबू से बाहर की स्थिति में जा पहुँचते हैं। अब बच्चों की आधी पढ़ाई स्कूल में और आधी घर पर करनी होती है। यह बात पाठ्यपुस्तकों का गट्ठर याद करने के संबंध में ही नहीं शिष्टता और सुसंस्कारिता सिखाने के संबंध में भी है। यह कर्म माता-पिता दोनों को मिलकर करना होता है। साथ ही परिवार के अन्य लोगों को भी सहयोग देना है। यदि ऐसा न बन पड़े तो समझना चाहिए कि बच्चे सिर दर्द बनेंगे और मुहल्ले-पड़ौस में बदनामी कराते फिरेंगे।

इन परिस्थितियों में कुत्ते-बिल्लियों की तरह दर्जनों बच्चे जन डालना माता का नहीं पिता का दोष है। वह चाहे तो आधुनिक उपायों को अपनाकर इस अनावश्यक भार भरे उत्तरदायित्व से अपने को बचा सकता है। एक दो बच्चे का लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा का संस्कार भी ठीक तरह हो सकता है। फिर अगर पत्नी का स्वास्थ्य, ज्ञान, अनुभव, व्यक्तित्व बढ़ाना है तो उसके लिए संयम की ही आवश्यकता रहेगी। ढेरों बच्चे हो जाने पर इनमें से एक के लिए भी अवकाश नहीं बचता। पिता पर अधिक दबाव बढ़ता जाता है और समुचित सुसंस्कारिता एवम् सुविधा न मिलने पर बच्चों का भविष्य खराब होता है। बढ़ी हुई जनसंख्या समूचे समाज की प्रगति में प्रत्यक्ष बाधक तो है ही।

पुरुषों का दायित्व

दाम्पत्य प्रेम एवं सहयोग की सफलता में जब पुरुष को पहल करनी पड़ेगी क्योंकि चिर अतीत में पुरुषों के हरम में लाखों स्त्रियों ने उत्पीड़न सहते और आँसू बहाते दिन बिताये हैं। सती होकर स्त्रियाँ अपनी वफादारी और सच्चाई की परीक्षायें दे चुकी हैं। पर अभी तक ऐसा नहीं हुआ कि इन्हीं कसौटियों को स्वीकार करके पुरुषों ने अपनी धर्मपत्नी के सहचर का प्रमाण प्रस्तुत किया हो। इसलिए इन पंक्तियों में जो लिखा जा रहा है, वह पुरुषों को उद्बोधन करने के लिए ही लिखा जा रहा है, ताकि वे अपनी पारी चुकायें, स्त्रियों को लाखों वर्ष हो गये वे शत-प्रतिशत उत्तीर्ण हुई हैं। अब पुरुषों को ही आगे आना होगा क्योंकि उन्हीं को अब तक घाटा उठाना पड़ता है और उन्हीं को भविष्य में उठाना पड़ेगा। आधी जनशक्ति को अपंग बना कर उनके भरण-पोषण का उत्तरदायित्व उठाते हुए उनने उससे भी बुरा किया है जैसा कि दक्षिणी अमेरिका में अफ्रीकी जनसमुदाय को गुलाम बनाकर सारे संसार को अपने प्रतिकूल बना लिया था। आदत के दबाव से विवश होकर वह अनाचार उन्हें छोड़ना पड़ा। स्त्रियों की दशा उससे अच्छी नहीं बुरी ही है। चूँकि बात अभ्यास में आयी है इसलिए अखरती नहीं। अपने सगे-संबंधी की हत्या होते देख कर तिलमिला जाते हैं, पर जब किसी बकरे को कटता देखते हैं तो मुँह फेर कर चल देते हैं। स्त्रियाँ इतने लम्बे समय से उत्पीड़न की शिकार रही हैं इसलिए उनके कष्ट हमें विरानों के कष्ट लगते हैं। यह प्रतीत होता है कि उनके भाग्य में ही ऐसा लिखा है। भगवान ने उन्हें मछलियों की तरह सृजा ही इसलिए है कि किसी न किसी के पेट में आश्रय मिले।

अगला समय न्याय की प्रतिष्ठा का आ रहा है। माँसाहारी भी विचार कर रहे हैं कि जब सोयाबीन जैसे पदार्थ उसी स्तर के हैं तो क्यों मनुष्यता को कलंकित करें? यह प्रश्न भी विचाराधीन है कि प्राणियों को संज्ञाशून्य करके काटा जाय ताकि उन्हें कम कष्ट हो। यही तर्क स्त्रियों के सम्बन्ध में विज्ञ समाज के विचाराधीन है कि मनुष्य जाति की अविच्छिन्न होते हुए भी उन्हें क्यों उस उत्पीड़न का शिकार बने रहने दिया जाय, जिसके लिए न्याय का कोई समर्थन नहीं करता ?

नारी को पददलित बनाकर आधी जनसंख्या को गले के पत्थर की तरह लटकाये रखा है। यदि यह आधा वर्ग भी मनुष्य स्तर का रहा होता तो उनके पुरुषार्थ और कौशल का लाभ पुरुषों को मिला होता और समूचा समाज समुन्नत स्थिति में रह रहा होता। अपने ही पैरों कुल्हाड़ी मारने की जो भूल चिरकाल से होती चली आई है, उसका अब अन्त होना चाहिए और सामान्य विवेक को जगाकर यह सोचने के लिए विवश किया जाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए कि अपनी ही पुत्रियों, बहिनों, माताओं, धर्म पत्नियों पर अनाचार का ऐसा प्रयत्न न होना चाहिए, जैसा कि हो रहा है।

अर्धांग को समुन्नत बनाने में लाभ-ही-लाभ है

गाय को हरी घास खिलाना, स्वच्छ पानी पिलाना, सर्दी से बचाना, मालूम तो ऐसा पड़ता है मानो दयार्द्र होकर कोई बड़ा उपकार किया जा रहा है किन्तु वास्तविकता यह है कि इसमें पालने वाले का ही हित है। अधिक दूध मिलना, कीमती बछड़े देना उसकी अपेक्षा कहीं उत्तम है, जिसमें उसके साथ क्रूर-कर्कशता बरतते हुए उसे अस्थिपंजर मात्र बना दिया जाय। ऐसी दशा में वह कसाई के यहाँ जाकर उतना पैसा न दे सकेगी जितना कि अधिक दूध और अच्छे बछड़े पालन करने पर मिलता। गौ पालन का पुण्य मिलता और प्रदर्शनी में जाने पर पुरस्कार मिलता। स्त्री को प्रताड़ना देकर उसे मनमर्जी पर चला लेना कोई बुद्धिमानी का काम नहीं है। ऐसा तो रीछ-बन्दर पालने वाले डंडे के बल पर भी करा लेते हैं।

असन्तुष्ट को अधिक उत्पीड़न देकर अधिक परिश्रम करा लेना यह कार्य तो कोई निष्ठुर और क्रूर भी कर सकता है। मनुष्य को ऐसा नहीं होना चाहिए। पिंजड़े में कैद कर उसे खुली हवा और रोशनी से वंचित करना किसी भी प्रकार न्याय निष्ठा नहीं है और न ऐसा बरताव करने पर मनुष्य का कोई गौरव बढ़ता है।

व्यभिचार प्रसंगों में प्राय: स्त्री की हत्या कर डालने जैसी ही घटनायें देखने में आती हैं जबकि बहकाने का दोष प्रधानतया पुरुष का होता है। पर पुरुष को दण्ड कौन दे ? वह तो खरी-खोटी भी सुना सकता है। स्त्री ही बकरी है जिसे उल्टी डाल कर भी काटा जा सकता है और सीधी डाल कर भी। उसकी आँखों के आँसू किसी को दीख न पड़ें, इसलिए ऐसा टोपा पहना दिया जाता है जैसा कि फाँसी पर चढ़ने वाले कैदी को पहनाया जाता है।

जेवर और रंग-विरंगे, चमक-दमक के कपड़े पहना कर यह उनका झूँठा मनोरंजन किया जाता है ताकि वे अपने साथ बरते जा रहे अन्याय के विरुद्ध कुछ न कह सके। फुसलावे में अपनी वास्तविक व्यथा को भूल जाय।

अब हमें छलावे और भुलावे की नीति अपनाने की कुटिलता छोड़ देनी चाहिए। उसके अपहरण किये गये मौलिक मानवी अधिकार वापिस करने चाहिए, ताकि वह भी अपने आप को मनुष्य वर्ग का एक सदस्य अनुभव कर सके। अभी तो उसकी स्थिति पशु जैसी है, जिसे किसी के भी सुपुर्द किया जा सकता है। जिसे मूल्य लेकर या देखकर खरीदा जा सकता है।

इन कुप्रथाओं को गिनाते रहने और उनके विरुद्ध कुछ लिखते या कहते रहने से काम बनने वाला नहीं है। उसके बन्धन काटें और समर्थ बनने के साधन जुटाये जाने चाहिए। हर विवेकशील के मन से यह मान्यता हटाई जानी चाहिए कि नारी, नर की तुलना में हेय है और उसे समता के अधिकार नहीं दिये जा सकते। जब तक यह स्थिति रहेगी, नर को नारी के स्नेह और सहयोग से वंचित ही रहना पड़ेगा।

उत्पीड़न के विरुद्ध आन्दोलन हो

समय-समय पर पीड़ितों के पक्ष में विचारशीलों ने आन्दोलन खड़े किये हैं। जिनके पीछे न्याय और जनमत रहा है, वे सफल भी हुए हैं। नारी उत्पीड़न के विरुद्ध हमें ऐसा ही आन्दोलन खड़ा करना चाहिए। आये दिन के अखबार रंगे रहते हैं कि बाप के घर से दहेज कम लाने के कारण इतनी बड़ी संख्या में ससुराल वालों ने जला दिया या गला घोंट दिया । कुछ लड़कियाँ असह्य पीड़ा तथा अपमान न सहने के कारण आत्महत्या भी कर लेती हैं। यह सबसे बड़ी दुखती नस है। आन्दोलन का आरम्भ यहीं से किया जाय तो अच्छा। स्वयं लड़के और अभिभावक प्रतिज्ञा करें कि वे दहेज, धूमधाम, लम्बी बरात का विरोध करेंगे। न तो स्वयं ऐसा करेंगे और न अपने प्रभाव क्षेत्र में दूसरों को करने देंगे। जो न मानें उनके कार्यक्रम में न तो सम्मिलित हों ओर न सहयोग करें। दहेज की सीमा में वे लड़की वाले भी आते हैं जो वर पक्ष से रुपया या पदार्थ लेकर विवाह करते हैं। प्रथायें दोनों ही एक जैसी हैं, इन्हें जीवित बच्चों का माँस विक्रय कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। ऐसा जहाँ भी हो रहा है वहाँ असहयोग और विरोध का उपक्रम चलाया जाय।

अब कड़ा कानून भी इसमें बन गया है जिसमें तीन साल तक की जेल और दस हजार तक जुर्माना हो सकता है। इस कानून के अन्तर्गत पुलिस में रिपोर्ट करने और गवाही देने में यदि किसी से बुराई बँधती हो तो उसकी चिन्ता न करके दुष्टता से लोहा लेते हुए आक्रमण भी सहने चाहिए। जिस प्रकार सवर्णों के लड़के और अभिभावकों से शपथपूर्वक प्रतिज्ञायें कराई जायँ, उसी प्रकार बेटी पक्ष में धन लेने वालों की लड़कियों, माताओं और पड़ौसियों से प्रतिज्ञायें कराई जायें कि वे इस अनर्थ का पूरी तरह असहयोग और विरोध करेंगी। कानून से जो काम हो सकते हैं, वह विरोधी आन्दोलन से भी हो सकता है। वस्तुत: जनमानस को इस सम्बन्ध में जागृत नहीं किया गया है। जो ढर्रा चल पड़ा है, उसे उपेक्षापूर्वक चलने दिया जा रहा है। होना यह चाहिए कि इस कुप्रथा के कारण होने वाली हानियों से जन-जन को अवगत कराया जाय और उसका विरोध करने के लिए तीखा वातावरण बनाया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गाँधीजी ने अँग्रेजी शासन हटाने के लिए असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह आन्दोलन चलाये थे। कम से कम प्रज्ञा परिजनों में से तो एक से ऐसा न हो जो दहेज दे या ले। रिश्वत लेना और देना दोनों ही अपव्यय हैं। जहाँ ऐसा होने जा रहा हो, वहाँ धरना, सत्याग्रह, बहिष्कार के आन्दोलन चलाये जा सकते हैं और कानून का भी आश्रय लिया जा सकता है। सामूहिक विवाहों में प्रदर्शन तो अच्छा हो जाता है पर उस आड़ में कितने बाल विवाह भी होने लगते हैं। दहेज या बाल विवाह चल पड़ा तो उससे भी समाज की उतनी ही हानि है।

इसके साथ ही कन्या शिक्षा का आन्दोलन भी चलाया जाना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा, कन्या शिक्षा का कार्य शिक्षित महिलायें और वयोवृद्ध रिटायर लोग करें। गरीबी से अशिक्षा बनी रहती है जितना यह सही है उतना ही यह भी सही है कि जब तक अशिक्षा रहेगी और नारी अपना अधिकार एवम् स्वरूप नहीं समझेगी, तब तक वह लोग सहज ही पीछा छोड़ने वाले नहीं हैं जिनने पशु की तरह नारी को काम में लाने की आदत अपना ली है। सच तो यह है कि यह आदत और भी बुरी है। जानवर खरीदने के लिए खरीदार को पैसा देना पड़ता है। पर यहाँ तो वह भी उलटा कि सुयोग्य लड़की भी लेना और ऊपर से उसके अभिभावकों का गला मरोड़कर दहेज ऐंठना। जिनके गले यह चस्का लग गया है, वे प्रत्यक्ष न सही, परोक्ष रूप में रकम ऐंठेंगे। इसका पूरी तरह मिटाना तभी संभव है जब इस कुप्रचलन के विरोध में तीव्र आन्दोलन किया जाय और जो सीधी तरह नहीं मानते, उन्हें भरपूर जलील किया जाय।

पुरानी पीढ़ी न मानें तो प्रह्लाद जैसे दृढ़व्रती युवक और युवतियाँ ऐसे तैयार करने चाहिए, जो आजीवन कुँवारे रहने जैसे व्यवधान आने पर भी इस दुष्ट प्रथा के आगे किसी भी प्रकार सिर न झुकायें, भले ही इससे तथाकथित बड़ों की अवज्ञा ही क्यों न करनी पड़ती हो।

दहेज का प्रतिद्वन्द्वी जेवर है। लड़की वालों को स्पष्ट कर देना चाहिए कि हमारी लड़की को जेवरों की कोई आवश्यकता नहीं है। यही बात महँगे कपड़ों के सम्बन्ध में भी है। वे एक घण्टे पहनने के काम आते हैं और पीछे अनावश्यक सड़ते रहते हैं। विवाह की पोशाक पीली धोती, कुरता लड़के के लिए और पीली धोती, ब्लाउज लड़की के लिए। दोनों ओर से फूलों का आदान-प्रदान, बहुत हुआ तो अँगूठी का आपस में परिवर्तन हो सकता है। जो महँगा सोना नहीं खरीद सकें, वे चाँदी की अँगूठियाँ आपस में बदल सकते हैं। वे भी बाजार में कितने ही डिजाइनों की बिकने लगी हैं।

विवाह में लगने वाली राशि को कन्या शिक्षा में लगाया जाना चाहिए। जहाँ स्कूल न हों, वहाँ अपरान्ह की पाठशालायें चलाई जायँ और प्रज्ञा-प्रशिक्षण ५२ पुस्तकों का पाठन क्रमशः करा दिया जाय, इसमें साहित्यिक शब्द-कोष और व्याकरण का सामान्य ज्ञान सीखे और सिखाये जाने की पूरी गुंजाइश है। जीवन में कभी काम न आने वाले निरर्थक विषयों की अपेक्षा यह छोटी-छोटी पुस्तिकायें अधिक उपयोगी हैं, जिनमें जीवन के हर पक्ष पर आवश्यक प्रकाश डाला गया। शेष बातें सद्गृहस्थों का वातावरण ही लड़कियों को सभ्यता और शिष्टता का आवश्यक पाठ पढ़ा देता है। फिर निजी विवेक जाग्रत किये जाने पर वे निजी विवेक बुद्धि से भी उन गुत्थियों को सरलतापूर्वक समझा देती हैं, जो अनगढ़ों को पहाड़ के समान विषम मालूम पड़ती हैं।

विवेक और साहस की आवश्यकता

आदतें चाहे व्यक्तिगत हों, चाहे सामाजिक वे अचेतन मन में अपनी जड़ें जमा लेती हैं। तब वे स्वाभाविक ही नहीं आवश्यक भी प्रतीत होने लगती हैं। बुरी आदतों के सम्बन्ध में भी यही बात है। उन्हें छोड़ने या तोड़ने के सम्बन्ध में विवेक और साहस का संयुक्त समन्वय चाहिए अन्यथा उनसे पीछा छुड़ाना कठिन पड़ता है। नशेबाजी की तरह कुरीतियाँ भी स्वभाव की अंग बन जाती हैं और उनके कार्यान्वित किये बिना ऐसा लगता रहता है मानो कुछ खो गया, कुछ छूट गया। एक भय भी बना रहता है कि उन प्रथाओं का निर्वाह छोड़ देने पर कोई प्रेत-पितर या देवी-देवता नाराज होकर कुछ अनिष्ट न करने लगें। देववाद के पीछे यही भावना विशेष रूप से काम करती है। उनके द्वारा कुछ प्राप्त होने का लालच उतना काम नहीं करता जितना भय। मन में यह डर बना रहता है कि इस प्रथा का पालन न किया तो सम्बन्धित कोई देवी-देवता नाराज होकर अनिष्ट न करने लगें। यह भय ही अधिकांश लोगों को उन प्रथाओं के पालन करने के लिए विवश करती है। जो बुद्धिसंगत नहीं है। जिसका कोई औचित्य समझ में नहीं आता, उन पशु बलि प्रथाओं के पीछे जितना लालच काम करता है, उससे कहीं अधिक भय सताता है। यह भय सामाजिक भी होता है। सोचा जाता है कि इस कृत्य को न करने से कहीं कोई अनिष्ट न हो जाय। यद्यपि वैसा कुछ होता भी नहीं तो भी अपडर तो अपडर ही है। लोभ से भय की शक्ति अधिक है। व्यक्ति लोभ आसानी से छोड़ सकता है किन्तु भय से पीछा छुड़ाना कठिन है। कुरीतियों की जड़ें अक्सर इसलिए गहरी जमी पाई जाती हैं।

इसलिए कुरीतियों को तोड़ने के लिए साहसी और विवेकशील लोगों को आगे आना पड़ता है। इसके बिना बुद्धि से औचित्य स्वीकार करने पर भी परिवर्तन के लिए जिस साहसिकता की आवश्यकता है उसे जुटा नहीं पाते। गाड़ी यहीं आकर रुक जाती है। प्रज्ञा परिजनों ने न केवल विवेक का पाठ पढ़ा है वरन् साहस अपनाने के लिए किस प्रकार अग्रगामी हुआ जाता है, यह भी उनने सीखा है। उस शिक्षा को कार्यान्वित करने का ठीक समय

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

यही है। जब विवेकयुक्त शौर्य जमता है, तो उसमें जनमत के प्रचलनों की उपेक्षा करने की भी हिम्मत बढ़ती है और अदृश्य देवी-देवताओं द्वारा अनिष्ट किये जाने का डर भी चला जाता है। कुछ लोग हिम्मत करके जिस काम को आगे बढ़ाते हैं, ऐसे दुर्बल मन वाले भी उस साहस से प्रेरणा पाकर स्वयं भी करने लग जाते हैं। यह प्रयोग कुरीति सम्मेलन से सफल हो सकता है। हिन्दू धर्म में घुसी हुई अनेक कुरीतियाँ हैं जिनने समाज को छिन्न-भिन्न, दुर्बल मन और विवेकहीन होकर एक प्रकार से आलसी बनाकर रख दिया है। प्राचीनकाल में समाज को गिराकर वर्तमान पिछड़ी और हास्यास्पद स्थिति में ला पटकने का दोष अधिकतर इन्हीं कुरीतियों को है, जो एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं, जैसे विवाहों में गरीब द्वारा अमीरों का स्वाँग बनाया जाता है वैसी ही विडम्बनाएँ अन्य उपक्रमों में देखी जाती हैं।

इसी प्रकार छुट-पुट रीति-रिवाज भी विवाहों के साथ जुड़ते हैं। उनकी पूर्ति के लिए ढेरों पैसा, समय बर्बाद करना और परेशानी उठानी पड़ती है। जब सुधार की दिशा में कदम उठाना हो तो इस सारे खर-पतवार को एक साथ ही साफ कर देने की समझदारी किसी व्यवहार कुशल किसान से सीखनी चाहिए, वह खेत की निराई-गुड़ाई में सभी खरपतवार को एक साथ ही उखाड़ता चलता है। ऐसा नहीं है कि आज कंकड़ बीने कल काँटे, आज मोथा उखाड़े कल बथुआ। विवाह-शादियों से जुड़ी हुई अनेक कुरीतियाँ हैं जिनमें एक यह भी है कि एक जाति दूसरी जाति का पकवान तो खा लेती है पर चावल, दाल जैसी 'कच्ची' समझी जाने वाली वस्तु को प्रीतभोज में नहीं आने देती। यह प्रचलन भी मिटना चाहिए। 'पक्की' भी परिभाषा में आने वाले जहाँ पूड़ी-पकवान हों वहाँ 'कच्ची' की परिधि में धकेले जाने वाले दाल, चावल, खिचड़ी जैसी वस्तुयें भी अवश्य परोसी जायँ। हमें इन कुरीतियों के विरुद्ध धर्मयुद्ध छेड़ना चाहिए और उन्हें एक-एक करके नहीं वरन् सब का सफाया एक साथ ही करना चाहिए। इन्हीं कुरीतियों में एक पर्दे का रिवाज भी है।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

सफल दाम्पत्य जीवन के मूलभूत आधार

दाम्पत्य-जीवन में परस्पर समर्पण ही सफल होता है

नारी निस्सन्देह समर्पण और त्याग की प्रतिमा है। यह समर्पण उसकी दुर्बलता नहीं, गरिमा है। विचारशील मनस्वियों ने इस गरिमा को सदा समझा है, इसीलिए नारी की प्रशंसा मुक्त कण्ठ से की है किन्तु समर्पण की महत्ता और सार्थकता तभी है, जब वह विवेकपूर्ण हो। आत्महीनता के भाव से किया गया समर्पण दास्य-भाव कहलायेगा। समर्पण और गुलामी के अन्तर को सदा स्मरण रखना चाहिए। समर्पण सदा श्रेष्ठता के प्रति होता है। उससे मन में आस्था-उत्साह का भाव स्थिर व दृढ़ होता है। दासता किसी न किसी रूप में अनौचित्य को बढ़ाती है। उसमें विवशता की वेदना रहती है, समर्पण का स्वाभिमान भरा उल्लास-आनन्द नहीं।

विवेकपूर्ण समर्पण के लिए समर्थ व्यक्तित्व आवश्यक है। जो लोग नारी को दलित, अविकसित रखकर उसे समर्पण की सीख देते हैं, वे समर्पण का अर्थ ही नहीं समझते। जो मर्मज्ञ इस उच्च आदर्श की गरिमा समझते थे, उन्होंने नीति-निर्धारण के समय नारी के स्वाभिमान और उत्कृष्टता को अक्षुण्ण रखने का सदा ध्यान रखा तथा उसे गृह-व्यवस्थापिका और परिवार-संचालिका की प्रतिष्ठा प्रदान की।

एक अन्य तथ्य भी स्मरण रखने योग्य है। किसी उच्च आदर्श, महान लक्ष्य के प्रति समर्पण होता है। नारी का समर्पण—पातिव्रत-धर्म, चारित्रिक-श्रेष्ठता, प्रेम और सेवा-भाव के आदर्शों के प्रति होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि समर्पण—पुरुष के शरीर या गुण-दोषमय व्यक्तित्व के प्रति होना चाहिए। नारी की आन्तरिक संरचना को ध्यान में रखते हुए उसके स्वाभाविक समर्पण भाव की सराहना की गई है किन्तु इस समर्पण में गरिमा तभी है, जब वह उत्कृष्टता के प्रति ही हो।

जातीय-पतन के दौर में उच्च आदर्शों को विकृत रूप दे दिया गया। समर्पण की व्याख्या स्वार्थी मनुष्यों ने इस प्रकार की कि भारतीय-नारी के इस उच्च आदर्श को चरणदासी बनने के रूप में ढाल दिया। पर अब ऐसी धूर्ततापूर्ण चालबाजियों और शाब्दिक मायाजाल का युग नहीं रहा। अतः अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पुरुष के प्रति नारी का समर्पण अन्धा और अविवेकपूर्ण नहीं होना चाहिए। प्रत्येक पुरुष न तो ईश्वर है और न देवदूत। श्रेष्ठता के लिए उसे प्रयास करना होगा, तभी वह श्रद्धा का अधिकारी होगा। समर्पण कोई विवशता नहीं, व्यक्तित्व की उत्कृष्टता है। अतः वह पुरुष के लिए भी साध्य और इष्ट होनी चाहिए।

पति के समर्पण-भाव का अर्थ पत्नी के प्रति यौन-जीवन में निष्ठा तो है ही, किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं। उसकी संवेदनाओं, भावनाओं से तादात्म्य की अनुभूति भी इसका आवश्यक अंग है। शील का सम्बन्ध मात्र—यौन-जीवन से नहीं, सम्पूर्ण व्यक्तित्व से है। जो लाभ स्त्रियों के शील-सम्पन्न होने से प्राप्त होता है, वही पुरुषों के भी शीलवान होने से मिलेगा। नर-नारी दोनों जीवन-विकास के समान उत्तरदायित्व लेकर धरती पर आते हैं। शील और सच्चारित्र्य दोनों के व्यक्तित्व-विकास के लिए समान रूप से अनिवार्य हैं। जो कर्त्तव्य स्त्री के लिए हैं, वही पुरुष के लिए भी। कार्यक्षेत्र में भिन्नता तो पुरुष-पुरुष के बीच भी होती ही है, किन्तु कर्त्तव्य-निष्ठा की मूल भावना तथा मर्यादाएँ सभी के लिए समान हैं।

आत्म-विकास और पारिवारिक-जीवन की सुख-शान्ति, दोनों के लिए स्त्री की ही तरह पुरुष में चारित्रिक दृढ़ता की आवश्यकता है। प्रेम तभी स्थायी रह सकता है, जब दोनों का अन्तःकरण शुद्ध हो और कोई भी नाटक न करता हो। घर में पत्नी से निष्ठा की आकांक्षा रखना और बाहर स्वैराचार के फेर में रहना, प्रेम को वास्तविक नहीं रहने दे सकता। जहाँ ऐसी दोहरी मानसिकता और बनावटीपन है, वहाँ आत्मीयता का सूत्र निश्चय ही खण्डित होता रहेगा। अकेली धर्मपत्नी का शील और सदाचरण, विनम्रता और सेवाभाव, पारिवारिक-जीवन को सुव्यवस्थित नहीं रख सकते। स्त्री-पुरुष के पौरुष, श्रम और संरक्षण के लिए उसकी कृतज्ञ होती है, तो पुरुष को नारी की मूक-सेवा, अक्षय-स्नेह और पारिवारिक-सुव्यवस्था का भार ढोते रहने के लिए और अधिक कृतज्ञ, विनम्र तथा उदार होना चाहिए। नारी को भी पुरुष के आत्म-समर्पण की उतनी ही अभिलाषा रहती है, जितनी पुरुष को नारी के समर्पण की। जिस तरह पातिव्रत का इतना भर अर्थ कोई नहीं स्वीकार कर पाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि पत्नी काम-सदाचार तक सीमित रहे, फिर चाहे दिनभर लड़े-झगड़े, कटु बोले, क्रुद्ध हो उसी तरह पुरुष के भी पत्नीव्रत का अर्थ पत्नी को पर्याप्त सम्मान देना, उसकी भावनाओं का आदर करना तथा ध्यान रखना होता है। पुरुष में अपने को बड़ा मानने की हीन महत्त्वाकांक्षा रहती है, वह अपने कल्पित बड़प्पन के विपरीत जरा-सी भी बात दिखने पर उत्तेजित हो जाता है, हर छोटी-छोटी बात को पकड़ता और झल्लाता रहता है। बड़प्पन की इस कल्पना का आधार क्या है ? वास्तविकता तो सर्वथा विपरीत है। पुरुष, परिवार की कम ही आवश्यकताएँ पूरी करते हैं, नारी तो शेष सभी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए निरन्तर खपती रहती है। अतः पुरुष को इस हीन अहमन्यता से मुक्त होना चाहिए। यदि परिवार में स्त्री व पुरुष की प्रतिष्ठा असमान हुई तो इससे गृहस्थी की गाड़ी ठीक से नहीं चल पाती, लड़खड़ाती रहती है।

घर में सहिष्णुता पत्नी के लिए जितनी आवश्यक है, पति के लिए उससे भी अधिक आवश्यक है। क्योंकि नारी शारीरिक दृष्टि से उससे दुर्बल होती है और जो अधिक सक्षम है, उसे ही अधिक सहिष्णु होना चाहिए। पत्नी नम्रतापूर्वक बात करे, बाहर से पति के घर आने पर कुशलक्षेम पूछे, तो पति को भी घर-सम्बन्धी उसकी कठिनाइयाँ इतनी ही विनम्रता से पूछनी चाहिए।

विवाहित-जीवन शरीर और हृदय के मिलने से तुष्ट, पुष्ट और विकसित होता है। यह मिलन उभय-पक्षीय निश्छलता से ही सम्भव है। इस मिलन का स्वरूप मात्र शारीरिक रहा, तो उससे अन्ततः थकान और अतृप्ति ही मिलने वाली है। वैचारिक तथा भावनात्मक एकात्मता के प्रबल प्रयास की अन्तर्मन्थन की क्रिया से ही हार्दिक-प्रेम और सहानुभूति का नवनीत निकल सकेगा। सभी सफल दम्पत्तियों का एक ही मत है कि यह हार्दिक-प्रेम ज्यों-ज्यों प्रगाढ़ होता जाता है, भोग की व्यग्रता त्यों-त्यों घटती जाती है और आत्मीयता का अधिक गहरा आधार मन-बुद्धि में स्पष्ट होता जाता है। प्रयत्न इसी हार्दिक-मिलन के लिए किये जाने की आवश्यकता होती है। उसी में पुरुषार्थ और गरिमा भी है। भला शारीरिक-मिलन भी किसी प्रयत्न की अपेक्षा करता है ? शरीर की वृत्तियाँ तो स्वयं ही इतनी प्रबल हैं कि उस हेतु अलग से प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। आवश्यकता वैचारिक तथा भावनात्मक मिलन के प्रयासों की होती है। उसी में मिलन का आनन्द है।

नारी तो पति को अपना हृदय देने के लिए तैयार ही आती है। आवश्यकता पुरुष के भी वैसा ही तत्पर होने की रहती है। विनम्र, मधुर व्यवहार, भावनाओं और सुविधाओं का ध्यान तथा सम्मान—पत्नी के जीवन को एक अपूर्व सुख से भर देते हैं। वैवाहिक-जीवन के प्रारम्भ में तो प्रायः सभी शिक्षित-पुरुष ऐसा ही प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं, किन्तु कुछ ही दिनों बाद नारी को दासी मानने की दूषित सामन्ती वृत्ति से च्युत होने लगते हैं। पत्नी फिर पति द्वारा वैसे ही उमड़ते हुए हृदय के साथ व्यवहार किये जाने की प्रतीक्षा ही करती रहती है। वे उमंगें फिर उसे पति में नहीं दिखाई पड़तीं। उसके भीतर ही भीतर काँटा करकता रहता है। वेदना उसे मथने लगती है। पति की उपेक्षा उसके जीवन का तो आनन्द ही छीन लेती है और पति को अपनी व्यस्तता में पत्नी से अपेक्षाएँ पालते रहने से ही अवकाश नहीं मिलता। यह निष्ठाहीनता है। आवश्यकता उस हार्दिक-उमंग को स्थायी बनाने की है। ऐसा कृत्रिम रूप से किया जाना सम्भव नहीं है। जब तक मन में पत्नी के प्रति समर्पण की, आत्मदान की भावना नहीं है। उमंग-उल्लास व्यवहार में टिके नहीं रह सकते। प्रत्येक नारी में पैनी अन्तर्दृष्टि होती है। परिवर्तित मनःस्थिति की झाँकी उसे मिल जाती है और गहरी टीस से उसका हृदय बिलख उठता है। इसीलिए जिन लोगों में चरित्र और व्यवहार की समरसता तथा अविच्छिन्नता नहीं है, जिनमें शील और निष्ठा का अभाव है, वे पुरुष दाम्पत्य-जीवन प्रारम्भ करने के पात्र नहीं। उन्हें नारी पर अन्याय करने की यह धृष्टता विवाह के नाम पर नहीं करनी चाहिए कि प्रारम्भ में तो उसके बिना मन को शान्ति ही न मिलती हुई बतायें और जब उस कोमल संवेदनामूर्ति में आत्मदान की भावना गहराई तक जड़ चमा चुकी हो, तब उन्हें अपने ही अहं के खोल से झाँकने की फुर्सत न मिले और अपनी कार्य-व्यस्तता को इतना बढ़ा-चढ़ाकर आँकें कि घर में खट रही पत्नी के श्रम का मूल्य ही समझ में न आ सके। विवाह के कुछ ही दिनों बाद जो पति यह मानने लगे कि उसे अपना अवकाश का समय घर में व्यतीत करने की आवश्यकता नहीं है, पत्नी से विनोदपूर्ण चर्चा की कोई जरूरत नहीं है, उसके मनोरंजन के लिए स्वयं चिन्ता करने की क्या आवश्यकता, पैसे तो सब उसे ही सौंप देता हूँ, वह काम-सदाचार का पालन करते हुए भी अन्यायी कहा जायेगा। जिसे पत्नी की भावनात्मक अपेक्षाएँ समझने का समय नहीं, उसे वैवाहिक जीवन का प्रारम्भ करने की इच्छा व पहल भी नहीं करनी चाहिए। जो पत्नी को अपने से कुछ घटिया दर्जे का प्राणी मानता है, वह उससे सच्चे प्रेम की कल्पना व्यर्थ ही करता है, जो पत्नी के श्रम और सामर्थ्य का शोषण करने में ही खुश है, उसे पत्नी के रूप में सच्चा साथी पाने की कामना को भी तिलांजलि दे देनी चाहिए, क्योंकि शोषक और शोषित के बीच मैत्री-सम्बन्ध सम्भव नहीं है।

पति-पत्नी के बीच समर्पण सदा उभयपक्षीय ही हो सकता है। अपने अहं-केन्द्रित दुराग्रह से नये युग में पुरुष को मुक्त होना ही चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन मात्र समता की भावना से ही सफल व सार्थक हो सकता है। पत्नी के सभी कार्यों में पति का सहयोग भी आवश्यक है। घरेलू कार्यों में हाथ बँटाने का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी प्रत्येक पति को अनिवार्य रूप से समय निकालना चाहिए। पत्नी के विश्राम की चिन्ता भी पति को ही करनी चाहिए। आज तो स्थिति सर्वथा भिन्न है। पति अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रम से पत्नी को निरन्तर त्रस्त रखते हैं। रात देर तक साथियों से व्यर्थ गपशप, अकेले ही मनोरंजन आदि में उलझे रहकर देर रात गये घर लौटते हैं, वह भी इस मुद्रा में, मानो रण से जूझकर आ रहे हैं। दिनभर के कामों से थकी-माँदी पत्नी बाट जोहती बैठी रहती है। न समय पर खा पाती, न सो पाती है। इन विचित्र हरकतों को उद्दण्डतापूर्ण मूर्खता ही कहा जा सकता है। ये तो समाप्त होने ही चाहिए। साथ ही घर के कार्यों में सच्चे सहयोगी की भूमिका निभानी चाहिए। यदि किसी कारणवश पत्नी भोजन नहीं बना सकती तो उस दिन पति को उसी प्रेमपूर्ण भावना से भोजन बनाना चाहिए, जिससे नित्य पत्नी बनाती है।

सच्चा सौहार्द्र रहे तो पति-पत्नी की रुचियों में सामंजस्य तो हो ही सकता है, दोनों की अधिकांश रुचियाँ समान भी हो सकती हैं। पत्नी के स्वास्थ्य, विश्राम और मनोरंजन का ही नहीं, विकास का भी ध्यान पति को रखना चाहिए। जो लोग अकेले अपने ही विकास के इच्छुक हैं, उन्हें इस हेतु एक माध्यम से सहायक के रूप में पत्नी को पाने की इच्छा से विवाह नहीं करना चाहिए। पत्नी के श्रम और सेवा कार्यों का लाभ उठाकर मात्र अपना आत्मविकास करना भी नारी का शोषण है। पत्नी के आत्मविकास के लिए पति को भी अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं के एक अंश का उत्सर्ग करना चाहिए। दोनों का साथ-साथ आत्मविकास होता चले, तभी दाम्पत्य जीवन की सार्थकता है।

वस्तुतः पति और पत्नी दोनों मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। जीवन-यात्रा इस सामूहिक व्यक्तित्व की संयुक्त जिम्मेदारी है। इस संयुक्त उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिए दोनों को समर्पण और आत्मदान करना होगा।

पत्नी अपने पति की वास्तविक सहायक हों

पति-पत्नी जीवनरूपी रथ के दो पहियों के समान हैं, इसलिये उनका सशक्त होना, एक-सा होना एवं एक-दूसरे का सहकारी और सहयोगी होना अनिवार्य है। तभी यह जीवन-रथ सुचारु रूप से कार्यरत और उपयोगी हो सकता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रत्येक पति को अपनी पत्नी की सर्वांगीण उन्नति और विकास का प्रयत्न आवश्यक है। पति को अपनी पत्नी के अनुरूप और पत्नी को अपने पति के अनुरूप समन्वय करने वाला बनना ही पड़ेगा। बिना सामंजस्य के निर्वाह होना कठिन होगा।

पत्नी अपनी योग्यता के आधार पर पति में परिवर्तन लाकर, उसे वास्तविकता की ओर लाकर उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, कर्त्तव्य-परायण और उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक बना सकती है। अपने व्यवहार और कार्यों के द्वारा पति की आदतों, व्यवहार, आचार-विचार में, चाल-चलन में, आशातीत परिष्कार और सन्तुलन ला सकती है।

अपने-अपने कार्यक्षेत्र के अनुसार पति-पत्नी में एक-दूसरे के प्रति द्वेष के स्थान पर सद्भावना, सहकार और सहयोग के भाव रहना आवश्यक हैं। पत्नी का पति के प्रति सम्मान, समता और सराहना का दृष्टिकोण अपनाना ही सच्चा सहयोगी होना है। गृहस्थी की व्यवस्था और संचालन ऐसा हो कि एक स्वस्थ और पवित्र वातावरण निर्मित हो सके। ऐसा होने से परिवार में शान्ति और सन्तोष के भाव व्याप्त होकर आनन्द की प्राप्ति होती है।

पत्नी को अपने पति से पूर्णतया परिचित होकर उनके अनुकूल चलने में पारंगत होना चाहिए, जिससे उनके पतिदेव प्रसन्न और सन्तुष्ट रहें। अपने पति के हृदय को जीतकर उनकी अनुचरी बनने से पति अपनी पत्नी के हमेशा वशीभूत रहते हैं और आपस में एक-दूसरे के विश्वास और स्नेह के भाजन बने रहते हैं। जिस बात से कटुता पैदा होने की सम्भावना हो, उसे कदापि प्रस्तुत न होने दें।

अपने पति के सम्बन्ध में कभी भी निन्दा और छिद्रान्वेषण का अवसर न आने दें, क्योंकि यह कमी ही कटुता और गलतफहमी की जननी होती है। मृदु मुस्कान युक्त मधुर वाणी और उचित व्यवहार पति को सुखी एवं सन्तुष्ट बनाता है। इससे जीवन स्वर्ग के तुल्य बनता है।

पति हमेशा पत्नी की ओर से अपनी प्रेम-पिपासा को मिटाने के लिए लालायित रहता है। यदि पत्नी इस पिपासा को मिटाने में समर्थ न हुई तो पति के मन में एक अभाव पनपने लगता है और परिणामस्वरूप नीरसता जीवन में प्रवेश पाने लगती है। इससे पत्नी को सतर्क रहकर इस अवसाद को जीवन में न आने देने का भागीरथ प्रयत्न करना चाहिए। पति का रुख समझकर उसकी मर्जी के मुताबिक अपने स्नेह से उसे प्लावित करने से पति अपने को बड़ा ही भाग्यवान समझेगा। इसके प्रतिकूलता का रुख पति को दुश्चरित्र बनाने में सहायक होकर, दाम्पत्य-जीवन में कटुता लाकर उसे छिन्न-भिन्न कर देता है। इससे इस मामले में पत्नी को सावधानी और सतर्कता बरतनी अनिवार्य है।

पति की रुचि के अनुसार उत्तम सन्तोष प्रदान करने वाला पौष्टिक-भोजन कराना, उचित और नीति के अनुसार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रेम-स्नेहयुक्त इच्छा-पूर्ति करना और वांछित अवसरों पर सहयोग देकर पति की सहायक होकर दाम्पत्य जीवन को स्वर्ग के समान बनाने वाली पत्नी धन्य होती है।

स्त्री-शिक्षा के महत्त्व से आज भारत की नारी पुराने जमाने की अशिक्षित, निरीह, अज्ञानी और परावलम्बी नारी की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, स्वच्छन्द, स्वावलम्बी-जीवन जीने के योग्य हो गई है। उसमें विवेक जागा है। उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय, सुख-दुःख, भारतीय और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का समन्वय जीवन में लाने का प्रयास आज की नारी ने किया है। वह जीवन का मूल्यांकन करने में समर्थ हुई है। अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों के प्रति आज नारी जागरूक है और इसके फलस्वरूप वह गृहस्थ-जीवन और समाज में नव-चेतना भरने के योग्य हो गई है। जीवन की कटुता और अशांति नारी की इस प्रगति से दिनों-दिन कम होने की सम्भावना प्रतीत होती है। यदि नारी ने वर्तमान प्रचलित केवल पाश्चात्य-सभ्यता और संस्कृति को ही अपनाया और भारतीयता को तिलांजलि दे दी तो हो सकता है कि जीवन में कलह, कटुता, विच्छिन्नता और अशान्ति का स्रोत प्रवाहित होने लगे। नहीं तो समन्वय से कोई विशेष खतरा की सम्भावना नहीं।

भारतीयता के संस्कारों से संस्कृत-नारी समर्पण-भाव से ओत-प्रोत रहने के कारण पाश्चात्य दृष्टिकोण से पूर्णतया सहमत नहीं होती। विचार स्वातन्त्र्य और विवेक के आधार पर पति-पत्नी में समन्वय और सामंजस्य के भाव होने से कटुता उत्पन्न नहीं हो सकती। स्नेह और सहकार्य से आपसी सम्बन्ध दृढ़ और स्वस्थ होते जायेंगे और आपस में एक-दूसरे के पूरक होकर सुखी-जीवन जीने वाले होंगे।

पति-पत्नी में आपसी मन-मुटाव उत्पन्न करने वाले प्रसंगों का चतुरता से उड़ा देना भी जीवन की खुशी को कायम रखने का एक अच्छा तरीका है। इसके लिये भी दोनों को विस्तृत दृष्टिकोण वाला होना अनिवार्य है।

सन्तान के प्रति अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व को निभाते हुए विवेकी पत्नी का अपने पति की इच्छापूर्ति, स्नेह और व्यवहार में कोई अन्तर नहीं आता। अतः जीवन में सरसता रहे, इसके लिये प्रबुद्ध नारियाँ सतर्कता से दोनों पक्षों का चतुराई से सन्तुलन करती रहती हैं। परिणामस्वरूप कलह और अशान्ति उनसे कोसों दूर रहती हैं।

आज के युग में नर-नारी साथ-साथ घर-बाहर कार्यरत रहने लगे हैं और समय, परिस्थितियों के अनुसार अपने-आप को चलाने योग्य बनाते हैं। जहाँ कहीं गलतफहमी या विरोध की स्थिति उत्पन्न होने की सम्भावना होती है, वहाँ कुशल-गृहिणी मौन रहकर एकान्त में सब बातों, समस्याओं आदि को हल करके कटुता और विरोध पैदा नहीं होने देती। पति के प्रति सम्मान और स्नेह का प्रदर्शन—गलतफहमी और विरोध को पनपने नहीं देता।

पत्नी को पति के समक्ष समभाव से व्यवहार करना शोभनीय होता है। उसे अपने पौरुष-योग्यता का अभिमान न होकर सौम्य, सरल और उदार होना अधिक श्रेयस्कर है। इससे दाम्पत्य-जीवन सरस और सफल होता है।

दाम्पत्य-जीवन में सरसता, सरलता, सहयोग, स्नेह, सहकार्य, आनन्द एवं शान्ति के स्रोतों के प्रवाहित होने से सन्तान भी संस्कारित होकर आदर्श-सन्तान बनती है।

स्त्रियों के विषय में कर्त्तव्य-पालन और पातिव्रत्य धर्म को निभाने के सम्बन्ध में स्वाभाविक प्रवृत्ति का होना हमेशा पाया जाता है। नारियाँ और कन्याएँ स्वभाव से घर-गृहस्थी में व्यस्त रहती हैं और किसी भी एक पुरुष, जो कि उनका पति ही होता है, पर समर्पित रहती हैं। यह उनकी विशेषता है। यहाँ तक कि यह भी देखा गया है कि दुश्चरित्र नारियाँ मजबूरियों के कारण कुछ भी करती हों, पर उनकी आत्मीयता एक विशेष व्यक्ति में ही रहती है। उसका निरपेक्ष आत्म-समर्पण भी उसी व्यक्ति की ओर रहता है।

पातिव्रत्य-धर्म को पालन करने वाली नारी वासनारहित होकर पति-परायण रहती है। धर्म-कर्म में सहधर्मिणी होती है। उसके भाव पति के प्रति भगवान के समकक्ष होते हैं। भावना की दृष्टि से उसका भगवान पति ही रहता है। पतिव्रता की पति-सेवा, आचरण, व्यवहार निष्काम-भाव से होता है। यह सर्वस्व समर्पण नारी में तेज; विशालता एवं उच्चता को विकसित करता है। पूजा, पाठ, दान, धर्म, जप, तप, तीर्थ, यज्ञ आदि सभी के फल पति-सेवा से प्राप्त होते हैं। नारी की यह भावना स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति कराती है। भौतिकता और आध्यात्मिकता की दृष्टि से भी पति-परायणता नारी जीवन को सार्थकता प्रदान करती है। पति-सेवा व्रत के प्रभाव से वासना का अन्त होकर—लोभ, मोह, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मद-मत्सर पर भी विजय प्राप्त होती है। इसकी पुष्टि के लिये हमारे साहित्य, शास्त्रों, ग्रन्थों और वेद, उपनिषदों, पुराणों आदि में असंख्य आख्यानों का भण्डार भरा पड़ा है।

नारी को अपने पति के प्रति मन, कर्म एवं वचन से पवित्र, भावपूर्ण व्यवहार और आचरण करना श्रेयस्कर है। शास्त्रों में पति की अर्धांगिनी के उद्‌बोधन द्वारा नारी को सम्मानित कर उसे बराबरी का अधिकार प्रदान किया गया है। इसी समता की भावना से नारी धर्म, कर्म, यज्ञ, दान, तीर्थ आदि में पति के साथ-साथ रहती है और बराबरी से कार्य करती है। कभी दायें बाजू और कभी बायें बाजू बैठ अपने पति की शोभा और सम्पन्नता में चार चाँद लगाती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सच्ची पतिव्रता नारी को पति का अभाव मृत्युवत् होता है। कई ऐसी मिशालें भी हैं कि पतिव्रताओं ने अपने पति के साथ-साथ अपने प्राणों को सहज और स्वाभाविक रूप से विसर्जित कर दिया। इसकी और अधिक क्या विवेचना की जाय ? सत्यवान और सावित्री के आख्यान से यह सिद्ध है कि मृत्यु से भी अपने पति का छुटकारा कराने में नारी समर्थ होती है—अपने पतिव्रत-धर्म के कारण। सीताजी को पतिव्रत-धर्म के निर्वाह के सन्दर्भ में अनुसुइयाजी के उपदेश स्मरणीय हैं।

पति-परायण साध्वी स्त्रियाँ इस भारतवर्ष में ऐसी प्रभावशाली हो गई हैं कि उन्होंने अपने सतीत्व के प्रताप से सूर्य की गति को भी कुछ समय के लिये रोक दिया था। इस प्रकार प्रकृति की गतिविधियों को नियन्त्रित करने तक की शक्ति पतिव्रता को अपनी पति-सेवा से प्राप्त करते देखा गया है। रोहिणी और चन्द्रमा की एकरूपता भी प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। पातिव्रत्य धर्म के आदर्शों की भरमार हमारी भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है, जो भौतिकता से ऊपर है।

इसी सबके आधार पर नारी को देवी की संज्ञा और सम्बोधन प्राप्त हुआ। सम्मान और अधिकार भी नारी के त्याग और तपस्या के फल है। चैत्र, आश्विन आदि में देवी-पूजन, गौरी-पूजन, महासरस्वती, महालक्ष्मी, महाकाली का आह्वान नारी के आदर्शों के प्रतीक रूप बार-बार याद कराकर हमें कर्त्तव्य-परायण बनने के लिए उत्साहित करता है।

सरस्वती, लक्ष्मी, पार्वती तक के गर्व-हरण का उदाहरण और ऋषि-पत्नी के पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह और सूझ-बूझ का आदर्श-दत्तात्रेय की माँ के रूप में भी स्थापित कराकर नारियों को जाग्रत किया गया है। यह देव और मानव के बीच की टक्कर और विजय का नमूना हमें सचेत और सावधान रहने और बनने के लिए उपस्थित किया गया है।

शंकर की सेवा पार्वती करती हैं, नारायण की सेवा लक्ष्मी करती हैं, राम की सेवा सीता करती हैं, द्रौपदी—पाण्डवों की सेवारत हैं आदि सेवा के आदर्शों को बार-बार हमारे सामने लाने का अर्थ है—हमें बार-बार संस्कारित करना, अभ्यास का महत्त्व दिखाना है, जिससे हम इन प्रवृत्तियों के अभ्यस्त बनें और आचरण में उन्हें उतारें।

द्रौपदी और सत्यभामा के संवाद द्वारा भी पतिव्रता नारियों की विस्तार में दिनचर्या का उल्लेख महाभारत में किया गया है। जिससे इस आदर्श के माध्यम से नारियों में कर्त्तव्य-परायणता का स्फुरण हो सके और वे अपने परिवार तथा समाज में अपने उत्तरदायित्व को निभा सकें।

मनुस्मृति और अन्य स्मृतियों में भी ये ही नीति-वचन स्त्रियों को कहे गये हैं कि सदा प्रसन्नचित्त रहकर, पति की सेवा कर उन्हें सब प्रकार से सन्तुष्ट रखो, सफल और कुशल-गृहिणी बनो, सादगी और किफायत का जीवनयापन करने वाली बनो, परिवार और समाज के विकास और संरक्षण में सहयोगी रहो आदि-आदि।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि पत्नी को अपने पति की शरीर, मन, प्राण, वाणी और कर्म से सहायक होकर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व का कल्याण करना चाहिए। इसी से नव-निर्माण होना सम्भव है। बिना नारी-शक्ति की सहायता और सहयोग से लोक-सेवा और जन-कल्याण असम्भव है। अर्धांगिनी और रथ के दोनों चाकों को समता के साथ अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों को निभाने से ही विश्वकल्याण हो सकता है और उच्च जीवन जिया जा सकता है।

इतने व्यस्त न रहें कि दाम्पत्य जीवन नीरस बन जाय

'पति-पत्नी' अपने आचरण, व्यवहार, सेवा-सहयोग द्वारा एक-दूसरे को सुख-शान्ति प्रदान करने का प्रयास करते हैं। इसी से परिवार संगठन की स्थिति सुदृढ़ होती है। परन्तु यदि पति-पत्नी अपने पारिवारिक उद्देश्यों की पूर्ति—परस्पर सेवा-सहयोग द्वारा, सुख-शान्ति की प्राप्ति तथा अन्य कर्त्तव्यों की पूर्ति न कर सके तो यह पति-पत्नियों का सम्बन्ध मात्र विडम्बना ही कहा जा सकता है।

आजकल तो पति-पत्नी के वैवाहिक सम्बन्धों के कुछ दिनों के बाद कटुता पलने लगती है, कारण यह होता है कि जब पति-पत्नियों पर जीवन संघर्षों के थपेड़े आते हैं, तो परस्पर दोनों में झुँझलाहट उत्पन्न होने लगती है। दोनों एक-दूसरे से चिढ़ने लगते हैं और यह मात्रा यहाँ तक बढ़ जाती है कि परस्पर आकर्षण ही समाप्त हो जाता है। दोनों के बीच एक स्थायी कटुता जन्म ले लेती है और जिस सुख-शान्ति के लिए परिवार-गृहस्थी का निर्माण होता है, वह कोसों दूर चली जाती है।

ऐसे उदाहरण अनेक दृष्टिगोचर होते हैं जिनमें पत्नी की अदूरदर्शिता के कारण निजी स्वार्थ, लोभ-मोह के कारण और अबुद्धिमत्ता के कारण पति की प्रतिभा, उसकी कला, उसकी कार्यक्षमता नष्ट हुई है। इसका कुफल किसी एक को ही नहीं भोगना पड़ा बल्कि घर-परिवार, पति-पत्नी, समाज, देश, राष्ट्र सभी को भुगतना पड़ता है। वैसे यदि देखा जाय तो पति की कार्य-कुशलता जीवन लक्ष्य प्राप्ति में सक्षमता तभी प्राप्त कर सकता है, जब उसे अपने प्रत्येक कार्य में पत्नी का सहयोग एवं समर्थन प्राप्त होता है। कभी-कभी पत्नी, पति के कुछ फाइलें घर पर लाने या घर पर भी कुछ कार्य ऑफिस का करने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

या मित्रों से बात-चीत करने से असंतुष्ट रहती हैं। इससे पति के हृदय में पत्नी को अदूरदर्शी मानने का भाव जागता है, जिसके परिणामस्वरूप पत्नी पति की सहानुभूति नहीं प्राप्त कर पाती। इससे कभी-कभी पति नाराज होकर अधिक समय बाहर लगाने लगता है। परिणामतः पति-पत्नी दोनों में मन-मुटाव व असन्तोष हो जाता है और यही उभरकर जब-जब घर में झगड़ा-लड़ाई का अखाड़ा बन जाता है।

ऐसे भी अनेक व्यवसाय हैं जिसमें पति एकदम व्यस्त रहते हैं और जिनके कारण उनकी पत्नियों को व्यस्त रहना पड़ता है। वकील, लेखक, पत्रकार, सामाजिक व राजनीतिक, नेता, वैज्ञानिक आदि अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो अपने कार्यों में एकदम व्यस्त होते हैं। इसी तरह शिल्पी, कारीगर भी होते हैं। आजकल अध्यापक, क्लर्क को भी अतिरिक्त कार्य करने होते हैं, महँगाई के कारण, जिससे वे भी अपने कार्यों में व्यस्त रहा करते हैं, जिससे स्वाभाविक ही उनकी पत्नियों को खीझ उत्पन्न हो सकती है, परन्तु परिवार व्यवस्था को सुचारू रूप से संचालित करने हेतु आवश्यक है कि पत्नी भी अपने को किन्हीं कार्यों में व्यस्त रखे, जिससे पति की व्यस्तता उसे अखरे नहीं। यदि पत्नी सुयोग्य है तो पति के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करती हुई उसके कार्यों में सहयोग प्रदान कर सकती है। स्नेहपूर्ण व्यवहार करके पारस्परिक हर्षोल्लास का उद्भव कर सकती है। कभी-कभी व्यस्त पतियों से परेशान होकर उनकी पत्नियाँ उनसे हर बात में असहयोग करती हैं और उनके कार्यों में बाधा डालती हैं।

यदि पति-पत्नी को अपने पारिवारिक सम्बन्धों को मधुर, मंजुल एवं आनन्दयुक्त बनाना हो तो वे परस्पर एक-दूसरे की समस्याओं को नजदीक से समझने का प्रयास करें और एक-दूसरे की समस्याओं को सुलझाने का प्रयास करें। आयु की कमी को दूर करने हेतु पत्नी को कोई छोटे-छोटे उद्योग-धन्धे चलाने चाहिए, जिससे उनकी आर्थिक परेशानी दूर हो सके।

पत्नी की एक भावनात्मक आकांक्षा और आवश्यकता है—पति का सान्निध्य। अकारण या छोटे कारणों से दोनों परस्पर जितने दूर रहते हैं, जितने कम समय साथ रहते हैं, उतनी ही उनके बीच खाई चौड़ी होती है। इसे पाटने के लिए विशेषतया पति को अधिक सावधान रहना चाहिए। पुरुष अपना मनोरंजन अन्य साथी, मित्रों तथा क्रिया-कलापों से कर लेता है, पर पत्नी के लिए तो सारे दिन कोल्हू के बैल की तरह जुते रहने के अतिरिक्त कहीं कोई उल्लास की झलक है तो पति के सान्निध्य में ही है। यों वह घर में भी बच्चों के ननद, देवर आदि के साथ हँसती-खेलती है फिर भी पति के सान्निध्य की आकांक्षा अपने स्थान पर अनौखी और अकेली है। उसकी पूर्ति अन्य साधनों से नहीं हो सकती।

जो बहुत अधिक व्यस्त नहीं हैं, उन्हें हाट, बाजार जाते समय अपनी पत्नी को साथ ले जाने का प्रयत्न करना चाहिए। घर में रहें तब ऐसे काम सामने रहने चाहिए, जिनसे दोनों मिल-जुलकर सहयोग कर सकें। खाली समय को पत्नी के, बच्चों के तथा घर के लोगों के साथ बिताने, उनके साथ हँसने-खेलने या काम करने का प्रयत्न करना चाहिए। आखिर पैसा कमाना और घर चलाना ही तो एकमात्र परिवार निर्माण का उद्देश्य नहीं है। पत्नी नौकरानी नहीं है। उसकी भी कुछ अपनी आकांक्षा होती है। विवाह का उद्देश्य एक ऐसे समान स्तर के स्वजन-स्नेही का सहचरत्व होता है जो उसकी क्षमता विकसित करे—स्नेह, सहयोग प्रदान करे और सान्निध्य लाभ देकर नीरस जीवन यात्रा में सरसता का संचार करे। इस तथ्य को भुला देने पर किसी भी पति को अपनी पत्नी की कोमल भावनाओं का लाभ प्राप्त करने से वंचित रहना पड़ सकता है।

पत्नी को भी इसी प्रकार ध्यान रखना चाहिए। उसके घरेलू काम अनेकों हो सकते हैं, उन्हें यथासम्भव तब तक निपटा लेना चाहिए जब पति घर आवें। जो काम शेष रहें वे ऐसे होने चाहिए जिन्हें करते हुए पति की समीपता सम्भव हो सके। थोड़ी सावधानी बरतने और काम का क्रय व्यवस्थित कर देने से ऐसा सरलतापूर्वक सम्भव हो सकता है। आवश्यक नहीं है कि पति-पत्नी का सान्निध्य मनोरंजन के लिए ही हो। वे सामान्य काम-काज को एक-दूसरे के साथ मिलकर करें तो काम जल्दी तथा सुगम हो जाता है साथ ही उसमें मनोरंजन का लाभ भी मिल सकता है।

पत्नी को कहीं दूर देहात में रखना और स्वयं उपार्जन के सम्बन्ध में बहुत दूर रहना एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। वैसा तभी करना चाहिए जब और कोई उपाय ही शेष न रहे। उचित यही है कि दोनों साथ रहें। आर्थिक कठिनाई को हल करने के लिए परिवार छोटा रखना, मितव्ययता बरतना, किन्हीं उद्योगों का आश्रय लेना जैसे उपाय बरते जा सकते हैं। जहाँ दोनों नौकरी करते हैं और दूर-दूर रहते हैं वहाँ आर्थिक लाभ भले ही होता रहे पर दाम्पत्य जीवन का वह आनन्द जिसके लिए विवाह किया जाता है प्रायः हाथ से चला ही जाता है। अपवादों की बात दूसरी है। सामान्यतया पति-पत्नी के सद्भाव वृक्ष को स्नेह, सहयोग भरे सान्निध्य से ही सींचा जा सकता है। इस लक्ष्य की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

दाम्पत्य जीवन का आचार संहिता

विवाह की आवश्यकता पति-पत्नी को इसलिए होती है कि वे एक-दूसरे के साथी-सहयोगी बनकर प्रगति पथ पर आगे बढ़ सकने में सहायक सिद्ध हो सकें। दुःख-दर्द में हिस्सा बँटा सकें। एकाकीपन की अपूर्णता दूर कर सकें। प्रेम जिसे जीवन का अमृत कहा जाता है, उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निरन्तर उत्पन्न करते और एक-दूसरे को उपलब्ध कराते रहें। इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए मात्र गुण, कर्म, स्वभाव, दृष्टिकोण और काम में उत्साह परखा जाना चाहिए।

लावण्य को प्रधानता देने वाले जोड़े आरम्भ में भले ही उत्साह अनुभव करते हों, पर वह पानी का बबूला देर तक नहीं ठहरता। किशोरावस्था के अन्त और तरुणाई के आरम्भ वाले कुछ वर्ष ही ऐसे होते हैं, जिनमें चेहरे की चमक-दमक बढ़ी-चढ़ी रहती है। इसके बाद परिपक्वता आते ही कोमलता का स्थान कठोरता लेने लगती है और चेहरा वैसा ही हो जाता है, जैसा आम लोगों का होता है। नवीनता में ही आकर्षण और उत्साह रहता है। अधिक दिनों तक साथ-साथ रहने पर तो स्वाभाविक पारिवारिकता मात्र शेष रह जाती है। तब उस उमंग का कोई आधार नहीं रह जाता, जिससे प्रेरित होकर अप्सरा-सी बहू और कामदेव जैसा दूल्हा तलाश करने की ललक रहती थी। अच्छा होता इस बच्चों की तरह चमकीले खिलौनों पर मचलने की दृष्टि को आरम्भ से ही निरर्थक मान लिया जाय और जोड़े मिलाते समय स्वास्थ्य, शिक्षा और स्वभाव को ही सब कुछ मानते हुए चयन किया जाय।

अति सुन्दरता की तलाश खतरे से भरी कोशिश है। उसमें नजर लगने का डर रहता है। चिकनी मिट्टी पर ही फिसलन होती है। दोनों में से जो पक्ष इस दृष्टि से कमजोर पड़ता है, तो दूसरा पक्ष उसकी अवमानना कर सकता है। जब रूप ही सब कुछ ठहरा तो ऐसी दृष्टि वाला अधिक सौन्दर्य दीख पड़ने पर अपनी पसंदगी दूसरी दिशा में भी मोड़ सकता है। इन खतरों को ध्यान में रखते हुए, अपने देश वालों की आकृति-प्रकृति को ध्यान में रखते हुए चमड़ी की चमक और चेहरे की बनावट को उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा जाना चाहिए।

कामुकता को भी वर-वधू उपेक्षा की दृष्टि से ही देखें। उसकी छूट न हो। संयम बरतें और स्वस्थता तथा दीर्घ आयुष्य को अक्षुण्ण रखें। इस दिशा में अत्युत्साह बरतने पर सन्तानों की संख्या बढ़ने और उनके दुर्बल होने का खतरा भी रहता है। इसलिए विवाह-मर्यादाओं को समझना और समझाना चाहिए। इसी में यह अनुबन्ध भी जोड़ना चाहिए कि असंयम न अपनाया जाय और अपना तथा साथी का स्वास्थ्य बर्बाद न किया जाय।

विवाह के बाद से लेकर न्यूनतम पाँच वर्ष ऐसे रहने चाहिए, जिसमें एक-दूसरे की प्रगति में एकनिष्ठ होकर सहायता कर सकें। अधिक सुयोग्य बन सकें। इसी अवधि में बच्चों से लद जाना एक प्रकार से विवाह का उद्देश्य ही नष्ट करना है। परस्पर सहायता देने, अधिक समर्थ, सुयोग्य बनने-बनाने का प्रयास छोड़कर दोनों को अस्वस्थता, आर्थिक चिन्ता से लादना किसी भी प्रकार बुद्धिमत्ता नहीं है। विवाह के साथ जुड़े हुए इन अनुबन्धों को न केवल पति-पत्नी समझें वरन् पूरे परिवार के लिए यही उचित है कि उपयोगी परामर्श देने और अनुकूल वातावरण बनाने में सहायक होते रहें।

विवाह दाम्पत्य-जीवन तक सीमित नहीं है। इसके साथ समूचे परिवार की सुविधा-असुविधा भी जुड़ी हुई है। यदि उद्देश्य के साथ नीतिमत्ता जुड़ी रहे तो घर में एक समर्थ व्यक्ति बढ़ जाने के कारण उसके ज्ञान एवं श्रम सहयोग का लाभ समूचे परिवार को मिलेगा। हर सदस्य को अपनी स्थिति में कुछ और सुविधा-प्रसन्नता जुड़ जाने का अवसर मिलेगा। किन्तु विवाह होते ही संयुक्त परिवार से छिटक कर अलग हो जाने का मन बनने लगे तो नये आगन्तुक से लाभ मिलना तो दूर पुराने का सहयोग भी परिवार के हाथ से चला जायेगा और वह घाटे में रहेगा। भले ही नव-दम्पत्ति अलग होकर अपनी आजीविका को दो पर ही खर्च करने लगने में अधिक सुविधा अनुभव करें। यह नीति अपनाने वाले यह गाँठ बाँध लें कि आगे चलकर उसका भी परिवार बनना है। उनके भी बच्चों की शादियाँ होनी हैं। तब अपने अभिभावकों की कृति का वे भी अनुकरण कर सकते हैं और बुढ़ापे में उन्हें भी असुविधाओं के घेरे में छोड़कर अलग हो सकते हैं। यह अवसर तब आवे जब घर की वर्तमान पीढ़ी स्वावलम्बी हो चुकी हो और सम्मिलित जिम्मेदारियाँ शेष न रही हों।

नव-वधू को गृह लक्ष्मी कहा जाता है। उसे अपना दायित्व यह अनुभव करना चाहिए कि जिस घर में प्रवेश किया है, उसके वातावरण में रचनात्मक गतिविधियों का संचार करे। हर सदस्य को अधिक सुखी, समुन्नत, सुयोग्य बनाने में योगदान दे। वधुएँ यह कार्य अधिक अच्छी तरह कर सकती हैं क्योंकि उन्हें परिवार के वातावरण में पूरे समय रहने का अवसर मिलता है, जबकि लड़के दिन भर काम-काज में जुटे रहकर सोने-खाने के लिए ही घर आते हैं।

परिवारों में लड़के-लड़की का अन्तर नहीं उपजने देना चाहिए। बहू और बेटों में अन्तर नहीं होना चाहिए। बेटी का जन्मना उदासी का कारण नहीं होना चाहिए। उन्हें बेटे की तुलना में किसी भी प्रकार कम मान या महत्त्व नहीं मिलना चाहिए। सोचा जाना चाहिए कि अपनी माता और पत्नी भी तो किसी के घर बेटी बनकर ही जन्मी होंगी। उनने ही तो अपने परिवार की सुखद संरचना की है। अपनी बेटी अपने घर न रही तो न सही, किसी दूसरे का घर तो बसायेगी। अपने घर में भी जो महिलाएँ हैं वे किसी दूसरे के घर जन्मने के उपरान्त ही उस परिवार की सुव्यवस्था बनाने आई हैं। सृष्टि क्रम यही है। यदि बेटियों की उपेक्षा होने लगे। बेटे ही प्रिय लगें, तो यह भी सोचना चाहिए कि बेटियों के बिना संसार कैसे चलेगा। सर्वत्र बेटे ही बेटे होने लगें तो समझना चाहिए कि महिलाओं का अत्यधिक अभाव हो जाने पर एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रकार से मनुष्य का वंश ही समाप्त हो जायेगा। औचित्य इसी में है कि बेटियों को भी उतना ही मान दिया जाय जितना कि बेटों को मिलता है। अपना घर सँभालने के लिए जिस प्रकार सुयोग्य वधू की अपेक्षा रहती है, उसी प्रकार यह भी सोचा जाना चाहिए कि दूसरों का घर बसाने के लिए अपनी लड़की को हर दृष्टि से सुयोग्य बनाकर भेजा जाय।

यहाँ एक बात और भी ध्यान रखने योग्य है कि हर किसी का विवाह होना आवश्यक नहीं है। रोगियों, अविकसितों और असमर्थों को विवाह नहीं ही करना चाहिए। स्वयं हैरानी की स्थिति में होने पर कोई दूसरे साथी की सेवा-सहायता करने का दायित्व कैसे निबाहा जा सकता है ? हर प्रश्न गम्भीरतापूर्वक सोचा जाना चाहिए और असमर्थता की स्थिति में बिना विवाह के रहने का ही निश्चय किया जाना चाहिए।

आज की परिस्थितियों में संतान न होना हर दृष्टि से सौभाग्य का चिह्न है। परिस्थितियाँ जनसंख्या वृद्धि के अनुरूप नहीं हैं। जिनकी संतानें नहीं हैं, वे कई दृष्टि से भाग्यशाली हैं। एक तो इसलिए कि वे देश-समाज पर पर अनावश्यक भार बढ़ाने के लांछन से बच जाते हैं। दूसरे इसलिए कि संतानरहित होने पर पति-पत्नी एक-दूसरे की अधिक सेवा-सहायता कर सकते हैं। अपनी क्षमता का लाभ परिवार और समाज को अधिक मात्रा में दे सकते हैं। समाज सेवा के लिए, पुण्य-परमार्थ के लिए उस बचत का उपयोग कर सकते हैं, जो संतान होने की दशा में खर्च हो जाती और अपने पास न समय बच पाता न धन। यदि इन सभी बातों पर ध्यान दिया जाय तो गृहस्थ जीवन एक तपोवन व दाम्पत्य स्वर्गोपम बन सकता है।

संतुलित दाम्पत्य जीवन और पत्नी की भूमिका

संतुलन और सामंजस्य एकांगी नहीं होता अर्थात् एकाकी प्रयत्न से सामंजस्य का प्रयास प्रायः निरर्थक होते देखा जाता है। तुला के दो पलड़ों को संतुलित रखने के लिए समतुल्य भार की वस्तुएँ रखनी पड़ती हैं, नाव के दोनों सिरों पर बैठे दो लोग यदि संतुलन खो दें तो नाव डूबने का खतरा रहता है, इसी प्रकार परिवार रूपी नाव को संतुलित रखने अर्थात् डूबने से बचाये रखने में दोनों व्यक्तियों अर्थात् दम्पत्ति का पारस्परिक सहयोग एवं सहकार आवश्यक है, अन्यथा एक-दूसरे किनारे पर ले जाना चाहता है और दूसरा दूसरे किनारे पर, तो फिर कशमकंश की स्थिति का निर्माण हो जाएगा। ऐसी परिस्थिति में सामंजस्य द्वारा संतुलन बनाया जा सकता है। कार में बैठने वाले अनेक लोग होते हैं किन्तु चालक एक ही। इसी प्रकार मोटर, ट्रेन, वायुयान को एक ही चालक द्वारा नियन्त्रित किया जाता है, किन्तु चालक यदि संतुलन खो देता है तो भीषण दुर्घटनाएँ होती देखी गई हैं। इस कसौटी में पत्नी ही खरी उतरती है क्योंकि वह अहर्निश परिवार के सम्पर्क एवं सान्निद्धि में रहती है पति तो बाहर रहकर, नौकरी अथवा काम-धन्धे द्वारा परिवार की आवश्यकताओं की सम्पूर्ति हेतु प्रयत्नशील रहता है। प्रश्न यह उठता है कि संचालक यदि प्रशिक्षित नहीं तो दुर्घटना की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

परिवार को हम एक गाड़ी ही मानें और उस गाड़ी की आवश्यकताएँ जुटाने वाला अर्थात् ईंधन, पानी की व्यवस्था करने वाले व्यवस्थापक पति को मान सकते हैं, तो परिवार को संचालित एवं सम्पादित करने के लिए एक संयोजक की भी आवश्यकता रहती है। चालक की थोड़ी-सी असावधानी ही गाड़ी को क्षतिग्रस्त कर सकती—अर्थात् परिवार संस्था चौपट हो सकती है। बनाना सरल है। किन्तु चलाना कठिन है, कमाना जितना सरल है खर्च करना उतना ही कठिन है, आदमी की समझदारी इस बात में नहीं निहित है कि वह कितना और कैसे कमाता है ? वरन् कैसे और कितना खर्च करता है ? इस दृष्टि से भी पत्नी का दायित्व पति से अधिक माना जा सकता है। पत्नी ही परिवार की वास्तविक कर्ता-धर्ता होती है, उसी के विवेक से परिवार सुखी एवं समुन्नत होता चला जाता है और अविवेक से दुःखी एवं अवनत होता जाता है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने 'गवन' उपन्यास में पत्नी की उस कमजोरी का चित्रण किया है, जिससे पति को गवन करना पड़ा और सजा भी काटनी पड़ी।

इसके विपरीत पत्नी द्वारा पतियों को जीवन दृष्टि देने वाले ऐसे अनेक उदाहरण मौजूद हैं, जिससे वे अपने जीवन में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वाह कर सके—अन्यथा उनका जीवन आरम्भ में घिनौना ही था, इस सन्दर्भ में रत्नावली, विधोत्तमा एवं वाल्मीकि की पत्नी का स्मरण यहाँ समीचीन ही है। पति को प्रत्येक दृष्टि से पत्नी सहायक सिद्ध हो सकती है, साहित्य साधना में भामती का उदाहरण, रणभूमि में कैकयी एवं हाँडारानी अविस्मरणीय हैं। अभिप्राय स्पष्ट है कि ये पत्नियाँ स्वयं संतुलन खो देतीं तो हम ऐसे महापुरुषों से वंचित रह जाते। नैतिक, सांस्कृतिक दृष्टि से इनकी संतुलन क्षमता अद्वितीय मानी जा सकती है क्योंकि दाम्पत्य जीवन की आधारशिला में दोनों की उपादेयता अप्रतिम ही मानी जाती है। दाम्पत्य-जीवन रूपी संस्था को संविधान की सफलता विशेष रूप से नारी की ही गुणवत्ता पर आधारित है। पत्नी की व्यवहारकुशलता ही बिगड़े मिजाज पतियों को रामवाण औषधि सिद्ध हुई है, पति की साज और सँभाल के प्रति सतर्कता, उसकी आवश्यकताओं का यथासम्भव ध्यान आयु के अनुरूप प्रेम और सम्मान का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आदान-प्रदान, पति को संतुष्ट बनाये रखने में पत्नी की सफलता, उसकी बुद्धि कौशल एवं प्रत्युत्पन्नमति पर निर्भर करता है। अतः दाम्पत्य जीवन के संतुलन की कुंजी पत्नी ही कही जा सकती है। जो पत्नी प्रेम, सम्मान, सौहार्द्र एवं सद्भाव के गुणों से ओत-प्रोत है तथा जिसे अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का बोध है। वह पति के लिए वरदान ही कही जा सकती है। ऐसे दम्पत्य ही सही अर्थों में सुखी एवं सम्पन्न कहे जा सकते हैं। सम्पन्नता का अभिप्राय धन एवं वैभव से नहीं है। बल्कि दाम्पत्य जीवन के स्वर्ण सूत्रों को जीवन में सफलतापूर्वक चरितार्थ करने से है अन्यथा अनेक धन की दृष्टि से सम्पन्न कहे जाने वाले दम्पत्ति नारकीय जीवन जीने के लिए विवश हैं। वहीं दूसरी और सुमन के अर्थात् सुन्दर मन के विचारों की सम्पदा के धनी दम्पत्ति गौरवशाली एवं गरिमामय जीवन जीते हैं जो अनुकरणीय एवं आदर्श कहे जाते हैं।

नारी भावना की साक्षात् प्रतिमूर्ति एवं देवी होती है। सद्भावना ही मनुष्यों को जोड़ने एवं दुर्भावना तोड़ने का कार्य करती है। किन्तु पति-पत्नी में निर्मल प्रेम है तो दोनों में सदैव वैचारिक एवं भावनात्मक तादात्म्य रहेगा और घृणा एवं द्वेष है तो कटुता रहेगी—यह वैज्ञानिक सत्य है कि क्रिया की प्रतिक्रिया समान रूप से होती है।

जिस प्रकार ध्वनि की प्रतिध्वनि एवं बिम्ब का प्रतिबिम्ब समानधर्मा होता है। उसी प्रकार प्रेम की प्रतिक्रिया प्रेम होती है और क्रोध एवं घृणा की क्रोध एवं घृणा। गेंद को जितनी जोर से दीवार पर मारेंगे उतने ही जोर से लौटकर आएगी। प्रेम वह पारस है, जिस किसी लौह कण को संस्पर्श करता है, स्वर्ण में परिणित कर देता है। पति-पत्नी में यदि परस्पर प्रेम हो तो वे एक-दूसरे को विश्वसुन्दर एवं विश्वसुन्दरी से कम नहीं मानते, भले चर्मचक्षुओं से वे कुरूप प्रतियोगिता में प्रथम आने वाले हैं। दम्पत्ति के लिए प्रेमचक्षुओं की महत्ता को रखना संतुलन के लिए अनिवार्य आवश्यकता है।

प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए मात्र वाणी ही पर्याप्त नहीं है, वरन् यह कहना अत्युक्ति न होगा कि प्रेम की भाषा मौन होती है। मात्र सांकेतिक रूप से दूसरे के भावों को समझने में सक्षम हो जाते हैं, जैसे सीताजी रामचन्द्र जी की आन्तरिक भावना को समझकर ही केवट को देने के लिए मुंदरी देने लगी थी—पत्नी अपने पति के हृदय से सुपरिचित रहती है, तभी उसकी दाम्पत्य जीवन की सच्ची सफलता मानी जा सकती है।

आत्मीयता की अनुभूति के सम्बन्ध में भी यही नियम लागू होता है—आत्मीयता की अभिव्यक्ति भी वाणी द्वारा सम्भव नहीं, यदि की भी जाती है तो कृत्रिमता परिलक्षित होती है। आत्मीयता जिससे होती है, उसे दिया जाता है, सम्मान, प्रेम, सद्भाव आदि पाने के पूर्व देने ही पड़ते हैं। यदि पाने की इच्छा है और देना नहीं जानते, तो संतुलन बिगड़ने की ही सम्भावना रहती है। प्रशंसा एक ऐसा अचूक ब्रह्मास्त्र है, जिस पर चलाया जाता है खाली नहीं जा सकता है। इसे प्रशंसा-पाश भी कहा जा सकता है। जैसे प्रेमपाश में आबद्ध प्राणियों को अलग नहीं किया जा सकता वैसे प्रशंसा में बँधकर सहज उन्मुक्ति सम्भव नहीं। मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अपनी प्रशंसा सुनकर हर व्यक्ति प्रसन्न हो जाता है। फिर ऐसे अस्त्र का प्रयोग पति-पत्नी क्यों नहीं करते ? पति की सहानुभूति अर्जित करने एवं सन्तुलन बनाये रखने के लिए आवश्यक है कि प्रशंसा का सहारा लिया जाय। परस्पर प्रशंसा से सद्भावना का संचार होता है।

प्रशंसा का अभिप्राण गुणों की, सत्कर्मों की ही प्रशंसा की जाय। जिससे एक-दूसरे को प्रोत्साहन भी मिलता रहेगा और प्रेरणा भी। असद्वृत्तियों और दुष्प्रवृत्तियों की प्रशंसा अहितकर होगी—असद्कार्यों की आलोचना में दाम्पत्य का संतुलन वर्तमान में तो डगमगता दीखे, किन्तु दूरगामी परिणाम अनुकूल ही होंगे। दुर्विचार की आलोचना से अवमानना भी हो सकती है। किन्तु मन्दोदरी इस भय से अपने पति रावण को न समझावे ऐसा नहीं हो सकता।

नवदम्पत्ति द्वारा जब एक नूतन सदस्य परिवार में संतान के रूप में जुड़ जाता है, तब कुछ ऐसी अनुभूति करने लगते हैं कि खास पति महोदय की पत्नी का प्रेम कुछ कम हो गया है। वस्तुतः ऐसा है नहीं तथापि संतान स्वाभाविक रूप से प्रेम विभाजन का कारण तो होती है।

माँ का वात्सल्य जब पराकाष्ठा पर पहुँचने लगता है तो पति की उपेक्षा की सम्भावना हो सकती है, ऐसे अवसर पर भी पत्नी को विशेष सतर्कता से संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता होती है, पति को यह आभास नहीं होना चाहिए कि उसके, प्रति अब पत्नी के प्रेम में कुछ कमी आई है। संतान के प्रति पिता का भी तो प्रेम होता है, उसकी भी सन्तति है। एक और महत्त्वपूर्ण बात दाम्पत्य जीवन में सन्तुलन बनाये रखने के लिए आवश्यक है, जहाँ कहीं गत्यावरोध होता है, तो उसकी प्रतिक्रिया होती है, बर्तन आपस में टकराने पर आवाज करते हैं। नीड़ों के समीप कलरव होता है, इसी प्रकार पति-पत्नी का स्वाभाविक रूप से कभी-कभी किसी भी विषय में मतभेद हो सकता है, ऐसी स्थिति में जब कभी उत्तेजना अथवा आवेश का जन्म हो तो उसे एकान्त में ही अभिव्यक्ति करना श्रेयस्कर है। आपसी मत-भेद के मनोमालिन्य को दूसरे के सामने प्रकट करने से अहम को ठेस पहुँचती है। अकेले में डाँट-डपट, पुचकार-फटकार, प्रेम से और क्रोध विज्ञापित नहीं हो पाता, जिससे वह पड़ौस में अथवा मुहल्ले में चर्चा का विषय नहीं बनता। आपसी मनोमालिन्य का विज्ञापन कटुता एवं मनोगुत्थियों को बढ़ाता है। मनोवैज्ञानिक तथ्य है जो बात किसी व्यक्ति से मनवाना चाहते हो, यदि दोस्तों अथवा भीड़ के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बीच है तो उसका अहम् गलत बात की भी पैरवी करेगा अर्थात् आड़े आयेगा किन्तु उसी बात को अकेले में समझा दो तो अहम् की तुष्टि हो जाती है और सन्तुलन बिगड़ने से बच जाता है। असन्तुलन प्रत्येक स्थिति में अलाभकर है। विशेषकर दाम्पत्य जीवन के लिए तो यह अभिशाप कहा जा सकता है।

दाम्पत्य-जीवन ढोयें नहीं सँजोयें

प्रजनन प्रक्रिया में जो आवेश-उद्वेग है, नर-नारी के बीच जो आकर्षण है, वह प्रकृति ने इस प्रयोजन के लिए सँजोया है कि उस आधार पर दो व्यक्तियों के मिलन की भावनात्मक एवं रासायनिक क्रिया, इस जगती के लिए कुछ उपयुक्त अनुदान प्रस्तुत करती रहे।

दो वस्तुओं के मिश्रण से तीसरी वस्तु बनाने की रासायनिक प्रक्रिया से हर कोई परिचित है। औषधिशास्त्री जानते हैं कि यदि अमुक वनस्पतियों, धातुओं अथवा क्षारों का अलग-अलग सेवन किया जाय तो उससे सामान्य परिणाम ही रहेगा, पर यदि उन्हें मिला दिया जाय तो इस मिश्रण से एक नई वस्तु, नई प्रक्रिया उत्पन्न होगी। रसायन-शास्त्र इस रीति-नीति को खोजता रहता है और उपलब्ध ज्ञान के आधार पर नित नये आविष्कार करता रहता है।

यही मिश्रण सृष्टि-निर्माण क्रम में चलता रहने से रंग-बिरंगे और विविध प्रतिभाओं से सुसम्पन्न फूल और तरह-तरह के स्वाद वाले फल उत्पन्न होते हैं। नर-नारी के बीच ऐसे अद्भुत घुलनशील तथ्य हैं कि यदि वे गहन स्तर तक परस्पर मिल सकें तो एक नया व्यक्तित्व उत्पन्न होता है और उसके प्रभाव से दोनों अपना पुराना स्तर खोकर नये स्तर के बन जाते हैं। कुमारी अवस्था में लड़की जिस स्तर की थी, उसमें विवाह के बाद काया-कल्प जैसा परिवर्तन होता है और किशोर लड़के विवाह से पूर्व जिस प्रकृति के थे, विवाह बाद वे इतने बदल जाते हैं कि केवल आकृति ही पुरानी रह जाती है, प्रकृति में जमीन-आसमान जैसा अन्तर उपस्थित होता है। पर यह होगा तभी जब वे दोनों भाव-गह्वर में गहराई तक उतर कर एक-दूसरे में घुस जाने की स्थिति प्राप्त करलें। शारीरिक संयोग बहुत उथला है। वह नाई की दुकान पर हजामत बनवा लेने या तेल मालिश करा लेने, दाद खुजाने जैसी नगण्य और तुच्छ क्रिया है, वह भी विवाह का एक प्रयोजन है, पर उतने भर से व्यक्तियों का मिलन या घुलन पूरा नहीं होता, उसके लिए ममता, आत्मीयता, भावुकता, बफादारी और आत्म-समर्पण के भाव गहन स्तर पर उतर कर एकत्व में परिणित होने चाहिए।

व्यक्तित्व के घुलन का अर्थ है भावनात्मक इतनी सघनता जिसमें शरीरों की भिन्नता का आभास ही नष्ट हो जाय। एक प्राण दो शरीर का आभास होने लगे। इतनी सघनता के प्रतिफल दो होते हैं, एक प्रखर, एक अभिनव व्यक्तित्व का ऐसा नवनिर्माण जिसकी आभा से दोनों शरीर समान रूप से जगमगा उठें। दूसरा प्रतिफल होता है सन्तान की ऐसी उपलब्धि भी जो अगणित प्रतिभाओं और विशेषताओं से सम्पन्न हो। विवाह का मूल प्रयोजन यही है। नर-नारी के बीच स्वाभाविक आकर्षण का कारण यही है। रतिक्रिया में जिस आनन्द, आवेश का समावेश है उसका कारण यही है। प्रकृति चाहती है उसकी दुनिया में जीवधारियों का वंश ही न बना रहे वरन् उनका स्तर भी विकसित होता रहे, भावनात्मक सघनता का सम्मिश्रण व्यक्तित्वों का स्तर विकसित करता है और पीढ़ियों में विशेषता भरता है। यही प्रतिक्रिया जब शारीरिक सघनता में परिणित होती है, उच्चकोटि के गुणों से सम्पन्न सन्तति का जन्म होता है। दो भिन्न लिंगी प्राणियों की अपूर्णताओं का समाधान करके एक-दूसरे का पूरक बनते हुए पूर्णता को प्राप्त करें, यही दाम्पत्य-जीवन का मूलभूत प्रयोजन है।

जहाँ पति-पत्नी की प्रकृति मिल जाती है और दोनों में परस्पर सघन सहयोग होता है, वहाँ इच्छित सन्तान का होना सुनिश्चित है।

कोर्टफील्ड (इंग्लैण्ड) के कर्नल जान फ्रान्सिवान की पत्नी लुईस एलिजाबेथ अत्यन्त धार्मिक प्रकृति की विदुषी महिला थी। पति भी उनके ठीक उसी प्रकृति के थे। दोनों दूध-पानी की तरह एक थे। सन्तान के सम्बन्ध में दोनों की इच्छायें भी एक-सी थीं। पति को जब अवसर मिलता गिरजा जाते पर पत्नी तो बहुत ही भक्ति-भाव सम्पन्न थीं। वे घण्टों उपासना करती थीं और यही प्रार्थना करती थीं कि उनकी सभी सन्तानें धर्म की सेवा में ही अपने जीवन का उत्सर्ग करें। उनकी यह मनोकामना पूर्णतः सफलीभूत हुई। लुईस के ८ लड़के और ५ लड़कियाँ थीं। वे सभी धर्मसेवी बने, अविवाहित रहे और सारा जीवन ईसाई मिशन के लिए दान कर दिया। पादरी और ननों के रूप में पवित्र जीवन बिताने वाले पवित्र माता के इन पवित्र बच्चों की चर्चा पाश्चात्य जगत में शताब्दियों तक चर्चा का विषय रही है।

दो व्यक्तित्वों की मिलन की जादूगरी रासायनिक प्रक्रिया—भावनात्मक प्रक्रिया उत्पन्न करने की असाधारण उपलब्धि के लिए पति-पत्नी के बीच सघन प्यार और विश्वास होना चाहिए। उसमें आशंकाओं और तुनक-मिजाजी के लिए कोई स्थान नहीं। जब साथी के गुण ही गुण दिखाई पड़ें और भूल, अपेक्षा अथवा विनोद, उपहास की वस्तु बन जाय उसके कारण मनोमालिन्य उत्पन्न होने की सम्भावना ही न हो तब समझना चाहिए कि सच्चे मन से समर्पण या घुलने की बात पूरी हुई। आशंकाओं, सन्देहों, अविश्वासों, छिद्रान्वेषणों के बीच यह सघनता फलती-फूलती नहीं, उसे विश्वास और ममत्व का उन्मुक्त आकाश चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जर्मनी का प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ, लेखक और कवि कार्ल्स हम्बोर अपनी पत्नी को अत्यधिक प्यार करता था। पत्नी का नाम था—कैटोलिनवान। पत्नी यों गुणवती और सुयोग्य भी थी पर पति के प्यार ने उसकी दृष्टि में उसे मानवी नहीं देवी बना लिया था। वह उसके सम्बन्ध में प्रायः प्रतिदन १०० पंक्तियों की कविता लिखता था। ३८ वर्ष की उम्र में उसने यह विवाह किया था। पत्नी अधिक दिन जीवित न रही। पर उसने दूसरा विवाह नहीं किया और सौ पंक्तियों की कविता करने का क्रम उसने बिधुर होने के बाद भी जारी रखा। जब तक वह इस श्रद्धांजलि को उसकी कब्र पर चढ़ा नहीं देता था तब तक वह सोता नहीं था।

यदि इतनी सघनता न हो, तो दोनों में से जिसका व्यक्तित्व अधिक प्रतिभासम्पन्न और जबरदस्त होता है उसी की छाप सन्तान पर पड़ती है। इसलिए सन्तान का स्तर उसी दिशा में विकसित होता है। हल्के स्तर का सरल व्यक्तित्व अपनी कोमलता के कारण दब जाता है। ऐसे गृहस्थ तो चलता रह सकता है पर एकपक्षीय प्रयत्न, एक हाथ से ताली बजाने की तरह अपूर्ण ही रहता है।

फ्रांस के एक पादरी यह सिद्ध करना चाहते थे कि यदि एक पक्ष सज्जन है तो दूसरे को अपने में ढाल सकता है। यह बात तभी हो सकती है जब दूसरा पक्ष जैसा भी कुछ है अपना पूर्ण समर्पण करदे। यदि दोनों व्यक्तित्व अपनी अहंता अलग-अलग बनाये रहें तो उनमें जो जबरदस्त होगा उसी की विजय होगी। पर सज्जन पादरी एकांगी बात सोचते थे, वे पुरुष की सज्जनता के महत्त्व को ही सब कुछ मानते थे। उनने अपनी बात यही सिद्ध करने के लिये विपरीत गुण, स्वभाव वाली पत्नी से विवाह करके सुयोग्य सन्तान की बात सिद्ध करने का प्रयत्न किया, पर वे सफल न हो सके।

क्लारमान्ट (फ्रान्स) के पादरी क्रेटीन यह दावा करते थे कि वंश परम्परा से अपराधों का कोई सम्बन्ध नहीं है। मनुष्य का भला या बुरा होना शिक्षा, संस्कार तथा वातावरण पर निर्भर है। वंशानुक्रम की अद्भुत विशेषताओं पर बल देने वाले वैज्ञानिकों को चुनौती देने के लिए उन्होंने गृहस्थ जीवन स्वीकार किया और एक अपराधी वंश की लड़की से विवाह कर लिया। उसका बाप पड़ौसी के घर में ईर्ष्यावश आग लगाने के अपराध में जेल काट चुका था। विवाह के बाद सन्तानें भी हुईं। उनकी शिक्षा-दीक्षा पर भी यथासम्भव ध्यान दिया गया, किन्तु वंश परम्परा का प्रभाव सन्तान पर समयानुसार उभरता ही गया और वे कई पीढ़ियों तक आगे भी अपराध करते रहे।

क्रेटीन के तीन लड़के हुए पियरी, टामस और वैयातिस। तीनों ही समयानुसार अपराधी प्रकृति के बने और डाकेजनी, हत्या जैसे अपराधों में समय-समय पर वे तीनों ही फाँसी पर चढ़ा दिये गये।

पियरी फाँसी पर चढ़ने से पूर्व अपनी एकमात्र संतान छोड़ गया था—जीन फ्रान्सिस। बड़ा होने पर वह भी एक डकैती में पकड़ा गया और बाप की तरह वह भी मौत के घाट उतार दिया गया।

टामस के दो लड़के थे—मार्टिन तथा जान फ्रान्सिस यह दोनों भी तलवार के घाट उतारे गये।

मार्टिन का बेटा भी अपराधी प्रवृत्तियों में व्यस्त रहा और केने फ्रान्स की जेल में सड़-सड़ कर मरा।

पादरी के तीसरे लड़के की सन्तान का भी यही हाल हुआ। वैपतिस का एकमात्र लड़का भी अपनी पत्नी के साथ आजीवन कैद की सजा भुगतते-भुगतते जेल में ही मरा। जेल जाने से पूर्व वे सात बच्चे उत्पन्न कर चुके थे। वे भी जब बड़े हुए तो अपराधों का ही धन्धा अपनाया और उन सबने भी अपने बाप-दादों की परम्परा निवाही और जेल काटते-फाँसी खाते समाप्त हुए।

कईयों का वंश परम्परा की रक्षा और रक्त शुद्धि पर बहुत ध्यान रहा है। उनका कहना है यह रहा है कि अपना रक्त अपने रक्त से घुलकर ही शुद्ध रह सकता है। दूसरी जाति या स्वभाव के लोगों के साथ रक्त का सम्मिश्रण नहीं होना चाहिए। इससे रक्त दूषित होता है और अवांछनीय सन्तान उत्पन्न होती है। अभी भी रोटी बेटी को वंश-कुल की मर्यादाओं में सीमित रखने की बात यही सोचकर की जाती है। इस सम्बन्ध में मिश्र में तो अति ही बरती गई। वहाँ के शासक सोचते थे कि राज वंश का रक्त अत्यन्त पवित्र है। उसे दूसरे रक्त के साथ घुलकर अपनी विशेषता नहीं खोनी चाहिए, इसलिए विवाह-शादी अपने घर-परिवार में नहीं, सगे बहिन-भाइयों में ही सीमित रखी जाय। यह प्रयोग किया तो बहुत दिन गया, पर सफल नहीं हुआ।

मिश्र के टाल्मी राजवंश में प्राचीनकाल में—भाई-बहिन की शादी का प्रचलन था। वह वंश अपने को दैवी शक्तियों से उत्पन्न मानता था और दूसरे लोगों के साधारण रक्त के साथ अपना रक्त नहीं मिलाना चाहता था। रक्त शुद्धि की दृष्टि से उन लोगों ने यह प्रथा चलाई और बहुत समय तक चलती भी रही। इतिहासकारों के अनुसार यह क्रम तेरह पीढ़ियों तक चला और वह तब बन्द हुआ जबकि एक बार सब लड़के ही लड़के पैदा हो गये और बाहरी लड़की लिये बिना वंश डूबने का ही खतरा पैदा हो गया।

मिश्र के दूसरे उच्च समझे जाने वाले घरानों में भी राजवंश की देखा-देखी यह प्रथा चल पड़ी थी। मिश्र की अति सुन्दर साम्राजी 'क्लियोपात्रा' अपने रूप-लावण्य के लिए प्रख्यात थी। उसने अपने विनोद कौतुक की तृप्ति के लिये एक-एक करके दोनों सगे भाइयों से विवाह किया और पसन्दगी से उतर जाने पर दोनों को मरवा भी डाला।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

टैक्सास के गवर्नर हेनरी स्मिथ ने एक-एक करके अपनी तीनों सगी बहिनों से खुद ही विवाह किया था। लोग जब उसकी निन्दा करते थे, तो वह यही कहता—नर-नारी की घनिष्ठता को आवश्यकतानुसार प्रणय से बदलना प्रकृति के कानून में दोषयुक्त नहीं—मनुष्य समाज ने भले ही उस पर बन्धन लगाये हों।

मूल प्रश्न रक्त शुद्धि का नहीं व्यक्तियों की घुलनशीलता का है। इसके लिए एक पक्ष का प्रयास सफल नहीं हो सकता, इसमे दोनों को ही पिघलना पड़ता है और यह प्रयत्न करना पड़ता है कि घनिष्ठ एकता को हर कीमत पर बनाये रहा जाय। यदि ऐसा न हुआ तो फिर जो पक्ष अधिक सबल होगा, दूसरे पर छा जाने का प्रयत्न करेगा। यहाँ समर्थता का अर्थ शारीरिक या बौद्धिकता, सबलता से नहीं वरन् भावनात्मक प्रचण्डता से है। यदि किसी में घृणा या प्रतिहिंसा की भावना तीव्र है तो उसी की तीव्रता रहेगी। सीधा, सरल स्वभाव उसके भावनात्मक दबाव से अपना प्रभाव खो बैठेगा। भले ही वह शारीरिक या बौद्धिक दृष्टि से बलिष्ठ या विकसित ही क्यों न दिखाई पड़े ?

बर्लिन (जर्मनी) की एक महिला इमगार्डवन्स ने पाँच बार विवाह किये। उनमें से प्रत्येक को क्रमशः आत्महत्या करके ही अपने जीवन का अन्त करना पड़ा। उसकी भावात्मक प्रचण्डता इतनी तीव्र थी कि पति उसके शिकार होकर अपना सन्तुलन खोते चले गये।

कई बार कई व्यक्तियों को यह सनक सवार रही है कि चूँकि पुरुष पक्ष बहुत स्वस्थ, सुयोग्य एवं समर्थ है इसलिये उसे बहुत विवाह करने चाहिए और बहुत बच्चे पैदा करने चाहिए ताकि वे उसी के जैसे गुण वाले हों और उनका नाम या वंश अधिक ख्याति प्राप्त करे। यह प्रयोग अनेक जगह हुए हैं, पर उससे संख्या मात्र बढ़ी। पति-पत्नी में सघन विश्वास का वातावरण न बना, प्रेम और सौहार्द्र भी पैदा न हुआ, फलस्वरूप सन्तान संख्या वृद्धि की बात तो सहज थी, सो पूरी हो गई पर पिता के गुण ही सब सन्तान में होंगे, यह प्रयोजन पूरा न हुआ। घृणा और अविश्वास के वातावरण में चलने वाले दाम्पत्य-जीवन किसी प्रकार गाड़ी धकेलते तो रहते हैं पर उनको जो शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं वंश परम्परागत लाभ मिलना चाहिए वह बिल्कुल भी नहीं मिलता।

मोरक्को का एक नगर है। यहाँ के सभी निवासी अपने को राजकुमार कहते हैं। इस नगर का संस्थापक था मुलाई इस्माइल नामक एक मुसलमान राजा। उसने कितने ही युद्ध किये और गुलाम पकड़े। पकड़े गये पुरुषों को उसने शहर की इमारतें बनाने में लगाया और स्त्रियों को बच्चे उत्पन्न करने में लगाया। इन दो शौकों को पूरा करने के लिए वह युद्ध लड़ता और आक्रमण करता था। उसकी मृत्यु के समय तक जीवित और समर्थ बच्चों की संख्या ८८८ हो गई थी और गुलाम इतना बड़ा नगर बना चुके थे, जिसमें इन सब बच्चों के स्वतन्त्र परिवार रह सकें। इस कार्य में उसे बीस वर्ष लगे। उसकी छोड़ी हुई इन ८८८ सन्तानों की वंश वृद्धि से ही यह पूरा नगर बसा है। अस्तु, वे सभी राजा के वंशज होने के कारण अपने को राजकुमार या राजकुमारी कहते हैं।

हाँ कई पत्नियाँ होते हुए भी उनके बीच स्नेह, सौहार्द्र, विश्वास और प्रेम का वातावरण बना रहे तो उस विषमता के बीच भी सन्तुलन बना रह सकता है और सामूहिकता के साथ सौजन्य का एकत्रीकरण भी सफल हो सकता है।

हंगरी के प्रसिद्ध बायलिन वादक रैक्ज पाली—अपनी कई पत्नियों द्वारा उत्पन्न तथा गोद लिये हुए ४९ बच्चों के पिता थे। उन्हें अपनी वायलिन वादन कला की ही तरह बालकों के समूह में खेलने में भी आनन्द आता है। उनने अपनी इन दोनों अभिरुचियों को परस्पर मिलाकर रखा। सभी बच्चों को वायलिन वादन सिखाया और उनमें से एक को छोड़कर शेष सभी अपने पिता की तरह वायलिन कलाविदों के रूप में प्रख्यात हुए।

भारत में बहुपत्नी प्रथा कभी थी। इनमें श्रीकृष्ण भगवान को भी सम्मिलित बताया जाता है। पर यह प्रयोग सफल तभी हो सकता है, जब इस सारे समूह का स्तर बहुत ही उच्चकोटि का हो, अन्यथा ईर्ष्या-द्वेष की आग जब एक पत्नी, एक पति वाली स्थिति में नरक उत्पन्न कर देती है तब बहुपत्नी या बहुपति वाली स्थिति घटिया स्तर से तो सर्वनाश ही प्रस्तुत करेगी।

विवाह का उद्देश्य यदि संख्या वृद्धि करने वाला पशु प्रजनन हो तो बात दूसरी है अन्यथा व्यक्तित्वों में प्रखर प्रत्यावर्तन उत्पन्न करना और प्रतिभाशाली सन्तान प्राप्त होना तभी सम्भव है, जब नर-नारी के बीच अत्यन्त गहरे एवं सघन स्तर की आत्मीयता स्थापित हो सके। ऐसे ही विवाह सच्चे अर्थों में विवाह हैं अन्यथा उन्हें एक मजबूरी का निर्वाह मात्र ही कहा जा सकता है।

सहधर्मिणी के प्रति कर्त्तव्य-निष्ठ रहिए

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष में शरीर-संरचना को छोड़कर और कोई भेद नहीं रखा है। उसका कारण कुछ प्राकृतिक आवश्यकतायें भर हैं, अन्यथा जीवन, श्वाँस, हृदय, मस्तिष्क, बुद्धि, आँखे और माँस दोनो मे एक जैसे ही हैं। उन प्राकृतिक आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए साथ रहना भी जरूरी है और यहीं से वे पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थापित करते हैं, जो क्रमशः मन, मस्तिष्क, हृदय, अन्तःकरण तथा प्राणों की एकता तक सघन हो जाता है। प्रेम और आत्मीयता का पाठ मनुष्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार से ही आरम्भ करता है, यहाँ तक कि परिवार के बिना उसका जीना भी दूभर हो जाता है।

परिवार-निर्माण और उसकी अन्य आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक-दूसरे का कार्य तथा दायित्व विभाजन एवं उन्हें पूरा करने की परम्परा चली, जो उचित भी है। एक व्यक्ति निर्वाह के साधन जुटाता है, तो दूसरा उसे उपयोग लायक बनाये, एक बाहर का क्षेत्र सम्हालता है, तो दूसरा अन्दरूनी व्यवस्थायें देखे। यहाँ तक बात समझ में आती है और ठीक भी लगती है, परन्तु इसी कारण एक अपने को बड़ा समझने लगे और दूसरे का शोषण करे, यह जरा भी उचित नहीं जँचता। दोनों अपने-अपने कार्यों को ही लक्ष्मण-रेखा समझ लें और किन्हीं भी परिस्थितियों में एक-दूसरे का काम न सम्हालें—यह विकृति ही नहीं, तो क्या है ? स्त्री के जिम्मे घर के काम—रसोई बनाना, सफाई करना, बच्चों की देख-रेख करना आदि कार्य हैं और पुरुष ने बाहर कमाना, खेती या नौकरी-पेशा करना अपने लिए रखा है। परन्तु वह समय पर आवश्यक होते ही घर के अन्दरूनी कामों को देखने, करने में अपनी हेठी समझता है। महिलायें तो बेचारी आये वक्त पर पुरुष के क्षेत्र में भी काम कर लेती हैं, पर बीमारी और रुग्णावस्था में भी पति-पत्नी से ही यह अपेक्षा करता है—वह उसे खाना बनाकर खिलाये और बच्चों को सम्हाले। जिस आधार पर—सहचरत्व का पालन करने के लिए दाम्पत्य-जीवन आरम्भ किया गया, यह तो उसकी उपेक्षा ही हुई।

'विवाह' के समय वर और वधू दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि हम परस्पर एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ रहेंगे, एक-दूसरे का सहयोग करेंगे और दोनों प्रगति के पथ पर एक साथ अग्रसर होंगे पर आगे चलकर यह प्रतिज्ञा अधूरी ही रह जाती है तथा पुरुष जहाँ पत्नी के काम करने में अपना छोटापन समझता है, वहीं पत्नी को पुरुष के क्षेत्र में पदार्पण करने से भी रोकता है।

अपने-अपने कार्यों को ही अपनी अन्तिम सीमा-रेखा मान लेना किसी भी दृष्टि से वांछनीय नहीं कहा जा सकता। सच्चाई तो यह है कि पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक बनकर ही जीवन पथ पर सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकते हैं। सहयोग की दृष्टि से कामों का विभाजन बात और है, परन्तु ऐसी कोई कठोर मर्यादा नहीं बनाई जा सकती कि अमुक कार्य केवल पति ही करे और अमुक कार्य के लिए पत्नी पर ही निर्भर रहा जाय। औचित्य का तकाजा यह है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर वफादार और कर्त्तव्यनिष्ठ साथी की तरह एक-दूसरे के कामों में मदद करें, चाहे वे कार्य घर के हों, चाहे बाहर के।

पत्नी-स्त्री प्रायः अपने कर्त्तव्य से पीछे नहीं हटती, पर पति अपने आपको घर का मुखिया (स्वामी) समझने के कारण दूसरे कार्यों में हाथ लगाना अपनी अवमानना समझता है। जैसे पत्नी को परिवार के सभी सदस्यों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता है; लेकिन कभी वह बीमार हो जाय तो पति खुद भोजन बनाने की अपेक्षा पत्नी से ही यह आशा करता है कि वह बीमारी की हालत में ही खाना बनाकर दे। या वे होटल में खाने अथवा बच्चे घर में हों तो उनके हाथ से खाना बनवाने की ही बात सोचेगा। पत्नी के होते हुए भी उसे चूल्हा फूँकने में शर्म आती है। सहज भाव से पत्नी ने किसी कारणवश पति को भोजन बनाने के लिए कह दिया तो पति महोदय इस प्रकार तुनक उठेंगे, जैसे सरे-बाजार उन पर किसी ने जूता फेंक दिया हो।

पत्नी को अपना साथी-सहचर मानने वाले, उसे सहधर्मिणी समझने वाले ऐसे अवसरों पर कभी भी संकोच नहीं करते। प्राचीनकाल में तो यह व्यवस्था भी थी कि लड़कियों की भाँति लड़के भी पाक-विद्या और गृहकला सीखते थे। गुरुकुलों के आचार्य अपनी पत्नी के साथ ही सभी बच्चों की देख-भाल करते और भोजन बनाने से लेकर, आश्रम की सफाई करने तक किसी भी काम में संकोच न करते थे। राजा नल पाक विद्या में पारंगत थे और इसी गुण के कारण ऋतुपर्ण के सारथी के रूप में उन्हें दमयन्ती ने पहचाना था। जनक को पाक-कला का विशेषज्ञ समझा जाता था, यद्यपि वे सम्राट थे। गदाधारी भीम अज्ञातवास के समय राजा विराट के यहाँ रसोइये के रूप में नियुक्त हुए थे।

प्राचीनकाल की ही बात क्यों करें, इसी युग में महात्मा गाँधी का उदाहरण ताजा है। वे कस्तूरबा के साथ रसोई में काम करने और आश्रमवासियों को खाना परोसने के बेहद शौकीन थे। स्वामी विवेकानन्द अपने हाथों से बहुत स्वादिष्ट खाना बनाते थे। जवाहर लाल नेहरू, लालबहादुर शास्त्री आदि प्रख्यात नेता अपनी पत्नी के हर कार्यों में सहयोग देने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। कमला नेहरू जब अपने आखिरी दिनों में बीमार रहने लगीं तो नेहरूजी ने कई बार घर के अन्दरूनी काम देखे। हमारे यहाँ कोई भी महापुरुष ऐसा नहीं रहा है, जिसने घर के कामों को—जिनके लिए केवल पत्नी पर ही निर्भर रहा जाता है—करने में संकोच अनुभव किया हो।

भोजन बनाने की तरह ही पति और बच्चों के कपड़े धोने, घर की सफाई करने, देख-भाल और सार-सम्हाल रखने के कार्य भी पत्नी के समझे जाते हैं। इसके अतिरिक्त परिवार का कोई भी सदस्य जब बीमार पड़ता है, तो उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए भी पत्नी को ही नियुक्त किया जाता है। लेकिन जरूरत पड़ने पर पति उसके गीले कपड़े निचोड़ने या उसके वस्त्र उठाकर रखने में भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं। सेवा का क्या यही मूल्य चुकाया जाना चाहिए ? कहाँ तो हम उसे गृह-लक्ष्मी,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्धांगिनी और सहधर्मिणी घोषित करते-करते नहीं अघाते और कहाँ उसका छोटा-सा काम करने में भी घबड़ाते हैं।

कई परिवारों में स्त्रियाँ दिन-रात काम में लगी रहती हैं। उन्हें जरा भी अवकाश नहीं मिलता। दूसरी ओर पुरुष बहुत-सा समय व्यर्थ आलस्य में पड़े रहने, मौज-मजे करने और ताश-शतरंज खेलने में ही गुजार देते हैं। जबकि जरूरी यह है कि यदि अपने पास समय हो तो उसे पत्नी के सहयोग में लगाया जाय। ताकि उसका कार्य जल्दी पूरा हो और थकान, तनाव से जितना सम्भव हो सके उसे बचाया जा सके।

काम-काज में सहयोग करना तो दूर, अनेकों लोग अपनी पत्नी के प्रति सहानुभूति भी नहीं रखते, उल्टे अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रमों से उसे परेशानी में डालते रहते हैं। रात को देर तक साथियों से गपशप, सिनेमा मनोरंजन-गृहों से देरकर घर लौटना, उधर बेचारी पत्नी भोजन बनाकर थकी-माँदी भूखी बैठी उनकी बाट जोहती रहती है। भारतवर्ष में पत्नी को इतना क्षुद्र बना दिया गया है पतिव्रत के नाम पर कि वह बेचारी पति के खाना खाने से पहले कुछ खा-पी भी नहीं सकती। भले ही पति होटलों में चाटते फिरते हों।

दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाने के लिए इन बातों के अतिरिक्त और भी ऐसी कई सावधानियाँ रखने की आवश्यकता है; जिनका एक मोटा आधार यही हो सकता है कि हम पत्नी के प्रति सच्चे भावनिष्ठ रहें। उसमें और अपने में कोई छोटे-बड़े का भेद-भाव न रखें। प्रेम और हार्दिक एकता में न कोई छोटा है और न बड़ा। अतः उसे बराबर का साथी मानकर ही व्यवहार करें।

धर्मपत्नी की उपेक्षा न करें

हमारे यहाँ नारी और पुरुष के कार्यों की एक सीमा रेखा-सी मान ली गई है। घर के काम, रसोई बनाना, बच्चों की देखभाल, सफाई आदि के कार्य स्त्री के माने गये हैं तो घर से बाहर कमाई करना, खेती-नौकरी या कोई पेशा आदि करना पुरुष का काम रहा और यह विभाजन इतना दृढ़ हो गया कि नारी सुलभ कार्यों को करने में पुरुष शर्म-संकोच का अनुभव करता है तो घर की सीमा से बाहर के कार्यों में नारी का प्रयत्न निन्दनीय समझा जाता है। यद्यपि आज के युग में ये सीमाएँ टूटती जा रही हैं तथापि पूर्व संस्कारों के कारण कम से कम हमारे देश में तो अभी उक्त धारणायें व्यापक रूप में फैली हुई हैं। आज भी नारी और पुरुष के कार्यक्षेत्र की यह विभाजन रेखा टूटी नहीं है।

भले ही इसका कारण कुछ भी रहा हो लेकिन आज की परिस्थितियों में विकास की माँग के अनुसार इस विभाजन को लक्ष्मण-रेखा नहीं माना जा सकता। आज हमें इसकी अनुपयुक्तता पर विचार करना होगा साथ ही इसको मिटाना होगा।

वस्तुतः पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं और जीवन यात्रा का उत्तरदायित्व इस सामूहिक व्यक्तित्व पर ही निर्भर करता है। दोनों का एक-दूसरे के काम में सहयोग आवश्यक है, अनिवार्य है। पति-पत्नी के कार्यों का विभाजन, उसकी सीमा रेखा कभी निश्चित नहीं की जा सकती। दाम्पत्य-जीवन का सार इसी में है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर वफादार साथी की तरह एक-दूसरे के कामों में मदद करें, योग दें। चाहे यह काम घर के अन्दर का हो या बाहर का।

बहुधा भोजन बनाना पत्नी का काम समझा जाता है और यह ठीक भी है कि यदि पति बाहर काम पर गया है और पत्नी को अन्य कोई काम नहीं है, वह घर पर रहकर भोजन बनाये। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर पति को भी इस काम को उसी उत्साह से करना चाहिए जैसे पत्नी करती है। लेकिन बहुत-से लोग इसे अपना अपमान समझते हैं। पत्नी के सामने चूल्हा फूँकने में शर्म महसूस करते हैं। कैसी विडम्बना है, जो स्त्री जीवन भर चूल्हा फूँकती है, पति को भोजन बनाकर हमेशा देती है, यदि बीमारी-हारी में या किसी परेशानी के समय वह इसमें असमर्थ होती है तो वही पति इसमें अपना अपमान समझता है।

लेकिन समझदार पति जो पत्नी को अपने बराबर साथी की तरह समझता है, कभी इससे संकोच न करेगा। महान लेनिन के गृहस्थ-जीवन का जिन्होंने अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि वह पत्नी के हर काम में हाथ बँटाता था। पैदल ही चलकर एक साधारण नागरिक की तरह बाजार से घर का सामान, साग-सब्जी लाता था। कई वर्षों तक तो भोजन एक समय उनकी पत्नी बनाती थी और एक समय वे स्वयं।

पत्नी जीवनभर अपने पति-बच्चों के वस्त्र धोती है, उनकी सेवा करती है, जो भी करना आवश्यक होता है उसमें संकोच का अनुभव नहीं करती। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर पत्नी के कपड़े तक उठाकर धरने में, बीमारी-हारी में उसकी कुछ सेवा-सुश्रूषा करने में बहुत-से पति नाक-भौं सिकोड़ते हैं। अपना अपमान समझते हैं। क्या इसी रूप में वे पत्नी की सेवा से उऋण होना चाहते हैं ? सचमुच ऐसे व्यक्ति कभी नारी से उऋण नहीं हो सकते।

बहुत-से परिवारों में स्त्रियाँ दिन-रात काम में लगी रहती हैं, उन्हें तनिक भी अवकाश नहीं मिलता कि कुछ विश्राम करें। दूसरी ओर पुरुष बहुत-सा समय व्यर्थ आलस्य में पड़े रहकर, मौज-मजे करने में, ताश-शतरंज खेलने में बिताते हैं, लेकिन पत्नी को घर के काम में, कुछ सहारा नहीं देते ताकि वह भी बेचारी कुछ सुस्ता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सके, विश्राम कर सके। पति का कर्त्तव्य है कि जिस तरह पत्नी हमेशा निःसंकोच भाव से सेवा करती है, उसी तरह वह भी आवश्यकता पड़ने पर पत्नी की सेवा करे। उसके आराम-स्वास्थ्य आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखे।

काम-काज की ही बात नहीं बहुत-से लोग अपनी स्त्री के प्रति सहानुभूति और सहयोग का रुख भी तो नहीं रखते। उल्टे अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रम से उसे परेशानी पैदा कर देते हैं। रात को साथियों की गपशप, सिनेमा आदि के कारण देर से घर आते हैं। उधर बेचारी पत्नी भोजन बनाकर थकी-माँदी उनकी बाट जोहती रहती है। न वह स्वयं समय पर खा पाती है न सो पाती है। पति इस तरह की व्यर्थ परेशानी से पत्नी को छुटकारा दिला सकता है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि पत्नी के प्रति सद्भावना रहे, उसकी सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय। ऐसी बहुत-सी कृत्रिम परेशानियों को दूर किया जा सकता है।

यदि आप अपने दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं, यदि आप अपनी पत्नी के स्वस्थ विकास की क्षमता रखते हैं, अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व के प्रति सच्चे बनना चाहते हैं तो सभी प्रकार पत्नी के कार्यों में सहयोग करें। किसी कारणवश आपकी पत्नी भोजन नहीं बना पाती तो आपका कर्त्तव्य है कि आप उसी भावना से भोजन बनायें, जिस तरह प्रतिदिन आपकी पत्नी बनाती है।

बीमारी पाने पर या किसी तकलीफ में पत्नी की सेवा-सुश्रूषा करने में कंजूसी न करें। यही वह अवसर होता है जब आप अपनी स्त्री के ऋण से, जो जीवनभर आपके ऊपर चढ़ता रहता है मुक्त हो सकते हैं। फिर अपने जीवन साथी की सेवा करने में शर्म क्यों ? इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखें कि आपके द्वारा अकारण ही आपकी पत्नी को परेशानी न उठानी पड़े। इसके लिए अपनी आदतों में, अपने रहन-सहन और कार्यक्रम में सुधार करलें। पत्नी के भी स्वास्थ्य, मनोरंजन, घूमने-फिरने का ध्यान रखें। किसी पर्व-त्यौहार पर आपकी पत्नी यदि सहेलियों के साथ उत्सव मनाना चाहे तो घर के आवश्यक कार्य आप स्वयं सम्हाल लें और उसे स्वतन्त्रता के साथ आमोद-प्रमोद का अवसर प्रदान करें। सबसे बड़ी बात यह है कि स्वयं और पत्नी के बीच में किसी तरह का भेद-भावपूर्ण व्यवहार की कोई सीमा-रेखा न मानें। वरन् एक बराबर साथी की तरह व्यवहार करें।

सफल दाम्पत्य के सुदृढ़ आधार

विवाह के पूर्व वर-वधू न जाने क्या आशाएँ सजाते हैं ? अपने जीवन साथी के प्रति सुनहरे सपने देखते हैं और एक-दूसरे को लेकर तरह-तरह की मधुर कल्पनाएँ करते हैं। बहुत-सी आशाओं, आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के साथ युवक-युवतियाँ दाम्पत्य-जीवन के बन्धन में बँधते हैं। समाज के सामने दोनों विविध रस्म-रिवाज सम्पन्न कर एक-दूसरे को अपना जीवन साथी घोषित करते हैं। विवाह के रूप में बड़ा समारोह मनाया जाता है। बैण्ड बाजे, रोशनी, दावतें, लेन-देन, बारात, भोज और जुलूस, जलसों के साथ दो व्यक्ति विवाह सूत्र में बँधते हैं। विवाह के बाद कुछ दिनों तक तो दोनों का जीवन परस्पर के नये आकर्षण में बड़ा ही सुखद बीतता है, किन्तु यह स्थिति अधिक दिन नहीं रहती और अधिकांश दम्पतियों का जीवन कलह-क्लेश तथा अशान्ति-असंतोष की आग में जलने लगता है।

ऐसा क्यों होता है ? परिपाटी के तौर पर पुरोहित जिन प्रतिज्ञाओं का उच्चारण वर-वधू से करवाते हैं, उन्हें शीघ्र ही क्यों भुला दिया जाता है ? व्यावहारिक जीवन में उन्हें चरितार्थ होते क्यों नहीं देखा जाता ? और क्यों दाम्पत्य-जीवन एक-दूसरे के लिए बोझा बन जाता है ? यह विचारणीय है, गम्भीरता से विचार करने पर इसके कोई बाहरी कारण होते भी नहीं हैं। होता यह है कि पति-पत्नी दोनों ही एक-दूसरे से तालमेल और सामंजस्य नहीं बना पाते। उनका आपसी व्यवहार एक-दूसरे को संतुष्ट नहीं कर पाता और परिणामस्वरूप उनका गृहस्थ जीवन असंतोष की अग्नि में जलने लगता है। असंतोष के इन कारणों को यदि आरम्भ में ही उत्पन्न न होने देने की सावधानी बरती जाए, तो दाम्पत्य-जीवन वास्तव में सुख, शान्ति और आनन्द का स्रोत बन सकता है।

विवाह के समय वर-वधू एक-दूसरे से जो आशा, अपेक्षायें करते हैं, एक-दूसरे को सुखी-संतुष्ट रखने की जो कामनाएँ करते हैं, उनमें अधिकांश तो रूमानी ही होती हैं। इन रूमानी भावनाओं को छोड़ दिया जाए और एक-दूसरे को सुखी-संतुष्ट रखने की बात को ही ध्यान में रखा जाए, तो ये अपेक्षाएँ पूरी होती रहें, इसके लिए कोई बहुत बड़ी रुकावट नहीं है। इसके लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि व्यवहार में एक-दूसरे की भावनाओं का आदर किया जाय। एक मोटा-सा सिद्धान्त है कि मनुष्य दूसरों के साथ जैसा व्यवहार करता है, दूसरों से भी उसे वैसा ही व्यवहार मिलता है। यही बात पति-पत्नी के सम्बन्ध में भी लागू होती है। पति-पत्नी को चाहिए कि वे सदैव एक-दूसरे की भावनाओं और विश्वासों का ध्यान रखें।

प्रायः देखा जाता है कि दम्पत्ति अपनी भावनाओं, विचारों, मान्यताओं और अपेक्षाओं को इतना अधिक महत्त्व देते हैं कि उन्हें दूसरे की भावनाओं और अपेक्षाओं का कोई ध्यान नहीं रहता। एकता और सहयोग के स्थान पर असंतोष और क्षोभ की भावनाएँ यहीं से जन्म लेती हैं। अपनी इच्छानुसार पत्नी को जबरन किसी काम के लिए मजबूर करना उसकी इच्छा न होते हुए भी उस पर दबाव डालने जैसी प्रवृत्तियाँ पति के प्रति पत्नी के मन में असंतोष की चिन्गारी छोड़ती हैं और वह क्रमशः बढ़ती ही जाती हैं। इसी प्रकार कई स्त्रियाँ अपने पति के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वभाव, उसकी रुचियों और आवश्यकताओं पर ध्यान न देकर अपनी छोटी-छोटी बातों में ही उलझी रहती हैं और पति से यह अपेक्षा करती हैं कि वह भी उन बातों को उसी प्रकार महत्त्व दे, जैसा कि वह स्वयं देती है। फलतः पति के मन में असंतोष और क्षोभ उत्पन्न होता है। गलती किसी भी पक्ष की हो सकती है। कौन पक्ष कितना दोषी है ? यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। कोई भी पक्ष दोषी हो सकता है, पर उसका परिणाम-प्रतिफल दोनों ही पक्षों को असंतोष के रूप में सहना पड़ता है। यह असंतोष उनके परस्पर के व्यवहार में प्रकट होकर दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बना देता है।

दाम्पत्य-जीवन सुखी, संतुष्ट और स्निग्ध बना रहे, पति-पत्नी के सम्बन्ध मधुर और प्रेमपूर्ण बने रहें इसके लिए आवश्यक है कि दोनों एक-दूसरे की भावनाओं, विचारों तथा अपेक्षाओं को दृष्टिगत रखते हुए एक-दूसरे से व्यवहार करें। इस समझ या गुण का अभाव होने के कारण ही इन दिनों अधिकांश गृहस्थ अशान्ति का भेद बने हुए हैं। लोग क्यों नहीं एक-दूसरे की इच्छाओं और भावनाओं को समझ पाते ? क्यों नहीं एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करते और अपेक्षायें पूरी कर पाते ? क्या कारण है कि एक-दूसरे को अपना अभिन्न साथी-सहचर समझते हुए भी अपने साथी का स्वभाव, प्रकृति नहीं समझ पाते और सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते ? इसका एक बड़ा कारण तो अशिक्षा ही है।

अपने देश में वैसे भी इस बात का कोई प्रबन्ध नहीं है कि पति-पत्नी को पारिवारिक जीवन किस प्रकार बिताना चाहिए ? यह बताया, समझाया जाय। सामान्य स्कूली शिक्षा का प्रचलन ही संतोषजनक नहीं है, तो ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध करना और उससे अधिकाधिक लोगों को लाभ उठाने की प्रेरणा बहुत आगे की बात है। सामान्यतः लोग शिक्षा की दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं उसमें भी स्त्रियाँ तो और भी ज्यादा। पर्याप्त शिक्षा-दीक्षा के अभाव में उनका आवश्यक मानसिक विकास नहीं हो पाता। इस अभाव के कारण उन्हें दूसरों की भावनाओं और व्यावहारिक जीवन की बातों के बारे में आवश्यक जानकारी नहीं मिल पाती। इस अभाव को दूर करने के लिए शिक्षित पुरुषों को अपनी पत्नियों के सम्बन्ध में तो सहयोगी रुख अपनाया ही जाना चाहिए। वे कुछ समय निकालें अपनी पत्नी को पढ़ाएँ और उनकी ज्ञानवृद्धि के लिए समुचित प्रयास करें।

दाम्पत्य-जीवन जब बराबरी के सम्बन्धों पर आधारित है तो यह भी आवश्यक है कि जीवन साथी व्यक्तित्व और योग्यता की दृष्टि से बराबर हो। उन्नीस-बीस का अन्तर तो फिर भी चल सकता है, पर एक शिक्षित और दूसरा अशिक्षित, निरक्षर रहे यह स्थिति असंतुलन ही पैदा करती है। अस्तु, पति के लिए वह आवश्यक दायित्वों का निर्वाह करते हुए उसकी ज्ञानवृद्धि तथा विकास के लिए भी समुचित प्रयास करें। तभी दाम्पत्य-जीवन में सहयोग, एकता और सामंजस्य का आधार बनता है, किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग इस दिशा में कोई रुचि नहीं लेते और उपेक्षा ही बरतते हैं।

दाम्पत्य-जीवन को सुखी, सफल और मधुरिम बनाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि पति-पत्नी दोनों का मानसिक तथा बौद्धिक दृष्टि से समान विकास हो। कई बार ऐसा भी होता है कि पति-पत्नी दोनों योग्य हैं, सुशिक्षित हैं फिर भी वे एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान नहीं रख पाते और उनका आपसी व्यवहार इस तरह का हो जाता है तो स्वभावतः ही एक-दूसरे को अखरने लगता है। ऐसी स्थिति में किसी भी एक पक्ष को क्षमाशीलता और सहिष्णुता का परिचय देकर विक्षोभ उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया तो परस्पर मनोमालिन्य बढ़ने लगता है।

और देशों में पति-पत्नी के सम्बन्धों को लेकर चाहे जो मान्यताएँ प्रचलित हों, परन्तु भारतीय मनीषियों ने तो पति-पत्नी को एक सम्पूर्ण इकाई माना है। उनकी दृष्टि में दोनों अभिन्न और अद्वैत हैं। पुरुष और स्त्री को आधा-आधा अंग मानकर एक शरीर की व्याख्या की गई है, जिसमें पुरुष को अर्धनारीश्वर तथा स्त्री को अर्धांगिनी कहा गया है। इस प्रकार भारतीय मनीषियों की दृष्टि में दाम्पत्य-जीवन स्त्री-पुरुष की अनन्यता का गठबन्धन है। उनमें एक-दूसरे से दुराव-छुपाव, दिखावे या बनावटीपन का कहीं कोई स्थान नहीं है। इन मान्यताओं को अपने सम्बन्धों में साकार रूप देकर ही दाम्पत्य-जीवन को सुख-शान्तिपूर्ण बनाया जा सकता है।

दाम्पत्य-जीवन में सार्थकता की समान कसौटी

प्रख्यात् फ्रेंच लेखिका सिमोन दबुआर ने नर-नारी सम्बन्धों का विश्लेषण मानवीय इतिहास के आधार पर किया है और निष्कर्ष निकाला है कि नर-नारी सम्बन्धों की दो परस्पर विरोधी धुरियाँ रही हैं, एक तो नर यह प्रयास करता रहता है कि नारी पूरी तरह उसके मन की हो, जैसा वह चाहता है, वैसी बने। दूसरे, वह यह भी चाहता है कि नारी सजीव और स्वतन्त्र हो, वह विशिष्ट व्यक्तित्व की धनी हो, ताकि उससे सम्बन्ध रखने में आनन्द प्राप्त हो।

पुरुषों की यह ग्रन्थि मानव-मन की संरचना पर प्रकाश डालती है। लेखिका के विश्लेषण को यदि हम अधिक सरल ढंग से रखना चाहें, तो यही कह सकते हैं कि नर की वास्तविक आकांक्षा यह रहती है कि नारी उसी जैसे स्वतन्त्र व्यक्तित्व की हो, पर साथ ही वह उसके पूरी तरह अधीन हो। यह तो हुई ऐसे नर की बात, जिसे समुचित मानसिक, बौद्धिक विकास के अवसर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दीर्घकाल तक मिलते रहे हैं। यदि किसी सुशिक्षित, सुविकसित नारी से पूछा जाय, तो वह भी यही कह सकती है कि पति स्वतन्त्र, तेजस्वी व्यक्तित्व का धनी हो, पर मेरी ही तरह समर्पित, प्रेमपूर्ण विनम्र हो।

पाश्चात्य लेखकों-लेखिकाओं को ऐसी आकांक्षा में अन्तर्विरोध दिखाई पड़ता है, क्योंकि वे यह मान बैठे हैं कि स्वतन्त्र व्यक्तित्व अनिवार्यतः अभिमानी भी होगा और वह किसी की अधीनता नहीं स्वीकार करना चाहेगा।

किन्तु यदि इसे अधीनता नहीं, अति सघन आत्मीयता माना जाये, तब ऐसी आकांक्षा स्वाभाविक, उचित एवं सुसंगत लगने लगेगी। आखिर हम खुद अपने शरीर-मन को तो अपने अनुकूल ही रखना चाहते हैं। हमारी बुद्धि स्वतन्त्र हो और समय पर हमारे लिए हितकर, नीतिपूर्ण निर्णय ले, हमारा शरीर स्वस्थ रहे और वांछित प्रगति के लिये अनुकूल क्रियाशीलता उसमें रहे, यह हम में से हर एक चाहता है। पति या पत्नी के प्रति भी ऐसा ही भाव स्वाभाविक है। वह स्वस्थ-सहज-स्वतन्त्र रहे, साथ ही पूरी तरह हमारा अपना रहे, हममें घुला-मिला रहे जैसे हमारा अपना ही अर्धांग हो। इस आकांक्षा में अन्तर्विरोध नहीं, सुसंगति ही है, बशर्ते सार्थकता और स्वतन्त्रता की कसौटियाँ दोनों के लिए एक-सी हों।

स्वतन्त्र व्यक्तित्व और समर्पण को परस्पर विरोधी मानकर देखा जाता है किन्तु वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है, जो व्यक्ति स्वतन्त्र-सुविकसित है, जिसके अपने स्वतः के मन पर नियन्त्रण है, वही तो किसी श्रेष्ठ उद्देश्य के लिए समर्पण कर सकता है। जो अस्थिर, चपल, अशांत है, उसका समर्पण भी संदिग्ध ही होगा। विरोधी भावावेग उसे कभी भी उस आदर्श की विपरीत दिशा में धकेल सकते हैं, जिसके लिये समर्पण किया गया है। अतः प्रेम, साहचर्य तथा सम्मिलित व्यक्तित्व के विकास के लिए, श्रेष्ठता-अग्रगामिता की दिशा में निरन्तर साथ-साथ चलते रहने के लिए समर्पण करने की क्षमता उन्हीं नर-नारियों में हो सकती है, जो सुसंस्कृत-समृद्ध व्यक्तित्व के धनी हों।

नर-नारी का समर्पण कोई एक बारगी ही सम्पन्न हो जाने वाली और फिर अन्य किसी जागरूकता की अपेक्षा न रखने वाली क्रिया नहीं होती। पति या पत्नी कोई फल-फूल, प्रसाद आदि नहीं, जो देवता को समर्पित कर दिया गया, सो कर दिया गया। चेतन, स्पन्दनशील प्राणी को अपने उस समर्पण-पथ पर निरन्तर चलते रहने के लिए सतत् सचेत क्रियाशीलता बरतनी होती है। यह दोनों ओर से एक जैसी होने पर ही बात बनती है। नर-नारी के बीच एकतरफा समर्पण, एकतरफानिष्ठा या एकपक्षीय सेवा भाव वस्तुतः अभीष्ट परिणाम उत्पन्न करने में असमर्थ ही रहता है। उससे न तो स्वयं को ही सन्तोष, आनन्द की अनुभूति हो पाती है, न ही सहचर या सहचरी का कोई वास्तविक उपकार हो पाता है।

यदि पति या पत्नी में से एक व्यभिचारी, निष्ठाहीन और कठोर है तथा वे त्रुटियाँ उसके स्वभाव का अंग बन चुकी हैं, तो दूसरे पक्ष के मौन समर्पण से उसे इन मनमानी कुचालों में प्रवृत्त रहे आने का ही प्रोत्साहन मिलेगा। यदि एकपक्ष सेवाभावी हुआ और दूसरे ने उसे अपना स्वाभाविक अधिकार मान लिया, तो आजीवन एक पक्ष कर्त्तव्य की बलिवेदी पर न्यौछावर होता रहेगा, दूसरा कृतघ्न ही बना रहेगा। इससे समाज में भी असन्तुलन तथा अनुचित उदाहरण ही स्थापित होगा।

व्यक्तित्व की घुलनशीलता के नाम पर यदि व्यक्तित्व के एक हिस्से का कार्य दूसरे से ही लिया जाता रहे, तो एक अंग अति भार के कारण, दूसरा निष्क्रियता के कारण रुग्ण हो जायेगा और परिणाम दोनों ही हिस्सों को उठाना पड़ेगा।

नर-नारी के बीच दोहरे मानदण्डों को कायम किये जाने का परिणाम यही हुआ है। नारी के लिए पतिव्रतनिष्ठा पर तो बल दिया गया, किन्तु नर के स्वैराचार पर तीखा अंकुश नहीं रखा गया तो इससे नारी दबी-दबी-सी तथा पुरुष उच्छृंखल, उद्दण्ड ही होता गया। सेवा का भार मात्र नारी के सिर लाद दिया गया, तो नर अहंकारी, कृतघ्न तथा लघु ही हुआ। शिक्षा का अधिकारी मात्र अपने को बनाने वाला नर आध्यात्मिकता तथा संस्कृति की सुरभि से रहित ही होता गया। नारी की उदारता का प्रत्युपकार न चुकाने पर स्वयं के हाथ संकीर्णता और पारिवारिक समता के अभाव से उत्पन्न ग्लानि ही तो लगी।

अतः अब यह भली-भाँति समझ लिया जाना चाहिए कि नर-नारी दोनों की सार्थकता के मानदण्ड एक ही हैं। पतिव्रत को जितना आवश्यक माना जाय, पतिव्रत के प्रति भी वैसी ही निष्ठा रखी जाय। पतिव्रता नारी से वातावरण सुवासित तथा जीवन सार्थक बनता है, तो पत्नीव्रती पति द्वारा भी ऐसा ही परिणाम सामने आयेगा। यह कदापि नहीं हो सकता कि उनसे वातावरण में विकृति या विरसता आ जाये अथवा जीवन नीरस-निरर्थक बन जाये।

एकांगी कर्त्तव्य-पालन का निर्वाह दुष्कर हो जाता है। उसको विकास का पथ तो कदापि प्रशस्त हो ही नहीं सकता। दूसरे पक्ष की भूमिका का प्रभाव भी अवश्यम्भावी है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण भी कम नहीं हैं। राम स्वयं पत्नीव्रती थे, तो सीता रावण की लंका में रहकर भी सदा राम के प्रति ही निष्ठावान रहीं। उनकी इस निष्ठा के ही कारण रावण उन्हें राजमहल में रखने का साहस न सँजो सका, अशोक वाटिका में ही रखने की उसे बाध्यता-जैसी प्रतीत हुई परन्तु बहुनारीगामी रावण की मृत्यु के बाद उसकी पट्टमहिषी मन्दोदरी को नये राजा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विभीषण की पत्नी बनने में कोई झिझक नहीं लगी, क्योंकि जीवनभर उसने एकनिष्ठा-विहीनता का ही प्रत्यक्ष प्रशिक्षण तो प्राप्त किया था। यदि पत्नी सचमुच स्वजन, सुहृदय है, आत्मीय है, तब उसके लिए वही मानदण्ड बनाये जाने चाहिए, जो अपने लिए अन्यथा उसे अर्धांगिनी कहना-मानना या तो मूर्खता मानी जायेगी या फिर दुष्टता।

यदि दोनों को मिलाकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व माना जाता है, तो उनमें परस्पर पूरकता होनी ही चाहिए। साथ ही दोनों की कसौटियाँ भी एक जैसी होनी चाहिए, सेवा, विनम्रता, सहिष्णुता यदि पत्नी के गुण हैं, तो पति के भी होंगे। पति का व्यक्तित्व जीवन्त, सक्रिय, गतिशील होना आवश्यक है, तो पत्नी को छुई-मुई, सहमी-सिकुड़ी, ठहरी-रुकी-सी, बँधी हुई और कैद क्यों बनाये रखा जाय ?

एक ओर तो यह कह दिया जाता है कि घर का काम कुछ कम नहीं होता, आखिर उसे अभ्यस्त-निपुण पत्नी ही क्यों न सम्हाले। दूसरी ओर बाहर काम कर घर लौटने वाला पति-पत्नी के श्रम को नगण्य मान बैठता है तथा उससे अपनी सेवा की ही अपेक्षा करता है। दिनभर के काम में जुटी नारी को आखिर सहयोग की जरूरत क्यों नहीं पड़ेगी ? आवश्यकता पड़ने पर उसकी सेवा में लज्जा क्यों लगनी चाहिए ? पर देखा तो यह जाता है कि वर्षों से पति बच्चों की साज-सम्हाल में जुटी पत्नी बीमार पड़ी, तो उसकी सेवा-टहल को पति अपना अपमान मानते हैं और यदि कुछ भी सहयोग कर दिया या घर का काम किसी प्रकार समेट लिया तो उसे पत्नी पर एहसान माना जाता है। यदि घर का काम करना साथी पर एहसान करना है, तब पत्नी तो यह एहसान प्रतिदिन करती है। उसका आभार क्यों न माना जाय ?

शिक्षा, सांस्कृतिक, सामाजिक गतिविधियाँ, व्यायाम, खेल-कूद यदि व्यक्तित्व-विकास के लिए आवश्यक हैं तो उनकी सुविधामात्र गृहपति को ही क्यों मिले ? गृहिणी इनकी अधिकारिणी क्यों न मानी जाय ? क्या आधे जीवन, आधे मृत शरीर को ही दम्पत्ति कहा जाएगा ? दोनों समान रूप में जीवन्त शक्तिशाली हुए तो क्या दाम्पत्य खटाई में पड़ जायेगा ? वस्तु-स्थिति तो इसके विपरीत है। जिस शरीर का आधा हिस्सा लगभग निष्क्रिय, निस्तेज हो जाये, उसे पक्षाघात-ग्रस्त माना जाता है तथा दया, सहानुभूति एवं चिकित्सा का पात्र समझा जाता है, प्रशंसा का नहीं।

अतः नर-नारी के बीच भेदभावपूर्ण व्यवहार की विभाजक रेखाएँ समाप्त होनी चाहिए। दोनों के सम्मिलित व्यक्तित्व के लिए सार्थकता की समान कसौटियाँ लागू की जानी चाहिए। तब दोनों में न तो कोई अन्तर्विरोध उभरेगा, न ही सन्तुलन की समस्या पैदा होगी।

पारिवारिक सुख-शान्ति का मार्ग

भगवान मनु ने सुखमय दाम्पत्य-जीवन के सम्बन्ध में लिखा है—कि जिस परिवार में स्त्री और पुरुष सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ नित्य कल्याण होता रहता है। जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवताओं का वास होता है और जहाँ उनका सत्कार नहीं होता, वहाँ की प्रत्येक क्रिया निष्फल हो जाती है। जिस कुल की स्त्रियों में शोक होता है अर्थात् जिस कुल में स्त्रियाँ शोकातुर रहती हैं, वह कुल नष्ट हो जाता है और जहाँ स्त्रियाँ प्रसन्न रहती हैं उस कुल की वृद्धि होती है।

सुखमय दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी का प्रसन्न रहना आवश्यक है। जब तक दोनों व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं रहेंगे तब तक सुख नहीं प्राप्त हो सकता।

किस प्रकार यह प्रसन्नता प्राप्त हो, यह प्रश्न टेढ़ा है और इसका उत्तर बहुत विशाल है। पति-पत्नी की प्रसन्नता की कोई परिभाषा नहीं बनायी जा सकती। कोई पति किसी बात पर प्रसन्न होता है तो कोई उसी बात पर अप्रसन्न भी हो सकता है। संसार के प्रत्येक प्राणी का स्वभाव भिन्न होता है और रुचि भी भिन्न। ऐसी स्थिति में तब एक सर्वमान्य उत्तर होना चाहिए, जो सब पर लागू हो सके। विचार किया जाय तो पारिवारिक प्रसन्नता निम्नलिखित बातों पर अवलम्बित रहती है—

(१) स्वास्थ्य और सौन्दर्य।

(२) शील तथा प्रेम।

(३) विद्या और गृहप्रबन्ध की योग्यता।

अधिकतर इन्हीं तीन बातों पर ध्यान देने से दाम्पत्य जीवन सुखमय हो सकता है।

स्वास्थ्य और सौन्दर्य—स्त्री स्वास्थ्य पर विचार करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक होगा कि स्त्रियों का आजकल स्वास्थ्य अधिक गिरा हुआ है। जब स्वास्थ्य ही ठीक नहीं रहेगा, तो सौन्दर्य नहीं रह सकता। वस्तुतः स्वास्थ्य का नाम ही सौन्दर्य है। जो हँस-मुख होगी, वह सुन्दरी लगेगी। सुन्दरी स्त्री पति के हृदय की स्वामी होगी और जब स्त्री पति हृदय को अपने वश में रखेगी तो उसका जीवन सर्वदा सुखी रहेगा। रोगी स्त्री या चिड़चिड़ी स्त्री को पति का प्रेम कभी प्राप्त हो नहीं हो सकता और जब तक स्त्री को पति का प्रेम न प्राप्त हो वह सुन्दर नहीं रह सकती।

कल्पना कीजिए, आप दिन भर के श्रम से थककर विश्राम के लिए संध्या समय पर घर लौटे और देखा पत्नी खाट पर लेटी है, चूल्हे में आग नहीं जली है। कभी सिर की पीड़ा है, कभी ज्वर आ रहा है। आप सोच रहे हैं घर चलकर आराम करें और यहाँ आकर डाक्टर के घर जाना पड़ता है। कभी आप स्वयं को कोसते हैं कभी पत्नी को, लेकिन हार मानकर दवा लेने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाना ही पड़ता है। कभी सुख-सन्तोष नहीं। दिन भर ऑफिस के काम से थके-माँदा घर आये पर यहाँ भी शान्ति नहीं मिली। आप इस पर खीज तो उठते हैं लेकिन कभी आपने सोचा ऐसा हुआ क्यों ? आइए, हम आप विचार करें कि पत्नी के बीमार होने का क्या कारण है ?

खान-पान में असावधानी, बेकारी, चिन्ता अथवा भोगविलास की अधिकता से तो वह अस्वस्थ नहीं हो गयी। अवश्य ! तो इन्हीं कारणों में से कोई कारण होगा या तो पत्नी की गल्ती होगी या फिर आपकी।

खान-पान में असावधानी—स्त्रियाँ प्रायः भोजन में बड़ी असावधानी करती हैं। जो मिला खा लिया, पेट भरने से काम रहता है। आपको यह देखना है कि क्या खाती हैं और कब खाती हैं ? यह नहीं कि रूखा-सूखा जो मिल गया खा लिया। जब मन में आया खा लिया। दोहपर का खाना तीन बजे और शाम का भोजन रात के १० बजे। यह सब असावधानी है। भोजन नित्य नियत समय पर करना चाहिए।

अनेक स्त्रियाँ वासी खाने की शौकीन होती हैं। ऐसा भोजन बहुत हानिकारक होता है। कुछ लालची होकर भी वासी खाती हैं। रात का भोजन बच गया, घर में और कोई नहीं खा सकता, पति और बच्चों को ताजा खिलाकर स्वयं बासी खाकर रह जाना अच्छा नहीं होता। चाहिए तो यह कि भोजन इस परिणाम से बनाया जाय कि बासी बचे ही नहीं।

बहुतेरी स्त्रियाँ खटाई, मिर्च और अचार बहुत खाती हैं। इससे स्वास्थ्य की हानि होती है, पेट खराब हो जाता है, आँखों की रोशनी धूमिल हो जाती है। मासिक धर्म सम्बन्धी अनेक शिकायतें उपस्थित हो जाती हैं। स्वाद के लिए जो भोजन किया जाता है, वह तो पहले अच्छा लगता है, पर बराबर मसालेदार और चटपटा भोजन करने से पाचनशक्ति खराब हो जाती है। भोजन सादा होना चाहिये और पौष्टिक।

भोजन का समय नियत रखना चाहिये। प्रातःकाल का भोजन १०-११ बजे तक तथा शाम का ७-८ बजे तक कर लेना चाहिये। भोजन करने के २-३ घण्टे बाद सोना चाहिये। नियत समय पर भोजन न करने से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है।

बेकारी—इन्हीं सब बातों पर ध्यान न देने से स्त्रियाँ रोगी बनी रहती हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि बेकार रहने से भी स्त्रियाँ रोगी हो जाती हैं। आलस्य में पड़े रहने से भी शरीर रोगी हो जाता है। व्यायाम करते रहने से शरीर के प्रत्येक अंग गठित रहते हैं, शरीर में फुर्ती रहती है।

स्त्रियों का सबसे अच्छा व्यायाम चक्की चलाना है, लेकिन आजकल इसका रिवाज केवल देहातों तक ही सीमित है। आजकल तो देहातों में भी चक्की मिल खुल गयी हैं। मिल का चावल और मशीन का आटा खाते-खाते हम निर्बल होते जा रहे हैं।

आजकल की स्त्रियाँ चक्की चलाना, बर्तन मलना, झाड़ू देना आदि बुरा समझती हैं। इन कामों को नौकरों का काम समझती हैं। पहले स्त्रियाँ अँधेरे उठकर झाड़ू हाथ में लेतीं और सारा घर झाड़-पोंछकर, दो-तीन सेर गेहूँ पीसती थीं। बर्तन वगैरह मलकर भोजन की व्यवस्था करती थीं। लेकिन आज की कुमारियाँ बिस्तर पर पड़े-पड़े अजीर्ण तथा मासिकधर्म सम्बन्धी शिकायत से परेशान रहती हैं।

कुछ स्त्रियाँ, जो अकेले पति के साथ ही रहती हैं, बेकार रहती हैं। उन्हें चाहिये कि कोई गृह-उद्योग सीखें जिसमें उनका मन लगा रहे। शिल्प विद्या सीखना, वेल-बूटा काढ़ना, पीसना तथा सिलाई, कटाई का काम स्त्रियाँ बेकारी में कर सकती हैं। बेकार कभी नहीं बैठना चाहिये। प्रत्येक को कुछ न कुछ करते रहना चाहिये।

चिन्ता—घर में कई प्रकार की चिन्ताएँ लगी रहती हैं। रुपये-पैसों की चिन्ता, बच्चों की या घर के किसी और प्राणी की बीमारी की चिन्ता तथा पति के दुर्व्यसनी होने की चिन्ता।

चिन्ता को चिता के समान कहा गया है। चिन्ता से बढ़कर स्वास्थ्य का नाश करने वाली कोई अन्य बात नहीं है। इसलिए चिन्ता से बचना चाहिये। चिन्ता शरीर में घुन की तरह है, जिससे शरीर की कान्ति नष्ट हो जाती है और मनुष्य दुबला-पतला हो जाता है। अन्त में चिता पर ही उसे शान्ति मिलती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि चिन्ता बरबस गले लग जाती है। संसार में धन ही सब कुछ है। इसलिए धन की रक्षा करनी चाहिए। कहा भी है—**''सर्वे गुणाः कांचन माश्रयन्ति।''** सब कुछ कंचन में ही है। पैसा न हो तो कोई किसी से बात न करे। पैसे बिना मन में शान्ति नहीं रहती, सगे-सम्बन्धी सभी आदर करते हैं। नीतिशास्त्र में कहा गया है कि सम्बन्धियों के बीच निर्धन होकर रहने से मृत्यु श्रेष्ठ है। यदि सिर पर ऋण हो गया तो घबराना उचित नहीं है। परमात्मा पर भरोसा कर उद्योग करना चाहिए। चिन्ता या शोक करने से तो ऋण दिया नहीं जा सकता। ऐसी हालत में पत्नी को लज्जा त्याग कर पति के कष्टों में सहायता पहुँचानी चाहिए। उसे सान्त्वना देनी चाहिए और स्वयं भी कोई काम करना चाहिए जिससे चार पैसे मिलें। विलायत और अन्य देशों में जैसे चीन, जापान आदि में स्त्रियाँ कुछ न कुछ उद्यम करती ही रहती हैं। इस प्रकार वे पति पर भार न बनकर स्वयं कुछ उपार्जन कर लेने में अपनी बढ़ाई और सम्मान समझती हैं।

द्वन्द्व—बच्चों की चिन्ता स्त्री को बहुत रहती है। किसी के बच्चे होते ही नहीं। किसी के मर ही जाते हैं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

या किसी को लड़कियाँ ही पैदा होती हैं। विवाहित लड़कियों की चिन्ता भी माता को अधिक रहती है। ससुराल में उस पर क्या बीत रही होगी, कैसे वह सबको प्रसन्न रखती होगी, आदि चिन्ताएँ माता को लगी रहती हैं। कभी-कभी अपनी बहू की भी चिन्ता रहती है। यदि बहू से सास-ससुर को सुख प्राप्ति न हो सका, तो यह बड़े दुःख की बात है।

बहू समझती है कि पति हमारा है। अतः हमारी बात प्रधान होनी चाहिए। सास समझती है पुत्र हमारा है, इससे हमारी बात प्रधान माननी चाहिये, हमारा इस पर अधिकार है। मरण विचारे लड़के का होता है, किसे क्या कहें ? नासमझ युवक कभी माँ के कारण बहू की और कभी बहू के कारण माँ की दुर्दशा करते हैं। इसलिए माता को बड़ी समझदारी से काम लेना चाहिए। सास को सोचना चाहिए कि उसकी बहू किसी की लड़की है। अतः अपनी ही लड़की के समान है। उसकी भूलों को प्रेम से क्षमा कर देना चाहिये और उचित मार्ग बतला देना चाहिए। यदि सास उसकी माता बनकर रह सकेगी तो वह भी पुत्री बनकर रहेगी ही।

घर में जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता है तो उसकी देखभाल करने वाला भी एक प्रकार से बीमार हो जाता है। स्त्री को चाहिए कि वह पूरे मनोयोग से रोगी की सेवा करे। रोगी अक्सर चिड़चिड़े स्वभाव के हो जाते हैं। उसी समय सम्हलना चाहिए, घबराने से काम नहीं चलता।

पति का दुर्व्यसनी होना भी स्त्री के लिये चिन्ता का कारण होता है। विशेषकर जब पति जुआरी, शराबी अथवा वेश्यागामी हो जाता है तो पत्नी बहुत चिन्तित हो जाती है। सचमुच वह चिन्ता का विषय है। कितने परिवारों का नाश इन्हीं दुर्व्यसनों के कारण हो गया, कितनी स्त्रियों ने आत्महत्या करली, कितनी स्त्रियाँ खुलेआम वेश्या हो गयीं। यह सामाजिक दुराचार तत्काल बन्द होना चाहिए। सरकार को चाहिए कि इस दुराचार को रोकने में कड़ाई से काम ले। स्त्री को चाहिये कि धैर्य से काम ले और विनय और प्रेम से पति का दुर्व्यवहार छुड़ाए। यद्यपि यह अत्यन्त कष्टसाध्य है परन्तु सिवा इसके और मार्ग भी नहीं है।

भोग-विलास की अधिकता भी स्वास्थ्य नाश का जबरदस्त कारण है। विवाह के प्रारम्भिक दिनों में प्रायः पति-पत्नी भोग-विलास की अधिकता के शिकार हो जाते हैं। किसी भी चीज की अति बुरी भयावह होती है। यौवन एक बरसाती नदी है, इसको मार्ग की कठिनाई का अनुभव नहीं होता। लेकिन यौवन की तरंग में बहकर अपना जीवन नष्ट कर लेना बुद्धिमानी नहीं है। तरंगों पर नियन्त्रण रखना चाहिये। स्त्री-पुरुष को संयम से रहना चाहिए।

इस प्रकार हमने देखा, स्त्री का स्वास्थ्य और सौन्दर्य प्रधान कारण है, जिससे वह पति की प्यारी बन सकती है। सौन्दर्य लिपिस्टक और पाउडर लगाने से नहीं बढ़ता। सुन्दरी स्त्री की शोभा वस्त्रा-भूषणों से नहीं, बल्कि उसके स्वास्थ्य से होती है। जो स्त्री स्वस्थ है और सुन्दर है वह पति का हृदय जीत सकती है और उसका जीवन सुखमय हो सकता है।

शील और प्रेम—दाम्पत्य-जीवन में जिस प्रकार स्वास्थ्य और सौन्दर्य का प्रथम स्थान है, उसी प्रकार शील और प्रेम का भी द्वितीय स्थान है। सच तो यह है कि यदि स्त्री में शील और प्रेम नहीं तो वह लाख सुन्दरी रहकर भी गृहस्थ जीवन के अनुकूल नहीं रह सकती। चाहे पति उसके रूप माधुरी पर लट्टू रहे पर वह घर की और पड़ौस की दृष्टि में प्यारी नहीं बन सकती। पति भी चार दिन की चाँदनी की भाँति उसका मुँह जोहता रहेगा लेकिन फिर वह भी ऊब जायेगा। जिस स्त्री में शील है, पति के प्रति सच्चा प्रेम है, उसी को सच्ची सुन्दरी होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ समझना चाहिए क्योंकि वह बीमारी, कुरूपता और वृद्धावस्था में भी अपने आन्तरिक सौन्दर्य के कारण सुन्दरी ही बनी रहेगी।

उपरोक्त बातें साधारण दिखाई पड़ती हैं, पर वस्तुतः ये इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि इन पर समुचित ध्यान देने से हमारा पारिवारिक जीवन सुख-शान्तिमय बन सकता है।

सुखी दाम्पत्य-जीवन इस तरह बनता है

सुख के साधनों के साथ स्नेह, प्रेम और आत्मीयतापूर्ण भावनाओं के सम्मिश्रण को ही स्वर्ग कहा जा सकता है। यह स्वर्ग हमारे घर में ही मौजूद है, हम भले ही न देख पाते हों; यह स्वर्ग है—दाम्पत्य-जीवन का सुख, किसी ऊपर वाले स्वर्ग से कम सरस, सुखद और रुचिपूर्ण नहीं है।

इस स्वर्ग को बनाने के लिये पति-पत्नी को अपने कर्त्तव्यों का पालन करना होगा, हम अपने कर्त्तव्यों का पालन करके ही अपने घर को स्वर्ग बना सकते हैं; यह कर्त्तव्य कई प्रकार के होते हैं।

दाम्पत्य-जीवन का महत्त्व मनुष्य की अनेको कोमल एवं उदार भावनाओ, विचारशीलताओं तथा सद्प्रवृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेकों दैवी गुणों पर दाम्पत्य-जीवन की नींव लगती है।

दाम्पत्य-जीवन यथार्थ की धरती पर कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित रूप है। जो स्त्री और पुरुष के परस्पर स्नेह, आत्मीयता, त्याग, बलिदान, जीवन की कठोरताओं और शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उन्हें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सरस और स्वर्गीय बना देता है। अनेकों कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पग-पग पर नई आशा, नई उमंग, नई प्रेरणा जमी रहती है। पुरुष नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेवा से सशक्त बना रहता है तो नारी पुरुष के स्नेहपूर्ण संरक्षण, आत्मीयता, आदर-सम्मान को पाकर सबला, देवी, गृहणी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति-पत्नी की परस्पर आलोचना दाम्पत्य-जीवन के मधुर सम्बन्धों में खटास पैदा कर देती है। इससे एक-दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी पत्नी की बात-बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन-सहन, ओढ़ने-पहनने, बोल-चाल आदि तक में नुक्ताचीनी करते हैं। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की उपस्थिति उन्हें बोझ-सी लगती है, वे उनकी उपेक्षा तक करने लगती हैं। इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा, आलोचना करना भी इतना ही बुरा है। पुरुषों को अपने काम से थककर घर आने पर, उसे घर में प्रेम एवं उल्लास का समुद्र लहराता यदि मिले तो उनकी दिनभर की थकान, क्लांति, परेशानी उसमें घुल जाती है। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु आलोचना एवं व्यंग्यवाण का सामना करना पड़े, तो उस व्यक्ति की क्या दशा होगी ? इसका अनुमान तो कोई भुक्तभोगी ही लगा सकता है।

पति-पत्नी की एक-दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। जब पति-पत्नी एक-दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन-सहन पर सन्देह करने लगते हैं, तो पारस्परिक मधुर सम्बन्धों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। इससे दाम्पत्य जीवन की सुख-शान्ति तो नष्ट होती ही है कालान्तर में घृणा, अलगाव, असहयोग, झूँठ बोलना, धोखेबाजी के रूप में अनेक दुर्भावनाओं की सृष्टि होती है। वस्तुतः परस्पर सचाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारतापूर्ण क्षमा से ही दाम्पत्य-जीवन निभता है।

सफल दाम्पत्य-जीवन के लिए परिष्कृत भावनाएँ और परिमार्जित दृष्टिकोण आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव मिलते हों, एक-दूसरे के लिए आत्म-दान की भावना हो तो अल्प साधन, कम शिक्षा और स्वल्प सौन्दर्य वाले दम्पत्ति भी मस्ती का, हँसी-खुशी का जीवन जी सकते हैं। विवाहों में जो कर्मकाण्ड, आदर्श और संस्कार डाले जाते हैं, उनका उद्देश्य भावनात्मक दृष्टि से स्त्री और पुरुष को चारों ओर से खींचकर एक केन्द्रबिन्दु पर लाना ही होता है। जिन घरों में उन आदर्शों पर अमल होता है वहाँ आमोद-प्रमोद, हास-विलास का जीवन सदैव उभरता हुआ रहता है। उन घरों में स्वयं जैसी परिस्थितियों का रसास्वादन किया जाता है।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए भावनात्मक परिष्कार का उद्देश्य स्त्री-पुरुष को नेक और सुशील बनाना होता है। पुरुष में पुरुषत्व के, स्त्री में स्त्रीत्व के गुण विद्यमान हों तो कोई कारण नहीं कि दाम्पत्य-जीवन सुख से न बीते। अन्य सारी योजनायें—इन्हीं गुणों के विकास की माध्यम हैं। मुख्य रूप से पुरुष में शक्ति, साहस, सक्रियता और निर्भयता आदि गुणों का समावेश हो और स्त्री में कोमलता, मृदुता, दयालुता, स्नेह, सौम्यता और सहानुभूति के गुण होने चाहिए। दोनों के स्वभाव में अपने-अपने गुणों का पर्याप्त स्थान हो तो प्रेम, विश्वास, आत्मीयता आदि का परिमार्जन अपने आप होता है और दाम्पत्य-जीवन में घनिष्ठता बढ़ती जाती है और उनके जीवन में आनन्द की कोई कमी नहीं रहती। ऐसे ही घरों में श्रेष्ठ और सद्गुणी सन्तानें जन्म लेती हैं और उनसे सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन सुखी एवं समुन्नत होता है। इसलिए दाम्पत्य-जीवन को पवित्र बनाना, उद्देश्यपूर्ण रखना प्रत्येक गृहस्थ का मूल धर्म कर्त्तव्य है।

दाम्पत्य-जीवन और प्रेम—दाम्पत्य-जीवन को सुखी एवं सन्तुष्ट बनाये रखने के लिये जिस प्रेम की आवश्यकता है, जिन सद्भावनाओं की उपयोगिता है वे कभी भी किसी बाह्य उपकरण, वशीकरण मन्त्र आदि से उपलब्ध नहीं किये जा सकते। इसके लिये तो अपने आप में ही आवश्यक हेर-फेर करना पड़ेगा। अपनी द्वेष-दुर्भावनाओं को हटाकर विचार-विनिमयपूर्वक फिर से समस्या का सुधार करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नजर नहीं आता, प्रेम मानव अन्तःकरण की आध्यात्मिक प्यास है। हर पत्नी अपने घर से यह आकांक्षा लेकर आती है कि उसे ससुराल में सामान्यतया सबका और विशेषतया अपने पति का प्यार मिलेगा। पति यह चाहता है कि उसकी स्त्री उससे प्रेम और ममत्व बनाये रखेगी। यह सर्वमान्य तथ्य है कि सारे झगड़े प्रेम के अभाव में उठ खड़े होते हैं।

इससे ऐसे अवसरों की तलाश करते रहना चाहिए जब दूसरे के साथ अधिक आत्मीयता, सहृदयता प्रदर्शित की जा सके। मुरझाये हुए अन्तःकरण प्यार की हल्की-सी बौछार से भी जी उठते हैं, अपने आप को न्यौछावर कर देने के लिए उद्यत हो उठते हैं। दाम्पत्य-जीवन को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए धन की उतनी आवश्यकता नहीं, आलीशान महल, मकान भी उतने आवश्यक नहीं जितना प्रेमपूर्ण वातावरण होता है। सुख-सन्तोष का जीवन फूँस की झोंपड़ी में भी जिया जा सकता है, बशर्ते कि लोगों के अन्तःकरण पारस्परिक प्रेम-भावनाओं को स्थिर रख सकें।

आज के पारिवारिक जीवन को फिर से नया रूप देने की आवश्यकता सभी विचारवान पुरुष अनुभव कर रहे हैं। लोगों को शिक्षित बनाने, आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने के भी अनेक कार्य सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर चल रहे हैं किन्तु गृहस्थ जीवन को सुव्यवस्थित,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुखी एवं सन्तुष्ट बनाने के लिए प्रेम, आत्मीयता के अभाव में सारी योजनाएँ विफल ही लग रही हैं। दाम्पत्य-जीवन को फिर से सुदृढ़ बनाने के लिए, फिर से पति और पत्नियों को गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन को प्राथमिकता देनी होगी। दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए धन जुटायें, पारिवारिक शिक्षा पर ध्यान दें और भी जो साधन उचित हों ग्रहण करें, यह न भूलें कि पारस्परिक प्रेम, आत्मीयता के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सफल न होगा। इसके लिए प्रेम, विश्वास, सहिष्णुता, उदारता और आत्म-त्याग का आश्रय लेना पड़ेगा। इसी के आधार पर घरों में स्वर्ग उतरेगा।

दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने के लिए, पति-पत्नी को अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए, तभी घर में स्वर्ग होने की कल्पना पूर्ण हो सकेगी।

पति-पत्नी परस्पर सामंजस्य रखें

पारिवारिक जीवन में सामान्य-सी बातों को लेकर आये दिन क्लेश-कलह उत्पन्न होने लगता है। साधारण-सी बातें, जिन्हें यदि गम्भीरता की दृष्टि से देखा जाय तो बिल्कुल सच ही मालुम देती हैं; परन्तु उनके कारण ही पारिवारिक जीवन में क्लेश-कलह खड़ा हो जाता है और पति-पत्नी बुरी तरह एक-दूसरे से नोंक-झोंक करने लगते हैं। उदाहरण के लिए, पति दफ्तर से थका-माँदा आया हुआ है। उसने अभी अपने कपड़े भी नहीं उतारे और उसके सामने पत्नी ने अपने दिनभर की घटनाओं का रोना-धोना शुरू कर दिया है। अपनी जरूरतों की लम्बी फेहरिस्त पति के सामने रख दी। पति दिनभर का हारा-थका आया है—इस बात की पत्नी को चिन्ता नहीं है और इधर पति दिनभर के काम के दबाव से थका हुआ है—वह इन सब बातों को सुनकर खीझने लगता है और परिवार का वातावरण कलहपूर्ण बनने लगता है।

एकाकी पति के त्याग और लचीलेपन से भी काम नहीं चलता और केवल पत्नी ही पति की हर इच्छा के आगे झुकती रहे यह भी अव्यावहारिक है। उचित तो यह है कि पति से यदि कहीं गलती होती है, तो पत्नी उसे सहने और सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहे और पत्नी से यदि कोई भूल होती है तो पति उसके प्रति उदारतापूर्वक विचार करे। इस प्रकार एक-दूसरे को सहते हुए पारिवारिक जीवन में स्वर्ग-सुख की सृष्टि की जा सकती है। कई अवसरों पर महापुरुषों ने ओछे स्वभाव की पत्नियों को भी समझदारी से निबाहा है और उसे प्रेम तथा उदारता से सुधारा है।

परिवार में ऐसी परिस्थितियाँ भी आती हैं, जिनमें अपने जीवन साथी की उपेक्षा मिलती है। ऐसे अवसरों पर गलत प्रतिक्रिया व्यक्त करने से बचा जा सके तो जीवन साथी पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ता है और उसे अपने रवैये पर पुनर्विचार करने के लिए भी अनायास ही प्रेरित किया जा सकता है।

आपसी सम्बन्धों में तनाव की स्थिति आने पर उसका समाधान स्वयं भी वैसी ही प्रतिक्रिया करने से नहीं हो सकता। क्रोध एवं आवेग के क्षणों में पति या पत्नी में से कोई एक गरम हो तो दूसरा नरम की नीति अपनाने लगे, तो आपसी मतभेदों का समाधान सरलतापूर्वक किया जा सकता है अन्यथा दोनों पक्ष गर्मी से काम लेने लगें तो न केवल सम्बन्धों में चटख उत्पन्न होती है वरन् वे पारिवारिक घटनाएँ घरों से निकल कर चौराहों की लड़ाई बन जाती हैं।

कई परिवार हैं जहाँ ऐसे फूहड़ ढंग से झगड़े होते हैं जिनमें मारपीट होती है कि पड़ौसी भी उन्हें जान जाते हैं। ये बातें समाज के सामने भी खुल जाती हैं और पति अपने को अत्यधिक अपमानित महसूस करने लगता है, जिससे पत्नी के प्रति घृणा भावना बढ़ने लगती है। ऐसी दशा में झगड़े की जड़ शान्त चित्त से, चुपके से मिलकर हल कर लें अथवा ऐसे तीसरे व्यक्ति को बुलाकर फैसला करा लें जिससे अपनी बात को बाहर खोल देने का भय न हो तो वैसी स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती।

पारिवारिक सामंजस्य बनाये रखने में पुरुष की भी भूमिका कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, उसे नारी की कोमल भावनाओं, संवेदनाओं का सदैव ध्यान रखना चाहिए। नारी पुरुष से सर्वदा वस्तुएँ या उपहार ही नहीं चाहतीं, वह उससे अपनत्व एवं प्यार की भी कामना करती है। सहज स्वभाववश वह अपने अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण होते देखना सहन नहीं कर सकती। पुरुष को उसकी इस मनोभूमि के अन्दर पैठकर असीम विश्वास उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए।

पुरुषों को तो अत्यधिक समय घर के बाहर ही बिताना पड़ता है। अतः वे बाहर की दुनिया को अच्छी तरह देखने, परखने के आदी हो जाते हैं, परन्तु महिलाओं को घर के और बच्चों के दैनिक कार्यों से समय ही कम मिल पाता है कि बाहर की दुनिया का जायका ले सकें। इसके लिए पुरुषों को चाहिए, नियमानुसार उन्हें समय बचाकर बाहर घुमाने ले जायँ। इससे उनका भी मानसिक विकास होता है। समूहों में घूमने से अन्य लोगों की सभ्यता और सुरुचि के समाचार तथा पहनने, ओढ़ने के कपड़े, उठने-बैठने के अन्य तौर-तरीके तथा शिष्टाचार सीखने का सुअवसर प्राप्त होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कई बार पुरुष घर में उस तरह का वातावरण देखना चाहते हैं जैसा कि उसने किसी अन्य के घर जाकर देखा है, तो उसे चाहिये कि बाहर पत्नी को ले जाय या अनुमति देगा तभी तो पत्नी को तद्विषयक अनुभव प्राप्त होगा।

बच्चों के भावनात्मक विकास में भी पति-पत्नी के सम्बन्धों का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि घर का सुमधुर वातावरण है तो बच्चों के मन भी प्रफुल्लित एवं कुसुमित होते हैं। यदि घर में तनाव एवं घुटन का माहौल पैदा कर दिया गया है, तो बच्चों में हीन ग्रन्थियाँ घर कर जाती हैं और उससे उनमें एक विशेष तरह की कुण्ठा का जन्म हो जाता है। अतः इस समस्या को ध्यान में रखते हुए हमें यह निर्धारित कर लेना है कि घर में निश्चित रूप से किसी तरह का द्वेष एवं कलहपूर्ण वातावरण उत्पन्न न होने दें। यह तभी सम्भव है जब पति-पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं की इज्जत करते हुए जीवन की गाड़ी को चलने दें।

इस प्रकार की बहुत-सी छोटी-छोटी बातें हो सकती हैं, जिनका यदि ध्यान रखा जाय तो पति-पत्नी के सम्बन्ध सुमधुर और स्निग्ध, शान्तिपूर्ण बने रह सकते हैं। इसका प्रभाव बाहर के व्यक्तियों पर भी पड़ता है। पति-पत्नी यदि प्रेम और स्नेहपूर्वक रहें तो बाहर के लोग भी उन्हें श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। उस स्थिति में प्राप्त होने वाला आन्तरिक सन्तोष, उल्लास और आनन्द कहते नहीं बनता। पति-पत्नी एक समर्थ इकाई और पूरक साथी के रूप में समाज का तथा स्वयं का निर्वाह करते चलते हैं और पारिवारिक जीवन की आनन्द सुधा का पान करते रह सकते हैं।

दाम्पत्य-जीवन इस तरह निभता है

बहुत-सी पत्नियाँ समझने लगती हैं कि विवाह का अर्थ—शृंगार, विलास और आलस्य है। हमारी फर्माइश हर तरह पूरी होनी ही चाहिए। मुझे मनाने, रिझाने आदि में पति को अधिक से अधिक शक्ति और समय लगाना ही चाहिए। इस तरह जो लोग बहुत अधिक आशा करते हैं, वे बहुत कुछ पाकर भी दुःखी हो जाते हैं, इसलिये कम से कम आशा करो और उससे जो अधिक मिल जाय, उसे सौभाग्य समझो।

यह ठीक है कि दाम्पत्य-जीवन इतने में ही सार्थक नहीं हो जाता, विशेष सेवा, विनोद, आकर्षण हर काम में सहयोग आदि बहुत-सी बातें दाम्पत्य-जीवन की सार्थकता के लिए जरूरी हैं, सो इनके लिए यथाशक्य प्रयत्न करना चाहिए—बिना प्रयत्न के ही मिल जायँ तो सद्भाग्य ! पर उपर्युक्त पाँच बातों के मिल जाने पर अपने दाम्पत्य में असन्तुष्ट न होना चाहिए और असन्तोष प्रगट करना तो और भी ठीक नहीं। रूप, विद्या, कला, स्वास्थ्य, धन, बल आदि की कमी का विचार विवाह के पहले कर लिया जाय, पीछे इस विषय में असन्तोष व्यक्त करने की जरूरत नहीं है, पीछे तो इन त्रुटियों के रहते हुए भी सन्तोष के साथ जीवन बिताना चाहिए।

साथी का स्वभाव और रुचि समझो और उसके अनुसार व्यवहार करो। किसी का स्वभाव एकान्तप्रिय होता है, किसी के स्वभाव में गप्पें मारने की आदत होती है, कोई संघर्षशील होते हैं, कोई बड़े तुनक मिजाज, किसी को गाने-बजाने में मजा आता है, कोई इससे चिढ़ते हैं और नीरवता पसन्द करते हैं, किसी की आदत क्रीड़ा-विनोद में लगे रहने की होती है, कोई किसी न किसी काम में लगे रहना पसन्द करते हैं, किसी को भाँति-भाँति के भोजन बनाने-खाने में मजा आता है, कोई इस तरफ से लापरवाह होते हैं, कोई शृंगार या सजावट को अधिक पसन्द करते हैं, कोई इसमें समय, शक्ति-साधन लगाना व्यर्थ समझते हैं। इस प्रकार अनेक लोगों की अनेक रुचियाँ होती हैं। इस प्रकार का रुचि स्वभाव-भेद पति-पत्नी में भी हो सकता है—ऐसी बातों को लेकर संघर्ष नहीं होना चाहिए। इस संघर्ष को टालने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि घर की आर्थिक स्थिति का ख्याल रखते हुए और अपने-अपने कर्त्तव्य का भार सँभालते हुए यथाशक्ति दोनों को स्वतन्त्रता दी जाय, अपनी आदत ऐसी बना ली जाय कि दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े। अपना कर्त्तव्य पूरा करने के बाद अगर किसी को गाने-बजाने में अच्छा मालूम होता है, तो उसे उसकी स्वतन्त्रता है, शर्त यह है कि इतना शोर न मचाया जाय कि दूसरे को अपना काम करना या चैन से बैठना मुश्किल हो जाय।

यद्यपि दाम्पत्य में नियमों की पाबन्दी से ही काम नहीं चल सकता, नियमों के उद्देश्य पर ध्यान देना पड़ता है और एक-दूसरे की सुविधा और स्वतन्त्रता का ख्याल रखना पड़ता है, फिर भी इस काम के लिए साथी के स्वभाव और रुचि को समझना जरूरी है। स्वभाव की परख हो जाने पर संघर्ष को बचाने की सुविधा हो जाती है।

एक-दूसरे की सेवा या मनोरंजन खुशी से किया जाय, तभी उससे वास्तविक सन्तोष होता है और करने वाले को भी वह बोझ मालूम नहीं होता। घर के बाहर भी इस नियम की जरूरत है, पर दम्पत्ति में तो यह अत्यावश्यक है।

जबर्दस्ती तीन साधनों की अपेक्षा तीन तरह से होती है—तन से, वचन से, अर्थ से। वचन से जबर्दस्ती का अर्थ है—गाली देना, कठोर वचन बोलना या कठोर स्वर में बोलना आदि। तन से जबर्दस्ती का अर्थ है—मारना-पीटना आदि। अर्थ से जबर्दस्ती का अर्थ है—योग्य साधनों का उपयोग न होने देना आदि।

दाम्पत्य को सुख-शान्तिमय बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें न तो जबर्दस्ती से काम लिया

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय और न यथाशक्य जबर्दस्ती को मौका दिया जाय। इशारे में या थोड़े में ही एक-दूसरे के मनोभावों को समझा जाय और नैतिक-मर्यादा का पालन करते हुए एक-दूसरे के अनुकूल बना जाय।

पति-पत्नी में थोड़े-बहुत झगड़े होते ही हैं और शान्त भी हो जाते हैं, पर अगर उनका उल्लेख बाहर कर दिया जाता है—तो घर में झगड़ा शान्त हो जाने पर बाहर निन्दा होती ही रहती है और दोनों की इज्जत को धक्का लगता है, बाहरी लोगों की दृष्टि में दोनों हीन या दयनीय हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों का नुकसान तो होता है, साथ ही जब भी कभी ऐसे निन्दा-वाक्य कान में पड़ते हैं, तभी पुराना झगड़ा फिर याद आ जाता है। भीतरी-झगड़े को लौटाना आसान है, पर बाहरी फैली निन्दा को लौटाना आसान नहीं है।

जब एक-दूसरे की शिकायतें बाहर कहीं जाती हैं, तब सिर्फ आकस्मिक झगड़ा नहीं रह जाता, किन्तु एक-दूसरे के विरुद्ध एक प्रकार से युद्ध की चुनौती हो जाती है। इसका अर्थ होता है कि एक-दूसरे को पछाड़ने के लिए लोकमत आदि का बल संचित करना। इससे एक प्रकार का स्थायी द्वेष पैदा हो जाता है, जो कि दाम्पत्य जीवन को खोखला कर देता है।

बैठना-उठना, आना-जाना, मिलना-जुलना, किसी विशेष कार्य में या क्रीड़ा-विनोद में लगना आदि की दोनों को पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए। हाँ, इस स्वतन्त्रता का उपयोग इस रूप में नहीं होना चाहिए कि घर के आवश्यक कार्य या एक-दूसरे की आवश्यक सेवा में बाधा पड़ जाय। घर के और परस्पर के आवश्यक कार्य हो जाने पर एक-दूसरे की स्वतन्त्रता में बाधा न डालो। घर के आवश्यक कार्य हो जाने पर जितने समय दोनों की रुचि हो, दोनों साथ बैठो, अगर किसी एक की रुचि किसी दूसरे काम में लगने की हो तो उसे उसमें लगने दो। ऐसे अवसर पर तुम अकेले ही दिल बहलाने की आदत डालो। रुचि के विरुद्ध एक-दूसरे को बाँधने से प्रतिक्रिया होने लगती है, इससे अरुचि और घृणा बढ़ने लगती है। जब दूसरे में हमें अरुचि और घृणा का पता लगता है, तब हमें प्रेम में सन्देह होने लगता है। प्रेम में सन्देह होने पर दाम्पत्य की दुर्दशा किस सीमा तक जायेगी, कह नहीं सकते ?

इसके लिए यह जरूरी है कि पत्नी और पति दोनों ही को फुर्सत के समय एकान्त में पढ़ने-लिखने की या कला-कौशल की आदत हो, जिससे एक अगर अपनी रुचि के अनुसार कोई काम करना चाहे तो बाकी दूसरा भी अपनी रुचि के अनुसार कोई काम निकाल ले। इस प्रकार दोनों ही बिना किसी कष्ट के एक-दूसरे की स्वतन्त्रता रक्षित रख सकें। इससे किसी को बुरा भी न लगे और प्रेम में भी ढीलापन न आवे।

पति अगर पत्नी का स्त्री-धन ले या पत्नी स्त्री-धन बढ़ाने की दृष्टि से भूषण आदि बनवाने का हठ करे तो इससे दोनों का मन मैला हो जायेगा, एक-दूसरे की इज्जत न करेंगे, प्रेम शिथिल हो जायेगा, दुकानदारी बढ़ जायेगी, इसलिए पैसे के मामले में एक-दूसरे के अधिकारों में गड़बड़ी न करो और न अपने पैसे पर इतना मोह रखो कि उसके आगे प्रेम या अन्य दाम्पत्य-सुख गौण मालूम होने लगें।

प्रेम या विलास में भूलकर दोनों या कोई एक जब अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं करते या किसी दूसरे पर बोझ लादते हैं, तब थोड़े ही दिनों में प्रेम या विलास नष्ट हो जाता है। यद्यपि दाम्पत्य में जीवन की अभिन्नता होती है, पति और पत्नी एक ही जीवन के दो अंग बन जाते हैं, फिर भी जैसे एक अंग का कार्य यदि दूसरे अंग से लिया जाय तो एक अंग अति भार के कारण और दूसरा अक्रियता के कारण रुग्ण हो जायेगा और इससे सारे शरीर को कष्ट उठाना पड़ेगा। उसी प्रकार दाम्पत्य का शरीर भी कष्ट में पड़ जाता है, इसलिए प्रेम में भूलकर अपना कर्त्तव्य मत छोड़ो। "काम प्यारा है, चाम नहीं" इस कहावत में काफी सच्चाई है, इसलिए अर्थ और काम दोनों जीवार्थों का समन्वय जरूरी है।

अपने में सौन्दर्य-कला, ख्याति आदि अधिक हो, तो भी इसका घमण्ड नहीं करना चाहिए। एक-दूसरे को नीचा दिखाने की भावना तो होनी ही न चाहिए। अगर कभी अपनी तारीफ भी हो तो उसमें अपने व्यक्तित्व की तारीफ न हो, किन्तु अपने दाम्पत्य की तारीफ हो—इस ढंग से करनी चाहिए।

अहंकार बाहर वालों के साथ भी बुरा है, फिर पति-पत्नी आपस में ही अहंकार का प्रदर्शन करें—यह दाम्पत्य दृष्टि से और भी बुरा है। दाम्पत्य तो पति-पत्नी के अद्वैत पर खड़ा होता है और अहंकार से तो द्वेष पैदा होता है, इसलिए अहंकार को छोड़कर एक-दूसरे के यथायोग्य प्रशंसक होना उचित है। समय पर एक-दूसरे की उचित प्रशंसा करने से प्रेम में ताजगी आती है। उसका मिठास बढ़ जाता है।

दुनिया में एक से एक बढ़कर पुरुष और एक से एक बढ़कर नारियाँ हैं। हो सकता है कि उनमें से किसी के साथ अगर तुम्हारा विवाह हुआ होता तो शायद आज की अपेक्षा तुम्हारा दाम्पत्य-जीवन अधिक शानदार या सुखमय हुआ होता, पर जो नहीं हुआ, उसे असम्भाव्य ही समझ लो—उसका ध्यान भी मत करो। मैं कैसे आदमी के पाले पड़ गई या मैं कैसी स्त्री के पाले पड़ गया, इत्यादि बातें बेकार तो हैं ही, साथ ही एक-दूसरे से मन फाड़ देने वाली हैं।

जीवन को बोझिल या कँटीला बनाकर असह्य मत बनाओ। मन की निर्बलता, असहिष्णुता, विलासिता और अहंकार के कारण जीवन असह्य बन जाता है। इससे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पग-पग पर क्रोध, रिसाना, बकझक, रोना, हाय-हाय करना, बात-बात में असन्तोष प्रगट करना आदि बातें होने लगती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जो बाहरी दुःख सरलता से सहा जा सकता है, जिसमें दूसरों की खुशी से सेवा और सहानुभूति मिल सकती है—वह दुःख दस गुना बढ़ जाता है और सेवा, सहानुभूति या तो दुर्लभ हो जाती है अथवा मिलती है तो देने वाले को जल्दी ही थका देती है, इसलिए अपने मन को खूब मजबूत बनाओ, प्रसन्न-मुख रहो, कोई कष्ट हो तो थोड़े में उचित समय पर ही प्रगट करो, उसके सहने में बहादुरी दिखाओ, अपना दुःख दूसरे पर जबर्दस्ती न उँड़ेलो अन्यथा इसका परिणाम यह होगा कि साथी साथ से बच निकलने की कोशिश करेगा। पति घर में आये और उसके पहले उसे यह चिन्ता लग जाय कि न जाने आज 'भवानी' के साथ कैसे पाला पड़ेगा—उसकी क्या-क्या शिकायतें सुनने को मिलेंगी तो समझना चाहिए कि पत्नी ने अपना जीवन असह्य बना डाला है। प्रेम कितना भी गहरा हो, उसने प्रेम की जड़ में घातक कीड़ा लगा दिया है—जो हर समय उसे कुतरता ही रहता है, ऐसी हालत में पानी देते रहने पर भी प्रेम का वृक्ष सूख जाता है।

इसी प्रकार पति के आने के पहले ही अगर पत्नी को यह चिन्ता हो जाय कि न जाने आज 'देवता' क्या बकझक करेंगे आदि, तो कहना चाहिए कि पति ने अपना जीवन असह्य बना डाला है और उसने प्रेम के वृक्ष को सुखाने का निमित्त मिला दिया है।

महीनों में होने वाली किसी खास घटना की बात दूसरी है, पर साधारण नियम वह होना चाहिए कि मिलते समय दूसरे को खुशी ही हो, अपना प्रसन्न मुख देखकर वह अपना ही थोड़ा-बहुत दुःख भूल जाय, न कि प्रसन्न वातावरण में मनहूसी आ जाय। चिड़चिड़ापन, तुनक-मिजाजी आदि से हम अपना दुःख भीतर से बढ़ाते ही हैं, साथ ही सेवा-सहानुभूति आदि खोकर उसे बाहर से भी बढ़ा लेते हैं। इसलिए अपने जीवन को ऐसा बनाओ, जिससे उसका बोझ दूसरे पर कम से कम पड़े और किसी को उससे चोट न पहुँचे।

पति-पत्नी—ब्रह्म और प्रकृति

सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्म एक ही था। उसने एकाकीपन की नीरसता और निष्क्रियता अनुभव की। फलतः अपने को ही दो भागों में विभाजित करके उसके साथ क्रीड़ा करने लगा। यही सृष्टि का शुभारम्भ है। नर-नारी के मध्य यही एक प्राण दो शरीर वाली स्थिति बनी रहे। दोनों के बीच सघन आदान-प्रदान बना रहे, यही दाम्पत्य-जीवन का लक्ष्य है। ब्रह्म और प्रकृति की भाँति ही पति-पत्नी की द्विधा के बीच एकात्मता वांछनीय है।

स वै नैव रेमे, तस्मादेवकाकी न रमते, स द्वितीयमच्छत्. सहैतावानास। यथा स्त्रीपुमांसौ सपरिष्वक्तौ स इमामेवात्मानं द्वेधापातयत्तः पतिश्च पत्नी चाभवताम्।।

वह रमण नहीं कर सका, क्योंकि अकेला कोई भी रमण नहीं कर सकता। उसने दूसरे की इच्छा की। वह ऐसा था, जैसे स्त्री-पुरुष मिले हुए होते हैं। उसने अपने इस रूप के दो भाग किये, जिनसे पति और पत्नी हो गये।

अर्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान्।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मानार्दयेततः।।

सृष्टि के प्रारम्भ में रुद्र आधे शरीर से पुरुष और आधे शरीर से स्त्री हुए। यह देखकर ब्रह्मा को सन्तोष हुआ और उन्होंने बताया कि अब इसका विस्तार किया जाय और सृष्टि चलाई जाय।

अर्द्धनारी नरेश्वर शिव सदा अपने दाहिने अंग—नर भाग से ही अधिक काम लेते हैं। बायें नारी पक्ष को न्यूनतम श्रम एवं कष्ट का अवसर आने देने का सदा ध्यान रखते हैं। नर का यही कर्त्तव्य भी है। शिव चरित्र में कहा गया है—

आत्मीयं चरणं दयाति पुरतो निम्नोन्नतायां भुवि।
स्वीयेनैव करेण कर्षति तरोः पुष्पं श्रमाशंकया।।
तत्पे किञ्च मृगत्वचा विरचिते निद्राति भागैर्निजैः।

अर्द्धनारीश्वर भगवान शिव ऊँची-नीची भूमि पर चलने के समय, परिश्रम से बचाने के विचार से अपना ही चरण धरते हैं और वृक्ष से पुष्प तोड़ते समय अपना ही हाथ काम में लाते हैं और तो क्या, मृगचर्म से बनायी हुई सुख शैय्या पर भी अपने भाग को ही टेकते हैं, जिससे कि दूसरे भाग को श्रम न हो।

यद्गृहे रमते नारी लक्ष्मीस्तद् गृहवासिनी।
देवताः कोटिसौ वत्स न त्यजन्ति गृहं हि तत्।।

जिस घर में सद्गुण सम्पन्ना नारी सुखपूर्वक निवास करती है, उस घर में लक्ष्मी निवास करती है। हे वत्स ! करोड़ों देवता भी उस घर को नहीं छोड़ते।

स्त्रिय एता स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छता।
पालिता निगृहीता च श्रीः स्त्री भवति भारत।।

—महा.

हे भरत नन्दन ! स्त्रियाँ ही घर की लक्ष्मी हैं। उन्नति चाहने वाले पुरुष को उनका भली-भाँति सत्कार करना चाहिए। अपने वश में रखकर उनका पालन करने से स्त्री लक्ष्मी स्वरूप बन जाती है।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्र अफलाः क्रियाः।।

—मनु.

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं या प्रसन्न रहते हैं, जहाँ इसके विपरीत, नारियों का अपमान होता है वहाँ अफल क्रियाएँ होती हैं। (अशुभ होता रहता है।)

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यति आशु तत्कुलं।
न शोचन्ति तु यत्र एताः वर्धते तद्हि सर्वदा।।

—मनु.

जहाँ नारी को शोचनीय स्थिति का बनाया जाता है, वह कुल शीघ्र विनष्ट हो जाता है और जहाँ यह शोचनीय नहीं होती, वहाँ हमेशा वृद्धि होती है।

शीलवाद—सती-साध्वी स्त्रियाँ अपने साथी का सब प्रकार कल्याण ही करती हैं। कहा गया है—

व्यालग्राहि यथा व्यालं विलादुद्धरते बलात्।
एवं मृद्धृत्य भर्तारं तेनैव सह मोदते।।

—दक्ष स्मृति

जैसे सपेरा बिल में घुसे हुए साँप को भी घसीट निकालता है। उसी प्रकार सती-साध्वी स्त्री अपने पति को अधोगति से उबार लेती है और साथ ही स्वयं भी प्रसन्न होती है।

पत्नी के रूप में नारी को धर्मधात्री—संसार सागर से तारने वाली और कुल का उद्धार करने वाली कहा गया है। नर याचना करता है—

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्
तारणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्।।

हे भगवती ! ऐसी पत्नी दीजिए जो मनोवृत्तियों को आपका अनुसरण करने वाली बना दे। संसार सागर से पार करे और कुल का उद्धार करे।

नारी की गरिमा के उपयुक्त हर घर में उसे समुचित सम्मान मिलना चाहिए। देवत्व के प्रति कर्त्तव्य यही है कि उसे उपयुक्त सम्मान दिया जाय। ऐसा न करने पर गौरव देवत्व का नहीं घटता, उसे तिरस्कृत करने वाले ही दुःख पाते हैं।

पति-पत्नी सच्चे मित्र बनकर रहें

भारतीय संस्कृति में पत्नी को धर्मपत्नी कहा गया है। उसके आशय को स्मरण रखने पर ही दाम्पत्य-जीवन के वास्तविक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। जब पत्नी को रमणी-कामिनी मान बैठा जाता है, तब उससे हानि-ही-हानि उठानी पड़ती है।

प्राचीन साहित्य में जहाँ कहीं नारी के किसी रूप की निन्दा की गई है, उसे समझने पर स्पष्ट हो जायेगा कि वह उसके रमणी, भोग्या रूप की ही निन्दा है। धर्मपत्नी, गृहलक्ष्मी और मातृ-रूप की तो सर्वत्र प्रशंसा ही की गई है। उसे घर की वास्तविक शोभा, व्यवस्थापिका, ज्योति, जीवन-संगिनी, वात्सल्य एवं प्रेम की देवी, स्वर्ग से भी गरीयसी एवं प्रत्यक्ष शक्तिरूपा कहा गया है।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता का आधार काम-वासना नहीं हो सकती। उल्टे, वह विफलता का ही आधार बनती है। पाश्चात्य देशों में जहाँ काम-वासना को प्रधानता देकर नारी के भोग्या रूप को ही उसका उत्कर्ष मान लिया गया है, वहाँ की दुर्गति इस दिशा में सतर्क होने के लिये पर्याप्त होनी चाहिए, किन्तु उससे कुछ सबक सीखने के स्थान पर अनुकरण की चकाचौंध ही जारी है। इससे शरीर-नाश, कलह, मोह और दुःख ही प्राप्त होने वाला है। 'इण्डियन ओपीनियन' में २४ अप्रैल, १९१३ के "आरोग्य सम्बन्धी सामान्य ज्ञान गुप्त प्रकरण" शीर्षक अपने लेख में गाँधीजी ने इसी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा था, "इस प्रसंग में हम सभी एकदम पागल हो जाते हैं। हमारी आँखों के आगे पर्दा पड़ जाता है। कामान्ध पुरुषों, स्त्रियों और लड़के-लड़कियों को मैंने एकदम पागलपन की स्थिति में देखा है। मेरा अपना अनुभव भी कुछ भिन्न नहीं है। जब-जब मैं ऐसी स्थिति में पहुँचा हूँ, तब-तब अपना होश-हवाश भूल गया हूँ। इस प्रकार रत्ती-भर सुख के लिये हम अपना मन-भर बल पलभर में खो बैठते हैं। जब हमारा वह नशा उतर जाता है, तब हमारी हालत रंक की-सी हो जाती है। हमारी देह शिथिल और मन अस्थिर हो जाता है। इन सबको व्यवस्थित करने के लिए हम दूध के काढ़े पीते हैं, भस्में फाँकते हैं, याकूती का सेवन करते हैं, वैद्यों के पास जाकर पौष्टिक दवाइयाँ माँगते हैं और किस खुराक से हमारी काम-शक्ति बढ़ेगी, इसकी खोज में लगे रहते हैं। यों दिन पर दिन बीतते चले जाते हैं और हम शरीर एवं मन से हीन होते जाते हैं।

"साधारण तौर पर हम लोग यह विचार नहीं कर पाते कि इस संसार में भोग-विलास, बड़प्पन की प्रदर्शन भावना, आडम्बर, क्रोध, अधैर्य, वैर आदि का मूल कारण यह अति काम-सेवन की इच्छा एवं क्रिया ही है।"

इसी लेख में गाँधीजी ने आगे लिखा है—"नये उगे हुए पौधों में यदि फल लग जायें, तो वे निर्बल हो जाते हैं। हम यह समझते हैं और इस बात का बराबर प्रयत्न करते हैं कि उनमें इतनी जल्दी फल न लगें। ऐसा होते हुए भी किसी किशोरी स्त्री को सन्तान उत्पन्न हो जाये, कोई किशोर पिता बन जाये तो हम उत्सव मनाते हैं। क्या यह दीवार में अपना सिर दे मारने जैसा नहीं है ? स्त्री-पुरुष के संयोग के बाद पूरे गर्भकाल में तथा सन्तानोत्पत्ति के बाद बच्चा दूध पीना छोड़कर बड़ा हो जाये, कम से कम इतना सारा समय तो पवित्रतापूर्वक पाला ही जाना चाहिए। लेकिन हम ऐसा नहीं करते। हमारे मन रुग्ण हैं।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आगे अपना स्वयं का उदाहरण गिनाते हुए उन्होंने लिखा है कि "अनेक लोग कहते हैं और मैं मानता भी हूँ कि मुझमें बड़ा उत्साह है। मैं अपनी यह हालत लगभग २० वर्ष तक विषयोपभोग में लिप्त रहने के बाद प्रारम्भ किये गये ब्रह्मचर्य से हासिल कर सका हूँ। यदि इन २० वर्षों को भी बचा सका होता, तो आज मेरे उत्साह का पार ही न रहता। मेरे इस खण्डित उदाहरण से भी जब इतना सार निकल सकता है, तब जो लोग प्रारम्भ से ही ब्रह्मचर्य व्रत को निभा सकें, उनके शारीरिक, मानसिक एवं नैतिक बल का वर्णन नहीं किया जा सकता।"

ब्रह्मचर्य व्रत के साथ दाम्पत्य-जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाकर ही गाँधीजी ने यह सामर्थ्य अर्जित की थी, जिससे वे कोटि-कोटि जनता को प्रेरणा-स्रोत बने। अतः बड़े उद्देश्य प्राप्त करने और जीवन में तेजस्विता तथा प्रभावशीलता उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि पत्नी के प्रति कामिनी-रमणी वाला मनोभाव कदापि न रखा जाय। कामुकता को स्वाभाविक समझना मनोविकृति है। स्त्री-पुरुष की शारीरिक भिन्नता एवं आकर्षण, परस्पर पूरकता, स्नेह, विशुद्ध प्रेम एवं समान निष्ठा के रूप में सामने आना ही स्वाभाविक है। उसी स्थिति में वे एक और एक मिलकर ग्यारह होने की उक्ति चरितार्थ कर पाते हैं। उत्कृष्टता की दिशा में प्रगति करते हुए जीवन को आनन्द, उल्लास से भरपूर बना पाते हैं। कामविकृति से तो वे एक-दूसरे का स्वास्थ्य गिराने वाले और आत्मिक स्तर नीचा करने वाले शत्रु की तरह बन जाते हैं। सच्चे सहयोगी का रूप तब नहीं रह पाता।

पत्नी को विषय-भोग का सुरक्षित उपकरण मानने की वृत्ति स्वेच्छाचारिता एवं मर्यादाहीनता को जन्म देती है। ये दुष्प्रवृत्तियाँ स्वभाव का अंग बन जाने पर वे घर से बाहर के कार्यक्षेत्रों तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों पर भी वही कार्यशैली बन जाती है तथा हानि पहुँचाती है। इसलिये बाहर भी काम आ सकने वाली स्वस्थ, सात्विक, श्रेष्ठ मनोवृत्ति घर पर ही बनानी होती है। घर में किया गया संयम, शालीनता एवं औदात्य का अभ्यास जीवन के हर क्षेत्र में सफलता का आधार बनता है।

अतः पत्नी के प्रति धर्मपत्नी, सखी, मित्र का ही भाव रखना उचित है। कामिनी वाला भाव न रखने का यह अर्थ नहीं कि पति-पत्नी दोनों सदा गम्भीर बने रहें। यह नीरसता तो जीवन को बोझिल बना डालेगी। दोनों को मिल-जुलकर हँसी-विनोद करने के लिए समय अवश्य निकालना चाहिए।

मनोरंजन का दाम्पत्य-जीवन की सफलता में व्यावहारिक महत्त्व है। पत्नी प्रायः घर में ही रहती है। इस एकरसता से उसके जीवन में घुटन भर सकती है, यदि मनोरंजन का ध्यान न रखा जाये। स्वस्थ मनोरंजन के लिये समय निकालना अत्यन्त आवश्यक है। जिस प्रकार दो मित्र साथ-साथ मनोरंजन भी करते है, विनोद भी। किन्तु उसमें एक-दूसरे के प्रति कामुकता का कोई भाव नहीं रहता। वैसे ही पति-पत्नी के बीच होना चाहिए। आपस में और बच्चों के साथ विनोद-परिहास भी करते रहना चाहिए। हँसने का महत्त्व सर्वविदित है। उसे भोजन से कम उपयोगी नहीं मानना चाहिए। जीवनी-शक्ति, प्रसन्नता, स्फूर्ति एवं चैतन्य की वृद्धि के लिये हास-परिहास आवश्यक समझकर दाम्पत्य-जीवन में उसका समावेश करना चाहिए।

पति-पत्नी परस्पर छिद्रान्वेषण न करें। बुराई किसमें नहीं है ? कमजोरियों से कौन बचा है भला ? एक-दूसरे के दोष-दर्शन से दाम्पत्य जीवन में कटुता उत्पन्न होती है और पारस्परिक विश्वास नष्ट हो जाता है। दोष देखने का अर्थ है एक-दूसरे को नीचा दिखाना। इससे घृणा उत्पन्न होती है। घृणा से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं और दाम्पत्य जीवन में क्रमशः मधुरता, सरसता का ह्रास होता जाता है। अतः दम्पति को दोषान्वेषण की आदत विवेकपूर्वक समाप्त करनी चाहिए। जिस प्रकार मित्र एक-दूसरे के गुणों को उभारते और दोषों के प्रति उदार भाव रखते हैं, वैसा ही पति-पत्नी में होना चाहिए। दोषों के सुधार की चेष्टाएँ सदा की जाएँ, किन्तु उनके कारण आत्मीयता में कमी न हो पाये। न ही शंका एवं अविश्वास पनपने दिया जाये।

परस्पर एक-दूसरे में अविचलित विश्वास रखते हुए, सच्चे मन-प्राण से, एक-दूसरे को प्रेम करें। प्यार का अर्थ है, अपने प्रिय के दोष-त्रुटियों को क्षमा करते रहना। किसी भी प्रकार का मत-भेद होने पर, परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से, पूरी समझदारी के साथ समझौता करना। गलतफहमी होने पर उसे जल्दी दूर करने का प्रयास करना चाहिए। मन को विषमय बनाने के लिए सन्देह से बढ़कर अन्य कोई भावना नहीं है। दाम्पत्य-जीवन में सन्देह के समान कोई बड़ा शत्रु नहीं है। अतः यदि अपने प्रिय के प्रति के किंचित् मात्र भी सन्देह हो तो मन में घुलने-कुढ़ने की बजाय परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार के साथ उसका निवारण करना चाहिए। मतभेद होने पर समझौता करें और गलतफहमी होने पर जल्दी से जल्दी उसे दूर करें। साथ ही उदारता, क्षमाशीलता का भाव रखें। तो पुनः सरसता-मधुरता आ जाती है।

सच्चे सुहृद एवं मित्र की तरह सगे भाइयों की तरह पति-पत्नी रहें। दुःख और सुख में पूरी सहभागिता के साथ सहयोग दें। अपने संकुचित स्वार्थों और अनुचित आवेगों पर नियन्त्रण करें। तभी दाम्पत्य-जीवन का सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है। काम-वासना को प्रधानता देने पर तो सहभागिता, सहयोग और प्रेम की प्रवृत्तियाँ धूमिल ही पड़ती हैं। हारी-बीमारी में सेवा का उत्साह तभी रहता है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जब परस्पर प्रेम की गहराई होती है। माँसलता के प्रति लोभ की मनोदशा में यदि साथी को कोई लम्बी या शरीर पर तेज असर डालने वाली बीमारी हो गई, तो किसी प्रकार कुढ़ते-खीझते कोई व्यवस्था जुटाने में भी बोझ का अनुभव किया जाता है। जबकि मैत्री एवं आत्मीयता का भाव सदा निःस्वार्थ सेवा की प्रेरणा देता है।

पत्नी के प्रति सदा धर्मपत्नी का भाव रहे। उसे सखी, मित्र, सुहृद माना जाये। परस्पर प्रेम, शिष्टता, शालीनता, सौम्यता एवं प्रसन्नता से भरा व्यवहार किया जाये। न तो शरीर से खेला जाये और न ही अनुचित व्यवहार किया जाये। उसे सच्ची जीवन संगिनी-सहयोगिनी बनाया जाये, रमणीय वस्तु नहीं। हृदयों का आदान-प्रदान किया जाये, दैहिक आवेगों भर का नहीं। तभी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रगति, विकास एवं उपलब्धियाँ सम्भव होंगी, दाम्पत्य-जीवन सार्थक और समृद्ध बनेगा।

पति-पत्नी के बीच स्नेह, सहयोग और सम्मान

सोचा जाता है कि नारी को कपड़ों, जेवरों या शृंगार प्रसाधनों, उपहारों से लुभाया जा सकता है। यह मान्यता उसी सीमा तक सही है जब तक कि उसे यह सूझता रहता है—यह सारे उपहार प्रेम भरे हैं। इनके पीछे गहरी आत्मीयता है। अपने आवश्यक खर्चों में भी कटौती करके मेरी प्रसन्नता का इतना अधिक ध्यान रखा गया है। इस मान्यता के रहने तक तो एक सस्ता रूमाल, पीतल का छल्ला और गुड़ का टुकड़ा भी हीरे-मोतियों से बढ़कर मूल्यवान और अमृत जैसा मधुर लगता है।

किन्तु जब विफल होता है तो आत्मीयता से भरा सघन सम्मान इन वस्तुओं के साथ नहीं जुड़ता वरन् अपनी सम्पन्नता का दर्प और उस दर्प के नीचे दबी रहने का भाव दीखता है और वास्तविकता उभर कर ऊपर आ जाती है तो प्रतीत होता है कि बच्चे को रंगीन खिलौना देकर फुसलाने जैसा छद्म चल रहा है। छद्म को बालक भी समझ जाते हैं फिर बड़ों का तो कहना ही क्या ? कोई व्यक्ति बुद्धि की दृष्टि से दुर्बल हो सकता है, पर भावनायें प्रकट करने की न सही, पहचानने की योग्यता सबमें होती है। नितान्त मूर्ख को छोड़कर कदाचित् ही कोई उस छलावे में आता है।

नारी देखने में नर के समान ही प्रतीत होती है। शारीरिक बनावट में थोड़ा-सा ही अन्तर होता है, किन्तु अन्तःकरण की दृष्टि से दोनों के बीच असाधारण अन्तर होता है। पुरुषों में जहाँ वासना, तृष्णा, अहंता का दर्प विषम ज्वर की तरह चढ़ा रहता है, वहाँ नारी के अन्तराल की बनावट में भावनाओं की प्रधानता ही आदि से अन्त तक भरी रहती है। सहानुभूति और व्यथा का तनिक भी दबाव पहुँचने से उसकी आँखों से आँसू सहज ही ढुलक पड़ते हैं। जबकि पुरुष पर दूसरों पर जो बीता है उसका प्रभाव यत्किंचित् ही होता है। हर्ष की उमंग भी आँसू बनकर निकलती है और वियोग का, व्यथा का भी वैसा ही सहज प्रदर्शन होता है। कोमलांगी उसे कहते भर हैं पर वस्तुतः उसके अन्तराल का भावनात्मक प्रत्येक घटक भावनाओं से भरा-पूरा होता है।

इसी बहुलता के कारण ही वह प्रायः ठगी और छली जाती है, प्रेमजाल फैलाकर उसे छलना कहीं अधिक सरल है जितना कि बहेलिया कुछ दाने फैलाकर चिड़ियों को और आटे की गोली दिखाकर मछुआरे मछलियों को फँसाकर उन्हें हलाल करते हैं। प्रेम प्रसंगों में नारी ही ९९ प्रतिशत ठगी जाती है। पुरुष तो अपवाद स्वरूप ही कभी चौकड़ी चूकते हैं।

विवाह में वधू वर के घर जाती है और सदा के लिए उसी की होकर रह जाती है। इसे भावनात्मक समर्पण ही कहना चाहिए अन्यथा भौतिक दृष्टि से उसे शत-प्रतिशत घाटा ही घाटा है। अशिक्षित मजदूर भी सात घण्टे काम करते हैं और उस क्रिया के साथ अन्यमनस्कता जुड़ी होने पर भी अपना ही नहीं परिवार भर का पेट पूरा करने लायक कमा लेते हैं। यह बात स्त्री और पुरुष दोनों पर ही लागू होती है। वह अपनी योग्यता, विशेषता और माधुर्य के बदले इतना कमा सकती है, जिसका ससुराल में एक अंश भी नहीं मिल पाता। पिता उसे गरीबी के कारण रोटी-कपड़े भर के लिए जिस-तिस के हाथों सौंप नहीं देता है। वह भी अपने अभिभावकों को, परिवार को प्रिय होती है। विवाह के समय देने की सामर्थ्य भर उड़ेल देते हैं। छोटी बच्ची भी प्राण प्यारी लगती है फिर जब बड़ी हो जाय तब घर के कामों में हाथ बँटा सकती है। कुछ कमा भी सकती है। ऐसी दशा में पितृ परिवार क्यों किसी अनजाने लड़के के सुपुर्द करता है ? क्यों किसी अनजान परिवार में सदा के लिए भेजता है ? यह विचारणीय है।

कन्यादान असाधारण स्तर का त्याग-बलिदान है। जब पशु-पालक जिन्दगी भर काम लेने के उपरान्त अपने बूढ़े, बीमार, निरर्थक पशुओं की कीमत भुना लेते हैं, तब कन्या को किस लोभ के लिए अपरिचित वातावरण में भेजा जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर गहराई में उतरने पर ही मिलता है। वधू समेत पितृ पक्ष का समस्त परिवार जिसमें उसकी सहेली-सम्बन्धी भी सम्मिलित हैं। प्रतिदान में कुछ चाहते हैं और वह है स्नेह, सम्मान और सहयोग का भावभरा सम्मिश्रण है। इसी को पाकर कन्या अपने भाग्य को सराहती है और घटिया परिस्थितियों में भी निर्वाह कर लेती है। अपनी असुविधाओं की चर्चा माँ-बाप तक से नहीं करती। यह भावनात्मक प्रतिदान है। इसके बदले उसे अनुदान में श्रम, समय, दायित्व,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुशासन सभी कुछ वहन करना पड़ता है। इतना ही नहीं प्रसव पीड़ा में ढेरों बार मरते-मरते बचती है और शिशु पालन में अपने रूप, यौवन का समूचा रस निचोड़ देती है।

इसके बदले आर्थिक नहीं, शारीरिक नहीं केवल भावनात्मक प्रतिदान की इच्छा की जाती है, तो उसमें कुछ ऐसा नहीं है, जिसे अनुचित कहा जा सके। बच्चा और माता स्नेह बन्धन में बँधकर एक-दूसरे के हाथों बिक जाते हैं, तो कोई कारण नहीं कि पति-पत्नी के बीच वैसा ही आदान-प्रदान अपेक्षित न हो। उठती आयु में रक्त अधिक गरम होता है। ऐसी स्थिति में वह उफान और भी अधिक तीव्र हो तो इसे किसी प्रकार अनुचित नहीं कहा जा सकता है। यही एक अभाव है जिसके लिए पति-पत्नी को एक-दूसरे के बन्धन में बँधना पड़ता है अन्यथा पति गी पकी हुई रोटी खरीद सकता है और बोर्डिंग होटल जैसा जनसंकुल में रहकर समय काट सकता है फिर पत्नी को घर लाने के साथ उसके अनेकानेक उत्तरदायित्व सिर पर आते हैं क्यों ओढ़े और उन्हें क्यों किसी बन्धन में बँधे ?

जिस प्रकार वधू को एक अभाव अखरता है, वैसे ही वर को भी इस कमी के रहते जीवन नीरस और निस्सार लगता है। यह अभाव दोनों पक्षों को समान रूप से उद्‌वेलित करता है—स्नेह, सहयोग और सम्मान का अभाव। सहयोग पैसे के बदले भी खरीदा जा सकता है। सम्मान करने मे चापलूस-चाटुकार भी किसी से पीछे नहीं रहते। पर उसमें न वास्तविकता होती है और न गहराई। स्नेह यों तो जिसका जिससे स्वार्थ सधता है, वह उसके प्रति अपना लगाव प्रकट करते ही हैं, किन्तु माता के अतिरिक्त सच्चा प्यार पत्नी का ही होता है। माता के बच्चे बढ़े हो जाते हैं और कई छोटे गोदी में आ जाते हैं, तो बड़े के प्रति थोड़ी उदासी स्वभावतः आ जाती है। बच्चों का रुख भी ऐसा ही होता है। जब तक वे पूरी तरह माता के आश्रित रहते हैं, तब तक चिपके रहते हैं, पर जब बड़े हो जाते हैं तो सहचरों, सहपाठियों के प्रति उनका रुझान बढ़ जाता है और हर घड़ी माता के साथ नहीं रहना चाहते, किन्तु पति-पत्नी के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं होती। दोनों एक-दूसरे पर ही आश्रित रहते हैं और प्यार कभी घटता नहीं बढ़ता ही रहता है।

आरम्भिक दिनों में वह प्रेयसी स्तर का होता है। प्रौढ़ावस्था में सहचरी जैसा और बुढ़ापे में फिर वे एक-दूसरे पर ठीक उसी प्रकार आश्रित हो जाते हैं जैसे कि माता और बालक। दोनों के शरीर दुर्बल होने लगते हैं। पग-पग पर एक-दूसरे की सहायता की आवश्यकता होती है। हारी-बीमारी, दुःख-दर्द में घर के लोग उदासीनता बरतते हैं, पर बुड्ढे-बुढ़िया दोनों एक-दूसरे की आवश्यकताओं और आदतों को जानते हैं। फलतः बिना कहे-सुने ही एक-दूसरे की इच्छा को ध्यान में रखे रहते हैं। इस प्रकार पति-पत्नी के बीच यदि सच्ची आत्मीयता है, तो आयु के साथ स्नेह, सहयोग और सम्मान घटता ही नहीं वरन् बढ़ता ही रहता है। सेवा तो इन तीनों के समन्वय का नाम है।

सफल दाम्पत्य जीवन के मूलभूत—आधार

हृदय और मस्तिष्क के मिलनक्रम के रूप में जिस प्रकार शरीर तन्त्र का महत्त्वपूर्ण भाग गतिशील रहता है ठीक वही स्थिति दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में भी है। प्रकृति प्रेरणा और समाज व्यवस्था के दोनों ही आधार ऐसे हैं, जो नर-नारी को विवाह बन्धन में बँधने के लिए विवश करते हैं। जिनके सामने कोई बहुत ऊँचे आदर्श हैं, वे सामान्य जीवनचर्या की उपेक्षा कर सकते हैं, क्योंकि इन बाल-ब्रह्मचारियों की, बाल संन्यासियों की बात दूसरी है। सामान्य नर-नारी के लिए सरल जीवनचर्या व्यतीत करने के लिए विवाह एक आवश्यक प्रक्रिया है।

निर्धारण करते समय दोनों की आयु परिपक्वता का ध्यान रखना आवश्यक है। बीस से ऊपर की आयु इस सन्दर्भ में परिपक्व मानी जाती है। इससे छोटी आयु में विचारशीलता कम और भावुकता अधिक होती है। आये दिन की समस्याओं का समाधान विचारशीलता के सहारे होता है, भावुकता के सहारे नहीं। समस्याओं में दम्पत्ति जीवन का प्रेम, भाव, ताल-मेल तो आवश्यक है ही, इसके अतिरिक्त कुटुम्बियों के साथ भी नवविवाहिता को इस प्रकार मेल-जोल रखना पड़ता है ताकि किसी पक्ष की अवज्ञा, उपेक्षा होती प्रतीत न हो। अपने देश में सम्मान सूचक यह प्रचलन है कि नववधू घर का काम-काज सम्भालने में अधिक उत्साह दिखाये और बड़ी आयु या बड़े पद वालों को आराम का, विश्राम का अवसर मिले। यदि गृह संचालक बुद्धिमान नहीं है तो किसी कारण को लेकर तुनकने का उपक्रम चल पड़ता है। कभी वधू बड़ों पर तुनकती है, कभी बड़े वधू पर। कभी न्यूनाधिक मात्रा में दोनों पक्ष दोषी होते हैं। अपरिचित होना प्रमुख कारण है। माँ-बेटी में ऐसी समस्याएँ उत्पन्न नहीं होतीं क्योंकि दोनों ही एक-दूसरे के स्वभाव से परिचित होते हैं। तालमेल बिठाने की विधि भी मालूम होती है। पर वधू अजनबी पड़ती है।

इस मनोमालिन्य मे पति की स्थिति विचित्र होती है। जिस पक्ष को अधिक दोषी देखे और उसे प्यार या क्रोध से धमकाये तो समझा जाता है कि इस ओर पक्षपात किया जा रहा है। इस बात को लेकर एक तीसरी समस्या उत्पन्न होती है। चुप रहना कहने से बुरा और कहना चुप रहने से बुरा। इन परिस्थितियों में नववधू का परिवार के साथ स्नेह-सौहार्द्र बनाये रहना एक समस्या है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिसके सुलझ न पाने पर न केवल पारिवारिक कलह बढ़ता है वरन् दाम्पत्य-जीवन में नीरसता से लेकर मनोमालिन्य और कटुता तक का सिलसिला चल पड़ता है।

विवाह से पूर्व लड़कियाँ अनेक महत्त्वाकांक्षाएँ सँजोये रहती हैं। इनमें घूमने-फिरने की, हास-विलास की इच्छाएँ प्रमुख होती हैं। बड़े कुटुम्बों में इसके लिए अवसर नहीं मिल पाता। पति-पत्नी का बहुत छोटा कुटुम्ब हो तो गृहस्थ के छोटे-छोटे काम मिलकर इतने अधिक और उलझे हुए होते हैं कि इस विलास की गुंजाइश मुश्किल ही निकल पाती है। कॉलेज की शिक्षा प्राप्त करके आई हुई लड़कियों के लिए विवाह के उपरान्त यह भी एक समस्या है कि गृहस्थ जीवन और महत्त्वाकांक्षा के जीवन के बीच ताल-मेल न बैठ पाने के कारण खीज रहने लगती है। नई उम्र में लड़कियाँ आतुर बहुत होती हैं। वे अपनी साधारण-सी बातों पर उत्पन्न होने वाली खीजों को सहिष्णुता के आधार पर पचा नहीं पातीं और कई बार ऐसे विग्रह खड़े कर लेती हैं, जिनके लिए आजीवन पश्चाताप करना पड़ता है। दहेज कम मिलने के नाम पर हत्याकाण्डों के पीछे वस्तुतः असहिष्णुता ही प्रधान कारण होती है। एक-दो बार कहना-सुनना हो जाने पर तलाक का प्रसंग सामने आ खड़ा होता है। दोनों को ठीक तरह समझा न पाने वाले, अग्नि में ईंधन डालने वाले जब कुयोग की तरह बीच में पड़ जाते हैं तो तिल का ताड़ बन जाता है और बना घर बिगड़ते देर नहीं लगती।

एकाध वर्ष किसी तरह गाड़ी खिंच जाने पर समझना चाहिए कि गाड़ी पटरी पर चल पड़ी। इस बीच पति की जिम्मेदारी बहुत बढ़ जाती है। उसे अपने प्रगाढ़ प्रेम का परिचय इस सन्तुलित रीति से देना चाहिए कि पत्नी का मन भी सधा रहे और परिवार के प्रति उपेक्षा भाव उदय न होने पावे। नववधू घर में आते ही यही छोटी-छोटी समस्याएँ भावुकता के रंग में कई बार इतनी रंग जाती हैं कि उनका समेटना कठिन पड़ता है। ऐसे समय में पत्नी की भावुकता की तरह पति का अहंकार भी उभरने लगा तो जो गृहस्थ जीवन सोना-चाँदी का होना चाहिए था, वह धूलि-कंकड़ का हो जाता है। दोनों के बीच पुराना परिचय न होने के कारण उत्पन्न हुई खीज को समेटना-बटोरना और भी अधिक कठिन होता है।

सयानी लड़कियाँ विवाह के कुछ ही दिन के उपरान्त गर्भवती हो जाती हैं। उनका स्वास्थ्य ढीला रहने लगता है, स्वभाव चिड़िचड़ा भी हो जाता है। इन कारणों को लेकर घर का सौमनस्य और भी लड़खड़ाने लगता है। पति का ही नहीं पूरे परिवार का इन दिनों विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है कि नववधू को नये वातावरण में खपाने के लिए ऐसा तौर-तरीका अपनायें कि एक बार गाड़ी पहिए पर लुढ़कने लगने के उपरान्त नई बहू का आगमन वरदान सिद्ध हो। अनबन के जितने अवसर हों, उन्हें टालते या घुमाते रहना ही बुद्धिमानी है। थोड़े दिनों में ही वह समय आ जाता है जब वधू को गृहलक्ष्मी, घर मालकिन की भूमिका निभानी पड़ती है। स्वभावतः इन दिनों काम-काज की बहुत व्यस्तता रहती है। यह क्रम लम्बी अवधि तक चलता है, इसलिए दोनों पक्षों को यह ध्यान रखना चाहिए कि पारस्परिक प्रेम प्रदर्शन में कोई कमी न आने पावे। स्मरण रहे दो आत्माओं को जोड़ने वाली कड़ी प्रेम दर्शन है। दोनों के मनों में एक-दूसरे के प्रति परिपूर्ण विश्वास हो। वफादारी में कोई कमी न हो, पर शब्दों से, शरीर चेष्टाओं से, प्रेम-प्रदर्शन का व्यवहार न रहे तो वह नीरसता दाम्पत्य-जीवन की प्रसन्नता-प्रफुल्लता समाप्त कर देगी, गृहस्थी की गाड़ी एक बोझिल यात्रा की तरह किस प्रकार खींचती, धकेलती रहेगी। इससे दोनों पक्षों में किसी को भी सन्तोष नहीं होगा। बीच-बीच में ऐसे अवसर निकालते रहना चाहिए, जिससे परिवार के उत्तरदायित्व भी निभते रहें और प्रेमी-प्रेमिका की जो सरसता होती है वह भी बनी रहे।

पारस्परिक विश्वास व्यक्त करने का अच्छा तरीका यह है कि पति जो कमाता है, उसे पत्नी के हाथ पर रखे और खर्च जो कुछ हो, पत्नी के परामर्श से हो। जो पति पैसा अपनी जेब में रखते हैं, वे पारस्परिक प्रेम एवं विश्वास के बीच खाई उत्पन्न करते हैं। ऐसी दशा में स्त्रियाँ जेब खर्च के लिए पैसा बचाने या चुराने लगती हैं। पति के द्वारा अधिक खर्च हो जाने पर उसके चरित्र पर अविश्वास करने लगती हैं। इसलिए खर्च करते समय बजट में पत्नी को सहभागी बनाया जाना ही उचित है।

यों यह आकांक्षा हर नर-नारी में पाई जाती है कि वह अपने कानों से अपनी प्रशंसा सुने। पर स्त्रियों में इस आकांक्षा की मात्रा कुछ अधिक होती है। रूप, श्रम और स्वभाव में कोई न कोई बात हर दिन ऐसी ढूँढ़ी जा सकती है, जिसकी चर्चा उसके सामने की जा सके। रूप सुन्दर न हो तो अमुक तरह के कपड़े उसे कितने फबते हैं, इतना तो कहा ही जा सकता है। दिनभर के, पिछले दिनों के श्रम या स्वभाव की कोई न कोई उल्लेखनीय बात अवश्य ढूँढ़ी जा सकती है। उसमें थोड़ा और नमक-मिर्च मिलाकर अपने कथन को और भी जायकेदार बनाया जा सकता है। पर स्मरण रहे किसी दूसरी स्त्री की प्रशंसा अपनी पत्नी के सामने नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से वह आपके चरित्र पर शंका कर सकती है और अपनी उपेक्षा अनुभव कर सकती है। यह प्रशंसा बाहर वालों के सामने की जाय तो और भी अच्छा। समय-समय पर उपहार देते रहना भी ऐसा ही है। पत्नी का जन्म दिन और विवाह दिन कभी नहीं भूलना चाहिए। उस दिन उसकी रुचि की, आवश्यकता की वस्तुएँ उपहार में दी जायें। सम्भव हो तो कहीं समीपवर्ती या दूरवर्ती स्थान पर घूमने के लिए भी पत्नी को ले जाया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह बातें देखने में कम महत्त्व की हैं किन्तु प्रेम-प्रदर्शन की दृष्टि से अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। अभिनन्दन, नमस्कार, प्रणाम, आशीर्वाद जैसी छोटी बातें दिनचर्या में सम्मिलित रखी जायँ। अपने ही तरह स्त्रियाँ अपने बच्चों को भी महत्त्व देती हैं। बच्चे कुरूप हों, जिद्दी हों, मूर्ख हों तो घर के अन्य लोगों को वे बुरे लग सकते हैं, तो भी माता उन्हें सच्चे मन से प्यार करेगी और चाहेगी कि दूसरे लोग भी उनसे उतना ही प्यार करें। स्वयं डाँट लेगी पर यह पसन्द नहीं करेगी कि दूसरे लोग भी उन्हें डाँटें। दूसरों को वह इतना अधिकार देना चाहती है कि यदि कोई दुःस्वभाव उसमें हो तो केवल प्यार से उन्हें समझा-बुझाकर सुधार ले। किसी को प्यार पाना हो तो उसके बच्चे को गोदी में लेना, दुलार करना, प्रशंसा करना, उपहार देते रहना भूलना नहीं चाहिए। किसी माता को अपने सिवाय दूसरा नम्बर प्रिय लगने का अपना बच्चा ही होता है। इसलिए माता का प्यार जीतने के लिए उसके बच्चों की प्रशंसा तो करनी ही चाहिए, इसके अतिरिक्त उन्हें सुधारने में प्यार के सहारे सहायता करनी चाहिए, तिरस्कृत और लांछित तो करना ही नहीं चाहिए।

स्त्रियों की चन्द्रमा से उपमा दी गई है। चन्द्रमा में परिवर्तन जल्दी-जल्दी होते हैं। दौज को बहुत छोटा, कुछ ही दिन बाद बड़ा। पूर्णिमा को पूरा। फिर इसके बाद घटने लगता है। लड़कियों में आरम्भिक दिनों में गुड़िया, कुछ ही दिन बाद प्रेमिका के तत्त्व उदय हो जाते हैं। दिन बीतने नहीं पाये कि पराये घर वधू बनकर चली जाती हैं। वहाँ जाने पर दो अपरिचित भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। पति के लिए प्रेमिका की। परिवार के लिए नव वधू की। सहेलियों का विछोह एक ओर हैरान करता है, तो नई भूमिका में फिट होते-होते कई तरह की भूलें अलग होती हैं। भूलों के लिए डाँट-फटकार अलग पड़ती है। इतने में मातृत्व का बोझ अलग लदने लगता है। परिवार सँभालने की जिम्मेदारियाँ गृह लक्ष्मी बनने के लिए अलग बाधित करने लगती हैं। बड़े होते हैं तो उनके व्याह-शादी की, स्वावलम्बन की समस्या अलग से सिर पर चढ़ती है। थोड़े दिन बीतने नहीं पाते कि सास या दादी बनने का समय आ जाता है। यह परिवर्तन इतनी तेजी से होते हैं कि चन्द्रमा के घटने-बढ़ने से उसकी उपमा ठीक ही दी जाती है।

एक समय के अनुभव दूसरी परिधि में पहुँचते पुराने पड़ जाते हैं और नये परिवर्तन के अनुरूप नये अनुभवों का संकलन करना पड़ता है। यह एक जादुई तमाशा है। इसके अनुरूप ढलने और बदलती समस्याओं के अनुरूप जिस नई जानकारी की आवश्यकता है, उसके अनुरूप अधिक प्रबुद्ध होने के नाते पति को अधिक सहायता करनी पड़ती है। यह सहायता सही हो, सच्ची हो, दुलार भरी हो। सम्मान में कमी न आने दे तो पत्नी अन्य भूमिकाओं के साथ-साथ पति की सहधर्मिणी, अर्धांगिनी, जीवन-सहचरी सिद्ध होने के लिए जिन भूमिकाओं को निभाने की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें ठीक तरह निभा सकती है। यह कार्य डाँट-फटकार, तिरस्कार के बलबूते नहीं हो सकता। नौसिखिये विद्यार्थी को जिस प्रकार आजकल बाल-कक्षाओं में खिलौने के साथ-साथ खिलाते हुए पढ़ाया जाता है, वह तरीका फिट बैठता है। वह समय चला गया जब बच्चों को बेंत झाड़ते हुए, मुर्गा बनाते हुए, मार-पीटकर पढ़ाया जाता था।

सफल पत्नी ढूँढ़ने के लिए कितने ही लोग सुयोग्य पत्नियाँ ढूँढ़ते हैं। सुयोग्य से तात्पर्य उनका अभिनेत्री स्तर की रूपसी से होता है। ऐसी पत्नी किसी को मिल जाय तो पीछे पछताते हैं, क्योंकि उनका अहंकार बढ़ा-चढ़ा होता है और फरमाइशें ऐसी होती हैं, जिन्हें पूरा करना साधारण स्तर के पतियों के लिए सम्भव नहीं होता। उपयुक्त पत्नी वह है जो तेजी से बदलती परिस्थितियों के लिए उपयुक्त रीति से ढाली जा सके। स्वाभिमानी तो हो पर अहंकारी न हो। पति में प्रेमी के गुण न ढूँढ़े वरन् एक-दूसरे की कमियों को पूरा करते हुए उस गाड़ी की तरह चलें, जिसके दोनों पहिए एक जैसे होते हैं और एक चाल से चलते हैं। इस सन्दर्भ में स्नेह, सहयोग, विश्वास और सम्मान चारों गुण या तो जन्म-जात होने चाहिए अथवा पत्नी होने के उपरान्त सीखने, सिखाने, विकसित करने और कराने चाहिए। पुरुष का दर्जा बुद्धिमता की दृष्टि से बड़ा है। जनसम्पर्क में अधिक रहने से उसका अनुभव ज्यादा होता है। इसलिए पति-पत्नी के बीच तालमेल बैठाने का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ तक अधिक उत्तरदायित्व पति के कन्धे पर आता है। सफलता की स्थिति में श्रेय भी उसी को मिलेगा और असफल रहने पर दोष भी उसी को दिया जायेगा।

माता-पिता बनने से पहले श्रेष्ठ दम्पति बनें

दो वस्तुओं के मिश्रण से तीसरी वस्तु बनने की रासायनिक प्रक्रिया से सभी परिचित हैं। औषधिशास्त्री जानते हैं कि यदि अमुक वनस्पतियाँ, धातुयें और क्षार अलग-अलग सेवन किये जायें, तो उनका बहुत ही साधारण प्रभाव होगा किन्तु उन्हें मिला दिया जाए तो इस मिश्रण से एक नई ही प्रक्रिया उत्पन्न होगी। रसायन विज्ञान इसी आधार पर नई-नई वस्तुओं और विधियों का आविष्कार करता रहता है। इसी सिद्धान्त के द्वारा अनेकानेक नई वस्तुएँ, नई जानकारियाँ और नये पदार्थ निर्मित होते हैं।

यह तो जड़ वस्तुओं की बात हुई। चेतन या जीवित प्राणियों का चेतन के स्तर पर मिलन उससे भी एकदम भिन्न और विलक्षण परिणाम प्रस्तुत करते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवाह चेतना के स्तर पर मिलन और मिश्रण प्रक्रिया का ही शुभारम्भ कहा जा सकता है, जिससे नर और नारी दो भिन्न तरह की जैविक इकाइयाँ हृदय से एक-दूसरे के प्रति समर्पित होतीं तथा नये व्यक्तित्व का निर्धारण करके, एक-दूसरे का कायाकल्प करते हैं। नर-नारी का यही सम्मिश्रण सृष्टि निर्माण क्रम में चलता रहने से रंग-बिरंगे और विविध प्रतिभाओं से सुसम्पन्न फूल तथा तरह-तरह के स्वाद वाले फल उत्पन्न होते हैं। नर-नारी के बीच ऐसे घुलनशील तत्त्व हैं, जो यदि गहन स्तर पर मिल सकें तो एक नये ही व्यक्तित्व को जन्म देते हैं और दोनों अपना पुराना स्तर खोकर नये स्तर के बन जाते हैं। इस परिवर्तन को स्पष्ट देखा जा सकता है। विवाह से पूर्व लड़की कुमारी अवस्था में जिस स्तर की होती है, उसमें विवाह के बाद कायाकल्प जैसा परिवर्तन हो जाता है और लड़के विवाह से पूर्व जिस प्रकृति के होते हैं, वे भी विवाह के बाद इतने बदल जाते हैं कि केवल आकृति ही पुरानी रह जाती है, प्रकृति में तो जमीन-आसमान जैसा अन्तर उपस्थित हो जाता है। लेकिन यह होता तभी है जब वे भावनात्मक स्तर पर इतनी गहराई तक उतर जाये कि एक-दूसरे में घुल जाने की स्थिति प्राप्त कर लें।

भावनात्मक स्तर पर घुलने-मिलने की प्रक्रिया यकायक सम्पन्न नहीं होती। इस सम्बन्ध में थियोडोर पार्कर का कहना है कि पुरुष और स्त्रियाँ, विशेषकर युवा व्यक्ति जिनका अभी-अभी विवाह होता है, यह नहीं जानते कि दो हृदयों को पूर्ण रूप से एक-दूसरे में घुलने, उनका पूरी तरह संयोग होने में वर्षों लग जाते हैं भले ही वे परस्पर प्रेम करने वाले क्यों न हों। एक-दूसरे की ओर पहले से ही आकृष्ट क्यों न हों। इसका एकमात्र कारण यह है कि प्रकृति के नियमों के अनुसार आकस्मिक और तत्काल परिवर्तन नहीं हो सकता। संयोग, सम्मिलन और एकात्मस्थिति धीरे-धीरे ही प्राप्त होती है। चिरकाल तक एक-दूसरे के प्रति समर्पण, एकात्म हृदय होने का ही दूसरा नाम दाम्पत्य जीवन है।

दूसरे व्यक्तित्व में घुल जाने की स्थिति प्राप्त करने में समय लगता है। व्यक्तित्व में घुलने का अर्थ है, इतनी सघन भावनात्मक एकता कि उसमें शरीरों की भिन्नता का आभास ही नष्ट हो जाए। एक प्राण दो शरीर का आभास होने लगे। इस सघनता की प्राप्ति के लिए शुभारम्भ आत्मीयता, प्रेम, त्याग और समर्पण की भावनिष्ठा जाग्रत करने के साथ होता है। इस मार्ग से जब लय योग की साधना की जाती है, एक-दूसरे के व्यक्तित्व में घुल-मिल जाने का क्रम आरम्भ होता है, तो इसके दो परिणाम होते हैं पहला तो यह कि एक प्रखर एवं अभिनव व्यक्तित्व से दोनों सम्पन्न बनते हैं। उस प्रखरता से, अभिनव व्यक्तित्व की आभा से दोनों जगमगा उठते हैं। दूसरा प्रतिफल यह होता है कि सन्तान को ऐसी उपलब्धि जो अगणित प्रतिभाओं और विशेषताओं से सम्पन्न होती है।

विवाह का यही मूल प्रयोजन है। व्यक्तित्व में घुलनशीलता, एकात्म स्थिति प्राप्त करना और प्रखर प्रक्रिया सम्पन्न सन्तान को जन्म देना। नर-नारी के बीच प्रकृति ने इसीलिए स्वाभाविक आकर्षण उत्पन्न कर दिया है। रतिक्रिया में जिस आनन्द, जिस आवेश का समावेश होता है, उसकी अनुभूति होती है, उसका कारण भी यही है। प्रकृति चाहती है कि उसके परिवार में जीवधारियों का वंश ही न बना रहे वरन् उनका स्तर भी विकसित होता रहे। कहना न होगा कि भावनात्मक-सघनता का सम्मिश्रण व्यक्तियों का स्तर विकसित करता है और पीढ़ियों में विशेषता भरता है। यही प्रक्रिया जब शारीरिक सघनता में परिणित होती है, तो उच्चकोटि के गुणों से सम्पन्न सन्तति का जन्म होता है। नर और नारी की अपूर्णताओं को एक-दूसरे की विशेषताओं से पूरी करके, एक-दूसरे का पूरक बनते हुए पूर्णता को प्राप्त करना ही दाम्पत्य जीवन का मूलभूत प्रयोजन है। जहाँ पति-पत्नी की प्रकृति मिल जाती है और दोनों में परस्पर सघन सहयोग होता है, वहाँ इच्छित सन्तान का, प्रतिभाशाली सन्तति का जन्म होना तो सुनिश्चित है ही, दोनों के व्यक्तित्व का कायाकल्प भी उतना ही सुनिश्चित है।

लेकिन यह सघन आत्मीयता उत्पन्न कैसे हो ? इसके लिए आवश्यकता है पति-पत्नी एक-दूसरे के साथी सहचर बनकर रहें, मालिक और गुलाम बनकर नहीं। आमतौर पर पुरुषों का दृष्टिकोण स्त्रियों के प्रति बहुत ही संकुचित और सामंतयुगीन होता है। सामन्त काल में स्त्रियों को सम्पत्ति समझा जाता था और जिसके पास जितनी स्त्रियाँ होती थीं, उसे उतना ही बड़ा सामंत समझा जाता था। आज बदलते युग में एकाधिक पत्नियाँ तो कोई रखता नहीं है परन्तु उस समय के दृष्टिकोण में कोई विशेष भिन्नता नहीं आई है। पुरुष आज भी पत्नी को अपना मित्र और साथी-सहचर कम, दासी अधिक मानता है। परिणामतः इस स्तर की सघन आत्मीयता उत्पन्न नहीं हो पाती जो कि आदर्श दाम्पत्य के लिए अनिवार्य होती है।

स्त्री-पुरुष के लिए जितना त्याग-बलिदान करती रहती है, उस दृष्टि से स्त्री का स्थान पुरुष की तुलना में ऊँचा ही ठहरता है नीचा नहीं। एक प्रसिद्ध विचारक ने स्त्री के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—"स्त्री क्या है ? वह सीधी स्वर्ग से आई है, एक पवित्र और सुकुमार उपहार के रूप में और इतने प्रेम व त्याग से भरी हुई है कि उसके प्रेम की थाह को किसी भी मापदण्ड से नहीं मापा जा सकता है। वह घर, समाज यहाँ तक कि सारी दुनिया को पवित्र करने के लिए, सुख-चैन देने के लिए और जगमगाने के लिए बनाई गई है। वह इतनी अमूल्य बनाई गई है कि उसका मूल्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई नहीं आँक सकता और यदि आँक सकता है तो केवल वही व्यक्ति, जिसकी माँ इतने समय तक जीवित रही हो कि वह उसके महत्त्व को समझ सका हो या फिर वह व्यक्ति नारी का मूल्य आँक सकता है, जिसे जीवन के संकट काल में, जबकि सब ओर से उसे निराशा मिली हो, तब उसकी धर्मपत्नी ने ईश्वर में गहरी आस्था रखते हुए उसका संबल बढ़ाया हो। वस्तुतः एक पुरुष का एक स्त्री के साथ स्थाई गठबन्धन प्रेम और आदर्श का ऐसा नाता जोड़ देता है, जो और किसी भी प्रकार दो व्यक्तियों के बीच नहीं जोड़ा जा सकता।''

स्वेट मार्डन ने दाम्पत्य जीवन में प्रेम को धन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान मानते हुए लिखा है कि ''यदि हम चाहें तो इस संसार में थोड़े-से धन से भी निर्वाह कर सकते हैं परन्तु प्रेम एक ऐसी समस्या है, जिसकी हमारे यहाँ बहुलता होनी चाहिए और जिसे हम कभी भी इतनी मात्रा में इकट्ठा नहीं कर सकते कि हम यह कह सकें कि अब तो प्रेम आवश्यकता से अधिक हो गया।'' जब थियोडोर पार्कर का विवाह हुआ तो उसने पत्नी के प्रति अपने व्यवहार को सदाशयता और मैत्रीपूर्ण रखने के लिए एक आचार संहिता बनाई। उसने विवाह के दिन ही अपनी डायरी में निम्नलिखित दस निश्चय लिख दिये और संकल्प किया कि वे दोनों कड़ाई के साथ इनका पालन करेंगे।

वे दस निश्चय इस प्रकार हैं—(१) आवश्यक कारण न हों तो पत्नी की इच्छा का कभी विरोध न करना, (२) उसके प्रति सभी कर्त्तव्यों का उदारता से पालन करना, (३) कभी कटु व्यवहार न करना, (४) उसके स्वाभिमान को किसी भी प्रकार ठेस न पहुँचाना, (५) उसे कभी आदेश दे देकर परेशान न करना, (६) उसकी शारीरिक निर्मलता को प्रोत्साहन देना, (७) उसके काम-काज में हाथ बँटाना, (८) उसके छोटे-मोटे दोषों को नजरअन्दाज करना, (९) उसके प्रति अपने दायित्वों और कर्त्तव्यों का पालन करना तथा (१०) उसके लिए भी परमात्मा से प्रार्थना करना। स्वेट मार्डन ने इन गुणों की तुलना यहूदियों के प्राचीन दस धार्मिक आदेशों से करते हुए लिखा है—

''ये आदेश जो पार्कर ने अपने ऊपर स्वेच्छा से लागू किये। यहूदियों के प्राचीन दस आदेशों के समान हैं। वास्तव में प्रेम वैवाहिक और नैतिक विधान दोनों की परिपूर्णता का नाम है।''

यह वे आधार हैं जो व्यक्तियों के मिलन को जादूगरी रासायनिक प्रक्रिया जैसा भावनात्मक प्रभाव उत्पन्न करने की असाधारण क्षमता रखते हैं। इस उपलब्धि के लिए, सघन आत्मीय सम्बन्धों के लिए पति-पत्नी के बीच सघन प्यार और विश्वास होना चाहिए, उसमें आशंकाओं और तुनकमिजाजी के लिए कोई स्थान नहीं है। जब साथी के गुण ही गुण दिखाई पड़ें और भूलें उपेक्षा अथवा विनोद-उपहास की वस्तु बन जायँ, उसके कारण मनोमालिन्य उत्पन्न होने की सम्भावना ही न हो तब समझना चाहिए कि सच्चे मन से समर्पण या घुलने-मिलने की बात पूरी हुई। आशंकाओं, सन्देहों, अविश्वासों, छिद्रान्वेषण की प्रवृत्तियों के बीच यह सघनता फलती-फूलती नहीं, उसे विश्वास और ममत्व का उन्मुक्त आकाश चाहिए।

इन प्रवृत्तियों के कारण पति-पत्नी में वह सघनता उत्पन्न होती ही नहीं है, जो उनके व्यक्तित्व का कायाकल्प कर सके तथा नये व्यक्तित्व को जन्म दे सके। यदि दोनों में अपार हार्दिक सघनता न हो तो दोनों में से जिसका व्यक्तित्व अधिक प्रतिभासम्पन्न और जबरदस्त होता है, उसी की छाप सन्तान पर पड़ती है। इसलिए सन्तान का स्तर सरल व्यक्तित्व अपनी कोमलता के कारण दब जाता है। इस तरह गृहस्थ तो चलता रह सकता है पर एकांगी प्रयास एक हाथ से ताली बजाने की चेष्टा के समान अपूर्ण ही रह जाता है।

फ्रांस के प्रसिद्ध मनःशास्त्री डा. क्रेटीन सौसे भी अधिक दम्पतियों का अध्ययन करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यदि एक पक्ष सज्जन हो तो दूसरे को अपने में ढाल सकता है। लेकिन ऐसा तभी सम्भव है जब दूसरा पक्ष जैसा भी कुछ है, अपना पूर्ण समर्पण कर दे। यदि दोनों व्यक्तित्व अपनी अहन्ता अलग-अलग बनाये रहें तो उनमें जो शक्तिशाली होगा उसी की विजय होगी। डा. क्रेटीन ने इस दिशा में कुछ प्रयोग भी किए। उन्होंने अपने निष्कर्ष को सही, प्रामाणिक करने के लिए विपरीत गुण, स्वभाव वाली स्त्री से विवाह करके सुयोग्य सन्तान की बात सिद्ध करने का प्रयत्न किया पर वे सफल न हो सके। अन्ततः उन्हें अपने प्रतिपादन को वापस लेना पड़ा और कहना पड़ा, किसी एक पक्ष का प्रयास सफल नहीं हो सकता। इसमें दोनों को ही पिघलना पड़ता है और यह प्रयत्न करना पड़ता है कि घनिष्टता एकता को हर कीमत पर बनाये रहा जाए। यदि ऐसा न हुआ तो फिर जो पक्ष सबल होगा, दूसरे पर छा जाने का प्रयत्न करेगा।

इस सन्दर्भ में बर्लिन की एक महिला इमगार्ड बन्स का उदाहरण प्रासंगिक है। उसने एक के बाद एक पाँच बार विवाह किये। पाँचों पतियों को क्रमशः आत्महत्या करके ही अपने जीवन का अन्त करना पड़ा। कारण कि उसकी भावनात्मक प्रचण्डता इतनी तीव्र थी कि पति उसके शिकार होकर अपना सन्तुलन खोते गये। विवाह का उद्देश्य यदि मात्र सन्तानोत्पादन करना हो तो बात दूसरी है, अन्यथा व्यक्तियों में प्रखर प्रत्यावर्तन उत्पन्न करना और प्रतिभाशाली सन्तान प्राप्त होना तभी सम्भव है, जब नर-नारी के बीच अत्यन्त गहरे एवं सघन स्तर की आत्मीयता स्थापित हो सके। ऐसे ही विवाह सच्चे अर्थों में विवाह हैं अन्यथा उन्हें एक मजबूरी का निर्वाह मात्र

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा जा सकता है। अस्तु, श्रेष्ठ सन्तानोत्पादन के लिए दाम्पत्य-जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त करने का एक ही उपाय है और वह है—पति-पत्नी के बीच अति सघन, प्रचण्ड और प्रबल भावनात्मक एकता स्थापित करना।

सफल दाम्पत्य के लिये पूर्व तैयारी आवश्यक

पाश्चात्य देशों में विवाह के पूर्व ही युवक-युवतियों को यौन विषयक जानकारी दी जानी आवश्यक समझी जाती है। हमारे यहाँ इस विषय को गोपनीय मानकर बच्चों को नहीं बताया जाता। यह कहना कि बच्चों के वयस्क होते-होते उन्हें यौन विषयक जानकारी दे देना आवश्यक होती है, उचित मानें भी तो भी यह मत एकांगी ही ठहरता है। यौन विषयक जानकारी युवक-युवतियों के लिए उतनी आवश्यक नहीं है जितनी कि उन्हें विवाह के पूर्व वैवाहिक दायित्वों, विवाह की महत्ता और उसकी सफलता के तथ्यों का ज्ञान कराना आवश्यक है। इनका समुचित ज्ञान न होने के कारण या तो वे विवाहोत्तर जीवन की ऐसी काल्पनिक तस्वीर अपने मन-मस्तिष्क में लेकर चलते हैं कि जीवन के नग्न यथार्थ से टकराकर जब वह टूटती है, तो वे स्वयं भी बहुत कुछ टूट जाते हैं। ऐसी काल्पनिक तस्वीर वेन भी बनाएँ तो भी वे शारीरिक व मानसिक तौर से उन बातों के लिये तैयार नहीं रह पाते जो उनके सामने आती हैं। विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण दायित्व और व्यवस्था का वे न स्वयं पूरा लाभ उठा सकते हैं न समाज को ही, परिवार को ही उसका लाभ दे सकते हैं।

आज तक अधिकांश माता-पिता विवाह को अनिवार्य तो मानते हैं—लड़के-लड़कियों के हाथ पीले करके गंगा नहाने की बात तो करते हैं, किन्तु उनका यह गंगा नहाना कितना अधूरा रहता है ? जब बच्चे विवाहोत्तर जीवन के भार को उठा पाने में असमर्थ रहते हैं या बेगार की तरह गृहस्थी की गाड़ी को खींचते रहते हैं। विवाह की अनिवार्यता को स्वीकारने के साथ ही उसकी सफलता के लिये बच्चों को शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक रूप से तैयार व समर्थ बनाना भी उतना ही महत्त्व रखता है, जितना कि विवाह करवा देना।

आज से कोई पचास वर्ष पहले लड़कियों के लिये जीवन साथी का चुनाव प्रायः माता-पिता ही करते थे। यहाँ तक कि उनसे इस सम्बन्ध में सम्मति लेना भी आवश्यक नहीं समझा जाता था। अब स्थिति में कुछ परिवर्तन आ रहा है। माता-पिता इस विषय में उनकी सम्मति का ध्यान रखने लगे हैं। कुछ उदाहरण अब ऐसे भी देखने को मिलते हैं, जब लड़के-लड़की माता-पिता की इच्छा के विपरीत प्रेम विवाह भी कर लेते हैं। विवाह सम्बन्ध कैसे भी बाँधे गये हों, उसके पहले लड़के-लड़की के लिये उसका महत्त्व का ज्ञान, उसकी समग्र जानकारी आवश्यक होती है। उसके अभाव में वैवाहिक जीवन की सफलता बहुत कुछ असंदिग्ध ही रहती है।

माता-पिता का अपनी इच्छा को विवाह के सम्बन्ध में पुत्र-पुत्रियों पर थोपना उनके साथ एक तरह का अन्याय ही होता है, किन्तु उन्हीं को अपनी अपरिपक्व बुद्धि के सहारे अपना जीवन साथी चुनने की छूट देना भी हितकारी नहीं होता। उनकी राय भी ली जानी चाहिए, किन्तु माता-पिता को उसके साथ-साथ अपने ज्ञान व अनुभवों का प्रयोग भी करना चाहिए।

विवाह आवश्यक तो है किन्तु प्रत्येक के लिये अनिवार्य नहीं। साथ ही विवाह की भी एक आयु एक स्थिति और सामर्थ्य होती है। उसको ध्यान में नहीं रखते हुए किये गये विवाह सम्बन्ध सुखकारक नहीं होते। शारीरिक दृष्टि से रोगी या मानसिक दृष्टि से अविकसित पुत्र का विवाह करके माता-पिता को किसी लड़की के जीवन से खिलवाड़ नहीं करना चाहिए। विवाह के लिये उस व्यक्ति की सामर्थ्य आँकी जानी चाहिए, जिसका विवाह होने को है। माता-पिता को अपने पुत्र के अपने पाँवों पर खड़े होने पर पत्नी व परिवार का भार उठा लेने की आर्थिक व बौद्धिक सामर्थ्य आ जाने पर ही विवाह की बात सोचनी चाहिए। जो युवक-युवतियाँ माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह करते हैं, उन्हें भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। जहाँ तक हो वहाँ तक माता-पिता की सहमति लेनी ही चाहिए, किन्तु वे किसी रूठी भ्रान्त मान्यता के दुराग्रह से बुरी तरह ग्रस्त हैं और लड़के-लड़की मात्र आकर्षण या सुखद कल्पनाओं से ही प्रेरित हो विवाह नहीं कर रहे हों। उन्हें वैवाहिक जीवन के उतार-चढ़ावों का भी ज्ञान है तो माता-पिता की इच्छाओं को महत्त्वहीन भी माना जा सकता है।

ग्रामीण व अशिक्षित समाज में माता-पिता लड़के-लड़कियों की आयु, शरीर सामर्थ्य, कमाने की शक्ति, भावी जीवन के संघर्षों व सुखों का ज्ञान आदि का ध्यान रखे बिना ही उन्हें विवाह के जुए में जोत देते हैं, यह बहुत-बुरी बात है। यह सन्तान के साथ बहुत बड़ा अन्याय ही नहीं समाज व राष्ट्र को दिया गया बहुत बड़ा धोखा है। शरीर, मन, बुद्धि से समर्थ होने पर ही बच्चों के विवाह की बात सोचनी चाहिए। बन्दर-बन्दरी नचाने, गुड्डे-गुड्डियों के व्याह रचाने की इस अविवेकपूर्ण बाल-विवाह प्रथा ने हमारे देश का जो अनिष्ट किया है, उसे हम आज तक भोग रहे हैं।

बच्चों को स्वयं स्कूलों में पत्र-पत्रिकाओं या तद्विषयक पुस्तकों द्वारा विवाह के पश्चात् उनके सिर पर आने वाली जिम्मेदारी व मिलने वाला सुख, दाम्पत्य व् पारिवारिक जीवन की सफलताओं के सूत्र, अनुभव, सावधानियाँ, पारस्परिक समझ, मन-मुटाव से बचने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिये क्या करें ? आदि जानकारियाँ देनी चाहिए। जिनके अभिभावक नहीं हैं या जो स्वेच्छा से अपना जीवन-साथी वरण करना चाहते हैं, उन्हें भी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, अपने मित्रों के अनुभव या अपने पास-पड़ौस में रहने वाले विवाहित दम्पत्तियों के जीवन का निरीक्षण और उन पर चिन्तन-मनन करके विवाह के पूर्व उसकी मानसिक तैयारी कर लेना चाहिए।

पारिवारिक सुख पाने के रहस्यों का ज्ञान कराने के नाम पर आजकल जो यौन विषयक पुस्तकें बिकती हैं इनमें सार की कोई बात नहीं रहती। उनमें ले-देकर काम भावना का ही मिर्च-मसाला भरा पड़ा रहता है। वे मार्गदर्शन तो कम देती हैं और कुत्साएँ अधिक फैलाती हैं, उत्तेजना भड़कती है। इनसे बचा रहना भी उत्तम है। कामभावना ही दाम्पत्य-जीवन का आधार नहीं होती। यह तो उसका एक नगण्य-सा अंग मात्र होती है।

युवक-युवतियों के पास चाहे कैसी ही उच्च डिग्रियाँ हों वे जीवन के अनुभवों में प्रायः कोरे ही होते हैं, विवाह के पूर्व उनके लिये यह जान लेना बहुत आवश्यक होता है कि उन्हें अपने-अपने सहधर्मी के साथ कैसे निभाव करना है। यह देखने में आता है कि माता-पिता के द्वारा निर्धारित किये गये सम्बन्धों को मान करके विवाह कर लेने वाले पति-पत्नी भी अपने दाम्पत्य जीवन को निभाने में सफल होते हैं और स्वेच्छा से प्रेम-विवाह करने वाले दम्पतियों में भी आगे चलकर खटपट होती है और नौबत तलाक लेने तक पहुँच जाती है। इससे स्पष्ट हो जाता कि साथी के चुनाव के स्थान पर विवाह और वैवाहिक जीवन के प्रति स्वस्थ व समग्र दृष्टिकोण होना ही सफलता का कारण होता है।

विवाह के सूत्रों में बँधने वालों को यह जान लेना आवश्यक है कि विवाहोपरान्त उन्हें बहुत कुछ मिलता है, किन्तु उसके लिये उन्हें बहुत कुछ देना भी पड़ता है। पत्नी का स्नेह, ममत्व, अनुराग, सेवा-सहयोग, संरक्षण आदि पाने के लिये स्वयं पति को भी उसे विश्वास, संरक्षण, सहयोग, स्नेह, सद्भाव आदि देना पड़ता है। वैवाहिक जीवन वहाँ कटु, शुष्क व नीरस होने लगता है जहाँ साथी से अपेक्षाएँ तो हजार की जायँ और अपनी तरफ से देने के लिये कुछ भी तैयार नहीं हों। अपेक्षाएँ करने की अपेक्षा देने की रीति-नीति अपनायी जाय तो अपने आप दाम्पत्य जीवन में मधुरता का प्रवाह उमड़ने लगता है।

वैवाहिक जीवन मात्र सुख की सेज नहीं वह काँटों का पथ भी है। उसमें सुख-दुःख की धूप-छाँव चलती ही रहती है। ऐसे समय पति-पत्नी के लिये परीक्षा का अवसर होते हैं। उनकी कल्पना विवाह के पहले ही कर लेना और उनसे निपटने की मानसिक तैयारी कर लेना ठीक रहता है। विषम समय में यदि पति-पत्नी एक-दूसरे का साथ देते रहेंगे तो उनकी दाम्पत्य नौका डगमगाने से बच जायेगी और यदि ऐसे समय में वे एक-दूसरे को उन परिस्थितियों के लिये जिम्मेदार ठहराने लगे तो वह डगमगाने लगेगी बहुत सम्भव है डूब ही जाय।

विवाह के पश्चात् सामान्य रूप से अर्थोपार्जन का दायित्व पति पर आ जाता है और गृह प्रबन्ध और स्नेह रस-वर्षण का दायित्व पत्नी सम्हालती है। अब तक माता-पिता पर आश्रित या अकेले रहने वाले युवक-युवतियों को उस समय उत्पन्न होने वाली समस्याओं का ज्ञान नहीं होता। फिर जब विवाह के पश्चात् वे उनमें उलझते हैं तो उन्हें विवाह जंजाल में फँसने जैसी बात लगने लगती है, क्योंकि वे उसकी मानसिक तैयारी नहीं किये होते हैं।

इन्सान कोई पूर्ण नहीं होता, उसमें कुछ न कुछ दोष, कमियाँ रहती हैं। विवाह के पहले अपने जीवन साथी के बारे में यह आग्रह पालना कि वह ऐसा होगा, ऐसा करेगा, ऐसा बोलेगा, हँसेगा, त्याग करेगा आदि बातें सोचने के साथ ही इसके लिये भी तैयार रहना चाहिए कि यदि उनमें वे सब गुण नहीं हैं, जिनकी हमने कल्पनाएँ, अपेक्षाएँ की थीं तो उन्हें विकसित करने का धैर्य से प्रयास करेंगे।

विवाह के पश्चात् व्यक्ति की संयम, त्याग, बलिदान आदि की भूमिकाएँ आरम्भ होती हैं। विवाहोत्तर जीवन में असंयम चाहे शरीर का हो, धन का हो या अन्य कामनाओं का वह दुःखद ही होता है किन्तु यौवन के रंगीन पंख लग जाने पर इस आयु में व्यक्ति धरती से नहीं आसमान से बातें करना चाहता है, जबकि उस रूमानियत का संयमित रूप ही वैवाहिक जीवन में निभ सकता है। अत्यधिक सुन्दर पत्नी या सर्वगुण सम्पन्न पुरुष की कल्पनाएँ कुछ ऐसी ही रूमानियत लिये हुए होती हैं। जबकि दाम्पत्य जीवन का प्रसाद पत्नी के शारीरिक सौन्दर्य नहीं मानसिक, बौद्धिक, आत्मिक सौन्दर्य और पति के विवेक, सूझ-बूझ व धैर्य पर निर्भर करता है। ऐसे दुराग्रह लेकर दाम्पत्य जीवन के मार्ग पर चलने वाले पथिक बीच मार्ग में ही थकित-अवसन्न होने लगते हैं। अतः विवाह के पूर्व अभिभावक, गुरुजन उन्हें इस सम्बन्ध में पूरी जानकारी करा दें। अकेले रहने वाले युवक-युवतियाँ भी इस सम्बन्ध में यथार्थ दृष्टि ही लेकर चलें तो उन्हें लाभदायक होंगी।

विवाह के लिए आयु की परिपक्वता ही काफी नहीं रहती। उसके लिये संतुलित दृष्टिकोण का विकसित होना बहुत आवश्यक है। भिन्न-भिन्न गुण, कर्म व स्वभाव के व्यक्ति जीवन भर एक सूत्र में आबद्ध होकर रहते हैं, तो उनमें सुखद प्रसंग भी आते हैं और दुःखद प्रसंग भी आते हैं। बुरे दिन भी आते हैं तो अच्छे दिन भी, कष्ट भी आते हैं तो हर्ष के प्रसंग भी। इन सबको धैर्यरहित समभाव से स्वीकारते हुए विवाह धर्म का निर्वाह करने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की दक्षता तो विवाह के पश्चात् ही प्राप्त होती है, किन्तु उनकी पूर्व जानकारी हो जाना बहुत आवश्यक होता है।

विवाह मात्र कामनाओं की तृप्ति का साधन नहीं यह तो एक धर्म है। इसी कारण पति-पत्नी को एक-दूसरे का सहधर्मी कहा जाता है। दोनों एक-दूसरे के साथ रहकर एक महान दायित्व का पालन करने को प्रवृत्त होते हैं, तो उन्हें एक-दूसरे पर अधिकार मिल जाने की बात सोचने की अपेक्षा उसका साहचर्य, सहयोग मिलने की ही भावना रखना हितकर होता है। यह बात नहीं भूल जाना चाहिए कि दोनों एक सूत्र में आबद्ध इसलिये हुए हैं कि अकेला व्यक्ति इस दायित्व को निभा नहीं पाता था। अतः दो साथी मिलकर निभा रहे हैं, ताकि यह नीरस न हो जाय। इस सत्य को विवाह के इच्छुक युवक-युवतियों को बताना उनकी सामर्थ्य को देखना उतना ही आवश्यक है जितना विवाह सम्पन्न कराना।

दाम्पत्य-जीवन में आदर्शवादिता का समावेश

चश्मे के द्वारा हम हर एक चीज को देखते हैं तथा वह हमारे चक्षुओं पर बोझ नहीं बनता। नजर में रुकावट डालने के बजाय चश्मा उसका सहायक होता है। आँखों तथा बाहर की वस्तुओं के बीच में पर्दा या बाधा बनने की बजाय, वह सभी वस्तुओं को स्पष्ट दिखलाता है।

इसी तरह पति का पत्नी से तथा पत्नी का पति से सम्बन्ध होना चाहिए कि वे एक-दूसरे के लिए बाधा न बनें, पति अपनी पत्नी के भीतर तथा पत्नी अपने पति के भीतर कैद न हो जाए। बल्कि वे एक-दूसरे के द्वारा सारे संसार को देखें। यह तभी सम्भव है, जब यह सम्बन्ध आध्यात्मिक तथा वेदान्त में बताये गये बोध पर आश्रित हो। किसी अन्य दृष्टिकोण से यह नहीं हो सकता।

जहाँ पति-पत्नी अपने व्यक्तिगत अहं, व्यक्तिगत सम्मान, इर्द-गिर्द के वातावरण, रीतिरिवाजों, भावनाओं तथा आदतों से ऊँचा उठ जाते हैं, वहाँ दोनों को आत्मा के अपने असली रूप के दर्शन मिल जाते हैं, इससे पूर्व नहीं।

पत्नी पति के द्वारा परमात्मा को देखे तथा पति पत्नी द्वारा परमात्मा को देखे। पति परमात्मा की मूर्ति बन जावे अथवा तस्वीर बन जाए और पत्नी पति के लिए।

विवाह हानिकारक नहीं है, इसमें शासन करने वाली दुर्बलता वास्तव में हानिकारक है। नीचे गिराने वाला भाव—भय वस्तुओं से मोह, बाहरी रूपरेखा पर आसक्ति और इस भावना की पुष्टि, "मैं शरीर हूँ, मेरा साथी भी शरीर है" और अपने साथी को वश में करने की, उस पर अधिकार जमाने की इच्छा-लालसा हानिकारक है।

यदि आप अपने साथी के वास्तविक हित-चिन्तक हैं, तो आप उसे ऐसा पदार्थ अवश्य दें, जो वास्तविक सुख का मूल है। यह पदार्थ है—(१) ज्ञान तथा (२) आध्यात्मिक स्वाधीनता।

हर एक पति का यह परम धर्म है कि वह अपनी पत्नी को शिक्षा प्रदान करे। जो पति अपनी पत्नी को शिक्षा नहीं देता, उसे ऊँचा नहीं उठाता अथवा जो पत्नी अपने पति का पथ-प्रदर्शन नहीं करती अथवा उसके उत्थान में सहायक नहीं होती, वह पति पति नहीं और वह पत्नी पत्नी नहीं। ऐसा पति भी पापी है और ऐसी पत्नी भी।

घर को प्रेम की सीमा नहीं, अपितु प्रेम का केन्द्र बनाया जाना चाहिए। लोग अपने घर परिवार को प्रेम की सीमा बना देते हैं। घर के बाहर किसी से प्रेम नहीं होता, उनकी प्रीति घर की सीमा को नहीं पार कर सकती। घर, पत्नी तथा सन्तान को प्रेम बनाना चाहिए, जिससे प्रीति किरणें दसों दिशाओं में प्रसारित हो सकें। आपकी प्रीति घर की चाहारदीवारी से बँधी हुई नहीं होनी चाहिए। आपको अपनी पत्नी को ही प्रेम की सीमा नहीं बना देना चाहिए। जब आप में स्वार्थ भावना भर जाती है, तब आप अपने को तथा अपनी पत्नी को भी पतित बना डालते हो।

पत्नी इसलिए है कि वह पति को सम्पूर्ण विश्व के साथ ऐक्य स्थापित करने की शिक्षा दे, वह इसलिए नहीं कि आप पत्नी-प्रेम में सारे संसार से नाता तोड़ दें।

पति तथा पत्नी दोनों को साथ-साथ प्रगति करनी चाहिए तथा जबकि पत्नी हमें प्रेम की शिक्षा देती है, तो हम जिस प्रेम की शिक्षा प्राप्त करते हैं, उस प्रेम को उस देह में ही स्थिर (सीमित) करके नहीं रखना चाहिए अपितु वह सम्पूर्ण जगत को, प्राणिमात्र को समर्पित किया जाना चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए

बड़ी-बड़ी आशा, आकांक्षाओं के साथ नवयुवक और नवयुवतियाँ दाम्पत्य-जीवन के सूत्र में बँधते हैं। बड़ी-बड़ी रस्में अदा होती हैं। विवाह के रूप में बड़ा समारोह मनाया जाता है। गाने-बाजे, रोशनी, दावतों, लेन-देन, बारात, जुलूस आदि के साथ दो प्राणी विवाह-सूत्र में बँधते हैं। परस्पर के नये आकर्षण से प्रारम्भिक दिनों दोनों का जीवन बड़ा सुखद बीतता है, किन्तु यह स्थिति अधिक दिन नहीं रहती और दाम्पत्य-जीवन कलह, अशांति, द्वेष, असन्तोष की आग में जलने लगता है।

परिपाटी के तौर पर जो प्रतिज्ञायें धर्म-पुरोहित उच्चारण कर देते हैं, उनका व्यावहारिक-जीवन में नाम भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं रहता। दाम्पत्य-जीवन एक-दूसरे के लिए बोझा बन जाता है। इसका कोई बाह्य कारण नहीं। अपितु, पति-पत्नी दोनों के ही परस्पर व्यवहार, आचरणों में विकृति पैदा होने पर ही अक्सर ऐसा होता है। यदि इन छोटी-छोटी बातों में सुधार कर लिया जाय तो दाम्पत्य-जीवन परस्पर सुख-शान्ति, आनन्द का केन्द्र बन जाय।

दाम्पत्य-जीवन की सुख-समृद्धि एवं शान्ति के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि व्यवहार में एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखें। एक मोटा-सा सिद्धान्त है कि "मनुष्य दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करे, जैसा वह स्वयं के लिए चाहता है।" पति-पत्नी भी सदैव एक-दूसरे की भावनाओं, विश्वासों का ध्यान रखें। किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग अपनी भावना, विचारों में इतना खो जाते हैं कि दूसरे कि विचारों, भावों का कुछ भी ध्यान नहीं रखा जाता वे उन्हें निर्ममता के साथ कुचल भी देते हैं। इस तरह दोनों की एकता, सहयोग के स्थान पर असन्तोष का उदय हो जाता है। अपनी इच्छानुसार पत्नी को जबर्दस्ती किसी काम के लिए मजबूर करना, उसकी इच्छा न होते हुए भी दबाव डालना, पति के प्रति पत्नी के मन में असन्तोष की आग पैदा करता है। इसी तरह कई स्त्रियाँ अपने पति के स्वभाव, रुचि, आदेशों का ध्यान न रखकर अपनी छोटी-छोटी बातों में ही उन्हें उलझाये रखना चाहती हैं। फलतः उन लोगों को विवाह एक बोझा-सा लगने लगता है। दाम्पत्य-जीवन के प्रति उन्हें घृणा, असन्तोष होने लगता है और यही असन्तोष उनके परस्पर व्यवहार में प्रकट होकर दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बना देता है। यदि किसी की मानसिक स्थिति ठीक न हो तो परस्पर लड़ाई-झगड़े होने लगते हैं। एक-दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते रहते हैं।

पति-पत्नी का सदैव एक-दूसरे के भावों, विचारों एवं स्वतन्त्र अस्तित्व का ध्यान रखकर व्यवहार करना, दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए आवश्यक है। इसी के अभाव में आजकल दाम्पत्य-जीवन एक अशान्ति का केन्द्र बन गया है। पति की इच्छा न होते हुए, साथ ही आर्थिक-स्थिति भी उपयुक्त न होने पर स्त्रियों की बड़े-बड़े मूल्य की साड़ियाँ, सौन्दर्य-प्रसाधन, सिनेमा आदि की माँग पतियों के लिए असन्तोष का कारण बन जाती हैं। इसी तरह पति का स्वेच्छाचार भी दाम्पत्य-जीवन की अशान्ति के लिए कम जिम्मेदार नहीं है। यही कारण है कि कोई घर ऐसा नहीं दीखता, जहाँ स्त्री-पुरुषों में आपस में नाराजगी, असन्तोष दिखाई न देता हो।

परस्पर एक-दूसरे की भावनाओं में स्वतन्त्रता का ध्यान न रखने में एक मुख्य कारण अशिक्षा भी है। यह कमी अधिकतर स्त्रियों में पाई जाती है। पर्याप्त शिक्षा-दीक्षा के अभाव के कारण भी मानसिक विकास नहीं होता, जिसके कारण एक-दूसरे की भावनाओं, व्यावहारिक जीवन की बातों के बारे में मनुष्य को जानकारी नहीं मिलती। इसके निवारण के लिए प्रत्येक पुरुष को कुछ न कुछ समय निकाल पत्नी को पढ़ाने, उसका ज्ञान बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जीवन-साथी का समकक्ष होना आवश्यक है। अपने साथी की ज्ञान-वृद्धिविकास एवं कल्याण के लिए भी अन्य आवश्यक कार्यों की तरह ही प्रयत्न करना आवश्यक है, तभी वह जीवन में सहयोग, एकता, सामंजस्य का आधार बन सकती है। किन्तु देखा जाता है कि अधिकांश लोग इसमें दिलचस्पी नहीं लेते। मन, बुद्धि के विकास के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सुखी और समृद्ध नहीं बन सकता।

योग्य होकर भी, एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए भी कभी-कभी स्वभावतया ऐसा व्यवहार हो जाता है, जो पति-पत्नी में एक-दूसरे को अखरने लगता है। ऐसी स्थिति में किसी भी एक पक्ष को क्षमाशीलता, सहिष्णुता का परिचय देकर विक्षोभ उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न करना आवश्यक है। साथ ही दूसरे पक्ष को भी अपनी भूल को महसूस कर, क्षमा माँगकर परस्पर मनों को साफ रखना चाहिए अन्यथा परस्पर मनोमालिन्य बढ़ जाता है और दाम्पत्य-जीवन में कटुता पैदा हो जाती है। महात्मा सुकरात, टालस्टाय, सन्त तुकाराम जैसे महापुरुषों ने अपनी फूहड़ और लड़ाका स्त्रियों को सहनशीलता, क्षमा, उदारता के साथ जीवन में निवाहा था।

स्त्रियाँ तो बेचारी सदा से ही अपने पतियों के कटु स्वभाव, व्यवहार, निर्दयता, स्वेच्छाचार को भी सहन करके दाम्पत्य-जीवन की गाड़ी को चलाने में योग देती रही हैं। भारतीय नारी का महान आदर्श इसी त्याग, सहिष्णुता और पतिव्रत-धर्म से निर्मित रहा है। पति-पत्नी में से जब किसी एक में भी कोई स्वाभाविक कमजोरी दीखती हो तो उसका सहनशीलता के द्वारा निराकरण करके गृहस्थ की गाड़ी को चलाने में पूरा-पूरा प्रयत्न करते रहना आवश्यक है।

पति-पत्नी दोनों का जीवन एक सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों में अभिन्नता है, एक्य है। भारतीय-संस्कृति में तो पुरुष और स्त्री को आधा-आधा अंग मानकर एक शरीर की व्याख्या की गई है, जिसमें पुरुष को अर्द्धनारीश्वर तथा स्त्री को अर्द्धांगिनी कहा गया है। दाम्पत्य-जीवन स्त्री-पुरुष की अनन्यता का गठबन्धन है। अतः परस्पर किसी तरह का दुराव, छिपाव, दिखावा, बनावटी व्यवहार करना, परस्पर अविश्वास, एक-दूसरे के प्रति घृणा को जन्म देता है और इसी से दाम्पत्य-जीवन नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। अपनी प्रत्येक चेष्टा में स्पष्टता, दुराव, छिपाव का अभाव रखकर अभिन्नता प्रकट करते हुए पति-पत्नी को एक-दूसरे का विश्वास, मानसिक एकता प्राप्त करना चाहिए। वैसे जहाँ तक बने, प्रत्येक व्यक्ति को अपने बाह्य-जीवन में भी रहस्य, छल, बनाव, दिखावे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से बचना चाहिए, क्योंकि इस बाहरी व्यवहार को देखकर भी पति-पत्नी एक-दूसरे पर सन्देह करने लगते हैं। वे सोचते हैं—"हो सकता है, यही व्यवहार हमसे किया जा रहा हो" और सन्देह की भूल-भुलैया में ही अनेकों दम्पत्तियों का जीवन क्लिष्ट, उलझा हुआ, दुरूह बन जाता है।

पति-पत्नी दोनों अपने मानसिक क्षेत्र में बहुत बड़ा कुटुम्ब होते हैं। अपनी मानसिक आवश्यकताओं के आधार पर पति अपनी पत्नी से ही विभिन्न समय में, सलाहकार की तरह मन्त्री की-सी योग्यता, भोजन करते समय—माँ की वात्सल्यता, आत्म-सेवा के लिए—आज्ञा-पालक नौकर, जीवन-पथ में एक अभिन्न मित्र, गृहिणी, रमणी आदि की आकांक्षा रखता है। इसी तरह पत्नी भी पति से जीवन निर्वाह के क्षेत्र में माँ-बाप, दुःख-दर्द में अभिन्न साथी, कल्याण और उन्नति के लिए सद्गुरु, कामनाओं की तृप्ति के लिए भर्तार, सुरक्षा-संरक्षण के लिए भाई आदि। जब परस्पर इन मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तो एक-दूसरे में असन्तोष, अशान्ति पैदा हो जाती है, जिससे दाम्पत्य-जीवन में विकृति पैदा हो जाती है।

एक-दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए, एक-दूसरे की योग्यता वृद्धि, खासकर पुरुषों द्वारा स्त्रियों के ज्ञानवर्द्धन में योग देकर, परस्पर क्षमाशीलता, उदारता, सहिष्णुता, अभिन्नता, एक-दूसरे मानसिक तृप्ति करते हुए दाम्पत्य-जीवन को सुखी, समृद्ध बनाया जा सकता है। अधिकतर इसके लिए पुरुषों को ही अधिक प्रयत्न करना आवश्यक है। वे अपने प्रयत्न और व्यवहार से गृहस्थ-जीवन की काया-पलट कर सकते हैं। अपने सुधार के साथ ही स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा, ज्ञान-वृद्धि, उनके कल्याण के लिए हार्दिक प्रयत्न करके दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाया जा सकता है। धैर्य और विवेक के साथ एक-दूसरे को समझते हुए अपने स्वभाव, व्यवहार में परिवर्तन करके ही दाम्पत्य-जीवन को सुख-शान्तिपूर्ण बनाया जा सकता है।

दाम्पत्य-जीवन की आधारभूत आवश्यकताएँ

एक तेजस्वी संन्यासी अथवा एक प्रामाणिक नेता समाज की प्रगति को सही दिशा में आगे बढ़ाने में समर्थ होता है। पर उसकी सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि समाज में मूलतः प्रगति की कितनी ललक और तत्परता है ? समाज की यह तत्परता, उसकी आधारभूत इकाई 'परिवार' संस्था के स्वरूप पर निर्भर करती है और परिवार का भी केन्द्र है—दाम्पत्य-जीवन। जिस समाज में दाम्पत्य-सम्बन्ध स्वस्थ और आदर्श हुए, वह समाज सजग, सक्रिय, उत्साही, प्राणवान लोगों का समाज होगा। जबकि जहाँ दाम्पत्य-जीवन अस्वस्थ, रुग्ण, विकृत हो वहाँ नागरिकों में अन्यमनस्कता, कुंठा और अनुत्साह की प्रधानता होगी। व्यक्तित्वों की टकसाल और समाज की इकाई परिवार की रचना दाम्पत्य से शुरू होती है। इसीलिए दाम्पत्य-जीवन को परिवार-संस्था की धुरी कहा जाता है।

भारतीय पुराण-मान्यता के अनुसार वर्तमान मानव-समाज स्वायम्भुव मनु और शतरूपा की सन्तति है। रामचरित मानस में इन दोनों के दाम्पत्य-जीवन को श्रेष्ठ कहा गया है—

"स्वायम्भुव मनु अस सतरूपा।
जिन्ह ते भइ नरसृष्टि अनूपा॥
दम्पति धर्म आचरन नीका।
अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका॥"

दाम्पत्य-जीवन की महत्ता को वैदिक ऋषि भी जानते थे। इसीलिए विवाह के उपरान्त वर-वधू को ऋषिगण आशीष देते थे—

"माँ विदन् परिपन्थिनो,
यअसीदन्ति दम्पत्ति।
सुगेभिर्दुर्गमितीताम् ॥"

अर्थात्—हे दम्पत्ती ! तुम दोनों का मार्ग सुगम हो और तुम उन रास्तों पर कभी न जाओ, जो दम्पत्तियों को अवसादयुक्त बनाते हैं।

दाम्पत्य-जीवन का अर्थ है, पति-पत्नी का सच्चे अर्थों में सहजीवन ! यह स्त्री-पुरुष की अनन्यता का संकल्प है। सह-संवेदन, समत्व-भावना और सघन आत्मीयता उसकी आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। जीवन-यज्ञ में पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इसीलिए पति-पत्नी को दम्पति का अर्धांग माना जाता है। इसीलिए तो तैत्तिरीय ब्राह्मण की व्यवस्था है—

"अयज्ञो वा एष अपत्नीकः।"

(तै. ब्रा. २/२/२/६)

अर्थात्—जो अपत्नीक है पत्नी रहित है, वह यज्ञ का अधिकारी नहीं।

दाम्पत्य-जीवन की शुरूआत करते समय भारतीय वर-वधू परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं कि हम एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्य-निष्ठ रहेंगे, उदार रहेंगे, सहयोग करेंगे और प्रगति पथ पर साथ-साथ आगे बढ़ेंगे। यह प्रतिज्ञा यदि निष्ठापूर्वक दोनों ओर से निभाई जाय तो निश्चय ही दम्पत्ति एक सुदृढ़ सम्मिलित इकाई के रूप में सक्रिय रहते हैं और उनका जीवन आनन्द, प्रकाश तथा प्रगति की सुरभि से महमहा उठता है। ऐसे दम्पति जिस समाज में होते हैं, वह समाज एक सुरभित उद्यान बना रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए इन दिनों शारीरिक स्वास्थ्य, आर्थिक समृद्धि, शिक्षा और सौन्दर्य को आधार मानने की रीति है। निःसन्देह, सांसारिक जीवन को चलाने लिए ये सभी आवश्यक हैं। पर भौतिक उपकरणों से भी पहले गहन आत्मीयता और सघन संवेदना की उपस्थिति दाम्पत्य-जीवन की आरम्भिक शर्त है। यदि भावनाओं से पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरे के अर्धांग रूप में जुड़े रहते हैं, उनमें प्रेम एवं आत्मीयता भरी रहती है, तो भौतिक साधन उन्हें सर्वोपरि नहीं प्रतीत होंगे, बाह्य आकर्षण उन्हें उतने आवश्यक नहीं लगेंगे।

प्रेम और आकर्षण दो भिन्न तत्त्व हैं। शारीरिक गठन, वय, स्वास्थ्य और सौन्दर्य के अनुपात से घटती-बढ़ते रहने वाली राग वृत्ति का नाम आकर्षण है। जबकि प्रेम इससे भिन्न एक आध्यात्मिक तत्त्व है, जो दाम्पत्य-जीवन में मधुरता का, कठिन परिस्थितियों में भी सघन आत्मीयता और कर्त्तव्यनिष्ठा का, आनन्द, प्रमोद तथा आह्लाद का संचार करता रहता है। अन्तःकरण का संतोष ही उसे पालता है।

यह भूलना नहीं चाहिए कि प्रेम और आत्मीय सघनता का विकास सहयोग, समर्पण और त्याग के ही धरातल पर सम्भव है। सन्तुलन और सामंजस्य एकांगी नहीं होता। एकाकी प्रयत्न से सामंजस्य का प्रयास प्रायः निरर्थक ही सिद्ध होता है। तुला के दो पलड़ों को संतुलित रखने के लिए समतुल्य भार की वस्तुएँ दोनों ओर रखनी होती हैं। नाव के दोनों सिरों पर बैठे लोगों में परस्पर संतुलन न हो तो नाव डगमगाने लगती है और डूबने का खतरा आ खड़ा होता है। दाम्पत्य-जीवन में बराबरी का सहयोग और सहकार आवश्यक होता है। यह सघन सद्भाव विकास तभी होता है, जब दाम्पत्य-जीवन का लक्ष्य उदात्त हो। यह दोनों के समक्ष स्पष्ट रहे कि हमारे मिलन का अभिप्राय कामसेवन की सुविधा, रोटी बनाने, घर चलाने की व्यवस्था या एक कमाऊ साथी की प्राप्ति नहीं, अपितु दो आत्माओं का एकीकरण है। पति-पत्नी के बीच विद्यमान आकर्षण का चरम प्रयोजन है, दो व्यक्तित्वों के मिलन की ऐसी अनूठी प्रक्रिया का सम्पन्न होना, जो समाज में एक नई ही वस्तु को, नई ही प्रक्रिया को जन्म दे। नर-नारी के बीच ऐसे अद्भुत घुलनशील तत्त्व हैं कि यदि वे दोनों गहन स्तर तक परस्पर मिल सकें तो एक नया संयुक्त व्यक्तित्व उत्पन्न होता है और उसके प्रभाव से दोनों अपना पुराना स्तर खोकर नये स्तर के बन जाते हैं। कुँवारी अवस्था में लड़की जिस स्तर की थी, विवाह के बाद उसमें कायाकल्प जैसा परिवर्तन होता है। उसी प्रकार किशोर लड़के, विवाह के पूर्व जिस प्रकृति के थे, वे ही विवाह के उपरान्त भिन्न ही प्रकृति के युवक बन जाते हैं। पर इस घुलन के लिए मात्र शारीरिक सामीप्य अपर्याप्त है। वह तो एक बहुत ही छोटा अंश भर है। व्यक्तित्वों को घुलना उतने भर से नहीं होता। उसके लिए तो भावनात्मक सघनता आवश्यक है। यही सघनता वह स्थिति लाती है कि एक प्राण दो शरीर का आभास होने लगे। उस स्थिति में दोनों का ही एक-दूसरे पर मानो पूर्ण अधिकार रहता है।

पर सामान्यतः इस प्रक्रिया को उलट दिया जाता है। विवाह के उपरान्त पति, पत्नी पर सम्पूर्ण अधिकार मान बैठता है और पत्नी पति पर। इस अधिकार भावना में कर्त्तव्य भावना की उपेक्षा रहती है। पर कर्त्तव्य भावना की कमी रहने पर सच्ची आत्मीयता सम्भव नहीं।

अभी तो स्थिति यह है कि पत्नी-पति पर इस रूप में अधिकार मान बैठती है कि पति जब माँ-पिता, भाई-बहिन, परिजन-पुरिजन, देश-समाज, सबकी चिन्ता छोड़ बैठे, बस मुझे देखे, मेरी चिन्ता करे और मेरे बच्चों की। तटस्थ भाव से पत्नी की इस अपेक्षा को देखा-परखा जाय तो हँसी आती है, आश्चर्य भी होता है। पर पति की अपेक्षा तो और बढ़ी-चढ़ी होती है। वह तो पत्नी को अपनी गुलाम या कोई खरीदी हुई या छीनी हुई वस्तु मात्र मानने लगता है। मुँह से तो प्राणों के समान प्रिय आदि विशेषण ही प्रयुक्त करता रहता है, पर अपेक्षा यही पालता है कि पत्नी अनन्य सेविका सिद्ध हो। यदि सामान्यतः पत्नी की पति से अपेक्षाएँ हास्यास्पद होती हैं, तो सामान्यतः पत्नी की पति से अपेक्षाएँ नितान्त अनैतिक, अनुचित और घृणा योग्य तक कही जा सकती हैं। यद्यपि दोनों में से एक का भी उद्देश्य यह नहीं रहता। पर व्यवहार का ढर्रा तो ऐसा ही रहता है।

आवश्यकता सन्तुलित चिन्तन की है। पत्नी को समझना चाहिए कि विवाह निश्चय ही एक धार्मिक संस्कार है। उसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भी मान लिया। पर वह एकमात्र धार्मिक संस्कार नहीं है। जातिकर्म, विद्यारम्भ, उपनयन से लेकर श्राद्धकर्म तक अन्य धर्म संस्कार भी हैं। मातृभक्ति, पितृभक्ति, गुरुभक्ति, देशभक्ति—जैसे अनेक अन्य कर्त्तव्य धर्म भी हैं। जीवन के शेष समस्त कर्त्तव्यों एवं धर्मों की अवहेलना कर पति बस एक ही कर्त्तव्य निभाए, विवाह के समय किये गये संकल्प को निभाने का। यह अपेक्षा कहाँ तक संगत एवं उचित है। भला, जो पति जीवन के शेष सभी कर्त्तव्य भुला बैठेगा, वह मात्र पत्नी के प्रति कर्त्तव्यों को कैसे याद रखेगा ? आखिर वह पति अपनी माँ की कोख से पैदा हुआ है, पिता के संरक्षण में पला-बढ़ा हुआ है, बहिनों के साथ हँसा-खेला, रोया-गाया है। समाज से सारी सुविधाएँ प्राप्त की हैं शिक्षा, अन्न-वस्त्र, अर्थ और सामाजिकता की। इन सबको जो भुला देगा, वह मात्र पत्नी के प्रति वफादार कैसे रहेगा ? माँ-पिता, भाई-बहिन से अब काम निकल गया, इसीलिए अब उनकी चिन्ता छोड़ो, ऐसी अपेक्षा पालने की तार्किक परिणित भी पत्नी याद रखे, कल की काम पिपासा और दैहिक आवेग के शमन के उपरान्त वह व्यक्ति पत्नी की भी चिन्ता छोड़ बैठेगा। जब उसने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और कोई कर्त्तव्य नहीं निभाये, तो पत्नी के प्रति ही कर्त्तव्यों को क्यों निभायेगा ?

दूसरी ओर पतियों की अपेक्षाएँ तो इससे भी बढ़ी-चढ़ी और भीषण होती हैं। जिस निश्छल हृदय नारी ने विवाह के समय की गयी प्रतिज्ञा को ध्रुव सत्य मानकर इतने गहरे विश्वास के साथ समर्पण कर दिया है, उसके विश्वास को छलने तथा उसे मूढ़ ही बनाये रखने वाले पुरुष को क्या कहा जाय ?

यों, ऐसा कोई भी स्वस्थ पुरुष न होगा, जो अपनी पत्नी में विकसित विशेषताएँ न देखना चाहे और ऐसी कोई स्वस्थ पत्नी न होगी जो पति के व्यक्तित्व को समुन्नत न देखना चाहे। पर ये कामनाएँ मात्र चाहने से पूरी नहीं होतीं। कर्त्तव्य निर्वाह आवश्यक है। यदि पति-पत्नी के प्रति कर्त्तव्य निभाए, उसे विकसित होने में सहयोग दे, तो वह साहित्य, कला, संगीत, व्यवसाय, राजनीति या समाज सेवा के क्षेत्र में एक सर्वाधिक विश्वस्त मित्र और सर्वाधिक रुचिकर प्रिय साथी हो सकता है। पत्नी तो ऐसी साथी है, जो निरन्तर उपलब्ध रहेगी। ऐसा विकसित साथ आनन्द, उल्लास, स्फूर्ति, उत्फुलता, तृप्ति, प्रसन्नता का अजस्र स्रोत सिद्ध होगा। पर इस हेतु वांछित कर्त्तव्य निभाया जावे, तब। बिना कर्त्तव्य-निर्वाह के अपेक्षाएँ कभी पूरी होने वाली नहीं।

पति-पत्नी के सम्बन्धों में गहरी दरार तभी पड़नी शुरू होती है, जब वे एक-दूसरे से मात्र अपेक्षाएँ पालते हैं। अपना कर्त्तव्य याद नहीं रखते। जहाँ एक-दूसरे के प्रति सम्मान, कृतज्ञता एवं समान संवेदना नहीं है, वहाँ सहजीवन कैसे हो सकेगा ? एक-दूसरे पर अपनी रुचियों का आरोपण और अपनी अपेक्षाओं को ही प्रधानता देना ही वह कारण है, जिससे दाम्पत्य-जीवन का रस स्रोत अवरोध होता तथा सूखता चला जाता है।

यह भलीभाँति समझ लिया जाना चाहिए कि नर-नारी दोनों की सार्थकता के मानदण्ड एक ही हैं और दाम्पत्य-जीवन की सफलता-सार्थकता की दोनों की जिम्मेदारी है, किसी एक की नहीं।

जो लोग सफल दाम्पत्य-जीवन के अभिलाषी हैं, उन्हें इस जीवन के कर्त्तव्यों को भलीभाँति समझ लेना चाहिए। यदि उनमें परस्पर समझदारी, आत्मीयता, सद्भावना और सच्चे प्रेम की क्षमता है, तो वही दम्पत्ति बनने की सोचें। जहाँ ये सद्गुण होंगे, जहाँ निष्ठा सच्ची होगी, वहाँ सन्तुलन, सामंजस्य, सफलता और सार्थकता सुनिश्चित है।

दाम्पत्य-जीवन सफल कैसे बने ?

मनुष्य को जब एक प्रगाढ़ आत्मीय और आजीवन सहचरत्व निभाने की आवश्यकता अनुभव होती है, तब विवाह होता है। विवाह एक ऐसी मैत्री का पुण्य आरम्भ है, जो समस्त कमियों, कमजोरियों और त्रुटियों के बावजूद भी जीवनभर अक्षय बनी रहती है। अन्य मित्रताएँ बनती और टूटती रहती हैं। मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में कई मित्र बनाता है और उन्हें भूलता रहता है, उन मित्रताओं के मूल में कोई न कोई स्वार्थ अवश्य रहता है। इसीलिए वे बनती हैं और टूटती भी हैं। जीवनसाथी को अंगीकार करने का धर्मानुष्ठान विवाह ही एकमात्र ऐसी मित्रता है, जो निःस्वार्थ भाव से आरम्भ होता है, आत्म त्याग से पोषित, प्रेम से सिंचित, पल्लवित और पुष्पित होता है। ये भाव आजीवन बने रहे तो दाम्पत्य-जीवन में सुख-शान्ति और आनन्द के मधुर फल लगते हैं।

कई लोग समझते हैं कि सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए प्रचुर मात्रा में धन आवश्यक है। पर्याप्त मात्रा में सुख-सुविधाओं के साधन पास में हों तो व्यक्ति चिरन्तन उनका लाभ उठाता रह सकता है। यह मान्यता अब तक के हजारों-लाखों और करोड़ों द्वारा कही जाय तो भी कम है। दम्पत्तियों के अनुभव में गलत ही सिद्ध हुई है। सच तो यह है कि किसी भी दम्पत्ति ने आज तक यह अनुभव नहीं किया कि धन-सम्पदा के कारण वे दुःखी और क्लान्त विवाहित जीवन जी रहे हैं। धन के अभाव से उत्पन्न होने वाली पारिवारिक विवशतायें अवश्य कष्ट पहुँचाती हैं पर वह कष्ट भी मधुर दाम्पत्य सम्बन्धों के कारण कम पीड़ा पहुँचाते हैं। पति-पत्नी का प्रेम उन कष्टों के घाव पर मरहम का काम करता है।

अक्सर तो देखा गया है कि धनवान व्यक्तियों का दाम्पत्य-जीवन निरानन्द और नीरस ही हो जाता है। पति धन कमाने में इतना व्यस्त रहता है कि वह पत्नी से दो प्रेम भरे बोल भी नहीं बोल सकता। इसके अभाव में पत्नी धन और ऐश्वर्य में उस सुख की तलाश करती है, परन्तु वहाँ निराश होना पड़ता है। फलतः सारा आक्रोश पति या परिवार के अन्य सदस्यों पर उतरता है, तो दाम्पत्य सम्बन्ध कटुतापूर्ण तथा मन-मुटाव से भर जाता है।

कुछ लोगों की यह भी मान्यता है कि सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए पति-पत्नी का शिक्षित होना अनिवार्य है। शिक्षित पति-पत्नी अपने दाम्पत्य सम्बन्धों को अधिक सुलझा और निखरा तो बना सकते हैं। पर दाम्पत्य-जीवन के लिए जो दूसरे तत्त्व अनिवार्य हैं, वे न हों तो शिक्षा उल्टे दाम्पत्य सम्बन्धों में विकार उत्पन्न कर देती है। शिक्षा दाम्पत्य-जीवन को सरस भी बना सकती है और नीरस भी। एक बारगी शिक्षा न भी हो और दाम्पत्य सम्बन्ध उन सब अपेक्षाओं को पूरा करते हुए चल रहे हों जो कि उसके लिए आवश्यक हों तो पति-पत्नी अशिक्षित रहते हुए भी सुखी और प्रेमपूर्ण रह सकते हैं। करोड़ों लोग अशिक्षित रहते हुए भी दाम्पत्य-जीवन को सफलतापूर्वक जी रहे हैं। जबकि लाखों शिक्षित व्यक्ति उन गुणों के अभाव में तनावपूर्ण जीवन जी रहे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य-जीवन को सुखी बनाने के लिए धन भी आवश्यक है और शिक्षा भी। पर मूल आवश्यकता कुछ और ही है। धन और शिक्षा वही काम करते हैं जो सोने के आभूषण बनाने के लिए आँच और हथौड़ी हो तो सोने का आभूषण बन जाता है पर सोना ही नहीं हो तो आभूषण किस धातु का बनेगा। धन और शिक्षा से दाम्पत्य-जीवन को सुविधा सम्पन्न बनाया जा सकता है पर आनन्दमय नहीं। आनन्दमय दाम्पत्य-जीवन के लिए उन गुणों की आवश्यकता है, जो पति-पत्नी के दो शरीरों में बसने वाली दो आत्माओं को एक सूत्र में आबद्ध कर दें। वे गुण हैं प्रेम, आत्मीयता, स्नेह, त्याग और परिमार्जित भावनाएँ तथा परिमार्जित दृष्टिकोण।

प्रेम ही वह सूत्र है जो पति-पत्नी को बाँधता है। न केवल बाँधता है वरन् आत्मोत्सर्ग, त्याग और निस्वार्थ भावना को भी जन्म देता है। इसका आधार न तो सौन्दर्य है और न कामुकता। इस दिव्य अमृत की वर्षा एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझने और एक-दूसरे की सुख-सुविधाओं के लिए अपनी आवश्यकताओं की उपेक्षा करने पर होती है। स्त्री-पुरुषों के स्वभाव मिलते हों और दोनों एक-दूसरे के लिए आत्मदान की भावना रखते हों तो दीन-हीन स्थिति में कम साधन और कम शिक्षा में भी हँसी-खुशी का मधुर जीवन जिया जा सकता है।

अशिक्षित और गरीब दम्पत्तियों में जो प्रेम, जो आनन्द और जो संगीत होता है उसका कारण यही दिव्य प्रेम है। सौभाग्य से भारतीय परिवारों में जो आधुनिकता से कोसों दूर है। लड़कियों को यह भावनायें विरासत के रूप में मिलती हैं और वे इन्हीं भावनाओं के बल पर पति की सर्वस्व स्वामिनी बन जाती हैं, उन्हें अपनी इच्छानुसार मोड़ सकती हैं। आधुनिक परिवारों में दाम्पत्य-जीवन का आनन्द स्रोत सूख जाने का कारण यह नहीं है कि उनमें एक-दूसरे के प्रति कोई भावना नहीं होती। भावनाएँ होती तो हैं पर उन भावनाओं से भी अधिक महत्त्व अपने स्वार्थ को दिया जाता है। आधुनिक शिक्षित परिवारों में तनावपूर्ण दाम्पत्य सम्बन्धों का कारण यह है कि वहाँ पति-पत्नी एक-दूसरे की सुविधाओं से अधिक अपने स्वार्थ को महत्त्व देते हैं। कहना नहीं होगा कि ऐसा दाम्पत्य-जीवन आत्मिक कम व्यावसायिक सम्बन्धों जैसा अधिक होता है, जो अपनी स्वार्थपूर्ति में तनिक-सी भी कमी आ जाने पर चटखने लगता है।

असुन्दर और कुरूप जोड़ियाँ भी प्रेम का अमृत लेकर हँसी-खुशी तथा मौज-मस्ती की जिन्दगी जीती देखी जा सकती हैं। जबकि रूपवान और सुन्दर दम्पत्ति भी प्रेम के अभाव में क्लेशपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश देखे जाते हैं। प्रायः तो सुन्दर दम्पत्ति जो शारीरिक आकर्षण से आकृष्ट होकर विवाह बन्धन में बँधते हैं असफल जीवन जीने जीने लगते हैं। क्योंकि शरीर की सुन्दरता कुछ ही समय तक बनी रहती है और वे प्रेम भावनायें बढ़ाने की अपेक्षा अपना सौन्दर्य सुरक्षित करने की ओर ही अधिक प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे दम्पत्तियों के जीवन में दो-चार बच्चे होने पर नरक का-सा वातावरण बन जाता है क्योंकि तब सौन्दर्य चुक गया होता है और प्रेम-भावना का विकास न होने के कारण दोनों एक-दूसरे से जल्दी ऊब जाते हैं। कहने का अर्थ यह नहीं कि सभी सुन्दर जोड़ियाँ असफल दाम्पत्य-जीवन जीती हैं यदि वे भी प्रेम भावना के विकास की ओर ध्यान दें तो सुन्दरता के ढल जाने पर भी हँसी-खुशी का जीवन बना रह सकता है, क्योंकि बच्चे हो जाने पर तो दाम्पत्य-जीवन में और भी परिपक्वता तथा निखार आता है।

आत्मदान प्रगाढ़ प्रेम की आत्मा है। उसमें एक दूसरे की आवश्यकताओं का इतना ध्यान रहने लगता है कि अपनी आवश्यकताएँ एकदम उपेक्षणीय लगने लगती हैं। साथी की सुविधा का ध्यान रखना ही अपना धर्म बन जाता है, उसमें साथ-साथ जीने तथा साथ-साथ मरने की दृढ़ भावना बन जाती है। वहाँ मृत्यु भी आनन्दपूर्ण बन जाती है। सन् १९१२ में एक ऐसा ही दृश्य टाईटेनिक नामक अँग्रेजी जहाज पर देखने में आया था। समुद्री तूफान के कारण वह जहाज डूबने लगा। उसके कर्मचारी लाइफ बोटों द्वारा यात्रियों तथा आवश्यक सामान को बचाने लगे। उसी जहाज पर स्टास नामक दम्पत्ति भी यात्रा कर रहे थे। जहाज में इतना पानी भर गया कि दोनों में से एक को ही बचाया जा सकता था। स्टास ने अपनी पत्नी इसाडोरा को बचाने की सोची और इसाडोरा स्टास को लाइफबोट पर जाने के लिए जिद करती रही। अन्त में स्टास ने अपनी पत्नी को उठाकर लाइफबोट में बिठा दिया। जहाज डूबने को ही था इसाडोरा लाइफबोट से कूदकर अपनी पति के पास आ गई और बोली—"मैं अकेली जीकर भी क्या करूँगी ?" क्यों न हम दोनों साथ-साथ ही मृत्यु का वरण करें।" दोनों ने एक साथ जलसमाधि ली और मौत को अपने गले लगाया। इसाडोरा द्वारा कहे गये इन शब्दों में कितनी आत्मीयता, कितना प्रेम और कितनी भावना थी ?

विश्वास दाम्पत्य-प्रेम का प्राण है। पति-पत्नी को एक-दूसरे पर इतना प्रगाढ़ विश्वास होना चाहिए कि उसमें दुराव, छिपाव का कहीं कोई नाम भी न रहे। नव-दम्पत्तियों में, विशेषतः युवकों में अपनी पत्नी के प्रति सन्देह की भावना रहती है। पत्नी भी पति का यकायक विश्वास नहीं कर पाती। इसका कारण अपरिचय ही है। जैसे-जैसे पति-पत्नी एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में आते जायँ वैसे-वैसे सन्देह की सम्भावना को निर्मूल करते जाना चाहिए, उसे जड़ से ही उखाड़ फेंकना चाहिए। दुराव-छिपाव, दिखावटी और बनावटी व्यवहार की नीति जल्दी बदली जा सके, उतनी जल्दी बदल डाली जाय और परस्पर विश्वास उत्पन्न किया जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उदारता विश्वास का पोषक तत्त्व है। दाम्पत्य-जीवन में कई ऐसे अवसर भी आते हैं जब मन में कोई सन्देह पलता है और पति या पत्नी किसी अनजाने संकोच के कारण एक-दूसरे से कह या पूछ नहीं पाते। दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने में यह स्थिति बाधक है। सन्देह का अंकुर जब बढ़ने से रोका नहीं जाता तो वह घृणा और अविश्वास के वृक्ष के रूप में बदलने लगता है और जरा-जरा-सी बातों पर एक-दूसरे पर आक्षेप तथा छींटाकशी की प्रवृत्ति बल पकड़ती है। यह घृणा अविश्वास को इतना बढ़ा देती है कि विग्रह की स्थिति तक बन जाती है।

उचित तो यह है कि सन्देह का वातावरण ही न बनने दिया जाय। सन्देह उत्पन्न होता है पति या पत्नी से कोई बात छुपाने पर और किसी पक्ष को यदि सन्देह हो भी जाय तो सम्मानपूर्वक उसे दूसरे से पूछकर दूर कर लेना चाहिए। ये बातें परस्पर से ही सम्बन्धित हैं। इनमें न तो किसी मध्यस्थ की आवश्यकता रहती है और न किसी माध्यम की। घर कर गये तत्त्व और भी गड़बड़ी पैदा करते हैं। सद्भावनापूर्वक एक-दूसरे से पूछ लेना ही अपने सन्देह को दूर करने का एकमेव मार्ग है।

दुराव-छिपाव के अतिरिक्त उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी सन्देह का वातावरण बना देता है। पति, पत्नी के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और पत्नी, पति के लिए। सैद्धान्तिक रूप से तो इस तथ्य को हर कोई स्वीकार करता है परन्तु व्यवहार में यदा-कदा यह तथ्य भुलाया भी जाने लगता है। कई बार ऐसी स्थितियाँ भी बनती हैं जिसमें उपेक्षा, मनमुटाव भी पैदा कर देती, जैसे स्त्री बीमार है और पुरुष अपने काम-काज में इतना व्यस्त है कि उसे पत्नी के स्वास्थ्य की परवाह करने की फुरसत ही नहीं मिलती। फुरसत निकाली तो जा सकती है पर पति यदि स्त्री के स्वास्थ्य को हल्के रूप में लेता है तो वह स्थिति दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बना देती है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि पति-पत्नी एक-दूसरे के अभावों की पूर्ति और परेशानियों में सहायक की भूमिका लेकर जीवन संग्राम में उतरते हैं। फिर एक-दूसरे की उपेक्षा हो तो सन्देह का जन्म अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

दाम्पत्य-जीवन को स्वर्गोपम बनाने में भावनात्मक पक्ष महत्त्वपूर्ण होता है। भावनात्मक परिष्कार का अर्थ है पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ और सद्भाव सम्पन्न हों। पुरुष में पुरुषत्व के गुण हों और स्त्री में नारीत्व के तो कोई कोई कारण नहीं कि दाम्पत्य-जीवन में आनन्द की धारा न बहे। दाम्पत्य-जीवन के सभी क्रिया-कलाप, कार्यक्रम और योजनाएँ इन्हीं गुणों के आधार पर बनती या चलती हैं। पुरुषत्व का अर्थ है—शक्ति, साहस, सक्रियता और नियमितता तथा नारीत्व में कोमलता, मृदुलता, दयालुता, स्नेह, सौम्यता और सहानुभूति के गुण पूर्ण रूप से विद्यमान होने चाहिए।

पति-पत्नी में अनेक गुणों का समीहा स्थान हो तो प्रेम, विश्वास, आत्मीयता आदि परिमार्जन और परिवर्धन अपने आप होता रहता है तथा जीवन में घनिष्ठता भी अपने आप ही बढ़ती रहती है तथा उनके जीवन में आनन्द की कोई कमी नहीं रहती। एक बात का स्मरण और रखना चाहिए कि गल्तियाँ सभी से होती हैं। उनके कारण छोटी-छोटी बातों के लिए एक-दूसरे का झिड़कना, डाँटना, अपशब्द कहना या कोसना मूर्खता का चिह्न है। इन बातों से दाम्पत्य-जीवन की जड़ें धीरे-धीरे रेदी जाती हैं।

सफल दम्पत्ति ही सुयोग्य सन्तानें उत्पन्न कर सकते हैं। सद्गुणी नागरिकों का जन्म सुयोग्य सन्तानों के रूप में होता है। अतः दाम्पत्य-जीवन की सफलता या असफलता पूरे समाज को प्रभावित करती है। इसलिए न केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक दृष्टि से वरन् सामाजिक दृष्टि से भी गार्हस्थ्य योग की साधना अनिवार्य है।

पति होने का अहंकार त्यागिये

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष में शरीर संरचना को छोड़कर उनमें कोई भेद नहीं रखा है। शरीर-संरचना में भी भेद इसलिए है कि दोनों के सहयोग से सृष्टि क्रम चलता रहे। संरचना सम्बन्धी इस अन्तर को छोड़ दें दोनों के जीवन, श्वाँस, हृदय, मस्तिष्क, बुद्धि, आँखें, माँस, मज्जा और रक्त, अस्थियाँ एक जैसे तत्त्वों से ही बनी हैं। प्रकृति प्रयोजन के लिए और आत्मिक आदान-प्रदान के लिए दोनों का साथ रहना आवश्यक है और यह आवश्यकता पति-पत्नी के सम्बन्धों के रूप में पूर्ण होती है, जो क्रमशः मन, मस्तिष्क, हृदय, अन्तःकरण तथा प्राणों की एकता के साथ सघन होते जाते हैं। कहना नहीं होगा कि प्रेम और आत्मीयता का पाठ मनुष्य परिवार से ही आरम्भ करता है और परिवार उसके लिए इतना आवश्यक है कि उसके बिना किसी व्यक्ति का जीना तक दूभर हो जाता है।

परिवार बसाने और पति-पत्नी चुनने की सुविधा प्रकृति ने मनुष्य को ही दी है। इसे एक सामाजिक समझौता भी कहा जा सकता है और आत्मिक विकास का एक उपक्रम भी। कहने को कुछ भी कह लिया जाय पर इस क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक-दूसरे का कार्य तथा दायित्व बाँटने एवं उन्हें तत्परतापूर्वक निभाने की परम्परा चली। एक व्यक्ति निर्वाह के साधन जुटाता है, तो दूसरा उन्हें उपयोग करने लायक बनाता है। एक बाहर का क्षेत्र सम्हालता है तो दूसरा घर की आन्तरिक व्यवस्था देखता है। यहाँ तक बात समझ में आती है और उचित भी है कि सुविधा की दृष्टि से दोनों एक-एक क्षेत्र सम्हालें। परन्तु उसका क्या औचित्य है कि इन्हीं में से किसी एक आधार को लेकर कोई पक्ष अपने को बड़ा समझने लगे तथा दूसरे का शोषण करे ? किन्हीं विशेष परिस्थितियों में कोई अपने साथी के उत्तरदायित्वों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्वयं निभाने में आनाकानी करे, संकोच करे और हेठी समझे, यह विकृति नहीं तो और क्या है ?

स्त्री के जिम्मे घर के काम रहते हैं। रसोई बनाना, सफाई करने, बच्चों की देखभाल करने जैसे कार्य गृहस्थी कार्यक्षेत्र में आते हैं। पुरुष ने अपने लिए बाहर से कमाना, नौकरी-धन्धा करना, खेतीबाड़ी सम्हालने जैसे काम ले रखे हैं। परन्तु यह विडम्बना पुरुषों के मामले में ही अधिकतर देखने को मिलती है कि आवश्यकता पड़ने पर घर के अन्दरूनी कामों की देखभाल करने में अपनी हेटी समझने लगते हैं। महिलाएँ तो आये वक्त पर पुरुष के क्षेत्र में भी काम कर लेती हैं। निर्वाह के साधन जुटाने में भी लगती देखी जा सकती हैं, परन्तु पति बीमारी की अवस्था में भी पत्नी से ही अपेक्षा करता है कि वह उसे खाना बनाकर खिलाए और बच्चों को सम्हाले।

जिस आधार पर सहचरत्व धर्म का पालन करने के लिए दायित्व जीवन आरम्भ किया गया था, यह रीति-नीति उस आधार पर ही कुशल होता है। विवाह के समय वर-वधू दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि हम एक-दूसरे के प्रतिं कर्त्तव्यनिष्ठ रहेंगे, एक-दूसरे का सहयोग करेंगे और प्रगति के पथ पर साथ-साथ अग्रसर होंगे। पर आगे चलकर यह प्रतिज्ञा उस समय अधूरी और लूली-लंगड़ी रह जाती है, जब पुरुष पत्नी का काम सम्हालने में छोटापन अनुभव करता है और उसी प्रकार उसे पुरुष के क्षेत्र में प्रवेश करने से भी रोकता है।

सुविधा की दृष्टि से कार्यक्षेत्र का विभाजन अपने दायित्वों और कर्त्तव्यों की अन्तिम सीमा रेखा मान लेना किसी भी दृष्टि से वांछनीय नहीं कहा जा सकता। सचाई तो यह है कि पति और पत्नी दोनों मिलकर ही एक सम्पूर्ण इकाई, समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं और दोनों एक-दूसरे के सहयोग से ही आगे बढ़ सकते हैं। सुविधा की दृष्टि से कामों का विभाजन कर लेना और बात है परन्तु ऐसी कोई कठोर मर्यादा नहीं बनाई जा सकती कि अमुक कार्य केवल पति ही करे और अमुक कार्य के लिए पत्नी पर ही निर्भर रहा जाए। औचित्य का तकाजा यह है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर दोनों एक-दूसरे के सहयोगी और पूरक बनने का सिद्धान्त चरितार्थ करें और वफादार तथा कर्त्तव्यनिष्ठ साथी की तरह एक-दूसरे के कामों में मदद करें, चाहे वे कार्य घर के हों या बाहर के हों।

देखा गया है कि स्त्रियाँ तो फिर भी अपने कर्त्तव्य से पीछे नहीं हटतीं। अपने को घर का मुखिया स्वामी समझने के अहंकार से पुरुष ही दूसरे कामों में हाथ लगाना अपनी अवमानना समझता है। जैसे पत्नी को परिवार के सभी सदस्यों के लिए भोजन तैयार करना पड़ता है, लेकिन कभी वह बीमार पड़ जाती है तो पति खुद भोजन बनाने की अपेक्षा पत्नी से ही यह आशा करता है कि वह बीमारी की हालत में खाना बनाकर दे या वह होटल में खाने की बात सोचेगा अथवा घर में बच्चे हों तो उनके हाथ से भोजन बनवाने का विचार करेगा।

पत्नी के होते हुए पति महाशय को अपने हाथ से खाना बनाने में संकोच लगता है। उसे चूल्हा फूँकने में शर्म आती है। सहज भाव से पत्नी ने किसी कारणवश पति को भोजन बनाने के लिए कह भी दिया तो पति महाराज इस तरह तुनक उठेंगे, जैसे उन्हें कोई बहुत ही गन्दा और नीच काम करने के लिए कह दिया हो। इस मनोभूमि का कारण केवल पति होने का अहंकार ही है, इसके सिवा कुछ नहीं अन्यथा पत्नी को अपना साथी सहचर मानने वाले ऐसे अवसरों पर कभी भी संकोच नहीं करते। प्राचीनकाल में तो यह व्यवस्था भी थी कि लड़कियों की भाँति ही लड़के भी पाक विद्या और गृहकला सीखते थे। गुरुकुलों के आचार्य अपनी पत्नी के साथ ही गुरुकुल के सभी बच्चों की देखभाल करते और भोजन बनाने से लेकर आश्रम की सफाई करने तक किसी भी काम में संकोच नहीं करते थे।

इस अहंकार के कारण पुरुष घर की आन्तरिक व्यवस्था में से शायद ही किन्हीं कार्यों में रुचि लेता हो भोजन बनाने की बात तो दूर रही, बच्चों को सम्हालने, बीमार की सेवा-सुश्रूषा करने तक के लिए पत्नी को ही नियुक्त किया जाता है। लेकिन जरूरत पड़ने पर पति उसके गीले कपड़े या उसके वस्त्र उठाकर रखने में भी नाक-भौं सिकोड़ते हैं। सेवा का क्या यही मूल्य चुकाया जाना चाहिए ? कहाँ तो पत्नी को गृहलक्ष्मी, अर्द्धांगिनी और सहधर्मिणी घोषित करते-करते नहीं अघाया जाता और कहाँ उसका छोटा-सा काम करने में भी संकोच या झिझक होती है।

कई बार तो यहाँ तक देखा जाता है कि स्त्रियाँ दिन-रात काम में लगी रहती हैं। उन्हें जरा भी अवकाश नहीं मिलता, दूसरी ओर पुरुष व्यर्थ आलस्य में पड़े रहने, मौज करने और ताश-शतरंज खेलने में ही दिन गुजार देते हैं। जबकि आवश्यक यह है कि यदि अपने पास समय हो तो उसे पत्नी के सहयोग में लगाया जाए ताकि उसका कार्य जल्दी पूरा हो और थकान, तनाव से जितना सम्भव हो सके उसे बचाया जा सके। लेकिन लोग काम-काज में सहयोग करना तो दूर रहा, पत्नी के प्रति सहानुभूति तक नहीं रखते, उल्टे अपने काम-काज, कार्यक्रमों से उसे परेशानी में डालते रहते हैं।

पति के इस अहंकार ने भारत में पत्नी को इतना क्षुद्र बना दिया गया है कि पतिव्रत के नाम पर वह बेचारी पति की बिना खरीदी गुलाम और बन्धुआ मजदूर बनकर ही रह जाती है। इस स्थिति को बदला जाना चाहिए और पुरुष को अपने पति होने का अहंकार छोड़कर पत्नी के साथ सच्चे सहयोगी, मित्र का व्यवहार अपनाना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मधुर दाम्पत्य के मूल आधार

परिवार एक छोटा-सा संसार है, जिसमें छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी सदस्य अपना भिन्न-भिन्न किन्तु महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सदस्यों में कई तरह के सम्बन्ध होते हैं। आपसी स्नेह-सद्भाव के बल पर परिवारों में स्वर्ग के वातावरण की सृष्टि होती है, तो उसके सृजन और विकास में पति-पत्नी के सम्बन्धों का भी बड़ा असर पड़ता है।

दाम्पत्य-सम्बन्ध पारिवारिक जीवन की रीढ़ होते हैं। उनमें सामंजस्य, मधुरता और तालमेल मिलाना उतना ही आवश्यक है, जितना कि किसी व्यवसाय-उद्योग में लगे साझीदार का आपसी सहयोग और एक-दूसरे से परामर्श कर कोई निर्णय लेने की रीति-नीति। व्यावसायिक क्षेत्रों में लगे साझेदारों को आपसी सहयोग और तालमेल इसलिए बनाये रखना पड़ता है कि उसी में उनका लाभ रहता है और उस सहयोग के आधार पर काम-काज भी सुचारु रूप से चलता रहता है। दाम्पत्य-जीवन में आपसी सम्बन्धों को मधुर और सौहार्द्रपूर्ण बनाये रखने की आवश्यकता अन्य कारणों से ही है। इसकी तुलना न तो किसी व्यवसाय से की जा सकती है और न ही दम्पत्ति को किन्हीं स्वार्थों के कारण एक साथ इकट्ठा हुआ बताया जा सकता है। खाना बनाने, कपड़े साफ करने और मकान को साफ-सुथरा रखने के लिए जीवन संगिनी का साथ किया जाय तो वह उसके निर्वाह की जिम्मेदारियाँ वहन करने तथा बच्चों को पालने के रूप में बड़ी महँगी कीमत चुका कर प्राप्त होता है। इसी प्रकार आर्थिक संरक्षण के लिए ही कोई स्त्री विवाह करे तो कठपुतली के समान स्वयं को पति के इशारों पर नाचने और तमाम तरह की दासता स्वीकार करने के रूप में उसको भी बड़ा महँगा प्रतिदान चुकाना पड़ता है।

स्पष्ट ही विवाह—पति-पत्नी का संग साथ दाम्पत्य-जीवन का आरम्भ मात्र स्वार्थ भावना के लिए नहीं किया जाता। उसके साथ एक-दूसरे की सेवा, परस्पर सहयोग, सहिष्णुता और उदारता जैसे आध्यात्मिक गुणों का अर्जन ही गृहस्थ साधना का मुख्य लाभ है। दाम्पत्य-जीवन में इन आदर्शों का समुचित ध्यान रखा जाय और अपने सम्बन्धों को उनके अनुरूप ढालने के लिए प्रयत्नशील रहा जाय तब तो परिवार में सुख-स्वर्ग की सृष्टि और आपसी सम्बन्धों में मधुरता, स्निग्धता बनी रहती है अन्यथा इन तत्त्वों की अपेक्षा होते ही दाम्पत्य सम्बन्धों में 'चटखाव आने लगता है।

कहा जाता है कि—"अधिकांश दम्पत्ति असफल पति-पत्नी हैं।" प्रश्न उठता है कि यदि असफल हैं तो यह सम्बन्ध टूट क्यों नहीं जाते ? टूट सकते थे, यदि भारतीय समाज में उस परम्परा को हेय दृष्टि से न देखा जाता तो और बने रहते हैं इसलिए कि असफलता को सफलता में बदलने का अवसर हर घड़ी उपलब्ध रहता है। यदि दाम्पत्य-जीवन की महिमा-गरिमा को प्रारम्भ से ही समझकर उसे महत्त्व दिया जाता रहे तो असफल होने का दुर्भाग्य नहीं देखना पड़ेगा और कदाचित् यह प्रतीत होता हो कि हमारे जीवन में विसंगतियाँ, मनमुटाव, तालमेल या सामंजस्य का अभाव दिखाई दे रहा है तो उन समस्याओं का समाधान करने के लिए समझदारी से काम लिया जा सकता है।

दाम्पत्य-सम्बन्ध में कटुता लाने वाले मुख्य कारणों में से एक है—दोनों में सामंजस्य स्थापित करने की प्रवृत्ति का अभाव। यह तो निश्चित है कि सभी मनुष्यों का सोचने-समझने का ढंग एक-सा नहीं रहता और फिर पुरुष तथा नारी में तो प्रकृति ने स्वाभाविक विशेषताएँ उत्पन्न की हैं। उनका सोचने-समझने का ढंग तो एक-सा होना और भी कठिन है। यदि नव-दम्पत्ति आरम्भ से एक-दूसरे को समझने और स्वीकार करने की नीति अपनायें तो पारिवारिक सम्बन्धों में आने वाले कटु प्रसंगों से बहुत कुछ मुक्त रहा जा सकता है।

अलग विचार, भिन्न रुचियों के कारण पति-पत्नी में मनमुटाव होता है, तो इसका कारण यह नहीं है कि यह भिन्नता दोष है। भिन्नता स्वाभाविक है। यदि दोष है तो वह है—सहिष्णुता का अभाव। एक-दूसरे पर अपनी इच्छाओं और विचारों का जबर्दस्ती आरोपण, अपनी संतुष्टि को प्रधानता देना। एक समाजशास्त्री के शब्दों में पारिवारिक विग्रहों का मूल कारण यह रुचि भिन्नता नहीं बल्कि स्वार्थ भावना की अधिकता है। परिवार का आदर्श है एक-दूसरे के लिए अपने स्वार्थ का अधिक से अधिक त्याग; जबकि समस्याग्रस्त दाम्पत्य-जीवन में पति-पत्नी अपनी माँगों की पूर्ति और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए ही अधिक आग्रहशील रहते हैं। यदि पति-पत्नी एक-दूसरे की भावनाओं का आदर करने लगें, स्वयं के सन्तोष की अपेक्षा साथी की आकांक्षाओं पर ज्यादा ध्यान देने लगें तो सम्बन्धों में प्रेम का जो अमृत बहने लगता है, उससे परिवार का वातावरण ही स्वर्गीय बनने लगता है।

आमतौर पर पति-पत्नी एक-दूसरे से असन्तुष्ट रहते हैं। वे यह सोचकर दुःखी होते हैं कि हमें अपनी रुचि और पसन्द का साथी नहीं मिला। कोई पति, पत्नी की कम शिक्षा, उसके साथ आया थोड़ा दहेज, ससुराल के अधिक प्रतिष्ठित न होने या पत्नी के सुन्दर न होने की बात सोच-सोचकर दुःखी होते रहते हैं। इसी प्रकार पत्नियाँ अपने पति के कठोर स्वभाव, अशिष्ट होने और कठोर नियन्त्रण करने की शिकायतें करती हैं और दुःखी बनी रहती हैं। यह मानकर चलना चाहिए कि पूर्ण रूप से निर्दोष या त्रुटि रहित व्यक्ति मिलना मुश्किल ही नहीं असम्भव-सा है। कमियाँ और कमजोरियाँ सभी में होती हैं। उन्हे नजर-अन्दाज तो नहीं किया जाना चाहिए, पर इतना असहिष्णु भी नहीं होना चाहिए कि उनके बारे में चिन्तन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते-करते ही हम अपनी मानसिक शान्ति को नष्ट करें और प्रेम में घृणा का विष घोलते रहें।

मधुर दाम्पत्य-सम्बन्धों के लिए एक आवश्यक शर्त है, एक-दूसरे को स्वीकार करना। न केवल स्वीकार करना वरन् एक-दूसरे के प्रति सम्मान और कृतज्ञता का भाव रखना। पति-पत्नी एक-दूसरे से असन्तुष्ट होते हैं, यह देखकर कि उन्हें अपनी कल्पना का साथी नहीं मिला। पति के मस्तिष्क में एक आदर्श नारी की कल्पना रहती है, उसी प्रकार पत्नी भी एक आदर्श पुरुष की कल्पना रखती है। वह कल्पना स्त्री या कल्पना पुरुष यथार्थ से बहुत दूर होते हैं, इसलिए वास्तविक जीवन में उन्हें अपने साथी के व्यक्तित्व में दोष ही दोष दिखाई देते हैं। इन दोषों के कारण मनमुटाव या घृणा का हल्का-सा भाव उत्पन्न होता है। परिणामस्वरूप सम्बन्धों में कड़ुआहट की विषवल्लरी उगने लगती है।

पति-पत्नी के सम्बन्धों में अनपेक्षित स्थितियाँ तब भी आती हैं, जब दोनों एक-दूसरे से अस्वाभाविक आशाएँ करने लगते हैं। उदाहरण के लिए पति चाहता है कि उसकी पत्नी उसे छोड़कर और किसी का विचार ही न करे, उसे ही सर्वाधिक महत्त्व दे। जबकि पत्नी के भी भाई हैं, बहिन हैं, माता-पिता हैं, ससुराल में ही और दूसरे स्वजन भी हैं। उनसे भी सम्बन्ध रखना पड़ता है और उनके लिए भी समय देना पड़ता है। भावुक पति जब देखते हैं कि उनकी पत्नी दूसरे स्वजनों पर ध्यान दे रही है, तो उसे अपनी उपेक्षा लगने लगती है। परिणामस्वरूप भ्रान्ति को लेकर मनमुटाव जैसे अवरोध आ खड़े होते हैं।

इसी प्रकार पत्नियाँ भी सोचती हैं कि उनका पति केवल उनका ही होकर रहे। उन्हीं के लिए वह अधिक से अधिक समय देता रहे और अधिक से अधिक रुपया भी खर्च करता रहे; जबकि पति के भाई-बहिन और माता-पिता से लेकर मित्र-परिचित भी हैं, जिनके साथ उसे सम्बन्ध निभाने पड़ते हैं। उनके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करना पड़ता है। जिन मित्रों ने आड़े वक्त ऋण उसे सहयोग देकर कठिनाइयों से उबारा है। उनके मित्र ऋण से उऋण होने के लिए स्वयं अपना कर्त्तव्य भी पूरा करना आवश्यक है; किन्तु पत्नी यह बात समझना नहीं चाहती और पति से यह अपेक्षा करती है कि वह पूर्व सम्बन्धों तथा अन्य कर्त्तव्यों की उपेक्षा कर उसे ही अपना सर्वस्व सौंप दे।

दाम्पत्य-जीवन के आरम्भ में ही इस तरह की स्थितियाँ आयें तब तो जल्दी ही खाई पैदा होने की सम्भावना और भी ज्यादा रहती है। पत्नी अपने माँ-बाप से जाकर यह शिकायत करती है कि वे अपने माँ-बाप और भाई-बहिनों को ही महत्त्व देते हैं और उसका कोई ध्यान नहीं रखते या उसकी उपेक्षा करते हैं। पति अपने माँ-बाप से शिकायत करता है कि वह इस घर के लोगों की अपेक्षा अपने मायके वालों को ज्यादा महत्त्व दे रही है। अभिभावक इन स्थितियों को सुलझे रूप में देखने की अपेक्षा पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर अधिक देखने लगते हैं। हरेक को अपनी बेटी या अपने बेटे का हित ही ज्यादा सूझता है और वे जाने-अनजाने दोनों के बीच खाइयाँ पैदा करने लगते हैं।

इस प्रकार का अनपेक्षित स्थितियों का कारण प्रायः पति-पत्नी की आत्म-केन्द्रित धारणा या आकांक्षाएँ होती हैं। कहा जा चुका है कि आजकल दाम्पत्य-सम्बन्धों में असफलता और विग्रह की स्थिति इसलिए नहीं आ रही है कि कोई पक्ष किसी का अपमान करता है या कोई बड़ी गल्ती करता है बल्कि ये स्थितियाँ किसी भी पक्ष की स्वार्थ प्रधान रीति-नीति से अधिक उत्पन्न होती हैं। दाम्पत्य सूत्रों में आबद्ध होते समय—विवाह संस्कार के समय प्रतिज्ञाएँ पढ़ी जाती हैं कि हम दो शरीर एक प्राण दो किनारे एक धारा और दो मन एक आत्मा बनकर रहेंगे। परन्तु यह प्रतिज्ञाएँ प्रतिज्ञा बनकर ही रह जाती हैं, जीवन और व्यवहार में नहीं उतर पातीं। गृहस्थ धर्म के साधन क्षेत्र में उतरने के बाद पति-पत्नी अपने व्यक्तिवादी हितों का आग्रह जरा भी ढीला नहीं करते तो तमाम कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं।

दाम्पत्य-सूत्रों में आबद्ध होते समय की गयी प्रतिज्ञाओं, ग्रहण किये गये व्रतों को जीवन में भी उतारने के लिए प्रयत्नशील रहा जाय तो दाम्पत्य-जीवन मधुर से मधुरतम होता चलेगा। इस सम्बन्ध में यह मानकर चलना चाहिए कि पति-पत्नी को सुख-दुःख साझे होते हैं, उनके सम्बन्धों का आरम्भ 'मैं' और 'तुम' को विसर्जित करने से होता है और 'हम' के रूप में परिणति होकर पूरा होता है। मनमुटाव, सम्बन्धों में बिखराव और एक-दूसरे के प्रति गलत धारणाएँ, अनुचित ग्रन्थियाँ तब बनने लगती हैं जबकि एक होकर जीने का एहसास खत्म होता जाता है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि इस व्रत को तोड़ने के लिए एक शब्द या छोटी-सी लापरवाही पर्याप्त होती है और पति-पत्नी क्षुद्र 'मैं' 'तुम' के अकेलेपन में सिमट-सिकुड़कर जीने लगते हैं।

पति-पत्नी के आपसी सम्बन्ध प्रेमपूर्ण रहें, इसके लिए आवश्यक है कि वे 'मैं' नहीं 'तुम' के हितों को प्रमुखता दें, एक-दूसरे पर गहरा विश्वास करें और उनमें एक-दूसरे के लिए त्याग तथा समर्पण की भावना हो। वे पूर्वाग्रहों और अपने संस्कारों को एक-दूसरे पर थोपें नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य-जीवन की सफलता सघन प्रेम पर निर्भर

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए इन दिनों शारीरिक स्वास्थ्य, सौन्दर्य, शिक्षा, समृद्धि को आधार मानने की परम्परा चल पड़ी है। सांसारिक जीवन को चलाने की दृष्टि से यह उपयोगी ही नहीं आवश्यक भी हो सकते हैं। इनके बिना गाड़ी चलेगी कैसे, अपनी, अपने कुटुम्ब और देश की उन्नति होगी कैसे ? किन्तु इस महत्त्वपूर्ण 'धर्म संस्कार' को यदि जीवन की असामान्य घटना के रूप में लिया जाये, जैसा कि वैयक्तिक आकांक्षाओं से अभिव्यक्त होता है, तो दाम्पत्य की सफलता के लिए भौतिक उपकरण उतने अनिवार्य प्रतीत नहीं होते। गहन आत्मीयता और पारस्परिक संवेदना के आधार पर अभावग्रस्त स्थिति में भी लोगों को हँसी-खुशी का जीवन जीते देखा गया है। पश्चिमी देशों में भारतीय कुटुम्ब प्रणाली को सर्वाधिक सफल बनाने वाली एक बहु प्रचलित कहावत है—**''हैपी ऐज पुअर इण्डियन विलेजर''** (निर्धन भारतीय ग्रामवासी के समान सुखी) वह इस तथ्य की स्पष्ट विभाजक रेखा कि मनुष्य अभावग्रस्त परिस्थितियों में भी सुखी और आनन्दित रह सकता है।

पर यह सम्भव एकमात्र पति-पत्नी के घनिष्ठ सम्बन्धों पर ही है। यदि भावनाओं से वस्तुतः एक-दूसरे के अर्धांग के रूप में वे जुड़े रहते हैं, उनमें प्रेम और आत्मीयता बनी रहती है तो भौतिक साधन तुच्छ से लगेंगे। बाह्य आकर्षण मिथ्या प्रतीत होंगे।

प्रेम और आकर्षण दो भिन्न तत्त्व हैं। शरीर के गठन, वय, स्वास्थ्य और सौन्दर्य के अनुपात से घटती-बढ़ती रहने वाली सत्ता का नाम आकर्षण है किन्तु वह प्रेम जो दाम्पत्य-जीवन में मधुरता का, कठिन परिस्थितियों में भी सघन आत्मीयता और कर्त्तव्यनिष्ठा का, आनन्द-आमोद और आह्लाद का संचार करता रहता है, वह एक आध्यात्मिक तत्त्व है जो कम कभी नहीं होता। जिसके लिए बाह्य सौन्दर्य और आकर्षण कोई अर्थ नहीं रखते। अन्तःकरण का सन्तोष ही उसे पालता है। इसलिये प्रेम को दाम्पत्य-जीवन की सफलता का मूल आधार माना गया है।

अपने खण्ड काव्य 'उर्वशी' में कविवर 'दिनकर' ने अन्तःप्रेम का बहुत ही हृदयस्पर्शी विवेचन किया है। वे लिखते हैं—नारी के भीतर एक और नारी विद्यमान रहती है, यह अगोचर और इन्द्रियातीत है। जब पुरुष शरीर के आकर्षणों और शारीरिक तृप्ति से ऊपर उठता है, उसके मन में समाने का प्रयत्न करता है, तब उसे ज्ञात होता है कि नारी वासना की नहीं भावनाओं से बनी प्रेम प्रतिमा है। इस स्थिति के लिए पुरुष का भी बाह्य पुरुष नहीं वह अन्तर्पुरुष जागना चाहिये, जिसके लिए भौतिक सुख की अपेक्षा आत्मिक शान्ति अधिक अर्थ रखती है। दाम्पत्य-जीवन सच पूछा जाये तो इस आत्मीय सघनता पर ही स्वर्गीय सुख का आधार बन पाता है, वह न हो तो विवाह को—मात्र काम चेष्टा को मर्यादित कर देने वाला संस्कार ही कहना पड़ेगा, जबकि उसमें सन्निहित शिक्षाएँ और आदर्श इतने महान हैं जो अन्तर्नारी और अन्तर्पुरुष की अभिव्यक्ति के बिना सार्थक ही नहीं होते।

इस समुन्नत अवस्था में सामान्य जीवन व्यापार बाधक नहीं होते; पर उन्हें उच्छृंखल प्रवृत्ति नहीं प्राकृतिक प्रेरणा के रूप में ग्रहण किया जाये तब। प्रकृति का यह नियम है कि जब मादा मातृत्व के लिए उल्लसित होती है तभी नर उसका अनुकरण करते हैं। पेड़-पौधों को भी जब तक पुष्पों में पराग नहीं आ जाता, तब तक निसेचन की कोई गतिविधियाँ दिखाई नहीं देतीं, जबकि उस अवस्था में भी परागण के सहयोगी माध्यम बराबर सक्रिय रहते हैं। मर्यादित और नियन्त्रित काम सेवन गृहस्थ तपोवन की आचार संहिता का उल्लंघन नहीं करते; पर यदि उसे अभीष्ट मान लिया गया तो उसी प्राकृतिक नियमानुसार तृष्णा निरन्तर बढ़ेगी और उसके दुष्परिणाम, अनाकर्षण, छिद्रान्वेषण के रूप में आये बिना रहेंगे नहीं। कवि वायरन ने लिखा है—स्त्री पूर्णतया प्रेम के लिए समर्पित है, (लव इज वूमन, स होल एक्जिस्टेंस) उसे यदि यह रस मिलता रहे, उसमें कृत्रिमता न आये तो वह साक्षात् कल्प-वृक्ष के समान है; पर यदि उसे कामिनी और रमणी के रूप में देखा जाता है तब उसके विष दंश की ही आशंका बनी रहेगी।

कुछ शारीरिक अवयवों के अतिरिक्त पुरुष और नारी में शरीरगत अन्तर कोई विशेष नहीं है तथा उसकी अन्तरंग रचना में प्रकृति ने ऐसे सूक्ष्म तत्त्वों का विकास किया है, जिससे वह भावनाओं की साकार प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित होती है। किसी वैज्ञानिक ने तो यहाँ तक कहा है कि उसके शरीर में एक विशेष भाव ग्रन्थि होती है, उससे निकलने वाले स्राव के कारण ही वह इतनी सलज्ज, संवेदनशील और कोमल अन्तःकरण होती है। स्वाभाविक ही है कि इस स्निग्धता को बचाये रखकर ही नारी को उसके भाव भरे अनुदानों की आशा की जा सकती है। कठोरता के कुठार से तो वह मुरझायेगी और उसका असर भी तमाम गृहस्थ पर पड़े बिना मानेगा नहीं।

प्रेम और सघन आत्मीयता दाम्पत्य-जीवन की सफलता के आधार हैं। उनका विकास सहयोग, समर्पण और त्याग के धरातल पर होता है। अपने देश की नारी इस दृष्टि से अपना पार्ट बाकायदा अदा करती है। अतएव अब यह पुरुष की जिम्मेदारी रह जाती है कि वह अपनी ओर से भी भावनाओं की अभिव्यक्ति में कंजूसी न बरतें, यदि स्त्री-पुरुष कर्त्तव्य के साथ भावनाओं से भी एक-दूसरे की ओर मुड़े रहें तो पूर्णता का वृत्त कभी टूटे ही नहीं। यदि ऐसा नहीं होता तो अविश्वास और सन्देह की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिस्थितियाँ पग-पग पर उठेंगी और दाम्पत्य-जीवन की मर्यादाओं को, अपेक्षाओं को नष्ट-भ्रष्ट करती रहेंगी।

मनुष्य जीवन में पग-पग पर संघर्षों के काँटे बिछे हैं, हर क्षण तनाव के साधन विद्यमान मिलते हैं, इन परिस्थितियों को एकाकी मनुष्य झेल नहीं सकता, किसी सहयोगी, साझीदार और अन्तरंग हितैषी की आवश्यकता होती है। यह स्नेह जितना खूबसूरती से धर्मपत्नी दे सकती है कोई अन्य नहीं; पर यह तभी सम्भव है जब दोनों के हृदय प्रेम-पुष्पों की सुवास और एक-दूसरे के लिए समर्पण की ऊर्जा से लबालव भरे हों। अपना साथी ही अपनी टाँग खींचे, जले और जलाये, उस पर नमक छिड़के तो इसे दुर्भाग्य ही माना जायेगा। ऐसे विवाहों की, गृहस्थ की सार्थकता भी क्या रह जायेगी। गृहस्थ में ही स्वस्थ परम्पराएँ न होंगी तो समाज कहाँ से विकसित हो सकेगा ? दाम्पत्य-जीवन की अन्तरंग आत्मीयता, परस्पर सघन स्नेह, आपसी निष्ठायें न केवल गृहस्थी को स्वयं बनाती हैं; अपितु समाज में भी देव परम्पराओं का विकास होता है, इस बात को समझकर हर गृहस्थ को अपने दाम्पत्य-आधार को सुदृढ़ बनाने की बात सोचनी और रूपरेखा तैयार करनी चाहिए, उसे उखाड़ने की बात सोचना जातीय सर्वनाश से कम हानि नहीं होगी।

सुशिक्षितों का दाम्पत्य जीवन

अशिक्षित लड़कियों की अपेक्षा शिक्षित लड़कियों का गृहस्थ जीवन अधिक मात्रा में असफल और विग्रहपूर्ण होते देखा गया है। उसका दुष्परिणाम कभी-कभी तो सम्बन्ध-विच्छेद या मरने-मारने जैसी दुर्घटना में घटित होते देखा गया है। जबकि अशिक्षित वर्ग की महिलाएँ ससुराल की भली-बुरी परिस्थितियों में किसी प्रकार अपना तालमेल बिठा लेती हैं और गाड़ी का पहिया लुढ़काती रहती हैं।

इस दुःखद वास्तविकता के लिए शिक्षा को दोष नहीं दिया जा सकता। वरन् उन महत्त्वाकांक्षाओं को दिया जाता है जो पढ़ाई के दिनों चुपके-चुपके उभरती रहती हैं। योरोप की स्वच्छन्दता, सज्जा एवं सुविधा वहाँ की अपनी परिस्थिति है। उसका स्वरूप मध्यवर्ती परिवारों में बन पड़ेगा, इसकी सम्भावना तभी रहती है जब संयुक्त परिवार में न जाना पड़े। मियाँ-बीबी दो ही हों और दोनों को हास-परिहास के लिये पर्याप्त समय और धन उपलब्ध होता हो। पर प्रचलित परिपाटी में वैसा बन नहीं पड़ता। बड़े शहरों की बात जाने दीजिए सामान्य गाँव-कस्बों में स्त्री-पुरुषों का खुलेआम हास-परिहास भी खलता है। कुटुम्बियों के बीच तो लाज-पर्दे की प्रथा का पालन सभी को अभीष्ट होता है।

लड़कों के सम्बन्ध में भी यही बात है। पाश्चात्य देशों के दाम्पत्य जीवन का स्वरूप जब वे पुस्तकों में पढ़ते, चित्रों के देखते और फिल्मों में उसके प्रत्यक्ष झाँकी देखते हैं, तो उनका अपरिपक्व मन भी उसी प्रवाह में बहने लगता है। विवाह के पूर्व उनकी भी कल्पनाएँ ऐसी होती हैं। पर प्रचलन और व्यवहार को क्या कहा जाये ? जो अभी योरोप को गले नहीं उतार पाया और नवदम्पत्ति को वैसे व्यवहार की छूट नहीं देता जैसा कि वे बरतना चाहते हैं।

यह भी होता है कि पति-पत्नी में से एक उस प्रकार की स्वच्छन्दता का इच्छुक हो और दूसरा लोक-लाज को ध्यान में रखते हुए उस पक्ष में अपनी सहमति न दे।

दमित इच्छाएँ आक्रोश के रूप में उभरती हैं। भावुक और जोशीले लड़की-लड़के विवाह को नीरस बनाने का दोष एक-दूसरे पर मढ़ते हैं। परिवार वालों को बाधक मानकर उनसे खिंचते हैं और अलग घर बसाने की बात सोचते हैं या फिर आपस में ही लड़-झगड़ कर तुनक बैठना प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते हैं। आरम्भ में ही पड़ी हुई यह गाँठ अन्ततः कुछ ऐसा ही परिणाम उत्पन्न करती है, जिसे दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जा सकता है।

सुशिक्षितों का विवाह इस प्रकार दुर्भाग्यपूर्ण बने—इसमें दोष किसे दिया जाये ? शिक्षा को कोसना व्यर्थ है। कारण उस पाश्चात्य जीवन दर्शन को समझा जाना चाहिए, जो चरित्र विकास की तरह दाम्पत्य जीवन को भी उसी ढाँचे में ढला होने के लिए आकर्षित या उत्तेजित करता है। जबकि गरीबी और परिपाटी के कारण वैसा व्यवहार बन पड़ना आज की स्थिति के मध्यवर्ती परिवारों में सम्भव नहीं।

विवाह योग्य लड़की-लड़कों को समझना और समझाया जाना चाहिए कि पाश्चात्य देशों जैसी न यहाँ सम्पन्नता है, न परिपाटी, न सुविधा। ऐसी दशा में उस रँगीले अनुकरण की सम्भावना पर आरम्भ में ही सोच लिया जाना चाहिए। अभिभावकों और साथियों का कर्त्तव्य है कि वे विवाह की तैयारी करने वालों को यही समझाएँ कि संयुक्त परिवार प्रणाली के रहते पति-पत्नी स्वच्छन्दता नहीं अपना सकते और उन्हें समूचे परिवार का ध्यान रखना होगा और इस प्रकार अपना चिन्तन और व्यवहार ढालना होगा जो यहाँ की परिस्थितियों में उपयुक्त सिद्ध हो सके। इसे समझने-समझाने पर ही सुशिक्षितों का विवाह सफल और सुखमय हो सकता है। एकाकी रहने में भी यहाँ सुविधाएँ कम और असुविधाएँ अधिक हैं।

दाम्पत्य-जीवन के स्नेह-सूत्र टूटने न पायें

पति-पत्नी के बीच स्नेह-सद्भाव जितना अधिक होगा, दाम्पत्य-जीवन उतना ही माधुर्यपूर्ण और सुदृढ़ होगा। अन्तःकरण को स्पर्श करने और बाँधने वाले ये सूत्र जहाँ जितने ढीले होंगे, वहाँ उतनी ही अधिक कटुता होगी। परस्पर जीवनपर्यन्त एक-दूसरे को बाँधे रहने वाले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्नेह-सद्भाव रूपी सूत्रों के टूटते ही दाम्पत्य-जीवन के बिखरते-टूटते देरी नहीं लगती। पति-पत्नी के बीच आपसी मतभेदों, मनोमालिन्य और मनमुटावों में भौतिक कारणों अथवा अभावों की उतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका नहीं होती जितनी कि सद्भाव से रहित व्यवहार की होती है। जिसकी चरम परिणति सम्बन्ध-विच्छेदों, तलाक की घटनाओं के रूप में होती है।

सुमधुर सम्बन्ध के लिए पति-पत्नी के बीच कैसा तारतम्य होना चाहिए ? इसका एक आश्चर्यजनक किन्तु प्रेरक और अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है वनस्पति जगत के दो वृक्षों ने। समझा यह जाता है कि वृक्ष-वनस्पतियाँ संवेदनाओं से रहित होती हैं पर इस मान्यता को गलत सिद्ध किया है देहरादून के एक वृक्ष युगल ने, देहरादून के वन अनुसंधान संस्थान में गाइनोकार्डिया ओडोरेट नामक दो सुन्दर वृक्ष हैं, जो अपनी विलक्षणताओं के लिए बहुचर्चित बने हुए हैं। इनमें से एक वृक्ष नर है और दूसरा मादा। दैनिक पत्र पंजाब केसरी ३० दिसम्बर, १९८१ के अंक में प्रकाशित समाचार के अनुसार १५ वर्ष पूर्व एक भयंकर तूफान आया। वन अनुसंधान केन्द्र में लगे उपरोक्त दो वृक्षों में से नर-वृक्ष उखड़कर गिर पड़ा। उससे १०० मीटर की दूरी पर ही मादा-वृक्ष भी खड़ा था। तूफान का तो उसके ऊपर प्रभाव नहीं पड़ा पर तीस वर्षों तक दोनों हमजोली की तरह पति-पत्नी की भाँति एक साथ रहते आये थे। तूफान से नर वृक्ष के गिरते ही मादा वृक्ष पति वियोग के आघात को सहन न कर सका। बिना किसी कारण वह मुरझाने लगा। अनुसंधान केन्द्र के वैज्ञानिकों ने कारण ढूँढ़ने की कोशिश की पर कुछ भी पता न चल सका। वृक्ष किसी प्रकार के रोग से ग्रसित न था और न ही किसी तरह के पोषण का अभाव था। मादा वृक्ष को बचाने के लिए वैज्ञानिकों ने हर सम्भव उपचार और प्रयास कर डाले पर असफल रहे और देखते ही देखते मादा वृक्ष पति वियोग की व्यथा-वेदना में झुलसकर सूख गया।

कुछ माह पूर्व केन्द्र में काम करने वाले कर्मचारियों ने देखा कि वृक्ष जहाँ गिरा था, वहाँ उसकी कुछ जड़ें भूमि के नीचे दबी रह गयी थीं। उनमें से कोपलें फूटने लगीं। वह वृक्ष पुनर्जीवित हो उठा। वैज्ञानिकों को यह देखकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि मादा वृक्ष जो दीर्घकाल तक सूखा खड़ा था, नर के जीवित होते ही उसमें भी हरियाली आने लगी। कुछ ही माह में पूरा वृक्ष सजीव हो उठा। अब दोनों ही वृक्ष हरे-भरे दिखायी दे रहे हैं। उनमें शीघ्र ही फल आने की भी सम्भावना है। सबसे अचम्भित करने वाला तथ्य यह है कि एक वृक्ष को जब कभी भी कोई रोग होता है, ठीक उसी प्रकार के लक्षण उसी समय दूसरे वृक्ष में भी परिलक्षित होने लगते हैं।

संस्थान के वैज्ञानिकों ने इस आश्चर्यजनक तथ्य पर लम्बे समय तक खोजबीन की। उनका निष्कर्ष है कि दोनों वृक्षों के बीच तारतम्य जोड़ने वाले ऐसे कुछ अदृश्य संवेदनात्मक सूत्र विद्यमान हैं, जो परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इन वृक्षों का प्रत्यक्ष स्थूल जीवन भी उन सूक्ष्म संवेदनाओं द्वारा परिचालित है। इन दो वृक्षों का प्रणय प्रसंग समीपवर्ती क्षेत्र में चर्चा का विषय बना हुआ है। इस घटना से वैज्ञानिक समुदाय यह सोचने पर विवश हुआ है कि वृक्ष-वनस्पतियों को जो भी स्नेह, प्यार की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि मनुष्य जाति को।

वृक्ष होकर भी आपसी रिश्ते के प्रति इतने अधिक संवेदनशील सहिष्णु हो सकते हैं तो मनुष्य को तो और भी अधिक सद्भावना का परिचय देना चाहिए। दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच कैसे सम्बन्ध होने चाहिए। यह प्रेरणा और शिक्षा इन वृक्षों से भी ली जा सकती है।

छोटी-छोटी बातें बड़ा रूप ले लेती हैं

दाम्पत्य-जीवन का आधार दो आत्माओं का परस्पर आकर्षण और साहचर्य है, यह बात जानते-कहते तो सब हैं, पर अन्तःकरण तक यह तथ्य बैठता कम ही लोगों में है, सुख और शान्ति की कामना तो प्रत्येक को होती है, परन्तु इस कामना को साकार रूप कैसे दिया जाय ? इसका विचार तथा स्मरण करने और तदनुसार आचरण करने के स्थान पर, जब ध्यान इस ओर अटकने लगता है कि जीवन साथी से हमें अभीप्सित सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो रही है, इसका सम्पूर्ण दोष इसी पर है, मुझ पर किंचित मात्र नहीं, तब रोष-क्षोभ, जलन-खीझ का एक ऐसा क्रम शुरू हो जाता है, जो समाप्त होता ही नहीं दीखता।

यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि अशान्ति के बीज तो आपस की नासमझी में, एक-दूसरे के प्रति सद्भाव भरी आत्मीयता की कमी में छिपे होते हैं और उन्हें ढूँढ़ा थोपा दूसरे पर जाता है। इसलिए यह सदैव स्मरण रखा जाना चाहिए कि दाम्पत्य-जीवन कोई पका-पकाया वृक्ष नहीं है, जिसे हिलाते ही मधुर-स्वादिष्ट फल झरने लगें अपितु यह ऐसा उद्यान है, जिसका निर्माण रख-रखाव, साज-सँवार स्वयं ही करते रहना होता है तभी जीवन सुरभित हो पाता है। इस कल्पवृक्ष को पहले स्वयं ही खाद-पानी देकर बाड़ लगा कर संरक्षण करते हुए बढ़ने देना होता है तभी उससे आनन्द, उल्लास की मनचाही उपलब्धि हो पाती है। जब तक दाम्पत्य-जीवन को एक साधना मानकर न चला जायेगा, उससे कोई भी सिद्धि सम्भव होने की नहीं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिस प्रकार किसी भी अन्य साधना में या निर्माण में छोटी-छोटी बातें भी ध्यान में रखनी होती हैं। वैसे ही दाम्पत्य-जीवन में भी। भवन का मानचित्र कितना ही उत्कृष्ट बना लिया जाय और उसके निर्माण के लिये धन भी चाहे पर्याप्त जुटा लिया जाय, किन्तु यदि सुयोग्य इंजीनियर या शिल्पवेत्ता की अथवा किसी अन्य अनुभवी की देख-रेख में उसे नहीं बनवाया गया, यहाँ तक कि रेत या गारे के ही अनुपात में गड़बड़ी हो गई, तो दीवालें कुछ ही दिनों में दरकती दिखेंगी। सीमेंट का पलस्तर ठीक भी रहा, पर उसके बाद अपेक्षित सावधानी नहीं बरती गई और बच्चों को उसमें तत्काल उछल-कूद मचाने दिया गया याकि उस पर तेज धूप पड़ने दी गई और उसे अपेक्षित आर्द्रता नहीं पहुँचने दी गई, तो उसका उखड़ना निश्चित है। अच्छे बीज और समुचित खाद-पानी के बावजूद यदि पौधे की बाड़ लगाकर रख वाली नहीं की गई तो गाय-बैल या भैंस-बकरी जैसे किसी अपने ही पालतू पशु का मुँह उस पर आठ-दस दिन में एक बार ही पड़ते रहना पर्याप्त है, वह कभी वृक्ष न बन सकेगा।

दाम्पत्य-जीवन के प्रारम्भ में ऐसी ही सतर्कता की आवश्यकता होती है क्योंकि यही वह अवधि होती है, जहाँ एक ओर पति-पत्नी दोनों में एक-दूसरे के प्रति प्रबल संवेदना की सघनता एक विलक्षण सुख और उमंग भरी सिहरन का कारण बनती है, वहीं अतिशय कोमलता भरी भाव-प्रतिक्रिया का भी। यह प्रतिक्रिया छोटी-छोटी बातों से ही प्रतिकूल रुख भी ले सकती है और इतने भर की ही तो देर है, काल-क्रम से यही प्रतिकूलता का प्रारम्भ आपसी खाई, कटुता, विषाक्तता और विलगाव में जाकर समाप्त होता है। इसलिए नव-दम्पतियों को विशेषकर उन छोटी बातों के प्रति सतर्कता बरतनी चाहिए, जो प्रचलन-वश सामान्य मानी जाती हैं, पर प्रभाव की दृष्टि से असामान्य होती हैं। इनमें से मुख्य हैं वधू द्वारा बात-बात में मायके की मुखर प्रशंसा और प्रकारान्तर से ससुराल पर कटाक्ष, वर द्वारा वधू के मायके की छोटी-छोटी बातों की मीनमेख निकाल कर विनोद के बहाने उपहास, पड़ौसियों की चुगली पर कान धरना और भड़क उठना तथा वधू के प्रत्येक काम की नुक्ताचीनी में पति की भी सहमति या मौन रह जाना आदि।

इन छोटी बातों पर सदैव ध्यान रखा जाना चाहिए। विवाह के बाद वधू को 'मुँह दिखाई' की रस्म चलती है। अक्सर महिलाओं में वधू के मुँह देखने का चाव जितना रहता है, उससे अधिक जिज्ञासा वधू के साथ आये सामान का मुँह देखने की होती है। कुछ महिलायें जान-बूझकर और कुछ स्वभाववश, दुलहन के सामने ही उस सामान पर टीका-टिप्पणी कर देती हैं। जिन्हें सर्वत्र छिद्र और प्रवंचना ही देखने का रोग लग चुका है, ऐसी महिलाएँ दुलहन के सोने के कर्णफूलों या हार को भी 'इमिटेशन' या पीतल कहने में भी हिचकती नहीं, सो भी कानाफूँसी करते हुए, इस लहजे में कि बहू सुन भी ले और वे सुनाना नहीं चाह रहीं, यह आभास भी दे जायें कई तो स्वरों और भाव-भंगिमाओं के उतार-चढ़ाव तथा अपनी नाटकीय क्षमता के साथ ऐसा अभिनय करेंगी, मानो दूल्हा बेचारा बुरी तरह ठग लिया गया हो।

प्रत्येक समझदार दुलहन ऐसी कुटिलताओं को समझती है। वह इनसे विचलित नहीं होती। उसे तब अवश्य मार्मिक व्यथा होती है, जब पतिदेव भी ऐसी बातों के प्रभावों के आते और ऐठते-खींजते दिखते हैं। प्रत्येक गम्भीर-चित्त युवक को ऐसी बकवासों के प्रति सदैव कठोरतापूर्ण अवहेलना का भाव रखना चाहिए। साथ ही एकान्त में पत्नी को प्रेमपूर्वक यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि ऐसी टिप्पणियों के प्रति उसका रुख क्या है?

नये वातावरणों में नववधू की अनुभूतियाँ अनौखी हीं होती हैं। वह अत्यधिक संवेदनशील रहती हैं ऐसे समय उसके प्रति किया गया व्यवहार उस पर गहरी छाप छोड़ता है, यह सदा स्मरण रखना चाहिए, भले ही वधू उस समय मुँह से चुप रही आती है, परन्तु उसका मन अत्यधिक क्रियाशील और आन्दोलित रहता है। पति महोदय को उस समय उसकी कमियों की भी तीखी आलोचना न करनी चाहिए। यदि उससे भोजन स्वादिष्ट नहीं बन सका है, तो तत्काल माँ, भाभी या बहिन के भोजन से तुलना नहीं कर डालना चाहिए। भोजन का विशेष उल्लेख यहाँ इसलिए करना आवश्यक है कि कितनी भी कुशल दुलहिन हो, उसे रसोई का कितना भी अभ्यास हो, पतिगृह के रसोईघर में काम करने की कहे जाने पर उसका हृदय निश्चित ही थोड़ा अधिक तेज धड़कने लगता है।

अतः प्रारम्भ में ही अनावश्यक संकोच न कर, पूछ लेना अच्छा रहता है। आखिर सास-ननद या जिठानी तो अब अपने ही हैं, कोई गैर नहीं। पति एवं ससुराल-पक्ष वालों की भी यह जिम्मेदारी है कि रसोई में यदि बहू से कोई भूल हो ही जाय, तो उसका सामूहिक उपहास न करके उसे अकेले में समझा-बता दिया जाय।

नववधू को जो सतर्कता आवश्यक है, वह यह है कि पति गृह की पड़ौसिनें कई महिलाएँ भी ऐसी हो सकती हैं, जो अकेले में उसके पति का ऐसा कुछ चित्रण करें मानो नववधू को बहुत ही सजग रह कर पति महोदय को दूसरी महिलाओं के सम्पर्क से बचाना है अन्यथा उनका कुछ ठिकाना नहीं। ऐसी बातों के प्रति पूर्णतः उपेक्षा-भाव आवश्यक है अन्यथा यही छोटी-छोटी बातें मन में जड़ें जमा कर अविश्वास, सन्देह, असुरक्षा की भावनाएँ बढ़ातीं तथा आगे चलकर हिस्टीरिया जैसे रोगों तक का आधार बनती या फिर किसी पूजा-पाठ मन्त्र-तन्त्र के सहारे पति को वश में रखने की प्रेरणा देकर अन्ध-विश्वासों के अग्नि कुण्ड में ढकेलती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अतः पति-पत्नी दोनों को ऐसी छोटी-छोटी बातों के प्रति भी लापरवाही नहीं रखनी चाहिए और न ही उनकी उपेक्षा करनी चाहिए। दाम्पत्य जीवन का सहचरत्व सतत जागरूकता से ही सफल होता है। दो संवेदनशील चेतन प्राणी एक-दूसरे की भावनाओं-संवेदनाओं के प्रति जब पूरी तरह जागरूक रहेंगे, तो स्वाभाविक ही उनका ध्यान इन आघातों के प्रति भी अवश्य ही जायेगा, जो बात-बात में, दर्प, कर्कशता, अवमानना या रुक्षता की अभिव्यक्तियों के कारण दूसरे पक्ष को पहुँचाये जाते रहते हैं। जिस प्रकार इनका सम्मिलित प्रभाव एक दिन विस्फोटक रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार इन छोटी-छोटी बातों के प्रति जागरूक रहकर एक-दूसरे के प्रति कोमलता भरी घनिष्ठता, आत्मीयता भी धीरे-धीरे प्रगाढ़ होकर आनन्द के अक्षय स्रोत का रूप धारण कर लेती है। इसीलिए छोटी प्रतीत होने वाली बातें भी उपेक्षणीय नहीं मानी जानी चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन में प्रसन्नता अक्षुण्ण रहे

दाम्पत्य-जीवन बिताने के लिए युवक-युवतियों में जो लालसा होती है, उसमें प्रत्यक्षतः कामुकता की पूर्ति और परोक्षतः सघन आत्मीयता की अभिलाषा काम कर रही होती है। इन दोनों का परिपोषण होते रहने पर पति पत्नी से और पत्नी पति से संतुष्ट रहती पाई जाती है।

कामुकता की पूर्ति मात्र यौनाचार से नहीं होती। उसका अवसर यदाकदा आवे तो आकर्षण रहता है अन्यथा खुली छूट रहने पर उसकी उपयुक्तता घट जाती है और वह चिन्ह-पूजा बनते-बनते भारभूत बन जाती है। कामुकता का परिपोषण हास-विलास, गुदगुदी और तिरछी नजर भर से हो जाता है। मधुर मुस्कान, झूठे ताने-उलाहने भर से इस प्रयोजन की पूर्ति होती रहती है। कुशल पति-पत्नी अपने साथी की प्रकृति को परखते हुए जीवन में समरसता बनाये रहने वाली छेड़-छाड़ करते रहते हैं। नवीनता इस दिशा में सभी को सुहाती है। ऐसे ही कुछ उपभास-उपचार ढूँढ़ते और कार्यान्वित करते रहने से कामुकता की सहज पूर्ति होती रहती है।

जिन दाम्पत्य सम्बन्धों में उदासी, उपेक्षा या व्यस्तता भरी रहती है, वे एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान होते हुए भी वह ताजगी या उमंग उत्पन्न नहीं कर पाते, जिसकी तथ्यतः कोई आवश्यकता न होने पर भी मानसिक संरचना की दृष्टि से असाधारण आवश्यकता है। इस खेल-खिलवाड़ में एकान्त का कुछ समय ऐसे ही व्यर्थ बर्बाद होता दीखता हो, तो भी उसके लिए समय निकालते रहना बुद्धिमानी है। काम-कौतुक की इतने भर से पूर्ति हो जाती है और शारीरिक क्षरण विलम्ब से होता रहे तो भी कुछ हर्ज नहीं होता।

प्रेम होता तो आन्तरिक और आत्मिक है, पर उसका परिचय सामान्य बुद्धि को दिलाने के लिए निकटता की आवश्यकता पड़ती है। भोजन करके, टहलने जाने, काम-काज में हाथ बँटाने, ताश खेलने जैसे प्रसंगों में साथ-साथ बैठने और हँसने, बात करने का अवसर मिलता है, यह प्रेम-प्रदर्शन का आवश्यक अंग है। गम्भीर प्रकृति अन्यत्र सभी जगह मनुष्य के भारी-भरकम होने का चिन्ह है, पर प्रेम-प्रसंग में वह बालकों जैसी खेल-खिलवाड़ बनने पर ही प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है।

वार्तालाप में एक-दूसरे के कार्यों की प्रशंसा का पुट रहना चाहिए। ऐसे प्रसंगों में कई बार छोटे-मोटे घरेलू उपहार देना भी उत्साह को और बढ़ा देता है। कष्ट, चिन्ता, भारी मनःस्थिति में सहानुभूति प्रकट करना भी प्रेम प्रदर्शन का चिन्ह है। भारी मन हल्का बनाने के लिए अच्छा तरीका यही है कि चिन्ता, खिन्नता, अप्रसन्नता का प्रसंग बदलकर किसी हल्के-फुल्के विषय पर वार्तालाप का सिलसिला चला दिया जाय। इसका अर्थ यह नहीं कि पारिवारिक समस्याओं पर कभी विचार ही न किया जाय और उनका समाधान ही न खोजा जाय। यह कार्य साथी के सहज मुद्रा में होने की स्थिति में किया जाय।

पति दिन भर के कामों से थका, जिस-तिस से उलझता हुआ घर आता है। उसे आशा होती है कि पत्नी की सान्त्वना भरी मुस्कान से मन हल्का होगा। ठीक इसी प्रकार पत्नी भी बच्चों की लड़-झगड़, स्वयं की अस्वस्थता, परिवार वालों के दुर्व्यवहार, वस्तुओं के अभाव आदि कारणों से कम खिन्न नहीं होती और ऐसी मनःस्थिति में होती है कि पति के आते ही सारे गुबार एक साथ उगल दे। इस अवसर पर अपनी-अपनी कठिनाइयों के उगलने में उतावली करने की अपेक्षा अच्छा यही है कि वह समय प्रसन्नता और सहानुभूति के लिए सुरक्षित रखा जाय और किसी खट्टी-मीठी अनुभूति भरी बात कर मन हल्का किया जाय। इसके लिए थोड़ा धैर्य रखना चाहिए और अनुकूल अवसर आने पर गम्भीर प्रसंगों पर हल्के मन से चर्चा की जाय। समाधान उसी स्थिति में सही निकलते हैं।

दाम्पत्य प्रेम का सन्तति पर प्रभाव

पति-पत्नी के आपसी घनिष्ठ एवं सच्चे प्रेम का बहुत ही गम्भीर प्रभाव बालकों के स्वास्थ्य, वर्ण एवं संस्कारों पर होता है। जो स्त्री-पुरुष हृदय से एक-दूसरे को प्रेम करते हैं और एक-दूसरे की सुविधाओं का ध्यान रखते हैं, उनके अन्तःकरण आपस में पूरी तरह मिल जाते हैं। जिस प्रकार उत्तम खाद और उत्तम पानी के मिलने से सुन्दर हरे-भरे पौधे उगते हैं और उनकी भीतरी-बाहरी सुन्दरता देखने ही योग्य होती है, उसी प्रकार पति और पत्नी का निष्कपट प्रेम सम्बन्ध होने पर बालकों का शरीर और मन परिपुष्ट हो जाता है।

डाक्टर जान कावेन के अनुभव में एक ऐसा बालक आया, जो बहुत छोटी उम्र का होने पर भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मशीनों के काम में बहुत अच्छी जानकारी और दिलचस्पी रखता था। उन्होंने उसके पिता से पूछकर मालूम किया कि जिन दिनों वह बालक अपनी माता के पेट में था तब उसका पिता इन्जीनियरिंग सम्बन्धी एक कार्य में बड़ी तत्परता से लगा हुआ था, वह जब काम पर से लौटकर आता तो अपनी गर्भिणी स्त्री से भी उसी सम्बन्ध की वार्तालाप करता-कराता, तदनुसार बालक की प्रवृत्ति भी उसी ओर झुकी हुई थी।

डाक्टर फाउलर के कुछ अनुभव बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं, वे अपनी पुस्तक में लिखते हैं—मैं एक दिन घूमने जा रहा था कि रास्ते में दो बहुत ही तन्दुरुस्त और सुन्दर बालकों को देखा। मेरी इच्छा उनके सम्बन्ध में अधिक जानने की हुई। तलाश करता हुआ उनके घर पहुँचा और उनके माता-पिता से उत्तम सन्तान प्राप्त करने के कारणों के सम्बन्ध में पूछताछ की। मालूम हुआ कि वे इस सम्बन्ध में किसी विशेष नियम का पालन नहीं करते, केवल उन दम्पत्ति में अत्यधिक प्रेम है। दोनों ने आपस में कभी किसी को कटु शब्द नहीं कहा और न कोई किसी से नाराज हुआ। इसी गुण के कारण उन्हें उत्तम सन्तानें प्राप्त हुईं।

इन्हीं डाक्टर साहब के इलाज में एक ऐसा लड़का आया जो बहुत ही कमजोर और बुद्धिहीन था। उसकी माता यद्यपि बहुत तन्दुरुस्त और चलते पुर्जा थी, फिर भी ऐसी सन्तान क्यों उत्पन्न हुई, इससे डाक्टर साहब को आश्चर्य हुआ, उन्होंने इस स्त्री से पूछताछ की तो मालूम हुआ कि दाम्पत्य प्रेम के अभाव के कारण ऐसी सन्तान हुई, उस स्त्री के साथ उसके पति की सदा अनवन बनी रहती थी।

इसी तरह की एक और कन्या को उन्होंने देखा जो बड़ी ही डरपोक और रोनी सूरत की थी। युवती होने पर भी उसे सांसारिक कार्यों की ओर बिल्कुल रुचि न थी। सदा एकान्त में रहती और बाइबिल पढ़ा करती, कोई जरा भी कुछ कह देता तो आँसू नाक पर आ जाते। पूछने पर उसकी माता ने बताया कि जब यह लड़की गर्भ में थी तो उसका पति सदा उससे झगड़ता और रुलाता रहता था। माता दुःखी होकर एकान्त में पड़ी रहती और अपने दुःखी चित्त को धार्मिक गाथाएँ पढ़कर शान्त करती रहती थी। यही सब गुण उस कन्या में भी आ गये।

डाक्टर डे. का यह मत है कि माता-पिता के आपसी प्रेम में जितनी अधिक घनिष्टता होगी, बालक उतना ही अधिक उत्साही, स्फूर्तिवान और तेजस्वी होगा। कारण यह है कि गर्भ पलता तो माता के पेट में है, परन्तु उसका मूल बीज पिता के शरीर से आता है, इसलिए माता के द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तुएँ ही उसके लिए पर्याप्त नहीं हैं। मनुष्य स्थूल ही नहीं है। उसका जितना भाग स्थूल दिखाई पड़ता है, उसकी सूक्ष्मता उससे हजार गुनी अधिक है। मनुष्य की गुप्त शक्तियाँ सूक्ष्म लोक से प्राप्त होती हैं। चूँकि बालक माता के बन्धन में होता है, इसलिए वह अपने योग्य सूक्ष्म तत्त्व उसी से प्राप्त कर सकता है, जिससे माता-पिता की विद्युत शक्ति आकर्षण रखती हो। यों तो माता के पास अन्य स्त्री-पुरुष भी रहते हैं, परन्तु आकर्षण केवल आन्तरिक प्रेम के द्वारा ही होता है। स्त्री का यदि अपने पति से पूर्ण प्रेम है, तो अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा पति के सूक्ष्म तत्त्वों को खींचकर उदरस्थ बालक को देती रहेगी। इसी प्रकार यदि पति का पत्नी से अधिक स्नेह है, तो वह अपने तत्त्वों को उसकी ओर फेंकता रहेगा। इस प्रकार के सूक्ष्म आकर्षण द्वारा बालक उन शारीरिक और मानसिक वस्तुओं को प्राप्त कर लेता है, जिसकी उसे आवश्यकता है। पिता द्वारा यह गुण इसलिए आसानी से प्राप्त हो सकते हैं कि गर्भ अपने मूल स्थान की वस्तुओं का अभ्यासी होता है। शुक्र कीट जो अब गर्भ का रूप धारण किये हुए हैं, अपने उद्गम स्थान को भूल नहीं गया है। जिस प्रकार बछड़ा अपनी माता का दूध आसानी से पी लेता है और माता उसके लिए अधिक दूध निकाल देती है, इसी प्रकार पिता के तत्त्वों से ही गर्भ का अधिक मात्रा में मानसिक पोषण होना सम्भव है।

स्त्री-पुरुष में प्रेम की घनिष्ठता होने पर ही यह सूक्ष्म वस्तुयें प्राप्त हो सकती हैं। यदि ऐसा न हो और इसके विपरीत दम्पत्ति में अनवन या उदासीनता रहती हो, तो गर्भ का पूरा पोषण नहीं हो पाता और जिस प्रकार भोजन मिलने पर पानी न मिलने या पानी मिलने पर भोजन न मिलने से अपूर्णता रहती है—पेट नहीं भरता और सन्तोष नहीं होता, उसी प्रकार पिता के तत्त्वों के अभाव में बालक शारीरिक और मानसिक संगठन अपूर्ण रह जाता है। चाहे उसके शारीरिक अंग देखने में पूरे भले ही प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तव में उसके अन्दर बहुत-सी दुःखदायी त्रुटियाँ रह जाती हैं, जो कि बड़े होने पर प्रकट होती हैं।

डाक्टर बेवर कहते हैं कि—"स्त्री पुरुषों का उदासीनता या उपेक्षापूर्वक जीवन बिताना सब दृष्टिकोणों से हानिकर है, उससे तो यही अच्छा है कि वे विवाह ही न करें। स्त्री-पुरुष आपस में अधिकाधिक प्रेम बढ़ाकर केवल अपने शरीरों की उन्नति करते और जीवन को सुखमय ही नहीं बनाते हैं, वरन् उत्तम सन्तान भी उत्पन्न करते हैं। मैंने तीन सौ से अधिक परिवारों की गुप्त जाँच की है और इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि प्रेमी दम्पत्तियों ने ही उत्तम शरीर और बुद्धि वाली सन्तानें उत्पन्न की हैं। चालीस परिवार मेरी जाँच में ऐसे आये, जिनमें स्त्री-पुरुषों में अनबन रहा करती थी। इनके तीन-चौथाई बच्चे बड़े बेढंगे, बेहूदे, अंग-भंग, दुर्बल और मूर्ख थे। जो बच्चे अच्छे थे, वे भी प्रेमी दम्पत्तियों की सन्तान की अपेक्षा कहीं नीचे दर्जे के थे।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निस्संदेह बालकों पर माता-पिता के सच्चे प्रेम का असाधारण रीति से उत्तम प्रभाव पड़ता है। जिन्हें स्वस्थ, सुन्दर, दीर्घजीवी, तेजस्वी और सद्गुणी बालकों की इच्छा हो उन्हें दाम्पत्य प्रेम की घनिष्टता एवं पवित्रता अधिकाधिक मजबूत बनानी चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता के रहस्य

दाम्पत्य-जीवन के सुख और सफलता का आधार शिक्षा नहीं है, धन भी नहीं है। यदि किसी की ऐसी मान्यता हो तो उन्हें इसे बदल डालना चाहिए। आज के शिक्षितों में जितना पारस्परिक वैमनस्य, मनमुटाव और सम्बद्ध-विच्छेद की घटनायें घट रही हैं, उनसे यह सिद्ध हो चुका है कि सुखी दम्पत्ति का होना शिक्षा पर निर्भर नहीं है। धन पर भी नहीं है क्योंकि वह केवल आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मात्र है। आवश्यकतायें पूरी होती चलें तो पारस्परिक आत्मीयता के बन्धन मजबूत बने रहेंगे, इस बात का कुछ निश्चय नहीं है।

सफल दाम्पत्य जीवन के लिये परिष्कृत भावनायें और परिमार्जित दृष्टिकोण आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव मिलते हों, एक-दूसरे के लिए आत्मदान की भावना हो तो अल्प साधन, कम शिक्षा और स्वल्प सौन्दर्य वाले दम्पत्ति भी मस्ती का, हँसी-खुशी का जीवन जी सकते हैं। विवाहों में जो कर्मकाण्ड, आदर्श और संस्कार डाले जाते हैं, उनका उद्देश्य भावनात्मक दृष्टि से स्त्री और पुरुष को चारों ओर से खींचकर एक केन्द्र बिन्दु पर लाना ही होता है। जिन घरों में उन आदर्शों पर अमल(होता है, वहाँ आमोद-प्रमोद, ह्रास-विलास का जीवन सदैव उभरता हुआ रहता है। उन घरों में स्वर्ग की-सी परिस्थितियों का रसास्वादन किया जाता रहता है।

प्रेम सौन्दर्य पर आधारित नहीं है, उसके लिये मनुष्य की भावनायें चाहिये। अमेरिका के प्रसिद्ध कमाण्डर एण्ड्रयू जैकसन तथा रेचल की प्रेम-गाथा विश्व विख्यात है। कहते हैं रेचल अपढ़ और सामान्य रूप वाली थी जब जैक्सन उस समय के इने-गिने रूपवान व्यक्तियों में था। आत्म-निष्ठा के कारण वह सदैव रेचल के प्रेम-पाश में बँधा रहा।

प्रारम्भ में कुछ दिनों तक प्रायः स्त्री-पुरुषों में प्रेम रहता है, किन्तु धीरे-धीरे जब एक-दूसरे का स्वभाव प्रकट होने लगता है और एक-दूसरे की इच्छा के अनबूझ बर्ताब नहीं होता, तो आकर्षण घटने लगता है और कुछ दिन में तो गृहस्थ जीवन बिल्कुल नीरस हो जाता है। अधिक विलासिता तथा पारस्परिक हितों की रक्षा न करने के कारण भी यह स्थिति पैदा हो जाती है, इसलिये कुछ नियम ऐसे हैं, जिन्हें स्त्री-पुरुषों को समान रूप से पालन करते रहना चाहिए। उन पर चलकर दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

दाम्पत्य-जीवन स्त्री-पुरुष को अनन्यता का धार्मिक गठबन्धन है। इसकी सार्थकता तब है, जब दोनों में पूर्ण विश्वास रहे। अविश्वास से एक-दूसरे के प्रति घृणा उत्पन्न होती है। दुःख, छिपाव, दिखावट तथा बनावटी व्यवहार से कटुता पैदा होती है और दोनों एक-दूसरे के प्रति उदासीन हो जाते हैं। जरा-जरा-सी बात पर एक-दूसरे पर चारित्रिक सन्देह की छींटाकशी प्रारम्भ होती है, जो सारे प्रेम-भाव को समूल नष्ट कर डालती है। अविश्वास और सन्देह का प्रायः कोई आधार नहीं होता। अपनी दुर्बलता के कारण ही यह भ्रान्ति पैदा होती है। इसलिये यह आवश्यक है कि पति-पत्नी एक-दूसरे पर सन्देह न किया करें और यदि कोई ऐसी अवस्था आ जाय तो उसे सद्भावनापूर्वक बातचीत द्वारा साफ कर लिया करें।

उपेक्षा का भाव भी कभी-कभी सन्देह उत्पन्न कर देता है। स्त्री बीमार हो, उसे कुछ कष्ट हो और पुरुष उसकी परवाह न करे या पुरुष को कोई शारीरिक या मानसिक पीड़ा हो और औरत उसकी उपेक्षा करे तो यह स्थिति दाम्पत्य-जीवन को विषाक्त बनाती है। दोनों एक-दूसरे के अभावों की पूर्ति और परेशानियों से सहायक बनकर साथ-साथ जीवन संग्राम में उतरते हैं फिरएक की दूसरे के द्वारा उपेक्षा हो तो सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है।

मनुष्यों में प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होने का स्वभाव होता है। परमात्मा से काम निकालने के लिये भी लोग उनकी प्रशंसा करते हैं। स्तुतियों में यही तो होता है कि देवता के गुणों की प्रशंसा की जाती है। ठीक उसी प्रकार अपनी निन्दा सुनकर लोगों को दुःख होता है। पारिवारिक जीवन में इन दोनों बातों का सदैव ध्यान रखना चाहिये।

स्त्री और पुरुष दोनों एक-दूसरे को पारिवारिक सुखों का देवता समझकर उनकी प्रशंसा किया करें तो प्रेम और सहयोग की भावना पैदा होती है। कुछ न कुछ गुण हर किसी में होते हैं, उनकी प्रशंसा मुक्त कण्ठ से करनी चाहिये। इसमें हीनता या संकोच नहीं करना चाहिये। अपने जीवन साथी को उत्साहित करना, ऊँचा उठाना, सुसंस्कृत और सभ्य बनाना अपना लक्ष्य होना चाहिये। सम्भव है उसकी इन कामों में रुचि न हो पर प्रशंसा में वह शक्ति होती है, जो मनुष्य में कठिन से कठिन कार्य करने के लिए उत्साह भरती है।

इस बात के लिये स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों का उत्तरदायित्व अधिक है। उन्हें चाहिये कि वे स्त्रियों के खाना पकाने, सेवा करने, शिशु-पालन में सहयोग देने की प्रशंसा किया करें, इससे उनका हृदय उदारता और आत्मीयता से भरा रहता है। उनके प्रत्येक हाव-भाव से प्रेम-स्नेह और आत्मदान की भावना टपकती रहती है। इससे उल्लासपूर्ण वातावरण विनिर्मित होता है।

एक-दूसरे के रंग-रूप, माता-पिता या ससुराल वालों को लेकर कभी आलोचना नहीं करनी चाहिए। ऐसी कोई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भी बात न कहनी चाहिए जिससे अपने जीवन साथी की अपेक्षा किसी दूसरे का महत्त्व अधिक जान पड़ता है। लोग अपने आदमियों के सामने दूसरों की प्रशंसा करने में तो बड़े पटु होते हैं, पर चतुर जन वे होते हैं जो औरों के सामने भी अपने ही व्यक्तियों की प्रशंसा करते हैं।

इन बातों में जहाँ पुरुषों के दायित्व बड़े हैं वहाँ स्त्रियों को भी चाहिए कि वे अपनी इच्छाएँ, आवश्यकताएँ पतियों के सामने रखते समय घर की आर्थिक स्थिति का भी ध्यान रखा करें। जो इच्छायें पति न पूरी न कर सकते हों, उन्हें कभी भूलकर भी जबान पर नहीं लाना चाहिये।

तिरस्कार प्रगति और प्रसन्नता का विरोधी विचार है इससे बचना चाहिये। छोटी-मोटी गल्तियाँ प्रायः हर किसी से होती रहती हैं, उन्हें लेकर अपने जीवन साथी को झिड़कना, डाँटना, कोसना, अपशब्द कहना, गाली देना मूर्खता का चिन्ह है। इससे दिल टूट जाता है और सहयोग करने की भावना नष्ट हो जाती है।

दाम्पत्य-जीवन का सुख प्राप्त कीजिए

गृहस्थ जीवन में जितने भी सुख हैं, वे सब दाम्पत्य जीवन की सफलता पर सन्निहित हैं। दाम्पत्य-जीवन सुखी न हुआ तो अनेक तरह के वैभव होने पर भी मनुष्य सुखी, सन्तुष्ट तथा स्थिरचित्त न रह सकेगा। जिनके दाम्पत्य जीवन में किसी तरह का क्लेश, कटुता तथा संघर्ष नहीं होता वे लोग बल, उत्साह और साहसयुक्त बने रहते हैं। गरीबी में भी मौज का जीवन बिताने की क्षमता दाम्पत्य-जीवन की सफलता पर निर्भर है, इसे प्राप्त किया ही जाना चाहिए।

वैवाहिक जीवन की असफलता में आर्थिक, सामाजिक और संस्कारजन्य कारण भी होते हैं, किन्तु मुख्यतया—मनोवैज्ञानिक व्यवहार की कमी के कारण ही दाम्पत्य-जीवन असफल होता है। वस्तुओं का अभाव परेशानियाँ जरूर पैदा कर सकता है, किन्तु यदि पत्नी में पूर्ण प्रेम हो तो गृहस्थ जीवन में स्वर्ग तुल्य सुखोपभोग इसी धरती पर प्राप्त किए जा सकते हैं। दुःख का कारण केवल अनास्था और त्रुटिपूर्ण व्यवहार ही होता है। इसे सुधार लें तो दाम्पत्य-जीवन शत-प्रतिशत सफल हो सकता है।

सुखी दाम्पत्य का आधार है, पति-पत्नी का शुद्ध सात्विक प्रेम। जब दोनों एक-दूसरे के लिए अपनी स्वार्थ भावना का परित्याग कर देते हैं, तब हृदय परस्पर मिले-जुले रहते हैं। प्रेम में अहंकार का भाव नहीं होता है। त्याग ही त्याग चाहिए विशुद्ध प्रेम के लिए। एक-दूसरे के लिए जितने गहन तल से समर्पण की भावना होगी, उतना ही प्रगाढ़ प्रेम होना चाहिए। दाम्पत्य सुख प्राप्त करने के लिए प्रेम का प्रयोग करना चाहिए। यह प्रेम त्याग, भावना, कर्त्तव्य भावना से ही हो। सौन्दर्य और वासना का प्रेम, प्रेम नहीं कहलाता। वह एक तरह का धोखा है। जो इस जंजाल में फँस जाते हैं, उनका दाम्पत्य-जीवन बुरी तरह बेहाल हो जाता है। प्रेम आत्मा से करते हैं शरीर से नहीं, कर्त्तव्य से करते हैं कामुकता से नहीं। प्रेम में किसी तरह का विकार नहीं होना चाहिए। शुद्ध, निर्मल और निश्छल प्रेम से ही स्त्री-पति एक सूत्र में बँधे रह सकेंगे। सुखी जीवन का यह प्रमुख आधार है।

इस सद्भावना का प्रमुख शत्रु है, अपना विषमय मन; बड़ा शंकातुर होता है, वह बात-बात पर सन्देह प्रकट करता है। लिंग-भेद के कारण स्त्री-पुरुषों में कुछ न कुछ छिपाव होता ही है, हल्के स्वभाव के व्यक्ति इन बातों को अपनी कटुता का आधार बनाते हैं। तरह-तरह की कुत्सित कल्पनाओं से सन्देह के बीज बोते और वैमनस्य पैदा करते रहते हैं। स्त्री और पुरुष के बीच में एक विश्वास होना चाहिए। अविचलित विश्वास बना रहेगा तो दुर्भावनायें अपने आप दूर रहेंगी और दाम्पत्य-जीवन का वातावरण विषाक्त होने से बच जायेगा।

वेद भगवान का आदेश है कि स्त्री-पुरुष सदैव साथ-साथ रहें वे कभी विलग न हों। विलगता ही सन्देह उत्पन्न करती है। कुटिल शंकाओं की घात तभी लगती है, जब दाम्पत्य-जीवन में अलगाव बना रहता है, स्त्रियाँ कभी-कभी अपने माता-पिता के घर चली जाया करें। यहाँ तक तो उचित है, किन्तु सामूहिक जलसों, मेले-ठेलों, सिनेमाओं आदि में दोनों का साथ रहना आवश्यक है। इसी तरह दुःख-सुख के क्षणों में, संपद-विपद में भी एक साथ रहकर अपनी आत्मीयता अक्षुण्ण रखनी चाहिए। यह सम्मिलन होता ही इसलिए है कि सुख का सहयोगी और विपत्ति में धैर्य बँधाने वाला एक साथी चाहिए। भारतीय संस्कृति का यह नियम है कि यहाँ का कोई भी धार्मिक अनुष्ठान स्त्री-पुरुष दोनों के बिना पूरा नहीं होगा। यज्ञ कार्यों में भी यह साहचर्य आवश्यक माना गया है।

निस्वार्थ सेवा भाव हमारे प्रेम-बन्धनों को मजबूत बनाता है। सेवा मनुष्य का सबसे बड़ा कर्त्तव्य है। दाम्पत्य सुख की सुरक्षा में तो वह अपना विशिष्ट स्थान रखता है। सेवा का अर्थ जो यह लगाते हैं कि वह केवल सहधर्मिणी का ही कर्त्तव्य है, वे भूल में हैं। गृह कार्यों का संचालन स्त्री की सेवा है और धन कमाना तथा उससे अपनी पत्नी की इच्छायें पूर्ण करने में पुरुष की सेवा मानी जाती है। इन कर्मों का पालन कर्त्तव्य भावना से हो। दासियों की तरह स्त्रियों से अपनी शारीरिक सेवा लेना वज्रमूर्खता है। बीमारी या विवशता में तो ऐसा सम्भव है, किन्तु इसे प्रतिदिन का व्यापार बना लेना उन अविवेकियों का ही काम हो सकता है, जो दाम्पत्य-जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को एक पवित्र आध्यात्मिक सम्बन्ध न मानकर केवल जड़ता की दृष्टि से देखते हैं। ऐसे कर्म करें, तो फिर मनुष्य और पशुओं में अन्तर ही क्या रहेगा ?

मनुष्य की योग्यता बहुत ही स्वल्प है। कुछ न कुछ कमी सभी में होती है। छोटी-छोटी भूलों, त्रुटियों को तूल देकर जीवन भर के साथी के साथ बिगाड़ पैदा कर लेना मनुष्योचित कर्म नहीं। एक-दूसरे की आलोचना करना, खोटी सुनाना—ये आदतें निन्दनीय हैं, इनसे स्त्री-पुरुषों के बीच खाई पड़ जाती है, जिससे सारा जीवन दुःख, क्लेश और कठिनाइयों से ग्रसित हो जाता है। द्वेष-दर्शन का परित्याग करें और गुण-ग्राहकता का स्वभाव बनायें। छोटी-छोटी भूलें लोग बच्चों की क्षमा कर देते हैं, अपनी त्रुटियों को भी उदारतापूर्वक क्षमा किया जा सके तो पारस्परिक सौजन्यता बनी रह सकती है। जो गुण दिखाई दें, उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। जिस वस्तु से किसी को प्रसन्नता मिले, अपनी ओर से उसे पूरा करने की कंजूसी दिखाना उचित नहीं है। अपनी उदारता और क्षमा भावना के द्वारा अपने सम्बन्ध दृढ़तर करने का प्रयास दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए प्रत्येक दशा में अपेक्षित है।

सदैव गम्भीर बने रहना, खिन्न मन रहना और उदासीनता व्यक्त करना भी अच्छा नहीं होता। दाम्पत्य-जीवन में उल्लास भी हो, हास और विलास भी होना चाहिए। निरन्तर काम करते रहने से, श्रम और संघर्ष से जो थकान, ऊब और ढीलापन आता है, उसे समाप्त करने का एकमात्र उपाय है—मनोविनोद। पति काम से थक कर जब शाम को घर पहुँचे तो पत्नी का चेहरा हँसता हुआ, खिला-सा दिखाई दे। कुढ़ा हुआ रूप मानसिक थकावट को और भी बढ़ा देता है, इसलिए सदैव हँसमुख और मनोविनोदी भी होना चाहिए। मनोविनोद कर्म-मार्ग का एक अद्भुत संबल है, इससे थकावट दूर भाग जाती है, हम दूसरे दिन के लिए नई ताजगी और स्वस्थता प्राप्त कर लेते हैं। हँसना जीवन शक्ति को बढ़ाता है, शरीर में बल और साहस का संचार होता है। इसी तरह मृदुल हास से स्वभाव, शरीर और आत्मा दृढ़ होती है। इन्हें अपने जीवन में प्रयुक्त किए रहने से सम्बन्ध मधुर बने रहते हैं।

दैनिक जीवन में शिष्टाचार, छोटी-छोटी भावनाओं में प्रियजनों की इच्छाओं का समादर भी हो। किसी को छोटा, किसी को बड़ा मानने की आदत गलत है। आत्मीयता के परिष्कार के लिए सबको समान इज्जत और प्रेम मिलना अत्यन्त जरूरी है।

शरीर बल, चरित्र बल और मनोबल के द्वारा पुरुष अपना सौमनस्य स्थापित रखे तो सम्पत्ति और समाज की बहिर्मुखी कठिनाइयाँ दाम्पत्य-सुख को परास्त न कर पायेंगी। अपने जीवन में सदाशयता का प्रयोग करना है ताकि हमारा जीवन सुखी, सन्तुष्ट तथा उन्मुक्त बन सके। ऐसा कर सके तो यही समझें कि आपका स्वर्ग आपके घर में ही आने वाला है।

छोटे-बड़े, पढ़े-अनपढ़े, धनी-निर्धन का भेद-भाव रखना मनुष्य की सबसे बड़ी कुटिलता है। इससे मनुष्य की उच्छृंखल प्रकृति व्यक्त होती है। वन्य पशु तथा दाम्पत्य जीवन में बँधकर रहने वाली पक्षियों में ऐसा किसी तरह का भेद नहीं होता। मनुष्य में यह भेद-नीति उसके भौतिकवादी दृष्टिकोण के कारण होती है। स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध विशुद्ध रूप से आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत होना चाहिए। इस बात को याद रखने के लिए समय-समय पर धर्मानुष्ठान, तीर्थ यात्रा, पूजा-अर्चा के आयोजन भी होते रहें जिससे आत्मिक पवित्रता का परिष्कार हो। विवाह-जयन्ती मनाने का प्रचलन भी किया जा सकता है इसमें—एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान बने रहने का संकल्प दोहराते रहना चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता का मार्ग

अनेक परिवारों में स्त्री-पुरुषों के मध्य वैसे मधुर सम्बन्ध नहीं देखे जाते, जैसे कि होने चाहिए। अनेकों घरों में आये दिन संघर्ष, मनोमालिन्य और अविश्वास के चिन्ह परिलक्षित होते रहते हैं। कारण यह है कि पति-पत्नी में से एक या दोनों ही केवल अपनी-अपनी इच्छा, आवश्यकता और रुचि को प्रधानता देते हैं। दूसरे पक्ष की भावना और परिस्थितियों को न समझना ही प्रायः कलह का कारण होता है।

जब एक पक्ष दूसरे पक्ष की इच्छानुसार आचरण नहीं करता तो उसे यह बात अपना अपमान, उपेक्षा या तिरस्कार प्रतीत होती है, जिससे चिढ़ कर दूसरे पक्ष पर कटुवाक्यों का प्रहार या दुर्भावनाओं का आरोपण करता है। उत्तर-प्रयुत्तर, आकर्षण-प्रत्याकर्षण, आक्षेप-प्रत्याक्षेप का सिलसिला चल पड़ता है, तो उससे कलह बढ़ता ही जाता है। दोनों में से कोई अपनी गलती नहीं मानता, वरन् दूसरे को अधिक दोषी, प्रधान दोषी, प्रथम दोषी सिद्ध करने के लिए अपनी जिद को बढ़ाते रहते हैं। इस रीति से कभी भी झगड़े का अन्त नहीं हो सकता। अग्नि में ईंधन डालते जाने से तो और भी अधिक प्रज्ज्वलित होती है।

जो पति-पत्नी अपने सम्बन्धों को मधुर रखना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि दूसरे पक्ष की योग्यता, मनोभूमि, भावना, इच्छा, संस्कार, परिस्थिति एवं आवश्यकता को समझने का प्रयत्न करें और उस स्थिति के मनुष्य के लिए जो उपयुक्त हो सके, ऐसा उदार व्यवहार करने की चेष्टा करें तो झगड़े के अनेकों अवसर उत्पन्न होने से पहले ही दूर हो जायेंगे। हमें भली प्रकार समझ रखना चाहिए कि सब मनुष्य एक समान नहीं हैं, सबकी रुचि एक समान नहीं है, सबकी बुद्धि, भावना और इच्छा एक जैसी नहीं होती। भिन्न वातावरण, भिन्न परिस्थिति और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भिन्न कारणों से लोगों की मनोभूमि में भिन्नता हो जाती है। यह भिन्नता पूर्णतया मिट कर दिसरे पक्ष के बिल्कुल समान हो जावे, यह हो नहीं सकता। कोई स्त्री-पुरुष आपस में कितने ही सच्चे क्यों न हों, उनके विचार और कार्यों में कुछ न कुछ भिन्नता रह ही जायेगी।

अनुदार स्वभाव के स्त्री-पुरुष कट्टर एवं संकीर्ण मनोवृत्ति के होने के कारण यह चाहते हैं कि हमारा साथी हमारी किसी भी बात में तनिक भी मतभेद न रखे। पति अपनी स्त्री को पतिव्रत का पाठ पढ़ाता है और उपदेश करता है कि तुम्हें पूर्ण पतिव्रता, इतनी उग्र पतिव्रता होना चाहिए कि पति की किसी भी भली-बुरी विचारधारा, आदत, कार्यप्रणाली में हस्तक्षेप न हो। इसके विपरीत स्त्री अपने पति से आशा करती है कि पति के लिए भी यह उचित है कि स्त्री को अपना जीवन संगी, आधा अंग समझकर उसके सहयोग एवं अधिकार की उपेक्षा न करे। यह भावनाएँ जब संकीर्णता और अनुदारता से संमिश्रित होती हैं तो एक पक्ष सोचता है कि मेरे अधिकार को दूसरा पक्ष पूर्ण नहीं करता। बस यहीं से झगड़े की जड़ आरम्भ हो जाती है।

इस झगड़े का एकमात्र हल यह है कि स्त्री-पुरुष को और पुरुष-स्त्री को, अपने मन का अधिकाधिक उदार भावना से बरतें। जैसे किसी व्यक्ति का एक हाथ या एक पैर कुछ कमजोर, रोगी या दोषपूर्ण हो तो वह उसे न तो काट कर फैंक देता है न कूट डालता है और न उससे घृणा, असन्तोष, विद्वेष आदि करता है। अपितु उस विकृत अंग को अपेक्षाकृत अधिक सुविधा देने और उसके सुधारने के लिए, स्वस्थ भाग की भी थोड़ी उपेक्षा कर देता है। यह नीति अपने कमजोर साथी के बारे में बरती जाय तो झगड़े का एक भारी कारण दूर हो जाता है।

झगड़ा करने से पहले आपसी विचार-विनिमय के सब प्रयोगों को अनेक बार कर लेना चाहिए। कोई वज्रमूर्ख और घोर दुष्ट प्रकृति के मनुष्य तो ऐसे हो सकते हैं, जो दण्ड के अतिरिक्त और किसी वस्तु से नहीं समझते। पर अधिकांश मनुष्य ऐसे होते हैं, जो प्रेम भावना के साथ, एकान्त स्थान में सब ऊँच-नीच समझाने से बहुत कुछ समझ और सुधर जाते हैं। जो थोड़ा-बहुत मतभेद रह जाय उसकी उपेक्षा करके उन बातों को ही विचार क्षेत्र में आने देना चाहिए जिनमें मतैक्य है। संसार में रहने का यही तरीका है कि एक-दूसरे के सामने थोड़ा-थोड़ा झुका जाय और समझौते की नीति से काम लिया जाय। महात्मा गाँधी उच्चकोटि के आदर्शवादी और संत थे, पर उनके ऐसे भी अनेकों सच्चे मित्र थे जो उनके विचार और कार्यों से मतभेद ही नहीं विरोध भी रखते थे। यह मतभेद उनकी मित्रता में बाधक न होते थे। ऐसी ही उदार समझौतावादी नीति के आधार पर आपसी सहयोग-सम्बन्धों को कायम रखा जा सकता है।

इसका अर्थ कदापि नहीं है कि साथी में दोष, दुर्गुण हों, उनकी उपेक्षा की जाय और उन बुराइयों को अबाध रीति से बढ़ने दिया जाय। ऐसा करना तो एक भारी अनर्थ होगा। जो पक्ष अधिक बुद्धिमान, विचारशील एवं अनुभवी है, उसे अपने साथी को सुसंस्कृत, समुन्नत, सद्गुणी बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही अपने आपको भी ऐसा मधुर भाषी, उदार, सहनशील एवं निर्दोष बनाने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए कि साथी पर अपना समुचित प्रभाव पड़ सके। जो स्वयं अनेक बुराइयों में फँसा हुआ है वह अपने साथी को सुधारने में सफल कैसे हो सकता है ? सती सीता परमसाध्वी उच्चकोटि की पतिव्रता थीं, पर उनके पतिव्रता होने का एक कारण यह भी था कि वे एकपत्नी व्रतधारी अनेक सद्गुणों से सम्पन्न राम की धर्मपत्नी थीं। रावण स्वयं दुराचारी था। उसकी स्त्री मंदोदरी सर्वगुण सम्पन्न एवं परम बुद्धिमान होते हुए भी पतिव्रता न रह सकी।

जीवन की सफलता, शक्ति, सुव्यवस्था इस बात पर निर्भर है कि हमारा दम्पत्ति जीवन सुखी और सन्तुष्ट हो। इसके लिए आरम्भ में ही बहुत सावधानी बरती जानी चाहिए और गुण, कर्म, स्वभाव की समानता के आधार पर लड़के-लड़कियों के जोड़े चुने जाने चाहिए। अच्छा चुनाव होने पर भी पूर्ण समता तो हो नहीं सकती, इसलिए हर एक स्त्री पुरुष के लिए इस नीति को अपनाना आवश्यक है कि अपनी बुराइयों को कम करें, साथी के साथ मधुरता, उदारता और सहनशीलता का आत्मीयतामय व्यवहार करें, साथ ही उसकी बुराइयों को कम करने के लिए धैर्य, दृढ़ता और चतुरता के साथ प्रयत्नशील रहे। इस मार्ग पर चलने से असंतुष्ट दाम्पत्ति जीवनों में सन्तोष की मात्रा बढ़ेगी और संतुष्ट दम्पत्ति स्वर्गीय जीवन का आनन्द उपलब्ध करेंगे।

पत्नी सच्चे अर्थों में सहधर्मिणी बने

भारतीय मनीषियों ने हजारों बार इस तथ्य को दुहराया है कि पति-पत्नी एक प्राण दो शरीर हैं। उनकी स्वतन्त्र कोई सत्ता ही नहीं है। विवाह के बाद एक-दूसरे के व्यक्तित्व में घुल-मिल जाना, स्वभाव से रचपच जाना और एक-दूसरे की उन्नति के लिए भरसक प्रयत्न करते रहना ही दोनों की नियति है। दाम्पत्य जीवन को, गृहस्थ जीवन को एक योग साधना निरूपित करते हुए प्रतिपादित किया गया है कि वे गृहस्थ रूपी गाड़ी को दो पहियों के समान हैं और दोनों का ही सशक्त, सुदृढ़, मजबूत होना अनिवार्य है। दोनों इकाई व्यक्तित्व की दृष्टि से समानधर्मी और समान शक्तिशाली हों, तभी गृहस्थी रूपी गाड़ी सुचारु रूप से चलती रह सकती है और दोनों अपने व्यक्तित्व का उपयोग एक-दूसरे का विकास करने के लिए कर सकते हैं। तभी दाम्पत्य-जीवन सार्थक हो सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

किस प्रकार दाम्पत्य जीवन को सार्थक बनाया जाए ? इसके लिए उपरोक्त तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए ही पति-पत्नी आपस में अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करें। कर्त्तव्यों की दृष्टि से देखें तो प्रथम कर्त्तव्य पति का ही ठहरता है। उसे चाहिए कि वह अपनी पत्नी की सर्वांगीण उन्नति और विकास के लिए आवश्यक भरसक प्रयास करे। यह कर्त्तव्य इस दृष्टि से उभयपक्षीय भी बनता है कि पति अपनी पत्नी के अनुरूप और पत्नी अपने पति के अनुरूप सामंजस्य स्थापित करे तो सरलतापूर्वक निर्वाह हो सकता है और दाम्पत्य-जीवन सरल, सुखद व सार्थक बन सकता है।

यदि दोनों पक्ष समुचित रीति-नीति अपनाएँ, संतुलित दृष्टिकोण बरतें तो दोनों एक-दूसरे के लिए श्रेष्ठ सहयोगी बन सकते हैं। पत्नी अपनी योग्यता के आधार पर पति के स्वभाव में ऐसे परिवर्तन प्रस्तुत कर सकती है कि वह उचित-अनुचित का भेद कर सके, न्याय-अन्याय का विवेक कर सके तो कर्त्तव्य परायण और अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक हो सके। वह अपने व्यवहार और कार्यों के द्वारा पति की आदतों, व्यवहार, आचार-विचार और रहन-सहन में अपेक्षित परिष्कार और संतुलन ला सकती है। इसके लिए आवश्यक है कि पति-पत्नी अपने कार्य क्षेत्र के अनुसार एक-दूसरे के प्रति स्नेह, सद्भावना का, सहकार और सहयोग का रुख अपनाएँ। पत्नी का पति के प्रति सम्मान, ममता और सराहना का दृष्टिकोण अपनाना ही उसके प्रति सच्चे सहयोगी बनने की कसौटी है। पत्नी के नेतृत्व में गृहस्थी का संचालन और व्यवस्था इस प्रकार की है कि परिवार में एक स्वस्थ और पवित्र वातावरण बना रहे। ऐसा होने से परिवार में शान्ति और संतोष के भाव जाग्रत होकर प्रत्येक परिजन को सुख और आनन्द का रसास्वादन होता रह सकता है।

यह भी आवश्यक है कि पत्नी अपने पति के स्वभाव और उसकी प्रकृति से पूर्णतया परिचित रहे। इसी प्रकार वह अपने पति का हृदय जीतकर उसे हमेशा अपने अनुकूल बनाये रह सकती है। इसी प्रकार दोनों एक-दूसरे के एक स्नेह और विश्वास के भाजन बने रह सकते हैं। पति को अपने अनुकूल और वशवर्ती बनाये रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि वह पति के सम्बन्ध में कभी भी निन्दा और अपमान की प्रकृति न अपनाएँ। स्मरण रखा जाना चाहिए कि यह प्रकृति ही कटुता और परस्पर अविश्वास के कारणों को जन्म देती है। मृदु मुस्कान युक्त, मधुर वाणी और उचित व्यवहार पति को सुखी व संतुष्ट बनाता है, उसकी प्रतिक्रिया पति-पत्नी में अगाध विश्वास, अटूट स्नेह तथा मधुर सम्बन्धों के रूप में निश्चित रूप में- फलित होती है।

स्मरण रखा जाना चाहिए कि पति हमेशा पत्नी की ओर से अपनी प्रेम पिपासा की तृप्ति के लिए लालायित रहता है। बाहर के कामों से हारा-थका पति पत्नी की मधुर मुस्कान और स्नेहपूर्ण व्यवहार से अपनी सारी थकान भूल जाता है। यदि पत्नी पति की इस अपेक्षा को पूर्ण नहीं कर पाती तो वह एक प्रकार की नीरसता अनुभव करने लगता है। पत्नी को चाहिए कि इस तरह की स्थिति को उत्पन्न न होने दे। यदि इसके विपरीत, प्रतिकूलता का रुख अपनाया गया, अपेक्षित समझ-बूझ नहीं बरती गई तो पति में घर-गृहस्थी के प्रति एक उदासीनता का भाव भी उत्पन्न हो सकता है। इसलिए दाम्पत्य सम्बन्धों में इस तथ्य को गम्भीरतापूर्वक समझा जाना चाहिए और ध्यान रखा जाना चाहिए कि सम्बन्धों की दिशा किधर जा रही है।

इसे सौभाग्य ही कहा जाना चाहिए कि इन दिनों स्त्री शिक्षा का महत्त्व समझा जाने लगा है। भले ही स्थिति संतोषजनक न हो पर यह सही है। आज की नारी पुराने जमाने की अपेक्षा अधिक समझदार है। वह पिछली पीढ़ी की अशिक्षित, निरीह, अज्ञानी और परावलम्बी नारी की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, स्वतन्त्र, स्वावलम्बी जीवन जीने के योग्य हो गई है तथा उसमें कुछ ही सीमा तक सही थोड़ा-बहुत विवेक जागा है। इसके फलस्वरूप वह गृहस्थ जीवन में और समाज में एक नवीन चेतना भरने की दृष्टि से भी समर्थ व सक्षम होती जा रही है। जीवन की कटुता और अशान्ति नारी इस प्रगति चक्र से बहुत कुछ कम होने की सम्भावनाएँ बनी हैं।

लेकिन यह एक दोराहा भी है, जिसमें भटकाव की भी सम्भावना है। समझा जाता है कि यह चेतना बहुत कुछ पश्चिमी सभ्यता की देन है। बात एक सीमा तक सही भी है। किन्तु यदि नारी ने केवल पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव को ही ग्रहण किया, वहीं की विशेषताओं को अंगीकार किया और भारतीय जीवन मूल्यों को तिलांजलि दे दी तो हो सकता है, जीवन में कलह, कटुता, विच्छिन्नता और अशान्ति का ज्वालामुखी फूट पड़े, जैसा कि पश्चिमी परिवारों में आमतौर पर होता है। उचित तो यह है कि उन प्रभावों को भारतीय जीवन दृष्टि से संस्कारित किया जाय। अस्तु, पश्चिमी सभ्यता के अच्छे तत्त्वों को स्वीकार करते हुए अपनी जीवन दृष्टि की मौलिकता नहीं खोनी चाहिए। उसे अपने व्यक्तित्व की मौलिक विशेषता, समर्पण और आत्मत्याग की भावनाओ को सुरक्षित रखना चाहिए तथा स्वतन्त्रता के साथ-साथ विवेक का पुट भी रखना चाहिए।

कदाचित् पति-पत्नी में आपसी मनमुटाव उत्पन्न करने वाले कोई प्रसंग उपस्थित हो भी जाएँ, तो उन्हें चतुरतापूर्वक उड़ा देना चाहिए। जीवन की खुशी और सम्बन्धों में मधुरता बनाए रहने का यह एक अच्छा तरीका है। इसके लिए पति-पत्नी दोनों का दृष्टिकोण ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुलझा हुआ होना आवश्यक है। संतान के प्रति अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वों को निभाते हुए विवेकवान पत्नी के लिए अपने पति के प्रति सहयोगी और सदाशयतापूर्ण व्यवहार रखने में कठिनाई आने का कोई कारण नहीं है। जीवन में सरस मधुरता घोलने के लिए विचारशील और समझदार नारियाँ दोनों ही पक्षों का संतुलन चतुराई से साधे रहती हैं।

शास्त्रों ने नारी धर्म का उल्लेख करते हुए बताया है कि उसे अपने पति के प्रति मन, वचन, कर्म से पवित्र भावपूर्ण व्यवहार और आचरण करना ही श्रेयस्कर है इसका अर्थ यह नहीं है कि पति के लिए इस तरह का कोई निर्देश नहीं है। सही बात तो यह है कि जो अपेक्षाएँ पत्नी से या नारी से की गई हैं, वही अपेक्षाएँ पति से या पुरुष से भी की गई हैं। पर चूँकि प्रसंग पत्नी के कर्त्तव्यों या दायित्वों का चल रहा है, इसलिए यहाँ चर्चा इसी विषय में की जा रही है।

इसलिए न तो पत्नी को अपना व्यक्तित्व पति से अलग करके देखना चाहिए और न ही पति को पत्नी से स्वतन्त्र समझना चाहिए। शास्त्रों का स्पष्ट निर्देश है—दोनों एक-दूसरे की प्रसन्न भाव से सेवा करो, एक-दूसरे को सब प्रकार से संतुष्ट रखो और परिवार तथा समाज के विकास एवं संरक्षण में सहयोगी बनकर रहो वस्तुतः दोनों एक-दूसरे के प्रति शरीर, मन, प्राण, वाणी और कर्म से सहायक होकर ही अपना, निज का, सभी परिवार का व समाज और राष्ट्र का कल्याण कर सकते हैं।

पति-पत्नी के सहजीवन के आधार

जिस प्रकार पारिवारिक सहजीवन के लिए अधिकारों के साथ कर्त्तव्यों का निर्वाह जुड़ा रहता है और एक के बिना दूसरे का बना रहना सम्भव नहीं हो पाता, उसी प्रकार दाम्पत्य-जीवन के लिए भी यही तथ्य काम करता है।

यदि पति-पत्नी एक-दूसरे पर अधिकार तो जताएँ, किन्तु कर्त्तव्य निभाने में उपेक्षा बरतें, तो सहजीवन सम्भव नहीं है। व्यवहार में आत्मीयता की अभिव्यक्ति, क्रियात्मक सहयोग के ही रूप में सामने आती है। उत्कर्ष, कल्याण एवं आनन्द की वृद्धि के लिए सहयोग देना ही अपनत्व का प्रकट रूप है। सह-संवेदन के बिना सह-जीवन सम्भव नहीं। भले ही रेलगाड़ी के यात्रियों या जेल के कैदियों की तरह साथ-साथ रहा जा रहा हो। काल-यापन समझौता, अनुबन्ध, परस्पर सौदेबाजी तथा किसी उभयनिष्ठ स्वार्थ की पूर्ति के लिए भी साथ रहा जा सकता है। उसे सह-जीवन नहीं कह सकते और जहाँ सह-जीवन नहीं, वहाँ दाम्पत्य-जीवन एवं पारिवारिक जीवन भी नहीं। एक-दूसरे के लिए सहयोग, सद्भाव एवं आत्मदान की भावना ही परिवार और दाम्पत्य-व्यवस्था की सार्थकता एवं विशेषता है।

परिवार बसाने का प्रयोजन तो सभी के मन में जाने-अनजाने रूप में यही रहता है कि साथ-साथ जिएँ। दाम्पत्य-जीवन, स्त्री-पुरुष की अनन्यता का ही संकल्प है। इस संकल्प की पूर्ति के लिए, एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्यों का निर्वाह आवश्यक होता है। प्रेम कर्त्तव्य-भावना से ही किया जा सकता है, अधिकार भावना से नहीं। मात्र अधिकार-भावना से तो उपभोग की ही इच्छा उत्पन्न होती है। उपभोग और सह-संवेदन की वृत्ति साथ-साथ सम्भव नहीं। जहाँ हम दूसरे से अपने काम आने की तो अपेक्षा करेंगे, स्वयं उसके काम आने, उसे सहयोग देने के लिए तत्पर नहीं रहेंगे, वहाँ समानता एवं आत्मीयता की भाव-संवेदना कैसे टिक सकेगी ?

विवाह के समय वर-वधू परस्पर प्रतिज्ञा-बद्ध होते हैं कि हम एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्य-निष्ठ रहेंगे, उदार रहेंगे, सहयोग करेंगे और प्रगति पथ पर साथ-साथ अग्रसर होंगे। काश ! इस प्रतिज्ञा का निर्वाह किया गया होता, तो सचमुच पति-पत्नी मिलकर एक ऐसी सुदृढ़ सम्मिलित इकाई के रूप में घर-घर में क्रियाशील रहते कि स्वयं उनका जीवन आनन्द, प्रकाश तथा प्रगति की सुरभि से महमहा उठता और समाज भी सुरभित उद्यान बना होता। किन्तु इस प्रतिज्ञा को निभाते कितने लोग हैं।

होता यह है कि पति-पत्नी पर अपना अधिकार इस रूप में मान बैठते हैं कि वह माँ-पिता, भाई-बहिन, परिजन-पुरजन, देश-समाज किसी की चिन्ता करना अब छोड़ दें बस मुझे देखे, मेरी चिन्ता करे और मेरे बच्चों की। पत्नी वैवाहिक-अनुष्ठान की, एक क्रिया के सम्पन्न होने भर से कैसे-कैसे विचित्र अधिकार मान बैठती है, इस पर कभी तटस्थ भाव से शान्तिपूर्वक सोचा जाय, तो हँसी भी आती है, आश्चर्य भी होता है। यह पूरी तरह सही है कि विवाह एक धर्मानुष्ठान है, लेकिन क्या जात-कर्म, नामकरण, विद्यारम्भ आदि धर्मानुष्ठान नहीं हैं ? मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, देश-भक्ति ये सब क्या धर्माधिष्ठित कर्त्तव्य-कर्म नहीं हैं ? जीवन के इन समस्त कर्त्तव्यों की, धर्मानुष्ठान एवं धर्मसम्मत आचरण की अवहेलना कर पति बस एक ही कर्त्तव्य को निभाये। विवाह के समय किये गये संकल्प को इस रूप में याद रखे कि वह अन्य शुभ-संकल्पों का विरोधी बनकर रह जाये ? ऐसी विचित्र अपेक्षा पालने वाली पत्नी क्या परस्पर-विरोधी इच्छाएँ नहीं पालती ? जो पुरुष जीवन के अन्य सभी संकल्प, शेष सभी कर्त्तव्य-कर्म भुला बैठेगा, उनके प्रति लापरवाह हो जायेगा वह उसके प्रति ही कब तक जिम्मेदार रहेगा ? उसका पति भी अपनी माँ की कोख से पैदा हुआ है। पिता के संरक्षण में पला-बढ़ा है। भाई-बहिनों के साथ हँसा-खेला, रोया-गाया है। यदि वह उन्हीं माँ-पिता, भाई-बहिनों के प्रति अपने कर्त्तव्य भुला

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकता है तो पत्नी के प्रति कब तक कर्त्तव्यनिष्ठ रहेगा ? समाज में रहकर सारी सुविधाएँ पाई हैं, शिक्षण प्राप्त किया है। उस समाज का ऋण रोम-रोम में भिदा है। समाज के ही सहारे बौद्धिक विकास एवं आर्थिक समृद्धि सम्भव हुई है। जन्म से लेकर अब तक प्रतिपल वह समाज उसका परिचित रहा है। उसी समाज के प्रति गैर जिम्मेदार हो जाने वाला पुरुष भला एक अब तक अपरिचित नारी के प्रति कितना वफादार रह पायेगा ? कहा जा सकता है कि उस नारी से तो उसका स्वार्थ सिद्ध होता है। तो माँ-पिता, भाई-बहिन, गुरु, मित्र तथा समाज से क्या कम स्वार्थ सिद्ध होता है ? यदि इन सबके प्रति काम निकलते ही उपेक्षा दर्शाई जा सकती है, तो काम-पिपासा एवं देहावेग की शान्ति के बाद पत्नी के प्रति उपेक्षा क्यों न आ जायेगी ? यदि इन सबके प्रति कर्त्तव्य का पालन नहीं किया जाता, तो पत्नी के प्रति कर्त्तव्य का पालन कैसे और क्यों कर किया जायेगा ? कर्त्तव्य का पालन न होने पर पत्नी का दैहिक-आकर्षण, स्वास्थ्यगत सौन्दर्य मन्द पड़ते ही प्रबल उपेक्षा क्या रूप लेगी ?

पति पर संकीर्ण रूप में अधिकार बसाने वाली पत्नी यह सब कभी सोचती भी नहीं। पति द्वारा इन कर्त्तव्यों की अवहेलना उसे अनुचित नहीं लगती। उसे इसी में सुख मिलता है। लेकिन कर्त्तव्य विमुखता की इस विष-बेलि को सींचने का सर्वाधिक दुष्परिणाम भोगना उसे ही पड़ता है।

नारी यदि यह सब नहीं सोच पाती, तो उसमें इसका दोष कम ही है किन्तु पत्नी पर अपना अधिकार मानने वाले प्रबुद्ध एवं प्रभुता-सम्पन्न पति जब उसके प्रति अपने कर्त्तव्यों का स्मरण नहीं रख पाते, तब उन्हें कैसे दोषमुक्त माना जा सकता है ? पत्नी को इतना संकीर्ण बनाये रखने में क्या उनकी ही जिम्मेदारी नहीं है ? जो इतनी भोली है कि समाज के प्रतिष्ठित लोगों की उपस्थिति में, धार्मिक विधि के साथ किये गये संकल्प पर रहस्यमय ढंग से आस्था-श्रद्धा पालकर, उसे अटल-अचल मानकर निश्चिन्त हो गई है, अपना सब कुछ सौंप बैठी है, उसके प्रति प्रबुद्ध और समाज के नियन्त्रक बनने वाले पुरुष का कोई भी कर्त्तव्य नहीं है ? जिस निश्छल-हृदया ने विवाह के समय में की गई प्रतिज्ञा को ध्रुव-सत्य मानकर इतने गहरे विश्वास के साथ समर्पण कर दिया है, उसके विश्वास को छलने, उसे मूढ़ और अनजान ही बनाये रखने वाले पुरुष को क्या कहा जाय ? क्या पत्नी पर अधिकार मानने का यही अर्थ है कि उसकी शक्तियों को चुपचाप छीजने-चुकने दिया जाय ? उसकी सम्भावनाओं को समाप्त होने दिया जाय ? उसकी जन्मजात क्षमताओं को अनगढ़ ही रहने दिया जाय ? जिस पर अपना अधिकार मानकर इतराया जाता है, उसे ही सड़ने-गलने दिया जाय ? क्या इससे स्वयं अधिकारी के व्यक्तित्व का पता नहीं चलता ?

ऐसा कोई भी स्वस्थ पुरुष नहीं है, जो अपनी पत्नी में विकसित विशेषताएँ न देखना चाहता हो। मात्र शारीरिक सौन्दर्य से कोई भी पुरुष अधिक दिनों तक तुष्ट नहीं हो सकता। वह पत्नी से सह-सम्वेदन की अपेक्षा करता है। हमारी कोमल अनुभूतियों, बौद्धिक अभिव्यंजनाओं, सामाजिक गतिविधियों में भी पत्नी समान रूप से सहभागी हो, यह कौन नहीं चाहता ? इनमें से एक-एक क्षेत्र में आंशिक रूप से सहभागी बने लोग मित्र बन जाते हैं। साहित्य, कला, संगीत, व्यवसाय, राजनीति, समाज सेवा आदि एक-एक क्षेत्र में अपने से विचार-साम्य, अनुभूति-साम्य एवं रुचिसाम्य रखने वालों के प्रति प्रगाढ़ आकर्षण मैत्री के रूप में विकसित होता है और बढ़ता ही जाता है। सहधर्मिणी को यदि विकसित होने दिया जाय, तो वह इन सभी क्षेत्रों में एक साथ सहभागी-सहयोगिनी बन सकती है, सर्वाधिक विश्वस्त मित्र एवं सर्वाधिक रुचिकर साथी के रूप में निरन्तर उपलब्ध रह सकती है। उस स्थिति में जिस आनन्द-उल्लास, स्फूर्ति-उत्फुलता, तृप्ति-प्रसन्नता की अनुभूति होगी, वह कितना बड़ा सौभाग्य होगा ?

यह सौभाग्य अपेक्षा से प्राप्त होने वाला नहीं। कर्त्तव्य-निर्वाह से ही उसकी पूर्ति होगी। स्नेह-सम्मान और सहयोग से ही पत्नी की प्रतिभा उभरती-निखरती है। ऐसा किये बिना, उसकी संकीर्णता पर नाक-भौं सिकोड़ना तथा पेट-प्रजनन के जिन प्रयोजनों में वह अपने को सन्तोष-सुख देती है, उतने भर के समय उसकी मनुहार करना या उसे थोड़ा-बहुत सहयोग दे देना, पुरुष की क्षुद्रता का ही द्योतक है। व्यक्तित्व का विकास कैसे हो सकता है, इसकी जानकारी प्रबुद्ध पुरुष को ही होती है, व्यक्तित्व की विभिन्न दिशाओं से वही परिचित होता है। पत्नी इस रूप में विकसित हो, यह उसकी इच्छा भी होती है, किन्तु उस इच्छा की पूर्ति और आवश्यक क्रियाशीलता से वह दूर रहता है।

अपनी अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक क्रियाशीलता के बिना वे कैसे पूरी होंगी ? नारी के विकसित स्वरूप की अपेक्षा तो ठीक है। वह न तो अनुचित है, न ही असम्भव। अपितु स्वाभाविक एवं सहज है। नारी उसमें पूर्णतः समर्थ है। जितना उसे सिखाया गया है, उसमें वह पुरुष से आगे ही है, पीछे नहीं। निष्ठा और भावना की क्षमताएँ उसमें स्वाभाविक हैं। भावनात्मक गहराई और वफादारी की ऊँचाई में वह पुरुषों से बढ़-चढ़कर है, यह सर्वविदित एवं सर्वमान्य है और कुछ तो उसे सिखाया नहीं गया। नारी से पुरुष अपेक्षा तो स्वास्थ्य, सक्रियता, सहयोग, सहानुभूति की भी करता है। श्रेष्ठ सन्तान को न तो उसे साधन दिये गए, न शिक्षण। बुद्धिमत्ता, व्यवहार कौशल, स्वास्थ्य-सभी के विकास के लिए साधन एवं शिक्षण की आवश्यकता है। नारी एक सुयोग्य जननी बने, सन्तान का श्रेष्ठ संस्कार दें, इस अपेक्षा की पूर्ति के लिए भी शिक्षण एवं साधन सुलभ कराने का कर्त्तव्य निभाना आवश्यक है तथा सबसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बढ़कर आवश्यक है सम्मान। नारी की संकीर्णता पर झुँझलाते और व्यंग्य करते रहने से अपनी ही हीनता प्रकट होती है। उसे पुरुष अपने जैसा विकसित देखना चाहते हैं, तो उसे वैसा ही सम्मान भी दें।

अभी तो सम्मान दिया नहीं, बस रूप का गौरव दिया है। रूप के प्रति ही प्रधान आकर्षण, दिखाया गया है। सो, नारी ने रूप का ही शृंगार सीख लिया है। उसी में बिंधी, व्यस्त रहती है। पुरुष उसे शृंगार में पिछड़ी, अकुशल, अनजान न मानें, इसी ओर वह ध्यान देती रही है। यदि उसे समानता के स्तर पर सम्मान दिया जाये, साधन, शिक्षण, अवसर की समानता दी जाये, कर्त्तव्यों को निर्वाह किया जाय, तो अपने से पाली जाने वाली अपेक्षाएँ वह निश्चय ही पूरी कर सकती है। जहाँ कर्त्तव्य निभाये गए हैं, वहाँ इसने अपेक्षा से अधिक ही प्रगति दिखाई है, कम नहीं। सच्चे अर्थों में सहजीवन सम्भव भी तभी है, जब इन कर्त्तव्यों की पूर्ति की जाये।

दाम्पत्य-जीवन और प्रेम

गृहस्थ जीवन की गाड़ी जिन दो पहियों के सहारे चलती है, वे हैं स्त्री और पुरुष। दोनों के मिलने पर ही गृहस्थी का प्रादुर्भाव होता है। ऐसे परिवार में माँ-बाप, भाई-बहिन, पुत्र और पुत्रियाँ भी होती हैं, किन्तु गृहस्थ का मूलाधार पति-पत्नी ही होते हैं। जैसे जमीन के अन्दर से जीवन तत्त्व लेकर ऊपर की डालियों, टहनियों, पत्तों, फूल और फलों को पोषण पहुँचाने में, वृक्ष के जीवन को बनाये रखने में तने का महत्त्व अधिक है वैसे ही पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी का सर्वाधिक महत्त्व है।

किसी वृक्ष का तना सूख रहा हो तो उसके हरे-भरे रहने की आशा नहीं की जा सकती। दाम्पत्य जीवन में मनोमालिन्य और विद्वेष की भावनाएँ भड़क रही हों तो पारिवारिक सुख की कल्पना करना व्यर्थ ही होगा। ऐसे घरों को प्रत्यक्ष नरक के रूप में देखा जा सकता है। यह नरक आज सर्वत्र फैला दिखाई दे रहा है। घर-घर पति-पत्नियों के बीच कलह और दुर्भावनाओं की विभीषिका अपना नंगा नाच नाच रही है। मानव समाज इस आग में जलता हुआ बुरी तरह छटपटा रहा है। समाज की सुस्थिरता, सुसंस्कृति एवं विकास प्रक्रिया में तीव्रता अपेक्षित हो तो सर्वप्रथम परिवार की रीढ़, दम्पत्ति को फिर से शाश्वत प्रणय-सूत्र में बाँधना पड़ेगा। दाम्पत्य जीवन को सुखी एवं संतुष्ट बनाये रखने के लिये जिस प्रेम की आवश्यकता है। जिन सद्भावनाओं की उपयोगिता है, वे कभी भी, किसी बाह्य उपकरण, वशीकरण, मन्त्र आदि से उपलब्ध नहीं किये जा सकते। इसके लिये तो अपने आप में ही आवश्यक हेर-फेर करना पड़ेगा। अपनी द्वेष, दुर्भावनाओं को हटाकर विचार-विनिमयपूर्वक फिर से समस्या का सुधार करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं नजर आता।

स्त्री-पुरुष के बीच एकता की भावना न हो, आपस में मनोमालिन्य बना रहे तो पारिवारिक सुख-शान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। वे हर क्षण आन्तरिक द्वन्द्व में पिसते रहेंगे। ऐसी दशा में विकास की बात तो सोची तक नहीं जाती फिर उसके लिये कोई रचनात्मक कदम कैसे उठाया जा सकेगा ? ऐसे परिवारों को अपने आन्तरिक कलह से ही फुरसत नहीं मिलती, विकास की बात तो तभी सोची जा सकती है, जब इनसे मुक्ति मिले। दाम्पत्य-जीवन की इस दुर्दशा का प्रमुख रूप से उत्तरदायी पुरुष है। घर के संचालन के मुखिया अधिकांशतया पुरुष ही होते हैं, उन्हीं की योजनाओं पर पारिवारिक व्यवस्थाएँ सम्पन्न होती हैं। नारी में अपेक्षाकृत कोमल भावनाएँ अधिक होती हैं। वह अपने माता-पिता का घर छोड़कर अपने पति के प्रेम की लालसा से ससुराल आती है। इसी से वह अपने स्वच्छन्द जीवन का परित्याग करती है कि उसे पुरुष की सहचरी बनने, उसके सुख-दुःख में हाथ बँटाने में अधिक आनन्द आता है। विवाह होने के कुछ दिन बाद तक ऐसा होता भी है। पर धीरे-धीरे आकर्षण कम होने लगता है। एक-दूसरे में दोष-दुर्गुण देखने लगते हैं। छोटी-छोटी गल्तियों को मानसिक विद्वेष के कारण बढ़ा-बढ़ाकर तिल का ताड़ बना देते हैं, फिर प्रतिकार लेने से भी नहीं चूकते। मारपीट, तलाक आदि पारस्परिक वैमनस्यता के कारण ही होते हैं।

इस विद्वेष का एक बड़ा कारण है अनियन्त्रित वासना। कामुकता प्रारम्भ में आकर्षक लगती है, किन्तु बाद में विभीषिका के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इससे नारी के सौन्दर्य में कमी होती आती है। धीरे-धीरे तो उसका सौन्दर्य स्वत्व ही समाप्त हो जाता है। तब पुरुष को उसमें आकर्षण प्रतीत नहीं होता तो रूप का लोलुप मनुष्य अपनी पत्नी की ओर से उपेक्षा भाव रखने लगता है। कभी-कभी तो वह व्यभिचार व दुराचार तक में प्रवृत्त होकर अपना घोर नैतिक पतन कर लेता है। ऐसी स्थिति में नारी का स्वाभिमान विद्वेष का रूप धारण कर लेता है। इस विश्वासघात से तिलमिला कर, क्षुब्ध होकर वह रुद्र रूप धारण करती है और घर में क्लेश, द्वेष का ताण्डव होने लगता है।

सन्तान-उत्पत्ति की दृष्टि से कामोपभोग अनुचित नहीं पर यदि भोग की लालसा बढ़ती ही गई, उस पर नियन्त्रण न किया गया तो दम्पत्ति के बीच प्रेमभाव बना रहना अनिश्चित ही समझना चाहिये। हमारे ऋषियों ने इस बात पर गम्भीरता से विचार किया था, इसलिये कामोपभोग को षोडश संस्कारों में गर्भाधान के रूप में सम्मिलित कर लिया था। जब तक यह सामाजिक व्यवस्था अपने पूर्व रूप में बनी रही तब तक दाम्पत्य-जीवन सुखी, समृद्ध एवं सब प्रकार से सन्तुष्ट बना रहा, किन्तु इसमें शिथिलता आते ही वासनात्मक स्वच्छन्दता ने शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को सत्यानाश करने वाला विद्रूप धारण कर लिया। आज तो यह मानवीय अधःपतन का प्रमुख कारण बनी हुई है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि लोग अपनी पत्नियों को शिक्षित एवं स्वावलम्बी बनाने के लिये कुछ समय लगाने लगें तो इससे आज की परिस्थितियों में बड़ी राहत मिल सकती है। उन्हें अपने भोग की वस्तु मानना, पर्दे के भीतर गुलामों की तरह रखना अच्छा नहीं। उन्हें सच्ची जीवन सहचरी मानना, उनके हित एवं कल्याण की भी समान व्यवस्था रखना पुरुषों का अनिवार्य कर्त्तव्य है। इससे प्रेमभाव बढ़ता है—एक-दूसरे के प्रति कर्त्तव्य भावना सजग बनी रहने से पारस्परिक स्नेह बना रह सकता है। पति-पत्नियों के बीच यदि प्रेम बना रहे तो इससे घरेलू व्यवस्था बनी रहने से सर्वत्र सुख-शान्ति की परिस्थिति बनी रहती है। ऐसे परिवारों के बच्चों का मानसिक विकास तीव्रता से होता है। घर के दूसरे सदस्य जो काम करने लायक नहीं रहे, वे भी संतुष्ट जीवन जी लेते हैं।

दाम्पत्य-विद्वेष का दूसरा कारण है एक-दूसरे के प्रति सम्मान व प्रशंसा प्रदर्शन की कमी। दैनिक कार्यों में हर किसी से त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है। इन त्रुटियों को उदारतापूर्वक क्षमा किया जा सके और जहाँ कहीं थोड़ी-सी भी विशेष सद्भावना दिखाई दे तो उसकी प्रशंसा की जाये। इससे स्त्री-पुरुष स्नेह सूत्र में बँधे रह सकते हैं। इस क्षेत्र में प्रथम जिम्मेवार पुरुष है। प्रायः देखा जाता है पुरुष-स्त्रियों की नुक्ता-चीनी करने में अधिक पटु होते हैं। जरा-सा दाल में नमक अधिक हुआ कि ढेरों झिड़कियाँ दे डालीं। जरा-सा बच्चा रोया कि तिलमिला कर बरस पड़े अपनी पत्नी पर। आखिर ऐसा क्यों ? स्त्रियाँ कोई मशीन तो नहीं कि भोजन की कलौरी नापकर उसी अनुपात से नमक मिला दें। वे स्वयं तो बच्चों को रुलाती नहीं। पुरुष स्वयं भी तो इस कार्य में हाथ बँटा सकते थे। पर ऐसा होता कहाँ है ? स्त्री को गुलाम समझने की पुरुषों की आदत ने उन्हें आज सम्मान से वंचित कर रखा है। स्त्री को यदि दो शब्द भी अपनी प्रशंसा के मिल जायें तो दूसरे कार्यों के लिये और भी ताजगी अनुभव करने लगती है। पुरुष को स्नेहसिक्त आँखों से देखने वाली पत्नियाँ वे होती हैं, जिन्हें बदले में अपने पति से सम्मान मिला होता है। प्रशंसा के दो शब्द सुनने को मिले होते हैं।

यह कार्य पुरुष वर्ग का ही नहीं स्त्रियों को भी इसमें पूर्ण सावधानी बरतनी चाहिये। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक कठिनाइयों से भिड़ना पड़ता है। अधिक श्रम करना पड़ता है। दिनभर का हारा-थका-सा मनुष्य शाम को जब दफ्तर फैक्ट्री अथवा खेतों से वापस घर लौटता है तो उसे इस बात की अपेक्षा रहती है कि उसकी पत्नी उसका मीठे शब्दों से स्वागत करेगी। उसकी थकान पर सहानुभूति प्रकट करेगी। पत्नी का प्यार पाकर पुरुष दिन भर की थकान भूल जाता है और अगले दिन कार्य करने के लिए स्वस्थचित्त हो लेता है। ऐसे घरों में जहाँ एक-दूसरे के प्रति स्नेह, आत्मीयता और उदारता बनी रहती है स्वर्ग बिखरा रहता है। दुःख और नरक का कारण है छिद्रान्वेषण, निन्दा, स्वार्थवृत्ति।

पति-पत्नियों के बीच कलह का अधिकांश कारण होता है गलत-फहमी, अविश्वास की भावना। संदेह की स्थिति प्रायः अविश्वास के कारण ही उत्पन्न होती है। स्त्री अपनी माँग पूरी न होते देख आशंका करने लगती है कि ये अधिक वेतन पाते हैं, मुझसे छुपाते हैं, चुपचाप फिजूलखर्ची करते हैं या फिर किसी नैतिक दुराचार की आशंका कर बैठती है। पुरुष भी इसी प्रकार अनेकों कारणों से स्त्रियों के स्वभाव पर सन्देह करने लग जाता है। अधिकांश झगड़े इसी गलतफहमी के कारण ही उत्पन्न हुये होते हैं। ऐसी अवस्था में पति-पत्नियों के बीच मानसिक तनाव की स्थिति बनी रहती है। स्त्री एक ओर मुँह बनाये बैठी रहती है, पुरुष दूसरी ओर मन मारे बैठा रहता है। काम करते हुये बोझ-सा अनुभव करते हैं। जीवन भार-सा महसूस करते हैं। इसमें कभी-कभी घर के दूसरे सदस्य भी दलाली करने लगते हैं और उनकी भावनाओं में अधिक विद्वेष भरकर अपना स्वार्थ सीधा करने में लगे रहते हैं।

यह स्थिति बड़ी ही घातक होती है। मनोमालिन्य, अविश्वास, कटु-भाषण, गाली-गलौज, आत्महत्या, निर्मम मारपीट व पैशाचिक उत्पीड़न के हजारों दृश्य आये दिन आँखों के आगे गुजरा करते हैं। यदि एक-दूसरे से बातचीत के द्वारा अपनी बात सुलझा लिया करें, आपस में बैठकर झगड़े के कारण की तलाश, मनोमालिन्य पैदा करने वाली परिस्थिति का निराकरण कर लिया करें तो बहुत कुछ इस बुराई से बचा जा सकता है। अविश्वास की भावना पारिवारिक जीवन को ही नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है, इससे इस पिशाचिनी से बचने में ही कुशलता है।

प्रेम मानव अन्तःकरण की आध्यात्मिक प्यास है। हर पत्नी अपने घर से आकांक्षा लेकर आती है कि उसे ससुराल में सामान्यतया सबका और विशेषतया अपने पति का प्यार मिलेगा। पति यह चाहता है कि उसकी स्त्री उससे प्रेम और ममत्व बनाये रखेगी। यह सर्वमान्य तथ्य है कि सारे झगड़े प्रेम के अभाव में ही उठ खड़े होते हैं। इससे ऐसे अवसरों की तलाश करते रहना चाहिए, जब दूसरे के साथ अधिक आत्मीयता, सहृदयता प्रदर्शित की जा सके। मुरझाये हुए अन्तःकरण प्यार की हल्की-सी बौछार से भी जी उठते हैं, अपने आपको न्यौछावर कर देने के लिये उद्यत हो उठते हैं। दाम्पत्य जीवन को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए धन की उतनी आवश्यकता नहीं, आलीशान महल मकान भी उतने आवश्यक नहीं जितना प्रेमपूर्ण वातावरण की। सुख और संतोष का जीवन फूस की झोंपड़ी में भी जिया जा सकता है बशर्ते कि लोगों के अन्तःकरण पारस्परिक प्रेम भावनाओं को स्थिर रख सकें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज के पारिवारिक जीवन को फिर से नया रूप देने की आवश्यकता सभी विचारवान पुरुष अनुभव कर रहे हैं। लोगों को शिक्षित बनाने के, आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने के भी अनेक कार्य सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर चला रहे हैं किन्तु गृहस्थ जीवन को सुव्यवस्थित, सुखी एवं सन्तुष्ट बनाने के लिए प्रेम-आत्मीयता के अभाव में सारी योजनायें विफल ही लग रही हैं। दाम्पत्य जीवन को फिर से सुदृढ़ बनाने के लिये फिर से पति और पत्नियों को गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन को प्राथमिकता देनी पड़ेगी। जिस स्थान से भटक गये थे, फिर उसी स्थान की ओर लौटना पड़ेगा। दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिये धन जुटायें, पारिवारिक शिक्षा का भी ध्यान दें और भी जो साधन उचित हों, ग्रहण करें, किन्तु यह न भूलें कि पारस्परिक प्रेम और आत्मीयता के अभाव में दाम्पत्य जीवन सफल न होगा। इसके लिये पारस्परिक प्रेम, विश्वास, सहिष्णुता, उदारता और आत्म-त्याग का आश्रय लेना पड़ेगा। इसी आधार पर घरों में स्वर्ग उतरेगा और यही परिस्थितियाँ सुव्यवस्थित होकर सभ्य-समाज की रचना का स्वप्न साकार करेंगी।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता

दाम्पत्य-जीवन सुखी कैसे हो ? इस समस्या का हल करने के लिए उसके ऊपर वाले स्तर—सामाजिक जीवन तक ही सोचने-विचारने से काम न चलेगा वरन् गहराई में जाकर उस स्तर तक उतरना पड़ेगा जिसे धर्म, श्रद्धा, आस्था और कर्त्तव्य के नाम से पुकारते हैं। दो आत्माओं का सच्चा मिलन इसी आधार पर सम्भव है और उसकी स्थिरता एवं सफलता का आधार भी यही हो सकता है।

बाह्य सुख-सुविधाओं की उचित व्यवस्था हो जाने, आजादी की परम्पराएँ बन जाने, कानूनी अधिकार मिल जाने से भी नारी को वह स्थिति प्राप्त नहीं हो सकती, जिससे वह सन्तुष्ट दाम्पत्य-जीवन व्यतीत कर सके। इसी प्रकार किसी पुरुष को सुन्दर, स्वस्थ, शिक्षित या गायन-वाद्य, नृत्य आदि कलाओं की जानकार पत्नी मिल जाने पर भी यह आवश्यक नहीं कि उसका गृहस्थ जीवन सुखमय ही बने। यह बाह्य सुविधायें सुखी गृहस्थ बनने में एक सीमा तक सहायक तो हो सकती हैं, पर आधार नहीं बन सकतीं।

पति-पत्नी में से प्रत्येक का एक-दूसरे के प्रति गहरी आस्था एवं आत्मीयता का होना ही वह आधार है, जिसके होने पर अन्य सारे अभावों के होते हुए भी काम चल सकता है। एक पक्ष पूर्ण सुयोग्य होकर भी दूसरे अयोग्य पक्ष को निबाह सकता है। आत्मीयता की तनिक-सी भी छाया पड़ने पर कुरूप, निकम्मी और दोषयुक्त वस्तुएँ भी सुन्दर और सुहावनी लगती हैं। यह भावनाएँ दाम्पत्य जीवन का आधार हों तो कोई कारण नहीं कि अनेक त्रुटियों के होते हुए भी परस्पर स्नेह-सौहार्द्र न रह सके। सुयोग्य पक्ष अपनी योग्यता के आधार पर अयोग्य पक्ष का सुधार कर सकता है। न सुधार सके तो निर्वाह तो आसानी से कर सकता है। जिन्हें अपना गृहस्थ जीवन सफल बनाना हो उन्हें विवाह को एक परम पवित्र धर्म-बन्धन ही बनाना पड़ेगा, जिसे उदारता और सहिष्णुतापूर्वक निबाहा जाना ही एकमात्र कर्त्तव्य रह जाता है।

पाश्चात्य देशों में जहाँ नारी जाति को स्वतन्त्रता के व्यापक अधिकार मिल चुके हैं, जहाँ की सामाजिक परम्पराएँ तक इसके अनुकूल बन चुकी हैं, वहाँ आये दिन तलाक करके नित नया पति पाकर भी नारी का जीवन असन्तुष्ट है। पति ही नहीं अनेकों मित्र-दोस्तों के सम्पर्क में आकर भी वे जीवन में सन्तुष्ट नहीं हो पातीं। दाम्पत्य-जीवन में कटुता, कलह, परस्पर घृणा, द्वेष की दीवारें खड़ी हो जाती हैं। स्वच्छन्दता, स्वतन्त्रता, समानाधिकार की इस राह पर चलते हुए नारी-पुरुष में आज परस्पर अनबन, कलह, अविश्वास, सन्देह पैदा होता जा रहा है और जिसमें हमारा दाम्पत्य-जीवन भी नष्ट हो रहा है।

डा. एस्मर एकब्ला ने लिखा है—"जिन बातों को लेकर आज के वैवाहिक जीवन में कलह होते हैं, वे आज की सभ्यता की ही देन है। संसार की प्राचीन सभ्यता और पुरानी जातियों में यह बात नहीं पाई जाती।" सभ्यता से बहुत-बहुत दूर बर्फीले उत्तरी ध्रुव में कष्टसाध्य जीवनयापन करने वाली एस्किमो जाति का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा है—"मन न मिलने की बात इस जाति में नहीं पाई जाती। वैवाहिक जीवन में बँधे हुए पति-पत्नियों में सौहार्द्र, प्रेम, आत्मीयता के आदर्श स्वरूप का दर्शन वहाँ सदा ही किया जा सकता है।" भारतीय दाम्पत्य जीवन में आज भी नई सभ्यता से दूर देहाती क्षेत्र में पति-पत्नी का जीवन अधिक संतुष्ट है। पति-पत्नी ही नहीं, सम्मिलित परिवार का निर्वाह तक बड़े मजे से होता आया है।

नई परम्पराओं, नये अधिकारों के साथ ही युवक-युवतियाँ उस आदर को भी जीवन में उतारें, जिसके आधार पर एक रोगी, बीमार, अपंग, असमर्थ पति का पत्नी और पत्नी का पति अन्त तक निर्वाह कर सके। सत्यवान जैसे अल्पायु पति को स्वीकार करके भी सावित्री ने असन्तोष प्रकट नहीं किया। वृद्ध च्यवन को पति रूप में स्वीकार करने वाली राजकुमारी ने अन्त तक अपना धर्म निभाया। इसी तरह कई पुरुषों ने भी कुलटा, लड़ाका, कुरूप स्त्रियों का निर्वाह किया। भारतीय परम्परा में पुरुष और नारी का यह आदर्श आज के असन्तुष्ट और क्लेशमय वैवाहिक जीवन का सरल समाधान है। इस पर चलने वाले अपढ़ और अशिक्षित लोग भी आज के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षित और सभ्य कहे जाने वाले असन्तुष्ट दम्पत्तियों से अधिक अच्छे हैं, जो किसी तरह दाम्पत्य सूत्र में बँधकर एक-दूसरे का निर्वाह कर रहे हैं और वैवाहिक जीवन में सन्तुष्ट हैं। दूसरी ओर नई सभ्यता और परम्पराओं के पोषक युवक-युवतियाँ, कृत्रिम आकांक्षाओं, अपने अवास्तविक स्वप्नों के पीछे परेशान हैं और असन्तुष्ट है जीवन के स्वाभाविक सुखों से वंचित हैं।

अमर्यादित आजादी और स्वच्छन्दतावाद के साथ-साथ वैवाहिक जीवन की दुर्दशा का एक मुख्य कारण है, विवाह के प्रति गलत दृष्टिकोण का होना। नई विचारधारा, भौतिकवाद की रोशनी में विवाह केवल भौतिक सुखों का माध्यम समझा जाने लगा है। विवाह सम्बन्धों का आधार शारीरिक सामीप्य माना जाने लगा है। यदि कोई भी पक्ष शरीर सुख पहुँचाने के अयोग्य हो जाता है, भौतिक सुखों के उपयुक्त नहीं रहता तो लोग शरीर सम्बन्धों को तोड़ने या अन्य अनैतिक सम्बन्ध बना लेने में कोई सोच-विचार नहीं करते। जिन स्त्रियों के सन्तान नहीं होती, उनके पति दूसरा विवाह करने की सोचते देखे गये हैं।

यह निर्विवाद सत्य है कि कोई भी सम्बन्ध अथवा परम्परा जो बाह्य वस्तु, पदार्थ पर आधारित होती है, अधिक नहीं टिक पाती। आज जो पदार्थ सुख दे सकता है वह भविष्य में जाकर उस सम्बन्ध में अयोग्य हो सकता है। आज जो हमारे भौतिक स्वार्थों की पूर्ति करता है वह एक दिन उस योग्य नहीं रहता। ऐसी स्थिति में किसी भी तरह के सम्बन्धों का निर्वाह अधिक दिनों तक नहीं हो सकता। एक न एक दिन असन्तोष, अशान्ति की आग सुलग ही जाती है। हमारे वैवाहिक जीवन की अशान्ति, विघटन, असन्तोष का एक यह भी प्रमुख कारण है।

भौतिक सम्बन्धों, स्थूल परम्पराओं, 'मैत्री' व्यापक और गहरे तत्त्वों का विकास भारतीय जीवन का मुख्य अंग रहा है। इसी परम्परा के अन्तर्गत विवाह बाह्य सुख, शरीर सामीप्य या वासना तृप्ति का ही आधार नहीं अपितु वह आत्मा का अनन्य सम्बन्ध है। विवाह एक सामाजिक परम्परा नहीं वरन् धार्मिक बन्धन है। जो एक शरीर के असमर्थ होने, यहाँ तक कि नष्ट हो जाने पर भी स्थिर रहता है। इस बुनियाद पर आधारित वैवाहिक सम्बन्ध अन्त तक सन्तुष्ट और सुखी रहते हैं। पति-पत्नी एक-दूसरे के अयोग्य, अक्षम होते हुए भी परस्पर निर्वाह करते हैं। पर-नारी और पर-पुरुष का बुरे भाव से स्मरण तक भारी पाप माना गया है। जब एक बार विवाह सम्बन्ध हो गया तो वह अमिट बन गया।

स्वतन्त्रता और समानता का आदर्श उचित है पर उसका वह स्वरूप अनावश्यक है, जिसमें पर-पुरुषों और पर-नारियों के साथ निर्बाध सम्पर्क स्थापित करने और मिलने-जुलने को बुरा नहीं समझा जाता। शील, लज्जा और संकोच नर-नारी के बीच की एक महत्त्वपूर्ण दीवार है। इसे तोड़ नहीं दिया जाना चाहिए। एकान्त में युवक-युवतियों का मिलना-जुलना, फिर चाहे वह पवित्र उद्देश्य के लिए ही क्यों न हो, शीलधर्म के विपरीत है। कोई आवश्यक कार्य हो तो तीसरा व्यक्ति बीच में होने पर ही ऐसा वार्तालाप किया जाना चाहिए। युवावस्था का तकाजा है कि समवयस्क होने पर नीची आँख करके, शील, शिष्टाचार, संयम की मर्यादा के अन्तर्गत ही बातचीत चले, गपशप, हा-हा-ही-ही करते हुए उच्छृंखल ढंग से बैठना, बात करना स्पष्टतया दाम्पत्य मर्यादाओं का उल्लंघन है और इस प्रकार के आचरण का प्रभाव गृहस्थ की जड़ों को खोखली करने वाला ही सिद्ध होता है।

नर और नारी दोनों को ही यह ध्यान रखना चाहिए। पवित्र भाव से भी युवावस्था वाले दूसरे पक्ष के इस प्रकार की समीपता, घनिष्टता और वार्ता से बचें जो उँगली उठाने का अवसर देती हो। शील, संकोच और लज्जा की दीवारें पति-व्रत और पत्नीव्रत को सुरक्षित बनाये रहने में अमोघ कवच का काम करती हैं। गृहस्थ की सुदृढ़ता, दाम्पत्य-जीवन की आस्था बनाये रखने के लिए यह लोकाचार नितान्त आवश्यक है। स्वतन्त्रता नागरिक, मानवीय अधिकारों के लिए ही बरती जानी चाहिए। कैदी बनाकर पिंजड़े के पक्षी की तरह स्त्रियों को उनके नागरिक अधिकारों से शिक्षा, स्वावलम्बन तथा प्रगति की सुविधाओं से वंचित न किया जाये। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मर्यादाओं का उल्लंघन, शील-संकोच की उपेक्षा आजादी नहीं बर्बादी का रास्ता है, उस पर न चलना ही उचित है।

दाम्पत्य-जीवन में प्रचलित अनेक विकृतियाँ और परम्पराएँ आज पारस्परिक स्नेह-सौजन्य में बाधक बनी हुई हैं, उन्हें सुधारने के लिए आवश्यक ध्यान देना उचित है। पर इस मूल तथ्य को ध्यान में रखना ही चाहिए कि पारस्परिक गहन आस्था अनन्य आत्मीयता और साथी के प्रति उदारता एवं सहिष्णुता का दृष्टिकोण रखते हुए उसके निर्वाह की बात सर्वोपरि है। यह आधार जहाँ भी होगा वहाँ अनेक त्रुटियों के रहते हुए भी दाम्पत्य-जीवन सफल ही बना रहेगा।

दाम्पत्य-जीवन की साधना के मन्त्र

१. गृहस्थाश्रम पति और पत्नी की साधना का आश्रम है। यहाँ जीवन की, धर्म, अर्थ और काम की साधना की जाती है।

२. पति एवं पत्नी दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं, मित्र हैं। दोनों का काम एक-दूसरे के गुणों की वृद्धि करना है, कमियों को दूर करना है और परस्पर अभिन्नता बनाये रखना है। इसके लिए प्रत्येक को संयम, सहनशीलता एवं स्वार्थ त्याग की भावना अपने अन्दर बढ़ाने की आवश्यकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

३. पति का नाम भर्त्ता है। भर्त्ता का अर्थ भरण और पोषण करने वाला है। पत्नी में उसकी उन्नति के लिए जिसकी कमी है, वह उसे लाकर दे, उसका उसमें भरण करे और जो शक्ति अविकसित है या कम है उसका पोषण करे, उसकी वृद्धि करे। वह उसे हमेशा सन्तुष्ट रखे। उसके मानसिक, शारीरिक एवं आत्मिक विकास का निरन्तर ध्यान रखे और उन्हें विकसित होने में अपना पूरा सहयोग दे।

४. पत्नी साधिका है। जिस तरह एक साधक अपने प्रभु की साधना के लिए अपना सब कुछ समर्पण कर देता है, उसी प्रकार अपने मन में द्वैत की भावना न रखकर पति को ही अपना आराध्य देव मानकर अपना भला और बुरा सब कुछ उन्हें सौंप दें। अपने लिए बचाकर कुछ भी शेष न रखे। जो कुछ करे पति के लिए। पति कुमार्गगामी हो तो उसे सुमार्ग पर लाने के लिए अपना सर्वस्व तक चढ़ा दे। ध्यान रहे पत्नी को शासक नहीं बनना है। साधिका हमेशा सेविका होती है। सुधार के लिए शासन की नहीं सेवा की आवश्यकता होती है। कुमार्गगमन एक मानसिक रोग है, इस रोग के लिए उपचार की, सेवा की जरूरत है। अतएव उसके उपयुक्त उपचार करना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। कुमार्ग छोड़ देना ही पत्नी की साधना का फल है।

५. पितृ ऋण के उद्धार का एकमात्र साधन दाम्पत्य-जीवन की शान्ति है। सन्तान का उत्पादन और सुशिक्षण योग्य दम्पत्ति के बिना कदापि सम्भव नहीं है। योग्य माता-पिता के ही योग्य सन्तान होती है, इसलिए योग्य सन्तान के लिए स्वयं की समस्त त्रुटियों को निकाल फेंकने में आना-कानी नहीं होनी चाहिए।

६. दाम्पत्य-जीवन का उद्देश्य भोग नहीं है, योग है। इसलिए प्रत्येक उन साधनों को अपनाना चाहिये जिससे परस्पर का द्वैत नष्ट हो और आत्मरति एवं आत्म प्राप्ति की ओर दम्पत्ति गतिवान हो। मोह की अपेक्षा प्रेम की परस्पर जितनी वृद्धि होगी और मान-अपमान जितना दोनों में कम होगा इन दिशा में दोनों की उतनी ही उन्नति होगी।

भोग का शमन योग से नहीं होता, भोगने से वासनाएँ बढ़ती हैं। संसार के सभी पदार्थ वासना को बढ़ाते हैं, इसलिए जितने से शरीर, मन तथा आत्मा की उन्नति हो, उन्हें सुख मिले उतने का ही उनसे सम्पर्क रखना चाहिए। जीवन में उनको लाकर उनका गुलाम नहीं बन जाना चाहिए अन्यथा इससे कलह का बीज बढ़ता है और दाम्पत्य-जीवन का उद्देश्य विफल हो जाता है।

८. स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध यज्ञ के लिए है। यज्ञ में ईश्वरी भावना है, भोग नहीं। ईश्वरीय भावना को पुष्ट करने के लिए ही दाम्पत्य-जीवन का निर्माण किया गया है, इसलिए स्त्री तथा पुरुष दोनों को ही पर-पुरुष एवं पर-स्त्री के विषय में किसी प्रकार की तन्मयता या भोग भावना नहीं रखनी चाहिए। स्वपुरुष और स्वस्त्री में भी सन्तान रूपी यह फल प्राप्ति के लिए यज्ञ भावना का ही उपयोग करना चाहिए। भोग से जितना दूर रहा जाय उतना ही ठीक।

९. दाम्पत्य-जीवन का मूलमन्त्र प्रेम है। प्रेम में त्याग है। अपने लिए कुछ नहीं। इस भावना की पुष्टि के लिए यह जीवन माध्यम है। इसलिए न यहाँ स्वार्थ है, न वासना, न भोग। फिर बदला तो होगा ही क्यों ? अतएव इस बात के ज्ञान पर निरन्तर जागरण उसकी कुंजी है और भूल होने पर पश्चाताप ही उसका सच्चा प्रतिशोध है। इसमें मान-अपमान रहने से प्रेम की उतनी ही न्यूनता झलकती है। शुद्ध प्रेम में द्वैत की गुंजाइश ही नहीं होती तब कौन छोटा और कौन बड़ा, कौन दास और कौन मालिक ? फिर किसका मान और किसका अपमान ? सब एक हैं, सब अपने हैं।

दाम्पत्य प्रेम स्थिर कैसे रहे ?

पति-पत्नी का सम्बन्ध शासक-शासित के रूप में समझने वाला अगर एक आँख का अन्धा होता है, तो उसको केक्ट्रैक्ट समझ, महज छोटी-बातों पर, पारस्परिक उदारता के अभाव में, सम्बन्ध-विच्छेद का समर्थन करने वाला दोनों आँखों का। पहले में पत्नी केवल संभोग की वस्तु समझी जाकर यंत्रवत् संचालित होती है, उसका कोई पृथक् व्यक्तित्व नहीं रह जाता, तो दूसरे में पति-पत्नी दोनों केवल अपनी पाशविक वृत्ति की पूर्ति की मृग-मरीचिका में फँस जीवन की शान्ति को खो ही बैठते हैं, उस उद्देश्य को भी भूल जाते हैं, जिसके लिये यह शरीर मिला है। छोटी-छोटी बातों के लिए हमें जिन लोगों पर निर्भर रहना पड़ता है, उसके साथ भी हमें उदारतापूर्वक व्यवहार करना पड़ता है, फिर जिसके साथ हम जीवन बिताते हैं, सुख-दुःख की परस्पर की, अनुभूति से हम अपने कार्य में स्फूर्ति और उत्साह प्राप्त करते हैं, उसके साथ ही हमें कहीं अधिक उदारता का व्यवहार करना ही पड़ेगा।

कई व्यक्ति दाम्पत्य-जीवन सफल हो, उसके लिए प्रेम-विवाह को प्रोत्साहन देना चाहते हैं, किन्तु वे भूल जाते हैं कि जहाँ आजकल प्रेम-विवाह का बाजार गर्म है, वहाँ की अवस्था और भी दर्दनाक है। थोड़ी-सी मनमुटाव की कोई बात हुई नहीं कि झट से तलाक की दरख्वास्त पेश कर दी जाती है और बराबर के लिए छुटकारा मिल जाता है। टाल्सटाय, अब्राहमलिंकन आदि ने भी तो प्रेम-विवाह किया था, किन्तु उनका दाम्पत्य जीवन कितना कटु बीता। कहा जाता है, टाल्सटाय अपनी पत्नी के व्यवहार से बड़े खिन्न रहते थे। पत्नी कभी-कभी उनके घुटनों पर सिर टेक कर उनको उन सुनहरे दिनों की याद

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिलाती थी, जब वे यौवन के उफान काल में एक-दूसरे से संयुक्त रहते थे। किन्तु इन बातों का उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। यहाँ तक कि पत्नी की मृत्यु के समय भी वह उसके निकट नहीं थे और उनकी पत्नी ने प्रेमियों से अपनी की हुई गल्तियाँ चिल्ला-चिल्ला कर स्वीकार की थीं। कारण क्या था ? जब उन्होंने प्रेम होने पर ही विवाह किया, तो उनका जीवन तो और भी प्रेमपूर्ण और शान्तिमय होना चाहिए था। स्पष्ट है कि युवा-अवस्था में बहुत कम लोगों की दृष्टि आन्तरिक सौन्दर्य की ओर आकर्षित होती है—वह तो बाह्य सौन्दर्य तक ही सीमित रह जाता है। यह उस अवस्था का स्वाभाविक गुण है, अवस्था के साथ-साथ विचार और दृष्टि भी बदलते रहते हैं। जिन गुणों के कारण एक युवती किसी युवक की दृष्टि में आकर्षण का केन्द्र प्रतीत होती है, पीछे चलकर जब युवक को संसार की यथार्थता का पता चलता है, तो वे ही गुण उसकी दृष्टि में अवगुण प्रतीत होने लगते हैं। मेरा एक मित्र एक लड़की की चपलता पर मुग्ध था। संयोगवश उसी से उसका गठबन्धन भी हुआ तत्पश्चात् जब वह लड़की अपने पूर्व परिचितों के साथ ससुराल में उस चपलता से व्यवहार करती, तो पति महोदय को यह बात अखरती।

विवाह एक ऐसा कृत्य है जो पति-पत्नी के जीवन में अगर उनके हितेच्छुओं का सुन्दर व्यवहार रहा, तो एक महान परिवर्तन उपस्थित कर देता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे, जहाँ विवाह के पहले जो लड़की अपने माँ-बाप के घर में नटखट और उच्छृंखल समझी जाती थी—विवाहोपरान्त गम्भीर, विचारवाली, शान्तिप्रिय कुलवधू बन गई। आवश्यकता है कि उसके अभिभावक जरा उदारता से काम लें। उन्हें देखना चाहिए कि जो लड़की कल ही नैहर में इतनी स्वतन्त्र थी, केवल कुछ घण्टों की रस्म पूरी कर लेने से ही तो शान्त और गम्भीर नहीं बन जाएगी। पति महोदय अपनी जन्मजात श्रेष्ठता के कारण उस पर अनुचित दबाव डालते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि या तो वह अपनी कमजोरी के कारण ऐसी दब जाती है कि अपना व्यक्तित्व खो बैठती है अथवा उग्र रूप धारण किया तो सारे परिवार की दृष्टि में गड़ जाती है और फिर कलह का दौर-दौरा आरम्भ हो जाता है। अतएव मेरा यह अनुभव सिद्ध विचार है कि नवागत पत्नी के प्रति पति अथवा अन्य लोगों का व्यवहार पूरी उदारता का हो। अगर वह स्वतन्त्रता चाहती है तो उसे स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। ऐसे व्यवहार से वह समझ जाएगी कि इस परिवार के लोग मेरे अनुकूल मिले हैं, मेरा हित चाहते हैं। फिर तो रमणी का हृदय त्याग की प्रतिमूर्ति होता है—उसका हृदय तो सच्चे हृदय की खोज में रहता है। तब पति या परिवार वालों के उसे अपने अनुकूल चलाना आसान हो जाएगा।

बहुधा ऐसा होता है कि पति महोदय अपनी बहिन अथवा सभी के निकट अपनी पत्नी के फूहड़पन की आलोचना करते रहते हैं। मैं नहीं समझता कि इससे दाम्पत्य-प्रेम का हित साधन होता है। परिणाम उल्टा ही होता है। यह मानव स्वभाव है कि किसी में कुछ अवगुण हैं और अगर आप उसे दूर करना चाहते हैं, तो उससे ही मिलकर कहिए। दूसर के निकट कहने से चिढ़ हो जाती है और विशेषकर ऐसे व्यक्ति के मुख से आलोचना सुनकर जिससे अपनी प्रशंसा सुननी चाहिए, पत्नी पर उल्टा असर होगा ही।

अर्द्ध-अंग होने के नाते पति को अपनी पत्नी के दुःख-सुख में, उसकी बीमारी, घबराहट आदि में सहायता करनी चाहिए। कैसी कृतघ्नता की बात है कि जो पत्नी, पति की बीमारी के समय उसका बिछावन नहीं छोड़ती, हरदम सेवा-शुश्रूषा में संलग्न रहती है, उसी के बीमार पड़ने पर बहुधा पति दाई-नौकर से उसकी सेवा करवायेंगे— स्वयं इन बातों से पृथक् ही रहेंगे। यह मानव स्वभाव है कि बीमारी की हालत में जो सहानुभूति के दो शब्द कहता है, छोटा-मोटा एक-दो काम कर देता है, उसकी ओर हृदय बरबस खिंच जाता है। पति का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह अपनी पत्नी की असहायावस्था में सहायता करे।

पत्नी निष्कपट प्रेम की भूखी होती है। इसलिए पति महोदय यदि समय-समय पर उसके कार्यों पर अपना यह विचार प्रदर्शित करते चलें कि उसका ही उनके जीवन से सम्बद्ध होना स्वर्गीयसुख का कारण है, तो इसका बहुत उत्तम प्रभाव पड़ेगा। इसी विचार की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें अपनी पत्नी के जन्म-दिवस को उत्सव का दिन समझकर उसे खुशीपूर्वक व्यतीत करना चाहिए।

पत्नी का पति ही हर प्रकार से निकटतम साथी है। इसी बात को तो दूसरे शब्दों में कहा जाता है कि दोनों एक ही इकाई के दो भाग हैं। अतएव अगर दोनों का यह विचार स्थिर हो जाय कि एक का गुण-अवगुण, दूसरे का गुण-अवगुण है, एक की प्रशंसा-शिकायत दूसरे की प्रशंसा शिकायत है, तो बहुत तब अंश में दाम्पत्य-जीवन की बुराइयाँ मिट जाएँ। पति अगर पत्नी के साथ पूरी उदारता से बात तथा सहिष्णुता और समझदारी से काम ले और यह समझे कि उसका पद उसकी पत्नी के पद से ऊँचा अथवा नीचा नहीं है, तो दाम्पत्य-जीवन की बहुत-सी विषमताएँ दूर हो जाएँ

वैवाहिक जीवन को सुखी बनाने के लिए बौद्ध धर्म में पुरुषों और स्त्रियों के लिये ये पाँच-पाँच नियम बताये गये हैं—

पुरुषों के लिए—

१. अपनी पत्नी का हृदय से सम्मान करो।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

२. पत्नी के व्यक्तिगत मनोभावों के कारण क्रोधित मत हो।

३. अपनी पत्नी के सिवा किसी दूसरी स्त्री से प्रेम न करो।

४. पत्नी के भोजन-वस्त्र की सदा फिक्र रखो।

५. पत्नी को समय-समय पर उपहार लाकर दो।

स्त्रियों के लिए—

१. पति के घर में आने पर उठकर उनका स्वागत करो।

२. इसी प्रकार उनके घर से बाहर जाने पर अभिनन्दन करो। पति के लौटने तक उनके लिये भोजन तैयार करके रखो तथा घर के दूसरे काम भी समाप्त कर लो।

३. किसी अन्य पुरुष से प्रेम न करो। पति क्रोध में हो तो तुम शान्त हो जाओ।

४. पति की आज्ञाओं का पालन करो और घर की कोई बात उससे मत छिपाओ।

५. पति जब आराम करता हो तो बिना बुलाये उनके पास मत जाओ।

यदि इन बातों को दोनों पक्ष समान रूप से ध्यान में रखें, तो कोई कारण नहीं कि दाम्पत्य-जीवन में स्नेह-प्रेम की सृष्टि न हो सके।

दाम्पत्य-जीवन में सुख-सृष्टि कैसे हो ?

जीवन में कई सुख-दुःख, उतार-चढ़ाव और अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों का आना-जाना बना रहता है। दोनों ही स्थितियाँ ऐसी हैं, जिनको अकेले नहीं झेला जा सकता है। सुख मिलता है, तो लगता है कि उसे कोई बँटाने वाला भी होना चाहिए। बिना बाँटे सुख का परिपूर्ण आनन्द मिलता ही नहीं। दुःख आता है तब भी लगता है कि यदि इस दुःख का कोई भागीदार नहीं हुआ तो जीवन टूट ही जायेगा। सुख की तरह दुःख में भी कोई भागीदार बने, यह आवश्यक लगता है और इतना आवश्यक लगता है कि इसके बिना काम ही नहीं चलता। प्रकृति ने मनुष्य को गढ़ा ही इस विशेषता से है कि वह किसी भी उपलब्धि या स्थिति को, परिणाम या प्रतिक्रिया को अकेले झेल ही नहीं सकता। सम्भवतः इस नैसर्गिक आवश्यकता ने मनुष्य को परिवार बसाने के लिए प्रतिक्रिया हो और तब से अब तक विवाह एक ऐसी मैत्री का पुण्य आरम्भ अवसर बना हुआ है, जिसमें अपने साथी की समस्त त्रुटियाँ, कमजोरियाँ और कमियाँ नजर-अन्दाज कर दी जाती हैं।

मनुष्य अपने सामाजिक जीवन में कई मित्र बनाता है। उनमें से कई मित्रताएँ कुछ समय तक ही चल पाती हैं, कई छोटे-मोटे कारणों से टूट जाती हैं, कई औपचारिक व्यवहार तक ही सीमित रहती हैं, कहने का अर्थ यह है कि मित्रताएँ बनती और टूटती रहती हैं। कारण कि अधिकांश मैत्री सम्बन्ध स्वार्थ के कारण स्थापित किये जाते हैं और स्वार्थ पूरा होते ही अथवा स्वार्थ साधन में थोड़ी रुकावट आते ही ये टूट जाते हैं। परन्तु विवाह के द्वारा एक ऐसी मैत्री सम्बन्ध की स्थापना की जाती है, जो निस्वार्थ भाव से आरम्भ होता है और आत्मत्याग से पोषित, प्रेम से सिंचित तथा पल्लवित-पुष्पित होता है। ये भाव जीवनभर बने रहें तो दाम्पत्य जीवन में अनवरत सुख-शान्ति और आनन्द-उल्लास के भाव संचरित होते रह सकते हैं।

किन्तु दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिये लोगों दूसरी ही मान्यताएँ रखते हैं। यद्यपि वे मान्यताएँ भ्रान्त ही होती हैं, परन्तु उनके कारण दाम्पत्य-जीवन को सुखमय बनाने वाले आधार तत्त्वों की ओर दृष्टि ही नहीं जाती। फलतः पति-पत्नी एक-दूसरे से असन्तुष्ट, खिन्न और दुःखी बने रहते हैं तथा दाम्पत्य सम्बन्धों को एक दुर्वह भार मानकर जीते रहते हैं। उदाहरण के लिए, समझा जाता है कि सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए प्रचुर मात्रा में धन-सम्पत्ति का होना आवश्यक है। इस मान्यता के कारण सोचा जाता है कि पर्याप्त मात्रा में यदि सुख-सुविधाओं के साधन पास में हों तो व्यक्ति उनका चिरंतन लाभ उठाता रह सकता है और आनन्दित, उल्लसित रह सकता है। यह मान्यता प्रायः व्यक्त और प्रतिपादित की जाती है किन्तु प्रायः गलत ही सिद्ध हुई है। सच तो यह है कि किसी भी दम्पत्ति ने आज तक अनुभव नहीं किया कि धन-सम्पत्ति के अभाव से उनके आपसी सम्बन्ध क्लान्त और क्लेशपूर्ण बने हैं। धनाभाव के कारण उत्पन्न होने वाली पारिवारिक विवशतायें अवश्य कष्ट पहुँचाती हैं, पर कष्ट भी कोई खास प्रभावित नहीं कर पाते, यदि दाम्पत्य सम्बन्ध मधुर और मधुरिम हों तो। पति-पत्नी का परस्पर प्रेम, मधुर सम्बन्ध उन कठिनाइयों के कारण उत्पन्न होते रहने वाले घावों को अनायास ही भरता रहता है।

कुछ लोगों की मान्यता यह भी है कि सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए पति-पत्नी का शिक्षित होना अनिवार्य है। शिक्षित पति-पत्नी अपने दाम्पत्य सम्बन्धों को अधिक सुलझा और निखरा बना सकते हैं। शिक्षित होना ठीक है। पति-पत्नी शिक्षित, सुसंस्कृत हो तो आपसी समझ से कई मतभेदों को निबटा सकते हैं। परन्तु शिक्षित होना ही पर्याप्त नहीं है। दाम्पत्य सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए जो दूसरे तत्त्व आवश्यक हैं, यदि उनका अभाव रहा तो शिक्षा उल्टे सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा कर सकती है। शिक्षा दूसरे गुणों के साथ मिलकर दाम्पत्य सम्बन्धों को मधुर बना सकती है तो कुछ और तत्त्वों के मिल जाने से उसे नीरस भी बना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है। एक बारगी शिक्षा नहीं भी हो और दाम्पत्य सम्बन्ध उन उपेक्षाओं को पूरा करते चल रहे हों जोकि उसके लिए आवश्यक हो तो पति-पत्नी अशिक्षित रहते हुए भी सुखी और प्रेमपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं। करोड़ों लोग अशिक्षित रहते हुए भी दाम्पत्य-जीवन को सफलतापूर्वक जी रहे हैं, जबकि लाखों शिक्षित व्यक्ति उन गुणों के अभाव में तनावपूर्ण जीवन जी रहे हैं।

पति-पत्नी जिस भावना सूत्र से एक-दूसरे को बँधते हैं, दो शरीर एक प्राण बनते हैं, वह भाव अमृत है प्रेम। प्रेम ही वह सूत्र है, जो पति-पत्नी को एक-दूसरे से बाँधता है न केवल उन्हें एक सूत्र में आबद्ध करता है, वरन् आत्मोसर्ग, त्याग और निस्वार्थ भावना को भी जन्म देता है। इसका आधार न तो उच्च शिक्षा है न माँसल सौन्दर्य वरन् इसका उद्भाव एक-दूसरे का दृष्टिकोण समझने और एक-दूसरे की सुविधाओं के लिए अपनी आवश्यकताओं की उपेक्षा करने, उन्हें वायदे का कम देने से होता है। पति-पत्नी के स्वभाव एक-दूसरे से मिलते सामंजस्य रखते हों, दोनों एक-दूसरे का आदर करते हों, एक-दूसरे के लिए आत्मोत्सर्ग की भावना रखते हों तो दीन-हीन स्थिति में रहते हुए कम साधनों में हँसी-खुशी का जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

अशिक्षित और गरीब दम्पत्तियों के जीवन में जो प्रेम, जो आनन्द, जो उल्लास और जो प्रफुल्लता रहती है उसका आधार यही प्रेम है। सौभाग्य कहा जाना चाहिए कि औसत, भारतीय परिवारों में तथा कथित आधुनिक सभ्यता का प्रभाव अभी नहीं आ पाया है। लड़कियों को यह भावनिष्ठा विरासत में मिलती है कि और ये इन्हीं के बल पर पति की सर्वस्व स्वामिनी बनती हैं और उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार मोड़ लेती, ढाल देती हैं।

आधुनिकता से प्रभावित परिवारों में दाम्पत्य-जीवन का आनन्द स्रोत सूख जाने का कारण यह नहीं है कि उनमें एक-दूसरे के प्रति कोई भावना नहीं होती, भावनाएँ होती तो हैं पर दुर्भाग्य से अपनी संगी-साथी के प्रति त्याग, उत्सर्ग के स्थान पर महत्त्व उनके स्वार्थ को दिया जाने लगता है, आधुनिक सभ्यता से प्रभावित तथाकथित शिक्षित परिवारों में पति-पत्नियों के बीच व्याप्त विग्रह का एक ही कारण है, वे एक-दूसरे की सुख-सुविधाओं के स्थान पर अपने स्वार्थ और अहं को महत्त्व देने लगते हैं, फलस्वरूप टकराव उत्पन्न होता है और विग्रह खड़ा होता है। कहना नहीं होगा कि ऐसा दाम्पत्य-जीवन आत्मिक कम व्यावसायिक सम्बन्धों जैसा अधिक होता है, जो अपनी स्वार्थपूर्ति में तनिक-सी भी कमी आने पर चटखने लगता है।

सुन्दर, कमनीय देह और उजला रूप भी सुखी मधुर दाम्पत्य-जीवन के लिए आवश्यक नहीं है, असुन्दर और कुरूप जोड़ियाँ भी प्रेम में पगी हुई हँसी-खुशी का जीवन व्यतीत करती देखी जा सकती हैं, जबकि रूपवान और सुन्दर दम्पत्ति भी प्रेम के अभाव में क्लेशपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश देखे जाते हैं। प्रायः तो सुन्दर दम्पत्ति जो शारीरिक सौन्दर्य से आकर्षण-आकृष्ट होकर विवाह बन्धन में बँधते हैं, असफल जीवन ही जीते देखे गये हैं। क्योंकि शरीर की सुन्दरता कुछ ही समय तक बनी रहती है और वे प्रेम भावनाओं के विकास की अपेक्षा अपने सौन्दर्य की सार-सम्हाल के लिए ही अधिक प्रयत्नशील रहते हैं। ऐसे दम्पत्तियों के जीवन में दो-चार बच्चे होते ही नरक का-सा वातावरण बन जाता है, क्योंकि तब सौन्दर्य चुक गया होता है और प्रेम भावना का विकास न होने के कारण दोनों एक-दूसरे से जल्दी ऊब जाते हैं। कहने का अर्थ यह नहीं कि सभी 'सुन्दर' जोड़ियाँ असफल दाम्पत्य जीवन जीती हैं। कहा इतना भर जा रहा है कि सुखद और सफल दाम्पत्य जीवन के लिए सुन्दर होना उतना आवश्यक नहीं है जितना कि प्रेम-भावना का होना।

प्रेम भावना का विकास कैसे हो ? कैसे पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति प्रेम का परिचय दें ? इस सन्दर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि आत्मदान प्रगाढ़ प्रेम की आत्मा है। जब प्रेम भावना विकसित होने लगती है तो अपने साथी-सहचर का इतना ध्यान रहने लगता है कि अपनी आवश्यकताएँ भी एकदम उपेक्षणीय प्रतीत होती हैं। साथी की सुविधाओं का ध्यान रखना ही तब अपना धर्म बन जाता है और उसमें साथ जीने तथा साथ मरने की भावनिष्ठा विकसित होने लगती है।

विश्वास प्रेम का प्राण है। पति-पत्नी को एक-दूसरे पर इतना प्रगाढ़ विश्वास होना चाहिए कि उसमें दुराव-छिपाव का कहीं कोई नाम ही न रहे, नवदम्पत्तियों में, विशेषतः युवकों में अपनी पत्नी के प्रति सन्देह की भावना रहती है। पत्नी भी यकायक पति पर विश्वास नहीं कर पाती। उसका कारण अपरिचय ही हो सकता है, जैसे-जैसे पति-पत्नी एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में आते चलते हैं वैसे-वैसे विश्वास की भावना की पुष्ट करते चलना चाहिए और अपरिचय से उपजे सन्देह को निर्मूल कर देना चाहिए, उसे जड़ से उखाड़ फेंकना चाहिए। दुराव, छिपाव, दिखावटीपन और बनावटी व्यवहार की नीति जितनी जल्दी बदली जा सके उतनी जल्दी बदल डाली जाय और एक-दूसरे के प्रति प्रगाढ़ विश्वास उत्पन्न किया जाय।

प्रगाढ़ विश्वास का पोषक तत्त्व है उदारता। दाम्पत्य-जीवन में कई अवसर ऐसे भी आते हैं जब मन में सन्देह का कोई बीज पड़ता है, पति या पत्नी संकोच के कारण एक-दूसरे से कुछ पूछने-बताने में कतराते हैं। दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने में यह स्थिति बाधक है। सन्देह का बीज पड़ते ही यदि निकाल नहीं फेंका गया तो वह अंकुरित होकर घृणा और अविश्वास के वृक्ष के रूप में बदलने लगता है और जरा-जरा-सी बातों पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक-दूसरे को लेकर आक्षेप करने, छींटाकशी की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। यह प्रवृत्ति घृणा, अविश्वास को इतना अधिक बढ़ा देती है कि विग्रह की स्थिति तक बन जाती है। उचित तो यह है कि सन्देह का वातावरण बनने ही न दिया जाए और 'सन्देह' पैदा करने वाली स्थितियों के प्रति पहले से ही सतर्क रहा जाए।

सन्देह की स्थिति क्यों उत्पन्न होती है ? सन्देह की स्थिति उत्पन्न होती है पति या पत्नी द्वारा एक-दूसरे से किसी भी प्रकार की कोई बात दुराने-छुपाने पर। इस सन्दर्भ में सतर्कता यह बरती जाए कि पति-पत्नी एक-दूसरे से कोई भी दुराव-छिपाव नहीं रखें। जब एक-दूसरे के प्रति मन, प्राण से समर्पित होने का व्रत लिया गया है, तो ऐसी कौन-सी बात हो सकती है, जिसे अपने साथी से छुपाने की आवश्यकता पड़ती हो। इस पर भी यदि किसी पक्ष को कोई सन्देह उठे तो सम्मानपूर्वक दूसरे से पूछ निवारित कर लेना चाहिए। ये बातें एक-दूसरे से सम्बन्धित हो सकती हैं। इसमें न तो किसी मध्यस्थ की आवश्यकता होनी चाहिए और न किसी माध्यम की। मध्यस्थ और माध्यमों के द्वारा सन्देह दूर होने के स्थान पर अविश्वास की खाई और चौड़ी होने की ही सम्भावना ज्यादा रहती है।

उपेक्षापूर्ण व्यवहार भी पति-पत्नी में सन्देह उत्पन्न करने वाला दूसरा बड़ा कारण है। स्मरण रखा जाना चाहिए कि पति-पत्नी के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और पत्नी पति के लिए। सैद्धान्तिक रूप से इस तथ्य को हर कोई स्वीकार करता है, किन्तु व्यवहारतः इसकी प्रायः उपेक्षा ही की जाती है। परिणामस्वरूप कई बार ऐसी स्थितियाँ बन जाती हैं जिसमें उपेक्षा, मनमुटाव भी पैदा कर देती है। जैसे पत्नी बीमार है किन्तु पुरुष अपने काम-काज में इतना व्यस्त है कि उसे पत्नी के स्वास्थ्य की परवाह करने की ही फुरसत नहीं मिलती। इतना समय निकाला तो जा सकता है परन्तु पति यदि पत्नी की अस्वस्थता को बहुत हल्के रूप से लेता है, तो समय निकालने की आवश्यकता ही नहीं सूझती। स्वाभाविक ही इस स्थिति में पत्नी अपने को उपेक्षित अनुभव करेगी और इसकी प्रतिक्रिया अन्य-अन्य रूपों में व्यक्त होती है। अस्तु, सन्देह, अविश्वास और प्रतिकूल प्रभाव के उत्पादक कारणों से यथासम्भव बचते हुए दाम्पत्य-जीवन के प्रति यह मान्यता रखनी चाहिए कि पति-पत्नी एक-दूसरे के अभावों की पूर्ति और परेशानियों में सहायक की भूमिका लेकर जीवन संग्राम में उतरते हैं। एक-दूसरे के प्रति अगाध निष्ठा, प्रगाढ़ प्रेम और सघन विश्वास रखकर ही वे सफल दायित्व जीवन जी सकते हैं।

पति-पत्नी एक युग्म है। दोनों में प्रकृति ने भिन्न-भिन्न गुण और भिन्न विशेषताएँ समाविष्ट कर दी हैं। इन भिन्नताओं को एक-दूसरे का पूरक बनाया जा सके और एक-दूसरे की कमजोरियों को सहिष्णु भाव से दूर करने के लिए प्रयास किया जाता रहे तो पति-पत्नी दोनों का विकास होता चलता है और दाम्पत्य-जीवन में सुख-शान्ति की सृष्टि होती रह सकती है।

पति ही नहीं, पति के कर्त्तव्य भी हैं

"अपने प्रति हम जैसा व्यवहार चाहते हैं वैसा व्यवहार दूसरों के साथ करें।" सिद्धान्त प्रायः बहुत कम पालन किया जाता है। अन्यों के साथ की बात तो दूर रही, अपनों के साथ भी इसे व्यवहृत नहीं किया जाता। पुरुष का निकटतम सम्बन्धी उसकी स्वयं की पत्नी होती है। यह उसके जीवन की साथी होती है। आत्मीय भावों को जानने-समझने तथा उसके सुख-दुःख में हाथ बँटाने वाली होती है। किन्तु पुरुष अपने पुरुषत्व का अखण्ड स्वामित्व अपनी पत्नी पर जमाये रखकर उसे अपनी दासी एवं सेविका समझते हैं। वो हमेशा ही उससे काम कराते रहते हैं। थोड़े-थोड़े एवं छोटे-छोटे कामों के लिए उस पर आश्रित रहते हैं। इन कार्यों में उससे थोड़ी-सी भी भूल हो जाती है तो उसे लेकर लांछित किया जाता है। उसका तिरस्कार किया जाता है। बात-बात में पत्नी को अपमानित होना पड़ता है।

नारी को सहनशीलता, त्याग, ममता, सहृदयता की देवी कहकर पुरुष अपने आतंक को बनाये रखने में ही अपना स्वाभिमान समझते हैं। वे पत्नी से यह इच्छा रखते हैं कि वह अपने स्वयं के अस्तित्व को भूलकर केवल हमारी पूजा करती रहे। चाहे इसके लिए उसे कितने ही कष्टों एवं दुःखों को क्यों न सहन करना पड़े। हृष्ट-पुष्ट स्वस्थ पुरुष भी रोगी, कमजोर पत्नी से अपनी सेवा कराने से लेकर गृहस्थी के सारे कामों को कराते रहने की इच्छा रखते हैं। ऐसा करते भी हैं। अन्य कामों की बात अलग है वे स्वयं अपने हाथ पानी पीने में भी अपने पुरुषत्व की हानि समझते हैं।

जहाँ पुरुष की इतनी प्रबल धारणा रहती है, वहाँ नारी की भी कुछ न कुछ इच्छा होगी ही। वे भी अपनी इच्छाओं के अनुरूप पति चाहती होंगी। इस बात की अपेक्षा नहीं की जा सकती। वे भी चाहती हैं कि उनका पति सच्चा जीवन साथी, कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चलने वाला, जीवन यात्रा में दाम्पत्य रथ को बढ़ाते हुए स्वर्गीय सुखों की वृद्धि करने वाला मिले। ऐसे सच्चे सहचर को पाकर वे अपने स्वयं का गौरव अनुभव करती हैं तथा ऐसे पति की पत्नी बनने का गर्व। कहीं ऐसा तो नहीं कि केवल पति ही अच्छी पत्नी चाहे और पत्नी अच्छा पति न चाहे।

व्यवहार जगत में ऐसा ही हो रहा है कि पति की सारी इच्छाएँ पूर्ण होनी चाहिए। इनमें अनुरूपता न हो पाने पर पत्नी को तंग किया जाना, मारना-पीटना,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तिरस्कार किया जाना होता ही है, तलाक आदि तक की सजाएँ भी दी जाती हैं। इसका दूसरा पक्ष यह है कि पत्नी की इच्छाओं की कोई कीमत नहीं की जाती। वह खरीदी गयी गाय और पैर की जूती ही मानी जाती है। नारियाँ भी अपनी सहनशीलता, सरलता, ममता तथा कोमलता से पुरुष के निंद्य अत्याचारों को सहती रहती है। इन यातनाओं को सहते हुए भी आत्म समर्पित होकर अपने दुःखों को भूल पति के सुखों का ध्यान रखती हैं। किन्तु पति का कठोर हृदय उनकी दीनता को देखकर भी पसीजता नहीं। वह इस तरह के उत्पीड़क कार्य करते हुए स्वयं का गौरव अनुभव करता है।

गृहस्थी से सम्बन्धित अनेकों कार्यों का संचालन स्वयं नारी को ही करना पड़ता है। उसके बनने-बिगड़ने से लेकर सुरक्षा व्यवस्था तक की अनेकों समस्याएँ एवं समाधान सामने आते हैं। इनमें प्रत्येक सफलताओं का श्रेय स्वयं पुरुष ले लेता है तथा असफलताओं का दोष नारी के मत्थे मढ़ दिया जाता है। नारी इसी में सन्तोष कर लेती है कि उसका पति उसे भोजन का आश्रय दे देता है। किन्तु क्या भोजन भी उसे वही मिल पाता है जो उसका पति स्वयं खाता है, रूखा-सूखा बचा हुआ जितना भी उसे मिल जाता है उसी में वह सन्तोष कर लेती है किसी प्रकार की नुक्ताचीनी नहीं करती।

पुरुष अपने आपको पत्नी के लिए देवता से कम नहीं मानता। पत्नी स्वयं भी उसे देवता ही मानती है एवं अपनी सेवा में किसी प्रकार की कमी नहीं आने देती। वह सेवा में ही अपना उद्धार मानती है कि पति पत्नी से केवल मशीन की तरह ही काम करवाता है। उसके थकने की भी कोई कल्पना नहीं करता। अपने धर्म में कमी नहीं आने पाये, इसलिए वह आज्ञापालन करती रहती है। पुरुष सोचता है कि उसकी न कोई भावना-इच्छा है, न वह अच्छे व्यवहार की अधिकारिणी और न ही सुख-सुविधाओं को भोगने वाली। यन्त्रवत् काम करते रहने पर भी उससे व्यवस्था में थोड़ी-सी भूल करते रहने पर भयंकर गर्जना करने वाले यह भूल जाते हैं कि नारी के बिना उनका गृहस्थ जीवन अधूरा है। इसमें उसका सहयोग असाधारण है।

जहाँ पत्नी से अनेकों इच्छाएँ, आशाएँ अपेक्षित हैं वहाँ मानवीयता के आधार पर पति से भी अनिवार्य। उन्हें चाहिए कि वे नारी को अपनी अर्द्धांगिनी समझकर उसके सुख एवं विकास हेतु भावनाओं को समझें और अपना सहयोग दें। घर-गृहस्थी के छोटे-बड़े कामों में हिस्सा-बाँट कर लेना ही महानता की वृद्धि करता है। किसी काम में कोई भूल या गल्ती हो जाये तो उसे प्रेम से समझाकर, सुधार करके क्षमा कर देना समझदारी है। कभी-कभी कोई अच्छे काम किये जाने पर पत्नी की प्रशंसा करके कुछ उपहारादि की व्यवस्था कर देना, उसके सम्मान को बढ़ाने तथा विकास में प्रोत्साहन हेतु बड़ा ही लाभदायक होता है। ऐसा तो है नहीं किन्तु इसके विपरीत उन्हें हमेशा गाली तथा तिरस्कार सहना पड़ता है। इससे मन कुण्ठित हो जाता है और सहयोग के बजाय असहयोग का वातावरण बन जाता है।

अपने कर्तव्यों की उपेक्षा करते रहना एवं अधिकारों का ही ठप्पा जमाना अन्याय एवं असंगत है, एकपक्षीय भी। स्वयं पुरुष को इस मामले में उदारतापूर्वक व्यवहार करके आदर्श पति की भूमिका निभानी चाहिए। यह नारी की इच्छाओं की पूर्ति करने, पारिवारिक सुख-शान्ति की वृद्धि एवं उन्नति करने का उत्तम माध्यम है। नारियाँ भी अपने पति में कुछ गुणों की अपेक्षा करती हैं। जिसके सहारे अपने जीवन की नाव बाँधी जाती है, उस खूँटे की मजबूती की आशा रखना भी स्वाभाविक है। पति में वे उदारता, विनोदप्रियता, व्यवहार कुशलता, सहयोगिता, परिश्रमशीलता, कर्त्तव्यपरायणता, ईमानदारी, शारीरिक पुष्टता, शिष्टता एवं शुद्ध निष्कपट जीवन आदि गुणों को चाहती हैं। नारी का सारा जीवन ही पुरुष की उन्नति-अवनति, आदर-निरादर, सफलता-असफलता, सुख-दुःख के साथ बँधा होता है। अतः पुरुष अपनी गैर जिम्मेदारी से नारी के जीवन को घृणित, अपमानित, दुःखित न बनाये, इसका ध्यान रखना ही उसका परम कर्त्तव्य है।

कम पढ़ी-लिखी, कुरूप, काली पत्नी से सम्बन्ध स्थापित हो जाने पर उसे निभा लेना पुरुष के लिए गौरव की बात है। रूप लोलुपता के मोह में अनेकों निर्दोष महिलाएँ तिरस्कृत होती रहती हैं और उनका जीवन का सारा सुख नष्ट हो जाता है। यह कैसी विडम्बना है कि पुरुष स्वयं कुरूप रहने पर भी सुन्दर-लावण्य युक्त पत्नी चाहता है। रूप-सौन्दर्य से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। किन्तु इस बात को लेकर पारिवारिक सुखों की बलि दे देना कितना तर्कहीन है।

मानवीय जीवन में देने से ही सच्चा सुख मिलता है। अन्यों से लेने में नहीं। परिवार की इस छोटी-सी दुनिया में भी उसका पालनकर्त्ता विकृत दृष्टिकोण वाला रहे तो उसके आश्रितों की क्या दुर्दशा हो सकती है। यह सभी समझ सकते हैं। पति-पत्नी के दोनों पक्षों से विचारों की साम्यता तथा सेवा-सहयोग, आदर-सम्मान देते रहने का कर्त्तव्य निभाया जाय तो कितना सुख प्राप्त किया जा सकता है ? न तो पुरुष स्वयं अपने आप में पूर्ण है न नारी। दोनों के समन्वय से ही पूर्ण गृहस्थ बनता है। फिर नारी से ही सारी अपेक्षाएँ करना निराधार है। वह अपने माता-पिता एवं सारे रिश्ते-नातों को छोड़कर जिसके आश्रित रहने आयी है, वह भी उसका सहयोग न करे तो यह कितना अव्यावहारिक है ? पिछले दिनों नारी को तिरस्कृत करते रहकर पुरुष ने काफी सुख भोगा है। अब समय नहीं रहा कि वह नारी को पीड़ा देता रहे। चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक। उसे जीवन सहचरी समझे तथा अपना अहं त्यागकर उसका सम्मान करे। पत्नी की इच्छाओं के अनुरूप अपने गुणों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकसित कर दुर्गुणों को त्यागने में वह अपना कर्त्तव्य समझे और गृहस्थ धर्म का पालन करे।

दाम्पत्य-धर्म की मर्यादाएँ समझें

सुख-शान्तिपूर्ण, सुविकसित और सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य परिवार बसाता है, विवाह करता है, जीवनसाथी चुनता है और सुख-दुःख में अपना अलग-अलग आत्मीय भागीदार बनाता है। पति-पत्नी अलग-अलग व्यक्ति होते हुए भी आत्मीयता, प्रेम और स्नेह के प्रगाढ़ बन्धनों में इस प्रकार बँध जाते हैं कि गंगा-जमुना के संगम की तरह एकाकार हो जाते हैं। विवाह का प्रयोजन ही यह रहता है कि हमारा साथी दुःख, तकलीफों को बँटाएगा और जीवन में आने वाले तनाव, बोझ, चिन्ताएँ, परेशानियाँ तथा कष्ट हल्के होंगे। पति सोचता है कि पत्नी के रूप में उसे प्रेम करने के लिये परमात्मा का एक उपहार मिला है और पत्नी सोचती है कि उसे अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने के लिए एक इष्ट आराध्य उपलब्ध हुआ है। कितनी सुखद होती है विवाह के समय की जाने वाली कल्पनाएँ और आशाएँ कि हम ऐसा घर बसायेंगे। आपस में प्रेम से रहेंगे, एक-दूसरे के लिये त्याग, बलिदान की प्रतिस्पर्धा करेंगे। घर-आँगन में जब बच्चों की किलकारियाँ गूँजेंगी तो उनमें अपना सब दुःख-दर्द भुला देंगे। इन आशाओं और कल्पनाओं के सुखद हिंडोलों में झूलते हुए युवक और युवती परिणय सूत्र में बँधते हैं और एक-दूसरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए जीवन विकास के पथ पर अग्रसर होते हैं।

घर में सन्तान का जन्म होता है तो खुशियाँ समेटे नहीं सिमटतीं। कल्पनाएँ उठती हैं कि बच्चे बड़े होंगे तो बुढ़ापे में सहायक होंगे। छुटपन में उनकी बाल सुलभ क्रीड़ाएँ मन को आनन्दित करेंगी, गुदगुदाएँगी और जब वे अपने-अपने पैरों पर खड़े हो जायेंगे, तो निश्चितता पूर्वक जीवन का उत्तरार्ध उनकी श्रद्धा और परस्पर के प्रेम के सहारे सुखपूर्वक गुजार लेंगे। इस प्रकार व्यक्तिगत आनन्द और समाज के प्रति कर्त्तव्यों के पालन का सन्तोष अनुभव करते हुए मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने के लिये ही ऋषि-महर्षियों ने विवाह संस्था का गठन किया था। ताकि मनुष्य इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने का गौरव अनुभव करते हुए सौद्देश्य जीवन जी सके।

मनुष्य जीवन का अर्थ केवल शरीर और साँस का समागम मात्र तो नहीं है। यदि जीवन का यही अर्थ होता रहा तो बिना सिर पैर के जमीन पर रेंगने वाले कीड़े-मकोड़े मनुष्य से किस बात में छोटे या हीन हैं ? उनमें और मनुष्य में क्या अन्तर रह जाता है ? वे तो फिर भी मनुष्य की अपेक्षा एक तरह से खुशी, सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करते हैं। जिस प्रकार जो कुछ मिल जाता है, उसे खा-पी लेते हैं। वंश वृद्धि करते और मर जाते हैं। मनुष्य जीवन का भी यही प्रयोजन रहा होता तो विवाह संस्था के गठन की क्या आवश्यकता थी ? किन्तु नहीं, मनुष्य सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसे परमात्मा ने शक्ति, बुद्धि-विवेक और संगठन का अधिकार दिया है तथा किन्हीं उत्तरदायित्वों को सौंपते हुए उसे सृष्टि का मुकुट-मणि बनाया है।

उन दायित्वों को कुशलतापूर्वक पूरा किया जा सके इसके लिए आवश्यक है कि मनुष्य शक्तिमान, व्रतवान और कर्त्तव्यवान बन कर दिनों-दिन उन्नति करता जाय और अपनी प्रतिभा तथा योग्यता के बल पर सौंपे गए उत्तरदायित्वों को पूरा करे। यह उत्तरदायित्व परमात्मा की इस रम्यवाटिका सृष्टि-सुषमा को और अधिक सुन्दर बनाने का ही है। इस उत्तरदायित्व को पूरा किये बिना जो दी गई सुख-सुविधाओं और अधिकारों का उपयोग कर रहा है वह न केवल चोर है। आत्मघाती भी है क्योंकि सौंपे गये कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए दुरुपयोग से वह अपना भी कोई भला नहीं कर पाता। जीवनसाथी चुनने और दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने की सुविधा भी उन्हीं अधिकारों या सुविधाओं में से है, जिसका ठीक प्रकार से उपयोग न कर पाने के कारण वह गार्हस्थ्य जीवन को तो खिलवाड़ की तरह जीता ही है, अपने जीवन मनुष्यत्व को भी कलुषित-कलंकित करता है।

क्या कारण है कि विवाह के पीछे जो उद्देश्य निहित हैं वे पूरे नहीं हो पाते हैं। व्यक्तिगत जीवन को सुख-शान्तिपूर्ण बनाकर अधिक सार्थकता और अधिक कुशलता के साथ प्रगति पथ पर अग्रिम हुआ जाना चाहिए था, वह अपेक्षा क्यों पूरी नहीं होती ? विवाह के समय जो कल्पनाएँ की गई थीं, वे क्यों आकाश कुसुम सिद्ध होती हैं ? एक ही कारण है कि न तो मनुष्य जीवन का अर्थ समझा गया और न ही यह सोचा गया कि मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने में दाम्पत्य का किस प्रकार उपयोग किया जाए ? मनुष्य जीवन का स्वरूप समझाते हुए ऋषियों ने गाया है—

समास्त्वाग्न ऋतवो वर्धयन्तु
संवत्सरा ऋषयो यानि सत्या।
सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा
आभाहि व्रत प्रदिशश्चतस्रः।

—अथर्ववेद

अर्थात्—मनुष्यों को चाहिए कि वे श्रेष्ठ जनों से उत्तम शिक्षा प्राप्त कर संकल्पवान, सत्यवान और सत्कर्मशील बनें। इस प्रकार संसार में उन्नति और कीर्ति को प्राप्त करते हुए वे सदैव प्रसन्न चित्त रहें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सूरिरसि वर्धोघा असि तनूपा नोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं काय।।

—अथर्ववेद

अर्थात्—मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिए हे मनुष्यो ज्ञान प्राप्त करो, तेजस्वी बनो और शारीरिक दृष्टि से बलवान बनो। अपनी वर्तमान स्थिति में ही न पड़े रह कर आगे बढ़ने का प्रयास करते रहो।

आगे बढ़ने के लिए, उन्नत स्थिति को प्राप्त करने में निश्चित ही साधन-सुविधा और अवसर की आवश्यकता पड़ती है। उससे भी ज्यादा आवश्यक है एक ऐसे साथी-सहयोगी की जो एक-दूसरे के पूरक बन सकें। इस आवश्यकता को पूरा करने के लिए ही मनीषि-ऋषियों ने विवाह संस्था का प्रचलन किया और आदेश दिया कि—

इषेराये रमस्व सहमे द्युम्नऊर्जे अपत्याय।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम्।।

—यजुर्वेद

अर्थात्—अब (विवाह के बाद) तुम पति-पत्नी शान्तिपूर्वक रहो। विद्यावान बनो। श्रेष्ठ गुणों को धारण कर एक-दूसरे की मंगलकामना करो। धर्मानुसार सुसंतति को जन्म दो, अनियन्त्रित काम सेवन से बचो और अपने जीवन उद्देश्य को प्राप्त करो।

अनियमित कामसेवन से पुरुष का ही नहीं नारी का भी स्वास्थ्य चौपट होता है। शीघ्र ही सुन्दरता बुझ जाती है, फूल-सा खिला चेहरा मुरझा और कुम्हला जाता है। शरीर ढल जाता है और वह असमय ही वृद्धा होकर बीमार रहने लगती है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। घर का काम अस्त-व्यस्त हो जाता है। प्रेम-स्नेह और रस-रीति के स्थान पर कलह-क्लेश, लड़ाई-झगड़ा, कुढ़न और आवेश की वृद्धि हो जाती है। गृहस्थ जीवन को काम क्रीड़ा का आधार मान कर चलने के यह दुष्परिणाम हर उस व्यक्ति को भोगने पड़ते हैं, जो मर्यादा का अतिक्रमण करते रहते हैं। इस तरह मुरझाये, कुम्हलाये, पीले और रोगी चेहरा लिये घूमने वाले व्यक्तियों से कैसे यह आशा की जा सकती है कि वे शक्तिवान, बलवान और कर्तृत्ववान बनकर ऊँचे उठेंगे तथा समाज व राष्ट्र कोई ऊँचा उठाएँगे ?

अनियमित कामसेवन का एक दुष्परिणाम अधिक संतानोत्पादन के रूप में भी सामने आता है। मनुष्य के लिए एक अपना ही विकास करना कठिन होता है तो वह ढेरों बच्चे पैदा कर उनका विकास किस प्रकार कर सकता है ? इस स्थूल सत्य को तो एक साधारण व्यक्ति भी समझ पाता। माना कि आजकल अनचाही संतान को रोकने के लिए कई कृत्रिम उपाय निकल आए हैं परन्तु अनियन्त्रित यौनाचार से शारीरिक और मानसिक शक्तियों का क्षरण तो होता ही है। उस क्षरण को रोकने का कोई उपाय नहीं है।

अस्तु, दाम्पत्य जीवन का उद्देश्य समझते हुए उसकी मर्यादाओं में रहते हुए जीवन साथी का लाभ आत्मिक और मानसिक प्रगति के लिए उठाना चाहिए। वंश वृद्धि तो विवाह का एक छोटा-सा और गौण प्रयोजन है। मूल प्रयोजन तो एक-दूसरे का विकास, एक-दूसरे का हित साधन, प्रेम, त्याग, बलिदान और उत्सर्ग जैसे गुणों का अभिवर्धन है। जिसके आधार पर वेद भगवान ने संकल्पवान, सत्यवान, सत्कर्म परायण, मेधावी, बलवान और प्रगतिशील बनने का आदेश दिया है।

सुखी दाम्पत्य-जीवन इस प्रकार बनता है

सुख के साधनों के साथ स्नेह, प्रेम और आत्मीयपूर्ण भावनाओं के सम्मिश्रण को ही स्वर्ग कहा जा सकता है। यह स्वर्ग हमारे घर में ही मौजूद है, हम भले ही न देख पाते हों, यह स्वर्ग है—दाम्पत्य-जीवन का सुख, किसी ऊपर वाले स्वर्ग से कम सरस, सुखद और रुचिपूर्ण नहीं है।

इस स्वर्ग को बनाने के लिए पति-पत्नी को अपने कर्त्तव्यों का पालन करना होगा, हम अपने कर्त्तव्यों का पालन करके ही अपने घर को स्वर्ग बना सकते हैं, यह कर्त्तव्य कई प्रकार के होते हैं।

दाम्पत्य-जीवन का महत्त्व मनुष्य की अनेकों कोमल एवं उदार भावनाओं, विचारशीलता तथा सद्वृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेकों दैवी गुणों पर दाम्पत्य-जीवन की नींव लगती है।

दाम्पत्य-जीवन यथार्थ की धरती पर कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित रूप है। जो स्त्री और पुरुष के परस्पर स्नेह, आत्मीयता, त्याग, बलिदान, जीवन की कठोरताओं और शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उन्हें सरस और स्वर्गीय बना देता है। अनेकों कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पग-पग पर नई आशा, नई उमंग, नई प्रेरणा जगी रहती है। पुरुष-नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेवा से सशक्त बना रहता है तो नारी-पुरुष के स्नेहपूर्ण संरक्षण, आत्मीयता, आदर-सम्मान को पाकर सबला, देवी, गृहिणी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति-पत्नी की परस्पर आलोचना दाम्पत्य-जीवन के मधुर सम्बन्धों में खटास पैदा कर देती है। इससे एक-दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी पत्नी की बात-बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन-सहन,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओढ़ने-पहनने, बोल-चाल आदि तक में नुक्ताचीनी करते हैं। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की उपस्थिति उन्हें बोझ-सी लगती है, वे उनकी उपेक्षा तक करने लगती हैं। इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा, आलोचना करना भी इतना बुरा है। पुरुषों को अपने काम से थककर घर आने पर उसे घर में प्रेम एवं उल्लास का समुद्र लहराता यदि मिले तो उनकी दिनभर की थकान, क्लान्ति, परेशानी उसमें घुल जाती है। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु आलोचना एवं व्यंग्यवाण का सामना करना पड़े तो उस व्यक्ति की क्या दशा होगी ? इसका अनुमान तो कोई भुक्तभोगी ही लगा सकता है।

पति-पत्नी की एक-दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। जब पति-पत्नी एक-दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन-सहन पर सन्देह करने लगते हैं तो पारस्परिक मधुर सम्बन्धों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। इससे दाम्पत्य-जीवन की सुख-शान्ति तो नष्ट होती ही है कालान्तर में घृणा, अलगाव, असहयोग, झूँठ बोलना, धोखेबाजी के रूप में अनेक दुर्भावनाओं की सृष्टि होती है। वस्तुतः परस्पर सचाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारतापूर्ण क्षमा से ही दाम्पत्य-जीवन निभता है।

सफल दाम्पत्य-जीवन के लिए परिष्कृत भावनायें और परिमार्जित दृष्टिकोण आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव मिलते हों, एक-दूसरे के लिए आत्म-दान की भावना हो तो अल्प-साधन, कम शिक्षा और स्वल्प सौन्दर्य वाले दम्पत्ति भी मस्ती का, हँसी-खुशी का जीवन जी सकते हैं। विवाहों में जो कर्मकाण्ड, आदर्श और संस्कार डाले जाते हैं, उनका उद्देश्य भावनात्मक दृष्टि से स्त्री और पुरुष को चारों ओर से खींचकर एक केन्द्र-बिन्दु पर लाना ही होता है। जिन घरों में उन आदर्शों पर अमल होता है, वहाँ आमोद-प्रमोद, हास-विलास का जीवन सदैव उभरता हुआ रहता है। उन घरों में स्वर्ग जैसी परिस्थितियों का रसास्वादन किया जाता है।

आज के पारिवारिक जीवन को फिर से नया रूप देने की आवश्यकता सभी विचारवान पुरुष अनुभव कर रहे हैं। लोगों को शिक्षित बनाने, आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने के भी अनेक कार्य सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर चल रहे हैं किन्तु गृहस्थ जीवन को सुव्यवस्थित, सुखी एवं सन्तुष्ट बनाने के लिए प्रेम, आत्मीयता के अभाव में सारी योजनाएँ विफल ही लग रही हैं। दाम्पत्य-जीवन को फिर से सुदृढ़ बनाने के लिए, फिर से पति और पत्नियों को गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन को प्राथमिकता देनी होगी। दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए धन जुटायें, पारिवारिक शिक्षा पर ध्यान दें और भी जो साधन उचित हों ग्रहण करें। यह न भूलें कि पारस्परिक प्रेम, आत्मीयता के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सफल न होगा। इसके लिए प्रेम, विश्वास, सहिष्णुता, उदारता और आत्म-त्याग का आश्रय लेना पड़ेगा। इसी के आधार पर घरों में स्वर्ग उतरेगा।

दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने के लिए, पति-पत्नी को अपने कर्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए तभी घर में स्वर्ग होने की कल्पना पूर्ण हो सकेगी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य जीवन की असफलता—कारण और निवारण

दाम्पत्य जीवन की असफलता का मूल कारण

दाम्पत्य जीवन के ऊपर पारिवारिक, सामाजिक, व्यक्तिगत सभी तरह की उन्नति, विकास निर्भर करते हैं। पति-पत्नी के सहयोग, एकता, परस्पर आत्मोत्सर्ग, त्याग, सेवा आदि से दाम्पत्य जीवन की सुखद और स्वर्गीय अनुभूति सहज ही की जा सकती है। इससे मनुष्य के आन्तरिक और बाह्य जीवन के विकास में बड़ा योग मिलता है। सभी भाँति स्वस्थ, सन्तुलित, सुन्दर दाम्पत्य जीवन स्वर्ग की सीढ़ी है और मानव विकास का प्रेरणा स्रोत है।

जीवन लक्ष्य की लम्बी मंजिल को तय करने के लिए पति-पत्नी का अनन्य संयोग यात्रा को सहज और सुगम बना देता है। नारी शक्ति है तो पुरुष पौरुष। बिना पौरुष के शक्ति व्यर्थ ही धरी रह जाती है, तो बिना शक्ति के पौरुष भी किसी काम नहीं आता। वह अपंग है। शक्ति और पौरुष का समान प्रवाह, संयोग, एकता, नव-सृजन के लिए—नव-निर्माण के लिए आवश्यक है। इनकी परस्पर असंगति, असमानता ही अवरोध, हानि, अवनति का कारण बन जाती है। पति-पत्नी में यदि परस्पर विग्रह, आपा-धापी, स्वार्थपरता, द्वेष, स्वेच्छाचार की आग सुलग जायगी तो दाम्पत्य-जीवन का सौन्दर्य विकास, प्रगति, महत्त्वपूर्ण संभावनाओं का स्वरूप अपने गर्भ में ही नष्ट हो जायगा।

पति-पत्नी संसार पथ पर चलने वाले जीवन रथ के दो पहिए हैं, जिनमें एक की स्थिति पर दोनों की गति-प्रगति निर्भर करती है। दोनों का चुनाव जितना ठीक होगा, दाम्पत्य जीवन उतना ही सुखद, स्वर्गीय उन्नत और प्रगतिशील बनेगा। दोनों में से एक भी अयोग्य, कमजोर हो तो दाम्पत्य जीवन का रथ डगमगाने लगेगा और पता नहीं वह कहीं भी दुर्घटनाग्रस्त होकर नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा अथवा मार्ग में ही अटक जायगा। इससे न केवल पति-पत्नी वरन् परिवार, समाज के जीवन में गतिरोध पैदा होगा। क्योंकि दाम्पत्य जीवन पर ही परिवार का भवन खड़ा होता है और परिवारों से ही समाज बनता है। इसलिए पति-पत्नी का चुनाव एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

अक्सर देखा जाता है कि लड़के-लड़कियों के सम्बन्ध उनके माँ-बाप ही तय करते हैं। वर पक्ष वालों ने गोरी सुन्दर लड़की, मालदार घराना देखा, लड़की के माँ-बाप ने पढ़ा-लिखा, सुन्दर लड़का देखा और सम्बन्ध तय कर लिए। धूम-धड़ाके के साथ विवाह आयोजन होते हैं। लम्बी-चौड़ी दावतें, खर्च, गाना-बजाना सभी कुछ होता है। किन्तु विवाह हुए कुछ ही दिन समाप्त नहीं होते हैं कि पति-पत्नी में लड़ाई, झगड़े, मन-मुटाव, घृणा, द्वेष के विषाक्त कीटाणु फैल जाते हैं। यही प्रवृत्तियाँ एक दिन प्रकट में होने लगती हैं। सारे घर को मालूम होने पर घर वाले बहू को उल्टा-सीधा सुनाते हैं, गाली देते हैं। बात लड़की के माता-पिता तक पहुँचती है तो बेचारे सिर पर हाथ धर कर रोते हैं और कहते हैं "इतना सारा धन पानी की तरह बहाकर भी लड़की को कुँए में फेंक दिया।" पति-पत्नी ही नहीं दोनों परिवार दुःख, क्लेश, चिन्ता, शोक के अड्डे बन जाते हैं। दम्पत्ति मन ही मन अपने दुर्भाग्य पर रोते हैं। परस्पर के क्लेश और लड़ाई-झगड़े में उनके स्वप्नों के महल तहस-नहस हो जाते हैं। कइयों को शारीरिक और मानसिक रोग धर दबाते हैं और वे अल्पकाल में काल-कवलित हो जाते हैं। एक छोटी-सी भूल, पति-पत्नी का स्वभाव, गुण, कर्म के आधार पर चुनाव न करना, अनमेल विवाह करना ही इसका मुख्य कारण है। दही और दूध को एक जगह मिलाकर रखने से खराबी पैदा होगी ही। आग और बारूद का अस्तित्व एक जगह कर देना विनाश को निमन्त्रण देना है। इसी तरह अनमेल विवाह करना लड़के-लड़कियों के जीवन को बर्बाद करना है।

हमारे एक परिचित युवक अपने माँ-बाप के अकेले पुत्र थे। बचपन से ही उनकी रुचि आध्यात्मिक, धार्मिक थी। अध्ययन के अतिरिक्त अपना समय चिन्तन-मनन, साधना आदि में लगाते थे। स्वभाव से बड़े सीधे-सादे, सन्तोषी-संयमी और उदार थे। उनके वयस्क होने पर कई लड़की वाले देखने आये। घर वालों ने अच्छा-सा घराना देखकर सम्बन्ध तय कर लिया, घर में बहू आयी। वह निकली पूरी आधुनिका ? खाना-पीना, मौज उड़ाना, नित नये-नये जेवरों, वस्त्रों की माँग करना उसके स्वभाव की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशेषतायें थीं। पति महोदय साधारण से अध्यापक थे, इस पर भी आध्यात्मिक विचारों के। पत्नी अपनी कामना रुचि, इच्छा की पूर्ति न होती देखकर कलह करने लगी। घर भर में विष फैल गया। बहूजी सबसे तकरार करने लगीं। बेचारा युवक इससे चिन्तित और परेशान रहने लगा। कुछ ही समय में उनकी स्नायविक शक्ति दुर्बल हो गई और वे विक्षिप्त-पागल से हो गये। लड़की के माता-पिता भी इस परिस्थिति के कारण चिन्ता में घुलने लगे। इस तरह दो परिवारों का दु:खद जीवन एक गृहस्थी का उजड़ना, समाज में दूषित प्रभाव पड़ना तथा अन्य बुराइयाँ सब एक ही भूल से पैदा हो गईं और वह भूल है अनमेल विवाह की।

पति-पत्नी का चुनाव जहाँ तक हो दोनों की इच्छा, रुचि की अनुकूलता पर होना आवश्यक है। साथ ही इस रुचि का आधार एक दूसरे के गुण, कर्म, स्वभाव, सद्भावनायें आदि ही होना चाहिए अन्यथा रूप, यौवन, वासना प्रेरित निर्णय भी अन्तत: दु:ख, परेशानी परस्पर कलह का कारण बन ही जाता है क्योंकि ये तत्व अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रहते।

कदाचित् पति-पत्नी के स्वभाव आदि में कुछ भिन्नता भी रह सकती है विभिन्न रुचियों में भी यदि वे परस्पर टकरायें नहीं, एक दूसरे को परेशानी पैदा न करें तो भी दाम्पत्य जीवन की गाड़ी चलती रह सकती है। निबाहने और समझौता करके चलने की उदारता जिनमें है वे भिन्न-भिन्न रुचियों के होते हुए भी एक दूसरे को निबाहते हुए चल सकते हैं। वस्तुत: यही मध्यम मार्ग है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी स्वाभाविक विशेषतायें, भिन्नतायें कुछ न कुछ अवश्य ही होती हैं। निभाने और समझौता करके चलने के आधार पर ही सम्मिलित कुटुम्ब प्रणाली भारत में हजारों वर्षों से चली आ रही है। अपनी रुचि, अपनी इच्छा, अपनी कामना और उनकी पूर्ति को महत्त्व देकर पति-पत्नी अपने मधुर सम्बन्धों में दरार पैदा कर लेते हैं। स्नेह, प्रेम, आत्मीयता के स्थान पर कटुता के बीज अपने ही हाथों बो लेते हैं, जिसके फलस्वरूप तलाक, हत्या, दुर्व्यवहार, आत्म-हत्याओं के परिणाम निकलते हैं।

धनी-निर्धन का प्रश्न भी पति-पत्नी के चुनाव में देखना आवश्यक है। यदि किसी धनवान के यहाँ गरीब लड़की का सम्बन्ध हो जाये तो बेचारी को ससुराल में माँ-बाप की गरीबी के ताने सुनने पड़ते हैं; उसकी कोई कदर नहीं की जाती, अपने साथ कोई दहेज न लाने पर उसे जीवन भर कोसा जाता है। कदाचित् पति भी लड़की की उपेक्षा करे तो उसका जीवन भार बन जायगा और शारीरिक, मानसिक कष्टों से ग्रस्त दुखी जीवन बितायेगी। कई लोग धन के आकर्षण में अपनी लड़की का विवाह कम या अधिक उम्र के लड़कों से कर देते हैं। किन्तु दोनों ही स्थितियों में दाम्पत्य जीवन दु:खी और असफल होना निश्चित है।

जब धनी घर की लड़की गरीब युवक को ब्याही जाती है तो समस्या और भी पेचीदा हो जाती है। ऐसा तब होता है जब लड़की में कोई नुक्स हो अथवा लड़का होनहार, योग्य हो। उधर लड़के के माँ-बाप भी खुश होते हैं अमीर और धनी घराने में शादी करके। किन्तु गरीब घर में अमीर की लड़की आने पर बड़ी परेशानी खड़ी हो जाती है। जैसा उसे पितृ-गृह में अभ्यास था, उसी के अनुरूप वह सुख-सुविधा, मकान, नौकर, वस्त्र, आभूषण, स्वादिष्ट भोजन, सौन्दर्य प्रसाधनों की माँग करने लगती है। बेचारा गरीब पति इन माँगों को पूरा करने में असमर्थ होता है। फलत: असन्तुष्ट पत्नी गरीब घर की शान्त छाया के लिए चिन्गारी बन जाती है।

शिक्षित, अशिक्षित दम्पति का जीवन क्लेशयुक्त हो जाता है। किसी शिक्षित युवक का विवाह निपट गँवार, निरक्षर लड़की से कर दिया जाय तो दोनों के जीवन की गति में ताल-मेल नहीं बैठेगा ? अशिक्षा के कारण कोई भी पक्ष एक दूसरे की भावना मानसिक स्थिति को समझ नहीं सकेगा और इसके कारण परस्पर के जीवन में योग-दान नहीं दे सकेगा। ऐसे सम्बन्धों में पति-पत्नी एक दूसरे के सहायक-सहयोगी न रहकर परस्पर भार बन जाते हैं।

कुल मिलाकर दाम्पत्य जीवन के कलह-विच्छेद, अशान्ति, विकृतियों का मूल कारण पति-पत्नी का ठीक-ठीक चुनाव न होना ही है और इसके लिए खासकर अभिभावकगण ही जिम्मेदार होते हैं, जो अपनी ही रुचि, भावना को स्थान देकर वर कन्या का चुनाव करते हैं। हर हालत में चुनाव करते समय अपनी-अपनी सन्तान के मत को भी उदारतापूर्वक ध्यान में रखना चाहिए। यह तो आवश्यक है कि सन्तान यदि कुमार्ग ग्रहण करे तो माता-पिता उन्हें अधिकारपूर्वक रोकें और सही मार्ग दिखायें किन्तु शादी-विवाह जैसे जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर सन्तान की सम्मति लेना भी आवश्यक है। जो अभिभावक माता-पिता अपने संकुचित और अनुदार दृष्टिकोण अथवा अभिमानवश ऐसा नहीं सोचते, बच्चों की सम्मति, भावनाओं को उदारता के साथ स्वीकार नहीं करते तो बच्चों का दाम्पत्य जीवन बर्बाद होना, घर उजड़ना स्वाभाविक है। इसका परिणाम उन्हें भी अपने जीवन में भोगना पड़ता है, जब सन्तान द्वारा अपना अपमान होते देखते हैं। घर की कलह, लड़ाई-झगड़े होते देखकर, इज्जत को बिगड़ते देखकर लोगों द्वारा उनका तमाशा देखे जाने पर अनेकों अभिभावक नौ-नौ आँसू रोते। कलपते, बिलखते देखे जाते हैं और भी अनेकों तरह तड़प-तड़प कर उन नासमझ अभिभावकों को अपनी भूल का पश्चाताप करना पड़ता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पत्नी को दासी नहीं, साथी मानिये

जिन आधारों पर परिवार की सुख-शान्ति निर्भर करती है उनमें मुख्य है पति-पत्नी का सघन सहयोग। सौभाग्य से हमारे परिवार पश्चिमी देशों की अपेक्षा अधिक स्थिर और सुदृढ़ हैं। यहाँ माना जाता है कि बाप के घर से बेटी की डोली निकलती है तो पति के घर से ही उसकी अर्थी निकलेगी। एक पत्नीव्रत और एक पतिव्रत भारतीय संस्कृति का आदर्श है, परम्परा है। इसी आधार पर पति-पत्नी के सम्बन्ध स्निग्ध, मधुर और प्रेमपूर्ण रहते हैं। जबकि पश्चिमी देशों में सोते समय खर्राटे भरना भी तलाक का कारण बन जाता है। सम्भवत: ही वहाँ कोई ऐसे दम्पत्ति हों जो कल के लिए एक दूसरे से आश्वस्त हों। जबकि भारतीय परिवारों में पति पत्नी जीवन-मरण के साथी हैं।

इतना होने पर भी भारतीय परिवार को पूर्णतया आदर्श नहीं कहा जा सकता है। कारण है पति-पत्नी के बीच रहने वाली ऊँच-नीच की खाई और बड़े-छोटे का भेद। सेव्य-सेवक का सम्बन्ध तथा स्वामी-दास का अन्तर। आधुनिक युवक-युवतियों में परम्परागत विवाहों के प्रति विक्षोभ उत्पन्न हो रहा हो तो इसके लिए मात्र वे ही दोषी नहीं हैं। दोषी उनके अभिभावक और विशेष रूप से पिता हैं जो गृहणियों से दूसरी श्रेणी का व्यवहार करते हैं।

लड़कियों को आरम्भ से ही यह शिक्षा दी जाती है कि उन्हें घर के अन्य लोगों की सेवा करनी है। उनका काम केवल पति व परिवार के अन्य सदस्यों की सुख चिन्ता भर करना है। अपने सम्बन्ध में कुछ सोचना नहीं है। जबकि उनके सामने ही लड़कों को—भाइयों को उनकी अपेक्षा अच्छी सुविधायें दी जाती हैं, तो उनके मन में एक हीनता की भावना जन्म लेती है और लड़कों के मन में मिथ्या अहंकार उत्पन्न हो जाता है। हीनता की यह भावना लड़कियों में कई कुण्ठाओं को जन्म देती है तो लड़कों में अधिकार और अहंकारपूर्ण बड़प्पन के भाव को। इसकी अपेक्षा दोनों ही त्याग-बलिदान करने, एक दूसरे की सुविधाओं का ध्यान रखने की शिक्षा दी जाय तो सेवा-शिक्षा दोहरे प्रयोजन पूरे करती है। उससे न लड़कियों में हीनता की ग्रन्थि बनती है और न लड़कों में मिथ्या अहं का भाव, बल्कि दोनों एक दूसरे की सेवा को अपना कर्त्तव्य मानकर अपेक्षाकृत अधिक स्नेह और प्रेमपूर्ण सहयोगी जीवन व्यतीत कर सकते हैं। लेकिन इस स्थिति के लिए गहरे प्रयत्नों की आवश्यकता है, बहुत सी भ्रान्तियों को तोड़ देना तथा आदर्शवादी धारणाओं को स्थापित करना आवश्यक है।

आज के बच्चे भविष्य में अपना दाम्पत्य जीवन सुखद, स्निग्ध और मधुर बना सकें इसके लिए विवाहित दम्पत्तियों को—माता-पिताओं को अपने दृष्टिकोण में सुधार करना चाहिए। तभी बच्चों के सामने दाम्पत्य जीवन की आदर्श मिशाल रखी जा सकती है। बच्चा अपने माता पिता से जितना सीखता है, उससे भी अधिक उनके संस्कार ग्रहण करता है। जिनका सीधा सम्बन्ध उनके व्यवहार, आचरण और रहन-सहन के प्रभाव से है। माता-पिता आपस में जैसा व्यवहार करते हैं, बच्चे भी यह मानने लगते हैं कि पति-पत्नी के बीच घर-परिवार में ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए।

पति अक्सर यह समझता है कि उसके लिए पत्नी एक दासी से अधिक नहीं है। कहने सिद्ध करने में आदर्शवादिता की बातें कितनी ही कही जाती हों, पर आस्था और मान्यता तो अन्त:प्रेरित आचरण और व्यवहार से ही व्यक्त होती हैं। नारी के समानाधिकार और उसके व्यक्तित्व को स्वीकार करने के लिए आग्रही प्रवक्ता कितने ही मिल जायेंगे, परन्तु वे अपने विचारों को स्वयं कितने व्यवहार में लाते हैं, यह प्रवचन उपदेश अथवा सिद्धान्त प्रतिपादन से नहीं कर्मों और आचरणों से ही पता चलता है। नारी मुक्ति की आवाज उठाने वाले कितने ही लोग अपने व्यावहारिक जीवन में पत्नी से उसी प्रकार व्यवहार करते हैं, जिस प्रकार कि उनके पुरखे नारी को मात्र गृहिणी मान कर करते रहे थे।

दैनिक कामकाज से छुट्टी पाकर शाम के समय पति जब घर लौटता है, तो वह सोचता है कि पत्नी उसके हाथ-पाँव दबाये या उसे घर पहुँचते ही तत्काल खाना बनाकर गरम-गरम परोस दे। परम्परागत भारतीय परिवारों में यह भी समझा जाता है कि पत्नी को सबसे बाद में खाना खाना चाहिए, भले ही पति महोदय बाहर मित्रों के साथ नाश्ता कर आये हों या पार्टी में हो आये हों। साथ ही यह मानने वालों की भी कमी नहीं है कि बच्चे खिलाना या उनका ध्यान रखना केवल पत्नी का ही काम है, उसमें उनको हाथ लगाने की जरा भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि वे तो दिन भर काम करके थक चुके हैं। काम से थक जाने की बात ही इस मान्यता का आधार है तो यह भी देखना चाहिए कि घर में पत्नी भी कोई खाली नहीं बैठी रही है। उसे भी दिन भर काम में खपना पड़ा है। इस आधार पर पति महाशय अपना यह अधिकार समझें कि दिन भर में वे थक चुके हैं, तो पत्नी भी उनसे कम थकी नहीं होती है। सुबह पुरुषों से पहले जाग कर नाश्ता बनाने, खाना तैयार करने, घर की सफाई, वस्त्रों की धुलाई और बच्चों की देखरेख में शाम हो जाती है और सोना भी सबके बाद में मिलता है तो थकने के अधिक कारण तो पत्नी के साथ ही हैं। पति से कहीं अधिक ही उसे श्रम करना पड़ता है। थकान मिटाने के लिए किसे किसकी सेवा करनी चाहिए, अब यह निर्णय आसानी से किया जा सकता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेकिन निष्पक्ष निर्णय के लिए विचार मन्थन के बाद न्यायपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद भी पति इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होगा कि सेवा की पहली अधिकारिणी पत्नी है। क्योंकि उसके मन में यह अहंकारमूलक धारणा बैठी है कि पत्नी की सेवाओं का लाभ उठाने का जन्मसिद्ध अधिकार मुझे है।

कदाचित् पुरुष स्वामी होने का दम्भ इसलिए रखते हैं कि कमाने, उपार्जन करने, निर्वाह व्यवस्था जुटाने का कार्य वे ही करते हैं। बचपन से पालित अहंकार और दम्भ के कारण वे अपना दर्जा भी पत्नी से अधिक बड़ा मानते हैं। यदि कार्य के आधार पर ही बड़प्पन का मूल्यांकन किया जाय तो भी पत्नी का पक्ष ही अधिक वजनदार सिद्ध होता है। उपार्जन से भी अधिक दायित्वपूर्ण उसका नियोजन। कमाने से भी मुश्किल है खर्च करना। निर्वाहपयोगी साधन जुटाने से भी गम्भीर और कठिन है उस व्यवस्था के चलाने और निर्धारित करने का काम। यह सारा दायित्व पत्नी को ही सँभालना पड़ता है और साथ ही साथ अन्य अतिरिक्त कार्य इतने अधिक हैं, जो पति की तुलना में कम नहीं अधिक ही श्रमसाध्य हैं।

पति का दर्जा बड़ा सिद्ध करने के लिए दी जाने वाली तमाम दलीलें थोथी हैं। मूल बात है—पति की अहं भावना, पुरुष का दर्प, जिसके कारण वह अपनी धर्मपत्नी से साथी के समान व्यवहार नहीं कर पाता और न ही उसे इस योग्य समझता है। इसके दुष्परिणाम व्यक्तिगत रूप से ही नहीं पारिवारिक और सामाजिक सन्दर्भों में भी हानिकर होते हैं। परिवारों में बच्चों के व्यक्तित्व पर प्रारम्भ से ही इस कारण समुचित ध्यान दे पाना कठिन हो जाता है कि मातायें अनपढ़ और अशिक्षित होती हैं। समाज की आधी जनसंख्या को शेष आधे भाग का बोझ अपने कन्धों पर ढोकर इसलिए खींचना पड़ता है कि लड़कियाँ इस योग्य नहीं होतीं कि वे अपनी जिम्मेदारियाँ खुद पूरी कर सकें।

यदि पत्नी के प्रति दासी भाव न रखते हुए साथी का दृष्टिकोण रखा जाय, तो लड़कियाँ भले ही निरक्षर शादी करें परन्तु योग्य और सद्भावसम्पन्न पति के सान्निध्य में रहकर वे अशिक्षित रह ही नहीं सकतीं। साथी की भावना-मैत्री का आदर्श अपने सहयोगी मित्र को किसी भाव अयोग्य और पिछड़ा देखना सहन नहीं कर सकते। लेकिन यह भावना कितने पुरुषों में विकसित होती है ? दाम्पत्य जीवन को कलात्मक ढंग से जीने की आकांक्षा कितने हृदयों में होती हैं ? अधिकांश तो जैसे-तैसे गृहस्थी को धक्का देते रहने में ही विश्वास करते हैं। इस भावना को तिलांजलि दे ही देनी चाहिए।

दाम्पत्य जीवन में दुराव की दरार

दाम्पत्य जीवन की शुरूआत करते समय भारतीय वर-वधू परस्पर प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं कि हम एक दूसरे के प्रति कर्तव्य-निष्ठ रहेंगे, उदार रहेंगे, सहयोग करेंगे और प्रगति पथ पर साथ-साथ आगे बढ़ेंगे। यह प्रतिज्ञा यदि निष्ठापूर्वक दोनों ओर से निभाई जाय तो निश्चय ही दम्पत्ति एक सुदृढ़ सम्मिलित इकाई के रूप में सक्रिय रहते हैं और उनका जीवन आनन्द, प्रकाश तथा प्रगति की सुरभि से महक उठता है। ऐसे दम्पत्ति जिस समाज में रहते हैं, वह समाज एक सुरभित उद्यान बना रहता है।

दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए इन दिनों शारीरिक स्वास्थ्य, आर्थिक समृद्धि, शिक्षा और सौन्दर्य को आधार मानने की रीति है। निःसन्देह, सांसारिक जीवन को चलाने के लिए ये सभी आवश्यक हैं। पर भौतिक उपकरणों से भी पहले गहन आत्मीयता और सघन संवेदना की उपस्थिति दाम्पत्य जीवन की आरम्भिक शर्त है। यदि भावनाओं से पति-पत्नी एक-दूसरे से अर्द्धांग रूप से जुड़े रहते हैं, उनमें प्रेम एवं आत्मीयता भरी रहती तो भौतिक साधन उन्हें सर्वोपरि नहीं प्रतीत होंगे, बाह्य आकर्षण उन्हें उतने आवश्यक नहीं लगेंगे।

प्रेम और आकर्षण दो भिन्न तत्व हैं। शारीरिक गठन व स्वास्थ्य और सौन्दर्य के अनुपात से घटती-बढ़ती रहने वाली राग वृत्ति को आकर्षण कहते हैं, जबकि प्रेम इससे भिन्न एक आध्यात्मिक तत्व है, जो दाम्पत्य जीवन में मधुरता का, कठिन परिस्थितियों में भी सघन आत्मीयता और कर्तव्य निष्ठा का, आनन्द, प्रमोद तथा आह्लाद का संचार करता रहता है। अन्तःकरण का सन्तोष ही उसे पालता है।

यह भूलना नहीं चाहिए कि प्रेम और आत्मीय सघनता का विकास, सहयोग, समर्पण और त्याग के धरातल पर ही सम्भव है। सन्तुलन और सामंजस्य एकांगी नहीं होता। एकाकी प्रयत्न से सामंजस्य का प्रयास प्रायः निरर्थक ही सिद्ध होता है। तुला के दो पलड़ों को सन्तुलित रखने के लिए समतुल्य भार की वस्तुयें ही दोनों ओर रखनी होती हैं। नाव के दोनों सिरों पर बैठे लोगों में परस्पर सन्तुलन न हो तो नाव डगमगाने लगती है और डूबने का खतरा आ खड़ा होता है। दाम्पत्य जीवन में बराबरी का सहयोग और सहकार आवश्यक होता है। इस सघन सद्भाव का विकास तभी होता है, जब दाम्पत्य जीवन का लक्ष्य उदात्त हो। यह दोनों के समक्ष स्पष्ट रहे कि हमारे मिलन का अभिप्राय कामसेवन की सुविधा, रोटी बनाने, घर चलाने की व्यवस्था या एक कमाऊ साथी की प्राप्ति नहीं, अपितु दो आत्माओं का एकीकरण है। पति-पत्नी के बीच विद्यमान आकर्षण का चरम प्रयोजन है—दो व्यक्तित्वों के मिलन की ऐसी अनूठी प्रक्रिया का सम्पन्न होना, जो समाज में एक नई ही वस्तु को, एक नई ही प्रक्रिया को जन्म दे। नर-नारी के बीच ऐसे अद्भुत घुलनशील तत्व हैं कि यदि वे दोनों गहन स्तर तक परस्पर मिल सकें तो एक नया संयुक्त व्यक्तित्व उत्पन्न होता है और उसके प्रभाव से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दोनों अपना पुराना स्तर खोकर नये स्तर के बन जाते हैं। कुमारी अवस्था में लड़की जिस स्तर की थी, उसमें विवाह के बाद कायाकल्प जैसा परिवर्तन होता है और किशोर लड़के विवाह से पूर्व जिस प्रकृति के थे, विवाह के बाद इतने बदले पाये जाते हैं कि केवल आकृति ही पुरानी रह जाती है—प्रकृति में जमीन-आसमान जैसा अन्तर उपस्थित होता है। पर इस घुलन के लिए मात्र शारीरिक सामीप्य अपर्याप्त है। वह तो एक बहुत ही छोटा अंशभर है। व्यक्तित्वों का घुलना उतने भर से नहीं होता, उसके लिए तो भावनात्मक सघनता आवश्यक है। यही सघनता वह स्थिति लाती है कि एक प्राण दो शरीर का आभास होने लगे। उस स्थिति में दोनों का ही एक दूसरे पर पूर्ण अधिकार रहता है।

पर सामान्यत: इस प्रक्रिया को उलट दिया जाता है। विवाह के उपरान्त पति-पत्नी पर अपना पूर्ण अधिकार मान बैठता है और पत्नी पति पर। इस अधिकार भावना में कर्तव्य भावना की उपेक्षा रहती है, पर कर्तव्य भावना की कमी रहने पर सच्ची आत्मीयता सम्भव नहीं।

पति-पत्नी दोनों में गहरी दरार तभी पड़नी शुरू होती है, जब वे एक दूसरे से मात्र अपेक्षायें रखते हैं—अपना कर्तव्य याद नहीं रखते। जहाँ एक दूसरे के प्रति सम्मान, कृतज्ञता एवं समान संवेदना नहीं है, वहाँ सहजीवन कैसे हो सकेगा ? एक दूसरे पर अपनी रुचियों का आरोपण अपनी अपेक्षाओं को ही प्रधानता देना ही वह कारण है, जिससे दाम्पत्य जीवन का रस स्रोत अवरुद्ध होता तथा सूखता चला जाता है।

यह भली-भाँति समझ लिया जाना चाहिए कि नर-नारी दोनों की सार्थकता के मानदण्ड एक ही हैं और दाम्पत्य जीवन की सफलता, सार्थकता की जिम्मेदारी दोनों की है, किसी एक की नहीं।

यों विषम योनियों का मिलन पशु-पक्षियों, कीट-पतंगों सभी में होता रहता है। यह एक सामान्य जैविक प्रक्रिया मात्र है, जो प्रकृति रूप से सृष्टि का प्रयोजन सिद्ध करती रहती है। पर नर-नारी के बीच का आकर्षण मात्र यौनतृप्ति एवं प्रजनन की प्रेरणा से ही नहीं होता। क्योंकि मनुष्य की चेतना इतनी सतही नहीं होती।

यह सही है कि प्रजनन प्रक्रिया और शारीरिक संयोग में प्रबल आकर्षण एवं प्रचण्ड आवेश है। किन्तु शिशु-सर्जन और वंश विस्तार की आवश्यकतायें भर पूरी करते रहना इस प्रचण्ड प्रेरणा का लक्ष्य नहीं है। अपितु इस प्रबल आकर्षण का मूल कारण दो लिंगी प्राणियों की अपूर्णताओं का परस्पर पूरक बनकर पूर्णता प्राप्त करने की आध्यात्मिक आकांक्षा है। इस प्रकार नर-नारी के बीच का यह गहरा खिंचाव मूलत: आध्यात्मिक प्रयोजन वाला है और इस आध्यात्मिकता की दृष्टि से ही विवाह को एक धार्मिक संस्कार की गरिमा प्रदान की गई है।

यदि विवाह का उद्देश्य मात्र उच्छृंखल यौन-जीवन ही मान लिया जाय तो उस स्थायी अतृप्ति के लिए भी तैयार रहना चाहिए, जो आज पश्चिमी नर-नारी की भाग्य रेखा ही बन गया है। यदि भावनात्मक उद्वेग विवेकरहित है तो उससे सघनता नहीं दुराव ही बढ़ेगा। शरीरों की भिन्नता मिटा डालने की कामना का अर्थ यदि शारीरिक सामीप्य तक सीमित रह गया तो उससे प्राणों की घुलनशीलता सम्भव नहीं और तब दो व्यक्तित्वों के संयोग से उस तीसरे व्यक्तित्व के निर्माण की भी संभावना नहीं रह जाती जो कि दाम्पत्य जीवन की वास्तविक उपलब्धि है।

यह बात भलीभाँति समझ लेने योग्य है कि दाम्पत्य जीवन की सुख, शान्ति और सफलता का आधार परिष्कृत दृष्टिकोण तथा प्रखर उदात्त भावनायें हैं। शिक्षा, धन और देह सौष्ठव से दाम्पत्य सुख का सम्बन्ध रहा होता तो रूप-लावण्य वालों, धनियों और पढ़े-लिखों के पारिवारिक जीवन में पति-पत्नी के बीच पनप रहे—वैमनस्य, तनाव, मन-मुटाव और सम्बन्ध विच्छेद के दृश्य तेजी से बढ़ रहे होते।

विवाह के समय जो कर्मकाण्ड सम्पन्न होता है, उसे यदि ठीक से समझा जाय। उसके संकेतों, निर्देशों का पालन किया जाय तथा उस समय के संकल्पों का जीवन में निर्वाह किया जाय—उन आदर्शों और संस्कारों का महत्त्व समझकर उन पर आचरण किया जाय तो पति पत्नी के बीच वह सघन आत्मीयता सहज ही विकसित होती देखी जा सकती है—जिससे घर नन्दन वन कहला सकता है।

विवाह के आदर्श और दाम्पत्य अपराध

पाश्चात्य देशों में विवाह का स्वरूप एक सामाजिक अनुबन्ध या समझौते से अधिक नहीं है। पर हमारी संस्कृति ने विवाह को जीवन-मरण का साथ और दो शरीर एक प्राण के सिद्धान्त से संचालित कर उसे अद्भुत और अपूर्व महत्त्वशाली बना दिया है। दूसरे देशों या दूसरी संस्कृतियों में वहाँ के निवासियों तथा अनुयायियों की दृष्टि ऐहिक-उपभोगवाद से ऊपर नहीं जा पाई है। इसी से उन्होंने विवाह को दाम्पत्य जीवन को एक समझौते से अधिक महत्व नहीं दिया। लेकिन हमारा देश—आध्यात्मिक जीवन को इतना महत्वपूर्ण मानता है कि उसके लिए जीवन का प्रत्येक कर्म आध्यात्मिकता से अनुप्राणित होकर ही सम्पन्न करना आवश्यक अनिवार्य धर्म माना गया है।

विवाह को, दाम्पत्य-जीवन को कुछ निश्चित आदर्शों के अनुसार जीने का ही यह सुपरिणाम है कि हमारे देश में सबसे अधिक प्रतिभाओं ने जन्म लिया।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसे-ऐसे विद्वानों और तपस्वियों का यहाँ वर्चस्व रहा, जिन्होंने जीवन की गूढ़ गुत्थियों को सुलझाया और उसे एकरस, नीरस तथा ऊबाऊ ढंग का न बनने देकर आनन्दमय बनाया। भारतीय संस्कृति का मूल आधार इसकी आध्यात्मिकता है और इसके नियामक मनीषियों ने इस संस्कृति का स्वरूप इस प्रकार निर्धारित किया है कि व्यक्ति अपने जीवन को सामान्य क्रम से जीता हुआ भी अपने पारमार्थिक लक्ष्य को प्राप्त कर सके तथा जीवन को आनन्दित बना सके।

यही कारण है कि हमारे यहाँ विवाह भी एक संस्कार अर्थात् व्यक्ति चेतना पर छोड़ा जाने वाला ऐसा प्रभाव जो उनकी प्रवृत्तियों को निर्धारित करे, उसकी दिशायें नियोजित रखे। अन्य संस्कृतियों में स्त्री-पुरुष को जहाँ परस्पर उपभोक्ता बताया गया, वहाँ भारतीय-दर्शन ने स्त्री-पुरुष को एक ही सत्ता के दो अंग निरूपित किया है। स्थान-स्थान पर कहा गया है कि आदि में केवल एक ब्रह्म ही था, उसने स्वेच्छा से अपने को दो भागों में विभक्त कर लिया। देवी भागवत में कहा गया है कि स्वेच्छामय भगवान स्वेच्छा से दो रूप हो गये। वाम भाग के अंग से स्त्री और दक्षिण भाग के अंग से पुरुष बने।

इस एकरूपता की भावना को, अविभक्त स्वरूप के आदर्श को जीवन में, व्यवहार में उतारने के लिए ही स्त्री-पुरुष विवाह-सूत्रों में आबद्ध होते हैं तथा प्रेम, त्याग, उदारता और सहिष्णुता के आदर्शों को अपने जीवन में ढालते हैं। विवाह से पूर्व पुरुष की गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र अपनी सुख-सुविधा और अपनी इच्छा-आकांक्षायें रहती हैं। पर विवाह के बाद वह स्वाभाविक रूप से अपनी जीवन-संगिनी के सुखों तथा उसकी आकांक्षाओं को प्रधानता देने लगता है। स्त्री भी तन-मन से अपने पति की सेवा करने व गृहस्थी की व्यवस्था सँभालने और पति के जीवन को अधिक सुखी, अधिक आनन्दपूर्ण बनाने के लिए सचेष्ट हो जाती है। विवाह के समय की जाने वाली प्रतिज्ञाओं में वधू-वर से कहती है—'जो कुछ भी तुम करोगे, सब में मैं तुम्हारे कार्य की भागीदार रहूँगी और धन, धान्य, मिष्ठान्न आदि जो कुछ भी घर में है, उनकी सुव्यवस्था करूँगी। मैं सदा मधुर-भाषिणी, कुटुम्ब की रक्षा करने वाली, दुख में धीर और सुख में प्रसन्न रहूँगी। पति-परायण होकर मैं तुम्हारे साथ विहार करूँगी। सब प्रकार से तुम्हें सुखी रखूँगी। तुम्हारे दुःख में दुखिनी, सुख में सुखिनी हो तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगी। यज्ञ, दान, होम तथा अन्य सभी कार्यों में सदा तुम्हारे साथ रहूँगी। मेरी इन प्रतिज्ञाओं में अन्तर्यामी देवतागण साथी रहें, मैं कभी तुम्हारी वंचना नहीं करूँगी।'

यह प्रतिज्ञा सप्तपदी के समय पढ़ी जाती है। वर की प्रतिज्ञा भी इसी प्रकार की होती है। इन प्रतिज्ञाओं से सिद्ध होता है कि वर-वधू अब स्वार्थ और अपने सुख की इच्छाओं को तिलांजलि देकर एक दूसरे के सुख और एक दूसरे की इच्छाओं को प्रमुखता देने की आध्यात्मिक मंजिलों को प्राप्त करने के लिए कृत-संकल्प हो रहे हैं। जीवन आरम्भ करने के बाद विवाह के अवसर पर प्रेम, आत्म-विकास और स्वार्थ-त्याग के सद्गुणों को विकसित करने के लिए पहली बार इस प्रकार कटिबद्ध होता है कि उसके कदम आगे बढ़ते हैं और उस क्षेत्र में वे लक्ष्य साकार होने लगते हैं। विवाह इस आध्यात्मिक साधना की शुरूआत तो है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उस साधना को वहीं तक सीमित रह जाना चाहिए। अपनी भावनाओं के विकास को यहीं तक सीमित कर लेने पर व्यक्ति के अहं का केन्द्र थोड़ा ही विकसित होता है। यदि अपनेपन को व्यापक बनाने के लिए इसे एक पहल माना जाता रहे तो व्यक्ति सच्चे सन्त और अध्यात्म-योगी की तरह अपना आपा बढ़ाता रह सकता है।

परस्पर सहयोग और सहचर्या के आधार पर अपने व्यक्तित्व के विकास के साथ विवाह का एक उद्देश्य प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर अग्रसर होना भी है। अन्य प्रवृत्तियों की भाँति काम भी प्रकृति की एक प्रेरणा है। पर उसका उच्छृंखल और अनियन्त्रित नर्तन व्यक्ति को असामाजिक बना देता है। भारतीय-संस्कृति के नियामक, मनीषियों के विवाह-संस्कार की व्यवस्था द्वारा इस प्रवृत्ति को भी नियन्त्रित करने का विधान किया है। विवाह के बाद स्त्री-पुरुष अपनी अनर्गल भोग प्रवृत्तियों को एक-दूसरे के प्रति केन्द्रीभूत और नियन्त्रित कर आत्म-संयम का व्रत पालन करते हैं। यह अद्भुत परिणाम गृहस्थ में ही सामने आते हैं कि भोग के द्वारा भी संयम सिद्ध हो सके। कहा गया है कि आग में ईंधन डालने की तरह वासनायें पूर्ति के साथ और बढ़ती हैं। पर पतिव्रत और पत्नीव्रत धर्म की मर्यादा इस प्रकार की है कि व्यक्ति अपनी प्राकृतिक-प्रवृत्ति को अस्वाभाविक रूप से दमित भी न रखे और उसे साधना भी बना ले।

वस्तुतः कोई भी चीज या कार्य अपने-आप में न पाप है और न पुण्य। पाप और पुण्य का निर्धारण उस कार्य के पीछे विद्यमान दृष्टिकोण, उद्देश्य के अनुसार किया जाता है। एक लुटेरा किसी को चाकू मारता है तो वह पाप बन जाता है और एक डाक्टर किसी को रोगमुक्त करने के लिए अपने औजारों से चीर-फाड़ करता है तो वह पुण्य बन जाता है, काम-वासना के पीछे उपभोग का दृष्टिकोण हो तो वह अवांछनीय बन जाता है समाज में अनर्थ उत्पन्न करने वाला हो जाता है और पति-पत्नी अनेकानेक नियमों, मर्यादाओं के अनुसार आंशिक रूप से इस प्रवृत्ति को एक दूसरे तक ही सीमित रखते हैं, तो उसके कारण समाज में वैसी ही अवांछनीयतायें उत्पन्न नहीं होतीं।

इस कृत्य के पीछे मनीषियों नें इसीलिए सन्तानोत्पादन का उद्देश्य रखा है और उपभोग के लिए नहीं। राष्ट्र को, देश को सुयोग्य नागरिक प्रदान करने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लिए इसकी छूट दी है। सर्वविदित है कि सुयोग्य नागरिक ही राष्ट्र की बहुमूल्य सम्पदा है। कोई देश भले ही कितना भी सुसम्पन्न क्यों न हो, उसके पास प्राकृतिक सम्पदाओं का कितना ही प्रचुर भण्डार क्यों न हो, पर वहाँ के नागरिकों में यदि सामाजिक भावना और सच्चरित्रता न हुई तो उसकी आधारशिला बेहद कमजोर होगी और वहाँ सब साधन-सुविधायें होते हुए भी सुख-शान्ति के दर्शन न होंगे।

विवाह के उद्देश्य बड़े पवित्र और बड़े अर्थपूर्ण हैं, पर आज हमारा दृष्टिकोण उतना परिष्कृत नहीं रहा, इसी से पारिवारिक-जीवन क्लान्ति और अवसाद के अखाड़े बने हुए हैं। कुछ लोग हैं, जो यह समझते हैं कि पतिव्रत-धर्म, एक निष्ठा का व्रत केवल पत्नी को ही पालना चाहिए और स्त्री को घर में सेविका की तरह रहना चाहिए। शास्त्रों और तर्कों से वे यह सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि 'स्त्रियों को स्वतन्त्रता अनर्थों की जननी है।' इस तरह के कई उदाहरण भी दिये जाते हैं।

उदाहरणों का जहाँ तक प्रश्न है, यह स्पष्ट है कि अपवाद किस क्षेत्र में नहीं है। यदि स्त्रियों को स्वतन्त्रता मिलने, उन्हें अपने विवेक के अनुसार कुछ करने की छूट देने के कारण कई बुरी घटनायें घटी हैं तो पुरुष की मनमानी से क्या कम दुर्घटनायें घटी हैं ? पुरुष भी अनेक अनर्थों का कारण रहे हैं, बल्कि ज्यादातर अनर्थ उसी के कारण हुए हैं। इससे तो यह सिद्ध होता है कि पुरुष को भी स्वतन्त्रता नहीं मिलनी चाहिए।

स्त्रियों को स्वतन्त्रता देने का अर्थ यह नहीं है कि उनको कुछ भी करते रहने की छूट मिले और उनके उचित-अनुचित कार्यों की कोई आलोचना या टिप्पणी न की जाय। यह व्यवस्था-मर्यादा तो पुरुष के लिए भी लागू है। कोई व्यक्ति यदि अनुचित कार्य करता है, तो आलोचना और निन्दा-भर्त्सना उसकी भी होती है। स्त्रियों को स्वतन्त्रता देने का अर्थ यह है कि उन्हें भी अपनी क्षमताओं के विकास की छूट दी जाय तथा उन पर दासी-बाँदी जैसे बन्धन न कसे जायें।

महिलायें यदि योग्य और सक्षम हों तो विवाह का एक-तिहाई उद्देश्य पूरा हो जाता है। घर बसाने और शादी करने का यही तो उद्देश्य है कि दोनों एक दूसरे के सहयोग से अपना विकास करें और एक-दूसरे को सुख पहुँचायें। इस अर्थ को दृष्टिगत रखते हुए यह निर्णय किया जा सकता है कि स्त्री को अयोग्य और प्रतिबन्धित, लांछित रखकर पुरुष वर्ग कितना घाटे में है ? पत्नी के सहयोग से पति का जितना लाभ हो सकता है, स्त्री की योग्यताओं से पुरुष जो लाभ उठा सकता है, पुरुष उससे वंचित रह जाता है और उसे अपने निर्वाह, जीवन-यापन के अतिरिक्त 'पत्नी' का भी भार उठाना पड़ता है। यदि महिलाओं को भी योग्यता-सम्पादन और अपनी क्षमताओं के विकास की छूट रहे तो यह भार बहुत कुछ हल्का हो सकता है और उसकी शक्तियाँ पुरुष के हित में लाभदायक बन सकती हैं।

दूसरी आवश्यकता स्त्रियों से दासी-गुलाम की भाँति व्यवहार करना निषिद्ध मानने की है। यह तो ठीक है कि स्त्री विवाह के अवसर पर स्वयं को पति-परायण और उसकी सेविका बनकर रहने की प्रतिज्ञा करती है। यह प्रतिज्ञा पुरुष भी तो करते हैं। वे अपनी प्रतिज्ञा को क्यों भूल जाते हैं और स्वयं को पत्नी का मालिक, उसका शासक क्यों मानने लगते हैं ? पत्नी को शासित और दासी समझकर व्यवहार करने का परिणाम बड़ा बुरा होता है। बचपन से मिले भेदभाव भरे व्यवहार के कारण एक तो वह पहले ही अपने आपको हीन समझने लगती है, पर विवाह के बाद पति से प्राप्त होने वाले व्यवहार के कारण उसकी हीनता-ग्रन्थि पर मोहर-सी लग जाती है और वह जीवनभर अपनी इस ग्रन्थि से मुक्त नहीं हो पाती। ऐसी मातायें देश को सुयोग्य और आत्म-विश्वासी नागरिक कहाँ से दे सकेंगी ? उनसे हीनता और दूसरे दर्जे में अपनी गणना करने वाली या हीन-भावना रखने और अपने प्रति विश्वास न करने वाली सन्तानें ही जन्मेंगी। यही कारण है कि हम अधिकांश लोगों को आत्म-विश्वास और दृढ़ मनोबल से रहित पाते हैं।

असमानता की बात इसलिए भी अनुचित है कि उसके कारण स्त्री-पुरुष दोनों एक साथ जीवन-क्षेत्र में प्रगति नहीं कर पाते। गाड़ी का एक बैल अच्छा मोटा-तगड़ा हो और एक मरियल-सा हो तो मरियल-सा बैल अपने से तगड़े वाले बैल के साथ बेमन से घसिटायेगा ही, उसका बोझ स्वस्थ, शक्तिशाली बैल पर ही पड़ेगा और वह भी जल्दी थक जायेगा। ऐसी दशा में गाड़ी ठीक से नहीं चल पायेगी। यही बात परिवार-रूपी गाड़ी के सम्बन्ध में भी है। परिवार-समाज की ही एक इकाई है तथा वह ठीक ढंग से चलेगा, तो ही समाज की प्रगति होगी। इसलिए दम्पत्ति में समानता के आदर्श की स्थापना आवश्यक है।

कहा गया है कि मित्रता, सहयोग और सहचरत्व समान लोगों में ही सफल होते हैं। स्त्री-पुरुष चूँकि अधिकार, विकसित क्षमता और अर्जित योग्यता की दृष्टि से काफी विषम हैं। इसलिए उनकी मित्रता दाम्पत्य सम्बन्ध, मित्रता, सहयोग और सहचरत्व न रहकर दासता, शासक-शासित, शोषक-शोषित और घोड़े तथा बकरी का साथ है। ऐसी स्थिति में दाम्पत्य-जीवन कभी सफल नहीं हो सकता, विवाह का उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकता। पराधीनता के बन्धनों और प्रतिबन्धों की लगाम को दाम्पत्य-जीवन के अपराध मानकर जितनी जल्दी हो सके, उन्हें नष्ट करने का समाधानपूर्ण उपाय खोजना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य जीवन की असफलता का अभिशाप

पिछले दिनों अमेरिका की पत्रिका में एक व्यंग्य प्रकाशित हुआ है कि यहाँ इतने अधिक तलाक लिये जाने लगे हैं कि शादी के गाउन ऐसे कपड़ों से तैयार किये जायें, जिन्हें धोकर बिना इस्तरी किए तुरन्त ही फिर से पहना जा सके।

अमेरिका में तलाक की बढ़ती हुई संख्या को देखकर यह कहा जाने लगा है कि "एक स्त्री को पति बदलने में इतना समय भी नहीं लगता जितना करबट बदलने में लगता है।" हो सकता है इस कथन में अतिशयोक्ति हो; पर इतना अवश्य है कि वहाँ नगण्य सी बातों को लेकर तलाक दे दिया जाता है, जिन्हें जानकर हँसी लगती है। पति या पत्नी के मन के विरुद्ध जरा सी बात हुई कि तलाक का प्रार्थना पत्र न्यायालय में पहुँचा दिया जाता है।

पश्चिमी देशों में तलाकों की बढ़ती हुई संख्या ने दाम्पत्य जीवन में कटुता और अस्थिरता उत्पन्न कर दी है। किसी व्यापारिक संस्थान में काम करने वाली स्त्री शाम को अपने घर लौटेगी या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। फिनलैण्ड के एक वृद्ध दम्पत्ति तलाक के प्रकरण को लेकर न्यायालय पहुँचे। पति की आयु ८७ वर्ष और पत्नी की ८५ वर्ष थी।

'न्यायाधीश ने पूछा—'तुम्हारी शादी कब हुई थी' ? ६ सितम्बर १९७३ को।'

'तुममें खटपट कब से शुरू हुई' ?

'विवाह के ही दिन से।'

अब न्यायाधीश क्या कहता ? तलाक का प्रार्थना-पत्र तुरन्त स्वीकार कर लिया गया।

तलाक के बढ़ते हुये आँकड़ों को देखकर यह स्पष्ट होता है कि महायुद्ध के पश्चात् जिन देशों में तलाक की सुविधा है, वहाँ के लोग अपने इस अधिकार का बड़े उत्साहपूर्वक प्रयोग कर रहे हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में लगभग डेढ़ करोड़ स्त्री-पुरुष तलाकशुदा हैं। जिनके चालीस लाख बच्चे अनाथों की तरह जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

रूस में तलाक करना जितना सरल है इतना संसार के अन्य किसी भी देश में नहीं है। वहाँ यदि पति-पत्नी का जोड़ा परस्पर किसी बात को लेकर असन्तुष्ट हो जाता है, तो तीन माह का नोटिस देकर तलाक कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें न्यायालय में जाने की तभी जरूरत पड़ती है जब बच्चों की देख-भाल या सम्पत्ति के बँटवारे को लेकर कोई मतभेद हो। वहाँ एक वर्ष में ७ लाख तलाक हुए। रूस में दम्पत्तियों की संख्या ७ करोड़ है इसका अर्थ यह हुआ कि वहाँ १० प्रतिशत विवाह बंधन टूट जाते हैं। वहाँ कुमारी माताओं को हीन दृष्टि से नहीं देखा जाता। स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं, जिन्होंने औद्योगिक संस्थानों में अपना आधिपत्य जमा रखा है। ब्रिटेन में १९६५ में तलाक के लिए ४३ हजार आवेदन पत्र प्राप्त हुए थे।

पारिवारिक समस्याओं के अमरीका विशेषज्ञ विलियम गुड ने तलाक समस्या के अध्ययन हेतु जो अँग्रेज देशों के आँकड़े एकत्रित किये हैं, उनसे वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है।

प्रति हजार पीछे तलाक—अमेरिका २५९, इंग्लैण्ड ७०, फ्रांस ८३, बेलजियम ७१, स्वीडेन १७५, आस्ट्रेलिया ८९, युगोस्लाविया १३१।

अमेरिका के एक वकील का जो विगत ३५ वर्षों में ३००० से भी अधिक लोगों के तलाक-प्रकरणों को निबटा चुके हैं, कहना है—'मेरे पास तलाक लेने के लिये अधिकतर ऐसे लोग आये, जिनकी शादियाँ गलत कारणों से हुई थीं और प्रारम्भ से ही जिनके असफल होने की संभावना थी। इनमें अधिक संख्या उन लोगों की थी जिन्होंने बिना सोचे-विचारे चटपट विवाह कर लिये।'

अमेरिका में पाँच शादियों में एक शादी ऐसी लड़की की होती है जो विवाह से पूर्व ही गर्भवती हो जाती है। जब कोई प्रेमी प्रेमिका गर्भवती होने के कारण विवाह करने को विवश हो जाते हैं, तो उनके सारे रंगीन सपने टूट जाते हैं। वे अब तक जिस रंगीले जीवन का आनन्द लेते रहे हैं, वह उनसे छिन जाता है। वैवाहिक जीवन में अपने को अच्छी तरह ढाल भी नहीं पाते कि उन पर प्रथम शिशु का उत्तरदायित्व आ जाता है। यदि किसी बच्चे का जन्म न होता तो विवाह के बाद भी पत्नी साल दो साल काम करके परिवार की आर्थिक स्थिति सुधार सकती थी। पर अब आर्थिक तंगी बढ़ती ही चली जाती है।

बहुत सी शादियाँ शराबखोरी के कारण टूटती हैं। आजकल यह व्यसन औरतों में भी पाया जाता है। वे दिन भर घर में अकेली रहती हैं। समय काटने के लिये थोड़ा-थोड़ा पीना सीख लेती हैं। जिससे घरेलू कार्यों की ओर ध्यान नहीं दे पातीं फिर तो उनकी स्थिति इतनी खराब हो जाती है कि कोई भी आदमी उनके साथ रहना नहीं चाहता। निर्धनता, अविश्वास, निदर्यता और रूखापन जैसे अनेक कारण हैं जो शराबखोरी से सम्बद्ध हैं।

कभी-कभी तो शादियाँ शराब के नशे में ही हो जाती हैं। कोई क्लब में किसी लड़की को अपने साथ खाने, नाचने या सिनेमा देखने के लिए ले जाता है और क्षणिक आवेश में शादीशुदा हो जाता है। बाद को तो उसे यह भी यह भी याद नहीं रहता कि उसकी शादी क्यों, कहाँ और किन परिस्थितियों में हुई थी। कितनी ही लड़कियाँ ऐसे आदमी से केवल प्रतिशोध की भावना से शादी कर लेती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ शादियाँ तो केवल पैसे की लिए ही होती हैं। एक लड़की जिसका बचपन गरीबी और अभावग्रस्तता में बीता, ऐसे युवक से शादी कर लेती है जो उसे मौज-शौक की जिन्दगी उपलब्ध करा सके, पर कुछ ही दिनों बाद उसे ऐसा लगने लगता है कि वह अपने पति के साथ क्षणभर भी नहीं रह सकती। कुछ स्त्रियाँ जान बूझकर ऐसे अधेड़ आदमी को फँसाने का प्रयास करती हैं जिसके पास पैसा अधिक होता है, वह सोचती हैं इसका पैसा अपने हाथ में आ जायेगा। कितने ही पति विवाह के तुरन्त पश्चात् दिखावे के लिए फर्नीचर, महँगी पोशाकें, कार और मौज-शौक पर इतना अधिक खर्च कर देते हैं कि कर्ज उनके सिर पर चढ़ जाता है और उसका ब्याज चुकाते ही उनकी हालत खराब हो जाती है। पत्नी के गर्भवती होते ही खर्च में और वृद्धि होती है जिससे वैवाहिक जीवन में कहासुनी शुरू हो जाती है।

कितने ही विवाह इसलिये असफल हो जाते हैं कि युवक और युवती का स्वभाव एक दूसरे के योग्य नहीं होता या उनका स्वभाव चिड़चिड़ा अथवा गुस्सैल होता है। कोई स्वार्थी या घमण्डी होता है या ऐसी आदतों का शिकार होता है जिसे दूसरा सहन नहीं करता। कभी-कभी लम्बी अस्वस्थता भी तलाक के द्वार तक पहुँचा देती है।

शारीरिक सौन्दर्य को प्रधानता देने वाले दम्पत्ति वैवाहिक जीवन के आठ-दस वर्ष व्यतीत हो जाने पर प्रारम्भिक आकर्षण में कमी अनुभव करने लगते हैं। पति को लगता है कि पत्नी लापरवाह और भद्दी हो गई है। पत्नी को लगता है कि पति उसकी ओर पूरा-पूरा ध्यान नहीं देता वह और किसी के चक्कर में रहता है फिर उनके लिए तलाक का द्वार खुल जाता है।

जब छोटे-छोटे बच्चे हों उस समय तलाक पति-पत्नी को अभिशाप ही सिद्ध होता है। तलाक के बढ़ते हुए आँकड़े प्रगतिशील देशों के लोगों की अदूरदर्शिता, असहनशीलता और संकुचित दृष्टिकोण की साक्षी देते हैं।

अमेरिका में तलाक लेने के कारण इस प्रकार हैं—

शराबखोरी ३० %

व्यभिचार २५ %

उत्तरदायित्व की उपेक्षा १२ %

प्रतिकूल स्वभाव १२ %

रिश्तेदारों के कारण ७ %

यौन समस्याएँ ५ %

मानसिक रोग ३ %

धार्मिक कारण ३ %

अन्य कारण ३ %

तलाक के कुछ भी कारण हों पर उनसे किसी समस्या का समाधान नहीं होता। ऐसे नर-नारी का मानसिक विक्षोभ एवं असन्तोष बढ़ते-बढ़ते उन्हें अर्धविक्षित की स्थिति में पहुँचा देता है, वे अपनी समस्या को हल करने के लिए दूसरा विवाह करते हैं और फिर वही समस्यायें आकर सामने खड़ी हो जाती हैं।

दाम्पत्य जीवन के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों को जब तक गम्भीरतापूर्वक समझा और निबाहा नहीं जायगा तब तक मात्र यौनलिप्सा की पूर्ति के लिए किये गये विवाह कभी सफल नहीं होंगे। दो आत्माओं को एक-दूसरे में घुलाने की और एक दूसरे को निबाहने की, एकपक्षीय प्यार देने की भारतीय विवाह परम्परा ही पति-पत्नी को सघन सूत्र में बाँधे रह सकती है अन्यथा दैनिक जीवन में आते रहने वाले छोटे-छोटे मतभेद ही गृहस्थ जीवन के आनन्द को नष्ट कर देंगे। बिना सुदृढ़ आधार पर दाम्पत्य जीवन की नींव रखे पति-पत्नी के बीच चिरस्थायी सौजन्यतापूर्वक निर्वाह नहीं हो सकता।

अहंकार और दाम्पत्य प्रेम में एक रह सकता है, दोनों नहीं

महारानी विक्टोरिया के जीवन का एक बहुत मार्मिक प्रसंग है—एक दिन उन्होंने अपने पति एल्बर्ट की किसी बात पर चिढ़कर कह दिया "महारानी मैं हूँ।" महारानी के इस अहंकार की चोट खाकर अल्बर्ट का पौरुषेय स्वाभिमान जाग उठा, वे वहाँ से उठे और अपने विश्राम कक्ष में जाकर लेट गये। भीतर से दरबाजा बन्द कर लिया। महारानी के व्यंग्य के कारण उनका हृदय बुरी तरह झुलस गया था।

महारानी अपने पति की वेदना ताड़ गईं। वे उनके विश्राम स्थल के पास गईं और बाहर द्वार खटखटाया। अल्बर्ट ने पूछा कौन है ? विक्टोरिया ने अपने उसी प्रशासनिक लहजे में उत्तर दिया—"महारानी विक्टोरिया"। अल्बर्ट उत्तर सुन कर यथावत् चुप रहे, उन्होंने उठकर दरवाजा खोलना तो दूर कुछ बोले भी नहीं।

अब कहीं जाकर विक्टोरिया को अपनी भूल समझ आई। उन्होंने पुनः दरवाजा खटखटाया। अल्बर्ट ने पुनः प्रश्न किया कौन ? इस बार महारानी ने मृदुल स्वर में उत्तर दिया—"आपकी प्यारी पत्नी" अल्बर्ट का सारा क्रोध, सारा दुःख दूर हो गया। उन्होंने उठकर द्वार खोल दिये। दोनों के हृदय पुलकित हो उठे, मन का सारा गुबार क्षण भर में घुल गया।

सुखी गृहस्थ के लिये आवश्यक है कि पत्नी-पत्नी दोनों परस्पर एक-दूसरे को पूरक समझें। अपने को दूसरे से बड़ा मानना वह हेय धारणा है, जिससे दाम्पत्य सौमनस्य चूर-चूर हो जाता है। ऐसे पति-पत्नी राष्ट्र और समाज को कोई बड़ा अनुदान दे सकें, यह बात तो दूर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की है वे अपनी सामान्य गृहस्थी में ही सुख और शान्ति स्थिर नहीं रख पाते। इसके लिए मुख्य भूमिका पुरुष की ही रहती है। स्त्रियाँ उतनी अभिमानिनी नहीं होतीं जितने पुरुष। गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उनके गृहस्थ जीवन के प्रारम्भिक दिनों में 'बा' बहुत हठीली थीं, इससे उनमें अक्सर वाद-विवाद हो जाता था किन्तु जैसे-जैसे उनका सार्वजनिक जीवन उज्ज्वल होता गया, वैसे-वैसे कस्तूरबा का हठवादी स्वभाव भी तिरोहित होता गया और अन्तिम दिनों में तो उनका जीवन पूरी तरह बापू के जीवन में समा गया।

पारिवारिक जीवन में निरहंकारिता का समावेश मीठा बोलने और प्रणाम करने की आदत से प्रारम्भ किया जाता है। एक शायर का कथन है कि—

पेशदस्ती सलाम में अच्छी।

खुश कचामी कलाम में अच्छी।।

अर्थात् "पहले प्रणाम करें सो भ्रद और मीठा बोले सो श्रेष्ठ।"

यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिये कि दूसरा मीठा बोलेगा। ऐसा सोचना तो अहंकार का ही पर्याय है। इस आदर्श को एकपक्षीय धारण किया जाये, इसका निष्ठा पूर्वक निर्वाह किया जाता रहे तो एक दिन प्रतिपक्षी को भी झुकने को विवश होना पड़ता है। सन्त सुकरात की पत्नी बहुत गुस्से वाले स्वभाव की थीं। वे चाहे जब सुकरात का अपमान कर देती थीं। एक दिन सन्त सुकरात अपने मित्रों से बातचीत कर रहे, उनकी स्त्री उस दिन इतनी रुष्ट हुई कि सब के सामने बर्तनों का काला धुला बचा कीचड़ वाला काला पानी ही सुकरात के ऊपर उड़ेल दिया। सुकरात ने इसका रत्ती भर भी बुरा नहीं माना अपितु हँसकर बोले—'भाई वाह ! आज तक तो सुना था जो गरजते हैं वह बादल बरसते नहीं पर आज पता चला कि जो गरजते हैं, वह बरसते भी हैं। सन्त की सहनशीलता के आगे कर्कश पत्नी पानी-पानी हो गई और उन्होंने उस दिन के बाद से अपना जीवन पूरी तरह बदल कर विनीत और शिष्ट बना डाला।

रूसी सन्त टालस्टाय और अमेरिकी राष्ट्रपति लिंकन के विषय में कहते हैं। लिंकन की धर्म पत्नी स्वभाव से बहुत उग्र थीं। उन्होंने एक दिन गर्म चाय का प्याला ही लिंकन पर उड़ेल दिया। दोनों ही उदाहरणों में पुरुष का अपना अहंकार अन्त तक बीच में अटका रहा और उनके गृहस्थ जीवन में कभी भी शान्ति की शीतल बयार नहीं झाँकी। गृहस्थ जीवन में आये दिन विपरीत परिस्थितियाँ आती रहती हैं पर यदि मीठा-मधुर बोल कर उनका निवारण कर लिया जाता रहे, तो बात वहीं बन जाती है। मीठे बोल तो पशु-पक्षियों को भी आकर्षित कर लेते हैं, मनुष्य का तो कहना ही क्या ? कहावत है—

हर कुजा चशमाये बवद शीरीं।

मरदुमाँ मुर्गो मोर गर्दायन्द।।

अर्थात्—"जहाँ मीठे जल का झरना होगा, मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी वहाँ खिंचे चले आयेंगे।"

जिन परिवारों में मीठा बोलने और विनम्र होने की परम्परा होगी, वहाँ के बच्चे अभाव में भी असीम तृप्ति अनुभव कर रहे होते हैं। पति-पत्नी और अन्य कुटुम्बी जनों के सुख-सन्तोष का तो कहना ही क्या ? सुख-समृद्धि ऐसे ही घरों में बसती है। तुलसीदासजी ने लिखा है—

जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना।

जहाँ कुमति तहँ विपत्ति निधाना।

अर्थात्—जहाँ पर परस्पर प्रेम और सद्व्यवहार होता है, वहाँ सुख-सम्पत्ति की कमी नहीं रहती, किन्तु दुर्बुद्धिग्रस्त परिवार तो सदा विपत्ति में ही पड़े रहते हैं।

स्वामी रामतीर्थ ने लिखा है कि जब तक पति-पत्नी व्यक्तिगत अहं, व्यक्तिगत सम्मान से ऊँचे नहीं उठते, तब तक दाम्पत्य जीवन की मधुरता सम्भव नहीं। उन्होंने समुचित सीख देते हुए आगे लिखा है—"जिस समय किसी मित्र या प्रिय परिजन की चिट्ठी मिलती है, उस समय वह चिट्ठी को, जिसमें भावनाओं का अंकन मात्र होता है अभिव्यक्ति भी नहीं, हम प्यार करने लगते हैं इसी तरह पति तथा पत्नी एक दूसरे के लिये मानों परमात्मा के पास से आई हुई चिट्ठी है पत्नी के लिये पति परमात्मा की चिट्ठी है तथा पत्नी के लिए पति। इस तरह का दृष्टिकोण विकसित कर लें तो दोनों में अगाध प्रेम की निर्झरिणी आजीवन प्रवाहित बनी रह सकती है।"

अहंकार एक प्रकार का अन्धकार है जो सही स्थिति का अनुभव नहीं होने देता। कोई घटनायें परिस्थितिवश होती हैं पर अहंकारी स्वभाव का चाहे वह पति हो या पत्नी उस परिस्थिति को न देखकर व्यक्ति पर दोषारोपण करने लगते हैं, इससे कटुता उग्र होती है और विग्रह एवं अशान्ति दिनों-दिन बढ़ती चली जाती है। इसलिये जब भी कभी कोई ऐसी स्थिति आये पति-पत्नी दोनों को ही स्वस्थ चित्त से पारस्परिक हित को प्रधानता देकर सोचना चाहिये। अपने आप को पूर्ण निर्दोष मानना तथा प्रतिपक्षी को दोषी मानना अहंकारमूलक प्रवृत्ति है, उससे बचकर ही अपना दाम्पत्य प्रेम चिरस्थायी बनाया जा सकता है।

नर और नारी दोनों में से अपने आप में कोई भी पूर्ण नहीं। पुरुष की अपूर्णतायें नारी में सन्निहित हैं तो नारी की पुरुष में। दोनों के परस्पर अभिमुख होने से ही वह अपूर्णता दूर होती है और सांसारिक पूर्णता का आनन्द मिलता है। अभिमुख होने का अर्थ ही है परस्पर एक दूसरे की ओर खाली मन से देखना, एक दूसरे की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सुनना और समझना। जो अहंकारवश अलग-थलग पड़ जाते हैं, उनके जीवन में अब और निराशा ही हाथ लगती है, इसके विपरीत परस्पर अभिन्न एकता में जीवन के सम्पूर्ण सुख समाहित हैं, जिन्हें कोई भुक्तभोगी ही अनुभव कर सकता है।

यदि हम अपने दाम्पत्य जीवन में प्रेम की अनुभूति चाहते हैं तो हमें शास्त्रकार के इस सदुपदेश को ही ग्रहण करना पड़ेगा—

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या॥

—अर्थ. वे. ३/३०/१

मैं तुम्हारे लिए समान हृदय, समान मन होने तथा द्वेष से सर्वथा अलग होने की मर्यादा बनाता हूँ तुम एक दूसरे को ऐसा प्यार करो जैसे गौ अपने जात बछड़े को प्यार करती है।

भौतिकता की बाढ़ मारकर छोड़ेगी

१६७३ विवाह के पीछे अधिक से अधिक १ तलाक। यह स्थिति १८९० की संयुक्त राज्य अमेरिका की है। सन् १९८० में यहाँ ५३०९३७ नये विवाह हुये, इनमें से ३१७३५ का सम्बन्ध विच्छेद (तलाक) हुआ। इसके बाद भौतिक सुख-सुविधाओं में तेजी से वृद्धि हुई, इस वृद्धि से भी तीव्रगति पारिवारिक जीवन में अशान्ति की रही। १९९४ में अमेरिका में १९१३००० नये विवाह सम्बन्ध हुये, जिसमें से लगभग १ तिहाई अर्थात् ५३४००० लोगों के सम्बन्ध विच्छेद हुये। नये विवाहों की प्रतिशत वृद्धि जहाँ २६० प्रतिशत थी, वहाँ तलाकों में १६०० प्रतिशत की वृद्धि यह सोचने को विवश करती है कि बढ़ती हुई भौतिकता जन-जीवन के लिये भूखे रहने से भी बढ़कर उत्पीड़क है।

बढ़ती हुई यान्त्रिकता और भौतिकता ने मनुष्य को, इतना विलासी बना दिया है कि उसे यौन-सुख के अतिरिक्त भी संसार में कोई सुख, कुछ कर्तव्य और उत्तरदायित्व हैं, यह सोचने को भी समय नहीं मिलता। अनियन्त्रित भोग-वासना ने योरोप के सारे समाज को चरित्र भ्रष्ट कर दिया है। कोई भी पति पत्नी पर और पत्नी पति पर यह विश्वास नहीं कर सकती है कि कब किस नये साथी का चुनाव कर लेगा। सौन्दर्य और शरीर के आकर्षणों के पीछे धुत मनुष्य गुणों की, चरित्र की बात सोच ही नहीं पाता। उसी का परिणाम है आज अकेले अमेरिका में ३००००० महिलायें ऐसी हैं, जिनके विवाह सम्बन्ध हो गये हैं, पर या तो उन्होंने स्वयं या उनके पतियों ने उन्हें छोड़ दिया है।

दाम्पत्य जीवन में जहाँ निष्ठा नहीं होती उस समाज के युवक-युवतियाँ दिक्भ्रान्त होते हैं। उनकी दिक्भ्रान्ति उद्दण्डता, अराजकता, विद्रोह और तोड़-फोड़ के रूप में प्रकट होती है। वह स्थिति उतनी दुःखान्त नहीं होती, जितनी मानसिक शान्ति के नाम पर परस्पर आकर्षण का भ्रम। प्रौढ़ पीढ़ी के प्रति कोई श्रद्धा उनमें होती नहीं, फलतः सांसारिक अनुभवों का लाभ प्राप्त करने की अपेक्षा पानी की बाढ़ की तरह उन्हें जो अच्छा लगता है, उधर ही दौड़ पड़ते हैं। अनैतिक सम्बन्धों की बाढ़ आज उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। यह आँधी अभी दूसरे देशों में अधिक है, पर कोई सन्देह नहीं यदि अपने देश में बढ़ रहे पाश्चात्य प्रभाव के कारण वह स्थिति यहाँ भी न बन जाये।

सोवियत रूस को अपने चरित्र और नैतिकता का बड़ा गर्व रहता है। वहाँ भी ९ बच्चों में से १ बच्चा निश्चित अवैध सम्बन्ध से जन्मा होता है। न्यूजीलैण्ड में ८ के पीछे १, इंग्लैण्ड में १३ में १, आस्ट्रेलिया में १२ में १, अमेरिका में १४ में १ बच्चा ऐसा होता है, जिसके माता-पिता विवाह से पूर्व ही शरीर सम्बन्ध स्थापित कर चुके होते हैं। इस तरह की अवैध सन्तानों की संख्या अकेले अमेरिका में ही तीन लाख से अधिक है।

वर्तमान पीढ़ी की विलासी प्रवृत्ति आने वाली सन्तानों के लिये किस तरह घातक बनती जा रही है, उस पर दृष्टि दौड़ायें तो स्थिति कुछ ऐसी विस्फोटक और चौंकाने वाली दिखेगी कि हर व्यक्ति यही सोचेगा कि १०० वर्ष के पीछे इस संसार में पाये जाने वाले सभी मनुष्य शंकरजी की बारात की तरह टेढ़े, काने, कूबड़े, अन्धे, लूले, लँगड़े, किसी का पेट निकला हुआ, किसी का आवश्यकता से अधिक पिचका हुआ हो तो कोई आश्चर्य नहीं। करोड़ों में कोई एक पूर्ण स्वस्थ हुआ करेगा, तो वह सिद्ध-महात्माओं की तरह पूज्य और सबका नेता हुआ करेगा। यदि आज का संसार अपनी तथाकथित प्रगति के पाँव रोकता नहीं तो क्या अमेरिका क्या भारत इस स्थिति के लिये सब को तैयार रहना चाहिये।

विलासिता का एक दुर्गुण यह भी है कि वह भोग से बढ़ती है शान्त नहीं होती । वासना की भूख न केवल अनैतिक आचरण करने को बाध्य करती है, वरन् शरीर को विषैले पदार्थों से उत्तेजित कर और अधिक भोग का आनन्द लूटने को दिक्भ्रान्त करती है। अमेरिका में आज १५००००० व्यक्ति चरस, गाँजा, कोकीन आदि में से किसी न किसी का नशा अवश्य करते हैं, फ्रांस में अब गणना उल्टी अर्थात् यह पूछा जाता है कि कितने प्रतिशत लोग नशा नहीं करते। यह औसत ५ से अधिक नहीं बढ़ता। पश्चिम जर्मनी में स्त्री-पुरुषों में होड़ है, कौन अधिक चरस पिये, वहाँ के ४ लाख व्यक्ति नशेबाज हैं तो स्त्रियाँ २ लाख, रूस के लोग प्रतिवर्ष ६० अरब रुपये की शराब पी जाते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसका उनके स्वास्थ्य पर पड़ा प्रभाव उतना घातक नहीं, जितना आने वाली पीढ़ी पर पड़ता है। मनुष्य शरीर प्रजनन कोश (जेनेटिक सेल्स) सबसे अधिक कोमल होते हैं, इन्हीं में बच्चों के शरीर और मन को निर्धारित करने वाले क्रोमोसोम (संस्कार कोश) पाये जाते हैं। नशों के कारण यह गुण सूत्र अस्त-व्यस्त हो जाते हैं, उसी का कारण होता है कि बच्चे काने, कूबड़े, लूले, लंगड़े पैदा होते हैं। इंग्लैण्ड में ४० बच्चों के पीछे १ बच्चा अनिवार्य कुरूप होता है। आस्ट्रेलिया में ५० में १, स्पेन में ७० के पीछे १ और हाँककाँग में ८५ में से १ लँगड़ा, अपाहिज पैदा होता है। अमेरिका में प्रतिवर्ष २५०००० बच्चे ऐसे पैदा हैं जिनके शरीर का कोई न कोई अंग विकृत अवश्य होता है। इस समय वहाँ के विभिन्न अस्पतालों तथा घरों में ११००००००० बच्चे ऐसे हैं, जिन्हें किसी न किसी रूप में विकलांग कहा जा सकता है, वह न तो किसी मोटर दुर्घटना का परिणाम होगा, न चोट या मोच का। स्पष्ट है कि यह सब लोगों के आहार-विहार और जीवन पद्धति का दोष है, जो आगामी पीढ़ी को यों दोषी बना रहा है।

यौन सुख की अनियन्त्रित बाढ़ आज के भौतिकवाद की भयंकर देन है। वह लोगों के स्वास्थ्य किस बुरी तरह से नष्ट कर रही है, इसका सही अनुमान तो योरोप के अस्पतालों में जाकर ही हो सकता है, पर यदि किसी को उसकी जानकारी देनी ही हो तो यह कहना ठीक होगा कि जिस तरह अपने देश के अशिक्षित लोगों में अन्ध-विश्वास की बहुतायत है। उसी तरह योरोपीय देशों में अधिकांश व्यक्ति यौन रोगों से पीड़ित मिलेंगे। 'न्यूजवीक' साप्ताहिक ने अपने १० अक्टूबर, ६८ के अंक में लिखा है कि योरोप में ४० हजार महिलायें ऐसी हैं जो इसी कारण कैंसर से बीमार हैं और उनकी कोई चिकित्सा नहीं है। इस प्रकार अमेरिका के डाक्टरों ने भी यौन रोगों को रोक सकने की अपनी सामर्थ्य से हाथ ढीले कर दिये हैं।

यह तूफानी झंझा भौतिकतावाद की चलाई हुई है। मनुष्य उससे बचना चाहता है, तो वह आध्यात्मिकता का आश्रय ले, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं। आध्यात्मिकता ही स्वास्थ्य, सदाचार, शान्ति और नैतिक मूल्य स्थिर रख सकती है।

असफल दाम्पत्य जीवन—कारण और निवारण

घर की तुलना एक ऐसे स्थल से की जा सकती है, जहाँ पहुँच कर आदमी अपनी सारी झंझटों और परेशानियों से मुक्त हो जाता है। उसे मन्दिर भी कहा जा सकता है, जहाँ बैठ कर व्यक्ति लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम में रूपान्तरित करने की साधना करता है। परिवार के ऊपर ही व्यक्तिगत और सामाजिक उन्नति भी निर्भर करती है। इससे उसका सामाजिक महत्व भी है और यह व्यक्ति तथा समाज को जोड़ने वाली एक कड़ी का भी काम करता है। यदि परिवार न हो तो व्यक्ति को न समाज से सम्बन्ध रखने की जरूरत पड़े और न समाज के प्रति अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए व्यक्ति को प्रयत्नशील होना पड़े।

पारिवारिक दायित्वों को भली-भाँति पूरा करने के लिए ही व्यक्ति समाज के क्षेत्र में उतरता है और वहाँ उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों, परेशानियों तथा तनावों से मुक्ति पाने के लिए पुनः परिवार की शरण लेता है, लेकिन देखा जाता है कि परिवार सुख-शान्ति के केन्द्र बनने के स्थान पर तनाव, परेशानी और झंझटों की उत्पत्ति के स्थल ही बनते जा रहे हैं। परिवार बसाने का श्रीगणेश दाम्पत्य जीवन आरम्भ करते हुए होता है। पति-पत्नी परस्पर सहयोग, एकता, आत्मोत्सर्ग, त्याग और सेवा का व्रत धारण करते हुए दाम्पत्य जीवन आरम्भ करते हैं। इन क्षणों में आत्यन्तिक आनन्द और गुदगुदा देने वाले सुख की अनुभूति होना स्वाभाविक है। गृहस्थाश्रम को योग-साधना के केन्द्र तपोवन के नाम से भी पुकारा गया है। इसका कारण यह है कि दाम्पत्य-जीवन को ठीक प्रकार से कलात्मक ढंग से जिया जाय, तो उससे ऐहिक-सुख और आत्मिक आनन्द दोनों की ही प्राप्ति सरलतापूर्वक हो जाती है। कलात्मक ढंग से जिया जाने वाले दाम्पत्य-जीवन आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार के जीवन में विकास के लिए बड़ी सहायक सिद्ध होती है।

यह कहना जरा भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि दाम्पत्य-जीवन स्वर्गिक आनन्द की प्राप्ति का अचूक साधन है। जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समर्पित जीवन-साथी का सहयोग और संयोग इस यात्रा को सुगमता से पूरी करा देता है। पर अधिकांश दम्पत्तियों में उस आनन्द की कहीं भी झलक नहीं दिखाई देती। पति और पत्नी का संयोग-मिलन पौरुष और शक्ति के मिलन की तरह है। बिना पौरुष के शक्ति व्यर्थ ही धरी रहती है और बिना शक्ति के पौरुष भी कुछ नहीं कर पाता। शक्ति और पौरुष का समान प्रवाह ही एकता और सृजन की आवश्यकता को पूरी करता है। यदि इस संयोग में कहीं असंगति, अवरोध या व्यतिक्रम आता है तो सृजन के स्थान पर विघटन और सौन्दर्य के स्थान पर कुरूपता दिखाई देने लगती है।

सम्भव है, गल्ती आरम्भ से ही होती हो। आरम्भ यदि गलत ढंग से हुआ है, तो उसके सत्परिणाम कभी नहीं हो सकते। यदि गाड़ी में एक बैल और एक बकरी को जोता जाय तो गाड़ी कभी अच्छी तरह चल ही नहीं सकती। उचित यह है कि गाड़ी खींचने वाले दोनों चौपाये समान योग्यता और समान क्षमता वाले हों। दोनों में से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक भी कमजोर, अयोग्य और कम ताकत हो तो गाड़ी लड़खड़ाने लगती है। अत: परिवारों को सुख-शान्ति और आनन्द का केन्द्र बनाने के लिए यह आवश्यक है कि पति-पत्नी का चुनाव ठीक और उचित ढंग से किया जाय। यदि दोनों का चुनाव ठीक होगा तो दाम्पत्य-जीवन उतना ही सुखद, उन्नत और प्रगतिशील बनेगा। इसके विपरीत स्थिति में न केवल परिवार में अवरोध उत्पन्न होगा, वरन् सामाजिक-जीवन में भी उसके दुष्परिणाम दिखाई देंगे। क्योंकि समाज आखिर है तो परिवारों का समूह ही और परिवार की नींव दाम्पत्य जीवन है, जिस पर कि परिवार खड़ा होता है।

हमारे देश में पति-पत्नी का चुनाव माता-पिता ही करते हैं। लड़के वालों ने गोरी और सुन्दर बहू के साथ उसके परिवार की माली हालत अच्छी देख ली और लड़की वालों ने भी पढ़ा-लिखा, सुन्दर लड़का देखकर लड़के के साथ विवाह-सम्बन्ध तय कर दिया। आर्थिक सम्पन्नता जीवन की सुख-सुविधाओं के लिए आवश्यक है, पर वही सब कुछ नहीं है। यह भूल कर चुकने के बाद धूम-धड़ाके के साथ विवाह कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। लम्बी-चौड़ी दावतें, खूब खर्च, गाना-बजाना होता है और पति-पत्नी साथ-साथ रहने लगते हैं। शुरू के दिन बड़े मौज-मजे से कटते हैं। पर जैसे ही विवाह हुए कुछ दिन बीते नहीं कि देखे गये सपने चूर-चूर होने लगते हैं और परिवार बजाय सुख-शान्ति के केन्द्र बनने के क्लेश और कलह के अखाड़े बनने लगते हैं। पति-पत्नी में मनमुटाव, घृणा, द्वेष और वैमनस्य का विष व्यापने लगता है, जो एक दिन प्रकट होकर अपनी आग से घर की शांति को जलाने लगता है। पति के माता-पिता को खबर लगती है तो वे बहू को उल्टी-सीधी सुनाने लगते हैं और लड़की के मायके वालों को खबर लगती है तो वे अफसोस करने लगते हैं कि इतना सारा धन पानी की तरह बहाया फिर भी लड़की को सुख-सन्तोष नहीं मिला।

इन तनावों का कारण क्या है ? मानसिकता के धरातल पर पति-पत्नी का असमान होना। विवाह के लिए लड़का या लड़की देखते समय बहुत-सी ऊपरी बातों पर ध्यान दिया जाता है। जैसे—लड़की गोरी और सुन्दर तो है न, वह घर-गृहस्थी के काम निपटाने में तो कुशल है, उसके माँ-बाप अच्छी हालत में हैं या नहीं ? इन ऊपरी बातों पर ही ध्यान देने के कारण जब नये-नये विवाह का ज्वार उतर जाता है तो सामंजस्य और तालमेल न बैठने के कारण तनाव पैदा होने लगता है। जैसे पति चाहता है कि उसकी पत्नी आधुनिका हो, प्रगतिशील विचार रखने वाली हो और पत्नी के संस्कार ऐसे हैं कि दूसरों के सामने पति की या घर के बड़े-बूढ़ों की मौजूदगी में घूँघट उठाना भी उसे बड़ा अनुचित लगे। बाजार में साथ जाने की बात तो दूर, घर में किसी की उपस्थित रहते—पति से खुलकर बातें करने में भी संकोच हो। या पत्नी आधुनिक विचारों की पढ़ी-लिखी, सुशिक्षिता हो और पति महोदय सुशिक्षित होते हुए भी अपने मन को रूढ़िगत संस्कारों की पकड़ से मुक्त न करा सके हों तो ऐसी परिस्थितियों में तनाव पैदा होना स्वाभाविक हो जाता है।

अत: पति-पत्नी के रूप में किसी लड़के-लड़की का चुनाव करते समय न केवल बाहरी स्थिति को देखा जाना चाहिए, वरन् उनकी रुचि, गुणों, प्रकृति और प्रवृत्तियों तथा संस्कारों का अध्ययन कर उस आधार को ही महत्व दिया जाना चाहिए। यह भी उचित है कि लड़के-लड़की की राय भी जान ली जाय और उन दोनों की पसन्दगी तथा ना-पसन्दगी को महत्व दिया जाय। पति-पत्नी का चुनाव जहाँ तक हो सके—दोनों की इच्छा और रुचि की अनुकूलता पर होना अधिक उपयोगी है। इस रुचि का आधार आकर्षण या पूर्व परिचय न होकर—परस्पर का तालमेल रहे तो ज्यादा अच्छा रहता है। क्योंकि रूप-यौवन और सुन्दरता के वासनात्मक आकर्षण में फँसकर किये गये विवाह-सम्बन्ध शीघ्र ही दु:खों और कष्टों में बदल जाते हैं और परस्पर कलह का कारण बन जाते हैं। क्योंकि यह आकर्षण अधिक देर तक स्थिर नहीं रहता।

प्रकृति और मौलिक विचारों में सामंजस्य के साथ-साथ पारिवारिक स्तर की लगभग समानता होने पर भी विवाह-सम्बन्ध किये जायँ। यदि किसी धनवान परिवार में निर्धन कन्या का विवाह हो जाता है, तो उस परिवार में रहना आरम्भ करते ही उसकी पहली प्रतिक्रिया हीनता की होती है। अक्सर उसे अपने माँ-बाप की गरीबी के कारण ताने सुनने पड़ते हैं, कोई दहेज साथ न लाने के कारण उसे कोसा जाता है और घर वालों के प्रभाव में आकर जब पति भी उपेक्षा करने लगे, तब तो उसका जीवन ही भार-स्वरूप बन जाता है तथा न जाने कितने शारीरिक और मानसिक रोग उसे आकर घेर लेते हैं। यह भी देखा गया है कि धन और सम्पन्नता से प्रभावित होकर कई लोग अपनी लड़की का विवाह अधिक उम्र के लड़के या दुर्व्यसनी पति से कर देते हैं, खाने-पीने और रहने-सहने की पर्याप्त व्यवस्था होते हुए भी पत्नी अपने पति से भावनात्मक समानता स्थापित नहीं कर पाती। उसे एक सम्पन्न संरक्षक तो मिल जाता है, पर जीवन साथी पति नहीं मिल पाता। फलस्वरूप कई मानसिक परेशानियाँ उठ खड़ी होती हैं।

इसके विपरीत अब धनी घर की कन्या गरीब युवक के साथ ब्याह दी जाती है तो समस्या और भी उग्र हो उठती है। आमतौर पर ऐसा होता तो नहीं, पर जब लड़की में कोई नुक्स हो अथवा लड़के-लड़की का पहले से सम्बन्ध रहा हो या लड़का अधिक मेधावी तथा योग्य हो तो ऐसी परिस्थितियाँ बनती हैं। ऐसी स्थिति में लड़के के माँ-बाप बड़े खुश होते हैं कि उन्हें काफी दहेज मिल रहा है। किन्तु गरीब घर में अमीर लड़की के आ जाने से बड़ी परेशानी खड़ी हो जाती है। उसे अपने पिता के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर में जैसी जिन्दगी जीने का अभ्यास था और वहाँ जिस तरह के रहन-सहन की सुविधाएँ उपलब्ध थीं, वे यहाँ नहीं मिलतीं। वह खिन्न हो उठती है एक प्रकार से ससुराल वालों पर रौब-दौब भी जताने लगती है कि उसके माँ-बाप ने इतना दहेज दिया, वे उसके अहसानमन्द हैं। जिन साधन-सुविधाओं की वह माँग करती है, पति का गरीब परिवार उन माँगों को पूरा नहीं कर पाता। परिणाम स्वरूप असन्तुष्ट और खिन्न पत्नी—गरीब घर की शान्त छाया में चिन्गारी का काम करती है, जिसके कारण क्लेश की ज्वालायें धधक उठती हैं।

यही हाल शिक्षित-अशिक्षित पति-पत्नी का होता है। किसी अच्छे पढ़े-लिखे युवक का विवाह यदि एकदम अनपढ़ और अनगढ़ लड़की से हो जाता है तो भी गाड़ी पटरी पर नहीं बैठती। अशिक्षा के कारण कोई भी पक्ष एक-दूसरे की भावनाओं को समझ नहीं पाता और न उन्हें पूरा करने में कोई सहयोग कर पाता है। इस प्रकार पति-पत्नी के परस्पर सम्बन्धों में तनाव, अशान्ति, क्लेश और कलह होने का एक बड़ा कारण है, उनका चुनाव उपयुक्त ढंग से न होना। इसके लिए खासकर अभिभावकगण जिम्मेदार होते हैं, जो बहुत ही सतही बातों की देख-भाल कर सम्बन्ध कर बैठते हैं। बहुत से माता-पिता अपनी सन्तान की राय और उनकी भावनाओं को जरा भी महत्व नहीं देते तथा अपने मन की करने पर ही अड़े रहते हैं। यह तो ठीक है कि सन्तान यदि कुमार्ग पर अग्रसर हो रही है तो उसे उधर जाने से रोका जाय, पर इस बात में जरा भी वजन नहीं है कि उसे जिसके साथ रहकर अपनी सारी जीवन-यात्रा तय करनी है, उसके चुनाव के मामले में भी हम अपनी तानाशाही चलायें।

इन भूलों से बचते हुए भविष्य के दम्पत्तियों की उनके सुखी और मधुर सम्बन्धों की सम्भावना सुदृढ़ की जा सकती है, पर जो दम्पत्ति इसके शिकार हो गये हैं और तज्जनित कठिनाइयों का सामना कर रहे हैं, उनके लिए भी समाधान का एक मार्ग है। पति-पत्नी के गलत चुनाव को ही दाम्पत्य-जीवन की असफलता का एकमेव कारण नहीं बताया जा सकता। ये कठिनाइयाँ तब और ज्यादा उग्र रूप से खड़ी हो जाती हैं, जब पति-पत्नी अपने स्वार्थ के प्रति अधिक आग्रहशील हो जाते हैं। यों स्वभाव में थोड़ी-बहुत भिन्नता सभी में होती है। उसे समझौते के साथ निभा लिया जाय तो कोई परेशानी खड़ी नहीं होती और दाम्पत्य जीवन की गाड़ी आराम से चलती रह सकती है। निबाहने और समझौता करने की उदारता जिनमें है, वे बड़ी सरलतापूर्वक अपने दाम्पत्य-जीवन को सुखपूर्वक जीते हुए चला सकते हैं।

दाम्पत्य-जीवन में आने वाली प्रत्येक कठिनाई का यह एक सुगम समाधान है। पति-पत्नी स्वार्थी होने की अपेक्षा एक-दूसरे की प्रसन्नता का ध्यान रखने वाले बनते हुए उत्सर्ग की भावना का विकास करें तो परिवार चाहे निर्धन हो-चाहे अमीर, पत्नी चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित आसानी से प्रत्येक परिस्थिति में सुख-शान्ति और आनन्द का सृजन किया जा सकता है, यही मध्यम मार्ग है और इस पर चलते हुए पति-पत्नी अपनी रुचि, अपनी इच्छा, अपनी आकांक्षा और अपनी आवश्यकता की माँग करने के स्थान पर अपने साथी की रुचि, उसकी इच्छा, उसकी आकांक्षा तथा उसकी आवश्यकता को महत्व दें तो सम्बन्धों में दरार पड़ने की नौबत ही नहीं आती। वस्तुतः स्नेह, प्रेम और आत्मीयता के स्थान पर स्वार्थ और निजी सुख की ही माँग के कारण कटुता के बीज, हम स्वयं ही बोते हैं। जिसके परिणाम विग्रह, क्लेश, सम्बन्ध-विच्छेद जैसी असफलताओं के रूप में सामने आते हैं।

पत्नी-अनुवर्तिनी नहीं सहधर्मिणी

व्यक्ति समाज की एक इकाई तो है पर पूरी नहीं अधूरी। जिस प्रकार विद्युत के ऋण, धन प्रवाह मिले बिना वह अप्रभावी रहती है। उसी प्रकार व्यक्ति जब तक दाम्पत्य सूत्र में बँध नहीं जाता, वह समाज की पूरी इकाई नहीं बन पाता। सामान्य मनुष्य के साथ तो यही नियम लागू होता है। ऐसे व्यक्ति बिरले ही होते हैं, जो एकाकी रहकर भी समाज से जुड़ते हैं, उसके लिये बहुत कुछ करते हैं किन्तु ऐसे अधिकांश एकाकी व्यक्ति समाज विमुख या समाज पर भार ही बने देखे जाते हैं। पति-पत्नी के इस एक होकर इकाई बन जाने में पत्नी को किस रूप में लिया जाय ? यह प्रश्न दाम्पत्य की सफलता और प्रकारान्तर में समाज की श्री वृद्धि के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

नितान्त स्वकेन्द्रित व्यक्ति से लेकर विश्व-मानव समाज की एक सक्रिय इकाई बनने और उस स्तर तक विकसित होने, जहाँ कि व्यक्ति जगत को अपने में और अपने को जगत में देखने लगे, के इस विकास क्रम की जो सीढ़ियाँ हैं उनमें पहली सीढ़ी दाम्पत्य की है। इसकी सफलता-सार्थकता से सारा समाज प्रभावित होता है। यहाँ विवाहोपरान्त पत्नी को जिस दृष्टि से देखा जाता है वह बड़ा महत्वपूर्ण होता है।

प्राचीनकाल में पत्नी पति से किसी भी प्रकार हेय, निम्न या उसकी वशवर्तिनी नहीं मानी जाती थी। तत्ववेत्ता, ऋषि, महर्षि भी दाम्पत्य जीवन को निभाते थे। जीवन के समग्र धर्म को निभाने के लिये एक साथी के रूप में पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान था। उसे सहधर्मिणी माना जाता था। कोई भी कृत्य पत्नी के बिना सम्पन्न नहीं हो सकता था। भगवान श्रीराम को भी अपने महायज्ञ के समय सीता की स्वर्ण मूर्ति गढ़वा कर अपने साथ बिठानी पड़ी थी।

जब तक पत्नी को सहधर्मिणी माना जाता रहा तब तक हमारा देश, समाज, व्यक्ति श्रेष्ठ और शिखरस्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहा। हर दृष्टि से भौतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से, किन्तु ज्यों-ज्यों उसकी स्वभावगत व नैसर्गिक सेवा-भावना, सहनशीलता, ममत्व, समर्पण भावना को उसकी कमजोरी, उसकी विवशता माना जाकर उसे मात्र पति की अनुगामिनी बना दिया गया। उस पर वर्जनाओं के पहरे बिठा दिये गये। उसमें अपने आपको पुरुष से हीन मानने के कुसंस्कार पनपा दिये गये। हमारा दाम्पत्य माधुर्य, परिवार, समाज और देश रसातल को जाने लगा।

उन बातों को दोहराना आवश्यक नहीं कि पति को ही सब कुछ और पत्नी को कुछ नहीं मानने की इस भूल ने नारी पर कितने अत्याचार करवाये और मातृ शक्ति की इस हीन दशा ने हमारे समाज का कितना अहित किया। नारी को 'कल्याणी' के उच्च पद से उतार कर 'पाँवों की जूती' के गर्द में ला पटकने में बहुत बड़ा हाथ दाम्पत्य सम्बन्धों में उसके प्रति रखा जाने वाला गलत दृष्टिकोण है।

आवश्यकता इसी बात की है कि पत्नी को पति अपनी अनुवर्तिनी नहीं, अपनी सहधर्मिणी समझे। सहधर्मिणी के इस सम्बोधन में जो समग्रता और उच्चता है, वह मनुष्य को अपने उच्च लक्ष्य तक पहुँचाने में सुदृढ़ सहारे का काम करता है।

काम तुष्टि धर्म नहीं हो सकती, सामर्थ्य शक्ति और निर्माण कौशल समर्थ दम्पत्ति के लिए सन्तानोत्पादन धर्म हो सकता है। काम सेवन भी उसी मर्यादा तक ही उचित ठहरता है यदि पत्नी को सहधर्मिणी मान कर चला जाय तो और यदि उसे मात्र कामिनी या अनुगामिनी भर माना जाय तो वहाँ मनुष्य के मन में छिपा बैठा पशु फिर किस वल्गा के सहारे थामा जा सकेगा। दाम्पत्य की सफलता, विफलता में यह संयम बहुत महत्वपूर्ण है। सहधर्मिणी के स्वरूप में पत्नी के दर्शन किये जायँ तो वहाँ काम भावना के स्थान पर एक दूसरे के प्रति सेवा की कामना उत्पन्न होगी। पत्नी के प्रति जो सहज अनुराग पति के मन में होता है, वह अमर्यादित काम सेवन की पशु प्रवृत्ति से ऊपर उठकर पिता का, पुत्र तथा भाई के से निष्काम भाव से दिये गये स्नेह और श्रद्धा की देव वृत्तियों के रूप में अभिव्यक्त होने लगेगा, ऐसी स्थिति में पत्नी से भी उसे वैसा ही स्नेह, श्रद्धा का प्रतिदान मिलेगा। वह सकाम से निष्काम की ओर प्रगति करेगा। ऐसी स्थिति में परिवार तो स्वर्ग बनेगा ही, देश व समाज भी गौरवमय बनता चला जायेगा।

पहले हमारे ऋषिगण-आचार्यगण विवाहित होते हुए भी अपनी पत्नी को कभी मात्र स्त्री की निगाह से नहीं देखते थे। उनके इस जीवन का प्रभाव उनके द्वारा चलाये जाने वाले ऋषिकुलों में पढ़ने वाले ब्रह्मचारियों पर भी पड़ता था। आज नन्हें-नन्हें बालक भी गन्दी और अश्लील बातें जानते हैं, कहते-सुनते और कुत्सित चेष्टाएँ करते दिखाई देते हैं, इसका प्रमुख कारण नारी को मात्र वासनात्मक कोण से देखना है। यह दृष्टि पति-पत्नी के पारस्परिक स्वरूप निर्धारण पर बहुत कुछ निर्भर करती है। जिस घर में पति-पत्नी बच्चों के सामने काम भावना से प्रेरित हो वैसी चेष्टाएँ करते हों, उनकी दिन रात्रि की चर्या से जिज्ञासु बालकों यह ज्ञात होता रहता हो कि उनके माता-पिता के पारस्परिक व्यवहार में और उनके साथ किये जाने वाले व्यवहार में कहीं न कहीं भिन्नता है। उनका व्यवहार कुछ असमान्य है जैसा सबके साथ नहीं किया जा सकता तो उनका मस्तिष्क उधर ही काम करने लगेगा और वे असमय ही वे सब बातें जान जायेंगे। ऐसे माता-पिता बच्चों के निर्माण की परीक्षा के पहले पर्चे में ही यहाँ फेल हो जाते हैं।

किसी चिन्तक से पूछा गया कि प्रेम कहाँ से आरम्भ होता है और कहाँ जाकर समाप्त हो जाता है तो उन्होंने जो उत्तर दिया वह बड़ा सटीक व तथ्यपूर्ण था—प्रेम वहाँ आरम्भ होता है जहाँ दो हृदय मिलते हैं और वहाँ समाप्त हो जाता है जहाँ दो शरीर मिलते हैं।' यह कथन नितान्त सत्य है। अन्य सम्बन्धों की तरह दाम्पत्य के क्षेत्र में भी इस शारीरिक सम्मिलन को महत्व न देकर मानसिक व आत्मिक सम्मिलन को महत्व देना उसे स्थायी, सार्थक व सफल बनाना है। पत्नी को सहधर्मिणी मानने पर वैसा करना सहज हो जाता है।

पति-पत्नी, सहधर्मी बनकर अपने जीवन के इन चार दायित्वों को पूरा करते हैं। उनमें पहला है अपना और अपने साथी का निर्माण। 'एक और एक ग्यारह होने' की उक्ति की सार्थकता दाम्पत्य सम्बन्ध में सुन्दर रूप में दिखायी जा सकती है। कोई व्यक्ति पूर्ण नहीं होता किन्तु प्रत्येक को ईश्वर से कुछ न कुछ विशेषता मिली होती है। कोई व्यक्ति ऐसा नहीं होता, जिसे ऐसा कुछ विशेष नहीं मिला होता है। पत्नी गुण, कर्म, स्वभाव में जैसी भी है उसमें कुछ न कुछ विशेषता है उससे लाभान्वित होना और अपने में जो कुछ विशिष्ट है उसे देना। इस क्रम से दोनों के व्यक्तित्व व चरित्र का निर्माण सहज सम्भव होता है।

गृहस्थ—दाम्पत्य के क्षेत्र में प्रवेश करते ही सामाजिक दायित्वों के निर्वाह का क्रम आरम्भ हो जाता है। सन्तान उत्पन्न कर उसे सुयोग्य, समर्थ व सचरित्र नागरिक बनाने के महत्वपूर्ण सामाजिक कार्य में पत्नी सहभागी होती है। उसका सहभागी ही नहीं सहधर्मी भी होना आवश्यक है। बच्चों के पालन-पोषण को कर्तव्य भाव से किया जाना ठीक है न कि मोह भाव से। मोह भाव से किया गया सन्तान का लालन-पालन माता-पिता को उन्हीं से बाँध देता है जबकि उसके सामाजिक दायित्व के रूप में निभाना चाहिये। इसी प्रकार यह क्रम चलता हुआ व्यक्ति के बाद परिवार, समाज और विश्व

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक पहुँचता है, जिसमें पति के लिये पत्नी का सहधर्मिणी स्वरूप ही हितकारी है।

जो लोग पत्नी को अपनी वशवर्तिनी व पीछे चलने वाली मानते हैं वे वस्तुत: उसके साथ ही नहीं नारी जाति के साथ भी गलत ढंग से सोचते हैं। परिवार और दाम्पत्य के क्षेत्र में पत्नी का अनुदान पति से अधिक ही होता है, कभी भी किसी तरह कम नहीं, फिर पति उसे अपनी अनुवर्तिनी माने इसका कोई आधार नजर नहीं आता। 'पीछे चलने वाली' मानने से अपने आप पति पत्नी पर अपना अधिकार मानने लगता है। उसे अपनी ही इच्छाओं के अनुसार चलाना चाहता है। इससे समता के प्रकृतिगत सिद्धान्त का हनन होता है।

पत्नी के लिए एकनिष्ठ रहना जितना आवश्यक है उतना ही पति के लिये भी है और इसी एकनिष्ठता पर दाम्पत्य और परिवार की सफलता निर्भर करती है। किन्तु लम्बे समय से पतिव्रत को तो इतनी महत्ता दी गयी कि उसकी महिमा से ग्रन्थ अटे पड़े हैं किन्तु पत्नीव्रत की बात बहुत कम कही गयी। क्योंकि पत्नी को पति के पीछे चलने वाली माना जाता रहा। जब पत्नी का एकनिष्ठ न रहना, पारिवारिक सम्बन्धों में कटुता व टूटन पैदा करना है तो पति का एकनिष्ठ न रहना भी तो उतना ही भयंकर होता है। यह एकनिष्ठता दोनों के लिये आवश्यक है।

अधिकार भाव जहाँ परिवार को तोड़ता है वहीं साथी का, सहयात्री का, सहधर्मी का भाव उसे पुष्ट और मधुर बनाता है। क्या आवश्यक है कि विवाह के बाद पत्नी अपने सारे व्यक्तित्व को पति में विसर्जित कर दे। यदि उससे इस प्रकार सम्पूर्ण समर्पण की चाह पति करता है, तो वह स्वयं क्यों नहीं वैसा ही करता है। अत: यहाँ दो नदियों की तरह मिलकर एक हो जाने वाली बात उतनी व्यावहारिक नहीं है, जितनी कि दो सहयात्रियों के साथ चलकर मंजिल पर पहुँचने की। जीवन को सार्थक करना प्रत्येक व्यक्ति की मंजिल है किसी में अपने आपको विसर्जित कर देना नहीं।

पत्नी अपनी रुचियों को स्वभाव को एकदम ही पति जैसा बना ले यह न तो सहज है और न ही आवश्यक भी। हर व्यक्ति का गुण, कर्म, स्वभाव एक सा नहीं होता। यह प्रकृति का अटल नियम है। एक ही माता-पिता के पुत्र, एक ही पारिवारिक वातावरण में पले हुए भाइयों के गुण, कर्म, स्वभाव में भी जब जमीन आसमान का अन्तर देखा जाता है तो भिन्न माता-पिता से उपजी, भिन्न पारिवारिक वातावरण में पली पत्नी कैसे एकदम पति जैसी ही हो जायेगी। इस भिन्नता को समाप्त करने का प्रयास तो किया जा सकता है। पर यह समय साध्य है और कठिन भी। लेकिन जहाँ पत्नी वशवर्तिनी मानी जाती है। वहाँ उसकी रुचियों व स्वभावों पर पति अपनी रुचियों व स्वभावों को थोपना चाहता है। इससे और कुछ हो सकता है वह तो हम नहीं जानते, पारस्परिक प्रेम में टूटन अवश्य आती है और जहाँ प्रेम टूटने लगता है वहाँ खुशियाँ नहीं रह पातीं।

इस स्थिति से बचने के लिए ही पत्नी को सहधर्मिणी बनाया गया है। उससे दुनिया भर की अपेक्षाएँ करने की बजाय सहयोग देकर सहयोग पाने का रास्ता ही व्यावहारिक है। कहने की आवश्यकता नहीं कि नारी पुरुष की तरह कठोर, शुष्क व बुद्धि प्रधान नहीं होती वह तो नम्र, सरस व हृदय प्रधान होती है। उससे कुछ भी पाया जा सकता है। पर उस प्राप्ति के लिए उस पर अधिकार जताकर लेने का तरीका नितान्त अविवेकपूर्ण है। पति उससे जैसा व्यवहार पाना चाहता है वैसा स्वयं भी करे तो, वहाँ दिये हुए का कई गुना लौटाती है। यही तरीका व्यावहारिक भी है।

दाम्पत्य की सफलता के लिए पत्नी से यह शिकायत करना कि वह मुझे समझती नहीं पति महाशय का कितना एकांगी चिन्तन है। वे स्वयं पत्नी को समझने—उसकी भावनाओं का आदर करने का कितना प्रयास करते हैं तो फिर उससे यह अपेक्षा करना कहाँ का न्याय है। यह समझ दोनों तरफ से उपजनी चाहिए। इसकी पहल पति को करनी चाहिए क्योंकि सदियों से पति की आज्ञा का अनुसरण करना ही एकमात्र धर्म मानने वाली नारी में भी वह रूक्षता आ जाय जो पुरुष में है तो इसमें अस्वाभाविक ही क्या है। पुरुष अपनी मनमर्जी से अपने-आपको उस पर थोपता आ रहा है। जबकि यह ठीक नहीं है। नारी पुरुष बन जाय या पुरुष नारी बन जाय इसकी आवश्यकता नहीं है। दोनों अपने-अपने रूपों में पूर्ण हैं, उसी रूप में उनकी उपयोगिता है। यह सम्पूर्ण व्यक्तित्व विसर्जन की बात अप्राकृतिक है। प्राकृतिक है पति-पत्नी दोनों, अपने-अपने स्वरूपों को बनाये रखते हुए साथ चलें और उस लक्ष्य को प्राप्त करें जो मनुष्य जीवन को सार्थक करता है।

पतिव्रत ही नहीं, पत्नीव्रत भी निभाया जाय

विवाह का अर्थ काम सेवन की सुविधा, रोटी बनाने, घर रखाने की व्यवस्था, एक कमाऊ सहयोगी मिल जाना नहीं वरन् दो आत्माओं का एकीकरण है। प्रेम मानव तत्व की सबसे उत्कृष्ट विभूति है। आनन्द और उल्लास का सारा आधार उसी पर अवलम्बित है। प्रेम का उभयपक्षीय परिपोषण और निरन्तर अभिवर्धन आध्यात्मिक प्रगति की एक महत्तम साधना है। इस साधना को दो पूरक पात्रों की तरह पति-पत्नी विवाह सम्बन्ध से बँधते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि वे दोनों परस्पर आजीवन वफादारी, आत्मीयता, सेवा-सम्मान, उदारता, सहयोग, सद्भावना की दृष्टि से एक-दूसरे को अपना आराध्य मान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर गृहस्थ की नाव को खेते हुए जीवन सागर के अन्तिम छोर तक पहुँचेंगे।

इस आदर्श को निबाहने के ऊपर दाम्पत्य जीवन एवं गृहस्थ निर्माण की प्रयोजन पूर्ति सम्भव है। विवाह से तरुण वय की एक उमंग वासना का भी नियन्त्रण हो जाता है। छत पर परनाला लगा होने से वर्षा का पानी इकट्ठा होकर एक ही मार्ग से निकल जाता है अन्यथा उसके किधर भी फैलने और गिरने का डर रहता है। यों विवाह का उद्देश्य एक दूसरे के आध्यात्मिक स्तर उठाकर बौद्धिक विकास एवं सांसारिक जीवन को सुविधापूर्ण बनाना है और उसमें आध्यात्मिक संयम नितान्त आवश्यक है। फिर यदि दोनों पक्ष अपने मनोविकारों को नियन्त्रित न रख सकें और परिवार बढ़ाने की योजना से सुसम्पन्न हों तो काम सेवन की भी एक मर्यादित गुंजायश है। पर यह मानकर ही चलना चाहिए कि विवाह जैसा पवित्र प्रयोजन केवल वासना के लिए ही सम्पन्न नहीं किया जाता। यदि ऐसा ही होता तो पशुओं की तरह वह घृणित प्रयोजन पूर्ण होते ही पति-पत्नी एक दूसरे को भूल जाते और उपेक्षा करने लगते। वेश्यावृत्ति और व्यभिचार में गृहस्थ की मर्यादित वासना की अपेक्षा आकर्षण बहुत अधिक होता है पर उद्देश्य न होने से उन लोगों में कोई किसी के प्रति वफादार नहीं रहता।

गृहस्थ जीवन की मूल शक्ति साथी के प्रति वफादारी है। सुख-सुविधाओं में ही नहीं विपत्ति, रोग और असमर्थता में भी वफादारी अक्षुण्ण बनी रहे तो समझना चाहिए विवाह करने वालों ने उसका आदर्श भी समझ लिया। सच्चे साथी की हर किसी को प्यास है। इस सम्बन्ध में गहरी निश्चिन्तता मिल जाने पर मनुष्य को भारी सन्तोष और साहस मिलता है। बेजान चीजें एक और एक होकर दो हो सकती हैं। पर सजीव मनुष्य एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। जिन गृहस्थ में पति-पत्नी को एक-दूसरे पर अटूट विश्वास है, जिनकी पारस्परिक वफादारी असंदिग्ध है, जिनके बीच दुराव का एक कण भी नहीं, जो सुख-दुःख में समान रूप से साझीदार रहते हैं। एक-एक पाई आय-व्यय की जानकारी जहाँ दोनों को रहती है, जो अपनी असुविधा की उपेक्षा करते हुए साथी की सुविधा को प्रधानता देते हैं, जो हँसने-हँसाने की उपयोगिता समझ कर एक दूसरे के मन का भार हल्का करते रहते हैं, उन्हें ही धन्य और सफल कहा जा सकता है। आनन्द ऐसे ही गृहस्थ का है। प्रगतिशील और समुन्नत जीवन से ऐसे दाम्पत्य जीवन का भारी योगदान रहता है। यदि विवाह करना हो तो ऐसा दाम्पत्य जीवन बनाने के लिए अपनी ओर से प्राण प्रयत्न करने और बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए उद्यत होकर ही कदम बढ़ाना चाहिए अन्यथा केवल काम सेवन की सुविधा के लिए विवाह करना वेश्यावृत्ति से भी गया गुजरा घृणित कर्म है।

भारतीय दर्शन के अनुसार विवाह एक आत्म समर्पण, उत्सर्ग तथा आस्था परिपक्व करने की घर में रहकर की जाने वाली योग साधना है। हमारा दाम्पत्य जीवन इसी स्तर का होना चाहिए। तभी उससे वफादारी, आत्मीयता, सेवा, सन्तोष एवं प्रगति के फल लगेंगे। सन्तान का सद्गुणी होना पति-पत्नी की इसी मनःस्थिति पर निर्भर है। गंगा और यमुना बनाकर तीर्थराज बनता है। रात्रि और दिन का मिलन संध्या काल की पुनीत वेला विनिर्मित करता है। बिजली के दो तार मिलकर प्रवाह उत्पन्न करते हैं। दो सच्चे अर्थों में मिले हुए अन्तःकरण वाले पति-पत्नी ही सद्गुणी-समर्थ और सुविकसित सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं। जिन जोड़ों के बीच अविश्वास, आशंका, रोष, घृणा, निराशा भरी होगी, उनका प्रभाव सन्तान पर अवश्य आवेगा और बच्चे शरीर, मन एवं स्वभाव की दृष्टि से अनेक दोष-दुर्गुण जन्मजात संस्कारों के रूप में लेकर जन्मेंगे और सारे परिवार के लिए एक समस्या बनकर रहेंगे।

अविश्वासी और अनुदार वातावरण के बीच विवाहित रहते हुए भी दोनों एकाकी समझते हैं और मन आशंका से भरा रहता है कि कभी भी विश्वासघात हो सकता है। किसी तरह गाड़ी लुढ़कती भी रहे तो वह एक लोक-लाज की रस्सी से बँधा हुआ बन्धन मात्र रह जाता है। उसमें न आनन्द रहता है, न उल्लास, सरसता रहती है और न सुनिश्चितता। ऐसे लाभों से रहित गृहस्थ एक कठिनाई से ढोया जाने वाला भार मात्र ही बना रहेगा।

छोटे घर-घरानों को स्वर्ग का वातावरण करने की एक प्रयोगशाला बनाकर रखा जाना चाहिए। पतिव्रत धर्म एवं पत्नीव्रत धर्म के अन्तर्गत दोनों के ऊपर जिन कर्त्तव्य उत्तरदायित्व का भार आता है, उसे अति उत्साहपूर्वक वहन किया जाना चाहिए और प्रयत्न यह होना चाहिए कि साथी की तुलना में अपनी भूमिका अधिक ऊँची बनी रहे। भारतीय नारियों की पतिव्रत साधना एक ऐतिहासिक तथा मनोवैज्ञानिक तथ्य है। उनमें से ९० प्रतिशत अपना भाग ईमानदारी से पूरा करती हैं। अशिक्षा, अनुभवहीनता एवं संकुचित वातावरण में आबद्ध रहने के कारण उनके कर्त्तव्य और व्यवहार में कुछ दोष रहने स्वाभाविक हैं। इन्हें कारणों का निवारण करके बदला जा सकता है। पर उनकी ईमानदारी, वफादारी असंदिग्ध है। यों १० प्रतिशत में पुरुषों के उत्पन्न किये हुए मूल दोष भी हो सकते हैं पर उनमें से अधिकांश की सज्जनता असंदिग्ध है। पतिव्रत धर्म का एक बहुत बड़ा भाग अभी भी भारतीय नारी में कहीं भी—गई-गुजरी स्थिति में भी देखा जा सकता है।

इस पुनीत क्षेत्र में आग लगाने और विकृतियाँ उत्पन्न करने का दोष अधिकतर पतियों का होता है। इसलिए आज की परिस्थिति में सबसे अधिक उपदेश, प्रशिक्षण और दबाव पतियों पर दिया जाना चाहिए कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भूले हुए पत्नीव्रत धर्म की पुनः याद करें और ज्येष्ठता के कारण अपना अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करके पत्नी को अनुगामिनी बनने का प्रकाश दें। स्त्रियों के लिए पतिव्रत धर्म ही स्वर्ग, मोक्ष की साधना है, पति परमेश्वर मानना चाहिए, उसके प्रति वफादारी, उदारता और सेवा भावना बरतनी चाहिए। इन उपदेशों को बहुत दिन से सुना जाता रहा है। महिला वर्ग ने उसका पालन इतनी खूबी के साथ किया कि इस इतिहास से संसार चमत्कृत है। आज भी भारत के गये-गुजरे गृहस्थ को देखकर पाश्चात्य सभ्यताभिमानी यही सोचते हैं कि आदर्श परिवार बसाने की प्रक्रिया भारत से सीखनी होगी। इस गौरव से नारी की ही भूमिका प्रधान है।

जो आशायें हम पत्नी से करते हैं उसका प्रशिक्षण पति को अपने व्यवहार एवं सद्गुणों में करना चाहिए। कोई नहीं चाहता है कि हमारी पत्नी दुराचारिणी, फिजूल-खर्च, दुराव रखने वाली, असहिष्णु, आवेशग्रस्त, कटुभाषी जैसे दुर्गुण युक्त हो। इसलिए उसका कर्त्तव्य है कि पत्नी के आगे इन्हीं अपनी विशेषताओं का ध्यान रखे। बीमारी, सन्तान न होने, मन्दबुद्धि अथवा व्यवहार ज्ञान से न्यूनता के कारण पत्नी को छोड़ देने, अपमानित करने अथवा सताने की बात सोचना ही पत्नीव्रत धर्म के महान् आदर्श के प्रतिकूल है। शंकरजी सर्पों को शरीर में लपेटे रहते थे। चन्दन वृक्ष पर भी सर्प, बिच्छू लिपटे रहते हैं। एक सज्जन पति का भी कर्त्तव्य है कि पत्नी में इस प्रकार की कमियाँ हों तो भी ऊपरी ओर से अपने कर्त्तव्य में रत्तीभर भी न्यूनता न आने देकर स्नेह, सद्भावना, सेवा और उदारता का ही व्यवहार करे। पतिव्रत धर्म नारी समाज में बहुत कर जिन्दा है। अब पुरुष का काम है कि पत्नीव्रत की आदर्शवादिता को दृढ़तापूर्वक अपनाये और गृहस्थ जीवन की उत्कृष्टता में घर को स्वर्ग बनाये और संसार को एक महत्तम मार्गदर्शन प्रस्तुत करे।

बुद्धिवाद के इस अभिशाप से समाज को मुक्ति दिलायें

दाम्पत्य जीवन के सुमधुर सम्बन्धों की आधारशिला पति-पत्नी के बीच भावनात्मक सम्बन्धों, स्नेह और सौहार्द्र के ऊपर टिकी होती है। यह सम्बल जितना ही सुदृढ़ होगा दाम्पत्य जीवन उतना ही सरस, माधुर्यपूर्ण, सफल और सार्थक सिद्ध होगा। शारीरिक तुष्टि, आर्थिक निश्चिन्तता और सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से तो समझौते की नीति जो अधिकारों के आधार पर बनती है, से भी किसी तरह घिसटते हुए काम चल सकता है पर स्वार्थों पर आघात लगते ही किसी भी क्षण आपसी सम्बन्धों के टूटने का पूरा-पूरा खतरा रहता है। यह सुनिश्चित है कि भौतिक स्वार्थों के कारण जुड़े हुए सम्बन्धों में कभी स्थायित्व नहीं हो सकता। पर यदि पति-पत्नी को जीवन, पर्यन्त सुदृढ़ रूप से अटूट स्नेह-सूत्र में बँधा रहना अभीष्ट हो तो अपने क्षेत्र को भाव-संवेदनाओं से अनुप्राणित करना होगा, अधिकारों का सीमित करना तथा दूसरे पक्ष के प्रति अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा का परिचय देना होगा।

पारिवारिक जीवन का अध्ययन करने वाले मनःशास्त्रियों का मत है कि दाम्पत्य जीवन में पति-पत्नी के बीच होने वाले मतभेदों, मनमुटाव तथा झगड़ों का कारण मुख्यतः भौतिक समझा जाता है, जबकि वास्तविकता इसके विपरीत है। भावसंवेदनाओं के अन्तःस्रोत शुष्क पड़ जाने के कारण ही परस्पर मनोनालिन्य बढ़ता है। बढ़ते-बढ़ते जिसकी विस्फोटक परिणित विवाह विच्छेदों, तलाक की घटनाओं के रूप में होती है। यह कहना निराधार है कि भौतिक असुविधाओं के कारण तलाक की परिस्थितियाँ प्रस्तुत होती हैं। यदि यह बात सच रही होती तो समृद्ध एवं सुविकसित देशों के परिवार सर्वाधिक खुशहाल और प्रसन्न दिखायी पड़ते और दाम्पत्य जीवन अधिक सुखी रहते। पर सर्वेक्षण और अध्ययन के निष्कर्ष बताते हैं कि सबसे अधिक घुटन और तनाव से भरा जीवन समृद्धतम देशों में दम्पत्तियों का है। उन देशों में परिवार संस्था-क्रमशः टूटती जा रही है। उपयोगितवादी समझौते की नीति पर दाम्पत्य जीवन टिका हुआ है। जिस पर थोड़ा भी आघात पहुँचते ही सम्बन्धों के टूटने का खतरा पैदा हो जाता है। इसका कारण भौतिक समझा जा सकता है पर वस्तुस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करने वालों का मत है कि यदि दाम्पत्य जीवन की जड़ को स्नेह-सद्भाव के द्वारा अभिसिंचित करने का प्रयास आरम्भ से ही किया गया होता तो उसकी जड़ें इतनी मजबूत हो जातीं कि कभी बाह्य आघातों के कारण उनके उखड़ने की संभावना नहीं रहती और पति-पत्नी के सम्बन्ध स्थायी, सौहार्द्रपूर्ण, सरस बने रहते।

भौतिकवादी जीवनदर्शन के बढ़ते प्रभाव ने मानवी संवेदनाओं को बुरी तरह रोंदा है। पश्चिमी देशों में विवाह शारीरिक धरातल पर होते हैं। मानसिक एवं भावनात्मक सामंजस्य स्थापित न हो पाने के कारण, स्थूल का आकर्षण कम होते ही सम्बन्धों के टूटने में देरी नहीं लगती। पति-पत्नी के बीच जो विश्वास और समर्पण का सघन भाव होना चाहिए, वह कहीं भी दिखायी ही नहीं पड़ता है। बढ़ती हुई तलाक की प्रवृत्ति पश्चिमी देशों की दुखद स्थिति पर प्रकाश डालती है। प्राप्त आँकड़ों के अनुसार अमेरिका में सन् १९६० के पूर्व तलाक लेने वालों की संख्या प्रति हजार पीछे पाँच थी, जो अप्रत्याशित गति से पिछले दशकों में बढ़ी है। वर्ष १९७१ में २९ प्रतिशत अमेरिकी विवाह तलाक में परिवर्तित हो गये। वर्ष १९७५ में यह प्रतिशत ३४ तक जा पहुँचा। अमेरिकी राष्ट्रीय स्वास्थ्य सांख्यिकी केन्द्र की रिपोर्टानुसार वर्ष १९६५ में कुल ४ लाख ७९ हजार दम्पत्तियों ने तलाक दिया, जबकि १९७५ में तलाक लेने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

वालों की संख्या दस लाख से भी ऊपर जा पहुँची। अनुमान है कि विगत सात वर्षों की अवधि में तलाक की घटनाओं का प्रतिशत ४० तक जा पहुँचा है अर्थात् १०० विवाहों में से ४० तलाक में परिवर्तित जाते हैं।

हिन्दुस्तान टाइम्स दैनिक पत्र में प्रकाशित एक आँकड़े के अनुसार कनाडा जैसे छोटे से देश में नर-नारियों में तलाक की प्रवृत्ति तेजी से बढ़ रही है। परिवार संस्था बिखरती जा रही है। वर्ष १९७१ में २५ हजार विवाह विच्छेद की घटनाएँ प्रकाशन में आयीं। १९७६ में यह संस्था ४७ हजार तक जा पहुँची। सन् १९८१ में लगभग ७० हजार व्यक्तियों ने तलाक लिए। इंग्लैण्ड और वेल्स में वर्ष १९६० में तलाक की घटनाओं का प्रतिशत दस था। १९७० में बीस, १९८० में तीस प्रतिशत जा पहुँचा है अर्थात् जितनी शादियाँ प्रतिवर्ष होती हैं लगभग उसकी एक तिहाई टूट जाती हैं। स्वीडन में स्थिति और भी अधिक विस्फोटक है। यहाँ जितनी शादियाँ होती हैं, लगभग उनकी आधी टूट जाती हैं। अर्थात् विवाह विच्छेदों का प्रतिशत लगभग पचास है।

पश्चिम के भौतिकवादी जीवनदर्शन ने भारतीय सामाजिक परिस्थितियों को भी प्रभावित किया है। अपनी सांस्कृतिक मान्यता है कि विवाह दो पवित्र आत्माओं के मिलन की एक ऐसी पुनीत प्रक्रिया है, जो एक-दूसरे के जीवन को अधिक सुविकसित और परिपूर्ण बनाती है। जुड़े हुए सम्बन्ध इसी जीवन तक नहीं रहते वरन् अन्य जन्म-जन्मान्तरों तक चलते हैं। यही कारण है कि विकट से विकट परिस्थितियों में भी भारतीय संस्कृति पति अथवा पत्नी में से किसी को भी विवाह विच्छेद की अनुमति नहीं देती। यह उदात्त भाव जब तक अपने समाज में बना रहा, दाम्पत्य जीवन के टूटने और अलग-विलग होने की नौबत यत्किन्चित ही आती थी। जो ऐसा कदम उठाने का दुस्साहस करते भी थे तो उनकी सामूहिक रूप से सामाजिक स्तर पर भर्त्सना और निन्दा की जाती थी। वह परम्परा और सांस्कृतिक गौरव गरिमा अब पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते हुए प्रभाव से धूमिल पड़ती जा रही है। तलाक की प्रवृत्ति अपने देश में भी बढ़ती जा रही है तथा अपनी सुदृढ़ता एवं पवित्रता के लिए विख्यात भारतीय परिवारों को विघटित कर रही है।

आँकड़े बताते हैं कि सन् १९६१ में अपने देश में १०० व्यक्तियों के पीछे एक तलाक की घटना घटित होती थी। वर्ष १९७१ में ५० व्यक्तियों पीछे एक तलाक की घटना प्रकाश में आयी। लगभग एक दशक बाद अर्थात् वर्ष १९८० में तलाक की घटनाओं में तीन गुनी से भी अधिक वृद्धि हुई। अनुमानत: प्रत्येक पन्द्रह व्यक्ति पीछे एक विवाह विच्छेद का औसत रहा।

मात्र बौद्धिक धरातल पर सोचने वाले कुछ विचारशील लोगों का मत है कि आपसी मतभेद के कारण घुटन भरी जिन्दगी जीने की अपेक्षा तलाक ले लेना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। पर इस ढंग से विचार करने वाले वस्तुत: दूरगामी परिणामों को भूल जाते हैं। विवाह विच्छेद करा लेना सुगम है पर उसके बाद प्रस्तुत होने वाली परिस्थितियाँ कहीं अधिक कष्टदायक होती हैं। ऐसे व्यक्ति समाज में अपनी प्रामाणिकता गँवा बैठते हैं। उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता है। सगे-सम्बन्धियों और निकटवर्ती साथियों तक के मन में यह बात जमी रहती है कि ये वे ही व्यक्ति हैं जो पति अथवा पत्नी के न हो सके। पुनर्विवाह होने पर भी दूसरे पक्ष का वे विश्वास अर्जित नहीं कर पाते। यह आशंका सदा बनी रहती है कि कहीं सम्बन्ध टूट न जाय। सबसे अधिक भावनात्मक ठेस उन मासूमों को पहुँचती है, जो पैदा तो होते हैं पर माता पिता के विलगाव के कारण स्नेह पाने से वंचित रह जाते हैं। तलाक के अनेकानेक दुष्परिणामों की तुलना उन छोटे-मोटे मतभेदों से की जाय, जो दाम्पत्य जीवन में पैदा होती है, तो मालूम होगा कि प्रथम कहीं अधिक कष्टदायक है। थोड़ी सूझ-बूझ और धैर्य का परिचय देकर मतभेदों के कारण ढूँढ़ने और निवारण के लिए प्रयत्न किया जा सके तो कोई कारण नहीं कि हल न निकाला जा सके।

दाम्पत्य जीवन का सुखद निर्वाह

कल-कारखानों में कितने ही व्यक्ति मिल-जुलकर काम करते हैं, अपनी-अपनी ड्यूटी निभाते हैं। पर इतने भर से उनमें न तो आत्मीयता उभरती है और न घनिष्ठता। इसके बिना वह भीड़ एक ही बाड़े में रहने वाली भेड़ों की तरह जीवनचर्या की पूर्ति भर करती है; पर ऐसा नहीं होता कि उनके बीच पारस्परिक निर्भरता रहे। एक दूसरे के व्यक्तिगत जीवन में सहकार करें और विपत्ति के समय एक दूसरे के लिए बड़ी कुर्बानी करने के लिए तैयार रहें। इस कारण परस्पर वह स्नेह-सद्भाव नहीं देखा जाता, जिससे मन की कली खिले और अपनी क्षमता अनेक गुनी दीख पड़े।

दाम्पत्य जीवन की यही विशेषता है, जो अन्यत्र नहीं दीख पड़ती। सच्चा दाम्पत्य जीवन वही है, जिसमें आत्मीयता का गहरा पुट हो। इसके बिना वह मालिक और मजूर जैसा एक सामाजिक अनुबन्ध मात्र बन कर रह जाता है। पूरे परिवार में अनेक सदस्य रहते हैं। वे अपनी-अपनी मर्यादा में रहकर अपनी आवश्यकताएँ भर पूरी करते हैं; किन्तु कोई किसी पर पूर्णतया निर्भर नहीं रहते।

अबोध शिशु माता पर निर्भर रहते हैं और उसके वात्सल्य का लाभ उठाते हैं किन्तु ऐसा नहीं होता कि बच्चा भी उसी स्तर का प्रतिपादन प्रस्तुत करे। उसमे केवल माता ही की एकाकी भाव प्रमुखता रहती है, किन्तु पति-पत्नी के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है। यदि उनके बीच आत्मीयता की जड़ें इतनी गहरी न हों कि एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरे को आत्मसात् कर लें तो समझना चाहिए कि लौकिक उपचार भर निभा, जो स्वर्गीय आनन्द इस मिलन का उपलब्ध होना चाहिए, वह न हो सका।

आमतौर से पति खेत, दुकान, नौकरी आदि से पैसा कमाता है और स्त्री घर रहकर भोजनालय, शिशु-पालन एवं सफाई, चौकीदारी आदि में निरत रहती है। दोनों पक्ष के यह कार्य औपचारिक हैं। वह जीवन की व्यवस्था के साथ जुड़े रहते हैं। इतने मात्र से काम तो चलता रहता है पर भावनात्मक तुष्टि नहीं होती। भावनाएँ पारस्परिक विश्वास, सद्भाव और सौजन्य के आधार पर विकसित होती हैं और समर्पण भावना से सिंचित होकर फलती-फूलती हैं।

सफल दाम्पत्य जीवन वह है, जिसमें सघन मित्रता की विशेषताएँ जुड़ी रहें, एक-दूसरे के सम्बन्ध में निरन्तर सोचते रहें, उसकी उचित प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता अनुभव करें। इसके पीछे न तो स्वार्थ की व्यवसाय बुद्धि काम करे और न उचित-अनुचित का विचार किये, अक्षरशः आज्ञा पालन की विवशता ही हो।

क्रम-व्यवस्था की रूपरेखा बनाने में दोनों की सहमति और सन्तुष्टि होना आवश्यक है। किसी पक्ष को ऐसा न लगे कि उस पर कुछ लादा जा रहा है। बलात् श्रम तो जेलखाने में बन्दियों से लिया जाता है, किन्तु योजनाएँ विज्ञजन पारस्परिक विचार-विनिमय के आधार पर बनाते हैं। गृह-व्यवस्था में पत्नी का योगदान हो, इसके सम्बन्ध में उसकी स्थिति तथा सुविधा को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। काम का जितना बोझ सरलता से उठ सके, उतना ही करने की बात बननी चाहिए। इसके विपरीत दिन-रात काम में जोते रहना और अध्ययन, विनोद, विश्राम या निजी साज-संभाल के लिए समय न बचने देना बुरी बात है। इससे खीज और निराशा पैदा होती है। समझा जाता है कि वह पत्नी नहीं, रोटी-कपड़े की कीमत पर खरीदी गयी दासी मात्र है। इन परिस्थितियों में स्नेह-सद्भाव का समुचित विकास होना संभव नहीं।

विवाह को कामुकता की खुली छूट मिलने का कानूनी घोषणा पत्र नहीं मान बैठना चाहिए। आवश्यकतानुसार यदा-कदा यह उपचार भी चलता रह सकता है, पर उसके पीछे मर्यादा का, विचारशीलता का समावेश होना चाहिए। विवाह कामुकता की अमर्यादित पूर्ति के लिए नहीं होता, इससे दोनों के शरीर क्षीण होते हैं और ऊपर से दीखने वाला प्यार भीतर-घात करने वाली कैंची का काम करता है। इसलिए इस प्रसंग में धैर्य और अवसर की प्रतीक्षा करनी चाहिए। दोनों की ही मानसिक तरंगें बेकाबू हो रही हों तो ही इस दिशा में कदम बढ़ाना चाहिए।

रंग-रूप को प्रमुखता नहीं दी जानी चाहिए। हम सब भारतवासी हैं, श्रमजीवी और सीमित साधनों वाले हैं इसलिए न तो परम्परागत सौन्दर्य ही के धनी हो सकते हैं और न सामाजिक परम्परा के अनुसार सिनेमा जैसी उच्छृंखल अभिव्यक्ति ही कर सकते हैं। लज्जा का निर्वाह अपने समाज के शील का चिन्ह है। इसलिए विवाह करने से पूर्व ही यह धारणा बना लेनी चाहिए कि साधारण रूप-रंग, बनावट और स्वभाव की पत्नी से ही गृहस्थ का निर्वाह ठीक प्रकार बन पड़ेगा। रूप-रंग के लिए भौंरे की मनःस्थिति नहीं बनानी चाहिए कि एक को लक्ष्य न रहने देकर अनेकों से सम्पर्क साधें या उनका चिन्तन करें। इस दिशा में उन्हीं के कदम उठते हैं, जो रूप-लावण्य और चुहल-चंचलता की प्रवीणता को पसन्द करते हैं। जिनकी पसंदगी ऐसी होती है, वे फिल्म एक्टरों की प्रतिच्छाया ढूँढ़ते फिरते हैं। इसमें निराशा तो मिलती ही है, दाम्पत्य जीवन भी अविश्वास एवं असन्तोष से भर जाता है। इस विपत्ति से बचना हो, तो विवाह के उपरान्त अपने साथी को ही सबसे अधिक रूपवान और गुणवान मान कर चलना चाहिए। जो कमियाँ हों, उनके सम्बन्ध में स्नेह-सौजन्य के साथ उनके निराकरण का प्रयत्न करना चाहिए। यदि दूसरे का उस सीमा तक बदलना सम्भव नहीं हो तो फिर धैर्यपूर्वक उसे सहन करना चाहिए। एक प्रकृति के दो मनुष्य कहीं नहीं मिलते। उनके बीच कुछ न कुछ अन्तर रहता ही है। आवश्यक नहीं उसमें पूरी तरह सुधार-परिवर्तन हो जाय। उचित यही है कि अपने साथी के प्रति सघन आत्मीयता के आधार पर प्रेम की घनिष्ठता उत्पन्न की जाय और उसे एकरस भाव से निबाहा जाय।

पति अपने को बड़ा मानते हैं और पत्नी को दासी-अनुचरी मानते हैं। ऐसी दशा में समय के अभाव में कोई किसी का सम्मान नहीं कर पाते। मुक्त कंठ से प्रशंसा भी नहीं बन पड़ती। इस कमी को पूरा करना चाहिए। साथी के प्रति न केवल गहरा विश्वास और आत्मभाव हो, वरन् उसके भावुक सम्मान को किसी प्रकार चोट न लगने पाये, इसका भी ध्यान रखना चाहिए। गुणों की प्रशंसा करना, सेवा-सहायता के लिए कृतज्ञता प्रकट करते रहना, जिसके आधार पर यह समझा जाता है कि अपना सही मूल्यांकन हुआ।

मिलजुल कर काम करने की आदत एक प्रकार का विनोद-सहयोग बन जाती है। इसलिए पतियों को अपने काम ही पत्नी पर नहीं लादते रहना चाहिए, वरन् उसके हिस्से के कामों में जितना संभव हो, उतना सहयोग करना और हाथ बँटाना चाहिए। इसमें समता और एकता का प्रदर्शन भी बन पड़ता है और उसका लाभ लेते हुए आनन्द भी अधिक आता है। अपने विश्वास और सद्भाव ही प्रतिध्वनि, प्रतिच्छवि और प्रतिक्रिया के रूप में आमतौर से अपने साथी के व्यवहार में परिलक्षित होते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य जीवन और सहचरत्व

मनुष्य जाति एक है। उसके दो भाग सृष्टि से नर-नारी के रूप में इसलिए किए हैं कि कुछ कमी पुरुष में रहती है, कुछ नारी में। कुछ आवश्यकतायें पुरुष की हैं, कुछ नारी की। दोनों एक-दूसरे के सहायक-सहयोगी बनकर उन आवश्यकताओं और अभावों की पूर्ति करते हैं। इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि एक-दूसरे से भिन्न हैं, श्रेष्ठ या निकृष्ट हैं। यदि ऐसा कुछ मूल्यांकन करना हो तो वरिष्ठता नारी के हिस्से में ही आती है। क्योंकि वही जगत्-जननी है। उसी की कोख से समस्त मनुष्य समुदाय का उद्भव हुआ है।

दाम्पत्य जीवन में पत्नी को उसके गुणों के अनुरूप कितने ही नामों से पुकारा जाता है। परिवार व्यवस्था संभालने के कारण उसे गृहिणी एवं गृह-लक्ष्मी कहते हैं। धर्म कर्तव्यों में सहायक रहने और सर्वतोमुखी प्रगति का पथ-प्रशस्त करने के कारण उसे धर्मपत्नी एवं कल्याणी कहा जाता है। काम विनोद में भागीदार रहने के कारण उसे कामिनी, रमणी नाम दिया गया है। ऐसे अनेक नामों में अर्धांगिनी का भी एक नाम आता है, जो तथ्य की दृष्टि से अधिक सार्थक है। यों कहने को तो उसे जीवन-संगिनी, प्राणबल्लभा आदि भी कहते हैं, पर उस कथन में अत्युक्ति की मात्रा अधिक है। इतना श्रेय न भी दिया जाय तो उसे सहचरी, सहभागिनी नाम देकर सार्थक बनाया ही जाना चाहिए। नाव को दो मल्लाह मिलकर चलाते हैं। एक के काबू में बहुत छोटी डोंगी ही आ पाती है। बड़ी होने पर उसमें कम से कम दो संचालक तो होने ही चाहिए। गाड़ी में दो पहिए ही नहीं होने चाहिए, वरन् वे समान भी रहने चाहिये। एक पहिये की गाड़ी नहीं चलती। फिर एक छोटा, दूसरा बड़ा हो तो भी परिवहन के प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती। यही उदाहरण दाम्पत्य जीवन पर भी लागू होते हैं।

आवश्यक नहीं कि दोनों का कद, ऊँचाई-मोटाई, शिक्षा, सुन्दरता, कुशलता समान ही हो। दोनों के बीच बहिरंग दृष्टि से अन्तर भी हो सकता है। पर भावना की, आत्मीयता की दृष्टि से दोनों के बीच इतनी समता होनी चाहिए कि एक-दूसरे के सुख-दुःख में समान रूप से साझीदार रहें, मिल-जुलकर रहें। मन का बोझ बँटायें और क्रिया-कलापों में सहयोगी, सहायक बनकर बोझ बँटायें। इतना बन पड़ने पर ही दाम्पत्य जीवन को सफल-सार्थक माना जा सकता है।

ऐसी साधारण घटनायें दिन में कई-कई बार भी हो सकती हैं। जिनसे मतभेद का आभास मिले। ऐसा भी हो सकता है कि अभिरुचि-आदतें भिन्नता लिए हुए हों। ऐसी दशा में दोनों पक्षों को व्यक्तित्व की स्वाभाविक भिन्नता का ध्यान रखना होता है और उसे निबाहते रहना पड़ता है। भगवान ने दो वस्तुयें समान नहीं बनाईं। एक ही पेड़ पर लगने वाले असंख्य पत्तों में भी हर एक की बनावट अलग-अलग होती है। हर प्राणी की आकृति में भिन्नता पाई जाती है। दो चेहरे एक जैसे कहीं भी नहीं मिल सकते। इसी प्रकार का हर किसी का व्यक्तित्व अलग-अलग ढंग का होना चाहिए। सर्वतोभावेन समग्र रूप से कोई भी नर-नारी एक जैसे नहीं हो सकते। इस प्रकृति सरंचना को आरम्भ से ही ध्यान में रखना चाहिए और दोनों साथियों के मन में इतनी गुंजाइश रहनी चाहिए कि एक-दूसरे के लिए इतनी सुविधा दें कि थोड़ी भिन्नता की दर-गुजर होती रहे। किसी को भी इतना तुनक-मिजाज नहीं होना चाहिए कि पूरी तरह से दूसरे को गुलाम समझे और इसका दबाव दे कि उसकी इच्छा ही सर्वोपरि है। उसकी आज्ञा पालन में ननुनच नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार का दबाव अस्वाभाविक होने के कारण अनुचित भी है। दो शरीरों का जब तक अस्तित्व रहेगा। तब तक यह स्थिति बनी रहेगी कि किसी कदर भिन्नता बनी रहे। साथ ही इतनी उदार सहिष्णुता भी बनी रहनी चाहिये कि वह निभती भी रहे। हँसते-हँसाते उस भिन्नता को एकता के स्तर तक पहुँचाया जा सके। खिचड़ी पकाने में चावल और दाल का अस्तित्व मिलकर एक हो जाता है। किन्तु उनका मौलिक स्वरूप फिर भी पहचाना जा सकता है। मिलन होते हुए भी दोनों का अस्तित्व अलग से पहचाना जा सकता है। इस दृष्टिकोण को विकसित किये बिना पति-पत्नी उस स्तर पर नहीं पहुँच सकते, जिसे समता और ममता कहा जा सकता है।

मित्रता रहते हुए भी दोनों पक्षों की मनःस्थिति संकोच रहित होनी चाहिये। परायेपन में किसी कदर दुराव बना रहता है। इसे दब्बूपन, झेंप, संकोच आदि नाम भी दिये जा सकते हैं। यह अस्वाभाविक स्थिति तभी तक टिकती है, जब तक परायेपन का भेदभाव रहता है। उसके रहते जी खोलकर अपनी बात कहने और दूसरे की सुनने का अवसर नहीं आता। विचार-विनिमय का सिलसिला चलते रहना चाहिये। आग्रही किसी को भी नहीं होना चाहिये। तर्क, तथ्य, विवेक और औचित्य को कसौटी मानकर, मतभेदों को एक-दूसरे के सामने प्रकट करते रहा जाय। इसके कथन को भी महत्व दिया जाता रहे। तथ्यों का विश्लेषण किया जाता रहे, तो बहस के कुछ ही कदम चलने के उपरान्त समझौते का बिन्दु मिल जाता है। इस प्रकार कामचलाऊ बिन्दु तलाश करते रहने पर मतभेदों के बावजूद एकता बनी रह सकती है। इसके विपरीत कोई पक्ष यदि अपनी बात का आग्रही बना रहे, जिद पर अड़ा रहे। अपने ही कथन को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना ले तो फिर समझना चाहिये कि मनोमालिन्य की जड़ जमीं और कलह का आधार विकसित हुआ। यह स्थिति अच्छी नहीं, प्रेम को थोड़ा-थोड़ा पोषण मिलते रहने पर वह बढ़ता रहता है। किन्तु यदि उसमें खाई खोदना शुरू किया जाय तो वह फूटे घड़े के समान आरम्भ में भरा होने पर भी कुछ समय में खाली हो जाता है। चिन्गारी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तभी तक प्रज्ज्वलित रहती है, जब तक उसमें ईंधन पड़ता रहता है। साथी की सद्भावना पर पूरा विश्वास किया जाना चाहिये। मतभेदों को भावना के साथ नहीं जोड़ना चाहिये। लोक व्यवहार कैसे चलाया जाय, इसी में अन्तर देखा जाय और उसे सहमति स्तर तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जाय। यदि वैसा न बन पड़े तो भी उस भिन्नता को चेहरे की बनावट में भिन्नता की तरह सहन करना चाहिये। एक गुलदस्ते में कई रंग के फूल होते हैं, पर वे परस्पर लड़ते-झगड़ते नहीं। अपनी-अपनी विशेषता के कारण गुलदस्ते को शोभायमान बनाते हैं। न केवल दाम्पत्य जीवन में वरन् पूरे परिवार के विचार स्वातन्त्र्य को सहन किया जाना चाहिए। देखना इतना भर है कि कहीं इस मतभेद में कोई अनीति तो नहीं पल रही है। पतनोन्मुख दोष-दुर्गुणों को प्रश्रय तो नहीं मिल रहा है।

पिछली शताब्दियों से नारी के मानवी अधिकारों का अपहरण नर द्वारा किया जाता रहा है। प्रजनन की विशेषता के कारण वह शारीरिक दृष्टि से दुर्बल भी हो जाती है और गृहस्थी के व्यस्त कार्यों में निरन्तर फँसी रहने के कारण वह स्वतन्त्र रूप से आजीविका उपार्जन भी नहीं कर पाती। ऐसी दशा में उसे दुर्बल, पिछड़ी, कम उपयोगी, महत्वहीन माना जाने लगा। इतनी मान्यता बनते-बनते उसका शोषण भी चल पड़ा। शोषण का कारण यह बना कि उसकी समता छिन गयी। चरण दासी का दर्जा दिया गया। उसे पुरुष वर्चस्व के आगे सिर झुकाकर रहने के लिए बाधित किया गया। दुहरे मापदण्ड बने। स्त्री को पग-पग पर अपनी हीनता अनुभव कराने के लिए प्रचलनों का पूरा-पूरा जाल-जंजाल बुनकर खड़ा कर दिया गया। पति को परमेश्वर मानने की आस्था जगाई गयी। विधवाओं को अविवाहित रहने एवं सती के रूप में चिता में जलने, जल जाने, शोभा-सज्जा त्याग देने जैसे प्रचलन बनाए गए। जबकि पुरुष के विधुर हो जाने पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध या अनुशासन उस पर लागू नहीं होता था। स्त्रियाँ घर में ही रहें। घर से बाहर निकलें तो कोई निरीक्षक साथ लेकर चलें। पुरुषों के आगे घूँघट-पर्दा निकालकर रहें। इन अनुबन्धों के कारण यह बताये गये कि स्त्रियाँ भावुक होती हैं। वे किसी अन्य की ओर आकर्षित हो सकती हैं। शील गँवा सकती हैं। प्रतिबन्ध लगाने वालों की मानसिकता ने स्त्रियों की हीनता को ही उजागर किया। यह नहीं सोचा गया कि खुलेआम घूमने वाला पुरुष तो अपनी स्वच्छन्दता का और भी लाभ उठा सकता है। ऐसी दशा में उस पर तो और भी कड़े प्रतिबन्ध लगाने चाहिए। स्त्रियों को पतिव्रत पालन करने के लिये जितना जोर दिया जाता है, जितना दबाव डाला है, उतना ही पुरुष पर भी पत्नीव्रत पालन करने का अनुबन्ध होना चाहिए। जो मर्यादायें नारी के लिए निर्धारित की गयी हैं, वे ही पुरुष के लिए भी की जानी चाहिये। न्याय यही था। औचित्य इसी का प्रतिपादन, समर्थन करता था। किन्तु वैसा हुआ नहीं। इसका कारण एक ही रहा कि स्त्री को शारीरिक दृष्टि से दुर्बल माना गया और आर्थिक दृष्टि से उपार्जन में असमर्थ।

जंगल का कानून है "जिसकी लाठी उसकी भैंस" समर्थ का ठेंगा सिर पर। बड़ी मछली छोटी को खा जाती है। बघेरे हिरन-चीतलों को उधेड़ खाते हैं। यह जंगली कानून मानवी गरिमा के प्रतिकूल है। उसे न्यायनिष्ठ होना चाहिए। समता और ममता का परिचय देना चाहिये। आत्मीयता की परिधि में दूसरों को भी लेना चाहिये। दूसरों के साथ वही व्यवहार करना चाहिये, जो दूसरों से अपने लिए चाहा जाता है। मानवी गरिमा इसी में है। किन्तु देखा इसके विपरीत जाता है। वन्य पशुओं को पालतू कर उनके दूध, बाल, माँस, गोबर, श्रम आदि का जितना दोहन, शोषण किया जा सकता था किया गया। मुर्गी जैसी पक्षी और मछली जैसे जलचर भी इसी परिधि में जकड़े गये। उनकी दुर्बलता का भरपूर लाभ उठाया गया और न्याय-औचित्य को आड़े नहीं आने दिया गया। इसी जंगली कानून का शिकार नारी को बनाया गया। नर की तुलना में नारी को दुर्बल माना गया और जो भी दुर्बल हो उस पर मनमानी करने में कोई हर्ज नहीं समझा गया। यह प्रचलन मध्यकालीन सामन्तवादी अन्धकार युग में हुआ था। पर वही रीति-नीति अभी चली आ रही है। भारत जैसे पिछड़े देशों में डण्डे के बल पर मनमानी के लिये विवश किया गया। पाश्चात्य प्रगतिशील देशों में उसे अनेकानेक प्रलोभनों के बल पर दासता स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करने के लिये फुसलाया गया। स्थिति वही है जो साम्राज्यवादी देशों ने दुर्बल देशों में अपने उपनिवेश स्थापित करके बनाई है। राजाओं द्वारा प्रचलनों का दोहन होता था। उसी से मिलता-जुलता व्यवहार अब तक चला आ रहा है। इसी का परिणाम है कि नारी अपंग बन कर रह रही है। इसका दूसरा प्रभाव समूचे समाज पर यह पड़ा है कि आधी जनसंख्या को पक्षाघात हो जाने जैसी स्थिति बन गयी है। नारी को नर के गले का पत्थर बनकर लटकना पड़ा है और पुरुष वर्ग को भी अपने भार से लाद दिया है।

अब समय आ गया है कि न केवल नारी समुदाय अपितु समस्त मानव जाति परिस्थिति की विषमता को समझे और अपना दायित्व निबाहे। घर से लेकर शिक्षा, नौकरी हर क्षेत्र में पुरुष-नारी दोनों की सहभागिता अनिवार्य बने। वस्तुतः इस सहयोग के अभाव में पुरुष वर्ग ने खोया ही खोया है। यदि विकास की दिशा में अग्रगमन करना अभीष्ट हो, तो दोनों वर्गों को एक-दूसरे के हाथ में हाथ डालकर, कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे बढ़ना होगा। यही समय की माँग है। आने वाले समय में यही होने भी वाला है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य प्रेम : छोटा स्वर्ग सोपान

दाम्पत्य की सार्थकता प्रगाढ़ आत्मीयता में है। पति-पत्नी के बीच समान हित, समान स्वार्थ, एक भविष्य, एक लक्ष्य की बात सदैव मनों में रहनी चाहिये। कभी बिलगाव की भावना मनों में नहीं आनी चाहिये। किन्तु न जाने क्यों चलती गाड़ी का सन्तुलन डगमगा जाता है। इस पर यदि एक दृष्टि डालें तो पाते हैं कि मानसिक असमानतायें जिनके संस्कारों और मनों में घुस बैठी है, वे ही दाम्पत्य की इस फलती-फूलती फुलवारी को रौंद डालती हैं। अतः दाम्पत्य सूत्र में बँध जाने के बाद सदैव स्मरण रखना चाहिये कि दोनों का सुख-दुख, उत्कर्ष-अपकर्ष समान और एक है और भविष्य की चिन्ता दोनों को एक समान होना आवश्यक है।

हमें भली प्रकार हृदयंगम कर लेना चाहिये कि दाम्पत्य जीवन मात्र शारीरिक आनन्द और प्रजनन के लिये नहीं है वरन् अनन्त आनन्द की अनुभूति और परिवार समाज की निर्माण व्यवस्था में शिल्पी की भूमिका निभाने के लिये है और यह तभी संभव है जबकि पति-पत्नी दोनों भावनात्मक गहराइयों में उतरकर एक-दूसरे को समझने और घुल-मिल जाने का प्रयास करें। नर-नारी के बीच प्रकृति ने जो आकर्षण सँजोया है, उसके पीछे भी दो आत्माओं के बीच प्रगाढ़ मिलन की भावनात्मक क्रियायें सम्पन्न कर एक नवीन सृजनात्मक अभिव्यक्ति ही है, जिससे जीवन में नया निखार आ सके।

दो वस्तुओं की सम्मिलित रासायनिक क्रिया तीसरी वस्तु को जन्म देती है। औषधि शास्त्रों में भी भिन्न-भिन्न वस्तुओं, धातुओं अथवा क्षारों के सम्मिश्रण के परिणामस्वरूप नये परिणाम निर्दिष्ट होते हैं और उनसे नया लाभ उठाया जाता है। नर-नारी के बीच भी ऐसा ही भावनात्मक घुलनशील तत्व विद्यमान है, जिसकी गहन आत्मीयता से दोनों का पुराना स्तर विघटित होकर एक नया स्तर विनिर्मित होता है। आत्म-समर्पण, आत्मीयता, संवदेनशीलता, निष्ठा और ममता की गहराइयाँ ही उस समीकरण की आधार भूमि प्रस्तुत करती हैं। विवाह का वास्तविक प्रयोजन भी यही है कि दो शरीरों की भिन्नता का आभास समाप्त होकर एक प्राण दो शरीर की अनुभूति होने लगे। ऐसे ही अनूठे और अभिनव दम्पत्तियों की सन्तानें अगणित विशेषतायें, प्रतिभायें लेकर उभरती हैं। भावनात्मक एकता का यह स्तर प्रकृति की इच्छा की ही पूर्ति है, जिससे जीवधारियों के वंश भी चलते रहें और उनका स्तर भी विकसित होता रहे।

जीवन लक्ष्य की प्राप्ति हेतु की जाने वाली यात्रा को पति-पत्नी का युग्म ही सहज और सुगम बना पाता है। यही जीवन रथ के दो पहिये और गति-प्रगति हैं। एक की दुर्बलता का दूसरे पर, एक की अयोग्यता का दूसरे पर सहज प्रभाव पड़ता है। इसलिये दाम्पत्य की सफलता के लिये समान रुचि, स्तर व आदर्शों का होना बताया गया है।

यदि गुण, कर्म, स्वभाव में थोड़ी भिन्नता भी हो तो विचारशील कहे जाने वाले से अपेक्षा की जाती है कि वह जीवन साथी का निर्वाह करें और स्नेह, प्रेम के मधुर सम्बन्धों को सदैव सींचते-सँजोते रहें। साथ ही क्रूरता-कटुता से, तलाक, दुर्व्यवहार, कलह, हत्या, आत्महत्या की प्रताड़नाओं की आग से अपने दाम्पत्य की फुलवारी को झुलसने से बचाये रखें।

नर-नारी पूरक सत्तायें हैं। नारी के अन्दर अनेक दिव्य अनुदान विद्यमान हैं। उन पर अशिक्षा और रूढ़िवादिता के कारण जमी राख की परतों को हटाने, उखड़ाने, नारी को सुयोग्य बनाने की जिम्मेदारी पुरुष की है। क्योंकि वर्तमान समाज व्यवस्था तथा गृहस्थ जीवन में वर्चस्व उसी का है। उस अधिकार के साथ उसका कर्तव्य भी बनता है कि स्वयं आगे बढ़कर नारी को सुयोग्य, सुशील बनाने की भूमिका निबाहे।

विज्ञजनों का कथन है कि—"स्वर्ग का समस्त सुख-वैभव माता के चरणों में है। यदि तारे आकाश की सुषमा-शोभा हैं तो नारी इस धरित्री की, मनुष्य को सभ्य-सुसंस्कृत बनाने में उसी की प्रधान भूमिका रहती है। प्रसिद्ध मनीषी ग्रियर्सन का कहना है कि समाज के आचरण को बनाना घर-गृहस्थी का प्रबन्ध करना तथा उदारता, कोमलता और सहनशीलता से इस जीवन की विषम यात्रा को सरल-सुखद बनाना स्त्री का कार्य है। सुशिक्षित नारी अपने सद्गुणों के कारण घर में स्वर्गीय वातावरण विनिर्मित कर सकती है।

दाम्पत्य जीवन को परस्पर स्नेह, सम्मान, समता और सहयोग के आधार पर ही सुखी एवं सफल बनाया जा सकता है। पतिव्रत मात्र की शिक्षा देने से काम नहीं चलेगा। सफल गृहस्थ जीवन के लिये पत्नीव्रत भी उतना ही आवश्यक है। यह इसलिये कहा जा रहा है कि प्रत्येक पति अपनी पत्नी में उन सभी गुणों को देखना चाहता है, जो किसी भी गुणवान एवं आदर्श नारी में देखने को मिलते हैं। इसी प्रकार पत्नी भी अपने पति में उन तमाम गुणों को देखना चाहती है जो किसी उत्तम पुरुष में पाये जाते हैं। प्रत्येक पत्नी चाहती है कि उसका पति सुन्दर व स्वस्थ हो, मिलनसार एवं उत्तम सूझ-बूझ वाला हो। स्वभाव से विनम्र एवं अच्छे संस्कारों वाला हो। अपने एवं बच्चों के प्रति दायित्वपूर्ण कर्तव्यनिष्ठा व ईमानदारी की भी आशा प्रत्येक नारी अपने पति से करती है और सबसे बढ़-चढ़कर चाहती है, पति का असीम प्यार, जिससे वह एक भी क्षण वंचित रहना नहीं चाहती।

इसी तरह पति भी अपनी अर्धांगिनी से अपेक्षा करता है कि वह सुन्दर, सुशील एवं सुसभ्य हो। साथ ही उसे खूब प्यार करती हो और समय-समय पर उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इजहार भी करती हो। मिलनसारिता एवं अच्छी सूझ-बूझ की वह भी अपेक्षा रखता है। ईर्ष्यालु एवं झगड़ालू प्रकृति की नारी से सभी दूर रहना चाहते हैं। अधिकार जताने, वरिष्ठता सिद्ध करने से भी बात बनती नहीं, उलझती ही है। पत्नी से सबसे अधिक अपेक्षा जो पति को रहती है, वह है अपने प्रति, बच्चों एवं परिवार के सदस्यों के प्रति उसका आत्मीयता-अपनेपन से परिपूर्ण व्यवहार का होना। विनम्र, सहिष्णु एवं व्यवहारकुशल नारी घर-परिवार या दाम्पत्य जीवन में उगते कटुता के अंकुरों को समाप्त कर देती है और सबको एक स्नेह सूत्र में पिरोये रखती है।

पति की यह इच्छायें उचित हैं पर इन्हें प्राप्त करने के लिये ठीक ऐसा ही व्यवहार उसको भी पत्नी के साथ करना होगा। एकांगी इच्छापूर्ति इस जमाने में कठिन है। दबाव के आधार पर नहीं आदान-प्रदान की नीति अपनाकर ही आदर्श गृहस्थ जीवन जिया जा सकता है।

परिवार को धरती का स्वर्ग बताया गया है। पर बात तभी बन पड़ती है, जब पति अपनी भूमिका स्नेह और विश्वास के सम्पादन में अग्रिम रहे और पत्नी की भूलों को उपेक्षा के गर्त में डालता रहे। दाम्पत्य जीवन में अभ्यास किया हुआ सद्भाव समस्त परिवार में वितरित होता है और अपने छोटे संसार को आनन्द से परिपूर्ण बना देता है।

पति के विकास में पत्नी का सहयोग

परिवार की प्रगति और समृद्धि के लिए आय के अनुसार व्यय का सन्तुलन आवश्यक है। घरेलू व्यवस्था एवं साज-सँभाल की जिम्मेदारी पत्नी को होती है, पति की बाह्य व्यवस्था एवं आय की। यह कुशलतापूर्वक परिश्रम से ही सम्भव है। इसके अभाव में सम्भावित उपार्जन-उत्पादन असम्भव है। पति की अच्छी आमदनी के बाद भी पारिवारिक व्यवस्था लड़खड़ाते रहना तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ होने का एक कारण यह भी है कि पत्नी द्वारा गृहस्थी के कर्तव्यों की गैर जिम्मेदारी एवं अनावश्यक खर्चों, आदतों का शिकार होना। अनावश्यकता और इच्छाओं में भेद न समझ पाने के कारण घर को कबाड़ी की दुकान बनाते रहने और पति पर अपना पूर्ण अधिकार समझने वाली महिलाएँ उनके विकास में बाधक होती हैं।

वे यह आशा करती हैं कि उनके पति अधिकांश समय उनके साथ में ही रहें। जब कभी उनके अधिक काम, परिश्रम करने एवं व्यस्तता के अवसर आते हैं या कार्यवश कहीं दौरे के कार्यक्रम बनते हैं तब वे पति को हतोत्साहित करती रहती हैं। अपने स्नेह का प्रदर्शन केवल साथ में रहने पर ही समझती हैं। उसके आदर के लिए न चाहते हुए भी उन्हें बहाना करके इन अवसरों से बचना पड़ता है। किन्तु यह उन्हीं के भविष्य के लिए घातक ही होता है। कम काम करने वाले शासकीय कर्मचारी उच्च अधिकारियों की नजर में चढ़ जाते हैं। शारीरिक परिश्रम करने वाले मजदूर भी परिश्रम की चोरी करते हैं। फलस्वरूप इसका कुप्रभाव आय पर पड़ता है। होना यह चाहिए कि पत्नी अपने पति को घर के कामों से निश्चिन्त रखकर अधिक परिश्रम हेतु प्रोत्साहित करें। यदि वह स्वयं भी किसी तरह उसके सहयोग के योग्य है तो इसकी उपेक्षा न करें। पति के अच्छे संकल्पों तथा कार्यों को पूर्ण करने के लिए अपना महत्वपूर्ण योगदान देते रहने से प्रगति एवं सुख-समृद्धि की वृद्धि होती रहती है।

अपने से सम्पन्न परिवारों से अपनी तुलना करते रहने से अपना स्तर घटिया लगने लगता है। उसकी बराबरी करने के लिए प्रयत्न से नारियाँ अछूती नहीं रहतीं। वे उनकी शान-शौकत देखकर पूर्ति के लिए लालायित और चिन्तित रहती हैं। पति से अच्छे भोजन, कपड़े, जेवर आदि की कीमत एवं विलासिता की वस्तुओं के भोग के लिये वे हठ करती हैं। उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति का हठ के सामने कोई ध्यान नहीं रहता। पूर्ति न हो सकने पर पति को झिड़कियाँ देती रहती हैं। इतना ही नहीं आय बढ़ाने के अनेकों विकल्प देती हुई भ्रष्टाचार तथा बेईमानी के लिए उन्हें सलाह भी देती हैं। बातों-बातों में कर्जा का भार बढ़ाते रहना तो साधारण बात बन जाती है। पत्नी को प्रसन्न रखने हेतु विवश होकर अनैतिक कदम उठाना पड़ता है।

इन कार्यों में एक दो बार सफलताएँ मिल जाने पर ऐसा करते रहने की हिम्मत बढ़ जाती है। बिना मेहनत से ही धनोपार्जन होने लगता है तो आलस्य-प्रमाद आदि दुर्गुणों का आदत में समावेश हो जाता है। इससे उनकी कार्यक्षमता और योग्यता क्षीण होती जाती है तथा भावी प्रगति के द्वार बन्द हो जाते हैं। यदि पत्नी अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार व्यय करे तथा अनावश्यक इच्छाओं की पूर्ति हेतु हठ न करें तथा अपने से कम साधन-सुविधा वाले परिवार से तुलना करें, तो निरर्थक इच्छाओं को प्रश्रय नहीं मिलता। अर्थाभाव में भी परेशानी अनुभव नहीं होती और सन्तोष, धैर्य के साथ जीवन के सुखों को भोगा जा सकता है। इतने में ही कुछ बचत करके या उत्पादन कार्यों में सहयोग देकर पति को ईमानदारी एवं परिश्रम के लिए प्रोत्साहित कर सकती हैं। ईमानदारी की हर स्थान में माँग होती है। योग्यता, उसको विश्वास की छाप जमने से प्रगति के अवसर प्राप्त होते हैं।

कुछ महिलायें ऐसे स्वभाव की होती हैं कि दिन-भर यहाँ-वहाँ गपशप करती रहती हैं और व्यर्थ में समय नष्ट करती हैं। मेल-मुलाकात खाना-पीना, पार्टी, शृंगार आदि कार्यों से उन्हें फुरसत नहीं मिल पाती। दिन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भर के काम-काज से थका-हारा पति घर आता है। तब वह घर का वातावरण साफ-सुथरा एवं व्यवस्थित देखकर प्रसन्न हो जाता है। इससे उसकी दिन भर की थकान एवं कुण्ठायें समाप्त हो जाती हैं। मन हल्का हो जाता है किन्तु यदि घर में पैर रखते ही गृहस्थी का सामान गन्दा, अस्तव्यस्त पड़ा दिखाई देता है, अनेकों परेशानियाँ तथा समस्याओं की बौछार शुरू होने लगती है, तो उसका मन तनाव युक्त होकर खिन्न हो जाता है। थकान और भी बढ़ जाती है। घर की विशृंखलित व्यवस्था से परेशानी बढ़ जाती है। ऐसे वातावरण में कोई कार्य योजनाबद्ध रूप से प्रगतिशील दिशा में नहीं बढ़ पाता तथा इसका दुष्परिणाम यह होता है कि शारीरिक क्षमता एवं मानसिक योग्यता क्षीण होने लगती है। घर की समस्यायें ही दिनभर मस्तिष्क में बनी रहती हैं। कार्य कुशलता की कमी से प्रगति के अवसरों से वंचित रहना पड़ता है। महिलायें ऐसे प्रसंग न आने दें और सुव्यवस्थित वातावरण बनाये रखकर पति को प्रसन्न रखते हुए उसकी कुशलता को बढ़ाते रहने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

यह स्वाभाविक है कि परिश्रम करने वाले पुरुष अपनी पत्नी सें काफी सुख-सुविधाओं की आशा करते हैं ताकि उनका कार्य सुव्यवस्थित चलता रहे। यदि स्वयं पत्नी ही पति से अनेकों इच्छाओं की पूर्ति की आशा रखे तो उसका ध्यान एवं मनोयोग कार्य को सम्पन्न करने में नहीं, गृहस्थी में बँटा रहेगा। पत्नी का कर्तव्य हो जाता है कि वह इस तरह बाधक न बने। अपनी ओर से इस बात के लिए पति को आश्वस्त रखे कि उसे कोई दुख या कष्ट नहीं है और न कोई इच्छा। इस बात का विश्वास होते ही वह अपने व्यावसायिक कार्यों को विशेष रुचि के साथ करता है। इसके लिये वे प्रोत्साहित भी कर सकती हैं।

उनके कदमों को प्रगति की ओर बढ़ाते रहने के लिए खाने-पीने, सोने-जागने, काम पर जाने-आने आदि की व्यवस्था ऐसी है जिस पर थोड़ा भी ध्यान देकर पत्नी की ओर से सुविधा दी जाय तो इससे कार्य की गति एवं कुशलता पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ता है। किन्तु इनकी ही चिन्ता करते रहने पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि पत्नी प्रत्यक्ष रूप से व्यावसायिक कार्यों में सहयोग न दे सके तो भी गृहस्थी की व्यवस्था, कार्य-कुशलता एवं सन्तोष-वृत्ति द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दे सकती है, इस थोड़े से ही कर्त्तव्य पालन से यदि पति की उन्नति हो जाय या समाज में कोई उच्च स्थान मिल जाये तो इससे पूरे परिवार का सम्मान बढ़ता है, जो पत्नी के लिये भी गौरवशाली होता है। अतः उसे अपनी तरफ से सतर्क रह अहमन्यता त्याग कर विकासशील कार्यों में अपना कर्त्तव्यनिष्ठ कदम उठाया जाना सभी दृष्टियों से उत्तम है।

सुखी दाम्पत्य के स्वर्णिम सूत्र

सुख के साधनों के साथ स्नेह, प्रेम और आत्मीयता पूर्ण भावनाओं के सम्मिश्रण को ही स्वर्ग कहा जा सकता है। यह स्वर्ग हमारे घर में ही मौजूद है, हम भले ही न देख पाते हों; यह स्वर्ग है—दाम्पत्य-जीवन का सुख, किसी ऊपर वाले स्वर्ग से कम सरस, सुखद और रुचिपूर्ण नहीं है।

इस स्वर्ग को बनाने के लिए पति-पत्नी को अपने कर्त्तव्यों का पालन करना होगा, हम अपने कर्त्तव्यों का पालन करके ही अपने घर को स्वर्ग बना सकते हैं, यह कर्त्तव्य कई प्रकार के होते हैं।

दाम्पत्य-जीवन का महत्व मनुष्य की अनेकों कोमल एवं उदार भावनाओं, विचारशीलता तथा सद्वृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेकों दैवी गुणों पर दाम्पत्य-जीवन की नींव लगती है।

दाम्पत्य जीवन यथार्थ की धरती पर कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित रूप है। जो स्त्री और पुरुष के परस्पर स्नेह, आत्मीयता, त्याग, बलिदान, जीवन की कठोरताओं और शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उन्हें सरस और स्वर्गीय बना देता है। अनेकों कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पग-पग पर नई आशा, नई उमंग, नई प्रेरणा जगी रहती है। पुरुष नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेवा से सशक्त बना रहता है तो नारी पुरुष से स्नेहपूर्ण संरक्षण, आत्मीयता, आदर-सम्मान को पाकर सबला, देवी, गृहणी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति-पत्नी परस्पर की आलोचना दाम्पत्य-जीवन के मधुर सम्बन्धों में खटास पैदा कर देती है। इससे एक दूसरे की आत्मीयता, प्रेम, स्नेहमय आकर्षण समाप्त हो जाता है। कई व्यक्ति अपनी पत्नी की बात-बात पर आलोचना करते हैं। उनके भोजन बनाने, रहन-सहन, ओढ़ने-पहनने, बोल-चाल आदि तक में नुक्ताचीनी करते हैं। इससे स्त्रियों पर दूषित प्रभाव पड़ता है। पति की उपस्थिति उन्हें बोझ-सी लगती है, वे उनकी उपेक्षा तक करने लगती हैं। इसी तरह स्त्रियों द्वारा पति की उपेक्षा-आलोचना करना भी इतना ही बुरा है। पुरुषों को अपने काम से थक कर घर आने पर, उसे घर में प्रेम एवं उल्लास का समुद्र लहराता यदि मिले तो उनकी दिनभर की थकान, क्लांति, परेशानी उसमें घुल जाती है। इसके स्थान पर यदि पत्नी की कटु आलोचना एवं व्यंग्यवाण का सामना करना पड़े तो उस व्यक्ति की क्या दशा होगी इसका अनुमान तो कोई भुक्तभोगी ही लगा सकता है।

पति-पत्नी की एक-दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। जब पति-पत्नी एक-दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन-सहन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर सन्देह करने लगते हैं तो पारस्परिक मधुर सम्बन्धों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है और वह धीरे-धीरे बढती जाती है। इससे दाम्पत्य जीवन की सुख-शान्ति तो नष्ट होती ही है कालान्तर में घृणा, अलगाव, असहयोग, झूठ बोलना, धोखेबाजी के रूप में अनेक दुर्भावनाओं की सृष्टि होती है। वस्तुत: परस्पर सच्चाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारतापूर्ण क्षमता से ही दाम्पत्य-जीवन निभता है।

सफल दाम्पत्य-जीवन के लिए परिष्कृत भावनाएँ और परिमार्जित दृष्टिकोण आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के स्वभाव मिलते हों, एक-दूसरे के लिए आत्म-दान की भावना हो तो अल्प साधन, कम शिक्षा और स्वल्प सौन्दर्य वाले दम्पत्ति भी मस्ती का, हँसी-खुशी का जीवन जी सकते हैं। विवाहों में जो कर्मकाण्ड, आदर्श और संस्कार डाले जाते हैं, उनका उद्देश्य भावनात्मक दृष्टि से स्त्री और पुरुष को चारों ओर से खींचकर एक केन्द्र बिन्दु पर लाना ही होता है। जिन घरों में उन आदर्शों पर अमल होता है, वहाँ आमोद-प्रमोद, हास-विलास का जीवन सदैव उभरता हुआ रहता है। उन घरों में स्वर्ग जैसी परिस्थितियों का रसास्वादन किया जाता है।

दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिए भावनात्मक परिष्कार का उद्देश्य स्त्री-पुरुष को नेक और सुशील बनाना होता है। पुरुष में पुरुषत्व के, स्त्री में स्त्रीत्व के गुण विद्यमान हों तो कोई कारण नहीं कि दाम्पत्य-जीवन सुख से न बीते। अन्य सारी योजनाएँ—इन्हीं गुणों के विकास की माध्यम हैं। मुख्य रूप से पुरुष में शक्ति, साहस, सक्रियता और निर्भयता आदि गुणों का समावेश हो और स्त्री में कोमलता, मृदुता, दयालुता, स्नेह, सौम्यता और सहानुभूति के गुण होने चाहिए। दोनों के स्वभाव में अपने-अपने गुणों का पर्याप्त स्थान हो तो प्रेम, विश्वास, आत्मीयता आदि का परिमार्जन अपने आप होता है और दाम्पत्य-जीवन में घनिष्ठता बढ़ती जाती है और उनके जीवन में आनन्द की कोई कमी नहीं रहती, ऐसे ही घरों में श्रेष्ठ और सद्गुणी सन्तानें जन्म लेती हैं और उनसे सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन सुखी एवं समुन्नत होता है इसलिए दाम्पत्य-जीवन को पवित्र बनाना, उद्देश्यपूर्ण रखना प्रत्येक गृहस्थ का मूल धर्म कर्तव्य है।

दाम्पत्य-जीवन और प्रेम—दाम्पत्य जीवन को सुखी एवं सन्तुष्ट बनाये रखने के लिए जिस प्रेम की आवश्यकता है, जिन सद्भावनाओं की उपयोगिता है वे कभी भी किसी बाह्य उपकरण, वशीकरण मन्त्र आदि से उपलब्ध नहीं किये जा सकते। इसके लिए तो अपने आप में ही आवश्यक हेर-फेर करना पड़ेगा। अपनी द्वेष-दुर्भावनाओं को हटाकर विचार-विनिमयपूर्वक फिर से समस्या का सुधार करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नजर नहीं आता, प्रेम मानव अन्त:करण की आध्यात्मिक प्यास है। हर पत्नी अपने घर से यह आकांक्षा लेकर आती है कि उसे अपने ससुराल में सामान्यतया सबका और विशेषतया अपने पति का प्यार मिलेगा। पति यह चाहता है कि उसकी स्त्री उससे प्रेम और ममत्व बनाये रखेगी। यह सर्वमान्य तथ्य है कि सारे झगड़े प्रेम के अभाव में उठ खड़े होते हैं।

इससे ऐसे अवसरों की तलाश करते रहना चाहिए, जब दूसरे के साथ अधिक आत्मीयता, सहृदयता प्रदर्शित बौछार से भी जी उठते हैं, अपने आपको न्यौछावर कर देने के लिए उद्यत हो उठते हैं। दाम्पत्य-जीवन को व्यवस्थित बनाये रखने के लिए धन की उतनी आवश्यकता नहीं, आलीशान महल, मकान भी उतने आवश्यक नहीं जितना प्रेमपूर्ण वातावरण होता है। सुख-सन्तोष का जीवन फूँस की झोंपड़ी में भी जिया जा सकता है, बशर्ते कि लोगों के अन्त:करण पारस्परिक प्रेम-भावनाओं को स्थिर रख सकें।

आज के पारिवारिक जीवन को फिर से नया रूप देने की आवश्यकता सभी विचारवान पुरुष अनुभव कर रहे हैं। लोगों को शिक्षित बनाने, आमोद-प्रमोद के साधन जुटाने के भी अनेक कार्य सामाजिक और राजनैतिक स्तर पर चल रहे हैं। किन्तु गृहस्थ जीवन को सुव्यवस्थित, सुखी एवं सन्तुष्ट बनाने के लिए प्रेम, आत्मीयता के अभाव में सारी योजनाएँ विफल ही लग रही हैं। दाम्पत्य-जीवन को फिर से सुदृढ़ बनाने के लिए फिर से पति और पत्नियों को गुण, कर्म, स्वभाव में परिवर्तन को प्राथमिकता देनी होगी। दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए धन जुटायें, पारिवारिक शिक्षा पर ध्यान दें और भी जो साधन उचित हों ग्रहण करें, यह न भूलें कि पारस्परिक प्रेम आत्मीयता के अभाव में दाम्पत्य-जीवन सफल न होगा। इसके लिए प्रेम, विश्वास, सहिष्णुता, उदारता और आत्म-त्याग का आश्रय लेना पड़ेगा। इसी के आधार पर घरों में स्वर्ग उतरेगा।

दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने के लिए, पति-पत्नी को अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए तभी घर में स्वर्ग होने की कल्पना पूर्ण हो सकेगी।

पति और पत्नी का सम्बन्ध

देववत् सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति।
दम्पत्यो रेष वै धर्म: सहधर्म कृत: शुभ:।।

—विष्णु पुराण

पत्नी पति को देवता के समान और पति पत्नी के समान समझें। दोनों का धर्म और कर्त्तव्य समान है।

भार्यापत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्।
संसारोऽपि हि सार: स्याद् दम्पत्योरेक क:।।

यदि पति-पत्नी एक हृदय हों तो यह असार संसार भी सारवान बन जाता है।

पत्नी के पति के प्रति कैसे भाव रहें ? इसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न कामये भर्तृविनाकृता सुखं
न कामये भर्तृ विनाकृतादिवम्
न कामये भर्तृविना कृता श्रियं
न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम्

"मैं पति के बिना सुख नहीं चाहती, बिना पति के स्वर्ग नहीं चाहती, बिना पति के धन नहीं चाहती, बिना पति जीना भी नहीं चाहती।" ऐसे ही भाव पति भी पत्नी के प्रति रखें।

सर्वं तीर्थं समो भर्ता सर्वं धर्म मय: पति।
मखानां यजनात् पुण्यं यद् वै भवति दीक्षिते
तत् पुण्यं समवाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम्।।

—पद्म भूमि. ४१/१४-१५

अर्थात्—पति में सब तीर्थ समाये हुए हैं। पति ही सर्व धर्ममय है। यज्ञ और दीक्षा का जो पुण्य है वह स्त्री को पति की पूजा से तत्काल प्राप्त होता है।

स्त्री के लिए जो व्यवहार पति के लिए आवश्यक बताया गया है, वही व्यवहार पति पत्नी के साथ भी करें। कहा गया है—

नास्ति भार्या समं तीर्थं नास्ति भार्या समं सुखम्।
नास्ति भार्या समं पुण्यं तारणाय हिताय च।

—पद्मपुराण

पत्नी के समान कोई तीर्थ नहीं, पत्नी के समान कोई सुख नहीं, पत्नी के समान कोई पुण्य नहीं। दु:ख से तरने और हित साधना करने के लिए पत्नी के समान और कोई नहीं है।

इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति अपने शब्दों में महाकवि कालिदास ने इस प्रकार की है—

गृहिणी सचिव: सखी मित्र: प्रिय शिष्या ललिते
कला विधौ।

"पत्नी ही धर्म-मंत्री, मित्र, प्रिय तथा ललित कलाओं की शिष्या है।"

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते।।

मनुस्मृति ३/६०/६२

अर्थात्—"जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहते हैं, उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहाँ उनमें कलह होता है वहाँ दौर्भाग्य-दारिद्रय स्थिर रहता है। स्त्री की प्रसन्नता से ही सब कुल प्रसन्न रहता है और उसकी अप्रसन्नता से सब अप्रसन्न और दु:खदायक हो जाता है।"

धर्मपत्नी के प्रति पति के कर्तव्य

हमारे यहाँ नारी और पुरुष के कार्यों की एक सीमा रेखा-सी मान ली गई है। घर का काम, रसोई बनाना, बच्चों की देखभाल, सफाई आदि के कार्य स्त्री के माने गये हैं तो घर से बाहर कमाई करना, खेती-नौकरी या कोई पेशा आदि करना पुरुष का काम रहा और यह विभाजन इतना दृढ़ हो गया कि नारी सुलभ कार्यों को करने में पुरुष शर्म-संकोच का अनुभव करता है तो घर की सीमा से बाहर के कार्यों में नारी का प्रयत्न निन्दनीय समझा जाता है। यद्यपि आज के युग में ये सीमायें टूटती जा रही हैं तथापि पूर्व संस्कारों के कारण कम से कम हमारे देश में तो अभी उक्त धारणायें व्यापक रूप में फैली हुई हैं। आज भी नारी और पुरुष के कार्यक्षेत्र की यह विभाजन रेखा टूटी नहीं है।

भले ही इसका कारण कुछ भी रहा हो लेकिन आज की परिस्थितियों में विकास की माँग के अनुसार इस विभाजन को लक्ष्मण-रेखा नहीं माना जा सकता। आज हमें इसकी अनुपयुक्तता पर विचार करना होगा साथ ही इसको मिटाना होगा।

वस्तुत: पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं और जीवन यात्रा का उत्तरदायित्व इस सामूहिक व्यक्तित्व पर ही निर्भर करता है। दोनों का एक दूसरे के काम में सहयोग आवश्यक है, अनिवार्य है। पति पत्नी के कार्यों का विभाजन उनकी सीमा रेखायें कभी निश्चित नहीं की जा सकती। दाम्पत्य जीवन का सार इसी में है कि दोनों आवश्यकता पड़ने पर वफादार साथी की तरह एक दूसरे के कामों में मदद करें, योग दें, चाहे वह काम घर के अन्दर का हो या बाहर का।

बहुधा भोजन बनाना पत्नी का काम समझा जाता है और यह ठीक भी है कि यदि पति बाहर काम पर गया है और पत्नी को अन्य कोई काम नहीं है, वह घर पर रहकर भोजन बनावे। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर पति कों भी इस काम को उसी उत्साह से करना चाहिए, जैसे पत्नी करती है। लेकिन बहुत से लोग इसे अपना अपमान समझते हैं। पत्नी के सामने चूल्हा फूँकने में शर्म महसूस करते हैं। कैसी बिडम्बना है। जो स्त्री जीवन भर चूल्हा फूँकती है, पति को भोजन बनाकर हमेशा देती है, यदि बीमारी-हारी में या किसी परेशानी के समय वह इसमें असमर्थ होती है तो वही पति इसमें अपना अपमान समझता है।

लेकिन समझदार पति जो पत्नी को अपने बराबर साथी की तरह समझता है कभी इसमें संकोच न करेगा। महान् लेनिन के गृहस्थ-जीवन का जिन्होंने अध्ययन किया वे जानते हैं कि वह पत्नी के हर काम में हाथ बँटाता था। पैदल ही चलकर एक साधारण नागरिक की तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाजार से घर का सामान, साग-सब्जी लाता था। कई वर्षों तक तो भोजन एक समय उनकी पत्नी बनाती थी और एक समय वे स्वयं।

यह आवश्यक नहीं अनिवार्य है कि पत्नी की तरह ही घर के कामों में पति को भी कुशल होना चाहिए। पत्नी जीवनभर अपने पति-बच्चों के वस्त्र धोती है, उनकी सेवा करती है, जो भी करना आवश्यक होता है उसमें संकोच अनुभव नहीं करती। लेकिन आवश्यकता पड़ने पर पत्नी के कपड़े तक उठा कर धरने में, बीमारी-हारी में, उसकी कुछ सेवा-सुश्रूषा करने में बहुत से पति नाक-भौं सिकोड़ते हैं। अपना अपमान समझते हैं। क्या इसी रूप में वे पत्नी की सेवा से उऋण होना चाहते हैं। सचमुच ऐसे व्यक्ति कभी भी नारी से उऋण नहीं हो सकते।

बहुत से परिवारों में स्त्रियाँ दिन-रात काम में लगी रहती हैं, उन्हें तनिक भी अवकाश नहीं मिलता कि कुछ विश्राम करें। दूसरी ओर पुरुष बहुत-सा समय व्यर्थ, आलस्य में पड़े रहकर मौज करने में, ताश-शतरंज खेलने में बिताते हैं, लेकिन पत्नी को कुछ सहारा नहीं देते घर के काम में, ताकि वह भी बेचारी कुछ सुस्ता सकें, विश्राम कर सकें। पति का कर्तव्य है कि जिस तरह पत्नी हमेशा निःसंकोच भाव से सेवा करती है, उसी तरह वह भी आवश्यकता पड़ने पर पत्नी की सेवा करें। उसके आराम-स्वास्थ्य आदि का पूरा-पूरा ध्यान रखे।

काम-काज की ही बात नहीं बहुत से लोग अपनी स्त्री के प्रति सहानुभूति और सहयोग का रुख भी तो नहीं रखते। उल्टे अपने अस्त-व्यस्त कार्यक्रम से उसे परेशानी पैदा कर देते हैं। रात को साथियों की गपशप, सिनेमा आदि के कारण देर से घर आते हैं। उधर बेचारी पत्नी भोजन बनाकर थकी-माँदी उनकी बाट जोहती रहती है। न वह स्वयं समय पर खा पाती है न सो पाती। पति इस तरह की व्यर्थ परेशानी से पत्नी को छुटकारा दिला सकता है। इसके लिए आवश्यकता इस बात की है कि वह पत्नी के प्रति सद्भावना रहे, उसकी सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय। ऐसी बहुत-सी कृत्रिम परेशानियों को इस तरह दूर किया जा सकता है।

यदि आप अपने दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं, यदि आप अपनी पत्नी के स्वस्थ विकास की क्षमता रखते हैं, अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्व के प्रति सच्चे बनना चाहते हैं तो सभी प्रकार पत्नी के कार्यों में सहयोग करें। किसी कारणवश आपकी पत्नी भोजन नहीं बना पाती तो आपका कर्तव्य है कि आप उसी भावना से भोजन बनायें, जिस तरह प्रतिदिन आपकी पत्नी बनाती है।

बीमार पड़ने पर या किसी तकलीफ में पत्नी की सेवा-सुश्रूषा करने में कंजूसी न करें। यही वह अवसर होता है जब आप अपनी स्त्री के ऋण से, जो जीवनभर आपके ऊपर चढ़ता रहता है, मुक्त हो सकते हैं। फिर अपने जीवन साथी की सेवा करने में शर्म क्यों ? इस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखें कि आपके द्वारा अकारण ही आपकी पत्नी को परेशानी न उठानी पड़े। इसके लिए अपनी आदतों में, अपने रहन-सहन और कार्यक्रम में सुधार कर लें। पत्नी के भी स्वास्थ्य, मनोरंजन, घूमने-फिरने का ध्यान रखें। किसी पर्व-त्यौहार पर आपकी पत्नी यदि सहेलियों के साथ उत्सव मनाना चाहें तो घर के आवश्यक कार्य आप स्वयं संभाल लें और उसे स्वतन्त्रता के साथ आमोद-प्रमोद का अवसर प्रदान करें। सबसे बड़ी बात यह है कि स्वयं और पत्नी के बीच में किसी तरह का भेदभाव पूर्ण व्यवहार कोई सीमा-रेखा न मानें वरन् एक बराबर साथी की तरह व्यवहार करें।

पति-पत्नी परस्पर मन-मुटाव से बचें

पति-पत्नी के रूप में सम्पादित आत्ममेध-यज्ञ द्वारा दो अपूर्ण और अभिन्न सत्तायें एक, पूर्ण और अभिन्न बनती हैं। वस्तुतः यह दो शरीरों का सामीप्य-सम्मिलन नहीं, प्रत्युतः दो आत्माओं का समन्वय है, एकाकार हो जाना है। बाह्य एवं भौतिक दृष्टि से द्वैत का बोध तो हो सकता है, किन्तु आभ्यान्तरिक स्थिति इसके प्रतिकूल होती है। क्योंकि दो ध्रुव अपने निजत्व को खोकर एक दूसरे से जुड़कर परस्पर समर्पित होते, स्वीकारते हैं। उनके इस स्नेहासिक्त प्रेम-व्यापार-विनिमय से निकटस्थ परिजन अर्थात् परिवार के सदस्य भी लाभान्वित होते हैं। इस पावन परिणय के संस्कारोंपरान्त ही प्रेम का विस्तार मनुष्य कदाचित् सीखना आरम्भ करता है।

मेरा भाई, मेरी बहिन, मेरी माँ के प्रति प्रेमपरक अनुभूति तो स्वाभाविक है, किन्तु जो अभी-अभी अनचीन्हा, अनजाना सदस्य आया है, उसे भी प्रेममय भावों से अभिभूत किया जा सकता है, इसका मांगलिक उद्घाटन विवाहोपरान्त ही होता है। प्रेम की यह विस्तार प्रक्रिया यदि सिमटती नहीं, बल्कि अनुदिन, उत्तरोत्तर, व्यापक एवं विस्तृत होती जाती है तो अन्ततोगत्वा परिवार, समाज राष्ट्र, विश्व अर्थात् व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख होने लगती है। जो सम्भवतः मानव-जीवन का वास्तविक अभीष्ट है।

देखा इसके विपरीत ही जाता है, विवाह-संस्कार के बाद कतिपय वर्षों तक तो अनौपचारिक प्रेम, आदर, शिष्टाचार परस्पर बना रहता है, किन्तु जैसे-जैसे गार्हस्थ-जीवन का संकट अग्रगामी होता है, वैसे-वैसे ही स्वल्प एवं बेमतलब और बेसिर-पैर की बातों में ही मनमुटाव, तनाव एवं आपसी झगड़े की स्थिति विनिर्मित हो जाती है। प्रेम के स्थान पर घृणा का भाव अपनी कलाबाजियाँ दिखाने लगता है।

दाम्पत्य-सूत्र में आबद्ध होते समय जिन पवित्र प्रतिज्ञा-सूत्रों को दुहराया गया था, उसे विस्मृत कर ताक में रख दिया जाता है एवं विचार विकृति के कारण कलह का वातावरण बन जाता है। जैसे एक पंख से पक्षी नहीं उड़ सकता, एक ध्रुव से विद्युत-प्रकाश सुलभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं हो सकता, उसी प्रकार का एक हाथ से ताली बजना सम्भव नहीं होता। केवल पत्नी अथवा पति को दोषी ठहराया जाना युक्तियुक्त नहीं है, किन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि लड़की जो कल तक अपने भाई, बहिन, माता एवं पिता से सम्बद्ध थी, उसके आचार एवं विचार मातृ-पितृ गृह से ओत-प्रोत थे, आकस्मिक रूप से नूतन-गृह में प्रवेश करती है तो सामजंस्य में कुछ तो समय लगेगा। स्वजनों से, परिचितों से, अपरिचितों एवं अजनवियों के मध्य आती है तो स्वाभाविक रूप से कुछ समय नूतन-परिवार की परम्पराओं से तालमेल बिठाने में लगता है। अग्नि में लकड़ी डाली जाती है तो वह कुछ देर साथ रहने के बाद ही अग्नि के गुण, कर्म एवं स्वभाव को आत्म-सात कर अग्निमय हो जाती है, अग्नि में डालने मात्र से अविलम्ब अग्नि नहीं बनती, इसी प्रकार गंगा समुद्र से मिलकर समुद्र बनती तो है, किन्तु मीलों बाद ही उसकी निर्लिप्तता समाप्त होती है, शक्कर को पानी में डाला जाय और तुरन्त यह अपेक्षा की जाय कि वह मीठा हो गया होगा—कोरी कल्पना है, उसे पानी में घुलाना-मिलाना पड़ेगा, तभी मिठास पैदा होगी। खटाई के सम्पर्क में सम्पूर्ण रात्रि अथवा कुछ घण्टे जब दूध रहता है, तभी दधि का रूप धारण करता है और हमारी अपेक्षा यही रहती है—विशेषकर सास की, ननद की और जिठानी की कि बहू एक ही दिन में हमारे अनुकूल चलने लगे। लोहे का अग्नि-संस्कार भी न हो और अपनी इच्छानुसार मोड़ें, तो मुड़ना सम्भव नहीं, ढालना सम्भव नहीं। छात्र ने अभी कल ही नई शाला में नाम लिखाया है और आज अँग्रेजी बोलना अनिवार्य है, यदि ऐसा चिन्तन बहू के प्रति बनाया जाता है तो वैज्ञानिक एवं न्यायोचित नहीं है। आखिरकार वह भी तो किसी की बेटी है, सास काश बहू को देखते समय बेटी वाला चश्मा लगा ले तो वैषम्य मिट जाय तथा बहू-बेटी समान है की उक्ति सार्थक हो जाय।

सास और ननद की संकीर्ण दृष्टि एक बार क्षम्य भी है, किन्तु जिसको समर्पित होकर अपना गोत्र और वंश बदल कर, जिसके पाणि-ग्रहण को अपने जीवन का अवलम्ब मानकर आई है, वह पति भी उचित सम्मान एवं सद्भाव की अभिव्यक्ति न करे तो फिर उस नव-परिणीता का आश्रय एवं आधार ही ढह गया। बात-बात में खीझ, मनमुटाव, मात्र आपसी समझ का अभाव ही कहा जा सकता है, अपने प्रभुत्व को, वर्चस्व को अरोपित करने की आकांक्षा ही अनेक स्थलों पर मतभेदों का कारण होती है। गृहस्थ-जीवन में कुछ न कुछ गड़बड़ी आये दिन होते रहना कोई अनहोनी बात नहीं है, ऐस अवसरों पर सद्भावना एवं उदारतापूर्वक यह विचार करना अधिक उपयोगी होगा। जब धर्म-पत्नी को सहयोगिनी, सहचरी, अर्धांगिनी कहा जाता है तो उसे भी समान रूप से सोचने, विचारने एवं प्रस्ताव रखने, सलाह देने का अधिकार है, उसे त्याग की दृष्टि से देखें तो भी वह नर की तुलना में कुछ अधिक ही ठहरती है। अत: पति ही पत्नी को न समझ सके—जिसे जीवन-साथी कहते हैं, तो इसे दुर्भाग्यपूर्ण बिडम्बना ही कहा जायेगा। ठीक है, पत्नी से भी गलती हो सकती है, किन्तु उसका समाधान दिल दुखाने वाली कर्कश अभिव्यक्ति नहीं है, वरन् विवेकपूर्ण, शालीन सद्भावना है। सन्त तुकाराम से गई-बीती स्थिति तो हो नहीं सकती, पत्नी के मारने पर भी वे हँसकर कहते हैं कि वाह इतने सधे हुए हाथों मारा कि गन्ने के बराबर दो टुकड़े हुए, न कोई छोटा, न बड़ा।

मानव मात्र सम्मान का भूखा है, अत: स्वाभाविक है कि मीन-मेख निकाले, छिद्रान्वेषण करे और मन-मुटाव न उत्पन्न हो असम्भव है। जब हम अच्छी तरह से जानते हैं कि नारी पुरुष की अपेक्षा अधिक संवेदनशील, भाव-प्रवण एवं सहृदय होती है, अत: जो व्यवहार हमें अपने लिए पसन्द नहीं है, उस व्यवहार को कोमलता की प्रतिमूर्ति के साथ करें तो उसे कैसे पसन्द आ सकता है ? अपना चेहरा जरा अपने दर्पण में देखें तो फिर शिकायत समाप्त हो जायेगी।

आत्म-निरीक्षण ऐसे अवसरों पर जब पत्नी की किसी गल्ती अथवा भूल से क्रोध आये, करना चाहिए। छोटी-सी बात भी विकराल रूप धारण कर लेती है, रस्सी का साँप बन जाया करता है, विद्वेष पनपना और जल्पना पीछे लग जाती है।

पत्नी की प्रतिष्ठा पति की प्रतिष्ठा है, यह भाव विकसित हो जाने पर किसी बात को प्रतिष्ठा का बिन्दु बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता। पति को पत्नी की अभिरुचियों का पता हो और उसके अनुकूल यदि वह व्यवहार करने लगे तो उसे हानि नहीं, लाभ ही होगा। जिस बात को प्रेम से साथ कहा जा सकता है, उसे अप्रिय भाषा, अशिष्ट-शैली में अभिव्यक्त किया जाय तो किसी को भी पसन्द नहीं आयेगा।

भाषा एवं भोजन के सम्बन्ध में कहा तो यही जाता है कि वह प्रिय, हितकर एवं रुचिकर ही होना चाहिए, जिससे सामने वाले को मन्त्र-मुग्ध किया जा सके। कहते हैं—मीठा बोलने वाला शत्रु को भी मित्र बना लेता है, फिर जो व्यक्ति एक ही नाव पर सवार हों, एक ही नीड़ के पक्षी हों, उनके वार्तालाप में मधुरता न हो, तो विषाक्त स्थिति का उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं है। परिवार में उल्लास एवं आनन्द तभी टिक सकता है, जब पति-पत्नी संयुक्त रूप से एक दूसरे की भावनाओं, अभिरुचियों का स्वागत करें, मात्र पति ही की इच्छा चले, उसके ही विचारों को महत्व दिया जाय और पत्नी की अवमानना हो तो कुण्ठा एवं नैराश्य कोमलमना नारी में उत्पन्न होने लगेंगे और तज्जनित मनमुटाव का अन्त तो दुखद ही होता है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पति यदि चाहे तो अपने चिन्तन एवं दृष्टिकोण को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इस प्रकार बना सकता है। दुनिया के शत-प्रतिशत विचार एवं भाव एक-दूसरे से, किसी भी व्यक्ति के नहीं मिलते। **''पिण्डे-पिण्डे मतिर्भिन्न''** की उक्ति इस सन्दर्भ में अक्षरशः सार्थक एवं प्रामाणिक मानी जा सकती है। फिर पत्नी से विचार-साम्य कैसे सम्भव है ? एक बात और अधिकतर देखने एवं सुनने में आती है—पति से पत्नी अपने माता-पिता अथवा भाई की अवमानना अथवा निन्दा सुनती है तो वह इसे बर्दास्त नहीं कर पाती—इसका कारण सुस्पष्ट है कि रक्त का सम्बन्ध अपना असर दिखाता है, जिसने जन्म दिया है, उसके विरोध में तो पति महोदय भी सुनना पसन्द नहीं करेंगे। इसका सीधा, सरल एवं सौम्य तरीका यही है कि पत्नी को पति के माता-पिता अर्थात् सास-ससुर का एवं पति को अपनी पत्नी के माता-पिता का सम्मान करना औचित्यपूर्ण है, जिससे रोष एवं विद्वेष की स्थिति उत्पन्न ही न हो सकेगी तथा पारिवारिक जीवन में सुमधुरता, परस्पर सहयोग, सद्भाव और सौहार्द्र की स्थापना अपने आप हो जायेगी। इसके विपरीत यदि आपसी मनमुटाव पति-पत्नी के मध्य बना रहता है, तो जो शक्ति बच्चों को सुसंस्कृत बनाने, गृह-प्रबन्ध एवं सुव्यवस्थित जीवनयापन करने में लगती, जिससे कि घर में स्वर्ग का अवतरण उत्पन्न हो गया होता, वह शक्ति व्यर्थ नष्ट होती रहती है।

एक स्वर्ण-सूत्र अवश्य इस समस्या के समाधान हेतु अथवा राम-बाण औषधि इस बीमारी के सरल उन्मूलनार्थ उपयोग में लाई जा सकती है। वह है—पति-पत्नी का चिन्तन। यदि ऐसा हो जाय कि श्रेष्ठ हैं तो दोनों श्रेष्ठ, निकृष्ट हैं तो दोनों निकृष्ट, उठेंगे तो दोनों उठेंगे, गिरेंगे तो दोनों गिरेंगे। तो इससे परस्पर सद्भाव एवं सौहार्द्र बढ़ेगा, जिससे कलह का नागपाश अपना असर नहीं दिखा सकता। अन्त में निर्विवाद रूप से यही कहा जा सकता है कि संवेदना एवं सहानुभूति दाम्पत्य-जीवन की सफलता की कुंजी है।

सफल दाम्पत्य—सघन-आत्मीयता पर निर्भर

पति-पत्नी के बीच सघन आत्मीयता का विकास ही दाम्पत्य-जीवन की सार्थकता है। यों उनमें प्रगाढ़ आत्मीयता स्वाभाविक भी है। दोनों के हित एक, स्वार्थ एक, भविष्य एक, परिवार एक हैं। ऐसे में बिलगाव की भावना का तो कहीं स्थान ही नहीं होना चाहिए। किन्तु मानसिक असामान्यताएँ इस आत्मीयता की सहज अनुभूति में बाधक बन बैठती हैं। इसलिए दाम्पत्य-जीवन में बँधने से पूर्व जहाँ सौ बार विचार जरूरी है, साथी के स्वभाव-गुणों की परख आवश्यक है, वहीं दाम्पत्य-सूत्र में बँध जाने के बाद इस तथ्य का स्मरण जरूरी है कि अब दोनों का सुख-दुख, उत्कर्ष-अपकर्ष एक हो गया है और सम्मिलित भविष्य को संभालने में पूरी निष्ठा तथा लगन से जुटाना आवश्यक है।

वस्तुतः शारीरिक संयोग मात्र से दाम्पत्य-सुख की कोई गहरी अनुभूति सम्भव नहीं है। क्योंकि वह तो हेयर-ड्रेसिंग करा लेने या तेल मालिश कराने, हजामत बनवाने अथवा दाद-खाज खुजलाने से मिलने वाली क्षणिक और तुच्छ तुष्टि के ही समान है। दाम्पत्य-जीवन की अनुभूतियों का आनन्द तभी सम्भव है, जब पति-पत्नी दोनों भावनात्मक गहराइयों में उतरें और एक-दूसरे में घुल-मिल जाने की स्थिति का प्रयास करें। प्रकृति ने नर-नारी के बीच जो आकर्षण सँजोया है, उसका प्रयोजन यही है कि दो व्यक्तियों के बीच प्रगाढ़ मिलन की भावनात्मक एवं रासायनिक क्रियाएँ सम्पन्न हों और इससे दोनों के भीतर एक सृजनात्मक नवीनता आये, दोनों के व्यक्तित्व में एक नया निखार उभरे।

दो वस्तुओं की सम्मिलित रासायनिक क्रिया तीसरी वस्तु को जन्म देती है। औषधि-शास्त्र में भी भिन्न-भिन्न वनस्पतियों, धातुओं अथवा क्षारों के सम्मिलित प्रयोग के नये परिणाम निर्दिष्ट रहते हैं और उनका नया लाभ उठाया जाता है। नर-नारी के बीच भी ऐसे घुलनशील तत्व विद्यमान हैं कि उनमें गहन आत्मीयता से दोनों का पुराना स्तर विघटित होकर एक नया ही स्तर विनिर्मित होता है। किन्तु घुलन और नवनिर्माण की यह प्रक्रिया गहरी भावनात्मक सघनता से ही सम्पन्न होती है। आत्म-समर्पण, आत्मीयता, सवंदेनशीलता, निष्ठा और ममता की गहराइयाँ ही इस एकत्व की आधार-भूमि प्रस्तुत करती हैं। विवाह का वास्तविक प्रयोजन भी यही है। इस स्थिति में शरीरों की भिन्नता का आभास भी नष्ट हों जाता है, एक प्राण दो शरीर की अनुभूति होने लगती है। तब तक ऐसी अभिनव आभा उत्पन्न होती है, जिससे दोनों के शरीर एवं व्यक्तित्व जगमगा उठें। ऐसे अनूठे और अभिनव व्यक्तित्व वाले समरस माता-पिता की सन्तान में अगणित प्रतिभाएँ तथा विशेषताएँ स्वभाविक ही विद्यमान होती हैं। भावनात्मक सघनता का यह स्तर प्रकृति की इस इच्छा की भी पूर्ति करता है कि विश्व में जीवधारियों का वंश तो चलता ही रहे, उनका स्तर भी विकसित होता रहे।

विवाह का उद्देश्य यदि पाशविक ,उन्माद की तुष्टि का प्रबन्ध और संख्या-वृद्धि करने वाला पशुतुल्य प्रजनन हो, तब तो बात और है, अन्यथा यदि इसका उद्देश्य दो व्यक्तियों का संस्कार, उनमें नवीन चेतना का उन्मेष तथा सीमित किन्तु सार्थक सन्तान की प्राप्ति हो तो पति-पत्नी के बीच गहन आत्मीयता की अविरल अनुभूति का उत्कर्ष आवश्यक है।

जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति हेतु की जाने वाली यात्रा को पति-पत्नी का यह अनन्य संयोग ही सहज-सुगम बनाता है। पति-पत्नी संसार पथ पर चलने वाले जीवन-रथ के दो पहिये हैं, गाड़ी के दो चक्के हैं, दोनों की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गति-प्रगति परस्पर सम्बद्ध है। दोनों में से एक भी दुर्बल या अयोग्य हुआ तो दाम्पत्य जीवन की गति प्रभावित होगी। चाल में लड़खड़ाहट आ जाने पर कभी भी दुर्घटना, टूट-फूट सम्भव है। इससे मात्र-दाम्पत्य-जीवन ही नहीं, परिवार तथा समाज भी प्रभावित होता है।

सफल-सार्थक दाम्पत्य जीवन के लिए समान रुचि, स्तर व आदर्श वाले पति-पत्नी होने चाहिए। अनमेल विवाह जीवन में विषाद, कटुता, विक्षोभ, विग्रह और विनाश का ही कारण बनता है। अत: अनमेल विवाह की रस्म की जड़ों में मट्ठा डाला जाना जरूरी है।

मेल से मतलब जन्म-कुण्डली मिलना या कद, वजन, रंग, बनावट आदि देखने भर से नहीं। उसका तात्पर्य है, मन:स्थिति से—स्वभाव, प्रकृति एवं दृष्टिकोण से। जो भावनात्मक दृष्टि से न मिल सकें, उन्हें अनमेल ही कहा जायगा। विवाह से पूर्व दाम्पत्य सहयोग मिलाते समय गुण, कर्म, स्वभाव की-दृष्टिकोण, रुझान एवं चरित्र की विशेषताओं को देखा जाना चाहिए और समझा जाना चाहिए कि वे परस्पर अधिक घनिष्ठ हो सकते हैं या नहीं ? यही मेल मिलना है, इसके विपरीत स्थिति को अनमेल ही कहा जायगा। विवाह से पूर्व इस सम्बन्ध में देख-भाल हो सके तो अधिक उपयुक्त है। यदि वैसा न बन पड़े तो पति-पत्नी का कर्तव्य है कि वे दाम्पत्य-जीवन की सार्थकता को ध्यान में रखते हुए एकता के आधारों को अधिक विकसित करने का निरन्तर प्रयत्न करें। कुटुम्ब के अन्य सदस्यों का भी कर्तव्य है कि इस दिशा में बाधक न बनकर यथासम्भव सहायक ही सिद्ध होते रहें।

इतने पर भी थोड़ी-बहुत भिन्नता स्वाभाविक है, यह तथ्य सदैव स्मरण रखा जाना चाहिए। निबाहने और समझौता करने की उदारता से क्रमश: सघन आत्मीयता विकसित होती चलती है। जबकि अपनी ही रुचि, इच्छा, कामना को महत्व देने वाले पति-पत्नी मधुर सम्बन्धों में दरार पैदा कर लेते हैं। स्नेह-प्रेम के स्थान पर कटुता-कलह के बीज बोने पर अपनी इच्छा की पूर्ति नहीं हो जाती, अपितु तलाक, दुर्व्यवहार, कलह, हत्या, आत्महत्या जैसे भयंकर परिणाम ही हाथ लगते हैं।

आत्मीयता के लिए लगभग समान मानसिक स्तर आवश्यक है। थोड़ा-बहुत अन्तर तो स्वाभाविक है, पर उसे भी प्रयासपूर्वक ही मिटाया जा सकता है अन्यथा तनिक-सी भी उपेक्षा बढ़ते-बढ़ते खाई का रूप ले लेती है।

रुचि एवं आदर्शों की अनुरूपता के साथ ही दाम्पत्य जीवन की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि पति-पत्नी को इस विषय में पर्याप्त ज्ञान एवं व्यावहारिक जानकारी है अथवा नहीं ? समुचित जानकारी के अभाव में अनुकूल परिस्थितियाँ भी कुछ सहायक सिद्ध नहीं हो पातीं। इसीलिए पहले अपने देश में लड़कों को गुरुकुलों में और कन्याओं को मातृ-गृह में भावी गृहस्थ-जीवन की व्यावहारिक शिक्षा दी जाती थी। गृहस्थ-जीवन के कर्त्तव्यों-दायित्वों को निभाने की समर्थता आ जाने पर ही घर बसाने की अनुमति दी जाती थी।

नर-नारी परस्पर पूरक सत्ताएँ हैं। इस तथ्य को पुरुष-प्रधान समाज में सर्वप्रथम नर को ही हृदयंगम करने की आवश्यकता है। नारी में अनेक दिव्य अनुदान सदैव विद्यमान रहते हैं। उस पर अशिक्षा, रूढ़िवादिता के कारण जमी राख की परतों को हटाने-उड़ाने की जिम्मेदारी पुरुष की ही है। नारी-शिक्षा के महत्व को अभी तक नहीं समझा गया है। पढ़ाई क सीधा रिश्ता नौकरी से जोड़ दिया गया है। विचारशील पुरुष को अपनी पत्नी के सही सांस्कृतिक शिक्षण का प्रयास भी स्वयं ही करना चाहिए। तभी वह उसके विकसित व्यक्तित्व से, स्वयं के जीवन से भी सम्पन्नता का अनुभव कर सकेगा।

सुसंस्कृत नारी ही समर्पण की गहराई समझती है। स्नेह और विवेक से आपसी सम्बन्ध अधिकाधिक सुदृढ़ स्वस्थ बनते जाते हैं और परस्पर-पूरक दम्पत्ति सार्थक तथा आनन्दपूर्ण जीवन जीते हैं। विस्तृत दृष्टिकोण वाले पति-पत्नी पारस्परिक मनमुटाव उत्पन्न करने वाले प्रसंगों को चतुराई से उड़ा देते हैं। परस्पर सम्मान और संवेदना की सघनता, भ्रान्ति और कटुता को कभी-भी पनपने नहीं देती। दाम्पत्य-जीवन में सरसता, सरलता, प्रफुल्लता, प्रगाढ़ आत्मीयता और परस्पर की प्रेरणा सदैव आनन्द प्रवाहित करती रहती है। यही उसका लक्ष्य भी है। इसके बिना दाम्पत्य-जीवन निरर्थक ही कहा जायगा। दाम्पत्य-जीवन का वरण कर लेने के बाद सघन आत्मीयता के सभी प्रयास निरन्तर करते ही रहना चाहिए।

दाम्पत्य-जीवन को नारकीय होने से बचावें

दाम्पत्य-जीवन का महल मनुष्य की अनेकों कोमल एवं उदार भावनाओं, विचारशीलता तथा सद्वृत्तियों पर खड़ा होता है। स्नेह, आत्मीयता, त्याग, उत्सर्ग, सेवा, उदारता आदि अनेकों दैवी गुणों पर दाम्पत्य जीवन की नींव लगती है। दाम्पत्य-जीवन यथार्थ की धरती पर कर्तव्य और उत्तरदायित्व का सम्मिलित प्रयास है, जिसमें स्त्री-पुरुष का परस्पर स्नेह व आत्मीयता, त्याग, बलिदान जीवन की कठोरताओं, शुष्क मरुभूमियों को भी सींचकर उसे सरस, सरल और स्वर्गीय बना देता है। अनेकों कठिनाइयों में भी इस सम्मिलित प्रयास से पद-पद पर नई आशा, नई उमंग, नव-प्रेरणा जगी रहती है। पुरुष नारी की सरलता, सहिष्णुता, त्याग, सेव से सशक्त बना रहता है तो नारी पुरुष के स्नेहपूर्ण संरक्षण आत्मीयता, आदर-सम्मेलन को पाकर सबला देवी गृहिणी के रूप में प्रतिष्ठित होती है।

पति-पत्नी के बीच में सम्बन्ध स्थापित करने वाले उक्त कोमल धागे इतने कोमल भी होते हैं कि तनिक से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झटके में टूट जाते हैं और फिर सम्पूर्ण दाम्पत्य जीवन का सुन्दर महल लड़खड़ा कर ही गिर पड़ता है। पति-पत्नी के व्यवहार की सामान्य सी भूलें असावधानी अथवा अज्ञान से परस्पर के मधुर सम्बन्ध कटुता, द्वेष, प्रतिद्वन्द्विता में बदल जाते हैं। गृहस्थ-जीवन में फैले हुये गृहकलह, असन्तोष, संघर्ष, लड़ाई-झगड़े में मनुष्य की उन्नति, विकास, उत्कर्ष सब धरे ही रह जाते हैं। वस्तुतः इनका आधार व्यवहार भी सामान्य-सी बातें ही होती हैं, जिनका ध्यान रखा जाय तो दाम्पत्य-जीवन को नारकीय होने से सहज ही बचाया जा सकता है।

पति-पत्नी की एक दूसरे के प्रति कट्टरता और अविश्वास की भावना भी गृहस्थी को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। जब पति-पत्नी एक दूसरे के चरित्र, व्यवहार, रहन-सहन पर सन्देह करने लगते हैं तो पारस्परिक मधुर सम्बन्धों के बीच गहरी खाई पैदा हो जाती है और वह धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है। इससे दाम्पत्य जीवन की सुख-शान्ति तो नष्ट होती ही है, कालान्तर में आत्म-हत्या, हत्या, धोखेबाजी के रूप में कई भयंकर परिणाम भी मिलते हैं। अखबारों में आये दिन इस तरह के समाचार पढ़े जा सकते हैं। वस्तुतः परस्पर सच्चाई, नम्रता, सहिष्णुता और उदारतापूर्ण क्षमा से ही दाम्पत्य-जीवन निभता है। इससे बुरे पक्ष का भी गुजारा हो जाता है।

कुछ समय पूर्व अनेकों सदस्यों का मिला-जुला सम्मिलित परिवार सुख-शान्तिपूर्वक अपने दिन गुजारता था, सबका निर्वाह भली प्रकार होता था, अनेकता में एकता की साध भी पूरी होती थी। किन्तु अब तो बड़े सम्मिलित परिवारों की बात तो दूर परस्पर पति-पत्नी में ही एकता, समता, सामंजस्य नहीं है। इसका कारण है परस्पर अधिकार की भावना, आपाधापी और व्यक्तिगत स्वार्थ का दृष्टिकोण, सामंजस्य की भावना का अभाव।

वस्तुतः एक से दो अथवा अधिक व्यक्तियों का निर्वाह तभी हो सकता है, जब उनमें परस्पर आपाधापी की भावना न हो। अपना स्वार्थ, अपना सुख, अपना लाभ अपनी इच्छाओं की पूर्ति के संकीर्ण दृष्टिकोण को छोड़ने में ही पति-पत्नी या परिवार के जीवन की गति सम्भव है। घर में तना-तनी या लड़ाई-झगड़ा होने पर बाजार में जाकर मिठाई खाने वाले, पत्नी को दुःखी, असन्तुष्ट, परेशान छोड़कर मौज मजा करने वाले, मित्रों में जाकर हँसी-खुशी मनाने वाले पति कभी भी अपनी पत्नी की सद्भावना और आत्मीयता प्राप्त नहीं कर सकते। इसी तरह दिन भर काम से थके हुए पुरुष को समय पर आवश्यक सेवा-सहायता, सहानुभूति न देकर सखियों में गप-शप लड़ाने वाली, पड़ौसिन के यहाँ जाकर बातें बनाने वाली या घर में कुहराम मचा देने वाली स्त्री, दाम्पत्य-जीवन के नीड़ में ही आग सुलगा देती है। इसकी ज्वालाओं से दग्ध पुरुष की निराशा, झूँठा अवसाद और फिर विरक्ति के उच्छवासों में दाम्पत्य जीवन की सभी स्वर्गीय सम्भावनायें नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं।

पति-पत्नी का एक समान सम्बन्ध है जिसमें न कोई छोटा न कोई बड़ा। जीवन यात्रा के पथ पर पति-पत्नी परस्पर अभिन्न हृदय साथियों की तरह ही होते हैं। दोनों का अपने-अपने स्थान पर समान महत्व है। पुरुष जीवन-क्षेत्र में पुरुषार्थ और श्रम के सहारे प्रगति का हल चलाता है तो नारी उसमें नव-जीवन, नव-चेतना, नव-सृजन के बीज वपन करती है। पुरुष जीवन रथ का सारथी है तो नारी रथ की धुरी। पुरुष जीवन रथ में जूझता है तो नारी उसकी रसद व्यवस्था और साधन-सुविधाओं की सुरक्षा रखती है। किन्तु अज्ञान और अभिमानवश पुरुष नारी के इस सम्मान का पालन नहीं करता। दाम्पत्य-जीवन में विषवृद्धि का एक कारण परस्पर असम्मान और आदर भावनाओं का अभाव भी है।

दाम्पत्य-जीवन में गतिरोध पैदा होने का एक कारण विवाह और सम्बन्ध तय होने की गलत परम्परायें भी हैं। अक्सर माता-पिता द्वारा केवल जातीय नियम या ऊपरी बातें देखकर ही विवाह सम्बन्ध तय हो जाते हैं। किन्तु इससे विवाह का मूल उद्देश्य पूरा नहीं होता। इसी तरह नई सभ्यता के भावुकता और अन्धप्रेम पर आधारित अनुभव-शून्य विवाह सम्बन्धों के दुष्परिणाम और विफलता कुछ कम हानिकारक नहीं होते।

उक्त दोनों ही आधार गलत हैं। एक अनमेल विवाह है जिसमें दम्पत्ति के विचार, भाव, मानसिक स्तर में भिन्नता रहना स्वभाविक है। दूसरे में विवाह एक बच्चों जैसा खेल बनकर रह जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि विवाह सम्बन्ध में गुर्ण, कर्म, स्वभाव का समुचित मेल मिलाया जाय। गुण, कर्म और स्वभाव की प्रेरणा से होने वाले सम्बन्ध चिरस्थायी, मधुर और सत्परिणाम देने वाले होते हैं। सावित्री ने गुणों से प्रभावित होकर सत्यवान को अल्पायु होने पर भी अपना पति चुना था। गुण और कर्तव्य पर आधारित दम्पत्ति के जीवन की अनेकों समस्यायें सहज ही सुलझ जाती हैं।

स्मरण रहे दाम्पत्य-जीवन कई सदस्यों का एक घुला-मिला जीवन है, जिसमें प्रत्येक का अपना-अपना महत्व और स्थान है। दाम्पत्य-जीवन में स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने सपनों की दुनिया में रहकर आकाश कुसुम नहीं तोड़ने चाहिए। अपने आपको ही बड़ा कमाऊ, बुद्धिमान और उपयोगी मानकर अहंकार करना, हर काम का श्रेय स्वयं ही लेना, दूसरों की परवाह न करते हुए अपनी ही चलाना, अपनी ही पसन्दगी को अधिक महत्व देना, दाम्पत्य-जीवन में गतिरोध पैदा करना है। शान्ति, प्रेम, आनन्द, प्रसन्नता के साथ सहजीवन ही दाम्पत्य-जीवन का आधार होना चाहिए, जहाँ त्याग, उदारता, सहिष्णुता, उत्सर्ग, आत्मीयता भी हो। लेकिन किसी एक पक्ष के अनीति या अन्याय की राह पर चलने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का विरोध भी दूसरे को करने का अधिकार है। मन्दोदरी ने रावण का, तारा ने बालि की नीतियों का विरोध भी किया था।

दाम्पत्य जीवन की आधारशिला

शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने एक उपन्यास में नारी पात्रा से यह प्रश्न पुछवाया है—''क्या आपसी वफादारी और विश्वास के सभी कर्तव्य केवल स्त्रियों के लिए ही हैं। पुरुष जिसे अग्नि की साक्षी में सात फेरे पाड़कर अपने घर लाता है, वह अपने डंडे के बल पर क्या विवाह के सारे दायित्वों से छुटकारा पा सकता है।'' नायिका ने यह प्रश्न केवल नायक से ही नहीं, पूरे पुरुष समाज से पूछा है। वफादारी, कर्त्तव्य-निष्ठा, प्रेम, त्याग और सहिष्णुता के निबाहने की सौगन्ध खाकर पुरुष जब किसी स्त्री को ब्याह कर अपने घर लाता है, तो आशा यही की जानी चाहिए कि दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे के लिए की गयी प्रतिज्ञाओं का पालन करेंगे। लेकिन सामान्य जीवन में हम देखते हैं कि पुरुष अपनी इन सभी प्रतिज्ञाओं को स्त्री पर ही लाद देता है और उससे एक निष्ठा की, प्रेम और विश्वास की अपेक्षा करता है। न केवल एकनिष्ठा तथा साहचर्य की वरन् दासी बनकर रहने तथा अनुचरी का बन्धन निभाने की भी।

इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए किसी विचारक ने लिखा है।—''भारतीय पुरुष भले कितना ही उच्छृंखल रहा हो, कामुक रहा हो, व्यभिचारी रहा हो पर वह अपने लिए पत्नी को चाहता है सीता-सावित्री की तरह।'' क्या यह सच नहीं है कि सभी पुरुष सीता-सावित्री जैसी पत्नी तो चाहते हैं पर राम और सत्यवान बनना कोई नहीं चाहता।

विवाह कोई सौदा नहीं है, जिसमें भरण-पोषण का दायित्व लेकर निष्ठा, विश्वास तथा वफादारी सब कुछ खरीद लिया जाय। वह आत्म समर्पण है—पत्नी का पति के प्रति और पति का पत्नी के प्रति। जब कोई भी पक्ष केवल दूसरे पक्ष से ही समर्पण और विश्वास की एकांगी अपेक्षायें करे तो वहीं से वह समर्पण सौदा बनने लगता है और सौदा ही नहीं शोषण भी। सौदा भी होता है तो बराबर के मूल्यों पर। लेकिन सौदे में भी वह स्थिति बेईमानी का भाव उत्पन्न कर देती है कि थोड़ा सा मूल्य देकर सब कुछ छीन लेने की चेष्टा हो।

एकनिष्ठा और वफादारी का अर्थ मात्र यह नहीं है कि पति पत्नी दोनों केवल यौन-सम्बन्धों के मामले में ही वफादार रहें। यह मानने पर तो विवाह केवल काम सेवन की व्यवस्था ही बनकर रह जाता है। जबकि विवाह का अर्थ बहुत विशाल और ऊँचा है। प्रेम, सेवा, त्याग और सहिष्णुता के आदर्शों का प्रयोग गृहस्थी की शाला में ही होते हैं और इन प्रयोगों को सिद्ध कर सम्पूर्ण समाज के लिए उपयोग करना होते हैं। काम सेवन तो विवाह सम्बन्धों की एक छोटी सी आवश्यकता है, जिसका उद्देश्य भी ऊँचा होना चाहिए।

यदि उस उद्देश्य के साथ एकान्तिक पति-पत्नी सम्बन्ध निबाहे जायें तो तमाम विवाहितों की यौन उच्छृंखलताओं का निदान ढूँढ़ा जा सकता है। दाम्पत्य जीवन के साथ काम को जोड़ने का इतना ही अर्थ है कि व्यक्ति की वासना उमंग नियन्त्रित हो सके। छत पर परनाला इसलिए बनाया जाता है कि बारिश का पानी जो छत पर इकट्ठा हो जाता है। वह उसमें से बह निकले। परनाला न हो तो पानी कहीं भी और किधर भी गिर सकता है। तालाब जब बनाये जाते हैं तो उसमें अधिक पानी भर जाने पर उसके निकलने की व्यवस्था भी होती है। वह व्यवस्था भी परनाले की तरह होती है, जिनमें से अनावश्यक पानी बह कर निकल जाता है। विवाहित व्यक्ति से यौन शुचिता तथा एकनिष्ठा की अपेक्षा इसलिए की जाती है कि उनके पास वह व्यवस्था है, जिससे वह अपनी वासना को नियन्त्रित रख सके।

स्त्रियाँ तो आमतौर पर एकनिष्ठ और वफादार रहती हैं। उन्हें प्रकृति ने बनाया भी इस विशेषता के साथ है कि पुरुषों की अपेक्षा वह नहीं के बराबर कामवेग से त्रस्त होती हैं। थोड़ी बहुत वासना जो होती भी है वह भी प्रकृति की आवश्यकता के अनुरूप ही और वह आवश्यकता किसी रूप में पूरी होने के बाद—सन्तान का जन्म होने के उपरान्त समाप्त ही हो जाती है। कतिपय स्त्रियों में जो विकृति होती है वह भी या तो पुरुषों द्वारा प्रेरित अथवा वातावरण दोष के कारण। लेकिन पुरुष इस मामले में भी स्त्रियों से हार गया और वह अपेक्षाकृत उच्छृंखल, उद्दण्ड तथा कामुक, लम्पट बना रहता है। स्त्रियाँ जबकि संयमी और एकनिष्ठ रहती हैं, पुरुष विवाह के बाद भी कामुक और लम्पट बना रहता है। वह अपनी पत्नी पर तो अत्याचार करता ही है, अवसर मिलता है तो समाज में भी दूषित वातावरण फैलाने से नहीं चूकता।

और विडम्बना यह कि नारियों के सतीत्व को पवित्र रखने के लिए पुरुषों ने उस पर घर से बाहर न निकलने, किसी अपरिचित व्यक्ति से बात तक न करने, मुँह पर हमेशा पर्दा डाले रहने के अनेकों प्रतिबन्ध लगा दिये। कहा जाता है कि इससे उन्हें अपने शील और पतिव्रत धर्म को निभाने में मदद मिलेगी। कहा जा चुका है कि नारियाँ स्वभाव से शीलवती होती हैं। यदि उनके शील भ्रष्ट होने की चिन्ता करते हुए ये प्रतिबन्धात्मक व्यवस्थायें करना आवश्यक लगे तो पहली व्यवस्था पुरुष के प्रति की जानी आवश्यक है।

स्त्रियों को इस एक मामले में ही पुरुषों ने छला है—ऐसी बात भी नहीं है पुरुषों ने और क्षेत्रों में भी नारी को बड़ी बुरी तरह छला है—सुविधाएँ, अधिकार, कार्यक्षेत्र, अवसर, व्यवस्था सभी कुछ तो उसने अपने लिए सुरक्षित कर रखी हैं। परिवार की सार-सम्हाल और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखभाल का सारा दारोमदार महिलाओं पर रहते हुए भी पुरुष ने 'मुखिया' का पद अपने नाम पर ही रखा है। घर में ही देखा जाय तो गृहिणी एक तरह से पूरे घर की मालकिन होती है। घर की सारी व्यवस्था, सदस्यों की सुविधाओं और आवश्यकताओं का ध्यान उसे ही रखना पड़ता है। पर अधिकांश परिवारों में कोई निर्णय लेते समय एक पक्षीय मत को ही प्रधानता दी जाती है और वह प्रायः पुरुष का ही होता है अर्थात् परिवारों में भी प्रधानता पुरुष ने अपने लिए ही रख छोड़ी है।

तो निष्ठा, विश्वास, वफादारी, कर्त्तव्य और दायित्वों के परिपालन पर केवल स्त्री के लिए ही जोर दिया जाता है और उन सबसे मुक्त रहते हुए भी अन्तिम निर्णायक तथा परिवार का एकछत्र अनुशास्ता पुरुष ही क्यों ? न्यायपूर्ण दृष्टिकोण का तकाजा है कि अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों और दायित्वों में भी समानता होनी चाहिए। इस आदर्श मर्यादा के निर्वाह से बचकर पुरुष अपने अहं को भले ही तुष्ट कर ले पर घाटा उसे ही उठाना पड़ता है। परिवारों में आमतौर पर होते रहने वाले क्लेश-कलह, लड़ाई-झगड़े आदि इन हानियों और दुष्परिणामों के ही चिन्ह हैं।

दाम्पत्य जीवन की आधारशिला निर्मल प्रेम और प्रगाढ़ मैत्री है। इस आधारशिला पर विनिर्मित हुए गृहस्थ में ही पति-पत्नी एक-दूसरे की अपेक्षायें पूरी कर सकते हैं, एक दूसरे के स्नेह-सौहार्द्र का आनन्द उठा सकते हैं, एक दूसरे की सुख-सुविधाओं का मित्रतापूर्वक लाभ उठा सकते हैं। ऐसी स्थिति में ही पति अपने विश्वस्त साथी का मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है, सच्चा सहयोग ले सकता है अन्यथा वह एक खरीदी हुई वस्तु की तरह पत्नी का उपभोग तो आज भी कर रहा है। लेकिन उसमें कहाँ वह सुख-शान्ति का निर्मल स्रोत और कहाँ आनन्द की शीतल छाया।

मर्यादा टूटी नहीं, औचित्य छूटा नहीं

रसोईघर तीसरी मंजिल पर और उसमें भी नल नहीं। पानी नीचे के नल से भरना पड़ता था। माताजी थीं पुराने विचारों की—बहू होती ही काम करने के लिये इस मत को मानने वाली। सो वे उसे ही पानी लेने भेजती। पति के लिए यह किसी धर्म संकट के कम नहीं था। एक ओर मर्यादा और दूसरी ओर कर्त्तव्य।

उन्हें यह सहन नहीं होता था कि पत्नी इस स्थिति में भी पानी का मटका सिर पर लेकर इतनी सीढ़ियाँ चढ़े। वे किसी तरह पत्नी से पानी मँगवाना बन्द कराना चाहते थे। किन्तु यह कार्य आसान नहीं था। एक तरफ उनकी जननी थी और दूसरी तरफ शिशु निर्माण में संलग्न सहधर्मिणी। माँ को कुछ कहते तो मर्यादा टूटती। स्वयं पानी ले आते तो माँ को बुरा लगता है। इस समस्या का उन्होंने ऐसा समाधान खोज निकाला कि न तो माँ नाराज हुई और न पत्नी को कष्ट।

पति ने अपने नहाने का समय वही निश्चित किया जब पत्नी पानी लेने आती थी। मटका जब भरता तो वह चुपचाप उसे उठा लेते। पत्नी मना करती तो वे उसे चुप करा देते। वह अपने देवता के मनोभावों को समझ गई। वह कुछ नहीं कहती और उनके पीछे-पीछे सीढ़ियाँ चढ़ती जाती। जब वे तीसरी मंजिल पर पहुँचते और एक-दो सीढ़ियाँ ही बच रहतीं तभी वह मटका पत्नी के सिर पर रख देते और स्वयं नहाने के लिए नीचे आ जाते।

यह सूझ-बूझ वाले पति और कोई नहीं भारत रत्न लालबहादुर शास्त्री थे, जिन्होंने राष्ट्रीय और पारिवारिक दायित्वों को पूरी निष्ठा के साथ निभाया था। सहधर्मिणी के स्वास्थ्य तथा सुख की ओर उनका पूरा ध्यान रहता था। वे सदैव अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों के प्रति सच्चे ही बने रहे। यह उनकी सूझबूझ का ही परिचायक थी कि उन्होंने कर्त्तव्य का निर्वाह भी कर लिया और मर्यादाओं का उल्लंघन भी न होने दिया। ललिताजी ने भी उनके देश सेवा की भावना को समझ उन्हें पूरा-पूरा सहयोग दिया।

पति और पत्नी दो इकाई मिलकर एक सम्मिलित व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं और जीवन यात्रा का उत्तरदायित्व इस सामूहिक व्यक्तित्व पर ही निर्भर करता है। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। दोनों का एक-दूसरे के काम में सहयोग आवश्यक है, अनिवार्य है। पति-पत्नी के कार्यों का विभाजन, उसकी सीमा रेखा कभी निश्चित नहीं की जा सकती।

सफल दाम्पत्य जीवन में पत्नी की भूमिका

दाम्पत्य की सफलता पति-पत्नी दोनों के सक्रिय सहयोग और दायित्व वहन पर निर्भर करती है। किन्तु कार्य विभाजन कुछ इस प्रकार का होता है कि भीतरी मोर्चे पर पत्नी की भूमिका ही प्रधान रहती है। नारी अपने प्रकृति प्रदत्त गुणों के कारण अथवा आरम्भ से ही दाम्पत्य की सफलता की धुरी बनी रहने के कारण आज भी दाम्पत्य जीवन की सफलता में तीन चौथाई हाथ बँटाती है।

पुरुष प्रकृति से कुछ कठोर, बलिष्ठ व उद्दाम पौरुष युक्त होने के कारण उपार्जन आदि श्रमसाध्य कामों में आगे रहा अतः उसकी भूमिका बाहरी अधिक हो गयी। स्त्री घर सँभालती रही, पुरुष के बरसाती पानी से उद्दाम पौरुष को अपनी ममता और करुणा के सुदृढ़ कगारों में समेट कर जीवन के आँगन में शुभ मार्ग में प्रवाहित करती रही। यह क्रम आज भी कुछ उसी रूप में चल रहा है। पाश्चात्य देशों में नारी ने पुरुष के योग्य श्रम-साध्य कार्यों में भी अपना जौहर दिखाया है फिर भी उससे नारी की महत्ता या गरिमा बढ़ी हो, या घर के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दायित्वों को वहन करने में घटी हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। कहने का तात्पर्य यही है कि दाम्पत्य की सफलता में पत्नी का पक्ष प्रमुख होता है और पति का गौण।

गृहस्थी की गाड़ी चलाने में स्त्री-पुरुष दोनों ने जो काम अपनाये हैं उनमें न कोई छोटा है और न कोई बड़ा, न कोई महत्वपूर्ण और न कोई महत्वहीन। जिस प्रकार देश का शासन चलाने के लिये मन्त्रियों को भिन्न-भिन्न विभाग सौंपे जाते हैं, उसी प्रकार गृहस्थ सुख साधना में भी बाहर और भीतर के कार्यों का यह वर्गीकरण ठीक भी है और शारीरिक-मानसिक रचना के उपयुक्त भी।

परिवार के भीतर विभाग का संचालन नारी के हाथ में रहता है अत: दाम्पत्य जीवन में भी उसी का रोल अधिक रहता है। नारी पुरुष को जन्म देती है। वह सृष्टा है। पति निर्माण में उसे आगे बढ़ाने में पत्नी का जितना सहयोग रहता है, उतना किसी अन्य का नहीं। इतिहास उठाकर देखें तो बड़े-बड़े महापुरुषों को महापुरुष बनाने वाली उनकी माँ या पत्नी ही थी।

यों कहलाने को 'दाम्पत्य' स्त्री पुरुष के माधुर्य भाव पूरित सहचर्य को कहा जाता है किन्तु इस दाम्पत्य की परिधि इतनी ही विस्तृत है जितनी सूर्य के प्रकाश सफेद रंग की। ऊपर से दाम्पत्य कहलाने वाला यह सम्बन्ध अपने में ठीक उसी प्रकार सात रंग छिपाये हुए है जैसे सूर्य के प्रकाश में। दाम्पत्य में पति-पत्नी की, भूमिका मात्र स्त्री-पुरुष की नहीं होती वरन् पत्नी यहाँ माता, बहिन, मित्र, सखा, संरक्षिका, मार्गदर्शक, पुत्री आदि की भूमिकाएँ भी निभाती हैं। उसी प्रकार पति भी समय-समय पर पिता, भाई, सखा, मित्र, मार्गदर्शक, संरक्षक आदि की भूमिकाएँ निभाता है। इन सभी भावनाओं का सतरंगा इन्द्र-धनुष दाम्पत्य-जीवन में खिलता है। इसमें मुख्य भूमिका पत्नी की होती है। क्रियाओं का दौर उसकी तरफ से चलता है और उसकी प्रतिक्रियाएँ पति की ओर से होती हैं।

दाम्पत्य की सफलता में पति-पत्नी के विश्वास का बहुत बड़ा हाथ होता है। बिना विश्वास के किसी से प्रेम नहीं हो सकता। इस विश्वास के बल पर ही वह अपने माता-पिता और परिवार को छोड़कर पति गृह आ जाती है। यह विश्वास की बहुत बड़ी अभिव्यक्ति है। यह विश्वास बना रहना चाहिए।

विवाह के पूर्व प्रेम सम्बन्धों में चाहे कितनी ही तीव्रता व उत्कंटता हो किन्तु उसके पूर्णत्व की प्राप्ति विवाह के पश्चात् ही होती है। उस पूर्णत्व की उपलब्धि के लिये पत्नी ही आगे रहती है क्योंकि प्रेम का जो अक्षय स्रोत उसके पास होता है, यह पुरुष के लिये एक प्रकार से संजीवनी शक्ति का कार्य करता है।

पति अब तक अपनी माता के स्नेह-संरक्षण में रहा होता है तो वह अपनी पत्नी से भी अपेक्षा करता है कि वह उसकी माँ की तरह ही उसके लिये भोजन बनाये, उसकी देखभाल करे, उसकी सेवा करे। उसकी ये अपेक्षाएँ अस्वाभाविक नहीं होतीं। क्योंकि पत्नी के रूप में वह उन सब सम्बन्धों को स्थायी रूप से पा लेना चाहता है, जो उसे आज तक मिलते आये थे। यहाँ उसकी ये अपेक्षाएँ यदि गलत रूप से लगती हैं और यह सोचने लगती है कि ये तो मेरा कुछ भी महत्व नहीं आँकते उन्हें तो बस अपनी माँ और बहिनों के हाथों का काम ही पसन्द है किन्तु बात ऐसी नहीं होती है। कोई पत्नी अपने को फूहड़ कहलाना पसन्द नहीं करेगी। यदि उसे अपने दाम्पत्य को सफल बनाना है तो पति की इन अपेक्षाओं को स्वस्थ दृष्टिकोण से लेना चाहिए। या तो उसे अपनी रुचियों के साथ मोड़ लेना चाहिए या उसकी बात मान लेना चाहिए।

रूप और आकर्षण से पति आरम्भ में भले ही बँधा रहे, आगे चलकर पत्नी की यह अस्थायी पूँजी काम देने वाली नहीं होती। सुरुचि, सम्पन्नता, स्वच्छता आदि ऐसी बातें हैं जो दाम्पत्य की सफलता में बड़ा काम देती हैं। पत्नी का मानसिक सौन्दर्य ही वह अभीष्ट होता है, जिसे पति पाना चाहता है। ऊपरी रूप व आकर्षण उसी की भूख को स्पष्ट करते हैं। स्नेह, सौजन्य, उल्लास, प्रसन्नता, धैर्य, सहनशीलता आदि ऐसी मानसिक सुन्दरताएँ हैं जिनके आगे रूप टिक नहीं सकता। अत: समझदार पत्नियाँ अपने इस मानसिक सौन्दर्य का ही परिचय देती हैं।

जो यह सोचती हैं कि पति को प्राय: रूप की भूख होती है, यह बात पूर्णत: सत्य नहीं होती। यदि इस बात पर विश्वास करके शारीरिक सौन्दर्य की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाय तो वह पुरुष को असयंमी बना देता है। यह असंयम दोनों के लिये हानिकारक होता है।

कोई व्यक्ति पूर्ण नहीं होता। कुशल पत्नियाँ अपने पति को जैसा भी उनका व्यक्तित्व है प्रेम करती हैं। उसे विकसित करने का प्रयास करती हैं। अपने आपको भी वे पूर्ण मानकर नहीं चलतीं, अपनी कमियों को सहज रूप से अस्वीकारती चलती हैं। इस पूर्वाग्रह रहित प्रेम व कमियों की सहज स्वीकारोक्ति का पति पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ता है कि उसकी दृष्टि में पत्नी का स्थान बहुत उच्च हो जाता है और जब तक परस्पर यह उच्च भाव रहता है दाम्पत्य की वाटिका महकती ही रहती है।

दो भिन्न-भिन्न रुचियों व स्वभावों के व्यक्ति एक साथ रहते हैं तो किसी न किसी बात पर, किसी न किसी को शिकायत रह सकती है। शिकायत करनी भी चाहिए किन्तु अवसर देखकर। जिन्हें अपने दाम्पत्य सुख को ग्रहण नहीं लगाना है, उन्हें बिना उपयुक्त अवसर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

देखे शिकायत नहीं करनी चाहिए। पति को सबेरे आफिस जाते समय बताया गया था कि अमुक वस्तु लौटते समय बाजार से लेते आयें। किन्तु वे भूल गये। थके हारे आते ही पत्नी ने उसके लिये पूछा तो उनकी दृष्टि में पत्नी का मूल्य कम हो जायगा और यह भाव आ जायगा कि उसे उनका ख्याल नहीं रहता।

शिकायत की स्थिति में पति से ही कहना ठीक रहता है। दूसरों को कहने में कोई लाभ नहीं मिलने वाला और यह बात तो दोनों को गाँठ बाँधकर रखनी चाहिए कि अपने साथी की बुराई या शिकायत किसी दूसरे से हर्गिज नहीं करें। पुरुषों में प्राय: ऐसी आदत कम ही होती हैं। महिलाएँ पारस्परिक वार्तालाप में अपने पतियों की शिकायत किया करती हैं जो घूम फिर कर पति तक पहुँच जाती है और दाम्पत्य सम्बन्धों के लिये विष का काम करती हैं।

आजकल जीवन बड़ा विषम व जटिल होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में उपार्जन के क्षेत्र में संघर्ष व जटिलता बहुत बढ़ गयी है। ऐसी स्थिति में पति यदि अपनी बाहरी कटुता को परिवार के वातावरण धो देना चाहे तो यह अस्वाभाविक नहीं किन्तु यदि परिवार में उन्हें वह वातावरण नहीं मिले तो उसकी प्रतिक्रिया मन पर हुए बिना नहीं रहती। अत: घर में उल्लास, हर्ष और प्रसन्नता का वातावरण रखने का पूरा-पूरा प्रयास समझदार गृहणियाँ करती हैं।

जिस प्रकार दुकान, व्यापार, व्यवसाय या नौकरी का काम करते हुए भी पति समय-समय पर घर-गृहस्थी के कामों में पत्नी का हाथ बँटा दिया करता है, जिससे पत्नी को यह लगता है कि इन्हें मेरा कितना ध्यान है। उसी प्रकार पत्नी भी ऐसे समाज में जब व्यापार या नौकरी में कोई समस्या उत्पन्न हो जाय तो उनका सहयोग करती है, हिम्मत बँधाती है, राय देती है तो उससे दाम्पत्य में प्रगाढ़ता आती है।

पति यदि लड़ाई-झगड़ा करते हैं या खिंचे-खिंचे रहते हैं तो उनसे लड़ने की अपेक्षा उस कारण को खोजना ठीक रहता है, जिससे कि घर में कलह का वातावरण उत्पन्न हो जाता है। कोई व्यक्ति स्वभाव से झगड़ालू नहीं होता, कुछ कारण या परिस्थितियाँ उसे ऐसा करने पर विवश करते हैं। यदि उन कारणों को खोजे बिना ईंट का जबाव पत्थर से देने वाली रीति-नीति अपनायी जाय तो दाम्पत्य सम्बन्धों में कटुता आते देर नहीं लगती। धैर्य व सहनशीलता के साथ उन गुत्थियों को सुलझाने में ही हित है जो कलह का वातावरण उत्पन्न करती हैं।

प्राय: बच्चे-बच्ची हो जाने पर महिलाएँ पति की तरफ से उदासीन हो जाती हैं। जबकि होना यह चाहिए कि बच्चों को स्नेह देते हुए भी दाम्पत्य सरसता में कोई कमी नहीं आनी चाहिए। कम से कम आध घण्टे का समय परिवार के व्यस्त कार्यक्रमों में से ऐसा भी निकालना चाहिए, जो उनका और उनके पति का अपना हो। उसमें परिवार के किसी अन्य सदस्य का कोई साझा नहीं हो। पत्नी का पूरी तरह गृहस्थिन या बाल-बच्चेदार हो जाना पति सहज स्वीकारते हुए भी कहीं-कहीं बुझ सा जाता है। अपने आपको उपेक्षित समझने लगता है जो दाम्पत्य की सफलता में बाधा बन जाता है।

दाम्पत्य जीवन में रुचि, एकता का होना उतना आवश्यक नहीं है जितना एक दूसरे को समझना आवश्यक है। यह समझ जितनी गहरी होती जाती है दाम्पत्य की चूनर भी उतनी ही सजीव रंगों से भर उठती है। एक दूसरे को समझने की पहल पत्नी की ओर से हो तो यह और भी अच्छा रहता है। क्योंकि यह तो स्वत: सिद्ध बात है कि जब पत्नी पति को समझकर उसके अनुरूप आचरण करेगी तो यह असम्भव है कि पति भी उसी पद्धति को नहीं अपनाए।

गलतियाँ सभी से होती हैं पति से भी हो सकती हैं और पत्नी से भी। गलती का होना जितना स्वाभाविक है उसे स्वीकार लेना उतना ही सुन्दर है। जो महिलाएँ अपनी भूल को स्वीकारना अपनी हेठी समझती हैं, वे अपने दाम्पत्य सम्बन्धों पर अपने ही हाथों कुल्हाड़ी मारती हैं। भूल स्वीकार लेने पर उसकी वह भूल नहीं रहती पर उसी पर अड़े रहने से वह शूल बन जाती है।

प्रेम की शक्ति अपार होती है। जो पत्नियाँ सच्चे अर्थों में अपने पति को प्रेम करती हैं वे देर-सबेर अपने दाम्पत्य स्वर्ग का सृजन कर ही लेती हैं।

लोकमान्य तिलक तथा उनकी धर्म-पत्नी

महाराष्ट्र प्रान्त के दापोली ग्राम में बाल गंगाधर तिलक सन् १८७१ में दूल्हा बनकर गये। उस समय उनकी उम्र बहुत कम थी फिर गीता-रामायण के अध्ययन ने उच्च आदर्शों तथा निस्पृह, अनासक्त और निर्लोभ जीवन के सिद्धान्तों में गहन आस्था दी थी। दूल्हे से विवाह की रस्में पूरी होने के दौरान पूछा गया—'दहेज में तुम्हें क्या चाहिए'

आसपास बैठे मित्रों तथा रिश्तेदारों के हृदय में एक आतुरता जागी। बाल गंगाधर इस समय किसकी बात मानकर दहेज माँगने वाले हैं। सभी ने अपने-अपने परामर्श से तिलक को दहेज में पसन्द की रकम माँगने के लिए समझाया था। लेकिन सब कुछ आशा के विपरीत हुआ। तिलक ने अपनी संक्षिप्त सी माँग रखी—'पढ़ने योग्य अच्छी-अच्छी पुस्तकें, जितनी आप दे सकें।'

ससुराल वालों ने उनकी यह माँग पूरी की हो या नहीं की हो परन्तु आश्चर्य तो उन्हें भी कम नहीं हुआ और जब घर में सिंगार कर रही वधू ने यह सुना कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूल्हा दहेज में किताबें माँग रहा है तो उसकी भी हँसी छूट गयी।

लोकमान्य तिलक का विवाह तत्कालीन परम्परा के अनुसार बहुत छोटी उम्र में हो गया था। विवाह के समय उनकी पत्नी सत्यभामा मात्र दस वर्ष की अबोध बालिका थी। महात्मा गाँधी की तरह तिलक को भी आजीवन इस मूढ़ सामाजिक कुरीति का शिकार होने का खेद बना रहा। सत्यभामा से तिलक ६-७ वर्ष ही बड़े थे और उनके लिए विवाह का महत्व गुड़ियाओं के खेल से अधिक महत्व नहीं रखता था। ऐसी स्थिति में हँसी छूट भी गयी तो कोई आश्चर्य नहीं करना चाहिए। उनके आगे का जिम्मेदार गृहिणी स्वरूप भारतीय नारी की उज्ज्वल परम्परा और जीवनसंगिनी के आदर्शों का ही प्रतीक है।

विवाह के बाद भी लोकमान्य तिलक की शिक्षा जारी रही। १८७२ में उनके पिता का देहान्त हो गया। उस वर्ष उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की थी। माता तो उन्हें बहुत छोटा छोड़कर ही मर गयी थी। तिलक की शिक्षा-दीक्षा और पालन-पोषण उनके चाचा की देखरेख में होने लगा। पिता की वसीयत के अनुसार उन्हें जो धन मिला था, उसी के आधार पर वे पूना के डेम्कन कालेज में भर्ती हुए।

बढ़ती वय के साथ-साथ लोकमान्य तिलक और उनकी धर्म पत्नी सत्यभामा विवाह के अर्थ को भी समझने लगे। पति-पत्नी एक दूसरे के सहयोग से अपना विकास और दूसरे की सेवा करने के लिए ही बनते हैं। तिलक हालांकि कुछ समझदार थे। उन्होंने देखा कि सत्यभामा एकदम निरक्षर है और वे पढ़ते जा रहे हैं। शिक्षा का स्तर भले ही बराबर न हो परन्तु वह खाई इतनी बड़ी तो नहीं होना चाहिए कि जोड़ा ही असंगत लगे। तिलक ने अपनी पत्नी को चचेरे भाई-बहनों की सहायता से पढ़ने की प्रेरणा दी। बात सत्यभामा की भी समझ में आ गयी और वे अपने चचिया ससुर के पुत्र पुत्रियों के साथ अक्षर अभ्यास करने लगीं अपने पति की सेवा के सर्वथा योग्य बनना है, कन्धे से कन्धा मिलाकर उनके साथ समाज में चलना है—इन प्रेरणाओं ने सत्यभामा में एक लगन जाग्रत कर दी। आदर्श भावनाओं से प्रेरित लगन और निष्ठा स्वाभाविक ही श्रमशीलता को जन्म देती है। सत्यभामा देवी इन गुणों के बल पर शीघ्र ही परिश्रमपूर्वक लिखना-पढ़ना सीख गयीं।

महाविद्यालयीन शिक्षा काल में लोकमान्य तिलक का सम्पर्क प्रसिद्ध सुधारवादी चिंतक श्री आगरकर से हुआ। उनके विचारों से प्रभावित होकर तिलक ने राजनीतिक सुधारों द्वारा स्वराज्य की प्राप्ति अपना लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वे लेखनी और वाणी द्वारा प्रचार कार्य में जुट गये। अध्ययन और सेवा कार्य में लगे रहने के कारण उन्हें अपनी पत्नी तथा अन्य परिजनों के पास बैठकर बात करने का समय भी नहीं मिलता। कभी-कभी सत्यभामा इस परिवर्तन से खिन्न हो उठती। एक बार तो उन्होंने तिलक के सामने अपना असन्तोष भी व्यक्त किया। तिलक ने तुरन्त अपनी पत्नी को समझाया—''पगली मैं तुमसे नाराज थोड़े ही हूँ। समाज को सुखी बनाने के लिए स्वराज्य हमारा प्रथम प्राप्तव्य है और उसके लिए प्रयत्नशील रहने के कारण मैं समय नहीं निकाल पाता तो इसका मतलब यह थोड़े ही है कि मैं तुमसे नाराज हूँ।''

स्वराज्य और समाज सेवा जैसे शब्दों का स्पष्ट अर्थ सत्यभामा की समझ में तो नहीं आया। परन्तु आत्म-सन्तोष के लिए पति का इतना कहना मात्र ही पर्याप्त रहा कि मैं तुमसे नाराज नहीं हूँ। पति पर इतना सहज विश्वास और जीवन साथी के प्रति दृढ़ निष्ठा ने यह सोचने को विवश किया कि पति जिस काम में इतने व्यस्त रहते हों, उसमें स्वयं भी सहयोग देना चाहिए। सत्यभामा ने बड़े भोलेपन से—'आपके समाज सेवा कार्य में मुझे भी सहयोग देना चाहिए न'—उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही उन्होंने पूछ लिया—'मैं किस प्रकार आपका हाथ बँटा सकती हूँ।'

तिलक ने विस्तारपूर्वक अपने विचारों को सुबोध भाषा में समझाया और कहा कि—''तुम्हें सभी परिस्थितियों में प्रसन्न रहने तथा धैर्य धारण करने की आदत डालनी चाहिए। तभी तुम मेरी सहायक सिद्ध हो सकोगी।''

सत्यभामा ने इस सत्य को पकड़ लिया और अपने जीवन में पूरी तरह उतार लिया। सन् १८७९ में तिलक ने एल. एल. बी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके चाचा को इससे बड़ी प्रसन्नता हुई। इस खुशी में वे अपने भतीजे की बहू के लिए एक कीमती साड़ी लाये। देखकर तिलक ने कहा—इतनी कीमती साड़ी पहनना इस दरिद्र देश की स्त्री—कम से कम सत्यभामा को तो पहनना शोभा नहीं देता। चाचाजी ने तिलक की उपेक्षा करते हुए कहा—तुम तो हमेशा पागलों की तरह बड़बड़ाते रहते हो। पहनना तो बहू को है तुम्हें थोड़े ही।'

यह कहते हुए चाचाजी ने सत्यभामा की ओर साड़ी बढ़ा दी परन्तु उन्होंने साड़ी पहनने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। जोर देने पर तिलक के विचारों को ही उन्होंने अपनी भाषा में दोहरा दिया। चाचा ने अफसोस करते हुए तिलक से कहा—अब तो तुम मुंसिफ बनोगे। राज दरबार में तुम्हारी बड़ी इज्जत होगी। सत्यभामा भी तुम्हारे साथ उस सम्मान की अधिकारिणी होगी। क्या तुम नहीं चाहते कि वह इस सम्मान की भागीदार बने।

चाचाजी ने यह कहकर सत्यभामा की ओर देखा। वहाँ कोई प्रतिक्रिया नहीं थी। आँखों में थी सफलता की एक चमक—जो उन्होंने अपने पति के सिद्धान्तों की अभ्यस्त बनकर प्राप्त की थी और आज उस सफलता का प्रमाण सिद्ध कर दिया था।

उत्तर सुनने की आशा से चाचा ने तिलक की ओर देखा। वे समझ रहे थे कि बहू को शायद बाल गंगाधर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने कीमती साड़ी पहनने के लिए मना कर दिया है। तिलक ने कहा—'सरकार की नौकरी कर जी हुजूरों की संख्या बढ़ाने के लिए मैंने उच्च शिक्षा प्राप्त नहीं की है। बल्कि मैं तो अपनी शिक्षा का उपयोग देशवासियों में स्वातन्त्र्य भावना और राष्ट्रीय चेतना जाग्रत करने के लिए करूँगा।''

''फिर भी जीवनयापन के लिए तो कुछ करना पड़ेगा। यह तो जाहिर है कि तुम्हें बैठे-ठाले जिन्दगी भर कोई नहीं खिलायेंगे।''

''मैंने शिक्षक बनने का निश्चय किया है। यह कार्य मेरे उद्देश्य पूर्ति में भी सहायक सिद्ध होगा। ऐसी स्थिति में धन और मान की अभिलाषा करना व्यर्थ है।''—तिलक ने दृढ़ निश्चय के साथ कहा। चाचा ने उनका बड़ा विरोध किया परन्तु उन्हे अपने निश्चय से हटाया न जा सका।

१८८० में संस्थापित राष्ट्रीय संस्थान 'न्यू इंग्लिश स्कूल' में तिलक ने अध्यापन कार्य आरम्भ किया। वेतन के रूप में जो कुछ मिलता था। उससे अति साधारण स्तर का ही निर्वाह हो सकता था। तिलक अपनी पत्नी सहित शनीवार पेठ में मकान लेकर रहने लगे। जो कुछ मिलता उसमें से भी बहुत कुछ बचाकर तिलक जन-जागरण के कार्यों में लगा देते। परिणामस्वरूप इस नयी गृहस्थी को कई तंगियों और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। परन्तु सत्यभामा ने अपने चेहरे पर शिकन तक नहीं आने दी। धीरे-धीरे वे गृह-व्यवस्था का उत्तरदायित्व भी अपने कन्धों पर लेने लगीं ताकि पति को देश सेवा का अधिक से अधिक समय मिल सके। तिलक के एक जीवनी लेखक ने इस समय का वर्णन करते हुए लिखा—सत्यभामा अब अपने पति के विचारों तथा निस्वार्थ देशभक्ति की भावनाओं को भली भाँति समझने लगी थी। उन्हें स्वयं के जीवन में भी चरितार्थ कर वे सच्ची सहधर्मिणी बनने का प्रयास कर रही थीं।

सन् १८८१ में तिलक ने साप्ताहिक केसरी का प्रकाशन आरम्भ किया। आरम्भ में यह पत्र साझेदारी में शुरू हुआ था परन्तु कुछ ही समय बाद उन्होंने पत्र का पूरा उत्तरदायित्व सम्हाल लिया। इस पत्र की प्रगति के साथ ही साथ तिलक का राष्ट्रीय तथा सामाजिक जीवन भी व्यापक होता गया। वे और अधिक व्यस्त रहने लगे। घर की समस्याओं तथा आवश्यकताओं की ओर उन्हें ध्यान देने का समय बिल्कुल भी नहीं रहने लगा। ऐसी परिस्थितियों में सत्यभामा बाई ने उनके सभी गार्हस्थ उत्तरदायित्वों का बोझ स्वयं हस्तान्तरित कर लिया। बाद में तिलक तो घर की ओर से पूर्णतया निश्चिंत होकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे थे। इस समय सुविधा का अधिकांश श्रेय सत्यभामा बाई को ही दिया जाना चाहिए।

प्रत्येक अवसर पर सत्यभामा देवी कर्तव्यनिष्ठ, समझदार और अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक बनकर आगे आयीं। पति के लक्ष्य और विचारों का महत्व समझकर उन्होंने स्वयं का कर्तव्य निर्धारित किया और उसे पूरा करने के लिए तत्परतापूर्वक जुट गयीं। दाम्पत्य जीवन में कर्तव्यों के प्रति यहाँ सजग दृष्टि और सहयोग का भाव दम्पत्ति के सम्बन्धों में स्वर्गीय आनन्द की सृष्टि करता है। लोकमान्य तिलक अपने व्यस्त जीवन में गृहस्थी की ओर इतना ध्यान भले ही न दे पाते हों परन्तु वे पत्नी और परिवार को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते थे। उन्हें हर समय अपने परिवार की आवश्यकताओं, कर्तव्यों तथा समस्याओं का पूरा-पूरा ध्यान रहता था। कई अवसरों पर उनका यह दृष्टिकोण उभर कर सामने आया।

स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें अनेकों बार जेल जाना पड़ा। जेल से उन्होंने कई भावना प्रधान पत्र लिखे हैं, जिनमें उनकी पत्नी के प्रति निष्ठा और प्रेम पूर्णतया व्यक्त हुए हैं। सन् १९०८ में उन्हें छह वर्ष के लिए देश निर्वासन की सजा हुई। सत्यभामा बाई उस समय मधुमेह की घातक बीमारी की शिकार थीं। सरकार ने उस समय समझौता करने के लिए कहा, शासन के दलालों ने सत्यभामा की रुग्णावस्था को ध्यान में रखकर सरकार से क्षमा याचना की सलाह दी। परन्तु लोकमान्य तिलक ने प्रेम को कभी कर्तव्य के मार्ग में बाधा नहीं बनने दिया। उन्होंने उस समय यही कहा—मेरी अणु मात्र निर्बलता भी सर्वसाधारण पर पहाड़ बनकर गिरेगी। जिससे राष्ट्र का आत्म समान कुचल जायेगा।

कौन जानता है इस निष्ठा को सुदृढ़ करने में उनकी सच्ची सहधर्मिणी सत्यभामा बाई का ही हाथ रहा था। जिन्होंने अपने स्वास्थ्य और जीवन से अधिक मूल्यवान तथा महत्वपूर्ण देश की आजादी और राष्ट्र का आत्म सम्मान बताकर समझौता न करने के लिए प्रेरित किया था।

मधुमेह का शिकार होने पर भी सत्यभामा अपने निर्वासित पति का कुशल क्षेम परमात्मा से चाहती रहीं। अपने मन को यशोधरा और उर्मिला की तरह समझा-बुझाकर ढाढस बँधाती रहीं। उस समय लोगों ने सत्यभामा के मुख मण्डल पर ऐसी सन्तोष और शान्ति की आभा देखी जो बहुत कम लोगों को ही नसीब होती है। लोकमान्य तिलक भी माण्डले जेल में निर्वासन की सजा काटते हुए अपनी पत्नी और परिवार के समाचार मँगवाते रहते। सत्यभामा को धैर्य बँधाने के लिए वे नियमित रूप से पत्र भी लिखा करते थे। सत्यभामा बाई का रोग बढ़ता रहा। डॉ. मुजे, भाऊ दीक्षित, अण्णा साहब पटवर्धन आदि चिकित्सकों ने अच्छा से अच्छा औषधोपचार किया परन्तु सत्यभामा बाई की प्राण ज्योति ७ जून, १९१२ को बुझ गयी। तिलक को अपनी सुयोग्य

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पत्नी का अभाव आजीवन खलता रहा। लोकमान्य तिलक का दाम्पत्य जीवन लोकसेवियों के लिए एक आदर्श बनकर अमर हो गया।

एक और ताजमहल

शहंशाह शाहजहाँ ने अपनी प्रियतमा के बिछोह में उसके प्रेम के स्मारक के रूप में ताजमहल का निर्माण किया था। यह पति-पत्नी के प्रेम की अमर निशानी के रूप में जगद्विख्यात हो चुका है। किन्तु नारी केवल प्रेमिका ही तो नहीं होती। वह पुरुष की जननी व विधाता भी होती है। वह शिल्पी होती है और पुरुष उसकी कृति। दोनों एक दूसरे से अभिन्न होते हैं, कलाकृति और कलाकार की तरह। नारी के इसी स्वरूप का स्मृति दर्शन कराने के लिए हिन्दी-साहित्य सेवी—'सरस्वती' के यशस्वी सम्पादकाचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी पत्नी की स्मृति में एक स्मृति मन्दिर निर्मित कराया है।

यह स्मृति मन्दिर उत्तर-प्रदेश के रायबरेली जिले के दौलतपुर ग्राम में आज भी विद्यमान है और यह नारी के उस स्वरूप का दिग्दर्शन कराता है, जो पूजनीय है—वन्दनीय है। इसके निर्माण में ताजमहल की तरह लाखों रुपये खर्च नहीं किये गये हैं वरन् यह कुछ ही हजार रुपये की लागत से बना है। किन्तु उसके साथ जुड़ी भावना उससे कई गुना परिष्कृत, पूर्ण व अभिनन्दनीय है।

द्विवेदीजी को राष्ट्र भाषा हिन्दी के उन्नायक के रूप में करोड़ों व्यक्ति जानते हैं तथा भावी पीढ़ियाँ भी उन्हें जानेंगी। किन्तु उन्हें इतना ऊँचा उठाने में —उनके निर्माण में किसका हाथ रहा है ? उस तथ्य को बहुत कम लोग जानते हैं। द्विवेदीजी को पग-पग पर सहारा देने, उन्हें हाथ थामकर सहारा दे श्रेय पथ की ओर चलाने का श्रेय निश्चय ही उनकी ममतामयी, त्यागमयी, गारिमामयी, स्वाभिमानिनी, सिद्धान्तनिष्ठ पत्नी को ही मिलेगा जिनकी स्मृति में उन्होंने यह मन्दिर निर्मित किया है।

कवि हृदय द्विवेदीजी ने इस स्मृति मन्दिर के माध्यम से अपने हृदय के उन भावों को मूर्त रूप दिया है, जिसका अभिप्राय यही है कि पत्नी के रूप में पति को एक महान शक्ति-अनूठा सम्बल प्राप्त होता है। उसका स्थूल कलेवर ब स्वरूप भले ही स्त्री शरीर रहता हो लेकिन उसके भीतर माता, भगिनी, सहयोगिनी, सखा, दर्शक व सेवा मूर्तिरूपिणी अनेकानेक सूक्ष्म सरिताएँ बहती रहती हैं। उनके द्वारा व्यक्ति व समाज के जीवन में रस का संचार होता रहता है। उन्हें यदि अपनी पत्नी का यह रस न मिला होता तो उनकी व्यक्तित्व वल्लरी सूखकर मुर्झा गयी होती।

एक सामान्य रेल्वे कर्मचारी से वे प्रगति करते हुए अफसर बन गये थे। जब वे झाँसी में नियुक्त थे तो उनका अँग्रेज अफसर स्वयं तो रात्रि को क्लब में या अपने बँगले में मजे करता और उन्हें उसका काम करना पड़ता था। वे दिन को अपना काम करते और रात को अफसर का। बात यहीं तक रहती तो भी सह लेते पर उन्हें अपने मातहत काम करने वाले कर्मचारियों को भी आफिस टाइम से दो घण्टे पहले बुलाने के लिए दबाव डाला गया तो उन्होंने अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। ऐसी स्थिति में खुशी-खुशी आठ आने नित्य में उनके लम्बे-चौड़े परिवार का खर्च चलाया।

यह उनकी पत्नी की ही प्रेरणा थी कि उन्होंने कभी प्रसिद्धि तथा धन का लोभ नहीं किया। वे स्वयं साहित्यकार नहीं कहलाये किन्तु साहित्यकारों के जनक कहलाये। उनकी लेखनी को कभी उनकी पत्नी ने वेश्यावृत्ति स्वीकार नहीं करने दी। बीस रुपये माहवार पर वे 'सरस्वती' के सम्पादक नियुक्त हुए थे। फिर भी कभी उनके सामने घर-गृहस्थी की कोई समस्या नहीं आयी।

इस स्मृति मन्दिर में उन्होंने देवी, लक्ष्मी व सरस्वती के समकक्ष अपनी पत्नी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा की है। वस्तुत: यह उनकी पत्नी की प्रतिष्ठा नहीं है वरन् समग्र नारी जाति की अभ्यर्थना है। सच ही तो कहा है किसी ने जाग्रत नारी जगत की जीवन ज्योति है। सम्पादकाचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्मित यह स्मृति मन्दिर इस सत्य के स्मारक रूप में आज भी विद्यमान है।

दाम्पत्य-जीवन को सफल बनाने वाले कुछ स्वर्ण-सूत्र

पति-पत्नी में कभी झगड़ा नहीं होना चाहिये। यह शोभनीय भी नहीं है और कल्याणकारी भी नहीं है। पति-पत्नी के झगड़े का मतलब है पूरे परिवार का नाश और उनके प्रगाढ़ प्रेम का अर्थ है, सुन्दर परिवार, सुखदायी गृहस्थ। पति-पत्नी के पारिवारिक लड़ाई-झगड़े के कुछ बाह्य और कुछ मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं। उनमें से अकर्तव्यशीलता भी एक विशेष कारण है। यदि पति-पत्नी परस्पर अपने बाह्य और मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों को सावधनीपूर्वक पूरा करते रहें, तो उन दोनों में कभी कोई लड़ाई-झगड़ा न हो।

बाह्य कर्तव्यों में पति का सबसे पहला कर्त्तव्य है कि वह पत्नी के स्वास्थ्य का अपनी ओर से पूरा ध्यान रखें। बहुत स्वार्थी पति अपनी सेवा लेने के साथ-साथ पत्नी को हर समय किसी-न-किसी काम में लगाये रखते हैं। उनका विचार रहता है कि पत्नी से जितना ज्यादा-से-ज्यादा काम लिया जा सके, लिया जाना चाहिये। वह तो काम करने और सेवा करने के लिये आई ही है। जगह पर पानी, जगह पर खाना, यहाँ तक कि कपड़े-लत्ते और किताब, कागज, स्याही, दबात एक जगह पर ही लेते हैं। किसी वस्तु अथवा किसी काम के लिए जगह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से उठना जानते ही नहीं। यहाँ तक कि कलम-पेंसिल तक उसी से बनवाते और फाउण्टेनपेन में रोशनाई तक उससे ही भरवाया करते हैं। इतना ही नहीं इन तुच्छ कामों के लिए भी उन्हें आराम करती हुई अथवा कोई और आवश्यक काम करती हुई पत्नी को उठा देने में जरा भी दया या संकोच नहीं करते। बहुत से बाबू साहबों को तो पत्नी ही कोट-पतलून और टाई-जूते पहनाती है और हर रोज जूते पर पालिश किया करती है।

रसोई और नाश्ते के सम्बन्ध में तो उसे जितना हैरान किया जा सकता है किया जाता है और यह मुसीबत छुट्टी के दिन और भी बढ़ जाती है। जरा यह बनाना, थोड़ा वह भी बना लेना, आज सुबह इसकी चाय है, शाम को उसका भोजन है, बहुत दिन से यह नहीं बना, वह चीज खाये तो कई दिन हो गये—की ऐसी रेल लग जाती है कि बेचारी पत्नी को दिन भर दम मारने और चूल्हे, अँगीठी के पास से उठने की फुरसत नहीं मिलती। आप तो कोच, कुरसी या चारपाई पर पड़ गये और मिनट-मिनट पर तरह-तरह की फरमाइशें चलाने लगे। अपनी इस नवाबी में उन्हें इस बात का जरा भी ध्यान नहीं रहता है कि उनकी इस फैल-सूफी से बेचारी पत्नी की हड्डी-हड्डी टूट जाती है।

किसी प्रकार यदि बेचारी को थोड़ा-सा आराम का अवसर मिल भी जाता है, तो फिर उनकी ऐसी गप्प और हा-हा-ही-ही चलती हैं कि उसके आराम का सारा समय पलक उठने, गिरने, जम्हाने और अलसाने में ही निकल जाता है और वह फिर थकी-थकी उठ कर दूसरे समय के काम में लग जाती है। यदि सौभाग्य ही कहिये, उनकी पत्नी कलाकार अर्थात् संगीत या वाद्य की जानकार हुई तब तो गारण्टी के साथ उसके दिन का ही नहीं रात का भी आराम का समय बहुत-सा बेकार चला जाता है। खा-पीकर आराम से पकड़ कर पति देवता को संगीत की इच्छा होती है और वह पत्नी को महफिल लगाने के लिये मजबूर कर देते हैं। जब संगीतज्ञ पत्नी से विवाह किया है तो फिर उसका लाभ क्यों न उठाया जाये ? काम के बाद ही तो वह समय मिलता है, जिसमें उनकी कला का रस लिया जा सकता है। अनके महानुभाव तो आप आराम से पड़कर यदि पैर नहीं दबवाते तो आधी-आधी रात तक उपन्यास सुना करते हैं। उनका तो कार्य दस बजे दिन से आरम्भ होता है, पत्नी का यदि चार-पाँच बजे से आरम्भ होता है तो इससे क्या वह तो अपनी जानते हैं पत्नी अपना मरे भुगते।

जब घर में ही धुल जाते हैं तो आवश्यक क्या कपड़े इस परवाह से पहने जायें कि कम-से-कम चार-पाँच दिन तक साफ रह सकें ? हर दूसरे-तीसरे दिन कपड़ों का एक ढेर उसके लिये तैयार रहता है। बच्चों के कपड़ों के साथ वह दोपहर को पति देवता के कपड़े धोती, सुखाती और लोहा करती है। इस प्रकार बहुधा पत्नियों से इतना काम लिया जाता है कि जरा आराम करने का अवसर नहीं मिलता, जिसका फल यह होता है कि उसका स्वास्थ्य खराब हो जाता है, उसका स्वभाव चिड़-चिड़ा हो जाता है और वह बात-बात पर झल्लाने, रोने लगती है। गृह-कलह आरम्भ हो जाता है।

वे बुद्धिमान गृहस्थ जिन्हें पारस्परिक प्रेम, सद्भावना और सुख-शांति वांछित है, पत्नी से उतना ही काम लें जितना उचित और आवश्यक है। जो उनके अपने काम हों वे सब स्वयं ही करें। पारिवारिक जीवन में आलस्यपूर्ण नवाबी चलाना ठीक नहीं। पत्नी के पास घर-गृहस्थी और बच्चों का पहले से ही इतना काम होता है कि उसे समय नहीं रहता। इस पर अपना काम सौंप कर काम की इतनी अति न कर दीजिये कि उसका शरीर टूट जाये। पत्नी जितनी अधिक स्वस्थ और प्रसन्न रहेगी उतनी ही मधुर और सरस होती चली जायेगी।

बहुत से स्वार्थी लोग बड़प्पन और अधिकार के अहंकार में हर वस्तु में अपना 'लॉइन्स शेयर'—(सिंह भाग) रखते हैं। वे नाश्ते और भोजन की सबसे अच्छी चीजें अधिक मात्रा में स्वयं उपभोग करते हैं। जो कुछ थोड़ा-बहुत बचता है, वह प्रसाद रूप में पत्नी को मिलता है। यही हाल बाजार से लाये फल, मिठाई आदि में भी होता है। यह बहुत ही हेय, और क्रूर स्वार्थ है। इस व्यवहार की अधिक पुनरावृत्ति होने और यह समझ लेने पर कि पति का इसमें केवल स्वार्थ ही नहीं अहंकार भावना और कमाई का अधिकार भी शामिल है, यदि पत्नी का मन उससे फिर जाता है तो ज्यादा दोष नहीं दिया जा सकता है। ऐसे स्वार्थी पशुओं से पत्नी को ही नहीं पूरे संसार को घृणा करनी चाहिये। वे इसी योग्य होते हैं।

अच्छे और भले पति हर अच्छी वस्तु को प्रेमपूर्वक अपनी प्रियतमा को ही अधिक-से-अधिक खिलाने-पिलाने में तो और सुख अनुभव करते हैं। चूँकि वे कमाई करते हैं इसलिये उन्हें अपना यह कर्त्तव्य अच्छी तरह याद रहता है कि कहीं संकोच-वश पत्नी किन्हीं वस्तुओं को जी भर कर न खाने का अभ्यास न कर ले अथवा खाने में संकोच करे। वे अपने आप अपने सामने अथवा अपने साथ बिठा कर खिलाने का ही यथासम्भव प्रयत्न करते हैं। ऐसे पतियों की पत्नी कितनी प्रसन्न और सुखदायक रहती हैं इसका अनुमान सहज नहीं।

पहनने, पहनाने में भी यह विषमता अच्छी नहीं। अनेक पति अपने लिये तो जब-तब अच्छे-से-अच्छे और नये कपड़े बनवाते रहते हैं, तब भी कमी महसूस करते रहते हैं। किन्तु पत्नी के वर्षों पहले खरीदी दो-चार साड़ियाँ उन्हें शीघ्र ही खरीदीं, जैसी मालूम होती हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जैसे सुन्दर कपड़े अपने लिये बनवाते हैं, वैसे पत्नी के लिये नहीं। ऐसे 'फैलसूफ' पति अपनी पत्नी का पूरा प्यार कभी नहीं पा सकते। उचित यह है कि कि पुरुष होने के नाते पति मोटे, सस्ते और सादे कपड़े पहने और पत्नी को अच्छे-से-अच्छे कपड़े पहनाये। वह सुन्दर है, सुकुमार है, वस्त्र उसकी शोभा है।

अपने से अच्छे कपड़े पत्नी को पहनाने वाले पति अपनी पत्नी पर बिना मंत्र के वशीकरण कर देते हैं और प्यार में बदली उसकी कृतज्ञता का आनन्द प्राप्त करते हैं। यदि अपने से अच्छे न भी पहनाये जायें तो कम-से-कम उस स्तर और उस मात्रा का तो प्रबन्ध किया ही जाना चाहिये, जो स्वयं अपने लिए करते हैं। इसी प्रकार साबुन, तेल आदि का भी प्रबन्ध पत्नी के लिए अपने से अच्छा ही करना चाहिये।

इन कतिपय पदार्थिक कर्तव्यों के साथ-साथ पति को कुछ मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों का भी निर्वाह करना चाहिये। इनमें से सबसे पहला कर्तव्य है प्रशंसा। उसके भोजन, और शृंगार की प्रशंसा कीजिये और प्रशंसा की आँखों से ही उसे देखिये। इससे उसको बड़ी पुलक और सुख की सिरहन प्राप्त होती है। उसे यह विश्वास रहता है कि पति को मैं और मेरे काम पसन्द हैं। यह पसन्दगी की भावना हर नारी की एक साध होती है। इस पर वह अपना आराम और सुख-सुविधा तक निछावर करने को तैयार रहती है।

पत्नी के सेवा करते समय कभी भी उदास, उदासीन व तटस्थ मत रहिये। उससे हँसते-मुस्कराते और एकाग्र होकर बात करने का प्रयत्न करिये। इससे उसको यह बड़ा सन्तोष रहता है कि पति उसको देखकर खिल उठता है, मेरी साधारण सी बात में भी उसे रस आता है और शीघ्र ही मुझमें खो जाता है। वह इसे नारीत्व की विजय समझती है और नारी होने का अभिमान करने लगती है, जिसको प्रेम रूप में वह आभारस्वरूप समर्पित कर देती है।

बाजार से जब भी आइये कुछ-न-कुछ उसकी पसन्द की वस्तु अवश्य लेकर आइये। स्त्रियों का स्वभाव भी कुछ बच्चों जैसा होता है, अपनी पसन्द की छोटी-सी वस्तु भी पाकर बहुत अधिक प्रसन्न हो जाती हैं। यह और इस प्रकार के अन्य बाह्य और मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों का पालन करने वाले पतियों की पत्नियाँ सदा प्रसन्न रहती हैं और किसी भी स्थिति में गृह-कलह उपस्थित नहीं कर पाती हैं।

किन्तु, नियम है कि ताली एक हाथ से कभी नहीं बजती। आदान के अभाव में प्रदान सम्भव नहीं होता। पति के साथ पत्नी को भी ऐसे कारण उपस्थित नहीं करना चाहिये, जिससे पति का उसकी ओर से मन फिरने की सम्भावना हो जाय।

सबसे पहले तो उसे पति की उचित सेवा में न तो प्रमाद करना चाहिये और न अरुचि ही। पति को जो कुछ पसन्द है, खाने की वस्तुओं में उनका समावेश करते रहना चाहिये। दिन भर के परिश्रम के बाद रुचिकर भोजन और पत्नी की आवभगत उसको पूरी तरह ताजा कर देने के लिए पर्याप्त है—पति के आने पर जो पत्नियाँ उसकी सेवा-स्वागत भूल कर अपनी गाथा लेकर बैठ जाती हैं या तत्काल बाजार का काम बतलाने लगती हैं, वे उसकी अनुकूलता कभी प्राप्त नहीं कर सकतीं।

खरीद-फरोख्त के समय पति की आवश्यकताओं को प्राथमिकता दीजिये और सदैव यह ध्यान रखना चाहिये कि उसके कपड़े ज्यादा पुराने, फटे अथवा कम नहीं होने चाहिये। खाने-पीने की वस्तुओं में प्रयत्न करिए कि पति को अधिक न सही पुरुषोचित भाग तो मिलना ही चाहिये। पौष्टिक पदार्थों के उपयोग में पति की बराबरी करने का प्रयत्न न कीजिये और न अपने ऊपर इस स्पर्धा से अधिक खर्च करिये कि जब वह इतना व्यय करते हैं तो मैं क्यों न करूँ। अपने वस्त्रों का स्तर यथा-सम्भव उतना ही रखिये जितना कि पति का हो।

पति की आर्थिक कमी अथवा कम कमाई की आलोचना तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। जहाँ तक संभव हो ऐसी व्यवस्था रखिये कि उसका आभास कम-से-कम ही हो। पति की आर्थिक आलोचना करने का अर्थ है उसका मन अपनी ओर से विमुख कर देना। बाजार अथवा बाहर जाते समय अपनी फरमाइश की सूची पेश करने और आने पर उनके लिए तलाशी लेने लगने का स्वभाव पति को रुष्ट कर देने वाला होता है। पति के प्रिय मित्रों की अनुचित आलोचना करना अथवा उनका सम्बन्ध विच्छेद कराने का प्रयत्न करना पति के एक सुन्दर सुख को छीन लेने के बराबर है। पति के मित्रों को स्वजन और शत्रु को शत्रु मानना पत्नी का प्रमुख कर्त्तव्य है। जो पत्नियाँ अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मान कर केवल अपने मित्र को मित्र और अपने विरोधी को विरोधी मानती हैं, वे अपने दोनों के बीच खाई खोदने की भूल करती हैं।

इसके अतिरिक्त संकट के समय में भी पति के पास मुस्काती हुई ही रहो। पति के सम्मुख गन्दी दशा में रहने वाली स्त्रियाँ अपने प्रति घृणा को जन्म देती हैं। अनेकों स्त्रियों का स्वभाव होता है कि पति के पीछे तो वह खूब सजी-धजी रहती हैं, बाहर-सज-धज कर निकलती हैं लेकिन घर में खासतौर से पति के सम्मुख गन्दा व पुराना कपड़ा पहन कर आती हैं। उनका ख्याल रहता है कि पति उनके पास कमी समझ कर और नई साड़ियाँ लाकर देगा। किन्तु यह प्रयत्न उल्टा है। इससे पति उसे स्वभाव से गन्दा समझ कर कपड़े लाकर देना बेकार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

समझते हैं। सदा मधुर और मृदुल बोलिये। नारियों की मीठी वाणी और अनुकूल मुस्कान का जादू पुरुष पर अधिकार जमा लेता है। यदि इस प्रकार पति-पत्नी एक दूसरे की भावनाओं का ध्यान रखते हुए अपने यह कतिपय बाह्य और मनोवैज्ञानिक कर्तव्यों का पालन करते रहें तो उनके बीच कलह-क्लेश होने की संभावना ही न रहे और दाम्पत्य-जीवन का अधिक-से-अधिक आनन्द पा सकते हैं।

दाम्पत्य-जीवन की सफलता का रहस्य

विवाह के समय वर और वधू दोनों के मन में अपने दाम्पत्य-जीवन को लेकर मीठे-मीठे सपने उठते रहते हैं और हृदय में हिलोरे लेते रहते हैं। उस समय देखे गए सपने, किये गए संकल्प और लिये गए व्रत लम्बे समय तक हृदय को गुदगुदाते रहते हैं। इन संकल्पों और सपनों को समय-समय पर दोहराया भी जाता है। पत्नी के रूप में पति को जो साथी मिलता है, उसे वह अपने सबसे अधिक निकट और सर्वाधिक घनिष्ट पाता है। पति के रूप में स्त्री को जो साथी मिलता है, उसमें वह अपनी कई अपेक्षाओं की पूर्ति का आधार खोजती है।

इस जीवन की शुरूआत में पति-पत्नी एक दूसरे से जो स्नेह, संरक्षण, सहयोग, प्रेम, मार्गदर्शन और प्रतिदान प्राप्त करते हैं, वह चिर-काल तक एक दूसरे के लिए आकर्षण का केन्द्र बना रहता है। लेकिन प्राय: वह आकर्षण शीघ्र ही चुकता जाता है और लगने लगता है कि दोनों में एक असन्तोष, एक विरक्ति की भावना बढ़ती जा रही है। पति-पत्नी आरम्भ में जिस प्यार और जिस स्नेह का रस-पान कर रहे होते हैं, वह शीघ्र ही विलीन होने लगता है तथा एक दूसरे से शिकवा-शिकायत उत्पन्न होने लगती है। काश पति-पत्नी उस अनुदान को देखें, जो उन्हें एक दूसरे से प्राप्त हो रहा है, तो यह शिकवा-शिकायत होने की परिस्थितियाँ ही पैदा न हों। लेकिन विवाह के कुछ समय बाद ही जीवन में असन्तोष और विरक्ति का जो भेद-विष घुलना आरम्भ हो जाता है, उसे देखकर यही कहना पड़ता है कि वर-वधू ने विवाह के आदर्शों को जरा भी नहीं समझा और एक दूसरे के प्रति इसीलिए आकर्षण अनुभव किया कि उन्हें शारीरिक सहचर्य की प्राप्ति का उल्लास था।

विवाह के कुछ समय बाद तक ही पति-पत्नी में एक दूसरे के प्रति आकर्षण और लगाव रहता है। जैसे ही उनका सौन्दर्य पुराना होने लगता है, परिचय नया नहीं रहने लगता। उनका जीवन रोते-झींकते-कलपते और लड़ते-झगड़ते बीतना आरम्भ हो जाता है। पति-पत्नी में सम्बन्धों में तनाव पैदा होना इसलिए अस्वाभाविक नहीं है कि मनुष्य का स्वभाव भूल करने और गलतियाँ करने का ही होता है। ये भूलें दाम्पत्य-जीवन में भी होती हैं। पर स्थिति समस्या तब बन जाती है, जब उन स्वाभाविक कमजोरियों को बात का बतंगड़ बनाने के प्रयत्न होने लगते हैं। इसके स्थान पर यदि गल्तियों और त्रुटियों को सहज मानवीय कमजोरी मानकर चला जाय तो प्रेम और आकर्षण में कमी नहीं आने पाती, क्योंकि तब गल्तियों के प्रति दृष्टिकोण दूसरा हो जाता है।

दम्पत्ति को अपने जीवन-साथी के प्रति सम्पूर्ण हृदय से प्रेम करते हुए एक दूसरे से सन्तुष्ट रहना चाहिए। कहीं कोई गलती भी होती है तो समझना चाहिए कि वह अस्वाभाविक नहीं है और इसलिए उसे अस्वाभाविक रूप से नहीं लेना चाहिए। साथी के गुण व दोषों को स्वाभाविक मानकर चला जाय, साथ ही दोषों का परिमार्जन और गुणों का अभिवर्द्धन किया जाता रहे तो उससे एक दूसरे के प्रति गहरी समझ और प्रगाढ़ एक्य की भावना उत्पन्न होकर बढ़ने लगती है, जो दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए एक आवश्यक कदम है।

एक-दूसरे के प्रति समझ-बूझ पूर्ण रवैया तथा सहनशीलता का भाव रखना भी अत्यन्त आवश्यक है। भगवान ने एक कंकड़ को भी दूसरे कंकड़ के समान नहीं बनाया तो दो व्यक्तियों की मनोभूमि और विचारधारा एक-दूसरे के समान कहाँ से बनाता ? इस विविधता में ही सृष्टि की सुन्दरता है। अत: यह समझना भी आवश्यक है कि पति-पत्नी की विचारधारायें और मनोभूमियाँ एक समान होना सम्भव नहीं है। दोनों के वैचारिक दृष्टिकोण, मान्यता और सोचने का ढंग एक जैसा हो यह संयोग कम ही देखने में आता है। यदि इस तथ्य के प्रति समझपूर्ण रवैया नहीं अपनाया गया तो पति-पत्नी दो भिन्न ध्रुव बन जाते हैं और उनके जीवन में आवश्यक तालमेल नहीं रह जाता। ऐसी स्थिति में एक पक्ष ने यदि अपनी ही बात पर अड़े रहने और दूसरे से भी उसको ही मनवाने की हठधर्मी पकड़ ली तो बात बिगड़ती चली जायगी। अपना पक्ष अवश्य रखा जाय, पर उसे ही मानने और स्वीकार करने का आग्रह उसके साथ न जोड़ा जाय। यहाँ ऐसी दृढ़ता भी नहीं बरतनी चाहिए कि हमें अपने पक्ष की कोई त्रुटि का भान हो रहा है। तो उसे स्वीकार करने से अपना बड़प्पन कम हो जायगा—यह डर भी नहीं रखना चाहिए। वरन् इस गलती को सामने लाने का श्रेय अपने साथी को देते हुए उसके सुलझेपन को महत्व देना चाहिए। यह रीति-नीति पारस्परिक समझ-बूझ को विकसित करने में बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है।

विचारों में ही नहीं, यह विभिन्नता पसन्दगी में भी रहती है। पति-पत्नी को इस बात का ध्यान रखना चाहिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि वे एक दूसरे की पसन्द पर आक्रमण न करें। उन्हें एक दूसरे की पसन्द की इज्जत करना, उसे स्वीकार करना तथा तदनुसार अपने साथी को प्रसन्न रखने के लिए तत्पर रहना चाहिए। इससे पति भी अपनी पत्नी के प्रति यह सद्भाव रखने लगता है कि वह मेरी प्रसन्नता का कितना ख्याल रखती है और पत्नी भी अपने पति से सन्तोष तथा तृप्ति का अनुभव करती है। यह सहनशीलता न केवल साथी की एक दूसरे के लिए उपयोगिता सिद्ध करती है, वरन् उनके पारस्परिक प्रेम भाव बढ़ाने का आधार भी खड़ा करती है।

परस्पर समझ तथा सहनशीलता के सद्गुणों का अभिवर्द्धन करने के साथ-साथ पति-पत्नी को अति भावुकता से बचना चाहिए। भावनायें होना अति उत्तम है। उनके स्तर और परिष्कृत स्वरूप पर ही सामान्य व्यक्ति महामानव तक बन जाते हैं। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि भावनाओं में बहकर अन्धा ही हो जाया जाय। इस तरह की आत्यन्तिक भावशीलता या अति भावुकता मनुष्य के क्रियाकलापों और प्रेम प्रवृत्ति को हवा में उड़ने वाले बादलों की तरह अस्थिर और क्षण-जीवी बना देती है। अतः इस अति से सावधान और सतर्क रहना चाहिए। पति-पत्नी आसमान में नहीं उड़ें, धरती पर ही रहें। आसमान की बातें तो सोची जा सकती हैं, सोची जानी भी चाहिए। अपने लक्ष्य और आदर्श उतने ही ऊँचे रहें, पर पाँव धरती से उखड़े नहीं, जिससे कि देखे गये स्वप्न दिवा-स्वप्न मात्र बनकर रह जायँ। भावनाओं का जो प्रबल प्रवाह पति-पत्नी के हृदय में बहता है, उस प्रबल भाव-राशि को दिशा देने के लिए धैर्य और निष्ठा के दो किनारों की आवश्यकता है। अति भावुकता उन किनारों को तोड़ डालती है।

इसी प्रकार आत्यन्तिक आसक्ति भी अति दुखदायी है। पति-पत्नी को एकता और समर्पण के सूत्र में आबद्ध करने वाला सूत्र यद्यपि आसक्ति ही है, पर आसक्ति वही परिष्कृत है, जो समय के साथ प्रौढ़, पुष्ट और कल्याणकारी बनती जाती है तथा प्रेम में परिणत होने लगती है, इसकी अति से यदि नहीं बचा जाता तो कई बार बड़े संकट उपस्थित हो जाते हैं। आसक्ति की प्रेम-परिणति के लिए आवश्यक है कि अपने सम्बन्धों को सेवा परक बनाया जाय। स्त्री की प्रवृत्ति अधिकांश में सेवा-परायण ही रहती है, इसीलिए काम-क्रीड़ा के क्षेत्र में वह पुरुष की अपेक्षा काफी पीछे और उदासीन रहती है।

कुछ समय तक अलग-अलग रहना भी प्रेम की ताजगी बनाये रखने के लिए आवश्यक है। थोड़े समय का यह विछोह पति-पत्नी को भावनात्मक दृष्टि से और भी निकट ला देता है। साथ रहते-रहते एक दूसरे की भावनाओं और उपयोगिता को समझ पाने की स्थिति प्रयास करने पर भी कम ही प्राप्त होती है, जितनी कि अलग-अलग रहने से होती है। पत्नी सोचती है कि वह होते तो ऐसा करते, अमुक कठिनाई हम तक आने ही नहीं देते। या कितना सूना हो जाता है उनके बिना ? पत्नी के साथ रहते हुए पति को उसके हर काम में कोई न कोई कमी नजर आती है, पर जब पत्नी मायके चली जाती है तो पति अनुभव करता है कि पत्नी के रहते उसे कितना आराम और कितना सुख मिलता था ? वह विछोह एक दूसरे को समझने का महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है, जिसमें कि उन्हें एक दूसरे की आवश्यकता अनुभव होती है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पति समझता है, पत्नी उसकी उपेक्षा कर रही है या पत्नी पति को अपनी उपेक्षा करता हुआ अनुभव करती है। बहुत बार तो इस तरह की भ्रान्ति ही होती है और कई बार इस अनुभव के पीछे शारीरिक अस्वस्थता या मानसिक उलझनें भी कारण बन जाती हैं। उन कारणों का पता लगाये बिना यह धारणा बना लेना गलत है कि इससे अनेक गलतफहमियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जो दाम्पत्य सम्बन्धों को रिक्त बना देती हैं। उचित यह है कि इस धारणा को बनाने से पूर्व इस तरह की स्थिति के कारणों को खोजा जाय। यदि इस ओर से उदासीनता बरती गयी तो थोड़े दिन इस प्रकार की कल्पित उपेक्षा भले ही सहन की जाती रहे, पर आगे चलकर वह भ्रान्ति दृढ़ विश्वास में बदल जाती है। पत्नियाँ भी इसी तरह की भूलें करती हैं। रोजगार-धन्धे की व्यस्तता या नौकरी की उलझनों के कारण पति को अपनी पत्नी का जरा ध्यान नहीं रहा या वह उसकी बतायी वस्तुएँ लाकर देना भूल गया या पत्नी ने कुछ पूछा और अपनी उलझनों में उलझे हुए उसने कोई जबाव दे दिया, तो पत्नी उसे अपनी उपेक्षा समझ लेती है तथा वह अपनी धारणा के वशीभूत होकर जान-बूझकर पति के प्रति रूखा रवैया अपना लेती है। उचित है कि असली कारणों को खोजा जाय और वस्तुस्थिति को समझने का प्रयास किया जाय।

पति-पत्नी को जो भावना सर्वाधिक निकट लाती है वह सम्पूर्ण समर्पण है। समर्पण का यह आदर्श वस्तुतः अपने अहं को परिष्कृत करने का नाम है। लेकिन सामान्य बातों को भी पति-पत्नी सहज रूप में लेने की अपेक्षा एक दूसरे पर की जाने वाली चोट या आक्षेप समझने की भूल कर बैठते हैं। ऐसी स्थिति में कलह का विष-वृक्ष पनपने लगता है। इसीलिए समझदार दम्पत्ति अप्रिय बातों को भी सहज रूप में लेने की समझदारी करते हैं। इस तरह के प्रसंग में साम्य-भाव अपनाना चाहिए। पति हर तरह का मजाक या आक्षेप करना जन्म-सिद्ध अधिकार समझता है, लेकिन उसे पत्नी का छोटा-सा मजाक भी सहन नहीं होता यह गलत है। कोई भी पक्ष योग्यता और अनुभव की दृष्टि से बड़ा या छोटा हो सकता है, पर इस कारण भावनात्मक असन्तुलन नहीं आना चाहिए। पति-पत्नी में यदि एक दूसरे के प्रति योग्यता या अनुभव के कारण बड़प्पन का भाव आ गया तो उसके साथ दुराग्रह को नहीं जोड़ना चाहिए, वरन्

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने साथी को मात्र साथी मानकर, उससे सहज व्यवहार अपनाना चाहिए।

दम्पत्ति को एक दूसरे की प्रशंसा द्वारा भी अपने सम्बन्धों के वातावरण में प्रफुल्लता और माधुर्य का रस घोलते रहना चाहिए। प्रशंसा की चमत्कारी शक्ति सर्वविदित है और यह एक कला भी है, इस कला का मूल सिद्धान्त यह है कि प्रशंसा करते समय कार्यों को प्रमुखता दी जाय, न कि व्यक्ति को और सुनने में भी अपने सत्कार्यों, व्यक्तित्व तथा व्यवहार को विकसित करने की कामना की जाय, न कि अहंकार का वैभव किया जाय। पत्नी ने अपनी सूझ-बूझ से कोई नुकसान होने से बचा लिया या कोई कार्य सुरुचिपूर्ण ढंग से कर दिया तो उसकी मुक्त कण्ठ से सराहना करनी चाहिए। यहाँ यह सोचना गलत है कि यह तो उसका दायित्व था—इसमें प्रशंसा करने की क्या जरूरत है ? पत्नी भी यदि अपने पति की प्रशंसा में कृपणता बरतती है तो वह अपने पति के हृदय में स्थायी स्थान बनाने में असफल रहती है।

अपने पारिवारिक जीवन को सफल और मधुरता के साथ जीने का यही रहस्य है कि विवेक-सम्मत रीति-नीति अपनायी जाय और बिना सोचे-समझे न तो कोई कदम उठाया जाय और न कोई बात की जाय। इस आदर्श का पालन करते हुए सफल दाम्पत्य-जीवन जिया जा सकता है।

गृहस्थाश्रम की सार्थकता

'धन्यो गृहस्थाश्रम' यह गृहस्थाश्रम धन्य है लेकिन ऐसी धन्यता सरलता से प्राप्त नहीं होती। यह प्रयत्न-साध्य है। कष्टसाध्य है। गृहस्थाश्रम में पति-पत्नी के शरीर सुन्दर और नीरोग होने चाहिये। इस प्रकार उनके मन भी नीरोग होने चाहिये। पति-पत्नी को एक दूसरे के साथ निष्ठापूर्वक व्यवहार करना चाहिये। जिस विवाह विधि से पति-पत्नी का सम्बन्ध स्थिर हुआ है, उस विवाह विधि के कुछ मन्त्र बड़े सुन्दर हैं। वाग निश्चय (सगाई) के समय ब्राह्मण कहता है।

विवाह सूक्तों में वधू को अघोरचक्षु व शिवा, सुमन व तेजस्वी, वीरप्रसू, श्रद्धालु आदि विशेषण लगाये गये हैं। 'अघोर चक्षु' का विशेष वर और वधू दोनों को ध्यान में रखने योग्य है एक की दूसरे पर प्रेमपूर्ण दृष्टि हो वह भयावह एवं क्रूर न हो।

विवाह का मतलब केवल बाध्य विवाह नहीं है। हृदय का विवाह, मन का विवाह, वर का वधू के गले में माला डालना मानो एक-दूसरे के हृदय पुण्य एक दूसरे को अर्पण करना है। अग्नि के चारों ओर सात कदम चलना मानो जीवनभर साथ-साथ चलना, सहयोग करना है।

विवाह के लिए लड़की के शरीर का रंग देखा जाता है। उसकी बुद्धि और हृदय के वर्ण, उसकी अन्तरात्मा के वर्ण की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। उलटे यह समझा जाता है कि स्त्रियों के आत्मा ही नहीं होती यानि एक प्रकार से उनका वर्ण नहीं होता अत: आज सारे विवाह अशास्त्रीय एवं अधार्मिक हैं। जिस विवाह में स्त्री-पुरुष के हृदय व बुद्धि का वर्ण देखा जायेगा, उसके शरीर की नीरोगिता देखी जायगी वही सच्चा शास्त्रीय विवाह होगा।

आज पंचांग से जाना जाता है कि किसी का राक्षस गण है या देवगण लेकिन किसी का राक्षसगण है या देवगण यह भी क्या पंचांग से मालूम हो सकता है। जो अपने लिए जमा करता है वह राक्षस है और जो दूसरों को देता है, वह देव है। वर्ण की पहचान तो कर्म से होती है। पंचांग से नहीं।

स्त्री-पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध प्रेम का होना चाहिए। स्त्री कोई सम्पत्ति नहीं है। उसके हृदय है, बुद्धि है, भावना है स्वाभिमान है, आत्मा है। सुख-दुख है। यह बात पुरुषों को मालूम होनी चाहिए। स्त्री संसार में महान शक्ति है। इस शक्ति के साथ व्यवहार करने वाले पुरुष को शिव बनना चाहिए। शिव और शक्ति के प्रेममय किन्तु संयममय सम्बन्ध से ही कर्मवीर कुमारों का जन्म होता है। शूरता-धीरता के सागर, विद्या आगर सुपुत्रों का जन्म होता है।

स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध में बालकों का जन्म होगा। एक बच्चे को जन्म देना मानो एक देवता की मूर्ति का निर्माण करना है। क्या हम इस देवता का ठीक तरह साज-संभाल कर सकेंगे। क्या ठीक तरह हम उसका उदर-पोषण कर सकेंगे। क्या इसके वर्ण का ठीक तरह विकास कर सकेंगे। मात-पिता को इन बातों का विचार कर ही लेना चाहिए। नहीं तो घर में बहुत से चिड़चिड़े और रोगी बच्चे दिखाई देंगे। उन्हें न शिक्षा मिलेगी, न संरक्षण। इनसे जीवन सुखमय कैसे होगा और वह समाज भी तेजस्वी कैसे होगा। उस समाज का धारण कैसे होगा।

पति-पत्नी सुख और दुख में साथ रहेंगे, साथ चढ़ेंगे, साथ गिरेंगे उनके आस-पास सूत लपेटा जाता है। अब पति-पत्नी का जीवन-पट एक साथ बुना जायेगा। अब ताना-बाना एक हो जायेगा। अब कुछ भी पृथक् नहीं है। कुछ भी अलग नहीं है।

शरीर पर प्रेम करने से सच्चा प्रेम नहीं होता। यदि कल शरीर रोग से कुरूप हो जाय। हम शरीर से प्रारम्भ करें लेकिन बनें देहातीत। देह के अन्दर की आत्मा को पहचानकर उससे भेंट करना चाहिए। मनुष्य आँगन से घर के प्रथम भाग में आता है। मध्य भाग फिर देव घर में जाता है। इस प्रकार वर-वधू को एक दूसरे के हृदय के क्षेत्र में जाना चाहिए। उन्हें यह अनुभव होना चाहिए कि केवल हमारे शरीर ही नहीं है। पूजा करने वाला पति हमारा अपमान करता है। हम कोई मिट्टी का शरीर नहीं हैं। पति-पत्नी एक-दूसरे को मिट्टी का माँस का गोला न समझें। धीरे-धीरे इस मिट्टी में जो उदारता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दीपक के काँच का महत्व अन्दर की लौ के कारण है। हमें उस ज्योति की उपासना करनी चाहिए। जब तक आत्मा की महानता समझ नहीं आती, तब तक सच्चा प्रेम नहीं है। पत्नी की आत्मा की महानता दिखाई देते ही पति उसे ज्ञान देता है। ध्येय देगा वह उसके केवल वस्त्रालंकारों द्वारा गुड़िया-जैसी सजाता नहीं रहेगा, इसी प्रकार जिस दिन पत्नी को दिव्यता दिखाई देगी उस दिन वह पति को चाहे जैसे आचरण नहीं करने देगी। चाहे जिस तरह से पैसे प्राप्त करने का काम नहीं करने देगी।

इस प्रकार गृहस्थाश्रम में पवित्रता लानी चाहिए। पति-पत्नी एक-दूसरे को सावधान करके एक-दूसरे को प्रेम और कभी क्रोध से हमेशा आगे बढ़ाते रहें। अन्त में पति-पत्नी को भाई-बहिन की तरह हो जाना चाहिए। आसक्तिमय प्रेम से अन्त अनासक्त प्रेम का निर्माण करना चाहिए। कीचड़ में कमल खिलाना चाहिए। संसार में मोक्ष की शोभा प्राप्त करनी चाहिए।

भारतीय संस्कृति में गृहस्थाश्रम मोक्ष की ओर जाने का एक मार्ग है। यह एक सीढ़ी है। यहाँ हमेशा नहीं रहना है। पति-पत्नी को यह बात न भूलनी चाहिए कि गृहस्थाश्रम में रहकर संतति पैदा करके वासना-विकार शांत करके अनेक प्रकार के पाठ सीखते-सीखते अन्त में छोटे संसार में एक दिन बड़े संसार में जाना है।

गृहस्थाश्रम भी एक आश्रम है। इसमें भी आश्रम जैसी ही पवित्रता रहनी चाहिए। यह पति पत्नी और बच्चों का आश्रम है। सबको एक-दूसरे के साथ सहयोग करना चाहिए। ध्येय की पूजा करनी चाहिए।

उन कुल-परम्पराओं के लिए यदि सर्वस्व का भी त्याग करना पड़े, तो वह करना चाहिए। हरिश्चन्द्र ने सर्वस्व त्याग कर दिया है। श्रियाल और चांगुण ने अपना लड़का अर्पण किया। परिवार मानो एक देव होता है और परिवार के सब लोग उसके लिए तैयार रहते हैं। हरिश्चन्द्र के निकलते ही तारा उसके पीछे-पीछे चल दी थी। हरिश्चन्द्र और तारा के पीछे छोटा सा रोहिताश्व भी भागता हुआ जाता था। माता-पिता उस रोतिहाश्व को मना नहीं करते थे। वे यह नहीं कहते थे कि—तू छोटा है। क्यों आता है अपनी ही शिक्षा से और अपने उदाहरण से बच्चों को ध्येय पूजा सिखानी थी।

आज इस प्रकार का गृहस्थाश्रम कहाँ है। सब एक ध्येय की पूजा नहीं करते। हाँ यदि ध्येय ही विचित्र हो तो दूसरी बात है। लेकिन जब आसक्ति और भय मार्ग में आते हैं। तो अवश्य बुरी बात है।

इसका क्या कारण है कि हमारे घरों में ज्ञान-चर्चा नहीं होती। पति जो सुनता है, वह पत्नी को नहीं कहता, राष्ट्र में जो विचार उत्पन्न हो रहे हैं, उनकी चर्चा घरों में नहीं है। पति-पत्नी का गुरु है लड़कियों का जनेउ होना बन्द हो गया है। पति ही उसका गुरू ठहराया गया, लेकिन क्या यह पति गुरु का काम करता है। क्या वह ज्ञान-दान, विचार दान करता है। क्या वह आस-पास की जानकारी पत्नी को देता है।

पत्नी ज्वार की रोटी बनाकर देती है लेकिन पति उसे विचार को कौन रोटी देता है ? पति के दिमाग में तो यह विचार ही नहीं आता कि उसकी पत्नी का भी मन है, बुद्धि है, हृदय है। इसी से वह विश्व की बातों की चर्चा घर में नहीं करता फिर बच्चों को वे बातें कैसे मालूम होंगी ? जहाँ पत्नी ही विचारों के अज्ञान में है, वहाँ बच्चे भी अज्ञान में ही बड़े होंगे।

भारतीय संस्कृति में इस प्रकार का गृहस्थाश्रम नहीं होता। बकासुर के पास जाने की बारी जिस ब्राह्मण की आई उसके घर के एक-एक व्यक्ति मरने के लिए तैयार था। पति कहता है—मुझे मरने दो। पत्नी कहती है—मुझे मरने दो। लड़की कहती है—मुझे मरने दो। लड़का कहता है—मुझे मरने दो। इसका नाम है गृहस्थाश्रम और इसी का नाम है कुटुम्ब। रानी एक विचार से प्रेरित हैं—एक ही ध्येय की पूजा होती है।

गृहस्थाश्रम संयम की पाठशाला है। गृहस्थाश्रम तपस्या है। हम अपनी सैकड़ों वृत्तियों का निरोध करने की शिक्षा गृहस्थाश्रम में प्राप्त करते ही हैं। बच्चे बीमार हो जाते हैं तो उनकी सेवा-सुश्रूषा करनी पड़ती है। बच्चों की इच्छानुसार काम करना पड़ता है। पद-पद पर गुस्सा करने से काम थोड़े ही चल सकता है।

गृहस्थाश्रम में हम त्याग का पाठ सीखते हैं। पति पत्नी को सर्वस्व अर्पण कर देना चाहता है। पत्नी, पति को सुखी बनाना चाहती है। माता-पिता फटे कपड़े पहन कर पहले बच्चों को सजाते हैं। दूसरों को सुखी दिखाना, दूसरे के आनन्द में आनन्द मनाना यही गृहस्थाश्रम की शिक्षा है।

बच्चे अच्छे बनाने के लिए ही माता-पिता को स्वयं को अच्छा बनाना पड़ता है। आचार और व्यवहार में अच्छा रहना होता है। जो माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे अच्छे हों, उन्हें अत्यन्त जागरूकता रखनी चाहिए। यदि बच्चे अपने माता-पिता को रात-दिन माता-पिता के झगड़े देखते रहें तो उनके जीवन पर कितना बुरा असर होगा। जब आलसी और विलासी माता-पिता सामने होंगे तो बच्चे भी सज-धज-प्रिय बन जायेंगे।

माता-पिता को यह देखना चाहिए कि उनके बच्चे शारीरिक दृष्टि से बलवान, हृदय से विशुद्ध और उदार, बुद्धि से विशाल और निर्मल हों। हम जिस काल में रह रहे हैं उसका हाल बच्चों को भी बताना चाहिए। भोजन करते हुए हँसते-खेलते हुए बच्चों को भी बताना चाहिये इतिहास का सारा ज्ञान।

गृहस्थाश्रम में संयम, त्याग और वासना-विकार को सीमित करने तथा प्रेम और सहयोगादि गुणों की शिक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मिलती है। हम थोड़े-थोड़े पकने लगते हैं, उच्छृंखलपन कम होता है और प्रौढ़ता आती है। हमें जीवन का बहुत-सा अनुभव प्राप्त होता है। खट्टापन नष्ट होकर जीवन की मधुरता आती है।

अब तक हमने एक सीमित परिवार-सेवा की। उस सीमित परिवार में हमने जो सेवा का गुण सीखा उसे अब समाज को देना चाहिए। अपने परिवार के बाहर आकर अब हमें समाज को ही अपना परिवार समझना चाहिए—अधिक अनासक्त होना चाहिये। अधिक व्यापक होना चाहिये। अधिक उदार होना चाहिये। हमें अपनी आत्मा का राज्य बढ़ाना चाहिये।

वानप्रस्थ का अर्थ है—वन को निकला हुआ, भवनों छोड़कर वन के लिये निकला हुआ। ये वानप्रस्थ वन में रहते हैं, वहाँ आश्रम चलाते हैं, स्कूल चलाते हैं। वानप्रस्थ के बराबर कोई उत्कृष्ट शिक्षक नहीं है। शिक्षक अनुभवी, प्रौढ़, शान्तक्रम, हँसते-खेलते शिक्षा दे देने वाला होना चाहिये और वानप्रस्थ को कुछ विशेष आवश्यकता तो रहती भी नहीं, उसे तो पेट भर भोजन मिल जाय तो बहुत है।

आज हजारों पेंशनर देश में हैं। यदि सच कहा जाय तो उनको इधर-उधर स्कूल खोलने चाहिये। यदि ऐसा हुआ तो दस वर्ष में शिक्षा सर्वत्र पहुँच जायेगी। लेकिन भारतीय संस्कृति के गुण गाते हुए—शान्त स्थान में बँगला बनाकर वे अपने नाती-पोतों को खिलाते रहते हैं। उन्हें तो सबके नाती-पोतों को खिलाना चाहिये। उनके लिए सुन्दर आश्रम की स्थापना करनी चाहिये। सच्चे अर्थ में आज समाज में कोई भी वानप्रस्थ नहीं है। वानप्रस्थ वही है जो परिवार की मर्यादिक आसक्ति छोड़कर समाज की सेवा करने लगे।

लोकेषणा की हेय लालसा

काम वासना की शारीरिक और मानसिक अमर्यादित प्रक्रियाएँ व्यभिचार को जन्म देती हैं और उससे स्वास्थ्य, सद्भाव एवं दाम्पत्य जीवन की निष्ठा पर भारी आघात पहुँचता है। सन्तान का सद्गुणी होना बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि पति-पत्नी में हार्दिक प्रेम रहे। जिस दाम्पत्य जीवन में अविश्वास, संदेह, दुर्भाव एवं मनोमालिन्य बल रहेगा वहाँ सुसन्तति का जन्म कदापि सम्भव न होगा। चरित्र पर सन्देह होना, पति-पत्नी के प्रेम एवं विश्वास में आग लगाने वाला पलीता है। 'एक नारी ब्रह्मचारी' वाली कहावत में बहुत कुछ तथ्य है। नारी के लिए पतिव्रत की जो महत्ता है वही नर के लिए पत्नी व्रत की। रामायण में पतिव्रता के लिए यह धर्म बताया है कि वह "अन्ध, बधिर, क्रोधी, अति दीना" जैसा पति मिलने पर भी सन्तुष्ट रहे और उसे ही ईश्वर की प्रतिमूर्ति समझ कर सेवा करे। ठीक यही बात पति के लिए लागू होती है। संयोगवश जैसी भी कुछ काली, कानी, लँगड़ी, अन्धी, दुर्गुणी, फूहड़, कर्कश, मूर्ख, रोगी, अपंग नारी मिल गई है उसे गृह-लक्ष्मी, देवी की प्रतिमूर्ति समझ कर प्रेमपूर्वक निबाहे और अपनी इसी छोटी दुनिया से सन्तुष्ट रह कर कुमार्ग पर मन न दौड़ावे।

सुसन्तति के अभाव में पारिवारिक जीवन नष्ट होते चले जा रहे हैं और हर पीढ़ी अपनी पूर्व पीढ़ी की अपेक्षा अधिक दुर्गुणी एवं कुसंस्कारी बनती चली जा रही है। यह असुरता के विकाश का क्रम यदि इसी प्रकार चलता रहा तो हमारी सभ्यता और संस्कृति नष्ट होती ही चली जायगी और सभ्य समाज की रचना के स्वप्न अधूरे ही पड़े रहेंगे। इसलिए हमें यौन सदाचार के लिए प्रबल प्रयत्न करना चाहिए और इसकी जड़ 'मानसिक असंयम' को दूर करना चाहिए। दृष्टिकोण में से वासना को हटाना और अपने दाम्पत्य जीवन को ईश्वरीय आज्ञा मानकर सन्तुष्ट रहना, जहाँ धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से आवश्यक है, वहाँ समाज रचना की दृष्टि से भी अनिवार्य है। हम व्यभिचार बुद्धि का परित्याग करके जब बहिन-भाई के, पिता-पुत्री के पवित्र सम्बन्धों में सन्तोष एवं आनन्द का अनुभव करेंगे, तभी यह आशा की जा सकेगी कि हमारा समाज सभ्य बने और जिस स्वर्गीय वातावरण को इस धरती पर अवतरित देखना चाहते हैं वह आकांक्षा पूर्ण हो।

लोकेषणा की प्रवंचना—वित्तेषणा, पुत्रेषणा के अतिरिक्त तीसरी ऐषणा है 'लोकेषणा'। वाहवाही लूटने की, दूसरों के मुँह अपनी प्रशंसा सुनने की, मानसिक दुर्बलता को लोकेषणा कहते हैं। यों उचित मर्यादा में यह वृत्ति भी उचित धन उपार्जन और संयमी दाम्पत्य जीवन की तरह उपयोगी होती है, इस आधार पर मनुष्य सत्कर्म करता और अपने चरित्र को ऊँचा रखता है। बुराइयों से बचता और निन्दा से डरता हुआ मर्यादा के अन्दर रहना सीखता है। इस दृष्टि से यश-कामना को उत्तम माना गया है। पर यह उत्तमता तभी तक स्थिर रहती है, जब मनुष्य ईमानदारी से धन कमाने की तरह अपने उत्कृष्ट आचरण एवं श्रेष्ठ सत्कर्मों द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यदि अमीरी का रौब गाँठ कर फिजूलखर्ची के द्वारा अपना बड़प्पन सिद्ध करके प्रशंसा प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा है तो वह लोकेषणा निन्दनीय भी है और अहितकर भी।

कीमती कपड़े और जेवर—आज शेखीखोरी, बनावट, ढोंग, फैशनपरस्ती और बड़प्पन दिखाने की बहुत होड़ चल रही है। इन बातों में लोग अपनी हैसियत से बहुत अधिक खर्च करते हैं। ठाठ-बाठ बनाने में अपनी गाढ़ी कमाई का अधिकांश भाग फूँक देते हैं। कीमती कपड़े पहनने की कोई उपयोगिता समझ में नहीं आती। शरीर ढकने के लिए सीधे-साधे कपड़े पर्याप्त हैं, पर जब उनमें प्रचुर धन खर्च करके कीमती सूट और महँगी साड़ी पहन कर लोग बाजार में निकलते हैं तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनका उद्देश्य देखने वालों पर यह रौब गाँठना होता है कि हम बहुत बड़े अमीर हैं। इसी प्रकार जेबर लादे फिरने का फूहड़पन भी इसी ओछी बुद्धि का परिचायक है कि लोग हमें धनी समझें। धनी होने का प्रमाण-पत्र गले में लटकाये फिरने, हाथ-पैरों में बाँधे फिरने का फितूर ही जेबर पहनने की भोंड़ी शक्ल बनाये फिरता है। जो धन बैंक में जमा होकर या किसी कारोबार में लग कर दिन-दिन बढ़ता रह सकता था और कितने ही लोगों के लिए रोजी-रोटी उत्पन्न करने वाला बन सकता था। उसे जेबरों में रोक कर पंगु बना देना वस्तुतः लक्ष्मीजी का अपमान है।

पैसे की उपयोगिता तभी है जब वह घूमता रहे। यदि उसे जमीन में गाढ़ दिया जाय या जेबर जैसे दिन-दिन घटने वाले, ईर्ष्या उत्पन्न करने वाले, अहंकार बढ़ाने वाले और चोर-उचक्कों का मन ललचाने वाले व्यर्थ कामों में लगा दिया जाय तो उसकी फिर क्या उपयोगिता रह जाती है ? यह तो लक्ष्मी देवी के हाथ-पैर तोड़कर उसे लुंज-पुंज बना देने जैसा अनुपयुक्त कार्य हुआ ? कीमती पोशाक न पहन कर यदि हम सादे कपड़े पहनें तो यह हमारी सज्जनता और बुद्धिमत्ता का चिन्ह होगा। इस विभाग में बचा हुआ पैसा हम अपने और दूसरों के आवश्यक कार्यों में लगा कर अपनी दूरदर्शिता और भलमनसाहत का परिचय दे सकते हैं।

अहंता की पूर्ति के लिए—विवाह-शादियों में लोग अन्धे होकर पैसे की होली जलाते हैं। उनका प्रयोजन शायद यही रहता होगा कि उत्सव में शामिल होने वाले अथवा दर्शक लोग इन पैसे की होली फूँकने वालों को अमीर समझ कर उनकी प्रशंसा करें। मृत्यु भोज या अन्य बड़ी-बड़ी दावतों के मूल में भी वाहवाही लूटने की मनोवृत्ति छिपी रहती है। दूसरों की तुलना में अपने को अधिक अमीर सावित करके अधिक वाहवाही लूटने के लिए अपना घर खाली कर डालते हैं, कर्जदार बन जाते हैं और कई बार तो मतवाले होकर इतना खर्च कर बैठते हैं कि पीछे उन्हें अपने आवश्यक कार्यों को ठीक तरह चलाने में भी कठिनाई अनुभव होने लगती है। मोटर, घोड़ा, गाड़ी, कोठी, बँगले, नौकर-चाकर आदि का भारी सरंजाम आवश्यकता की पूर्ति के लिए नहीं, ठाठ-बाठ दिखाने और अमीरी प्रदर्शित करने के लिए जुटाया जाता है। बड़े आदमी बनने के शौक में जितनी फिजूलखर्ची इन कामों में की जाती है, उससे कहीं कम में काम चल सकता था।

अमीरी प्रशंसनीय नहीं—किसी जमाने में अमीरी बड़प्पन का चिन्ह रही होगी, पर अब जैसे-जैसे विचारशीलता बढ़ रही है अमीरी को घृणा और ईर्ष्या, द्वेष की दृष्टि से देखा जाने लगा है। सर्वसाधारण की गरीबी और परेशानी को घटाने में अपनी कमाई को खर्च न करके जो लोग उसका संग्रह करते चले जा रहे हैं, अपने ऊपर अन्धाधुन्ध खर्च कर रहे हैं और वाहवाही लूटने के लिए उसे फूहड़पन के साथ उलीचते हैं, उन्हें स्वार्थी, निष्ठुर एवं मदान्ध ही कहा जा सकता है। बड़प्पन पाने की आशा से जो लोग यह उद्धतपन करते हों। उन्हें यह बात गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि उनका यह छिछोरपन प्रशंसा का नहीं निन्दा का कारण बनता चला जा रहा है और वह समय दूर नहीं जब इस प्रकार की मूर्खता अवांछनीय मानी जाने लगेगी। लोग उनसे घृणा करके ही चुप न हो जायेंगे वरन् ऐसे उद्धत प्रदर्शनों का विरोध करेंगे और रोकेंगे।

सार्वजनिक जीवन का सत्यानाश—सार्वजनिक संस्थाओं का सत्यानाश इसी प्रवृत्ति ने किया है। पदाधिकारी बनने की हैसियत में प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण जन संगठन ईर्ष्या और कलह के अखाड़े बने हुए हैं। हर कोई बड़प्पन और पदवी चाहता है, जिसे मिल जाती है वह फिर उसे सदा के लिए छाती से चिपकाये बैठा रहना चाहता है। जिसे नहीं मिलती, वह सत्ता प्राप्त को पदच्युत करने के लिए ही नहीं उस संस्था की प्रगति को ही नष्ट करने पर तुल जाता है। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी संस्थायें इस बीमारी की शिकार हो रही हैं और इसी पारस्परिक कलह में अपनी उपयोगिता एवं शक्ति गँवाती चली जा रही हैं। व्यक्तियों का पतन भी इसी कुचक्र में हो रहा है। एक व्यक्ति स्वयं सत्ता हथियाने और अपने प्रतिद्वन्द्वी को गिराने के लिए जितने हथकंडे प्रयोग करता है, जितने कुचक्र और षड्यन्त्र बनाने में अपनी शक्ति खर्च करता है। उतनी ही यदि वह सच्चे मन से सच्ची सेवा करने में लगा दे तो लोक-परलोक भी सुधरे, आत्मा को शान्ति भी मिले और जनता-जनार्दन की कुछ ठोस सेवा भी बन पड़े।

बड़े बनने के ओछे उपाय—प्रशंसा का उद्देश्य लेकर थोड़ा-सा सेवा कार्य कर देने वाले, लम्बे-चौड़े लेक्चर झाड़ने वाले, बढ़-चढ़कर बातें बनाने वाले लोग अपने हथकंडों से बड़प्पन लूटने में सफल हो जाते हैं। यह सामाजिक जीवन के लिए एक खतरा है। राजनैतिक चुनावों में अयोग्य और अनुपयुक्त व्यक्ति भी केवल बड़प्पन प्राप्त करने के लिए उम्मीदवार खड़े हो जाते हैं और अन्धाधुन्ध धन व्यय कर देते हैं।

थोड़ा-सा दान देकर अपने नाम का पत्थर लगवाने की या नामवरी छपवाने की प्रवृत्ति निम्न कोटि की है। इसमें दान या सेवा का नहीं प्रशंसा प्राप्त करने का अहंकार ही प्रधान है। अहंता को पाप माना गया है। पाप ही नहीं उसे पाप का मूल भी कहा गया है। ''पाप मूल अभिमान'' की उक्ति प्रसिद्ध है। यह पाप जहाँ भी रहेगा वहाँ सेवा क्या बन पड़ेगी ? सत्कर्म कहाँ सम्भव होगा ? नाम के भूखे पागल लोग, जहाँ नाम नहीं मिलता वहाँ से खिसकने लगते हैं और वहाँ जोड़-तोड़ भिड़ाते हैं, जहाँ किसी प्रकार उन्हें नामवरी प्राप्त हो। एक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संस्था छोड़कर दूसरी में, दूसरी को छोड़कर तीसरी में घुसते फिरने वाले लोग आमतौर से इसी मर्ज के मरीज होते हैं। सैद्धान्तिक मतभेद के कारण तो कोई बिरले ही इस प्रकार का परिवर्तन करते हैं। हमारा सार्वजनिक जीवन इस लोकेषणा की दुष्प्रवृत्ति के कारण कितना गन्दा और मलीन होता चला जा रहा है यह देखकर भारी दुःख होता है।

स्वराज्य में विश्वास करने वाले राजनैतिक विचार के लोग जब स्वतन्त्रता संग्राम में जुट पड़े तो उस संघबद्ध प्रयत्न ने एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया। निस्वार्थता एवं संगठन का परिणाम सदा ही चमत्कारिक होता है। धार्मिक जगत में त्यागी समझे जाने वाले लोग यदि अपनी लोकेषणा को त्याग कर सके होते तो भारत की धर्म प्रधान जनता को चारित्र्य दृष्टि से कहीं अधिक समुन्नत कर सकना बहुत ही सरल हो गया होता। धन और वासना का प्रलोभन छूट सकता है पर लोकेषणा तो सबसे प्रबल है, उसका लोभ त्यागी कहे जाने वाले लोगों से भी नहीं त्यागा जाता।

मूक सेवा की महत्ता—हमें मूक सेवा को महत्व देना चाहिए। नींव के अज्ञात पत्थरों की छाती पर ही विशाल इमारतें तैयार होती हैं। इतिहास के पन्नों पर लाखों परमार्थियों में से किसी एक का नाम संयोगवश आ पाता है। यदि सभी सज्जनों का नाम छापा जाने लगे तो दुनिया का सारा कागज इसी काम में समाप्त हो जायगा। यह सोचकर हमें प्रशंसा की ओर से उदास ही नहीं रहना चाहिए वरन् उसको तिलाजंलि भी देनी चाहिए। नामवरी के लिए जो लोग आतुर हैं उनको निम्न स्तर का, स्वार्थी ही माना जाना चाहिए। जो बदले की नीयत से सत्कर्म कर रहा है वह व्यापारी है। पुण्य और परमार्थ को वाहवाही के लिए बेच देने वाले व्यापारी हीरा बेचकर काँच खरीदने वाले मूर्ख की तरह हैं। जिसने प्रशंसा प्राप्त करली उसे पुण्य फल नाम की और कोई चीज मिलने वाली नहीं है। दुहरी कीमत वसूल नहीं की जा सकती। अहंकार को तृप्त करने के लिए प्रशंसा प्राप्त कर लेने के बाद किसी को यह आशा न करनी चाहिए कि इस कार्य में उसे परमार्थ का दुहरा लाभ भी मिल जायगा।

प्राचीनकाल में गुप्त दान की बड़ी महत्ता थी। बाइबिल में कहा गया है कि—"तू दाहिने हाथ से दान इस प्रकार कर कि तेरा बायाँ हाथ भी जानने न पावे।" पुण्य और पाप का जितना बखान होता है, उतना ही वह घट जाता है। लोकेषणा का लोभी ईश्वर का प्यारा नहीं हो सकता। प्रभु को तो निरभिमानता ही प्रिय है। अठारह पुराण विभिन्न काल में विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा लिखे गये हैं पर उनमें से किसी ने भी अपना नाम न देकर व्यासजी को ही उनकी रचना का श्रेय दिया है। तुलसीकृत रामायण में कई व्यक्तियों ने अपनी कृतियों के क्षेपक लगाये पर उसमें अपना नहीं तुलसीदासजी का ही नाम रखा। प्राचीनकाल में नाम से बचने की प्रवृत्ति थी। लोग नाम को नहीं काम को महत्व देते थे। सत्कर्म करने से आत्मा में जो सन्तोष उत्पन्न होता है, समीपवर्ती लोगों में जो गहरी श्रद्धा उत्पन्न होती है उतना ही लाभ प्राप्त करके प्रत्येक सत्कर्म प्रेमी को सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। सेवा का यही परिपूर्ण पुरस्कार है।

आत्म-सन्तोष के लिए सत्कर्म—वाहवाही और नामवरी के लिए ओछे उपायों का अवलम्बन करना उतना ही हेय है, जितना धन और वासना की पूर्ति अनैतिक उपायों से करना। इस मानसिक दुर्बलता ने समाज का अन्य किसी भी भयंकर बुराई से कम अहित नहीं किया है। सभ्य-समाज की रचना के तीन प्रमुख आधारों में हमें सज्जनता का श्रेय प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए और हत्यारी लोकेषणा से दूर रहना चाहिए। आज महत्वाकांक्षाओं की आग में सारी दुनिया जल रही है। उन्नति के नाम पर प्रगति की अभिलाषा से बुरे-बुरे दुष्कर्म करने में संलग्न हैं। हमें सन्तोष का अमृत पीना और पिलाना चाहिए और यह समझना तथा समझाना चाहिए कि वाहवाही व्यर्थ है। आत्म-सन्तोष के लिए श्रद्धापूर्वक सत्कर्म करते रहना ही श्रेष्ठ है। उसी में अपना और सब का कल्याण समाया हुआ है।

वित्तेषणा की डाकिन

धन के सम्बन्ध में असन्तोष लोभ बनकर फूटता है। वासना का असन्तोष काम कहलाता है। स्वामित्व का असन्तोष मोह कहलाता है। अहंकार की पूर्ति में कहीं त्रुटि रह जाने का असन्तोष क्रोध कहलाता है। मानसिक शत्रुओं का पाप एवं दुष्कर्मों का सारा परिवार असन्तोष से ही अपना पोषण पाता है। परिवारों का मधुर मेल-मिलाप इसी के कारण नष्ट होता है। दाम्पत्य जीवन की प्रेम प्रतीति में पलीता लगाने वाला यही दुष्ट है। शान्ति और प्रेम के साथ मधुर जीवन-यापन करते हुए आनन्द की सरिता बहाने और अपना तथा दूसरों का कल्याण करने में संलग्न होने की अपेक्षा वैभव इकट्ठा करने की हविस में देश-विदेश मारे-मारे फिरने और प्रेत-पलीत की तरह निरन्तर व्यस्त व्यथित रहने में यह असन्तोष ही एकमात्र कारण हो सकता है।

असन्तोष को प्रगति का चिन्ह मानना सर्वथा भूल है। उससे आकांक्षाओं को उत्तेजना तो अवश्य मिलती है पर उनकी पूर्ति कदापि नहीं हो सकती। कोई महत्वपूर्ण सफलता बिना व्यक्तित्व के आवश्यक गुणों में अभिवृद्धि किये कदापि सम्भव नहीं हो सकती और इन गुणों का बढ़ाना शान्तचित्त, आत्म-निरीक्षण, आवश्यक धैर्य और निरन्तर अभ्यास से ही सम्भव है। इन्हें बढ़ा सकना उद्विग्न असन्तोषी के लिए किस प्रकार शक्य हो सकता है ? वह बावला तो आज ही, अभी ही, सब कुछ पाने की तृष्णा में सब पर हावी होने का उपक्रम बनाये रहता है,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे इतनी फुरसत कहाँ है जो आत्म-निरीक्षण करे और अपने अन्दर उन महापुरुषों जैसे गुणों को बढ़ावे जिनके आधार पर महान कार्यों की पूर्ति हुआ करती है और मनुष्य उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँचा करता है।

तीन ऐषणाएँ—असन्तोष का असुर तीन रूप बनाकर अपनी मायावी दुष्टता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत होता रहता है और प्रेम तथा आनन्द के साथ जीवन-यापन कर सकने वाली सहनशीलता में पलीता लगाता रहता है— (१) वित्तेषणा (२) पुत्रेषणा (३) लोकेषणा—असन्तोष के यही तीन स्वरूप हैं। धन, वासना और अहंता की तृष्णा जब अमर्यादित हो उठती है, तो उसे ऐषणा कहा जाता है। उचित प्रयत्न के साथ उचित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, उचित रीति से धन कमाया जाना उचित है। यह प्रशंसनीय और आवश्यक भी है क्योंकि इसके बिना अपने शरीर और परिवार का निर्वाह नहीं हो सकता। जिन्होंने गृहस्थ धर्म अपना लिया है और विवाहित जीवन-यापन कर रहे हैं, उनका उचित मर्यादा के अन्तर्गत सन्तानोत्पादन की दृष्टि रखकर कामोपभोग भी उचित है। अपने पीछे अपने स्मारक के रूप में समाज के श्रेष्ठ नागरिकों को श्रद्धाजंलि अर्पित करके जाना ही सन्तानोत्पादन का उद्देश्य है। काम सेवन उसका एक विनोद भरा शुभारंभ मात्र है।

हम शुभ कार्य करके दूसरों की दृष्टि में अपना सम्मान स्थिर करें और अपने आत्म-गौरव के अनुरूप सेवा और सदाचार भरा उत्कृष्ट जीवन-यापन करते हुए श्रद्धा के भाजन बनें, यह यशस्वी होने की आकांक्षा भी उचित है क्योंकि इसी से प्रेरित होकर मनुष्य कष्टसाध्य शुभकर्मों को करने के लिए तैयार होता है। पर यह तीनों की आवश्यकताएँ पूर्ण कर सकना असन्तोष और अधीरता से सम्भव नहीं। इससे तो मनुष्य मर्यादाएँ छोड़कर उच्छृंखलतापूर्वक अनुचित मार्ग अपना लेता है।

औचित्य और मर्यादा—धन, वासना और अहंता की उचित और व्यवस्थित प्रगति तो विवेक एवं दूरदर्शिता के आधार पर ही सम्भव हो सकती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हम आज की स्थिति पर सन्तोष अनुभव करते हुए मन को प्रसन्नता से, आशा से, उत्साह से परिपूर्ण रखें, जिससे प्रगति का कठिन मार्ग पार करते हुए हम दिन-दिन ऊँचे उठ सकने की स्थिति को प्राप्त कर सकें। असन्तुष्ट व्यक्ति एक प्रकार का उन्मत्त होता है, जो स्वयं परेशान रहता है और दूसरों को परेशान करता है। परिस्थितियों के साथ समझौता करके ही इस संसार में सब को काम चलाना पड़ता है। परिस्थितियों को अपने अनुरूप ढालने में लगा रहना चाहिए पर साथ ही अपने को भी परिस्थितियों के अनुरूप ढालना चाहिए।

हमें तीनों ऐषणाओं से बचते हुए आनन्द-उल्लास, का, प्रेम और सन्तोष का नैतिक जीवन व्यतीत करने की ही इच्छा करनी चाहिए। बड़ा आदमी बनने की महत्वाकांक्षा वाले व्यक्ति इस संसार में अत्यधिक हानिकारक सिद्ध होते हैं। आततायी उपद्रवकारियों की तरह वे दूसरों को पद्दलित करते हुए उनकी लाशों पर ही चढ़कर बड़े बन पाते हैं। इसलिए भौतिक विभूतियों की तृष्णा को अध्यात्मवाद की दृष्टि से सदा ही हेय माना जाता रहा है। उसे रोकने और नियन्त्रित रखने के लिए पग-पग पर शिक्षण दिया जाता रहा है। समाज का सन्तुलन महत्वाकांक्षी लोग ही बिगाड़ते हैं, इसलिए इन मानसिक रोगियों से ऐसे ही सतर्क सहना चाहिए जैसे ईंट मारने वाले पागलों से बचा जाता है।

धन की मृग मरीचिका—आज धन के लिए हर व्यक्ति प्यासा-सा फिरता है। धन, अधिक धन और अधिक धन यह एक ही पुकार हर दिल और दिमाग में से उठती सुनाई देती है। धर्मध्वजी सन्त-महन्तों से लेकर जेबकट और चोर-डाकुओं तक हर वर्ग के लोग धन की आकांक्षा से अपने-अपने चरखे चलाते रहते हैं। विचारणीय बात है कि क्या धन की उतनी ही आवश्यकता है, क्या गरीबी इस सीमा तक पहुँच गई है कि मनुष्य को निरन्तर धन के लिए उद्विग्न हुए बिना काम न चले ? बात ऐसी बिल्कुल भी नहीं है। भगवान ने इतनी वस्तुएँ और साधन-सामग्री इस धरती पर पहले से ही पैदा कर रखी हैं कि मिल बाँट कर मनुष्य अपना गुजारा कर सकें और शान्ति और आनन्द के साथ हिल-मिल कर प्रेमपूर्वक जीवन-यापन करते हुए लक्ष्य प्राप्ति के लिए अग्रसर हो सकें।

रोटी, कपड़ा और मकान मनुष्य जीवन की प्रधान भौतिक आवश्यकताएँ हैं। यह आवश्यकताएँ इतनी छोटी और थोड़ी हैं कि बड़ी आसानी से थोड़े ही समय के उचित श्रम में उन्हें पूरा कर सकते हैं। गरीब कहे जाने वाले लोग भी इन तीनों आवश्यकताओं को पूरा कर लेते हैं और सन्तोषपूर्वक हँसते-खेलते जीवन व्यतीत करते रहते हैं। इसके विपरीत वे लोग हैं जिनके यहाँ सब कुछ होते हुए भी दिन-रात धन की हाय-हाय लगी रहती है। अशान्ति, बेचैनी, चिन्ता और परेशानी से रहित जिनका एक क्षण भी व्यतीत नहीं होता। ऐसे लोग वस्तुतः बड़े दयनीय हैं। बेचारे न जीवन का मूल समझ सके और न उसका लाभ प्राप्त कर सके। इन अभागों की दुर्दशा पर केवल दुःख के आँसू ही बहाये जा सकते हैं। असन्तोष की आग में जलते रहने वाले यह अमीर वस्तुतः विशाल अस्पताल के कीमती पलंगों पर पड़े हुए वह रोगी हैं, जो आग से झुलसे हुए हैं, जिनके बाहर और भीतर आग ही आग-जलन ही जलन पीड़ा दे रही है। कीमती इमारत एवं बहुमूल्य पलंग का क्या सुख इन बेचारों को मिल सकेगा ?

सादगी का मितव्ययी जीवन—भारत गरीब देश है, यहाँ हर आदमी की औसत आमदनी बहुत थोड़ी है। हमारा उत्पादन कम है। योग्यता और क्षमता भी स्वल्प है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ऐसी दशा में राष्ट्रीय आय का स्वल्प होना स्वाभाविक है। इसलिए हममें से हर एक को यह प्रयत्न करना चाहिए कि उतना ही खर्च अपने ऊपर करें जितना कि मध्यम वर्ग के भारतीय नागरिकों को अपने ऊपर करना उचित है। यदि कुछ लोग अपने ऊपर अधिक खर्च करेंगे, अधिक जमा करने की सोचेंगे तो उनके कार्यों से दूसरों को उतना ही अभावग्रस्त रहना पड़ेगा। एक ऊँची मीनार खड़ी करने पर जमीन में उतना ही गहरा गड्ढा कहीं न कहीं करना पड़ता है, एक व्यक्ति धनी तभी हो सकता है जब दूसरे अनेकों के हिस्से की राष्ट्रीय आय का भाग अपने नीचे दबालें। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप दूसरे अनेकों को अभावग्रस्त एवं गरीब रहने के लिये विवश होना पड़ता है। इसलिए संग्रह की, विलासिता की प्रवृत्ति को हेय माना गया है। अध्यात्मवाद के अपरिग्रह से लेकर भौतिकवादी साम्यवाद तक सभी न्यायसंगत दृष्टिकोण का निष्कर्ष एक ही है कि हर व्यक्ति को उतनी ही सुख-सुविधा प्राप्त रहे, जितनी कि उस समाज के मध्यवर्गीय नागरिकों को प्राप्त होती है।

गरीब और अमीर के बीच का अन्तर—वर्तमान अर्थतंत्र के कारण यदि किसी व्यक्ति की आमदनी अधिक होती है तो उसका कर्तव्य है कि उसे समाज को पुनः दान आदि के रूप में लौटा दे। हाथ में पाँच उँगलियाँ होती हैं, उनमें से कुछ छोटी कुछ बड़ी भी हैं। योग्यता और पुरुषार्थ के आधार पर यह अन्तर मनुष्य की सुख-सुविधाओं में भी रह सकता है पर यह होना उतना ही चाहिए जितना कि उँगलियों की लम्बाई में होता है। यह अनुपात दस पाँच प्रतिशत से अधिक नहीं है। इस से अधिक अन्तर यदि लोगों की आर्थिक स्थिति में रहेगा तो उससे समाज में अशान्ति ही उत्पन्न होगी। उससे ईर्ष्या और अनाचार का ही जन्म होगा। यह एक तथ्य है जिसे हम चाहें विवेक-उदारता और न्याय की दृष्टि से अपनाकर अपनी महानता का परिचय दे सकते हैं, अन्यथा आज नहीं तो कल बलपूर्वक ऐसा करने के लिए विवश किया जाने लगेगा।

गरीब और अमीर के बीच इतना अन्तर किसी भी प्रकार स्थिर नहीं रह सकता, जितना कि आज देखा जाता है। सन्त विनोबा के भूदान आन्दोलन से लेकर सरकार की कर नीति तक धीरे-धीरे सब ओर से यही प्रयत्न चल रहे हैं कि व्यक्ति अधिक सम्पन्न न रहने पावे। इस युगवाणी को हम विवेकपूर्ण सुन लें और अमीरी की महत्वाकांक्षाएँ छोड़कर मध्यवर्ती जीवन-यापन करने की बात तक अपने को सीमित कर लें तो हमारे असन्तोष का एक बहुता बड़ा कारण अनायास ही समाप्त हो सकता है। गुजर के लायक हम सब कमाते भी हैं, प्रयत्न करके इसे कुछ और भी बढ़ा सकते हैं। अमीरी के सपनों का नशा यदि हमारे मस्तिष्कों पर से उतर जाय तो स्वस्थ, सुविकसित एवं शान्तिमय जीवन-यापन करने के लिये हमें एक नई दिशा मिल सकती है।

फिजूलखर्ची से बचना ही चाहिए—हमारे खर्चे दिन-दिन बढ़ते चले जा रहे हैं। विलासिता की बिलकुल बेकार आदतों को हम दैनिक आवश्यकता मान बैठे हैं और खर्च अन्धा-धुन्ध बढ़ाये चले जा रहे हैं। हर व्यक्ति अपने से अधिक अमीर की नकल करके स्वयं भी अमीर कहलाने की मृगतृष्णा में भटक रहा है। अमीरों के से ठाठ-बाठ बनाने में गरीब लोग जब अपनी औकात और हैसियत का ध्यान छोड़ देते हैं, तब एक उपहासास्पद स्थिति पैदा हो जाती है। फैशन का भूत लोगों पर इसलिए सवार है कि वे कीमती पोशाक, जेबर, नगीने पहन कर, ठाठ-बाठ इकट्ठा करके बड़े और अमीर आदमी समझे जाने लगें। फैशनपरस्ती एक घटिया दर्जे का छछोरापन है।

अमीरी की बिडम्बना बनाने में जो फिजूलखर्ची के उपकरण जुटाते हैं उन्हें बाल बुद्धि ही कहा जा सकता है। आज तो विलासिता की सामग्री को भी आवश्यकता समझने की हमारी बुद्धि भ्रमित होने लगी है। सिनेमा, बीड़ी, मटरगश्ती, शृंगार साधन, चाय-पानी, यार-दोस्त आदि महकमे काफी खर्चीले बैठते हैं। कीमती कपड़े के कई-कई जोड़े रखने, जेबर आदि बनाने में ढेरों पैसा खर्च होता है। हाथ से काम न करके, छोटे-छोटे कामों को स्वयं न करके, पैसे देकर कराने में आलसी भी बनना पड़ता है और पैसा भी खर्च होता है। टूटी-फूटी चीजों की मरम्मत न कराके उन्हें पूर्णरूपेण बेकार हुए बिना ही फेंक दिया जाता है। अव्यवस्थित रूप से पड़ी हुई चीजें समय से पूर्व ही नष्ट और बर्बाद होती रहती हैं। खर्च में हाथ खुला रखने का उचित आमदनी होने पर भी तंगी बनी रहती है। उधार की आदत फिजूलखर्ची को बहुत बढ़ा देती है। जब कभी जो कुछ भी लेना हो नकद लेना चाहिए और उतना खर्च करना चाहिए जितनी आमदनी हो। उधार देना भी आज के अनैतिक युग में अपने पैसे को सड़क पर बखेर देने के समान है। लेकर वापिस करने वाले कोई बिरले ही देखे जाते हैं। सामाजिक कुरीतियों में वाहवाही और लोकाचार की उपेक्षा करके ही पैसे की व्यर्थ बर्बादी को रोका जा सकता है। यह सूत्र हैं जिन पर विस्तारपूर्वक विचार करके हम मितव्ययी बन सकते हैं और आर्थिक तंगी के कारण उत्पन्न होने वाले असन्तोष से बच सकते हैं। बुद्धिमानी पैसा कमाने में नहीं, उसके खर्च करने में है। कमाई तो कभी-कभी अनायास भी हो सकती है पर खर्च के सम्बन्ध में मनुष्य कितना सतर्क रहा है, इससे उसकी बुद्धिमानी परखी जा सकती है।

सादगी ही श्रेष्ठ है—सादगी, मितव्ययिता और सामान्य श्रेणी का जीवन-यापन करने से ही मनुष्य का गौरव है। सज्जनता का यही परिधान है। समाज में जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तक यह प्रवृत्ति विकसित न होगी, हम अशान्ति और असभ्यता की ही ओर बढ़ते रहेंगे। कहते हैं कि जरूरतों से प्रेरित होकर मनुष्य दुष्कर्म करते हैं फिर हम इसकी जड़ को ही क्यों न काटें ? अपनी जरूरतों को ही सीमित क्यों न करें, जिससे दुष्कर्म करने की आवश्यकता ही न पड़े। सन्तोषी को सबसे बड़ा सुखी माना गया है। वित्तेषणा पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए यदि हम सादगी को अपनी जीवन नीति बना लें और मितव्ययिता को अपनाकर तृष्णा को निरर्थक अनुभव करने लगें तो सचमुच अपना जीवन बड़ा सुखी हो सकता है। यदि स्वयं सुखी रहना और दूसरों को शान्ति से रहने देना हमें अभीष्ट हो तो वित्तेषणा को अस्वाभाविक, अनैतिक, अवांछनीय एवं अनुपयुक्त मानना पड़ेगा। यह डायन जब तक हमारे पीछे पड़ी रहती, तब तक न चैन की साँस लेने का अवसर मिलता है और न दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारे का कोई मार्ग रह जाता है। जिसे निरन्तर धन की हाय लगी हुई है वह सज्जनता और सदाचार का जीवन देर तक नहीं बिता सकता। अवसर आते ही उसका अनीति के मार्ग पर फिसल पड़ना निश्चित है। यह फिसलन ही असभ्यता है। सभ्य समाज की रचना के लिए वित्तेषणा को अपना प्रथम शत्रु मानते हुए सादगी, सीमितता और सज्जनता की बुद्धि उत्पन्न करनी चाहिए।

नर एवं नारी एक दूसरे के सहचर

नारी स्वातन्त्र्य एवं नारी को अधिकार दिये जाने के प्रसंग की जब भी चर्चा होती है तो सहज ही अनेकानेक पक्ष मस्तिष्क पटल पर आ जाते हैं। भारतीय परिवेश में उन्हें दृष्टिगत रख चिन्तन करना अपरिहार्य मानना चाहिए। हमारे यहाँ बड़े कुटुम्बों, संयुक्त कुटुम्बों का अभी भी प्रचलन है। बहुप्रजनन हमारे राष्ट्र से जुड़ी एक और विषम विडम्बना है। कन्या से बढ़कर पुत्र को महत्व दिये जाने, छोटे परिवार का महत्व न समझ पाने एवं जनमानस में अज्ञान का बाहुल्य होना भी प्रस्तुत समस्या का मूलभूत कारण है।

स्त्री के लिए पति का, स्वजन-सम्बन्धियों का बच्चों का मिला-जुला भार इतना बोझिल हो जाता है कि उसे निरन्तर लादे रहने में उसकी कमर टूट जाती है। यह बोझ कभी घटता नहीं वरन् आयु बढ़ने के साथ-साथ बढ़ता ही जाता है। बेटे-बेटियों से निवृत्त नहीं हो पाते कि पोते, धेवते अपनी-अपनी फरमाइशें लेकर आ उपस्थित होते हैं। कुछ महत्वपूर्ण कार्य कर सकने के लायक न तो समय बचता है, न मन, न साधन। यदि नारी को इस प्रकार प्रतिबंधित न किया गया होता तो वह पति के लिए सहायक रहती। उस पर भार न बनती और घर भरने के लिए सहमत न होती। स्वार्थी पुरुष वर्ग द्वारा नारी का शोषण करने, उसे अपंग बनाकर रखने के मूल में जो लाभ सोचे गये थे, वे भ्रम मात्र थे। किन्तु वस्तुस्थिति सर्वथा विपरीत निकली। पददलित नारी अपने लिए, बच्चों के लिए, पति के लिए, समूचे परिवार के लिए भारभूत सिद्ध हुई है। वह इनमें से किसी के लिए भी उत्साहवर्धक सिद्ध नहीं हुई। फिर देश, धर्म, समाज, संस्कृति के लिए तो वह कोई अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर ही कैसे सकती थी।

समय आ गया है कि नर को अपने चिरकाल से चले आ रहे अनाचार को बन्द करना चाहिए। प्रायश्चित्य उसी को करना चाहिए।

यह प्रायश्चित्य इसी प्रकार हो सकता है कि नारी को जितना गिराने के लिए षड्यन्त्र रचा गया है, उसकी क्षतिपूर्ति की जाय। खाई को पाटा जाय, जिसमें गिरकर पैर तोड़ने, जान गँवाने का खतरा खड़ा हो गया है। भूमि को समतल किया जाना चाहिए। नारी को दासी स्तर से ऊँचा उठाकर उसे सहचरी स्तर तक विकसित किया जाना चाहिए।

इस परिवर्तन में पुरुष को अग्रगामी भूमिका निभानी चाहिए कि दोनों पक्ष अपने को एक ही मनुष्य जाति के समभागी सदस्य समझें और उन पहचानों को हटायें जो नारी को भोग्या और पुरुष को भोक्ता के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उत्तेजक वेष-भूषा, शृंगार, केश विन्यास, भोंड़े वस्त्र, नाक-कान आभूषण यह सभी ऐसे हैं जो नारी को गुड़िया जैसे खिलौने के रूप में प्रस्तुत प्रदर्शित करते हैं। होना यह चाहिए था कि दोनों का वेष-विन्यास एक जैसा रहता। इस सन्दर्भ में चीन तथा उसके इर्द-गिर्द वाले देशों ने सही मार्ग अपनाया है और पुरुष तथा नारी का लिवास एक जैसा रखा गया है। इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह पड़ता है कि दोनों पक्ष अपने को मनुष्य जाति का समान सदस्य अनुभव करते हैं। कामुकता भड़काने वाले उपकरणों के हट जाने से उनका ध्यान बहिन-भाई या पति-पत्नी के रूप में, सहचर के रूप में मिल-जुलकर रहने या काम करने के लिए समुद्धत होता है। कोई पक्ष ऐसा छुई-मुई नहीं रहता, जिसके प्रतिपक्षी को दृष्टि मात्र से चंगुल में फँसाकर पतन के गर्त में गिरा दे। उत्तेजक वेष विन्यास ही है जो नर-नारी के बीच कामुक उत्तेजना उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है। एक पक्ष की हीनता का सूचक भी। पशुओं को बन्धन में बाँधकर रखने के लिए उनकी नाक में नकेल डाल देते हैं। गाय, ऊँट आदि को इसी आधार पर इधर-उधर खरीद कर ले जाया जाता है। कैदियों के हाथों में हथकड़ी, पैर में बेड़ी, गले में तौक, कमर में रस्सी बाँधी जाती है। उसी प्रक्रिया का यह विकसित रूप बनता है कि स्त्रियाँ नाक में, कान में, छेद करायें और उनमें नकेल, नाथ, अंकुश के प्रतीक जेबर पहनें। गले में, हाथ में, पैरों में, कमर में वैसे आभूषण पहनें जिससे उनकी सामाजिक स्थिति कैदी जैसी प्रतीत होती हो। यह दासता के चिन्ह हैं, जिन्हें अब प्रसन्नतापूर्वक धारण किया या कराया जाता है—यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अनुचित है। किसी महिला को जज, डाक्टर, मिनिस्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, प्रोफेसर बनना पड़े तो क्या वह इस बचकानेपन को धारण किए हुए विज्ञ समुदाय के सामने उपस्थिति होने में लज्जा अनुभव करेगी ? यदि हाँ तो उसे गृह संचालिका ही नहीं पति के हर काम में सहचरी बनाने की प्रक्रिया में सदभागी होने के लिए प्राय: वैसा ही वेश विन्यास बनाना चाहिए जैसा कि पति का है। उसमें राई-रत्ती अन्तर रहे तो ही उसे किसी प्रकार दर-गुजर किया जा सकता है।

मेंहदी, महावर, होठों की लाली, नाखून पालिस, माँग का सिन्दूर, माथे की बिन्दी, काँच की चूड़ी आदि सजावटें भी नारी के द्वारा अपनी हेय स्थिति स्वीकार किए जाने के प्रमाण रूप में विद्यमान हैं। यदि यह सुहाग के चिन्ह हैं तो नारी को सौभाग्यवान होने की तरह पुरुष को भी सौभाग्यवान होना चाहिए और इन्हीं चिन्हों को उन्हें भी धारण करना चाहिए। पुरुष धारण नहीं करता, इसका अर्थ यह है कि वह अपने बड़प्पन का अहंकार कम नहीं करना चाहता। नारी ही है जो अपने बँधुआ होने के सभी प्रतीत पट्टे धारण किए रहती है। इसमें भी अपने को सौभाग्य-भाग्यवान होने पर गर्व करती है।

नारी में—कुमारी, विवाहिता, विधवा, परित्यक्ता के बीच प्रतीक परक कोई चिन्ह नहीं होना चाहिए। नारी का अर्थ है—नारी। वह पुरुष की सहचरी है तो सही, पर हर स्थिति में उसका पत्नी होना आवश्यक नहीं। वह अपने पिता की, भाई की, किसी स्वजन की कार्यक्षेत्र में सहचरी हो सकती है। सहचरी का अर्थ है—साथ काम करना। पति-पत्नी भी सहचर तभी हो सकते हैं, जब वे जीवनसाथी बनकर रहें। दोनों एक दूसरे के काम में हाथ बँटायें, दोनों अपने-अपने विषय में साथी को परिचित तथा प्रवीण बनायें। यदि इसमें किसी पक्ष को संकोच अनुभव होता है तो इसका तात्पर्य यही हुआ कि वे आपस में ही असाधारण भेदभाव नहीं करते वरन् अपने कामों में भी वैसा ही अन्तर मानते हैं। काम का बँटवारा स्वैच्छिक और सुविधा की दृष्टि से हो। उसके साथ हीनता या बड़प्पन किसी प्रकार जुड़ा नहीं होना चाहिए।

सहचर का क्रिया-कलाप मात्र साथ-साथ काम करने तक ही सीमित या समाप्त नहीं हो जाता वरन् उसके साथ यह दायित्व भी जुड़ता है कि विकसित पक्ष, अविकसित पक्ष को कम से कम अपने बराबर बनाने या और भी अधिक विकसित, सुयोग्य, समर्थ बनाने का प्रयत्न करे। नर की योग्यता और आयु नारी से अधिक होनी चाहिए—पिछले दिनों से यह मान्यता बनी चली आ रही है। अब इसमें अन्तर किया जाय तो यह भी बिना किसी हिचक और झिझक के हो सकता है कि पत्नी पुरुष की तुलना में अधिक शिक्षित, अधिक सुयोग्य, अधिक बलिष्ठ एवं अधिक आयु की हो। सहचर होने का तात्पर्य मानसिक, आत्मिक दृष्टि से बराबरी का होना है। आयु, योग्यता आदि की दृष्टि से कोई भी बड़ा हो सकता है। एक की वरिष्ठता का लाभ दूसरे को सहचर होने की स्थिति में अनायास ही मिल जाता है।

प्रेम की पावन पाठशाला

पति को अपने ऑफिस जाने की जल्दी मची है और पत्नी अभी तक भोजन भी नहीं बना सकी है। कसूर उस बेचारी का भी क्या था कोयले ही गीले थे। सिगड़ी देर से जली सो खाना समय पर न बन सका। वह चौके में बैठी मन ही मन भुन-भुना रही है। ''मैं क्या करूँ कोयले भी तो गीले उठा लाये। ये दुकानदार भी कैसे स्वार्थी हैं पूरे पैसे लेंगे और माल देंगे मिलावट का।''

पतिदेव भी थोड़ा अपनी पत्नी की सहायता करते हुए घिस नहीं जाते या एक दिन भोजन नहीं मिलता तो कोई कयामत नहीं आ जाती, पर वे भी दूसरे ढंग से सोचते हैं—''दिन भर गप्पें लड़ाती है मगर भोजन समय पर नहीं बना सकती।'' वे बिना खाये-पिये ही आफिस चले जाते हैं।

घटना छोटी-सी पर परिणाम बड़ा अशुभ ! पति दिनभर आफिस में पत्नी की अकर्मण्यता को लेकर भाग्य का रोना रो रहे हैं और पत्नी ने खाना बनाकर रख दिया है, स्वयं भी मुँह चढ़ाये पड़ी है। दोनों के मन में गाँठें पड़ गईं।

शाम को पति थका-हारा आफिस से लौटा। उसने तो वहाँ नाश्ता भी कर लिया पर पत्नी की तो भूख हड़ताल ही हो गई। चाहते हुए भी वह पति को नहीं मना सकी। उसका स्वाभिमान उसे रोक देता है। 'गलती तो उनकी भी है।' इसी प्रकार पति भी चुप-चाप आकर कोई पुस्तक पढ़ने लगता है या आफिस का काम लेकर बैठ जाता है। मन की गाँठें और कस जाती हैं।

इस प्रकार की घटनाएँ प्रत्येक परिवार में घटित होती रहती हैं। सभी इस प्रकार मानापमान का प्रश्न बनाते हैं, उनका जीवन नीरस होता जाता है। घर-घर न रहकर एक सराय हो जाता है।

छोटी-छोटी बातों को लेकर कुढ़ते रहने की प्रवृत्ति अनिष्टकारक होती है। इसका सीधा प्रभाव मनुष्य की प्रसन्नता पर पड़ता है। स्नायुविक तनाव उत्पन्न होता है। क्रोध, क्षोभ तथा कुण्ठा उत्पन्न होती है तथा कार्य-क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। मस्तिष्क की शक्ति क्षीण होती रहती है।

जरा-सी सावधानी बरती जाय तो इस प्रकार उत्पन्न होने वाले अप्रिय प्रसंगों से मुक्ति पाई जा सकती है। स्वयं को दूसरे के स्थान तथा स्थिति में रखकर विवेक से सोचा जाय तो थोड़ा दोष अपना भी लगेगा। उस दोष को स्वीकार करते हुए सहायता करने को तत्पर होने से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह स्थिति सहज ही टाली जा सकती है तथा मानसिक शान्ति का सुख पाया जा सकता है।

मन में ऐसी गाँठें पड़ने के पूर्व ही सचेत हो जाने वाले, स्वस्थ दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्ति जहाँ भी जाते हैं, अपने सहयोगियों तथा प्रशासकों की संख्या में वृद्धि कर लेते हैं। इस प्रकार के प्रसंग विशेषतया अधिक निकट के व्यक्तियों में ही उत्पन्न होते हैं। प्राय: पति-पत्नी में ही ऐसे प्रसंग उत्पन्न होते हैं।

जिसे अपना समझा जाता है, उस पर कुछ अधिकार भी माना जाता है तथा यह आशा की जाती है कि वह मुझे अपना समझेगा। यह समझना तथा आशा करना अनुचित नहीं है। किन्तु यह समझना पहले अपनी ओर से निभाया जाय तथा दूसरे पक्ष से वैसी ही आशा न रखी जाय तभी अधिक हितकारी होता है अन्यथा एक दूसरे पर दोषारोपण की प्रवृत्ति चल पड़ती है।

प्रेम तथा अपनत्व का क्रम अपनी ओर से देने के रूप में ही चलता रहे। अपना आदर्श सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, ईश्वर आदि रहे। उन्हीं की तरह देने की कामना की जाती रहे तो स्वयं की महानता विकसित करते रहने तथा श्रद्धा के पात्र बनने में शंका ही न रहे।

इस विशाल दृष्टिकोण को अपनाकर ऐसे अप्रिय प्रसंगों से बचा जा सकता है तथा पारिवारिक शान्ति को अक्षुण्ण रखा जा सकता है।

कौस्तुभ मणिवत-'कौस्तुभ दम्पत्ति'

दक्षिण भारत में जन्मे डा. कौस्तुभ अपने बाल्यकाल से ही दीन-दुखियों के प्रति बड़े दयालु थे। बुद्धि के कुशाग्र एवं परिश्रम के धनी कौस्तुभ ने समाज की सेवा करने के उद्देश्य से ही चिकित्सकीय क्षेत्र चुना था। अपने अध्ययन काल में ये बड़ी लगन व श्रद्धा से अध्ययन करते रहे। एम. बी. बी. एस. की उपाधि के बाद क्षयरोग निदान में आपने विशेष योग्यता का प्रशिक्षण प्राप्त किया तथा आप पूना के क्षय विरुजालय में अधीक्षक हो गये। इस संस्था में आपने बड़े मनोयोग से रोगियों की सेवा की। रोगियों की दृष्टि में डाक्टर भगवान का ही छोटा स्वरूप होता है। आपने रोगियों की एक डाक्टर में निहित आस्था-अपेक्षा, विश्वास को पूरा करने के लिए डा. कौस्तुभ रोगियों की परिचर्या में सदैव निमग्न रहते थे। बर्नाडिशा कहा करते थे कि रोगियों को जितना डाक्टर की दवा लाभ नहीं पहुँचाती, उतना रोगी के प्रति स्नेह, व्यवहार, सहानुभूति की भावना लाभ पहुँचाती है। रोगी के प्रति डाक्टर का मधुर व्यवहार दवा से कई गुना अधिक प्रभावशाली होता है। इसलिए जिस प्रकार रोगी अपने डाक्टर को भगवान का स्वरूप समझता है उसी प्रकार डाक्टर भी यदि रोगी को आत्मवत् मानकर उसकी सेवा-सुश्रुषा, आचरण करे तो निश्चित ही अधिकांश रोगी शीघ्र ही पूर्ण स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर नीरोग रहने लगें। डाक्टर कौस्तुभ इसी तरह के सफल डाक्टर थे। वें रोगियों की सेवा को ही जीवन का उद्देश्य समझते थे तथा रोगी की पीड़ा को दूर कर देने में उन्हें अपार आनन्द की अनुभूति होती थी।

अपने जीवन के निर्धारित लक्ष्य की पूर्ति के लिए यदि कोई साथी-सहयोगी मिल जाय तो लक्ष्य पूर्ति का मार्ग सुवासित हो जाता है। सद्कार्य करना, नि:स्वार्थ भाव से समाज सेवा व परोपकार के कार्य करते रहना अपने आप को एक कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलाने जैसा रहता है, ऐसे में अच्छा साथी रहे तो राह के काँटों को हटाता हुआ वह उद्देश्य पूर्ति में ही सहायक सहारा ही सिद्ध नहीं होता अपितु वह मार्ग को सुरक्षित भी किए रहता है और इस तरह स्वयं समाज-सेवी का जीवन लक्ष्य तो सुविधाजनक ढंग से पूर्ण हो ही जाता है, साथ ही उसका अपना जीवन भी सुवासित बना रहता है। इस दृष्टि से डाक्टर कौस्तुभ सौभाग्यशाली रहे कि उन्हें अपनी जीवन सहचरी के रूप में ऐसी ही महिला मिली, जिसने डा. कौस्तुभ के स्वर्णिम व्यक्तित्व को सुगन्धित बना दिया।

डा. कौस्तुभ के अपने ही विद्यालय में एक परिचारिका थी, जिसमें सेवा के लिए वांछित सभी गुण विद्यमान थे। यह परिचारिका रूस की युवती थी जो बड़ी ही लगन से रोगियों की सेवा किया करती थी। अपने विरूजालय में प्रविष्ट रोगियों की सेवा-सुश्रूषा में बड़ी दक्ष थी। रोगियों के बिस्तरों को व्यवस्थित बनाए रखने से लेकर उनके भोजन-पथ्य, उनकी शारीरिक स्वच्छता आदि सभी बातों पर वह व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया करती थी। डा. कौस्तुभ तो रोगियों को देखने सुबह-शाम ही आते थे व उनकी दशा देखकर उपचार प्रक्रिया निर्धारित भर करते थे परन्तु यह परिचारिका तो प्राय: हर समय ही रोगियों के पास ही रहकर डा. कौस्तुभ के दिए गए निर्देशानुसार रोगियों को देख लिया करती थी। डा. कौस्तुभ के विचारों-निर्देशनों को, उनकी भावनाओं को कार्यरूप में शतश: परिणित देख डा. कौस्तुभ को अपार प्रसन्नता होती थी तथा अपनी इच्छाओं के कार्यान्वयन में इस परिचारिका के सहयोग से ही आकृष्ट हो डा. कौस्तुभ ने अपनी जीवन सहचरी के रूप में इस रूसी परिचारिका को चुना। डाक्टर व परिचारिका एक जीवन सूत्र में आबद्ध हो विरूजालय के माध्यम से क्षय से पीड़ित रोगियों की दूने जोश व उत्साह से सेवा करने लगे। परिचारिका का भी यह सौभाग्य ही था कि उसे एक ऐसा जीवन साथी मिला, जिसने इसकी सेवा करते रहने की लगन को एक बड़ा सहारा दे उसके जीवन को सुरभित ही कर दिया। इस सौभाग्यशाली युवती का नाम था 'सुचेता' जो अब श्रीमती डा. कौस्तुभ बन गई थी। विवाहोपरान्त दोनों पति-पत्नी सम्यक् भाव से सेवा में लगे रहते थे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डा. कौस्तुभ के कोई सन्तान नहीं थी। आजकल सन्तान के लिए जो तृष्णा सामान्य जन में रहती है वैसी कौस्तुभ दम्पत्ति में नहीं थी वे यही सोचते थे कि भगवान् ने उन्हें कोई पुत्र अथवा पुत्री न देकर शायद यह अवसर प्रदान किया कि पूरे समाज के ही पुत्र-पुत्रियों को अपनी सन्तान समझें। नि:सन्तान रहने से वे कभी भी अप्रसन्न न रहे वरन् दूने जोश के साथ पूर्ण समर्पित भाव से सेवा में जुट गए। सन्तान होने से उनका प्यार व सेवा का क्षेत्र सीमित हो जाता परन्तु अब तो उनका परिवार पूरा समाज बन चुका था।

वे पूरे समाज के बच्चों में ही पुत्र भाव रखकर व्यवहार करते थे। डा. कौस्तुभ में सेवा करने की उमंग यहाँ तक उमड़ी कि उन्होंने नौकरी से त्याग पत्र दे दिया और मैसूर के पास ही एक पहाड़ी पर अपनी एक छोटी सी कुटिया बना वहाँ रहकर वानप्रस्थी जैसा जीवन बिताने लगे। यहाँ रह कौस्तुभ दम्पत्ति प्रतिदिन चार घण्टे मैसूर के सिविल अस्पताल में जाकर रोगियों की नि:शुल्क सेवा करते थे। शेष समय में दोनों पति-पत्नी अन्य समाजसेवी कार्यों में लगे रहते थे।

एक दिन उन्होंने देखा कि एक पाँच वर्षीय क्षीणकाय बालक उनके द्वार पर पीड़ा से कराह रहा है। पूछने पर उसने बताया कि उसे क्षय रोग है, उसका पिता अत्यन्त निर्धन है अत: उसे यहाँ चुपके से छोड़कर चल दिया है।

डा. कौस्तुभ समाज के निर्धन वर्ग की परिस्थितियों से तो भली-विधि परिचित थे ही, उन्हें स्थिति का तुरन्त आभास हो गया। डा. कौस्तुभ की स्वाभाविक करुणा उमड़ पड़ी व उन्होंने इस लड़के को अपने घर पर ही रख लिया। उचित उपचार तथा व्यवस्थित परिचर्या से बालक शीघ्र ही नीरोग हो गया। कौस्तुभ दम्पत्ति के संस्कार तो इस तरह के थे ही कि वे हर आत्मा में परमात्मा के दर्शन करते थे, हर मनुष्य को वे परम आत्मीय मान उसे स्नेह-प्यार-दुलार देते। इस लड़के को भी कौस्तुभ दम्पत्ति का अपार स्नेह मिला, ये सन्तानहीन थे ही इसी बालक को इन्होंने अपना पुत्र मान ही घर पर रख लिया व इसी बालक की सेवा में वे आनन्द का अनुभव करने लगे।

फिर एक दिन विचित्र सी घटना हुई। डा. कौस्तुभ के घर एक पागल सी स्त्री रोती-बिलखती आई व कहने लगी—"डाक्टर साहब मेरा लड़का इकलौता बेटा जाने कहाँ चला गया, वह बीमारी की हालत में था जाने वह कहाँ होगा" इसी बीच डा. कौस्तुभ के घर से वह लड़का आ निकला। वह स्त्री उससे लिपटकर रोने लगी वह कहने लगी—"मिल गया मेरा लाल, यही है, यही है" स्त्री पागल तो थी ही, डा. कौस्तुभ ने उसका भी उपचार किया, वह स्त्री दो माह में ठीक हो गई। जब वह जाने लगी तो एक पलक के साथ अपने लाल को देखने लगी। माँ का प्यार अन्धा होता है। वह बिना इस बात की चिन्ता किए डा. साहब के कितने उपकार हैं डा. साहब से बोली—

"मुझे अपना बच्चा भी साथ दे दीजिए।"

बच्चा जो अब समझदार हो चला था। यह तो जानता था कि डा. कौस्तुभ द्वारा ही नवजीवन प्राप्त हुआ है व कौस्तुभ दम्पत्ति ने उसे अपना प्यार उड़ेलकर पाला-पोसा है। अत: वह माँ के साथ जाने में हिचक रहा था।

श्रीमती डा. कौस्तुभ एक स्त्री का हृदय पहचानती थीं। वे माँ नहीं बनी थीं तो क्या माँ का हृदय तो रखती थीं। उन्होंने आगे बढ़कर कहा, "बहिन तुम अपना बच्चा ले जाओ"। हमने जो इसके साथ उपकार किया इसके प्रत्युपकार में तुमसे इसे दूर नहीं रखेंगे। तुम्हें दु:खी कर हम कैसे सुखी रह सकते हैं। यदि हमने तुम्हारा पुत्र ले लिया तो तुम दूसरा पुत्र कहाँ से लाओगी परन्तु यदि हमने तुम्हें दे दिया तो हम तो दूसरा पुत्र खोज लेंगे। हमको ऐसी कला आती है कि समाज के किसी भी बच्चे में हम अपने पुत्रवत् प्यार रखें" महिला पानी-पानी हो गई। कौस्तुभ दम्पत्ति का मनुष्यता के प्रति इतना प्यार, इतना दुलार अन्यत्र मिलना सहज नहीं।

दाम्पत्य सुख का प्रमुख आधार—विवेकशीलता

विवाह के पावन सूत्र दो शरीरों को ही नहीं, दो आत्माओं को परस्पर एकाकार कर देते हैं। उनका यह मिलन सदैव सुखदायक बना रहे। प्रेम का यह पादप निरन्तर पल्लवित-पुष्पित होता रहे—दाम्पत्य सुख की सरिता अपना आकार विस्तृत करती रहे, यह असम्भव नहीं है। विवेकशीलता से काम लिया जाय तो यह सुख-सौभाग्य सहज पाया जा सकता है। यह सौभाग्य जिसने पा लिया, वह पारिवारिक तथा सामाजिक दायित्वों का भार सहज ही वहन कर सकता है।

पति-पत्नी का प्रेम बरसाती नाले के समान अल्प-कालीन नहीं, सदा बहने वाली नदी की तरह स्थायी होता है। नदी जब पर्वतों से निकलती है तो क्षीणकाय तथा तीव्रगामिनी होती है। मार्ग की चट्टानों से टकराती हुई, शोर करती हुई बहती है। उसमें जल कम और प्रवाह अधिक होता है। विवाह के आरम्भिक दिनों में पति-पत्नी के प्रेम की यही स्थिति होती है, उसमें भावुकता का प्रवाह अधिक तथा विवेकशीलता का जल कम होता है। जो पति-पत्नी केवल भावुकता का प्रवाह भर होते हैं वे बरसाती नाले की तरह शीघ्र ही सूख जाते हैं। जहाँ विवेक का जल होता है, वे निरन्तर आगे बढ़ते हुए अपने कलेवर को बढ़ाते चलते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूप-यौवन का आकर्षण अधिक दिनों तक पति-पत्नी को बाँधकर नहीं रख सकता। रूप की अपनी कोई मर्यादा नहीं है। यह मनुष्य के मन की उपज मात्र है। एक अफ्रीकी हब्शी के लिये काला रंग, मोटे होठ तथा चपटी नाक सुन्दरता की निशानी है। एक अमेरिका निवासी गोरे व्यक्ति के लिये वह सब कुरूपता का मान दण्ड हो जाता है। चीन में छोटे पाँव सुन्दर मानते हैं। तो भारत में छोटे पाँव अशुभ माने जाते हैं। हमारे देश में काले कमर तक लहराते बाल सुन्दर माने जाते हैं तो इंग्लैण्ड में भूरे छोटे-छोटे गर्दन तक लम्बे।

रूप स्थायी भी तो नहीं होता, आयु के साथ ढल जाता है, अस्वस्थ होने पर बिगड़ जाता है। जो रूप को देखते हैं वे उसके समाप्त होने पर कैसे अपने जीवन साथी को प्यार कर सकेंगे ?

रूप देखना ही है तो मानसिक सौन्दर्य में देखना चाहिये। सच्चा परिचय तो मानसिक ही होना चाहिये। यही प्रेम का आधार होता है। इसे बढ़ाया जा सकता है। सद्विचारों से, सद्गुणों से तथा सत्कर्मों से, मानसिक सौन्दर्य को बढ़ाते रहने से व्यक्तित्व में निखार आता है। यह निखार परस्पर प्रीति बढ़ाने में पर्याप्त होता है।

यौनासक्ति भी दाम्पत्य प्रेम का आधार नहीं हो सकती। स्त्री-पुरुष का शारीरिक अन्तर मात्र आकर्षण का केन्द्र नहीं होता। शरीर के पीछे मन भी लगा होता है। पुरुष कठोर, परिश्रमी, बुद्धि प्रधान होता है। स्त्री कोमल, सहनशील तथा भावना प्रधान होती है। यही अन्तर स्थूल रूप से शरीर की आकृति में भी स्पष्ट होता है।

आजकल यह भ्रान्ति बुरी तरह फैल रही है कि पति-पत्नी के प्रेम को स्थायी रखने के लिये शारीरिक समानता का रूप, रंग, गठन आदि का समान होना आवश्यक है यह नितान्त भ्रामक है। मिलन तो उनके गुणों का होना चाहिए। पति अपनी पत्नी से सहनशीलता, तथा भावनाओं का अनुदान प्राप्त करता है। पत्नी अपने पति के शारीरिक श्रम तथा बुद्धिवादिता का लाभ उठाती है। परस्पर एक दूसरे के पूरक बनकर पूर्णत्व की प्राप्ति करना ही इस विभिन्नता का परिणाम है।

शारीरिक संसर्ग की अपनी मर्यादाएँ हैं। इन मर्यादाओं को तोड़ने पर स्वास्थ्य हानि तथा मानसिक दुर्बलता का शिकार होना पड़ता है। प्रकृति ने स्त्री-पुरुष के संसर्ग में जो अनूठा स्पर्श सुख का सृजन किया है। उसके पीछे एक ही कारण है कि इससे आकर्षित होकर व्यक्ति सृष्टि क्रम को चालू रखे—सन्तानोत्पादन करे। इस सुख की अनुभूति भी मर्यादित रहने में ही होती है। इस रहस्य पर आवरण पड़ा रहता है, तभी तक सुख है। शारीरिक संसर्ग से जितना बचा जाय तथा मानसिक अनुदान जितना अधिक ग्रहण किया जाय उतना ही पारस्परिक प्रेम बढ़ता है।

स्त्री-पुरुष का भेद प्रकृति ने जितना नहीं बनाया है, उतना मनुष्यों ने उसे बना दिया है। जिस प्रकार दो पुरुष परस्पर सहयोगी, भाई, मित्र, परिजन आदि होते हैं। उनमें परस्पर प्रेम होता है। यह प्रेम उच्च कोटि का भी हो सकता है। भाई-भाई के लिये सब कुछ त्याग सकता है। मित्र अपने मित्र के लिये प्राण विसर्जन करने से भी नहीं हिचकिचाता। ऐसे उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। महिलाओं में भी आपस में ऐसा ही प्रेम देखा जा सकता है।

लिंग भेद की यह धारणा मिटा दी जाय तथा पति-पत्नी एक दूसरे को अपने साथी, सहयोगी के रूप में अस्वीकार करके आपस में वैसा ही प्रेम करें तो यह प्रेम की बेल जीवन भर बढ़ती रह सकती है। शारीरिक भेद को भुलाकर किया गया यह प्रेम ही सच्चा दाम्पत्य प्रेम होता है।

सदियों से मन-मस्तिष्क में बैठी यह भावना नहीं मिट सके तो भी पत्नी को 'रमणी' स्वरूप से देखना हितकर नहीं होता। सम्बन्धों में जितना शारीरिक लगाव कम होता है प्रेम उतना ही प्रगाढ़ होता है। माता-पुत्र, पिता-पुत्री, भाई-बहिन आदि का प्रेम शारीरिक लगावों से रहित होने के कारण पवित्र कहलाता है तथा चिरस्थायी होता है।

पत्नी भी दिन भर माता, भगिनी की तरह ही सेवा करती है, प्रेम करती है। पति भी दिन भर पिता की तरह जी तोड़ श्रम करता है, अच्छी-अच्छी वस्तुएँ जुटाता है। यह पवित्रता जितनी अधिक बनी रहेगी उतना ही दाम्पत्य चिरस्थायी तथा आल्हादकारी बना रहेगा। 'कामिनी' के रूप में पत्नी महत्व देना पाशविक ही कहा जा सकता है। पाशविक प्रेम में स्थायित्व की आशा व्यर्थ होती है।

जीवन साथी का चुनाव स्वयं ने किया हो अथवा अभिभावकों ने, उससे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। दाम्पत्य जीवन की सफलता तथा परस्पर प्रेम का विकास करने का दायित्व दोनों पर होता है।

विवाह के पश्चात् दोनों के सुख-दुःख एक हो जाते हैं। हमारे देश में पुरुषों का काम उपार्जन तथा स्त्री का काम गृह संचालन माना जाता है। यह कार्य विभाजन शारीरिक, मानसिक क्षमताओं को दृष्टिगत रखकर किया गया है। यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक दम्पत्ति इसका पालन करे। एक दूसरे की सुख-सुविधा को ध्यान में रखते हुए इसमें परितर्वन भी किया जा सकता है। इसमें एक दूसरे का सहयोग भी रहना चाहिए। इस प्रकार का सहयोग प्रेम में वृद्धि करता है, पति पत्नी के घर के कामों में हाथ बँटा दे, तो उसे परम सुख मिलता है। इसी प्रकार पत्नी पति के व्यापारादि कामों में सहयोग परामर्श दे सकती है।

पति-पत्नी को एक दूसरे का यथार्थ रूप लेकर चलना आवश्यक है। मनुष्य में गुण-दोष होने स्वाभाविक हैं। गुणों में एकदम वृद्धि तथा दोषों को एकदम मिटाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सम्भव नहीं। जैसा भी यथार्थ स्वरूप एक दूसरे का है उसी के अनुरूप एक दूसरे से आशा रखी जाय। पति यदि नारी की आदर्श प्रतिमा को अपने मन-मस्तिष्क में बिठाये रखे व अपनी पत्नी से वैसा ही व्यवहार चाहे। पत्नी भी पति के ऐसे ही आदर्श स्वरूप को लेकर चले और पति को उस कसौटी पर कसे तो दोनों के हाथ निराशा ही लगती है। प्रेम के स्थान पर कटुता का आरम्भ होने लगता है। यथार्थ स्वरूप को सामने रखकर चलने से वे एक दूसरे की आशा से अधिक ही स्नेह-सहयोग देते हैं तथा परस्पर प्रेम बढ़ता है।

कोई पक्ष यह नहीं चाहता है कि वह अनुपयोगी सिद्ध हो। पति के हाव-भाव, क्रिया-कलाप तथा थकान द्वारा इस बात की पुष्टी होती रहे कि पत्नी उसके लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है, उसकी आवश्यकता जैसी विवाह के समय थी वैसी ही आज भी है तो पत्नी की दृष्टि में उसका सम्मान बढ़ जाता है। यही पत्नी के व्यवहार से भी झलके कि उसे अपने पति वैसे ही लगते हैं जैसे विवाह के समय लगते थे तो दाम्पत्य स्नेह के सूत्र और भी दृढ़ हो जाते हैं।

इस उपयोगिता को जताने के लिये प्रशंसा करना—प्रेम प्रदर्शन करना आवश्यक है। यह क्रिया जितनी बार दोहराई जायेगी, परस्पर नवीनता तथा आकर्षण बना रहेगा। प्रशंसा करने में इस बात का ध्यान रहे कि प्रशंसा कार्यों की तथा गुणों की हो। शरीर तथा सौन्दर्य की प्रशंसा शारीरिक आकर्षण को जन्म देती है। सत्कार्यों तथा गुणों की प्रशंसा एक दूसरे का सम्मान तो बढ़ाती ही है साथ ही साथ उनकी और वृद्धि करने का उत्साह भी जगाती है।

मनुष्य से भूल होना अस्वाभाविक नहीं। भूल पति से भी होती है तथा पत्नी से भी। भूलों को सुधारना भी आवश्यक होता है। भूल सुधार का क्रम भी प्रशंसा की तरह ही चलता रहना आवश्यक है। किन्तु सुधार का यह क्रम इस प्रकार का न हो कि एक दूसरे के आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचे। भूल-सुधारने, स्वीकारने के लिये वही पक्ष सामने आये, जिसने भूल की हो तो सराहनीय ही कहा जायगा। ऐसी स्थिति में दूसरा पक्ष उसके इस साहस की प्रशंसा करे तो उसके मन पर इसका अच्छा प्रभाव तो पड़ेगा ही साथ ही अपने जीवन साथी पर उसे गर्व भी हो आयेगा। भूल या गल्ती करने वाला उसे स्वत: स्वीकार न करे तो दूसरे को सहन कर लेना ही ठीक रहता है। यदि सह सकने योग्य न हो तो उसे अपनी भूल विनम्र शब्दों में बता दे, जिससे कि उसे बुरा न लगे।

पति-पत्नी के स्वभाव तथा रुचि में भिन्नता हो सकती है। विवाहोपरान्त यह भिन्नता पूरी तरह मिटाना आवश्यक नहीं होता। एक दूसरे को समझ लेना, एक दूसरे की रुचि तथा स्वभाव का ध्यान रखना ही पर्याप्त होता है। एक दूसरे की रुचि तथा स्वभाव का सम्मान करने से उनके हृदय में परस्पर सम्मान बढ़ जाता है। ये असमानताएँ या तो स्वत: समाप्त हो जाती है या एक दूसरे की आदत में आ जाती हैं।

पति-पत्नी कर्तव्य से तो बँधे ही होते हैं। भावनाएँ भी उन्हें बाँधती हैं। एक दूसरे की भावनाओं को समझ लेना तथा उनका सम्मान करना दाम्पत्य रूपी भवन की नींव होती है। यह प्रवृत्ति दोनों के हृदयों में मधुरता की सरिता बहाती रहती है। जरा से इंगित पर या बिना कुछ कहे अपने जीवन साथी की इच्छाओं को जान लेने तथा तदनुरूप आचरण करने वाले दम्पत्ति एक दूसरे के सर्वस्व हो जाते हैं।

जो दम्पत्ति एक दूसरे की भावनाओं को समझने में असमर्थ होते हैं, उनका परस्पर स्नेह घटता जाता है और एक दिन ऐसा आता है कि वे एक दूसरे को चाहते हुए भी प्रेम नहीं दे पाते। ये बातें साधारण सी होती हैं किन्तु महत्वपूर्ण होती हैं। एक दूसरे के लिये कोई उपहार लाने, सेवा करने आदि में जो समर्पण की भावना जुड़ी होती है उसको समझा न जाय, उसे प्रशंसा के जल से सींचा न जाय तो यह प्रेम-बेलि सूखने लगती है।

पति-पत्नी का प्रेम एक सुन्दर, सुसज्जित प्रासाद होना चाहिए। प्रेम के इस पथ में खण्डहरों का कोई मूल्य नहीं होता, खण्डहरों में निराशा, दु:ख, शोक, क्लेश, उत्पीड़न आदि कीड़े-मकोड़े, उल्लू व चिमगादड़ निवास करते हैं। जीवन भर साथ निभाने तथा पुलकते, हँसते-खेलते अपने पारिवारिक, सामाजिक दायित्वों को निभाते रहने वालों का प्रेम ही सुरम्य प्रासाद कहा सकता है, जिससे स्नेह, सौजन्य, आशा, उत्साह, दया, प्रसन्नता, श्री, मेधा आदि सत्पुरुष निवास करते हैं। ऐसे सुरम्य प्रासाद मिलकर ही समाज रूपी सुन्दर नगर का निर्माण करते हैं। यह तभी हो सकेगा जबकि पति-पत्नी ऐसा विवेक अपनायेंगे।

हमारे सम्बन्ध—स्नेह-सौहार्द्रपूर्ण कैसे रहें ?

परिवार में सभी सदस्य एक रुचि और एक प्रकृति के नहीं रहते। यों किसी भी व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के पूर्णत: अनुकूल होना सम्भव है भी नहीं। पर अन्य व्यक्तियों में व्यवहार से इसलिए कोई कठिनाई नहीं होती कि उनसे थोड़े ही समय के लिए सम्पर्क करना पड़ता है। इसलिए रुचि और प्रकृति में विभिन्नता रहते हुए भी सम्बन्धित कार्यों में सामंजस्य बन जाता है और कोई अड़चन नहीं आती। पर परिवार में यदि समझदारी से काम न लिया जाय तो इस वैचित्र्यता के कारण बड़ी कठिनाई आ जाती है और संदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में कटुता तथा तनाव आ जाता है। फलत: घर नरक बन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाते हैं। घर के लोगों को किसी कार्यविशेष के कारण तो एक दूसरे से सम्पर्क नहीं करना पड़ता। उनका तो जीवन ही परिवार का जीवन बन जाता है। घर में माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, भाई-बहिन, चाचा-चाची और नौकर आदि विभिन्न सम्बन्ध और विभिन्न स्तर के सदस्य होते हैं। अपनी आदतों और रुचियों में तालमेल रखते हुए यदि सभी सदस्य अनाक्रामक ढंग से रहें तो परिवार का वातावरण स्वर्गोपम बन जाता है। यदि इसके विपरीत स्थिति बन जाती है तो परिणाम भी उल्टे होते हैं। इसलिए आवश्यक है कि परिवार के सभी सदस्य अपने सम्बन्धों को स्नेह-सौहार्द्रपूर्ण बनायें और घर में स्वर्गिक आनन्द की सृष्टि करें।

इसके लिए विधिवत् एक आचार संहिता बनाई जा सकती है और उस पर अमल किया जा सकता है। परिवार में स्नेह-सौहार्द्र की सृष्टि के लिए हमें प्रत्येक सम्बन्ध को दृष्टिगत रखते हुए विचार करना पड़ेगा। सर्वप्रथम हम पिता और पुत्र के सम्बन्धों को लें—पिता और पुत्र का सम्बन्ध परिवार में सर्वाधिक घनिष्ठ और दायित्वपूर्ण है। पिता को अपने पुत्र के प्रति कई दायित्वों का निर्वाह करना होता है तो पुत्र को भी अपने पिता के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए। इस प्रकार दोनों ही एक दूसरे के प्रति उत्तरदायी हैं। पर इनके सम्बन्धों में ही सबसे ज्यादा कटुता उत्पन्न होती देखी गयी है। छोटे बच्चों और अवयस्क पुत्रों की बात अलग है, जो पूर्णतया पिता पर ही आश्रित हैं, पर वयस्क युवकों में अपने पिता के प्रति सम्मान की भावना बड़ी तेजी से लुप्त होती जा रही है, पुत्र बचपन में अपने पिता के सभी व्यवहारों को चाहे वे वांछनीय हों अथवा अवांछनीय नासमझी के कारण अथवा मजबूरी से सहता चला जाता है। पर बगावत का बीजारोपण उन्हीं व्यवहारों के दरम्यान हो जाता है, जो समय आने पर फूट पड़ते हैं। अतः उचित यह है कि पिता-पुत्र के प्रति अपने व्यवहार को विवेकपूर्ण बनाये।

यदि पिता अपने पुत्र के हृदय में स्वयं के लिए श्रद्धा भी उत्पन्न कर सकता है और पुत्र के लिए प्रेरणा-स्रोत तथा पथ-प्रदर्शक भी बन सकता है। एक पश्चिमी लेखक—कैक्सटन ने अपने पिता के संस्मरण लिखते हुए कहा है—'मैं औरों के साथ सैर-सपाटे, खेलने और मछली का शिकार करने के आनन्द को छोड़कर, अपने पिता के साथ बाहर बगीचे में चहार-दीवारी के सहारे चहलकदमी करना अधिक पसन्द करता था। वे कभी तो चुप रहते, कभी बीती बातों को सोचते हुए आगे की बातों की चिन्ता प्रकट करते, पर जिस समय वे अपनी विद्या के भण्डार को खोलने लगते तथा बीच-बीच में चुटकुले सुनाते हुए हँसी का भी पुट देते तो मुझे अपूर्व आनन्द मिलता था।'' आगे कैक्सटन ने लिखा है कि थोड़ी-सी कठिनाई आने पर भी मैं अपने पिता के पास जाता था और अपने हौंसलों तथा आशाओं को उनके सामने कहता था। वे उनमें नई प्रेरणायें भर दिया करते।

पिता-पुत्र के सम्बन्धों में कड़ुआहट के बीज वहाँ जमना शुरू होता है, जहाँ पिता समझने लगता है कि वह अपने बेटे का 'भाग्य विधाता' है। वह जी रहा है तो उसी की बदौलत और उसे इसके लिए मेरा गुलाम रहना चाहिए। प्रेम जीवन में मधुरता भरता है, पर स्मरणीय है कि उसमें अधिकारी होने की भावना कहीं नहीं रहती। अधिकारी भावना की बुनियाद अहं पर खड़ी होती है और अहं अपनी जरा भी उपेक्षा सहन नहीं करता। इसलिए पिता को जब कभी यह अनुभव होता है कि पुत्र उसकी उपेक्षा कर रहा है, तो उसका क्रोध फूट पड़ता है और यह प्रवृत्ति पुत्र पर अपना दुष्प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहती।

इधर वयस्क पुत्र भी अपने स्वाभिमान को समझने लगता है और आशा करता है कि उससे इसी तरह का व्यवहार किया जाय कि उसके अहं को ठेस न पहुँचे। पर पिता २५ साल के नौजवान को भी ५ वर्ष के अबोध शिशु जैसा समझता है तथा यह भी अपेक्षा करता है कि मेरा पुत्र आज भी उसी तरह मेरी आज्ञाओं का पालन करे। दोष केवल पिता का ही नहीं है पुत्र भी गलत धारणाओं और बुरी संगति में पड़ जाने के कारण अपने पिता को समुचित सम्मान देने से कतराता है। ऐसी स्थिति में पिता और पुत्र के सम्बन्ध को सौहार्द्रपूर्ण बनाये रखने में पं. रामचन्द्र शुक्ल का यह सुझाव सर्वथा उपयुक्त है। उन्होंने लिखा है—''पुत्र को अपने माता-पिता के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए तथा पिता के पास अपने से ज्यादा अनुभव होने, उनके उन दुःखों का जिनको उसके लिए उठाया गया है, सदैव ध्यान रखना चाहिए। पुत्र को पिता के स्वाभाविक बड़प्पन को स्नेहपूर्वक खुले दिले से स्वीकार करना चाहिए, तो पिता को भी अपने पुत्र का व्यक्तित्व स्वीकार करते हुए उस पर ठेस नहीं पहुँचानी चाहिए।''

उत्तरदायित्वों के कारण पिता का स्वरूप जितना श्रद्धेय है, उतना ही गारिमामय स्वरूप माँ का स्नेह और सेवा के कारण है। जो पुत्र अपने पिता की उपेक्षा करता है, माँ की सद्भावना भी स्वाभाविक रूप से उसके प्रति कम होने लगती है। माँ को स्नेह और ममत्व के कारण चाहे जितना महिमा-मण्डित किया जाय, पर यह ध्यान रखना चाहिए कि वह माँ होने से पहले पत्नी है। पुत्र के साथ उसके सम्बन्ध तभी जुड़े हैं, जबकि पति से रिश्ता जुड़ा। लाख भावुक और स्नेहशीलता होते हुए भी स्त्री अपने पुत्रों के कारण अपने पति की उपेक्षा नहीं करती। स्वयं के सम्मान में पहले वह पति के सम्मान की आकांक्षा करती है। अतः माता और पुत्रों के सम्बन्ध भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उन्हीं परिस्थितियों में मधुर और प्रेमपूर्ण रह सकते हैं, जिन स्थितियों में कि पिता और पुत्र के।

माता-पिता के अतिरिक्त परिवार में भाई भी रहते हैं। यदि संयुक्त परिवार है तो भाई-भाई एक ही घर में होंगे और विघटित परिवार है तो अलग-अलग। इन दोनों ही स्थितियों में जो भी हों—भाई-भाई का सम्बन्ध तो रहता है और भाई से यदि सम्बन्ध अच्छे और सुदृढ़ हों तो पारिवारिक एकता का मधुरिम दृश्य सामने आता है। आजकल संयुक्त परिवार बहुत कम देखने में आते हैं। जो हैं, वे भी विघटन की ओर अग्रसर हैं। यह एक अति उपयोगी व्यवस्था नष्ट होती जा रही है, जिसे बचाया जाना चाहिए। इसके विघटन का कारण भाई-भाई के बीच उत्पन्न होने वाली कटुता की दीवार है। इसी कारण एक ही घर में दीवार खिंच जाती है और जरा-जरासी बातों में झगड़ा बढ़ जाता है। सामान्यत: भाइयों में परस्पर मनमुटाव के लिए ये कारण जिम्मेदार होते हैं—

(१) जायदाद का बँटवारा, (२) पिता का एक पर अधिक स्नेह और दूसरे पर कम, (३) स्थिति में भेद अर्थात् एक भाई का पढ़-लिखकर अधिक योग्य तथा सम्पन्न हो जाना और दूसरे का कम योग्य रहना, (४) मिथ्या अभिमान और बड़प्पन की भावना, (५) पत्नियों का परस्पर मन न मिलना।

जायदाद के बँटवारे, पिता द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति के विभाजन को लेकर ८० प्रतिशत मनमुटाव होते हैं। उचित यह है कि बँटवारा न्यायपूर्ण होना चाहिए और किसी को कम तथा किसी को ज्यादा नहीं मिलना चाहिए। यह एक अलग से समाधानकारक बात है। इसके अतिरिक्त किसी को यह भी नहीं सोचना चाहिए कि अमुक को पिता का अधिक स्नेह मिला है तथा मुझे कम। वस्तुत: पिता को न तो कोई सन्तान कम प्यारी होती है और न कोई ज्यादा। उसका प्यार सभी पर समान रूप से होता है। यह जरूर हो सकता है कि एक सन्तान को पहले अधिक सुविधायें मिली हों और दूसरी को कम प्राप्त हुई हों। या पहली सन्तान का कम लाड़-प्यार हुआ हो और पिछली सन्तानों को अधिक दुलार मिले। इसमें परिस्थितियाँ ही कारण हैं, जो समय-समय पर बनती और बिगड़ती रहती हैं। इसके लिए न पिता को दोषी ठहराना उचित है और न इस कारण से वैमनस्य ही पैदा करना।

उपरोक्त कारणों में से किसी भी कारण से मनमुटाव या तनाव पैदा होता दिखाई दे तो बड़े भाई का अधिक दायित्व हो जाता है। कई स्थानों पर बड़े भाई को पिता के बराबर भी देखा गया है। उसे चाहिए कि वह पूर्ण शान्ति और विवेक से अपने अनुज को मनोवृत्ति का अध्ययन करे, सूक्ष्म दृष्टि से उसकी देखभाल करे तथा उत्पन्न तनाव का हल खोजे। भाई का महत्व रक्त-सम्बन्ध के कारण आत्मिक स्तर का होने से और भी बढ़ जाता है। दोनों में एक आत्मा तो है ही, रक्त और शरीर भी एक से ही तत्वों से बने हैं, भावनायें तथा संस्कार भी लगभग एक जैसे ही होते हैं। यदि किन्हीं कारणों से सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा होता है तो दो ही बातें समझ में आती हैं, उन कारणों के तौर पर—पहली तो यह कि कहीं सोचने-समझने के तरीके में भूल हुई जा रही है और दूसरी यह कि कोई तीसरा व्यक्ति षड्यन्त्रों में रुचि ले रहा है। समाज में ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो भाई-भाई में फूट डाल कर अपना मतलब हल करने की बात सोचते हैं।

यह भी कोई जरूरी नहीं कि सम्बन्धों में बिगाड़ पैदा कराने वाला कोई बाहर का व्यक्ति ही हो। वह पत्नी भी हो सकती है और अक्सर तो भाई-भाई में मनमुटाव कराने में पत्नियों का ही ज्यादा हाथ रहता है। अच्छे वातावरण से दूर संस्कारहीन परिवारों में पली हुई स्त्रियों में ईर्ष्या विकार बेहद भरा होता है और वे छोटी-छोटी बातों को लेकर अपने पतियों के कान भरा करती हैं तथा देवर-जेठ को भी खरी-खोटी सुनाती रहती हैं। उनकी बातों में तो नहीं ही आना चाहिए, साथ ही पत्नी के इस दुर्गुण को भी दूर करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए। यदि बातों को केवल अनसुना ही करते रहा जाय तो विग्रह की कुसम्भावना को अधिक देर तक टालते नहीं रहा जा सकता। आखिर एक न एक दिन उन बातों की ओर ध्यान चला ही जायेगा और तनाव पैदा हुए बगैर नहीं रहेगा। अत: ईर्ष्या को दूर करने के लिए हर घड़ी सजग और सतर्क रहना चाहिए। स्मरण रहे, भाई आपका सबसे बड़ा मित्र और सबसे बड़ा हितैषी है। एक और एक मिलकर ग्यारह होते हैं। यदि दो भाई मिल-जुलकर अग्रसर हों तो हर कोई देखता रह सकता है। छोटा भाई अपने बड़े भाई में पथ-प्रदर्शक, हितैषी एवं संरक्षक की प्रतिच्छाया देख सकता है तो बड़ा भाई अपने छोटे भाई से सहयोग, श्रद्धा और परामर्श की अपेक्षा रखता है।

अन्त में आता है अभिभावक और सन्तानों का सम्बन्ध सूत्र। यद्यपि इस सम्बन्ध में थोड़ी-बहुत चर्चा पिता-पुत्र के प्रकरण में कर दी गई है। पर माता-पिता भी अपनी सन्तान के प्रति अनिवार्य रूप से जिम्मेदार हैं। सन्तान का आगमन दायित्व तो बढ़ाता है, वह दायित्व कितनी कुशलता के साथ पूरा किया जाता है, यही बात परिवार के सुखद वातावरण तथा बच्चों के भविष्य-निर्माण से सम्बन्ध रखती है। सन्तान के प्रति अपना स्नेह सच्चा और निष्कृष्ट रखना चाहिए, उसमें न तो अनुचित लाड़-प्यार हो और न अत्यन्त ही कठोर मशीनी-अनुशासन।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तान के लिए न केवल जीवन की सुख-सुविधाओं तथा इच्छापूर्ति के साधनों की व्यवस्था की जाय, वरन् उन्हें ऐसी शिक्षा और ऐसे संस्कार देने की भी चेष्टा की जाय, जिससे वे अच्छे और सुयोग्य नागरिक के रूप में विकसित हो सकें। इनके लिए घरेलू वातावरण को इस तरह का बनाये रखना जरूरी है, जिसमें बच्चों का मानसिक संस्थान, उनकी आदतें और उनके संस्कार भली-भाँति निर्मित और विकसित हो सकें। सन्तान सामान्यत: अपने माता-पिता की ही अनुकृति होती है। वे उन्हीं का अनुकरण करते हैं। अत: बच्चों के साथ साफ-सुथरा और समझदारीपूर्ण व्यवहार करने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि अपनी आदतों एवं प्रवृत्तियों को भी एक आदर्श के रूप में ढालकर खड़ा किया जाय। बच्चों के साथ किया गया व्यवहार एवं उनमें डाले गये संस्कार ही भविष्य के परिवारों की पृष्ठभूमि बनाते हैं।

हमें यदि संयुक्त परिवार और आदर्श-परिवार बनाने हैं तो दोनों उद्देश्यों के लिए वर्तमान रीति-नीति का पुनरीक्षण करना चाहिए तथा देखना चाहिए कि इसमें कहाँ त्रुटि हो रही है तथा कहाँ सुधार की आवश्यकता है ? परिवार संस्था राष्ट्र-भवन में लगी हुई वह ईंट है, जिसकी मजबूती पर भवन की मजबूती और सुदृढ़ता निर्भर करती है। उस ईंट में प्रयुक्त तत्व जितनी मजबूती के साथ सम्बद्ध होंगे, परिवार का भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा।

बड़ी उम्र में पिता बनना चाहिए

अधिक आयु में संतानोत्पादन करना कई दृष्टियों से लाभदायक है। प्रो. ग्रीम हीक ने इस सम्बन्ध में गहरी खोजबीन की है और उन्होंने अनेक सबूतों के आधार पर सिद्ध किया है कि नई उम्र के लड़कों से जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह उजड्ड, मूर्ख एवं दुर्गुणी होती है। कारण यह है कि नई उम्र के युवकों का शारीरिक और मानसिक विकास बहुत कम होता है, इसलिए उन अविकसित युवकों की सन्तान भी महत्वपूर्ण सद्गुणों से वंचित रह जाती है।

अनेक किस्से-कहानियों में ऐसी गाथायें मिलती हैं जिनमें किसी पिता के बड़े बेटे को अल्प बुद्धि और छोटे बेटे को बुद्धिमान बताया जाता है। सच-मुच यह तथ्य ठीक है। अधिक आयु वाले पुरुष से जो बच्चा उत्पन्न होता है, वह अपेक्षाकृत अधिक पराक्रमी और प्रतिभाशाली होता है। बीस बाइस वर्ष से कम उम्र के पिताओं की सन्तान स्वास्थ्य की दृष्टि से भी निर्बल होती है और मानसिक दृष्टि से भी। बाईस से तीस वर्ष तक की उम्र के पिताओं के बच्चे खूब तन्दुरुस्त होते हैं और साधारणत: होशियार भी होते हैं। तीस से ऊँची उम्र के पिता द्वारा प्रखर बुद्धि के बालक पैदा होते हैं। चालीस से ऊपर की आयु में उत्पन्न हुआ बालक स्वास्थ्य की दृष्टि से कुछ हल्का भले ही रहे पर बुद्धि में असाधारण होता है।

प्रो. ग्रीम हीक ने अपनी पुस्तक में असंख्य प्रमाण एकत्रित करके प्रकाशित किये हैं, जो आयु सम्बन्धी उपरोक्त तथ्यों की पुष्टि करते हैं। गेटे, स्पिलर, शेक्सपियर, रैफल, एवार्ड मैकाले, गोल्ड स्मिथ, फेड्रिक दी ग्रेट, ग्रान्ट, सिकन्दर, नेपोलियन, रूजवेल्ट आदि महापुरुष अधेड़ माता-पिताओं के रज वीर्य से पैदा हुए थे। चालीस से पचास वर्ष के बीच की आयु में उत्पन्न हुए बालक देश के नेता, धुरंधर विद्वान, गम्भीर एवं बुद्धिमान होते हैं। प्रिंस विस्मार्क, क्रामवेल, ग्लेडस्टोन, कीटो जैसे प्रतिभाशाली पंडित ढलती उम्र के पिताओं से पैदा हुए थे। जेलखानों में बन्द अपराधियों की ढूँढ़-खोज करने से जाना गया है कि उनमें से तीन-चौथाई ऐसे हैं जो किशोर अवस्था के पिताओं के वीर्य से उत्पन्न हैं, कारण यह है कि चढ़ती उम्र में शरारत और नासमझी अधिक होती है इसलिए यह गुण सन्तान में भी उतर आते हैं।

कुछ विशेष उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं, जिनसे उपरोक्त सिद्धान्त की पुष्टि नहीं होती। ऐसे उदाहरणों के बारे में जाँच करने पर पता चलता है कि उनके माता-पिता असाधारण रूप से बाल्यकाल में ही वृद्धों जैसी बुद्धिमत्ता संग्रह कर चुके थे, या फिर वह जन्मा हुआ बालक पूर्व जन्मों के कोई विशेष संस्कार अपने में लिये हुए हो, यह भी हो सकता है कि नई उम्र की सन्तान बुद्धिमान निकल आवे और ढलती उम्र की मूर्ख या दुर्गुणी निकले। परन्तु ये अपवाद हैं जो थोड़े से ही होते हैं।

आधुनिक शोधें जितनी खोज और गहराई के साथ की जाती हैं, उतना ही प्राचीन स्वर्ण सिद्धान्तों के समीप पहुँचती जाती हैं। शास्त्रकारों में दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य रखने और बड़ी उम्र में सन्तानोत्पादन करने का आदेश किया है। उसके असंख्य लाभ हैं। उन लाभों में से एक लाभ यह प्रकाश में आया है कि सन्तान ऐसी उत्पन्न होती है जो माता-पिता को सन्तोष दे सके, उसे पाकर उनका मन सन्तुष्ट हो जाय।

कामोत्तेजना का जितना जोश पच्चीस वर्ष से नीचे होता है, उतना आगे चलकर नहीं रहता इसलिए इससे अधिक आयु में विवाह करने पर अमर्यादित वीर्यपात करने की मूर्खता उतनी नहीं होती। विवेक की मात्रा बढ़ने से वे उच्छृंखलताएँ नहीं होतीं जिनकी नई उम्र में अधिक सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त वीर्यरक्षा से शारीरिक एवं मानसिक बल बढ़ने का लाभ तो प्रत्यक्ष ही है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

काम के साथ शारीरिक वासनाएँ जोड़ना अहितकर

विवाह व्यवस्था स्त्री-पुरुष को पति-पत्नी बनाकर उनकी शारीरिक वासनाओं को संयमित करने के लिये बनायी गयी है न कि कामोपभोग की खुली छूट देने के लिए। प्रकृति ने पशु पक्षियों पर तो अपना नियन्त्रण रखा है कि वे उसकी व्यवस्था के अनुसार ही कामोपभोग कर सकें। मनुष्य पर ऐसा अंकुश इसलिये नहीं रखा गया कि वह पशुओं की अपेक्षा अधिक विवेकयुक्त और संयम समर्थ है।

वैवाहिक जीवन में काम और वासना को पृथक्-पृथक् करके चलना ही उसके उद्देश्यों को रक्षा करना है। न तो भारतीय सभ्यता संस्कृति में ही विवाह का अभिप्राय शारीरिक वासनाओं की अबाधतृप्ति माना गया है और न ही पाश्चात्य सभ्यता संस्कृति में, वरन् सभी धर्मों में, सभी संस्कृतियों में विवाह को धर्म कृत्य व मानवीय गौरव और गरिमा के अनुरूप जीवनयापन करने में एक साथी का चयन करना ही रहा है।

सन्तानोत्पादन के लिए शारीरिक संसर्ग अनिवार्य हो सकता है किन्तु वैवाहिक सम्बन्धों के पारस्परिक प्रेम के लिये—पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम के लिए इसे आवश्यक मानना नितान्त भ्रामक है। किन्तु दुर्भाग्य से इन दिनों कुछ इस प्रकार की विकृत धारणाएँ लोगों के मन में बनती जा रही हैं कि कामोपभोग भूख लगने पर भोजन करने की तरह ही आवश्यक है। मल-मूत्र विसर्जन की तरह वीर्य विसर्जन भी एक सहज स्वाभाविक क्रिया है। इस मान्यता ने जितना अनिष्ट मानव समाज का किया है, उतना शायद ही किसी रूढ़ परम्परा ने किया हो। किन्तु आज का शिक्षित और अशिक्षित व्यक्ति दिन पर दिन इस पर विश्वास करके पति-पत्नी के बीच संम्भोग की अनिवार्यता पर बल देता जा रहा है।

ऐसी विकृति मान्यताओं का श्रीगणेश कुछ सिर-फिरे मनोवैज्ञानिकों ने किया है जो आज छूत के रोग की तरह फैलता ही जा रहा है। अब तो बाहरी देशों में नौबत यहाँ तक पहुँच गयी है कि शारीरिक तृप्ति के लिए पति-पत्नी का रिश्ता देखना ही आवश्यक नहीं रह गया है। कहना न होगा कि यह मनुष्य की सभ्यता का प्रतीक नयी बढ़ती हुई पशुता का द्योतक है।

काम का अर्थ होता है मानसिक आल्हाद प्राप्त करना, अपने आपको प्रसन्न रखना व अपने सहभागी की प्रसन्नता में वृद्धि करना। काम से अभिप्राय क्रीड़ा होता है और उसकी उत्पत्ति होती है प्रसन्नता से। प्रसन्नता शरीर की वस्तु नहीं, मन और आत्मा की वस्तु होती है।

आयु परिपक्व होने पर जीवन साथी की जो कामना मन में जागती है, उसमें शारीरिक वासना का लेश मात्र अंश भी नहीं होता है। किन्तु सामाजिक वातावरण व इधर-उधर की सुनी सुनाई बातें, गन्दे और कुत्सापूर्ण पूर्वाग्रह मन में जो विचार उत्पन्न कर देते हैं वे उसे शारीरिक वासना से संयुक्त करके विकृत कर देते हैं। प्राय: देखा जाता है कि विवाहोपरान्त पति-पत्नी के बीच बरसाती नाले की तरह शारीरिक आकर्षण का प्रवाह बह निकलता है। शरीर की वासनाओं की तृप्ति तो कभी होती नहीं। इस अनियन्त्रित कामोपभोग का दुष्परिणाम शरीर को खोखले होने और मानसिक शक्तियों के इस रूप में परिलक्षित होता है।

इस असंयम का सबसे बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है पत्नी को। विवाह होने के बारह-तेरह महीने बाद ही उसकी गोद में एक बालक आ जाता है। वह अपने आपको पत्नीत्व के ढाँचे में तो ढाल ही नहीं पायी थी कि माँ बन जाना पड़ता है। जिसके लिये न तो उसका शरीर ही तैयार होता है और न मन ही। पति भी नहीं चाहता कि वह इतनी शीघ्र पिता बन जाय। उसके और पत्नी के बीच एक तीसरे प्राणी के आ जाने के कारण वह यदि पत्नी के शरीर से ही प्यार करता रहा है तो उसके माँ बन जाने पर उससे वितृष्ण हुए बिना नहीं रहता। यहाँ तो सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने जैसी उक्ति चरितार्थ हो जाती है।

मनुष्य जीवन के चार उद्देश्यों में से काम भी एक है। विवाह काम को धर्म सम्मत बनाता है। काम मनुष्य का एक सहज स्वभाव है, जो उसे पुरुषार्थ के लिये प्रेरित करता है। काम से शारीरिक संसर्ग की कोई विशेष संगति नहीं। पति-पत्नी के साहचर्य सुख में काम का महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह जब संयम में बँध जाता है तो साहचर्य, सुख की श्रीवृद्धि करता है किन्तु यही काम जब असंयमित और विकारग्रस्त हो जाता है तो मनुष्य की पशु प्रवृत्तियों को भड़काने का काम करता है।

स्त्री, पुरुष की जननेन्द्रिय आँख, नाक, कान जैसी ही कोमल और मार्मिक होती है। इसको इतना संवेदनशील, कोमल और मर्म स्थल बनाने का प्रकृति का यही अभिप्राय रहा है कि इसका उपयोग साल-छह महीने में ही किया जाना चाहिए अन्यथा उनके क्षतिग्रस्त और रोगग्रस्त हो जाने का भय रहता है। जो लोग इनके इस महत्व और प्रकृति को नहीं जानते और इनसे अन्धाधुन्ध काम लेते हैं, उन्हें यौन रोग हो जाते हैं। लोगों के शीघ्र पतन, सुजाक, धातु दौर्बल्य के रोगों के पीछे उनकी यह अत्यधिक कामोपभोग की वृत्ति ही मुख्य कारण होती है। स्त्रियों में श्वेत प्रदर व रक्त प्रदर का रोग भी इसी कारण होता है।

इस सम्बन्ध में पुरुष अधिक दोषी होते हैं। स्त्रियाँ तो बेचारी उनकी वासना की शिकार होकर मुफ्त में ही रोग ग्रस्त हो जाती हैं। जाने क्यों लोग ऐसा सोचने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लगते हैं कि वे इसी की भूखी होती हैं या उन पर अपने पौरुष की धाक जमाने के लिए वे इसे आवश्यक समझते हैं। विवाह होते ही अब तक यत्नपूर्वक संचित कोष को वे अन्धाधुन्ध खर्च करने लगते हैं। यौवन की शारीरिक शक्ति के कारण उसका कुप्रभाव शीघ्र तो दृष्टिगोचर नहीं होता पर जब होता है तो उनके लिये पछताने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रहता।

अमेरिका, स्वीडन, जर्मनी आदि देशों में जहाँ यौनाचार सम्बन्धी सभी मर्यादाओं को ताक पर रख दिया गया है, यौन रोगों में अत्यधिक वृद्धि हो गयी है। इन देशों के युवक-युवतियाँ यौवन के आरम्भ में ही खूब मुक्त यौनाचार करके खोखले ही हो जाते हैं, इससे यह परिणाम होता है कि वे जब सन्तान की कामना करने लगते हैं, तो स्वयं को उसके असमर्थ पाते हैं। पुरुष पिता बनने योग्य नहीं रहता और स्त्री माँ बनने के अयोग्य हो जाती है। ऐसी स्थिति में उन्हें भारत जैसे देशों के अनाथालयों से बच्चे गोद लेने पड़ते हैं।

सामान्यत: स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक संयमी और काम दक्ष होती हैं। वे अपने प्रेम को प्रदर्शित करने का जंगली तरीका शारीरिक संसर्ग पसन्द नहीं करती। सामिप्य, वार्तालाप, सेवा, दर्शन, दृष्टि-विनिमय हास-परिहास, सेवा आदि के द्वारा ही वे अपना प्रेम प्रदर्शित करती हैं। लज्जा उनका स्वाभाविक गुण होता है किन्तु पुरुष प्राय: उन्हें समझने में भूल करता है और वह उत्तेजित हो उठता है। क्रूरता और कठोरता पुरुष में ही अधिक होती है। उसकी उन प्रवृत्तियों के नियमन के लिये ही उसे नारी के साहचर्य में बाँधा जाता है किन्तु वह उसका अर्थ समझ नहीं पाता है।

उत्तेजना किसी भी प्रकार की हो वह मनुष्य की शारीरिक, मानसिक क्षमताओं का ह्रास करती है। उत्तेजित अवस्था में हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। हारमोन्स के स्राव का क्रम बिगड़ जाता है। स्नायुओं पर अतिरिक्त दबाव पड़ता है। क्रोध के समय मनुष्य उत्तेजित होता है, तब भी यही प्रक्रिया होती है और जब वह कामातुर होता है तो भी यही स्थिति बनती है। यह उत्तेजना मनुष्य के लिए बहुत घातक सिद्ध होती है। बार-बार उत्तेजित होने पर स्नायुओं की क्षमताओं में ह्रास होता है वह बहुत हानिकारक होता है। क्रोध करने वाले को क्रोध की आदत पड़ जाना इसी का परिणाम है, अधिक कामोपभोग करने वालों को भी ऐसी ही आदत पड़ जाती है, जो शरीर को महत्वपूर्ण तत्व वीर्य को नष्ट करता है। वीर्य रक्त से भी अधिक महत्वपूर्ण होता है। चोट लगने पर अधिक रक्त बह जाने पर व्यक्ति जीवित नहीं रहता, उसी प्रकार अधिक वीर्य नाश से भी मनुष्य की हालत अधमरे की सी हो जाती है। वह न तो मरता ही है न जी ही पाता है।

लज्जा मात्र नारी की ही शोभा नहीं है। लज्जा पुरुष के लिये भी उपयोगी है। लज्जा वस्तुत: अच्छी आदत है। लज्जा की यह दीवार स्त्री-पुरुष के बीच बनी रहनी चाहिए, चाहे वे पति-पत्नी ही क्यों न हों। हम शरीर के अंगों को वस्त्रों में छिपाकर रखते हैं जिनके अनावृत्त रखने से हम जंगली, असभ्य और पशु कहलाते हैं। उस लज्जा को अनावृत्त करना जिस प्रकार नारी को स्वीकार नहीं होता वैसे ही पुरुष को भी नहीं होना चाहिए।

कोई भी यह पसन्द नहीं करता कि दूसरे उसे जंगली समझें। यदि यह थोड़ा विचार करे तो जिस समय व्यक्ति कामोपभोग में प्रवृत्त होता है, तो उस समय उसकी स्थिति पशु की सी हो जाती है, उसे अपने उन अंगों को भी अनावृत्त करना होता है, जिन्हें वह किसी भी स्थिति में अनावृत्त करना नहीं चाहता। वैसे ही क्रिया-कलाप करता है जो केवल एकान्त में ही किये जा सकते हैं। क्योंकि वे पशुतापूर्ण ही लगते हैं। फिर पत्नी के सामने ही या पति के सामने ही क्यों अपने आपको असभ्य या जंगली सिद्ध किया जाय।

मनुष्य पशुओं से उच्च है। वह पशुओं की सी असभ्यता करे तो यह उसके लिये शोभाजनक नहीं। अपने जीवन साथी के प्रति प्रेम प्रदर्शन के लिये प्रकृति ने उसे सुविकसित मस्तिष्क, वार्तालाप करने के लिये जिव्हा, भाषा, भाव प्रदर्शन, संवदेनशील हृदय अन्त:करण आदि प्रदान किये हैं, फिर वह पशुओं के से घटिया प्रेम प्रदर्शन पर उतर आये तो इसे उसकी मूर्खता, असभ्यता ही कहना चाहिए।

गाय अपने बच्चे को चाटकर प्रेम प्रदर्शित करती है। लेकिन मानवी को अपने बच्चे को चाटकर प्रेम प्रदर्शन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह अपने हाव-भाव, क्रिया कलाप, वार्तालाप, भावना आदि से उसे प्रदर्शित कर देती है। पति-पत्नी के बीच में ऐसा ही क्रम चलता रहना चाहिए। इसी से उनका पारस्परिक सेवा, सहयोग, मैत्री, वार्तालाप, मनोविनोद, त्याग, बलिदान, संरक्षण, स्नेह, सहिष्णुता, एकनिष्ठता आदि के द्वारा एक दूसरे को प्रसन्न रखना चाहिए। यह एक दूसरे को प्रसन्न रखना ही काम की सच्ची अभिव्यक्ति है। यह वह अमृत है जिसे छक कर पीने की तृषा एक दूसरे को निकट लाती है। इस अमृत में शारीरिक वासनाओं की मिलावट करना दाम्पत्य की सफलता के मार्ग में बाधक ही बनती है।

मानसिक परिचय बढ़ना ही सुखी दाम्पत्य के लिये हितकर होता है, शारीरिक परिचय नहीं। शरीर को महत्व देना और शारीरिक आकर्षणों में बँधना अहितकर होता है क्योंकि शरीर का आकर्षण स्थायी नहीं होता वह तो समय, आयु और शारीरिक स्थिति के साथ बदलता रहता है। शरीर से बँधे रहने वालों का प्रेम भी वैसा ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ एक तपोवन ३.६२

अस्थिर होता है। दाम्पत्य जीवन में काम के प्रति सही दृष्टिकोण अपनाया जाय तो आज हमारे घर में जो नर्क दिखायी दे रहे हैं, उनका सारा स्वरूप ही बदल सकता है और ऐसे परिवार तैयार हो सकते हैं जहाँ के वातावरण में स्वर्गिक रस घुले हुए हों।

सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (१)

प्राय: हर पति-पत्नी दाम्पत्य सूत्र में बँधने के पूर्व और आरम्भिक काल में अपने दाम्पत्य जीवन की सुखद कल्पनाएँ और उसे सफल-सार्थक करने का उल्लास, उमंग लेकर चलते हैं किन्तु देखने में आता है कि उनमें कुछ प्रतिशत लोगों को छोड़कर शेष के वे स्वप्न साकार नहीं हो पाते और उनकी वे उमंगें कुण्ठित हो जाती हैं। इसका कारण उन भावनाओं और सपनों को सत्य करने की व्यावहारिकता से वे अनभिज्ञ थे, अत: चाहते हुए भी अपनी दाम्पत्य बगिया के पुष्पों को महका न सके और वे असमय ही मुरझा गये। व्यक्ति की यह असफलता उसके जीवन को, उसके हर क्रियाकलाप को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। तद्विषयक कुछ व्यावहारिक सूत्र नीचे दिये जा रहे हैं।

जीवन पथ के दो सहयात्री—पति-पत्नी अपने दाम्पत्य जीवन में प्रविष्ट होने के पूर्व या प्रारम्भिक दौर में जो संकल्प लेकर चले थे—परस्पर जो अनुराग लेकर चले थे। उन्हें आगे के जीवन के कड़वे-मीठे अनुभवों के मध्य उन पर गर्द जमती जाती है। अत: उन्हें समय-समय पर दोहराने, नवीनीकृत करने के प्रयास, पारस्परिक प्रेम प्रदर्शन जिसमें दैहिक-कामनाएँ जुड़ी न हों प्रदर्शित करना बहुत आवश्यक और उपयोगी रहता है। विवाह के समय लिये गये संकल्पों को विवाहदिवोत्सव (शादी की वर्ष गाँठ) के रूप में विवाह की विधि से ही मनाकर जिस प्रकार रेडियो लाइसेंस नवीनीकृत करते हैं, प्रति वर्ष विवाह के संकल्पों का भी नवीनीकरण करना अच्छा और उपयोगी रहता है।

बीच-बीच में और सम्भव हो सके तो प्रतिदिन प्रेम प्रदर्शन के लिए पारस्परिक सेवा का क्रम चलाया जाना भी बहुत उपयोगी है। पत्नियाँ तो प्राय: और प्रतिदिन भोजन बनाने, कपड़े धोने व अन्य सेवा कार्यों द्वारा पति के प्रति अपने सहज अनुराग को प्रदर्शित करती रहती हैं किन्तु पति प्राय: बाहरी काम को महत्व देने और पत्नी के इन कार्यों को केवल उसका दायित्व समझकर उसके साथ-जुड़ी भावनाओं तक पहुँच नहीं पाते हैं। जबकि पत्नी चाहती है कि उसके इस अनुराग को समझा जाय, उसकी कुछ प्रतिक्रिया जाहिर की जाय। जब तक वह प्रतिक्रिया उसकी प्रशंसा अथवा छोटी-मोटी सेवा कोई आर्थिक सामर्थ्य के दायरे में रहकर दिया गया प्रेमोपहार के रूप में प्रकट होती रहनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो जिस प्रकर पीतल के सुन्दर लोटे को प्रतिदिन नहीं माँजने पर वह काला पड़ कर मैलग्रस्त और भद्दा हो जाता है ऐसे ही पति-पत्नी के प्रेम में भी ऐसी ही शुष्कता आती जाती है जो यों तो अभिव्यक्त नहीं होती पर कभी अवसर पाकर कलह, मनमुटाव व विरक्ति के रूप में फूट पड़ती है। जिस प्रकार आत्मा पर चढ़ने वाले कषाय-कल्मषों को धोने के लिए प्रतिदिन उपासना की जाती है वैसे ही पति-पत्नी को भी अपनी दाम्पत्य सरसता मन्दाकिनी को सतत् प्रवाहमान रखने के लिए किसी न किसी प्रकार अनुराग प्रदर्शन का और उसके प्रति उत्तर देने का क्रम चलता रहना चाहिए।

प्राय: देखा यह जाता है कि सन्तान के आने के पूर्व तक पति-पत्नी में काफी सरसता बनी रहती है। दोनों एक दूसरे का बहुत ध्यान रखते हैं। सन्तान हो जाने पर दोनों का स्नेह थोड़ा-थोड़ा उनकी ओर बँट जाता है। उनकी ओर स्नेह बँट जाना अस्वाभाविक भी नहीं है। किन्तु ऐसा भी होता है कि उनके आने से पहले उन्हें जो एक दूसरे के साथ एकान्तिक संगति भोगी थी, उसकी आदत उसके उतने न सही थोड़े अंश में ही सही परितृप्ति चाहती है। जबकि पति-पत्नी उपार्जन गृहस्थी में फँस कर उस तरफ ध्यान नहीं दे पाते। किन्तु वह पहले वाली मानसिक भूख तो परितृप्ति चाहती ही है, भले ही पेट की भूख की तरह उस भूख की प्रतीति न हो। अत: यह भूख मारी नहीं जानी चाहिए। दिन भर में थोड़ा सा ही समय सही पर वह पति-पत्नी का अपना हो, जिसमें किसी दूसरे का हिस्सा न हो। यहाँ यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि यह प्रेम प्रदर्शन दैहिक कम मानसिक अधिक हो।

यह सिद्ध सत्य है कि दाम्पत्य माधुर्य में दैहिक संसर्ग प्राय: विरक्ति पैदा करता है और मानसिक संसर्ग अनुरक्ति। दो मित्रों के बीच बिना किसी दैहिक आकर्षण के उत्कट प्रेम रह सकता है, जबकि यहाँ माता-पिता, भाई-बहिन जैसा कोई प्राकृत रिश्ता नहीं होता। फिर भी यदा-कदा एक मित्र दूसरे के लिए जान तक न्यौछावर करने को तत्पर हो जाता है। यह मानसिक अनुरक्ति का ही परिणाम होता है। पति-पत्नी के बीच भी यह मानसिक परिचय, मानसिक अनुरक्ति जो दिव्यता और स्थायित्व उत्पन्न करती है, वैसा शारीरिक संसर्ग कदापि नहीं। वस्तुत: शारीरिक सम्मिलन के पीछे प्राय: मूल भाव अपने अनुराग का प्रदर्शन ही होता है। यदि इस ओर पति-पत्नी प्रवृत्त हुए तो उनमें शक्तियों के क्षरण के साथ-साथ और भी कई समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं।

मनोरंजन का भी दाम्पत्य सम्बन्धों को सफल बनाने में व्यावहारिक महत्व है। पत्नी प्राय: घर में ही रहती है। इससे उसके जीवन में एकरसता आ जाती है। यह एकरसता स्वास्थ्य व व्यवहार पर प्रभाव डालती है। वह कुछ उदासीन सी रहने लगती है और पति उसके

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यवहार में अन्तर पाता है तो उसे अपनी उपेक्षा समझ बैठता है। अत: दूसरे-तीसरे दिन या सप्ताह में ऐसा कोई छोटा सा, कम खर्च का मनोरंजन कार्यक्रम बनाकर उसे क्रियान्वित करते रहना चाहिए। जिनके पास समय और सुविधा है वे रोज थोड़ी देर के लिए बच्चों सहित टहलने जाया करें तो यह व्यायाम और मनोरंजन दोनों आवश्यकताओं की पूर्ति कर देता है। घर में रेडियो आदि मनोरंजन के साधन हों तो अच्छा रहता है। किन्तु दिन भर फिल्मी गाने सुनने या आये दिन सिनेमा देखने के मनोरंजन से प्राय: बचना ही ठीक रहता है।

काम वासना पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का आधार कदापि नहीं हो सकती। किन्तु यह बिल्कुल अनावश्यक भी नहीं है। सन्तानोत्पादन के लिये और जहाँ शरीर, मन और आत्मा के संयोग के सुख का रसास्वादन मिले, वहाँ उसका औचित्य भी है। किन्तु इसे पेट की भूख की तरह मान लेने की बात जो तथाकथित आधुनिक लोग कहते हैं, मानते हैं, नितान्त भ्रामक व अव्यवहारिक है। विवाह मनुष्य की काम वृत्ति की परितृप्ति के लिए नहीं उसके संयम, उसे ऊर्ध्वमुखी बनाने के लिए होता है। जो दम्पत्ति इस सत्य को समझने में भूल करते हैं, उनका प्रेम शारीरिक आवेगों के बरसाती नाले की तरह थोड़े ही दिनों तक किनारा तोड़कर बहने के बाद सूख जाता है। अत: इससे बचना ही श्रेयस्कर है। एक दूसरे की सेवा पिता, भाई, पुत्र व मित्र की तरह दिया गया स्नेह, श्रद्धा व प्रेम पति देता रहे यह कामना का शोधन बहुत व्यावहारिक है। पत्नी भी पति के लिए हर घड़ी केवल स्त्री नहीं रहती। वह प्राय माँ, बहिन, पुत्री, मित्र व सखा की भूमिका ही निभाती है। यही स्नेह को कामना के विष से मुक्त करने का राजमार्ग है।

जीवन पथ के दो सहयात्री—पति-पत्नी के मन में यह उत्कट कामना होती है कि उसके सहयोग से उसका साथी प्रगति करता हुआ आसमान को छूले। इसके लिए वे अभीष्ट त्याग, बलिदान, सहयोग, मार्गदर्शन देने के लिए भी पूरी तरह तैयार रहते हैं। किन्तु यहाँ एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि इस जोश के साथ होश भी रखना बहुत जरूरी है। क्योंकि व्यक्ति की अपनी-अपनी सामर्थ्य, अपना-अपना स्तर होता है, यदि उस सामर्थ्य और उस स्तर को ध्यान में रखते हुए विकास के चरण स्थिर नहीं किये गये और उस पर बढ़ते हुए साथी की मन्द गति के साथ अपना धैर्य न जोड़ा गया तो प्राय: परिणाम उसे निरा अयोग्य मान लेने के रूप में सामने आता है। यह बड़ी भयंकर स्थिति होती है। अत: एक दूसरे को आगे बढ़ाने की भावना के साथ इस व्यावहारिक पहलू को भूल नहीं जाना चाहिए।

कृपणता किसी भी क्षेत्र में हो बुरी ही सिद्ध होती है। धन की कृपणता की तरह पति-पत्नी की एक दूसरे को अपने तक ही सीमित रखने की कृपणता भी कम हानिकारक नहीं होती। पत्नी मात्र पत्नी नहीं होती और पति मात्र पति नहीं होता। वे किसी के भाई, बहिन मित्र, सम्बन्धी, पुत्र, पुत्री, सखा, परिजन आदि भी तो होते हैं। जहाँ एक व्यक्ति अपने साथ जुड़े इन लोगों के साथ प्रेम पूर्ण व्यवहार करता है, वहाँ दूसरे के मन में ईर्ष्या या उन सम्बन्धियों के प्रति द्वेष उत्पन्न होता है वहाँ उसकी यह संकीर्ण हृदयता उनको एक दूसरे की नजरों में गिराती भी है। इसलिए यह भी आवश्यक है कि पति-पत्नी एक दूसरे के माता-पिता, भाई, बहन, सखा, मित्र आदि का यथोचित आदर सम्मान भी करें। इससे दूसरे पक्ष की निगाह में उनका सम्मान बढ़ता है।

पति-पत्नी के सम्बन्धों का मुख्य आधार प्रेम होता है। वे एक दूसरे के पति-पत्नी ही नहीं प्रेमी-प्रेमिका भी होते हैं। आजकल कुछ लोग पश्चिमी सभ्यता की देखा-देखी पत्नी और प्रेमिका दो पृथक्-पृथक् नारियों को मानने लगे हैं, यह दाम्पत्य सम्बन्धों के लिए बहुत घातक है। वस्तुत: ऐसा नहीं होता। पत्नी-पति के सुख में प्रसन्न और उसके दु:ख में दुखी होती है, उसे अपने पति के प्रेम और व्यक्तित्व पर गर्व होता है। यदि यह प्रेमिका-सा भाव पत्नी के अन्दर से मर जाय और वहाँ केवल परिवार और सन्तान के कारण दोनों को एक छत के नीचे रहने की विवशता भर रह जाय तो वहाँ पत्नीत्व भी कहाँ जी पाता है। पति-पत्नी के बीच जो प्रेम होता है वह उसके लिए आसमान के तारे तोड़कर प्रेमिका के कदमों पर निछावर कर देने जैसी काल्पनिक उड़ान नहीं होता, उसमें सागर सी गहराई होती है। यह गहराई और प्रौढ़ता आवश्यक भी है।

दिन भर का थका-हारा जीवन संग्राम का सिपाही पति घर लौट कर पत्नी के मन प्राणों की शीतल छाँह में विश्राम पाकर नूतन बल पाता है। पत्नी उसे नया उत्साह देकर स्वयं को धन्य मानती है। यही प्रेम का वह रूप है जो दाम्पत्य के सम्बन्धों में निखरता है, प्रौढ़ होता है। इसे पनपाने-बढ़ाने के लिए किसी से कुछ अपेक्षा करने की बजाय देने की ही भावना रखी जाय तो यह दान-प्रतिदान का क्रम चलता ही रहता है और वृद्धावस्था तक बना रहता है। यही वह समय है जब साथी की सबसे अधिक आवश्यकता होती है। किन्तु प्राय: इस अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते पति-पत्नी एक-दूसरे से बहुत कट जाते हैं। इसका कारण उस प्रेम वल्लरी को यत्नपर्वूक नहीं सींच पाना ही होता है।

प्राय: होता यह है कि युवावस्था को प्राप्त होने तक युवक-युवतियों ने जीवन साथी के भाव से किसी को पाया नहीं होता है। अत: विवाह के प्रारम्भिक दिनों में उनका पारस्परिक प्रेम, आकर्षण, आसक्ति लम्बे उपवास के बाद मिलने वाले भोजन की तरह होता है और वे दाम्पत्य सम्बन्धों के आरम्भ में ही एक दूसरे को पूरी तरह पा लेना चाहते हैं, असंयमी की तरह। इस काल में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

न तन का संयम रखना उन्हें आवश्यक लगता है, न मन का। किन्तु संयम बहुत आवश्यक होता है नहीं तो लम्बे उपवास के बाद एकदम भरपेट भोजन कर लेने की तरह ही यह असंयम हानिकारक बन जाता है। एक तरह से यदि अपने परिवार और सम्बन्धियों की ओर से कटकर एक दूसरे में ही डूब जाने की भूल यदि अनजाने में होती है, तो वह उन दोनों को स्वार्थी व बेशर्म सिद्ध करती है जो उचित नहीं। दाम्पत्य सूत्र में बँधने का अर्थ परिवार से कटकर नहीं रह जाना है। वरन् उन दायित्वों को और गहराई से लेना है। रहस्य पर आवरण पड़ा रहे। प्राप्य प्राप्य ही बना रहे तभी तक मिलन का रस, आनन्द, मधुरता बनी रहती है। इस प्रेम रस को घूँट-घूँट करके पीया जाय तो वह अधिक तृप्ति व पुष्टि देगा। पूरा घूँट एक दम उड़ेल देने पर छोटा मुँह सारा रस ग्रहण भी नहीं कर पाता वह व्यर्थ ही बह जाता है, तृप्ति भी नहीं होती और घट भी रीत जाता है।

सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (२)

दाम्पत्य जीवन में प्रवेश करते समय पति-पत्नी के मन में अपने इस जीवन की सफलता-सार्थकता के कई मीठे सपने होते हैं, वे उस समय किये गये संकल्पों को समय-समय पर दोहराते रहने, प्रेम, प्रदर्शन के दातव्य, दैहिक संसर्ग की अपेक्षा मानसिक परिचय को महत्व देने, मनोरंजन, काम संयम, धैर्य, अकार्पण्य, प्रेम प्रवाह की अविकलता, प्रारम्भिक दिनों का संयम बर्तते रहने आदि की व्यावहारिक सचाइयों को पालते रहने से साक्षर हो पाते हैं, यह पिछले लेख में बताया गया था अब उसके आगे चलते हैं।

वैवाहिक जीवन में प्राय: पति-पत्नी एक-दूसरे से जो स्नेह, संरक्षण, सहयोग, मार्ग दर्शन, प्रेम, प्रतिदान मिल रहा है, उसे तो देखने का प्रयास नहीं करते और अपने साथी से और कई अपेक्षाएँ करने लगते हैं। इस कारण धीरे-धीरे उनके जीवन में असन्तोष व विरक्ति का मन्द विष घुलने लगता है। उनका जीवन रोते-कलपते व लड़ते-झगड़ते बीतता है। आरम्भ से ही यह दृष्टिकोण लेकर चला जाय कि हमारे साथी जो कुछ मिल रहा है, वह भी नहीं मिलता तो हमारी क्या दशा होती। तो उनके एक दूसरे से असन्तुष्ट होने की स्थिति ही उत्पन्न नहीं हो। साथ रहकर एक दूसरे को अपने अनुकूल ढालने का प्रयास तो किया जाता रहे पर धैर्य का साथ भी न छोड़ा जाय।

मनुष्य का स्वभाव भूल और गल्तियाँ करने का होता है। बड़ों-बड़ों से गल्तियाँ और भूलें हुई हैं बड़ी-बड़ी। यह दाम्पत्य जीवन के दौरान भी होती हैं। उसे लेकर बात का बतंगड़ बनाने की अपेक्षा उन भूलों को, गल्तियों को सहज मानवीय कमजोरी के रूप में माना जाता रहे तो एक दूसरे से छोटा समझने और उसके प्रति प्रेम में कमी आने की बात ही उत्पन्न नहीं होती। अपने जीवनसाथी के समग्र व्यक्तित्व से प्यार करने वाले दम्पत्ति सदा एक दूसरे से सन्तुष्ट रहते हैं। साथी के गुण व दोषों को स्वाभाविक मानकर चला जाय और साथ ही दोषों के परिमार्जन, गुणों के अभिवर्धन और व्यक्तित्व के विकास की ओर ध्यान दिया जाता रहे तो उनमें गहरी समझ और प्रगाढ़ एक्य उत्पन्न होकर बढ़ने लगता है, जो दाम्पत्य जीवन की सफलता के लिये एक आवश्यक तथ्य है।

'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' की सच्चाई से पति-पत्नी भी पृथक् नहीं रह सकते। दोनों में वैचारिक दृष्टिकोण, मान्यता और सोचने का ढंग एक सा ही हो ऐसा संयोग बहुत कम देखने में आता है। यह भिन्नता समय-समय पर एक ही तथ्य पर दोनों को दो भिन्न पक्षों पर ला खड़ा करती है। ऐसी स्थिति में यदि एक ने ही या दोनों ने अपनी बात पर अड़ने की हठधर्मी दिखाने की भूल की, तो बात बिगड़ती चली जायगी। अपना पक्ष भी रखा जाय पर वह माना जाय और वही सत्य है, यह आग्रह उसके साथ न जोड़ा जाय। साथ ही जब कोई अपने विचारों, मान्यताओं व दृष्टिकोणों में वास्तव में कोई न्यूनता लगे तो वह साथी के सामने स्वीकार ले। दूसरा पक्ष उसे अपना बड़प्पन या अपनी समझदारी न समझ अपने साथी के सुलझेपन को महत्ता दे। यह रीति-नीति पारस्परिक समझ को विकसित करने के लिये बड़ी उपयोगी है।

यह वैभिन्य अपनी-अपनी पसन्द में भी होता है। यहाँ एक दूसरे की पसन्द की इज्जत करना, स्वीकारना और पूरी करना आवश्यक है न कि उस पर मुँह बिचकाना व अपनी पसन्द ही थोपना। पति को करेले की सब्जी बढ़ी अच्छी लगती है, चटक तोतई रंग पसन्द है या बात में हँसी-मजाक करना अच्छा लगता है। पर पत्नी की पसन्द उससे भिन्न है फिर भी पति की उन पसन्दों का ध्यान तो वह रख ही सकती है। यही बात पति पर भी लागू होती है। ऐसा करने से एक दूसरे के प्रति 'देखो यह मेरा कितना ध्यान रखते हैं' का भाव उत्पन्न होता है जो साथी की उपयोगिता को सिद्ध करता है जो पारस्परिक प्रेम बढ़ाने का एक आधार है।

गुण, कर्म, स्वभाव में भी प्रत्येक व्यक्ति एक सा नहीं होता। पति-पत्नी में भी यह अन्तर रहता ही है और यदि उस भिन्नता को ही महत्व देकर बात-बात पर अड़ा, खीझा और खिन्न हुआ जाता रहे तो परस्पर प्रीति कभी ठहर नहीं सकती। यह भिन्नता ही प्राय: दोनों को एक दूसरे से विरक्त व असन्तुष्ट होने का कारण बनती है। इस सम्बन्ध में दोनों को बहुत सावधान रहना चाहिए। गुण, कर्म, स्वभाव उनके अब तक के जिये हुए जीवन

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर ही नहीं पूर्व जन्म के संस्कारों द्वारा भी सिरजे होते हैं। अत: उन्हें एकदम बदला नहीं जा सकता। परिष्कार का प्रयास तो किया जाता रहे पर उन्हें लेकर दाम्पत्य सौमनस्य को, माधुर्य को नष्ट नहीं करना चाहिए। प्राय: पति-पत्नी यही भूल करते हैं एक-दूसरे को एकदम अपने अनुरूप बना लेने की, अपने करने की। किन्तु यह इतना शीघ्र सम्भव नहीं होता।

भावनाएँ होना तो बहुत उत्तम है। भावनाएँ मनुष्य को सामान्य मानव से महामानव बनने की प्रेरणा प्रदान करती रहती हैं। ये दाम्पत्य जीवन में भी एक दूसरे के प्रति देखी जाती हैं और उनका होना बहुत जरूरी भी है। किन्तु अति भावुकता से बचा ही जाना चाहिए। अति भावुकता मनुष्य के क्रिया-कलापों व अनुरक्ति को हवा में उड़ने वाले बादल की तरह अस्थिर और क्षण स्थायी बना देती है। अत: इस अति से सावधान, सचेत रहना आवश्यक होता है। पति-पत्नी को आसमान में उड़ना नहीं धरती पर रहना चाहिए। आसमान की बातें तो सोची जा सकती हैं, सोची जानी भी चाहिए पर पाँव धरती पर ही टिके होने चाहिए, जिससे कि उनके स्वप्न, दिवा स्वप्न न बनकर रह जायँ। भावनाओं का जो प्रबल प्रवाह दोनों के हृदय में बहता है उसे दिशा देने, उस प्रवाहमान जल राशि को सहारा देने के लिये धैर्य व निष्ठा के दो कूलों की भी आवश्यकता है। अति भावुकता उन्हें तोड़ देती है फिर वहाँ उस नदी का प्रवाह कोई नामोनिशां नहीं रहता।

ऐसा ही नियमन पारस्परिक आसक्ति का भी होना आवश्यक है। आरम्भ में पति-पत्नी के बीच काम करने वाला सूत्र प्राय: 'आसक्ति' होता है, जो समय के साथ प्रौढ़, पुष्ट व कल्याणकारक बनता जाता है और प्रेम में परिवर्तित होता है। इस आसक्ति का नियमन यदि न हो सका और वह मात्र दैहिक बनकर रह गई तो बड़ा संकट उपस्थित हो जाता है। इसके नियमन के लिये उसे सेवापरक बनाना उपयुक्त रहता है। यही कारण है कि नारी में सेवा के प्राकृत होने के कारण वह प्राय: दैहिक कामना में पुरुष की अपेक्षा बहुत पीछे रहती है।

पति-पत्नी मात्र स्त्री-पुरुष तो जीवन के हजारवें-लाखवें भाग में भी नहीं रहते। शेष जीवन में पति पत्नी के लिये संचालक की तरह उपार्जन करता है, उसकी रक्षा करता है। वह उसके लिये मेहनत करता है, कमाई करता है श्रमिक की तरह। मित्र की तरह स्नेह-सहयोग देता है। इसी प्रकार वह कितनी ही भूमिकाएँ निभाता है। पत्नी भी माँ की तरह उसकी सेवा करती है। भोजन कराती है, खिलाती है और पुत्री की तरह उसके सबल पौरुष की छाँह में सुरक्षा पाती है। वह मित्र की तरह कठिन समय में उसे धैर्य बँधाती है, सहयोग देती है! यह पवित्र सेवापरक, स्नेहपरक, मैत्रिपरक सुख देना व पाना ही दाम्पत्य आसक्ति को शारीरिक परिचय की सीमा से आगे बढ़ाना बहुत आवश्यक है।

पारस्परिक कोमल भावनाओं की अभिव्यक्ति आवश्यक होते हुए भी निम्नगामी नहीं होनी चाहिए। दैहिक विकारों व उसकी गरिमा घटती है। इन्हें कला और सेवा के साथ जोड़ा जा सकता है। पति-पत्नी के एकान्त क्षणों में भी इसका ध्यान रखना बहुत अच्छा होता है।

प्राय: ऐसा होता है कि पत्नी अपनी शारीरिक अस्वस्थता, मानसिक उलझन और अन्य किन्हीं कारणों से पति द्वारा चाहे गये व्यवहार या सदा की तरह किये जाने वाले व्यवहार से कुछ भिन्न रुख अपनाती है। उसे इस व्यवहार को अपनी उपेक्षा मानने की भूल करने वाले पति का यह अनुमान प्राय: गलत होता है। उन्हें उस व्यवहार के कारणों को खोजना चाहिए। नहीं तो थोड़े दिन तो वह ऐसे व्यवहार को सहता रहेगा पर मन ही मन यह धारणा पक्की होती जायेगी कि उसकी उपेक्षा हो रही है। यही भूल पत्नियाँ भी कर जाती हैं। बाहर की, व्यवसाय, नौकरी आदि की समस्याओं में उलझा पति यदि उसके बताये हुए बाजार के काम नहीं कर सका या उसके लिये समय नहीं मिला, पत्नी ने कुछ पूछा और वह कहीं और उलझा हुआ उसका उत्तर नहीं दे पाया या उसके व्यवहार में कोई रुक्षता आयी तो उसे अपनी उपेक्षा न मान उसके पीछे छिपे कारणों को खोजने का प्रयास करना आवश्यक होता है। इसके बिना सत्य क्या है पता नहीं चलता और असत्य ही सत्य बनता चला जाता है और जब यह अनुभव होने लगता है कि मेरी उपेक्षा हो रही है तो पारस्परिक वितृष्णा उत्पन्न होने लगती है। यह वितृष्णा उनके भावी जीवन के लिये अच्छी नहीं होती।

सम्पूर्ण समर्पण की जो बात दाम्पत्य जीवन के लिये आवश्यक मानी जाती है, वह वास्तव में अपने अहं का नियमन करने के अर्थ में ही सही ठहरती है। एक दूसरे की बात व व्यवहार को सहज रूप में लेने की बजाय उसे अपने अहं पर पड़ने वाली चोट समझा जाय तो पति-पत्नी में कलह का विष वृक्ष पनपने लगता है। इसलिये समझदार दम्पत्ति किसी ने कुछ कहा और वह दूसरे को प्रिय नहीं लगा, तो उसमें कहीं न कहीं दोनों का हित खोजने का प्रयास करते हैं। यह सही भी है पति-पत्नी के बीच कभी ऐसे प्रसंग आते भी हैं तो उसके पीछे उनके सम्बन्धों को मधुर बनाने का ही प्रयोजन रहता है।

किसी को अपने से बड़ा, योग्य व अनुभवी तो माना जा सकता है। किन्तु वह भी अन्तत: मनुष्य ही होता है—देवत्व और दानवत्व का मिला-जुला रूप, गुण और दोषों का एक समन्वित स्वरूप। यदि पति-पत्नी के मन में जो एक दूसरे के योग्य, बड़ा, प्रेममय आदि कोई स्वरूप बन गया है तो उसके साथ दुराग्रह नहीं जुड़ना चाहिए। मनुष्य ही मानकर चला जाना ठीक रहता है। उस मन में बनी तस्वीर के विपरीत किसी का आचरण या व्यवहार दीखे तो सहज मानव प्रकृति मानकर उसे दूर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने का प्रयास करना तो ठीक रहता है पर उस बात को लेकर अपने श्रद्धा, निष्ठा, विश्वास और ममत्व में कमी करना ठीक नहीं रहता। इससे सम्बन्धों में शैथिल्य आने लगता है और यह क्रमशः चलता ही रहा तो परिणाम बहुत बुरे होते हैं।

प्रशंसा की चमत्कारी शक्ति सर्वविदित ही है। उससे भी दम्पत्ति को लाभान्वित होने का लाभ विवेकशील दम्पत्ति उठाते हैं। प्रशंसा करना और प्रशंसा सुनना यह दोनों ही गुण पति-पत्नी अपने में विकसित करें तो वे एक दूसरे की प्रगति में ही सहायक हो सकते हैं और दाम्पत्य रस अभिवर्धन में भी।

प्रशंसा करना भी एक कला है और सुनना भी एक कला है। प्रशंसा में कार्यों को प्रमुखता दी जाय न कि व्यक्ति को और सुनने में भी अपने सत्कार्यों, व्यक्तित्व व व्यवहार के विकसित करने की कामना उत्पन्न हो न कि अहंकार। पत्नी ने सूझबूझ से कोई नुकसान होने से बचा लिया हो या कोई कार्य सुरुचिपूर्ण ढंग से ही कर दिया हो तो उसकी प्रशंसा करनी ही चाहिए। यहाँ यह सोचना कि यह तो उसका दायित्व है, प्रशंसा करने की क्या आवश्यकता यह सोचना ठीक नहीं। जो पत्नियाँ पति की प्रशंसा में कृपणता नहीं बरततीं वे उनके मन में अपना स्थायी निवास बना लेती हैं।

सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (३)

किसी के पास विश्वविद्यालय की बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ हों, प्रतिभा हो, योग्यता हो तो वह ज्ञान दाम्पत्य की सफलता में कोई विशेष योगदान देगा, यह आशा करना व्यर्थ है। कई ऐसे व्यक्ति भी अपने दाम्पत्य जीवन में असफल होते देखे जाते हैं। अतः सबको दाम्पत्य के उन व्यावहारिक सूत्रों की जानकारी होना बहुत आवश्यक है।

पति-पत्नी के बीच जो अपनेपन का भाव होता है वह प्रायः पारस्परिक शिष्टाचार व औपचारिकता को विस्मृत कर देता है। यह कुछ दम्पत्तियों के लिये जिनके बीच गहरी समझ और रुचि, स्वभाव का साम्य उत्पन्न हो गया हो, के लिये तो ठीक हो भी सकता है। किन्तु इससे पूर्व की स्थिति में शिष्टाचार व औपचारिकता का यथासाध्य निर्वाह अच्छा रहता है। इसके निर्वाह से दूसरों के लिये और बच्चों के लिये भी अच्छा रहता है। सभी इसका पालन करें तो लाभ ही होगा, हानि होने की संभावना नहीं है। कभी-कभी यह शिष्टाचार व औपचारिकता का अभाव दूसरे लोगों के सामने पति-पत्नी के अपमानित सा होने की अशोभन स्थिति उत्पन्न कर देता है। एक पक्ष अपने को आहत-अपमानित समझने लगता है जबकि दूसरे ने यह सब बिना ही सोचे कहा हो। जैसे मित्रों के सामने पत्नी के मायके वालों के सम्बन्ध में कोई ऐसी बात कह देने पर उसे वैसा ही अनुभव होता है। इसलिये अपनत्व का भाव तो रहे पर उसके साथ जो अधिकतर व अद्वैत का भाव आ जाता है उसकी अति न हो जाय। इसके लिये शिष्टाचार व औपरचारिकता का पालन ठीक ही रहता है।

कई व्यक्ति अपने मित्रों के साथ वार्तालाप करते समय भी कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करते देखे जाते हैं, जो शिष्टता की सीमा में नहीं आते। वैसा ही कुछ पत्नी के साथ भी कुछ व्यक्ति व्यवहार करते हैं। वे समझते हैं कि यह उनकी अभिन्नता की अभिव्यक्ति है। हमारे बीच कोई परायापन नहीं, यह सोचकर उस औचित्य को स्वीकारते हैं पर कभी-कभी यह अनुचित भी हो जाता है। घर में, अकेले में पत्नी को प्यार से कुछ ऐसे सम्बोधन से पुकारा जाना या बातों में वैसा कह देना तो उसे अखरेगा नहीं पर स्वाभाववश बाजार में या कई अपरिचितों के सामने वैसी बात मुँह से निकल जाने पर स्वयं पति को भी लज्जित होना पड़ता है और पत्नी को भी। पत्नी की ओर से भी ऐसी ही भूलें हो सकती हैं। समय व स्थिति को देखे बिना पति पर हुक्म चलाना प्रायः बुरा लग जाता है। यदि ऐसी आदत ही न डाली जाय तो ऐसी स्थिति से बचा जा सकता है, जो पति-पत्नी के सम्बन्धों के बीच लकीरें खीचती हैं और यह क्रम चलता रहे तो दरारें भी उत्पन्न हो जाती हैं।

कटु भाषण और गाली-गलौज, कलह आदि से दम्पत्तियों को बचना आवश्यक होता है। यह बात सही है कि जहाँ दो बर्तन होंगे तो वे भी एक दूसरे टकराकर आवाज पैदा करेंगे तो पति-पत्नी के बीच भी वैसे प्रसंग आ सकते हैं। जहाँ एक दूसरे की भूलों को, अनुचित व्यवहार को उसे बताना जरूरी हो जाता है किन्तु उनका ढंग सदा शिष्ट और सौजन्यपूर्ण हो। घर की यह बात बाहर नहीं जाये, इसका ध्यान रखना ही चाहिए। मारपीट जैसी महामूर्खतापूर्ण बात तो होनी ही नहीं चाहिए। किसी पक्ष को दूसरे से नाराजगी है, तो उसे बोल-चाल बन्द करके, खाना छोड़कर या अन्य तरीकों से भी अभिव्यक्त किया जा सकता है।

कोई ऐसा जोड़ा हो जिसमें पति किसी बात पर आवेशग्रस्त होकर पत्नी पर हाथ उठा बैठे तो उसमें पति तो महादोषी है ही। किन्तु विवाह के बन्धन कुछ ऐसे अटूट होते हैं कि उनसे मुक्ति सम्भव नहीं हो सकती, फिर ऊपर से बच्चे-बच्ची भी आ जाते हैं। ऐसी स्थिति में पत्नी को मन मार कर साथ रहना और अपमान के कड़वे घूँट पीना पड़ता है। किन्तु पत्नी यह सोचने का प्रयास करे कि पति ऐसा क्रूर क्यों हो जाता है ? क्या उन कारणों को वह दूर कर सकती है ? यदि इन प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में मिलता है तो उसे उदास या जिन्दगी से बेजार होने की अपेक्षा उन कारणों को दूर करना ही चाहिए। कोई भी व्यक्ति भीतर से वैसा क्रूर नहीं होता अतः पत्नी के ये प्रयास धैर्यपूर्वक चलते रहें तो उसकी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खोयी खुशियाँ पुनः देर-सबेर मिल ही जायेंगी। यह मार्ग अपनाने की बजाय यदि उसका ढिंढोरा पीटना आरम्भ कर दें तो परिणाम प्रायः अच्छा नहीं निकलता।

यदा-कदा एक दूसरे से सन्तुष्ट दम्पत्तियों के बीच भी किसी न किसी बात को लेकर अप्रिय प्रसंग आ जाते हैं। उन्हें टालना तो ठीक रहता है पर वे क्यों उत्पन्न हुए और भविष्य में ऐसे प्रसंग न आयें, उसका कोई स्थायी हल अपने विचार, स्वभाव, व्यवहार में सुधार करके लाया जाना अच्छा रहता है। उसे यों ही टाल दिया जाय तो फिर वैसा ही प्रसंग आ सकता है। बार-बार वैसे प्रसंग आने पर सम्बन्धों में दरार भी उत्पन्न हो सकती है।

'स्त्रियाँ ममता, सेवा, त्याग, सहनशीलता और समर्पण की देवियाँ होती हैं और पुरुष कर्म, पौरुष, दृढ़ता, रूक्षता व बुद्धि प्रधान होता है। यह सामान्य वर्गीकरण स्त्री वर्ग और पुरुष वर्ग पर तो लागू होता है किन्तु यदि कोई पति अपनी पत्नी से स्त्री वर्ग में पाये जाने वाले इन सामान्य तत्वों की अपेक्षा करे या पत्नी अपने पति का वैसा ही स्वरूप समझे जो सामान्य पुरुष वर्ग का होता है, तो उनके जीवन में असन्तोष का उत्पन्न हो जाना अधिक सम्भव होता है क्योंकि सभी पुरुष एक से नहीं होते सभी स्त्रियाँ एक-सी नहीं होतीं। इसकी अपेक्षा उनका सहधर्मी जैसा भी है, उसे समझ कर उसी रूप में स्वीकार करना सन्तोष का हेतु बनता है।

पति-पत्नी के प्रेम रूपी वृक्ष की जड़ें विश्वास की उर्वर और गहरी भूमि में जिस प्रकार बढ़ती, उसी प्रकार उसका कलेवर भी बढ़ता जाता है। पति पत्नी को परस्पर विश्वासी होना चाहिये। किसी भी शंका पर, दूसरों की कही-सुनी बातों पर विश्वास करने की अपेक्षा सीधे-सीधे एक दूसरे से पूछ लेना चाहिए। पति-पत्नी दोनों ही एक दूसरे के उस विश्वास की रक्षा अवश्य करें। वकील की तरह किसी बात पर एक दूसरे से जिरह करने की अपेक्षा संयत रहना कहीं ज्यादा अच्छा होता है। ईर्ष्या दाम्पत्य रूपी वृक्ष की जड़ों के नीचे आ जाने वाली चट्टान का काम करती है। उससे बचने का सबसे बड़ा साधन विश्वास ही है। ईर्ष्या मनोमालिन्य उपजाती है और विश्वास उसे दूर करता है।

रुपये-पैसे के मामले में पति-पत्नी के बीच कोई दुराव-छिपाव रहना ठीक नहीं होता। पति किस धन्धे से किस प्रकार कितना कमाता है, यह पत्नी को ज्ञात होना चाहिए। जो पति अपनी आय और उसके स्रोत से पत्नियों को अनभिज्ञ रखते हैं वे भूल करते हैं। जो यह मानते हैं कि यह उनका मामला है। हाँ यह ठीक है कि घर की भीतरी व्यवस्था का दायित्व सामान्य रूप से पत्नी के हाथ होता है और उपार्जन आदि बाहरी कामों का सूत्र संचालन पति करता है। दोनों अपने क्षेत्र में पूरी तरह स्वतन्त्र तो रहें पर एक दूसरे को इस बात का ज्ञान होना ही चाहिए कि परिवार की आय का स्रोत क्या है और कितना है ? वह किस प्रकार खर्च होता है।

पति द्वारा अपनी आय का पूरा ब्यौरा दे देने से पत्नी के लिये तदनुरूप ही गृह संचालन करने की सुविधा उत्पन्न हो जाती है। यह बात दूसरी है कि पत्नी अपनी दूरदर्शिता से आड़े वक्त के लिये कुछ पैसे बचाकर जोड़ती रहती है। अच्छा यह रहता है कि पति-पत्नी ही नहीं, परिवार के सब सदस्य मिलकर परिवार का बजट बनाएँ, उससे एक तो यह लाभ होगा कि सभी को पता लगेगा कि हमें अपनी सोर जितने ही पाँव पसारने हैं। दूसरे उन्हें अपने महत्व का भी भान होगा और पारिवारिक साम्राज्य में भी अपनी भूमिका पूरी तरह समझ लेंगे।

जहाँ पति-पत्नी दोनों कमाते हों वहाँ ही यह बात लागू होती रहे तो अच्छा है। अनुभवियों का कहना है कि जहाँ पति भी कमाता है और पत्नी भी कमाती है वहाँ व्यय को लेकर अधिक मतभेद खड़े होते हैं। अतः सावधानी वर्तना ही ठीक रहता है। आय-व्यय का बजट सावधानी व सूझबूझ से बनाना चाहिए।

अमेरिकन मदर्स कमेटी की अध्यक्षा श्रीमती लिलियन डी. पोलिंग का अपना मत है "मैं मानती हूँ हर परिवार को अपनी आय का दसवाँ हिस्सा परोपकार व समाजसेवी कार्यों में व्यय करना चाहिये। अधिकांश दम्पत्ति यह कहेंगे कि वे इतने सम्पन्न नहीं हैं। लेकिन जब आप अपनी आय का कुछ हिस्सा इस तरह परोपकार के लिये अलग रखने लगेंगे तो आप देखेंगे कि वास्तव में आपके हाथ उतने तंग नहीं हैं जितना कि आप अब तक समझते थे।"

श्रीमती पोलिंग का यह कथन भले ही कुछ अजीब सा लगे किन्तु इसकी सच्चाई को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मन की गरीबी/आदमी को गरीब ही बनाये रखती है। जब अपनी आय का एक निश्चित अंश ऐसे कामों के लिये निकाला जायगा तो पति-पत्नी एक अनूठे आनन्द, अनुपम आत्म-सन्तोष से आप्लावित हो उठेंगे।

ऐसी ही एक व्यावहारिक अनुभव सिद्ध राय उन्होंने महिलाओं को दी है—"वास्तव में विवाह साझेदारी है। उसमें लेना भी होता है और देना भी। सच मानिये तीन चौथाई देना पत्नी के ही हिस्से में पड़ता है। मै यह नहीं कहती कि पत्नी को पति के सही-गलत सब निर्णय चुपचाप स्वीकार कर लेने चाहिए। लेकिन झुकने में कोई नुकसान नहीं होता बल्कि झुकना एक बहुत अच्छी कसरत है। इससे शरीर लचीला बना रहता है और नैतिक और आत्मिक शक्ति बढ़ती है।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमेरिका जैसे देश जहाँ 'विमेन लिब' जैसे आन्दोलन भी हुए हैं, की एक मातृ संस्था की अध्यक्षा और अनुभवी महिला का यह सुझाव कहाँ तक युक्ति-संगत है ! यह सब दम्पत्तियों के लिये व्यावहारिक हो यह तो कहा नहीं जा सकता फिर भी पत्नी को ही तीन चौथाई देना पड़ता है, इस सच्चाई को स्वीकारना ही पड़ता है। उनका सुझाव भी उपयोगी है यह तो मानना ही पड़ेगा।

अपने वैवाहिक जीवन पर असन्तोष और अपने जीवन सहचर की अन्यों से तुलना करना, तत्सम्बन्धी अपनी निराशा एक दूसरे के सम्मुख प्रदर्शित करना उस असन्तोष को और भी गहरा और निराशा को तीव्र बना देता है। यह अच्छा दृष्टिकोण नहीं कहा जा सकता। दुनिया में एक से एक अच्छे, सुन्दर, योग्य, सम्पन्न तथा व्यवहारकुशल स्त्री, पुरुष हैं यदि उनमें से किसी एक के साथ मेरा सम्बन्ध जुड़ा होता तो मेरा जीवन कितना सुन्दर, सुखद और सफल होता यह सोचना मनुष्य को तोड़कर रख देता है। 'मैं किसके पल्ले पड़ गयी' या मेरे गले कैसे स्त्री पड़ गयी, यह रोना कुछ अर्थ नहीं रखता। उस स्थिति उबरने का एक ही मार्ग है और वह है स्वयं सतत् प्रयत्नशीलता और आशावादी बने रहने का।

पति-पत्नी के बीच शारीरिक, मानसिक आकर्षण का बना रहना दाम्पत्य की सफलता का एक आवश्यक आधार है। आकर्षण बनाए रखने के लिये सादगी, सरलता व मितव्ययता को त्याग देना आवश्यक नहीं है। आकर्षण का मूल सौन्दर्य है। 'सौन्दर्य सभी स्त्री-पुरुषों को मिला होता है।' यह कहना जितना गलत है उतना ही सही भी है। सच बात तो यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक बनावट में कहीं न कहीं, कुछ न कुछ सौन्दर्य होता ही है। सुन्दर कहे जाने वालों में कहीं न कहीं असुन्दरता दिखाई पड़ जाती है और असुन्दर माने जाने वालों में भी कहीं न कहीं सौन्दर्य होता है। पारस्परिक आकर्षण बन्धन के लिये शारीरिक सौन्दर्य का वह उजला पक्ष ही सही ढंग से दिखाया जाय तो वहीं आकर्षण जन्म ले लेता है। महत्वपूर्ण होता है प्रस्तुतिकरण का ढंग और देखने वाले का पारखीपन। पति-पत्नी यदि उस दृष्टि को उपजा सके तो वे दुनिया की निगाह में भले ही अनाकर्षक हों उनकी अपनी और एक दूसरे की निगाहों में तो आकर्षक बन ही जाते हैं और आकर्षण की उपयोगिता यहीं तक है।

शरीर की तरह मन का भी वैसा ही आकर्षण उत्पन्न किया जा सकता है। यह मानसिक आकर्षण शारीरिक आकर्षण से कई गुना महत्वपूर्ण और प्रभावी होता है। शृंगार, आभूषण, मेकअप, भड़कीले वस्त्र आदि बनावटी चमक तो उत्पन्न कर सकते हैं। किन्तु स्थायी आकर्षण, सादगी, सुरुचि, सम्पन्नता, उत्तम स्वास्थ्य व स्वच्छता में ही निवास करता है। प्रसन्नता, मधुर व्यवहार, उल्लास, विनोदप्रियता, कलाप्रियता आदि ऐसे गुण हैं जो मानसिक आकर्षण को उपजाते और स्थायी बनाते हैं।

प्रयास यह किया जाय कि पति-पत्नी जब शरीर व मन से अनाकर्षक होने की स्थिति में हों एक दूसरे के सामने पड़ने से बचें।

सफल दाम्पत्य के व्यावहारिक सत्य (४)

भावनाओं की क्रियात्मक अभिव्यक्ति और मधुर स्वप्नों को साकार करने के लिए दाम्पत्य व्यवहार की प्रमुख बातों पर पिछले लेखों में बहुत कुछ प्रकाश डाला जा चुका है। उसी क्रम में उन व्यावहारिक तथ्यों को बताया जा रहा है।

पति-पत्नी में किसी को अपनी कौटुम्बिक श्री सम्पन्नता, व्यक्तिगत सुन्दरता, योग्यता, प्रतिभा और किसी पक्ष को लेकर अभिमान नहीं करना चाहिए। पत्नी के माता-पिता अच्छे सम्पन्न हैं, बचपन में उसने उस सम्पन्नता को जी भर कर भोगा है। किन्तु उसके पति की कौटुम्बिक सम्पन्नता वैसी नहीं थी तो पत्नी को यह ध्यान रखना चाहिए कि वह अपनी बातों और व्यवहार में उसको प्रकट न करे। इससे पति का स्वाभिमान आहत होता है। जो पत्नियाँ अपने मैके की सम्पन्नता और सुसराल की विपन्नता को लेकर आलोचना, प्रशंसा करती हैं, वे इस प्रकार की भूल करके अपने सुखी गृहस्थ जीवन में आग लगाती हैं। यही बात पति द्वारा भी हो सकती है। उसी प्रकार अपनी सुन्दरता, योग्यता, शिक्षा, प्रतिभा आदि का गर्व भी किसी पक्ष को नहीं करना चाहिए। यदि ऐसा करना ही हो तो उसमें दूसरे पक्ष को भी मिलाकर व्यक्ति की नहीं दम्पत्ति की प्रशंसा करने से मनोमालिन्य उत्पन्न नहीं होता।

उसी प्रकार बाहर के व्यक्तियों के सामने पति का पत्नी से अनावश्यक सेवा लेना या उससे पत्नी की तरह नहीं नौकरानी की तरह व्यवहार करना उसे भीतर ही भीतर कचोट जाता है। पति रहे हों स्वभाव के सरल व पत्नी के हर कार्य में सहयोग देने व अनुरोध को मानने वाले पर अपनी सहेलियों और उनके मित्रों के सामने पत्नी यदि उन्हें ऐसे आदेश देती हो जैसे वे उन्हीं के वशवर्ती हैं तो पत्नी के इस व्यवहार से वे स्वयं को अपमानित ही अनुभव करेंगे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह ठीक है कि पति के हर अनुरोध को पत्नी अपना दायित्व समझकर पाल लेती है या पति अपनी पत्नी के हर अनुरोध को उसी प्रकार स्वीकारते हैं। इससे एक दूसरे को यह प्रतीति होती है 'देखो वे हमें कितना मानते हैं' और अपनी इस पारस्परिक सहकारिता को वे अपने मित्रों-परिचितों पर प्रकट करके अपने मधुर दाम्पत्य की एक झलक उन्हें दिखाना चाहते हैं। यह चाहना स्वाभाविक है और बुरा भी नहीं है पर उसके लिए जो ढंग अपनाया जाता है, वह गलत होता है। इसको वार्तालाप द्वारा भी प्रकट किया जा सकता है। आदेश अनुरोध का स्वर दूसरी तरह का हो सकता है, जिसमें अपनी गुरुता और दूसरे की लघुता की ध्वनि न निकले। पत्नी को "मधु, सुरेश के लिये चाय बनाओ।" कहने की अपेक्षा यह कहा जाय—"भाई चाय बनाना तो कोई मधु से सीखे। चीनी के साथ वह और भी कुछ मिलाती है जिसका स्वाद किसी दूसरे के हाथ की बनी चाय में नहीं मिलता। सुरेश के आने की खुशी में वैसी ही और बना दो, इसके साथ-साथ हम भी एक बार और तृप्त हो लेंगे।" तो बात कुछ और ही हो जायगी।

दाम्पत्य जीवन में स्वावलम्बन और सहयोग का समन्वय आवश्यक होता है। एक दूसरे को सहयोग देना ही चाहिए पर वह अति की सीमा न लाँघ जाय और न बिल्कुल ही असहयोग किया जाय कि दूसरा पक्ष स्वयं गृहस्थी की चक्की में अकेला पिसता हुआ अनुभव करे। सन्तुलित सहयोग से पारस्परिक प्रीति बढ़ती है पर यदि घर के हर काम को अपना काम समझकर साथी के सहयोग की अपेक्षा किये बिना किया जाता रहे तो वह दूसरे की 'उपयोगिता,' आवश्यकता पर चोट करेगा। पति यदि घर से सारे काम अपने हाथ से करने लगे तो पत्नी मन में यह सोचे बिना नहीं रह सकेगी कि इन्हें मेरी जरूरत ही क्या थी। अपने-अपने क्षेत्र का काम पति-पत्नी मुख्य रूप से संभाले पर दूसरे के कामों में भी थोड़ा सहयोग देते रहें तो इससे एक दूसरे का ध्यान रखने की बात स्पष्ट होती है जो प्रीति को प्रगाढ़ बनाती है।

पति पत्नी के काम में थोड़ा हाथ बँटा दे और पत्नी पति के कामों में सहयोग दे, यह सहयोग आवश्यक ही नहीं आकर्षक भी है। चाहे यह सहयोग किसी छोटे से काम में ही मिला हो, एक-दूसरे के मन को मुदित करता है।

पति-पत्नी के क्षेत्राधिकार सामान्य रूप से एक अलिखित विधान की तरह घर और बाहर में बँट जाता है। भारतीय ही नहीं विश्व के सभी परिवारों में सामान्यतया घर की मालिक पत्नी और बाहर का कर्ता पति होता है। अत: दोनों के बीच अपने आप हो जाने वाले इस समझौते का सीमातिक्रमण किसी को नहीं करना चाहिए। पत्नी के अधिकार क्षेत्र में पति सम्मति, सुझाव और सहयोग का अधिकारी है। यह उसका अधिकार ही नहीं दायित्व भी है। इसी प्रकार बाहर के मामलों में पत्नी के भी वैसे ही अधिकार और दायित्व होते हैं। इनका सामान्य रूप से निर्वाह होता रहे तो कोई गतिरोध उत्पन्न नहीं होता पर एक दूसरे के क्षेत्र में अनावश्यक दखलन्दाजी करने पर उत्पन्न हो सकता है। इसका ध्यान रखा जाना आवश्यक है। सम्पति के मामले में योग्यता, विवेक व बुद्धि के आधार पर किसी एक को प्रमुख बनाया जा सकता है। पर वह उसे लेकर अभिमान या दूसरे पक्ष पर दबाव डाले तो सम्बन्धों में रूढ़ता आने लगती है।

जीवन के प्रति सही दृष्टि लेकर चलने का दाम्पत्य सम्बन्धों और उनकी मधुरता पर बहुत प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति जीवन को मात्र फूलों की सेज मानकर चलते हैं या वैसा ही पाने की आकांक्षा सँजोये रहते हैं, वे भूलते हैं। जीवन में सुख और दुख दोनों ही आते हैं। दोनों को भोगने के लिये समान रूप से उत्साह सँजोए रखने वाले व्यक्ति ही उसका सच्चा आनन्द उठा सकते हैं। जो दम्पत्ति विवाह के पूर्व अपने भावी दाम्पत्य जीवन को मात्र सुखों की सेज मानकर उसमें प्रवृत्त हुए थे, उनकी यह मान्यता जब यथार्थ के थपेड़ों से टूटने लगती है तब प्राय: ऐसा होता है कि वे आगत दु:ख का कारण अपने जीवन साथी को मानने लगते हैं। यह एक प्रकार का दुराग्रह ही होता है।

जब कोई एक पक्ष जीवन को बोझिल, कँटीला और असह्य मानकर उसका कारण अपने साथी को समझने लगता है, तो बात-बात पर झल्लाने, डाँटने, फटकारने, और कलह करने लगता है। ऐसी स्थिति में दुख और भी असह्य हो जाता है। जिस दुख को एक दूसरे के स्नेह, सेवा, सहानुभूति और जीवनोत्साह के सहारे सह्य बनाया जा सकता था, वही अब भयंकर हो उठता है। इसलिये आरम्भ से ही जीवन का यथार्थ स्वरूप लेकर चलना ठीक रहता है। सम्भावित दु:खों के लिये की गयी यह पूर्व मानसिक तैयारी उन्हें सहने, परित्राण पाने में बहुत सहायक होती है।

अपने दु:ख में भी यथासम्भव बहादुरी से काम लेने वाले और अपने साथी पर उसका बोझ नहीं डालने वाले पति-पत्नी एक-दूसरे पर अपने दु:ख का भार डालकर उसे किनाराकसी करने की ओर उन्मुख नहीं करते। यह विवेकपूर्ण बात है। प्रकट करना भी पड़े तो वह इस रूप में हो कि उससे दूसरे पक्ष को चोट न पहुँचे। पति का अफसर उससे नाराज है। आफिस में वह उससे अच्छा व्यवहार नहीं करता। इससे पति दुखी है। किन्तु वह अफसर का कुछ कर नही सकता ऐसी स्थिति में आफिस में उत्पन्न हो चुके रोष को पत्नी से लड़-झगड़ कर उतारा जाय यह निरी मूर्खता ही है। पति बाहर से थका हारा लौटा है और श्रीमतीजी दिन भर के अपने कष्टों का कच्चा चिट्ठा उनके मत्थे मारकर उस खीझ से मुक्ति पा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लेती हैं जो बच्चों के ऊधम, पड़ौसियों के व्यवहार या अन्य कारणों से उपजी है। ऐसा रोज ही होने लगे तो पति-पत्नी का पारस्परिक प्रेम रंग चाहे वह कितना ही गहरा क्यों न हो, धीरे-धीरे उतरता जायगा और एक दिन जब वह बिल्कुल ही धुल-पुँछ जायेगा तो पति पत्नी एक दूसरे की सूरत से ही चिढ़ने लगेंगे।

परस्पर मिलते समय यथासम्भव प्रसन्न और उल्लसित रहना वह टॉनिक है जो दाम्पत्य जीवन के यौवन को स्थायित्व प्रदान करता है। घटनाओं पर पति पत्नी का वश न हो पर अपने आवेगों पर अंकुश लगाने की क्षमता हो तो विकट से विकट परिस्थितियों में भी एक दूसरे के सहारे हँस सकते हैं, मुस्करा सकते हैं।

पति कितना ही समझदार और पत्नी कितनी ही सहनशील हो फिर भी यह बात वे कभी पसन्द नहीं करते कि उनका साथी किसी दूसरे स्त्री-पुरुष से उनकी तुलना करें व दूसरों की सराहना करें। पत्नी को पति का यह कहना 'देखो श्रीमती माथुर किस सुघड़ता से घर सम्हालती हैं।' और पत्नी द्वारा किसी अन्य मित्र या पुरुष की प्रशंसा करना कभी एक दूसरे को अच्छा नहीं लगेगा। यह भूल अच्छे-अच्छे दम्पत्तियों में मनोमालिन्य व शंकाएँ उपजा देती हैं।

पारस्परिक एकनिष्ठा पति-पत्नी के लिये बहुत आवश्यक है। विवाह के पहले का जीवन कैसा ही क्यों न रहा हो, बाद का जीवन एकनिष्ठ होकर जीना बहुत आवश्यक है। पति भूलकर भी विवाह के पूर्व किसी अन्य स्त्री से रहे रागात्मक सम्बन्धों का जिक्र पत्नी से न करे और न ही पत्नी को इसलिये विवश करे। अति भावुकता के शिकार होकर जो पति-पत्नी अपने विश्वास या निष्ठा को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से अपने विवाह के पूर्व की ऐसी बातें एक दूसरे से कह देते हैं। यह भावुकता पिच्चाणवे प्रतिशत दम्पत्तियों के बीच सन्देह का अंकुर उपजा देती है, जो जरा सी हवा पाकर भभक उठने वाली राख में दबी चिन्गारी की तरह थोड़ा सा सहारा पाते ही पनपकर उनके विश्वास को तोड़ देते हैं।

पुत्री के लिए 'दुहिता' शब्द का प्रयोग करने के पीछे यही अर्थ है कि उसके दूर रहने में हित है। पति-पत्नी बचपन से ही एक दूसरे से परिचित होते हैं, उनके जीवन के भले-बुरे प्रसंगों से विज्ञ होते हैं तो उनके भावी जीवन में झंझावात आने की स्थितियाँ अधिक आती हैं। जीवन के बुरे प्रसंग समय पाकर वर्तमान में प्रेत की तरह आ धमकते हैं और उन्हें एक दूसरे से विरक्त बना देते हैं और किसी दृष्टि से विवाह पूर्व गुजरी सच्चाइयों को साथी पर प्रकट करना ठीक हो सकता है या नहीं यह हमारा विषय नहीं। व्यावहारिकता के क्षेत्र में तो वर्जित ही है। जो दम्पत्ति यह नहीं चाहते कि उनके दाम्पत्य जीवन में कोई झंझावात आये और विश्वास के वृक्ष पर जमे उनके नीड़ को ही बिखेर कर रख दे। उन्हें अपने अतीत के सम्बन्धों की गठरी को बँधी ही रहने देना चाहिए, साथी से कुछ भी छिपा नहीं रखने का यह भावुकता भरा जुआ उन्हें नहीं खेलना चाहिए।

विवाह के पूर्व देखे गये स्वप्न यदि मात्र कल्पना की उड़ान नहीं हैं, तो उन्हें साकार होना ही चाहिए। उन सपनों को कैसे सत्य का जामा पहनाया जा सकता है उसके लिये भावनाओं और व्यावहारिकता के दोनों पाँव को स्वस्थ व सबल बनाकर अभीष्ट लक्ष्य की ओर एक-एक डग भरते हुए बढ़ना पड़ता है। कभी गिरते भी हैं तो फिर उठ खड़े होने वाली बात को भुला नहीं देना चाहिए। यों प्रत्येक व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक रचना में भेद होता ही है फिर भी सामान्य अवयव, कलेवर, व मानस का एक सामान्य स्वरूप अवश्य होता है। ऊपर वर्णित व्यावहारिक सत्य भी सामान्य रूप से सभी दम्पत्तियों के साथ लागू होते हुए भी किन्हीं को ये निरर्थक भी लग सकते हैं। इससे इनकी उपयोगिता कम नहीं हो जाती।

दाम्पत्य जीवन की बगिया जब महकती है, तो उसके सौरभ से परिवार, समाज, राष्ट्र व विश्व भी पुलकित, प्रफुल्लित होता है। अत: दाम्पत्य की मधुरता बनी रहे, वह सफल व सार्थक हो इसमें पति-पत्नी का अपना ही सुख-दु:ख नहीं है, सारे समाज का जुड़ा है। अत: यह पति-पत्नी की कामना ही नहीं दायित्व भी है। आज के युग में स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि कुछ लोग विवाह संस्था को ही अनावश्यक मानने लगे हैं। ऐसी स्थिति में, इस बुद्धिवाद के युग में दाम्पत्य व्यवहार का जानना और भी आवश्यक हो गया है। उपरोक्त तथ्य उस प्रयोजन को बहुत कुछ पूरा कर सकते हैं।

सुखी दाम्पत्य जीवन का आधार

जरा-जरा-सी बात में पति-पत्नी झगड़ पड़ते थे। दोनों में किसी को कोई बात सहन न होती थी। पत्नी यह अनुभव कर रही थी कि दिन-प्रतिदिन उसके पति के प्यार में न्यूनता आती जा रही है। उसने पड़ौस की औरतों से भी इस बात की चर्चा चलाई। जितने मुँह उतनी बातें, सबने अपने-अपने ढंग से सुझाव प्रस्तुत किये।

रोज-रोज के झगड़े से तंग आकर पत्नी ओझा के पास पहुँची। उसने कहा 'महाराज ! मैं बहुत उम्मीद लेकर आपके पास आई हूँ, यदि आप मेरे कष्टों को दूर करने के लिए कुछ भी प्रयत्न न करेंगे तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। मैं अपने पति से बहुत तंग आ गई हूँ। एक दिन वह था जब उन्हें मेरी समीपता में ही सदैव सुख और आनन्द का अनुभव होता था। पर आज स्थिति बिल्कुल विपरीत है। मेरी कोई बात नहीं सुनता जब-तब हाथ भी छोड़ बैठता है।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओझा ने धूनी सुलगाई। आग जल उठी। वह धुएँ की ओर फूँक मारता गया और कुछ मंत्र पढ़ता गया। फिर बोला 'तेरे पति को बस में करना कोई आसान कार्य नहीं है। उस पर जो भूत सवार है, उसके लिए साधारण गण्डे, ताबीज से तो कोई कार्य चल न सकेगा। यदि तू सचमुच कुछ लाभ चाहती है तो मुझे सिंह के तीन बाल लाकर देने होंगे। उन पर मंत्र पढ़ा जायेगा और फिर यही ताबीज में भरकर तुझे दिये जायेंगे।'

'ठीक है महराज ! एक दो शिकारियों से सम्पर्क करूँगी। उनके पास तो बाल क्या सिंह का पूरा चमड़ा ही मिल जायेगा।'

'नहीं ! नहीं !! किसी मरे सिंह के बाल नहीं चाहिये वरन् जीवित सिंह की गर्दन के बालों की आवश्यकता पड़ेगी। वह सिंह जितना जोशीला होगा उतनी ही जल्दी तेरे पति की आदतों पर काबू पाया जा सकेगा।'

वह महिला निराश होकर अपने घर चली गई। सोचती रही कि सिंह के बाल कहाँ मिल सकते हैं ? उसे तीन-चार दिन पुरानी एक बात याद आ गई कि गाँव के कुछ लोग सिंह के आने और भेड़-बकरी ले जाने की शिकायत कर रहे थे।

उसने पता लगाया, कितनी ही घटनाएँ वह सिंह कर चुका था। लोगों को अपना जीवन बचाना बड़ा कठिन हो रहा था। कितने ही व्यक्ति अपने छोटे बच्चों को दूसरी जगह रिश्तेदारियों में भेजने की बात सोच रहे थे। महिला ने गाँव के जबान व्यक्तियों को उकसाया। दिलेरों के हौंसले बढ़ाये, कुछ व्यक्ति लाठियाँ ले-लेकर जंगल के उस रास्ते पर पहुँचे जिधर से प्राय: सिंह आया करता था। पर सिंह की दहाड़ सुनकर मुठभेड़ करने की हिम्मत किसी की न पड़ी, लोग उल्टे पाँव जान बचाकर घर की ओर भागे।

महिला ने बहुत तरकीबें सोचीं आखिर एक दिन वह अपना बकरा लेकर गाँव से बाहर गई और जिधर से सिंह आता था उधर छोड़ दिया। वह थोड़ी दूर पर खड़ी हो गई। सिंह आया और जबरन उसको घसीटता हुआ ले गया। इस प्रकार सिंह को उस रास्ते पर कई दिन तक बकरे का शिकार मिलता रहा। वह बड़ा खुश था। अब तो वह उस महिला को भी पहचानने लगा था। वह बकरे के पास खड़ी रहती फिर भी सिंह उस महिला से कुछ भी न कहता।

धीरे-धीरे महिला ने उस सिंह को अपने वश में करना शुरू कर दिया। वह बड़े प्यार से उसे पुचकारने लगी। कभी-कभी उस पर हाथ भी फिरा देती थी। वह सिंह उस महिला में अपनत्व देख रहा था। जब गाँव के अन्य लोग उस सिंह को मारकर भागना चाहते थे, तब वह महिला उसके लिए नित्य एक बकरा भेंट कर रही थी। महिला की इस उदारता से सिंह मन ही मन प्रसन्न था। कभी-कभी उसके चरणों को अपनी जीभ से चाटकर अपनी कृतज्ञता प्रकट कर देता था।

एक दिन सिंह बकरा खाने में तल्लीन था। उस महिला ने सिंह को पुचकारा, प्यार से हाथ फिराया और एक-एक करके गर्दन के तीन बाल उखाड़ लिये। सिंह टस से मस न हुआ, वह अपना काम करके घर चली आई।

दूसरे दिन उसने ओझा के पास पहुँचकर वह तीनों बाल देते हुये ताबीज बनाने के लिए निवेदन किया।

ओझा आश्चर्य से चकित रह गया कि यह महिला जोशीले सिंह के बाल उखाड़ कर कैसे ले आई। जब उसने सारी बात कह-सुनाई, तब तो वह महिला की सूझ-बूझ तथा बहादुरी की प्रशंसा किये बिना न रह सका। उसने कहा 'देवी ! तुमने खिला-पिलाकर उस खूँखार सिंह को भी अपने कब्जे में कर लिया, क्या इतने ही प्यार से नित्य अपना स्नेह अपने पति के साथ यह व्यवहार करके और मिलन से उसे अपना नहीं बनाया जा सकता ? पति तुमसे मधुर व्यवहार की ही तो आशा करता है ? इसमें क्या बुराई है, दिन भर जो आदमी काम करके आता है। वह कितना थका होता है ? उस समय उसकी इच्छा होती है कि पत्नी मीठी-मीठी बातों से उसकी थकान को दूर कर नई स्फूर्ति उत्पन्न कर दे और तुम अपने पूर्ण व्यवहार से उसे अपना बना सकती हो।

तुम उनकी बात को न सुनकर उपेक्षा करके झगड़ा पैदा करती हो। यदि तू ही उसे प्रेम प्रदान करे तो क्या वह तेरा ध्यान न रखे। तू घर जा। प्रेम से जब हिंसक सिंह को अपना बना सकती है, तो क्या तेरा पति उस सिंह से भी अधिक क्रूर है, जो गाँव वालों के कितने ही जानवर साफ कर गया है।

और वह महिला बिना ताबीज के ही घर लौट गई।

दाम्पत्य जीवन में आनन्द की सृष्टि

परिस्थितियाँ और जीवनसंघर्ष वैसे ही सामान्य आदमी का चैन छीन लेती हैं। बाहर के अनुभव, कष्ट, कठिनाइयाँ और अवसादपूर्ण प्रतिक्रियायें लेकर आदमी घर लौटता है तो यह आशा हर किसी को होती है कि उन यातनाओं से कम से कम यहाँ तो छुटकारा मिल जाय। परन्तु स्थिति इसके विपरीत ही दिखायी देती है। घर का वातावरण बाहर ही अपेक्षा और भी अधिक बोझिल तथा अवसाद पूर्ण दिखायी देता है।

हमें उन कारणों को तलाशना चाहिए, जिनकी वजह से हमारा गृहस्थ जीवन नर्क की यातनाओं से भरा होता है। अधिकांश लोगों को यह शिकायत रहती है कि उनका दाम्पत्य जीवन सुखमय और मधुर होने की अपेक्षा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कष्टपूर्ण और कटु ही है। चाहे कोई कहे या न कहे घर से निकलते समय और घर में भी पति-पत्नी के चेहरे पर छाया रहने वाला नैराश्य और उद्वेग इस तथ्य को उजागर कर ही देता है।

व्यक्ति की आधी से अधिक परेशानियाँ असन्तुष्ट दाम्पत्य और गृहस्थ जीवन में परस्पर सम्बन्धों के कारण ही जन्म लेती हैं। विचारपूर्वक उन कारणों को ढूँढ़ा और निकाला जाय तो हर कोई सुखी और सन्तुष्ट रह सकता है। बाहर की लाख प्रतिकूल परिस्थितियाँ और विपत्तियाँ भी उसके आनन्द-उल्लास को छीन नहीं सकतीं। क्योंकि उसका अपना जीवन और अपने अति आत्मीय सम्बन्ध अमृत आनन्द की वर्षा कर रहे होते हैं। इसके विपरीत किसी को बाहर कितना ही सुख-सन्तोष क्यों न मिल रहा हो, निरानन्द दाम्पत्य गार्हस्थ्य जीवन उसे नीरस ही बना देगा। जैसे दाँतों में लगा हुआ नमक का कण मिष्ठान्न को भी वे स्वाद बना देता है।

दाम्पत्य-जीवन को इसीलिए योग साधना के रूप में निरूपित किया गया है। हम अपने जीवन में इस सर्वाधिक सहज साधना को पूरा कर लें तो आधी से अधिक चिन्तायें और परेशानियों को समाधान करने में सफल हो सकते हैं। शेष समस्यायें भी आसानी से सुलझायी जा सकेंगी।

महात्मा गाँधी ने अपनी सत्य के प्रयोग-आत्मकथा पुस्तक में उन सभी विशेषताओं को सन्निहित किया है। जिनका उन्होंने अनुभव किया। दाम्पत्य जीवन में उनके अनुभवों का निचोड़ है—पति-पत्नी का एक-दूसरे के प्रति स्वस्थ और सही दृष्टिकोण, इस सूत्र को भली भाँति समझ लिया जाय और व्यवहृत किया जाय तो—गृहस्थ योग को पूर्णतया चरितार्थ और फलित किया जा सकता है।

अपने प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख करते हुए महात्मा गाँधी ने लिखा है—"मैं जितना प्रेमी पति था उतना ही क्रूर भी था। मैंने अपनी पत्नी को कई कष्ट दिये। उस हिंसा के लिए मैं अपने आपको कभी क्षमा नहीं कर सकता। भारत की स्त्री ही ऐसे दुःखों को सहन कर सकती है। इसीलिए मैं स्त्री को सहनशीलता की मूर्ति मानता हूँ।"

किसी न किसी रूप में पत्नी के प्रति इस प्रकार का व्यवहार या ऐसी संभावनाओं वाला दृष्टिकोण वे पति अक्सर अपनाते हैं, जिनके कलहपूर्ण दात्पत्य जीवन में पत्नी का कोई दोष नहीं होता। इस दृष्टिकोण के जन्म का कारण पति के मन में पलने वाला वह अहंकार है जिसके अनुसार वह अपनी पत्नी को स्वभावतः दूसरों के आश्रित समझता है। यह अहंकार एकदम झूठे आधार पर जन्म लेता है। अब तो स्त्रियाँ भी जीविका के क्षेत्र में पुरुषों के समान भाग लेकर यह सिद्ध कर रही हैं कि कमाने, उपार्जन करने की शक्ति उनमें भी है।

जो घर का कामकाज ही करने में लगी रहती हैं उनके बारे में भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे उपार्जन में अक्षम हैं। वस्तुतः घर की अन्दरूनी जिम्मेदारियाँ सम्हालने में उनका समय और श्रम लग रहा है, जिनके लिये एक दो नौकर भी अपर्याप्त है। यदि पत्नी का श्रम इस कार्य में लग रहा है तो उसे पराश्रित कैसे कहना कहाँ तक उचित है।

पैसे कमाने और गृह-व्यवस्था में अन्तिम निर्णय देने वाला होने के कारण पुरुष का स्वयं का वैशिष्ट्य बोध भी पत्नी के प्रति गिरे हुए स्तर का दृष्टिकोण अपनाने के लिए बाध्य करता है। स्वभाव से ही विनीता-वत्सला नारी को अपने इस वैशिष्ट्य बोध के कारण वह दासी समझने लगता है। यह भी सर्वथा अवांछनीय है। सन्देह और अविश्वास के राक्षसों को आमन्त्रित करने वाला यह एक बहुत बड़ा कारण है।

बहुत बार अहंकार सात्विकता और आदर्शवाद का रूप धारण कर भी दाम्पत्य जीवन में घुस आता है। इस अवस्था में आदर्शवादी पति स्वयं को पत्नी का शिक्षक समझने लगते हैं। महात्मा गाँधी ने एक ऐसी ही घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है—'डरबन और जोहान्स-वर्ग में मेरे साथ कई मित्र और बहुत बार मेरे कारकुन भी रहते थे। मुझे याद नहीं आता कि कभी उनके विषय में मेरे मन में कोई भेदभाव पैदा हुआ हो। मैं उन्हें बिल्कुल घर के जैसा समझता था।'

'मेरा एक क्लर्क ईसाई था। उसके माँ-बाप पंचम जाति के थे। कमरों में पेशाब के लिए अलग बर्तन रखे जाते। उन्हें साफ करने का काम हम दोनों ही करते और बर्तन तो कस्तूरबा ही उठाकर साफ कर देती, लेकिन इन भाई का बर्तन उठाना उसे असह्य मालूम हुआ। इसलिए हम दोनों में खूब विवाद हुआ। यदि मैं उठाता हूँ तो उसे अच्छा नहीं लगता और खुद उठाना उसके लिए कठिन था। फिर भी आँखों से मोती की बूँदें टपकाती हुई, मुझे उलाहना देती सीढ़ियों से बर्तन लेकर उतर रही थीं।'

'मुझे यह सहन नहीं हुआ। मैं स्वयं को उसका शिक्षक मानता था। इसलिए महज बर्तन उठाकर ले जाना मुझे अच्छा नहीं लगा। मैं चाहता था कि वह जो भी काम करे, प्रसन्नतापूर्वक करे। इसके लिए मैंने उसे डाँटा-डपटा, वह भी कुछ बोली और मैं ईश्वर को भूल गया। मैंने कहा—'देखो यह बखेड़ा मेरे यहाँ नहीं चलेगा।'

उसे यह बात तीर की तरह लगी। मरे हुए दिल से तो संभालो अपना घर। यह मैं चली।

उस समय मैं ईश्वर को भूल गया। मैंने उसका हाथ पकड़ा और सीढ़ी के सामने उस दीन अबला को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

खींचकर ले आया। दरवाजा आधा खोला था कि, आँखों में गंगा-यमुना की धार बहाती कस्तूरबा बोली—"तुम्हें तो शर्म है नहीं पर मुझे है। जरा तो लजाओ मैं बाहर निकल कर जाऊँ कहाँ।"

"यह सुनकर मैं मन ही मन शरमा गया और आज भी जब इस प्रकार की घटनायें याद आती हैं, तो मुझे बड़ा पश्चात्ताप होता है। हर बार उसकी सहनशीलता ने ही विजय प्राप्त की।"

मैं पति हूँ इस कारण पत्नी को मेरी बात माननी ही चाहिए—यह रोग सभी स्तर के लोगों में फैला हुआ है। विचारशील भी और सामान्य व्यक्ति भी अपना अधिकार जताकर, पत्नी का धर्म बताकर मनमानी इच्छा आदेश देते रहते हैं। पत्नी भले ही उस बात को अपनी सहजशीलता के कारण स्वीकार कर ले परन्तु वह व्यथा कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में फूटेगी तो सही। कोई भी बोझ अधिक समय तक ढो या सहा नहीं जा सकता। गृहस्थ में मतभेद, क्लेश, घुटन और अलगाव का वातावरण पैदा करने में यह धारणा कारण बनती है।

जब यह समझा और विश्वास कर लिया जाता है कि पत्नी पति की दासी नहीं, सहधर्मिणी है तो दाम्पत्य जीवन में एक नया आयाम आ प्रस्तुत होता है। दृष्टिकोण परिवर्तन से रवैया और व्यवहार भी बदलना चाहिए—उस आयाम को अनुकूल स्वरूप तभी तो मिलेगा। कोई किसी से छोटा नहीं, विवशता से आश्रित भी नहीं और अधिकारिक रूप से आज्ञानुवर्ती भी नहीं।

पत्नी को सहधर्मिणी, सहयोगी, साथी, सहचर मानना दाम्पत्य सुख का प्रथम और प्रमुख सूत्र है। दोनों एक दूसरे के सुख-दुख में समान भागीदार हैं। प्रेम-कर्तव्य के नाते एक दूसरे का मार्गदर्शन, हित चिन्तन तो किया ही जाय परन्तु अधिकार जताकर किसी को अपना इच्छानुवर्ती न बनाया जाय।

ऐसा दृष्टिकोण अपना लेने के बाद तो दूसरा पक्ष भी अपने सहचर का दृष्टिकोण और विचार समझने, प्रेरणा ग्रहण करने का प्रयास करेगा। इस प्रयोग में यह भय नहीं करना चाहिए कि प्रतिपक्ष स्वच्छन्द या निरंकुश बन जायगा। बल्कि स्वच्छन्द और निरंकुश होने का भय तो उस स्थिति में अधिक रहता है, जबकि किसी पर अपना अधिकार सिद्ध किया जाता है।

पश्चिम का नारी स्वातन्त्र्य आन्दोलन इसी प्रतिक्रिया का परिणाम है। यह बात और है कि वहाँ के पुरुष वर्ग ने नारी को अन्य प्रकार से भी उत्पीड़ित किया हो। परन्तु स्त्री ज्यों-ज्यों जागरूक होती जाती है, त्यों-त्यों पुरुष के अधिकार, अहंकार की प्रतिक्रिया उसे विद्रोहिणी बनाती चलती है और विद्रोह इस सीमा तक बढ़ जाता है कि वह पति की उचित बात को भी स्वीकार करना तो दूर, सुनना भी पसन्द नहीं करती।

सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने के बाद गाँधीजी इस विचार परिपक्वता को अनुभव सिद्ध कर चुके थे। तब उन्होंने अपनी पत्नी से सहयोग देने के लिए इसलिए नहीं कहा कि वह कहीं पुरानी आदत की ही अधिकार बोध—की ही पुनरावृत्ति न समझे। १९१३-१४ में जब वे दक्षिण अफ्रीका में थे, तब वहाँ के एक न्यायालय ने निर्णय दिया कि इस देश के कानून की दृष्टि में वही विवाह वैध है जो ईसाई धर्म के अनुसार किया गया हो एवं अन्य विधि-विधान से किये गये विवाह विवाह न समझे जायँ। इसके अनुसार दक्षिण अफ्रीका में रह रहीं कई भारतीय स्त्रियों का धर्मपत्नी का दर्जा न रहा।

महात्मा गाँधी से प्रभावित भारतीय स्त्रियों ने सत्याग्रह का निश्चय किया और उन्होंने टॉल्सटॉय आश्रम की अपनी मानस बहनों को सत्याग्रह का निमन्त्रण दिया। फिनिक्स में भी उन्होंने इस बात की चर्चा की परन्तु कस्तूरबा से इस विषय में कुछ नहीं कहा। कारण बताते हुए उन्होंने लिखा है—"ऐसे समय में हर काम अपने आप किये जायें तो ही उनका महत्व है। मैं नहीं चाहता था कि वह मेरे कहने मात्र से इस सिद्धान्त और काम को करे।"

इस अवसर पर कस्तूरबा ने यह प्रश्न भी उठाया था कि गाँधीजी अन्य बहनों की तरह उनसे सत्याग्रह में भाग लेने के लिए क्यों नहीं कहते। गाँधीजी ने तब यही कहा—"यह काम तुम अपनी मर्जी से करो तो बड़ी खुशी की बात है। जहाँ तक मेरे कहने का सवाल है मैंने इसलिए नहीं कहा कि अगर तुम उसे मेरी आज्ञा समझ कर जेल चली भी जाओ, तो उससे फायदे की अपेक्षा नुक्सान होने की गुंजायश ही ज्यादा है। सोचो अगर अदालत में खड़े होते समय तुम्हारे हाथ-पाँव काँपने लगें तो मेरी क्या दशा होगी।"

इस पर कस्तूरबा ने स्वेच्छा से कहा—"यदि मैं हिम्मत हारकर घर जाऊँ, तो मुझे स्वीकार मत करना।"

अधिकार-भावना को पूरी तरह मन से निकाल देने पर जीवन साथी के चरित्र में इस प्रकार की दृढ़ता और स्थायित्व आता है। यदि हमारे विचार सत्य, न्याय और सेवा भाव से ओत-प्रोत, प्रखर हों तो निरंकुश उच्छृंखलता की राई-रत्ती भी गुंजायश नहीं रहती है।

कितना अच्छा हो प्रत्येक व्यक्ति अपने दाम्पत्य जीवन में इतना स्वस्थ दृष्टिकोण समाहित कर सके। विचारशील और गृहस्थ में आनन्द-उल्लास का वातावरण बनाने के लिये आकुल लोगों को तो सर्वप्रथम यही मन्त्र साधना चाहिए।

कण कण जोरे मन जुरै

उपयोगी वस्तुओं का एक-एक टुकड़ा जोड़कर रखने से कुछ दिन में उसकी इतनी बड़ी मात्रा इकट्ठी हो जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, जिससे कोई बड़ी आय पैदा की जा सकती है या किसी कार-रोजगार के लिये सामग्री बनाई जा सकती है। छोटी-छोटी वस्तुयें बेकार समझ कर फेंक दी जाती हैं, पर यदि उन्हें हिफाजत से रखा जाय तो उन्हीं वस्तुओं से बड़ा लाभ निकल सकता है।

गृहस्थ जीवन में यह प्रयोग बड़े लाभ की वस्तु है। इससे बड़े आयोजनों में काम आने योग्य पूँजी इकट्ठी की जा सकती है या ऐसी वस्तुयें इकट्ठी की जा सकती हैं जिनसे 'फुरसत की आजीविका' चलाई जा सकती है। कण-कण का जोड़ कर एक मन हो जाता है। एक-एक सींक जोड़कर बुहारी बन जाती है। जिन्हें यह विद्या आ जाय वे धन के लिये परेशान नहीं हो सकते और उनकी हर टूटी-फूटी वस्तु का भी उपयोग हो जाता है।

घर में एक ऐसी सन्दूक रखिये, जिसके ऊपर दस नये पैसे का सिक्का डालने भर की जगह हो। उसमें मजबूत ताला लगा कर, चाहें तो उसे सील भी करके रख दें और प्रतिदिन अपनी आय से १० नये पैसे का एक सिक्का निकाल कर उसमें डाल दिया करें। १० नये पैसे का कोई बड़ा महत्व नहीं है, इससे आपके दैनिक खर्चे में कोई परेशानी नहीं आ सकती।

एक महीने में इस सन्दूक में ३० × १० = ३०० पैसे अर्थात् ३ रु. हो जाते हैं, एक वर्ष में यह रकम ३× १२ = ३६ हो जाती है। मान लीजिये आपकी आयु अभी १५ वर्ष है। तीस वर्ष की आयु में आपके परिवार का भार आप पर आ जाता है, उस समय आपको किसी रोजगार के लिये पूँजी की जरूरत पड़ती है तो आपको औरों के आगे हाथ पसारने की जरूरत न पड़ेगी। १५ वर्ष की जमा बचत ३६ × १५ = ५४० रु. होगी जो एक साधारण व्यवसाय के लिये पर्याप्त रकम होगी। यदि इस बचत को हर महीने सरकारी बचत योजना के अनुसार जमा कराया जाता रहता तो यही रकम डयौढ़ी-दूनी हो जाती।

बेटी की शादी या बच्चे की पढ़ाई, किसी बीमारी या कोई आवश्यक वस्तु खरीदने में भी इस रकम का सदुपयोग हो सकता है। अचानक इतनी रकम की आवश्यकता पड़ जाती है और आपके पास बचत न होती तो आप औरों के कर्जदार हो गये होते। पर आपकी कण-कण जोड़ने की आदत ने आपका कितना हित साधा, कितना बड़ा काम निकाला।

धन जोड़ने के सम्बन्ध में ही यह बात लागू नहीं होती, आप हर क्षेत्र में इससे लाभ उठा सकते हैं।

साबरमती आश्रम में बापूजी के निर्देशानुसार दातौन का ऊपर का कुचला हुआ भाग तो काट कर फेंक दिया जाता था और नीचे के भाग को धोकर रख लिया जाता था। एक महीने में यह लकड़ियाँ इतनी हो जाती थीं जितने से एक दिन का आग जलाने का काम लिया जाता था। आप चाहें तो एक-एक लकड़ी का टुकड़ा इकट्ठा कर अपनी धर्मपत्नी को चूल्हा जलाने की सुविधा बढ़ा सकते हैं।

आपके घर कोई पत्रिका आती है या कोई अखबार आता है। उसे पढ़कर यों ही न फेंक दिया करें। कृपया उसे किसी अलमारी में सुरक्षित रख दिया करें। एक महीने में जितने कागज इकट्ठे हो जायँ, उन्हें एक दिन बैठकर छोटे-बड़े लिफाफे बनाकर अपने पंसारी को बेंच दिया करें, इससे उन अखबारों की कीमत भी वूसल हो जाती है और इतने दिन के संचय का कुछ न कुछ लाभ भी मिल जाता है।

एक दरी खरीदने में दस रुपये लगते हैं। घर की आय इतनी नहीं होती कि सबके लिये दरी की व्यवस्था हो सके। आपकी धोतियाँ पुरानी होकर फट जाती हैं, इन्हें फेंकें नहीं, धोबी के धुलाकर रखते चलें। दो-चार धोतियाँ इकट्ठी हो जायँ तो उन सबको मिलाकर बच्चों के बिछाने लायक 'दसौने' तैयार किये जा सकते हैं और एक दरी की कीमत १० रु. बचाई जा सकती है।

घर में शीशे की बोतलें, बल्ब आदि टूटते रहते हैं। बहुत-सा लोहे का समान रद्दी हो जाता है। उसे फेंककर दूसरों की मुसीबत बढ़ाने के बजाय आप किसी सुरक्षित स्थान पर रखते रहिये और जब उसकी मात्रा ४-५ सेर हो जाय तो किसी रद्दी सामान खरीदने वाले को बेचकर पैसे वसूल कर सकते हैं। गाँवों के किसान रस्सियों के टुकड़े इकट्ठे करते रहते हैं। कुछ दिन में फेरी वाले आकर उसे खरीद ले जाते हैं। यह बेकार रस्सियाँ कागज बनाने के काम आ जाती हैं। बाजार में इनकी कीमत २० रु. से लेकर ३० रु. मन तक की होती है। गाँव के चतुर व्यक्ति फुरसत के समय औरों की रस्सियाँ खरीद कर अच्छी कमाई कर लेते हैं।

दरवाजे के सामने लोग नीम के पेड़ रखते हैं। उनकी निबौलियाँ गिरकर यों ही बर्बाद हो जाती हैं। इन्हें इकट्ठा कर घूरे में डालकर खाद बनाई जा सकती है या उन निबौलियों को इकट्ठा कर उनसे तेल निकाला जा सकता है। मच्छरों से बचने और त्वचा की बीमारियों में यह तेल बड़ा लाभदायक सिद्ध होता है। इससे दवा के पैसे बचते हैं।

आपके घर में आटे को छानकर रोटियाँ बनती हैं। चोकर निकाल कर बाहर फेंक दिया जाता है। अब इसे सुरक्षित रखा करिये और हर पन्द्रहवें दिन उसे पानी में घोलकर छान लिया कीजिये। चोकर में जो आटा होगा, वह पानी में घुल जायगा। इसमें गुड़ या चीनी मिलाकर आग पर चढ़ा दीजिये। आपके परिवार के लिये एक समय का स्वादिष्ट आहार निकल आयेगा। महीने में दो दिन भी इस तरह करें तो प्रति माह ५ या १० रुपये के अन्न की बचत कर सकते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घर में पत्तेदार सब्जियाँ आती हैं, तो उनके पत्ते तोड़ कर फेंक दिये जाते हैं। मूली, शलजम, फूलगोभी आदि के पत्तों में विटामिन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है। सब्जी के साथ इन पत्तों को भी काटकर पका लिया करें, जिससे कम पैसे की सब्जी से काम चल जाता है और उससे शरीर को भी लाभ मिलता है।

घर के आस-पास कुछ न कुछ बेकार जगह प्राय: सब घरों में होती है। उसे गोड़कर छोटी-छोटी क्यारियाँ बना लेनी चाहिये। बरसात के दिनों में उन स्थानों में फूलों तथा सब्जियों के बीज डाल देने चाहिये। यह कार्य घर के बच्चे बड़ी रुचिपूर्वक करते हैं। पौधों की देख-रेख, नराई, गोड़ाई तथा पानी देने का काम उन्हें ही सौंप देना चाहिये। अच्छी तरह देखभाल की जाय तो इस तरह ४ महीने तक सब्जी प्राप्त की जा सकती है। फूल बारहमासी भी हो सकते हैं। उनसे पूजन का भी काम हो सकता है और घर के आस-पास का वातावरण भी सुन्दर और खुशबूदार होता है।

'तुलसी के अमृतोपम गुण' पुस्तक उठाइये। आप देखेंगे कि उसमें बहुत ही कम खर्च में बन जाने वाली उपयोगी औषधियाँ दी हुई हैं। इन औषधियों को बनाकर छोटी-छोटी शीशियों में रखकर उनमें नाम लिखकर रख लीजिये और कम पैसे में लोगों को दिया कीजिये। इससे लोगों की भलाई भी होगी और आपके समय का आर्थिक उपयोग भी हो जायेगा।

जगह हो तो तुलसी के पौधे अपने घर के आस-पास ही बड़ी मात्रा में उगाये जा सकते हैं। जगह न हो तो उन्हें गमलों में भी लगाया जा सकता है। तुलसी के पौधों की तरह नीबू, पपीते, आम, जामुन आदि के बाग भी लगाये जा सकते हैं।

बबूल की छाल या बादाम के छिलके जलाकर उससे अच्छा दन्त-मंजन बनाकर रखा जा सकता है।

कुछ पढ़े-लिखे लोग स्कूल या नौकरियों से लौटकर घर में साबुन बनाने, रेडियो असेम्बुल करने, घड़ी सुधारने आदि की कला भी सीख कर उसका लाभ उठा सकते हैं।

आपके यह छोटे-छोटे साधन परिवार के प्रत्येक व्यक्तियों की रुचि में सम्मिलित हो जायँ, तो उससे आर्थिक जीवन की अनेक कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं। ऐसा करना कुछ बुरा नहीं होता। उससे समय की बचत का उपयोग भी हो जाता है, तो बेकारी की समस्या का हल भी निकल आता है।

छोटी-छोटी वस्तुओं का संग्रह और उनसे लाभ उठाना एक अच्छी आदत है। इससे मनुष्य की रचनात्मक बुद्धि का विकास होता है और धन की परेशानी दूर होती है। छोटी-छोटी बातें एक बड़ी व्यवस्था का निर्माण करती हैं, छोटी-छोटी आय से एक बड़ी आय बन जाती है और उससे बड़े-बड़े काम तक सध जाते हैं।

गृहस्थ योगी

गृहस्थ जिसने धर्मपरायण होकर काम, क्रोध, लोभ और मोह को वश कर लिया है, सच्चा योगी है। गेरुआ वस्त्र धारण करने वाला लोक में मान, बड़ाई तथा मोह रखने वाला पुरुष सच्चा योगी नहीं कहा जाता। क्योंकि गृहस्थ अपने समस्त व्यवहारों को निरन्तर करता रहता है, यदि उसका चित्त क्षीण वासना वाला है, तो वह योगी ही है। संन्यासी का चित्त यदि समाधिस्थान में चंचल है, तो वह चंचलता ब्रह्म में सावधान उन्मन्त के नृत्य के तुल्य है। यदि कोई संन्यासी अपने शिष्यों तथा शिष्याओं से सेवा कराते हैं, तो धर्मिष्ठ गृहस्थ को अपने पुत्रों तथा पुत्र वधुओं से सेवा कराने में क्या हर्ज है ? गृहस्थाश्रमी कर्मों की फलासक्ति का त्याग कर समय विभाग द्वारा अर्थ, धर्म, काम का अनुष्ठान करते हुए ब्रह्मपरायण होकर मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं, तभी तो गृहस्थों के लिये पंच महायज्ञ का विधान बतलाया गया है। इन सबका त्याग करके मोक्ष के लिये साधना करना कष्टसाध्य है। किन्तु फल की कामना छोड़ के इन कर्मों को करते हुए अन्त:करण की शुद्धि द्वारा निश्श्रेयस प्राप्त करना चाहिये। देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण को चुकाकर ही मनुष्य बन्धन-मुक्त हो सकता है। जो बिना ऋण चुकाये भाग निकलता है, वह अवश्य पकड़ा जाता है, उसे येन-केन-प्रकारेण ऋण को चुकाना ही पड़ता है। एक जन्म में न सही, तो अनेक जन्मों में। तीनों ऋण से मुक्त होने के पश्चात् जिस दिन वैराग्य हो उसी दिन संन्यास ले सकता है। बिना ज्ञान और वैराग्य के संन्यास लेना निषेध है। आजकल प्राय: ऐसे संन्यासी देखने में आते हैं, जो कि दमड़ी चमड़ी से लगे हुए हैं। भविष्य पुराण का वचन है—

मिष्ठान्न कामैरल्पज्ञैर्लोलुपैर्वञ्चकै: कलौ।

ज्ञान वैराग्य हीनैस्तु, संन्यासोऽस्तं गमिष्यति।।

अर्थ—कलियुग में जिह्वा लोलुप, अल्पज्ञानी, लोभी, वंचक तथा ज्ञान, वैराग्यहीन पुरुषों के कारण संन्यास नष्ट हो जायगा। इसी कारण योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान् कलियुग के आने से प्रथम ही अर्जुन को उपदेश कर गए हैं—

संन्यास कर्म योगश्च, निश्श्रेयस् करावुभौ।

तयोस्तु कर्म संन्यासात्कर्म योगी विशिष्यते।।

अर्थ—यद्यपि संन्यास और कर्म योग समान निश्श्रेयस्कर हैं, तथापि मेरे विचार में संन्यास की अपेक्षा कर्म योग ही अधिक उत्तम है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यज्ञ, दान, तप तथा कर्मों के अनुष्ठान से ही विद्वान पवित्र होते है, अतः इनको हेय न समझना चाहिये। फलेच्छा तथा आसक्ति को त्यागकर ही मनुष्य कर्मों को करे, इसी में उसका कल्याण है। अतएव कल्याणाभिलासी पुरुषों को चाहिये कि जैसे हो वैसे अपने हृदय से वासनाओं को दूर करें और कामासक्त पुरुषों की संगति से बचते रहें। कामी (आसुरी सम्पति) पुरुष वही कहा जाता है, जो यह चाहता है कि पृथ्वी में जितना धन है वह किसी प्रकार से मेरे ही पास आ जावे, मैं सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का भोगने वाला हो जाऊँ, मैं ही सब पर आज्ञा करने वाला होऊँ। मेरे पर आज्ञा करने वाला कोई न हो इत्यादि ऐसे विचार के पुरुषों से बचना चाहिए। दैवी सम्पत्ति के पुरुषों से प्रेम रख के इसी सम्पति को सदैव धारण करे, वही गृहस्थ सच्चा योगी है।

दाम्पत्य जीवन एक आध्यात्मिक योग साधना

दो भिन्न स्थानों, भिन्न परिवारों, भिन्न वातावरणों में पैदा हुए और पले नर-नारी भिन्न प्रकृति और भिन्न आकृति के होते हुए भी समग्र एकता के सूत्र में बँधकर विवाह का प्रयोजन पूरा करते हैं। विवाह का वास्तविक उद्देश्य दो आत्माओं की प्रथकता समाप्त करके एक दूसरे के लिये समर्पण। इस समन्वय और समर्पण से एक ऐसी सम्मिलित सत्ता का प्रकाश जो प्रथकत्व के बाह्य लक्षण बनाये रहते हुए भी आन्तरिक एकता के रूप में परिणत हो सके।

आध्यात्मिक प्रगति का आधार है प्रेम। जिसके अन्तःकरण में जितना अधिक, जितना निर्मल प्रेम उफनता है वह उतना ही बड़ा सन्त है। भक्ति का अर्थ है—प्रेम भावना। भक्त का अर्थ है प्रेमी। भगवान से प्रेम करने की साधना हमारे जीवन को प्रेम भावना से ओत-प्रोत करने के लिए है। प्रेम को परमेश्वर कहा जाता है। मनुष्य के अन्तःकरण में भगवान की अनुभूति उफनती हुई प्रेम भावनाओं के रूप में ही होती है। इस आध्यात्मिक महत्ता का अभ्यास दाम्पत्य-जीवन की प्रयोगशाला में किया जाता है। एक दूसरे के प्रति अनन्य आत्मीयता, श्रद्धा, सौजन्य, ममता और वफादारी का आरोपण कर इतना अनुराग उत्पन्न करते हैं कि साथी यदि दोष-दुर्गुणों से भरा हुआ अयोग्य या अकिंचन हो तो भी वह संसार का सबसे सुन्दर, रूपवान, गुणवान, योग्य एवं सज्जन प्रतीत होने लगता है। आत्मीयता ऐसी ही वस्तु है वह जिस पर भी आरोपित की जाती है, उसे परम प्रिय बना देती है। पति-पत्नी में भी मनुष्योचित दुर्बलताएँ एवं त्रुटियाँ रहती है पर यदि विवाह के उद्देश्य को समझकर परस्पर आत्मीयता, समर्पण, एकता और ममता का आरोपण कर लिया गया है तो उन त्रुटियों के रहते हुए भी—न सुधरते हुए भी गृहस्थ जीवन की नाव आनन्दपूर्वक आगे बढ़ती चलती है।

योग का अर्थ है जोड़। दो आत्माओं को जोड़ देना भी एक योग साधना है। राजयोग, हठयोग, जपयोग, लययोग, प्राणयोग आदि की तरह गृहस्थयोग भी एक उच्चकोटि की साधना है। जिसका प्रतिफल पहले ही दिन से मिलना आरम्भ हो जाता है। अन्य साधनाएँ कालान्तर में फल देती हैं। पर इस गृहस्थयोग की साधना से आरम्भ के दिन से ही प्रतिफल मिलना आरम्भ हो जाता है। एकाकीपन में जो सूनापन, नीरसता और अनिश्चितता है वह बात की बात में दूर हो जाती है। मिला तो एक ही साथी है पर लगता है उस साथी के गुण, कर्म और परिजन सभी अपनी सहायता करने वाली सेना के रूप में अपने साथी बन चले। इस अनुभूति में दाम्पत्य-जीवन के दोनों पक्ष अपने को बहुत समर्थ मानते हैं और साथी के स्नेह, सौजन्य की अमृतमयी अनुभूति से हर घड़ी सरसता अनुभव करते रहते हैं। गंगा और यमुना के मिलने का संगम तीर्थराज बन जाता है। दो आत्माओं का आन्तरिक मिलन—विवाह एक वैयक्तिक तीर्थराज है, जिसमें स्नान करते हुए पुण्य प्रक्रिया का अनुभव पति-पत्नी दोनों को ही निरन्तर होता रहता है।

विवाह के उपरोक्त परम प्रयोजन को समझने और चरितार्थ करने वाले जोड़े अपने छोटे-छोटे घरोंदों में गरीबी का जीवन जीते हुए भी स्वर्ग जैसी शान्ति, प्रसन्नता, प्रफुल्लता, सन्तुष्टि, सरसता और सुविधा का आनन्द लेते हैं। उन्हें साथी के रूप, शिक्षा, गुण अथवा योग्यता की चर्चा अनावश्यक लगती है। क्योंकि सच्चा प्रेम इन सबके अभाव में भी साथी देवता जैसा लगता है। प्रेम भरे अनुरोध से या तो सहचर की त्रुटियों को सुधार लेता है अथवा अपनी सहिष्णुता से उन्हें दर गुजर करके भी काम चला लेता है। जहाँ स्नेह और सद्भावना की समुचित मात्रा विद्यमान हो, वहाँ क्लेश-कलह का कोई कारण शेष नहीं रह जाता है। मिलन का प्रतिफल आनन्द ही होना चाहिए। गृहस्थयोग की साधना से जो अनेक ऋद्धि-सिद्धि मिलती हैं उनमें सद्गुणी-सुयोग्य सन्तान और सुव्यवस्थित परिवार के प्रतिफल भी हैं। जिन पति-पत्नी में हार्दिक प्रेम और अटूट विश्वास होगा, उनकी सन्तानें कभी कुपात्र नहीं निकलेगी। प्रेम का पोषण जिन्होंने अपनी माता की प्रगाढ़ आत्मीयता में से उपलब्ध किया है, उन बालकों में अनायास ही असंख्य सद्गुण विकसित रहते हैं। ऐसे जोड़े अपने छोटे या बड़े परिवार की स्नेह, सौजन्य की शृंखला में बँधे रहकर कुटुम्ब के हर सदस्य को सुखी एवम् विकासोन्मुख होने का अवसर देते हैं।

आज लोगों ने विवाह के उच्च उद्देश्य एवं आदर्श को ही भुला दिया। अब काम-क्रीड़ा की पशुता का एक उद्घोषित प्रमाण-पत्र विवाह रह गया है। वासना और विलासिता की दृष्टि से जोड़े मिलाये जाते हैं। लड़के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूपवती और उत्तेजक लड़कियाँ ढूँढ़ते हैं, ताकि वासना का अधिक आकर्षण एवं उपयोग प्राप्त हो सके। लड़कियाँ उपरोक्त तथ्य के अतिरिक्त अर्थ उपार्जन के अधिक चौड़े स्रोत भी ढूँढ़ती हैं, ताकि उन्हें विलासिता और आरामतलवी की अधिक सुविधाएँ मिल सकें। लड़के की कमाई और लड़की का रूप-लावण्य आज प्रधानतापूर्वक देखे जाते हैं। सोचा जाता है कि यह उपलब्धियाँ मिल जायँ तो विवाह सार्थक माना जायेगा। पर यह भुला दिया जाता है कि विवाह की सफलता का आधार साथी की मनोभूमि, संस्कृति एवम् आदर्शवादिता ही है। काम-कौतुक के लिए, उपयोग के लिए—विवाह नहीं किये जाते उनका प्रयोजन आध्यात्मिक है। जहाँ इस दृष्टिकोण से विवाह सम्पन्न होगा वहाँ गृहस्थ जीवन का आनन्द मिलेगा अन्यथा काम-कौतुक के क्षणों को छोड़कर शेष समय उनमें अविश्वास और असन्तोष ही बना रहेगा।

आवश्यकता इस बात की है कि जो विवाह कर चुके हैं या जिन्हें विवाह करना है, वे उसके उद्देश्य और आदर्श को भी समझें। अपनी मनोभूमि में उतनी कोमलता एवम् उदारता हो कि साथी को स्नेहसिक्त करके इसके विरानेपन को अपनेपन में बदल सकें तो ही विवाह करना चाहिए। अन्यथा काम-कौतुक के लिए विवाह करना बहुत महँगा और झंझट भरा सौदा है। उसमें दोनों पक्षों के हाथ केवल बर्बादी ही लगती है। पुरुष कोल्हू के बैल की तरह पिसता और स्त्री प्रजनन के कुचक्र में अपनी तन्दुरुस्ती, मनस्विता, प्रतिभा ही नहीं कई बार तो जिन्दगी ही असमय में खो बैठती है। विवाह एक आध्यात्मिक साधना है। विवाह एक प्रेम बल्लरी का आत्मोत्सर्ग की उच्च भावनाओं द्वारा किया जाने वाला अभिसिंचन है। यह सज्जनों और शूरवीरों का काम है। कामी, दुष्ट, छली और विश्वासघाती लोग विवाह की पवित्र संस्था को बदनाम करने से दूर रहें और एकाकी जीवन जियें यही अच्छा है। जिनका विवाह हो चुका या जिन्हें करना है उन्हें हजार बार सोच लेना चाहिये कि साथी के ऊपर समस्त सद्भावना एवं आत्मीयता हमें उड़ेलनी है। उसकी प्रवृत्ति मित्रता को निबाहना है। अभीष्ट अनुकूलता उत्पन्न न भी हो सके तो सहिष्णुता अपनाकर दर गुजर करनी है। दूसरी ओर से समुचित प्रत्युत्तर न मिले तो भी अपनी ओर से आजीवन ऐसा व्यवहार करते रहना है, जिससे विवाह साधना के पुनीत आदर्श को कलंकित होने का अवसर न मिले।

इस दिशा में पति का कर्तव्य चौगुना-सौगुना है। क्योंकि परिस्थितियों ने आज उसे अधिक समर्थता एवं सुविधा प्रदान की है। रंग-रूप की बात मस्तिष्क से निकाल ही देनी चाहिए। चमड़ी के आकर्षण का खिंचाव विशुद्ध रूप से व्यभिचार है, भले ही वह अविवाहित या विवाहित जीवन में कभी भी अपनाया जाय। गुणों के आकर्षण पर रीझना चाहिए। विवाह करने से पूर्व साथी के बारे में हजार बार विचार करें, पर यदि उसे अपना लिया तो हजार दोष-दुर्गुण रहते हुए भी उसे छाती से बाँधकर ही रखना चाहिए और अपनी ओर से कर्त्तव्य-पालन के अन्तिम छोर तक जाना चाहिए। विवाह से पूर्व के चारित्रिक दोषों के बारे में कुछ सोच-विचार करना निरर्थक है। जिस दिन से अपना विवाह हुआ उसी दिन से पति-व्रत और पत्नीव्रत आरम्भ होता है। उदारता और क्षमा का जितना अधिक प्रयोग परस्पर किया जा सके, उतना ही गृहस्थ जीवन की सफलता सम्भव हो सकेगी।

ईश्वर करे अपने समाज के हर गृहस्थ में दाम्पत्य-जीवन की एक पवित्र आध्यात्मिक साधना मानने और उसे निबाहने के लिये त्याग और उदारता का बढ़ा-चढ़ा परिचय देने की प्रवृत्ति पैदा हो, तभी हमारे पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में स्वर्गीय परिस्थितियों एवं अनुभूतियों का अवतरण होगा।

यागपरः पुरुषधर्मः तपः प्रधानो नार्याः

कर्म मीसांसाकार ने दाम्पत्य जीवन और उसकी सफलता के आधार की मीमांसा इस एक सूत्र में ही कर दी है। **''यागपरः पुरुषधर्मः तपः प्रधानो नार्याः।''**

''पुरुष धर्म यज्ञ प्रधान है और नारी धर्म तप प्रधान।'' यज्ञ और तप योग साधन के, आत्म विकास के दो प्रमुख आधार स्तम्भ हैं और इस साधना में दोनों का ही युग्म बनता है। भारतीय मनीषियों ने जहाँ जीवन के हर अंग को धर्म और अध्यात्म से संयुक्त करने की दृष्टि रखी, तो दाम्पत्य जीवन उससे अछूता कैसे रह सकता था। दाम्पत्य सम्बन्ध व्यक्तिगत जीवन को रस-सिक्त और मधुर बनाते हैं, वही समीपवर्ती क्षेत्र और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करते हैं। इसी से कहा गया है—

''जहाँ पति-पत्नी एक मन और एक प्राण एवं सहयोगपूर्वक रहते हैं, वहाँ सब प्रकार कल्याण ही होता है। ऐसे साधन-सहयोग की आवश्यकता और महत्ता इस प्रकार बताई गई है—

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः।

अभार्योऽपिनरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु।।

जैसे एक पहिए का रथ नहीं चल सकता और एक पंख की चिड़िया नहीं उड़ सकती, वैसे ही भार्या से रहित अकेला पुरुष कोई भी कार्य नहीं कर सकता।

एकदृष्टिरेकमना भर्तुर्वचनाकारिणी।

तस्या विभीमहे सर्वे ये तथाऽन्ये तपोधनः।।

देवानामपि सा साध्वी पूज्या परम शोभना।

(यम स्मृति)

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक दृष्टि और एक चित्त रहने वाली पति परायण स्त्री से यम एवं वरिष्ठ लोग भी डरते रहते हैं, वह देवताओं की भी पूजनीया होती है और संसार की शक्ति बढ़ाती है।

धर्मार्थ काम संसिद्धयै भार्याभर्तुः सहायिनी।
यात्र भार्या च भर्ता च परस्परमनुव्रतौ।।
तदा धर्मार्थ कामानां त्रयाणमपि संगतम्।
कथं भार्यामृते धर्ममर्थ वा पुरुषः प्रभो।।
प्राप्नोति काममर्थवातस्यां त्रितपमाहितम्।
तथैव भर्त्तारमृते भार्याधर्माधि साधने।।
न समर्था त्रिवर्गोय दाम्पत्यं समुपाश्रिताः।।

(मार्कण्डेय पुराण)

''पत्नी पति की सहायिका होने पर उसके लिए धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि का निमित्त होती है। पति और पत्नी जब दोनों ही परस्पर अनुकूल होते हैं तभी धर्म का साधन हो सकता है। धर्मादि त्रिवर्ग में समाहित होने के कारण जिस प्रकार पुरुष पत्नी के बिना धर्म, अर्थ, काम का लाभ करने में समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार नारी भी पति के बिना धर्म-साधन में समर्थ नहीं हो सकती। इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम अर्थात् सांसारिक सफलता का आधार दम्पत्ति का मिलकर कार्य करना ही है।''

अन्योन्यस्याव्यभिचारो भवेदामरणान्तिकः।
एव धर्मः समासेन ज्ञेयः स्त्री पुंसयोः परः।।

—मनु

जीवनपर्यन्त स्त्री-पुरुष धर्म, अर्थ, काम आदि में पृथक् न हों। आपस में यही उनका धर्म बतलाया गया है।

भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पत्नीव्रतम्।

पत्नी पतिव्रत पालन करे और पति को पत्नीव्रत निबाहना चाहिए।

देववत् सततं साध्वी भर्तारमनुपश्यति।
दम्पत्योरेष वै धर्मः सहधर्मकृतः शुभः।।

पत्नी-पति को देवता समझे और पति पत्नी को देवी जैसा मान दे। इस दाम्पत्य धर्म का दोनों मिल-जुलकर समान रूप से पालन करें।

गृहस्थ में संन्यास

औदार्य त्याग सेवानां प्राप्नुते व्यवहारतः।
ग्रहस्थे प्याश्रमे नूनं संन्यासस्य फलं नरः।।

—पंचाध्यायी

(नरः) मनुष्य (नूनं) निश्चय से (औदार्य त्याग सेवानां) उदारता, त्याग और सेवा के (व्यवहारतः) व्यवहार से (ग्रहस्थे आश्रमे अपि) ग्रहस्थ आश्रम में भी (संन्यासस्य) संन्यास के (फलं) फल को (प्राप्नुते) प्राप्त होता है।

''त्याग, सेवा और उदारता व्यवहार करने से ग्रहस्थ में संन्यास का फल प्राप्त होता है।'' इन शब्दों के अन्तर्गत पूर्ण सत्य का ऐसा अमृत तत्व छिपा हुआ है कि यदि हम लोग उसे समझ लें तो अपनी वर्तमान परिस्थितियों को ही स्वर्ग समान आनन्ददायक बना सकते हैं। देखा जाता है कि हमारे घर क्लेश, कलह, कपट, छिद्रान्वेषण, अविश्वास और असन्तोष से भरे रहते हैं। बहू की सास, ननद, देवरानी, जिठानी से नहीं पटती। भाई-भाई में अनबन रहती है। सास को देखिये तो वह बहू-बेटों का रोना रोती मिलेगी। पिताजी अपने बेटों को कुपुत्र घोषित करते फिरते हैं। लड़के समझते हैं पिताजी की बुद्धि सठिया गई है। घर में बुजुर्गों का आदर-सत्कार तो दूर रहा जहाँ अपमान न होता हो वहीं सौभाग्य समझना चाहिए। पैसे के सम्बन्ध में आपापूती का बोलबाला रहता है, जिसके हाथ जो पड़ता है, उसे हथियाने की कोशिश करता है, कुटुम्ब के सम्मिलित धन में से चुराकर अपना निजी संग्रह करना, अपनी कमाई का एक अंश अपने लिए बचा लेना, हिसाब को उलटा-सुलटा बताना इस प्रकार के आचरण अक्सर हमारे कुटुम्बियों में देखे जाते हैं। कहने को तो सम्मिलित खान-पान रहता है पर घर के चतुर व्यक्ति बाजार में जाकर चुपचाप अपनी इच्छाओं को तृप्त करते हैं। कुटुम्बियों की दृष्टि बचा कर जो पैसा कमाया है, वह सुसराल से स्त्री को मिला, मैंने अमुक प्रकार अतिरिक्त परिश्रम से कमाया, कह कर निजी अधिकार में कर लिया जाता है। एक ओर तो कमाने वालों की यह मनोवृत्ति होती है, दूसरी ओर न कमाने वाले या कम कमाने वाले वैसी सुविधा प्राप्त नहीं कर पाते, इनमें से कोई-कोई तो अपने भोले होने के कारण साधारण व्यवहार से भी वंचित रह जाते हैं। नतीजा यह होता है कि वे मन ही मन कुढ़ने, जलने, भुनने लगते हैं। भले ही वे कारणवश मुँह से विरोध प्रकट न करें पर अन्तर में इतना घोर असन्तोष धारण किये रहते हैं जिसकी ज्वाला में प्रेम का रस सहज ही सूख जाता है। ऐसे कितने घर हैं, जिसमें सम्मिलित कुटुम्ब के सब सदस्य आपस में सच्चा प्रेम करते हों, एक दूसरे पर जाने देते हों और कोई किसी से असन्तुष्ट न हों।

सौ में से नब्बे-पिचानवें घर ऐसे मिलेंगे जो कहने को तो सम्मिलित कुटुम्ब गिने जाते हैं पर उनकी आन्तरिक व्यवस्था में घोर अराजकता फैली हुई होती है। गृह-युद्ध का ज्वालामुखी भीतर ही भीतर सुलगता रहता है और इस बात की सदैव आशंका बनी रहती है कि कहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भयंकर विस्फोट न हो जाय, नाशकारी गदर न मच जाय। आये दिन ऐसे समाचार कानों से टकराया करते हैं कि अमुक भाई-भाइयों में मारपीट हो गई, अमुक व्यक्ति अपनी स्त्री को लेकर अलग हो गया, अमुक लड़का अपने पिता को बुरी-बुरी गालियाँ दे रहा है, अमुक सास-बहुओं में खूब बजी, अमुक बिधवा भाग गई, अमुक पति पत्नी में देवासुर संग्राम मचा हुआ है, आत्म हत्याओं में तीन चौथाई से अधिक भाग गृह जीवन से दुखी व्यक्ति होते हैं, साधु-संन्यासियों में मुश्किल से पाँच फीसदी ऐसे मिलेंगे जो सच्चे त्यागी हैं, अन्यथा तो पारिवारिक जीवन की कटुता ही प्राय: उन्हें एकाकी जीवन बिताने के लिये प्रोत्साहित करती है। अखबार के पन्ने खोलते ही 'गुमशुदा की तलाश' का एक दो विज्ञापन दिखाई पड़ जाता है, उसमें लिखा होता है कि ''अमुक लड़का घर से भाग गया है, जो उसे तलाश करके घर पहुँचावेगा, उसे मार्ग व्यय के अतिरिक्त इतनी रकम इनाम दी जायगी।'' यह गुमशुदा, भगोड़े अक्सर पारिवारिक जीवन से असन्तुष्ट होकर भागते हैं। व्यभिचार की जो लहर बड़ी तेजी से बढ़ती चली आ रही है, उसकी तह में भी ऐसे ही कारण होते हैं, जिनके कारण असन्तुष्ट व्यक्ति व्यभिचार करने पर उतारू हो जाता है।

'सम्मिलित कुटुम्ब' वास्तव में एक बड़ा ही उच्च आदर्शमय जीवन है। विश्वबन्धुत्व की, लोकसेवा की, वैरागी जीवन की, संन्यास की, मुक्ति साधना की आरम्भिक तपोभूमि इस प्रथा को निस्संकोच कहा जा सकता है। दूसरे देशों में लड़का सयाना होते ही बहू को साथ लेकर पक्षी की तरह अलग घोंसला बना लेता है और माता-पिता से अपना सम्बन्ध त्याग देता है। कहते हैं कि—न्यारा पूत पड़ौसी जैसा। माँ-बाप से अलहदा होकर लड़के ने अपनी गृहस्थी अलग बसाली, फिर उनके बीच एक बहुत ही पतला लोक दिखावे का सम्बन्ध सूत्र रह जाता है। आज पाश्चात्य देश पृथक् कुटुम्ब प्रथा के सुखों और सुविधाओं की भली प्रकार प्रकट करते हैं, वे साबित कर देते हैं कि जितना ही छोटा कुटुम्ब होगा, उतना ही वह सुखी, स्वतन्त्र एवं उन्नतिशील होगा। भौतिक दृष्टि से उनकी बात मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, एक दूसरे पर गुर्राने वाले कबूतरों से भरा दरबा सदा दुख-दारिद्र का ही घर बना रहेगा, जबकि एक जोड़ा तीतर आनन्द की किलकारियाँ मारता फिरता है और अपना गौरव प्रकट करने का अवसर पाता है। हमारे बुद्धिमान पूर्वज इन लाभों से अपरिचित नहीं थे, जिस सुख और सुविधाओं को आज नवीन सभ्यताभिमानी महानुभाव पृथक् कुटुम्ब के पक्ष में रख रहे हैं, उन्हें भारतीय तत्वदर्शी भलीभाँति समझते थे। परन्तु उन्होंने 'बड़ी के लिए छोटी का त्याग' की महत्वपूर्ण नीति को अपनाकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया। आपके पास चाँदी की एक भारी सिल हो, परन्तु रास्ते में उससे भी भारी सोने की सिल पड़ी मिल जाय, उस सुनसान मार्ग में साथी कोई हो नहीं, तो निश्चय ही आप चाँदी को फेंक कर सोना ले चलना पसन्द करेंगे। कम लाभ का व्यापार होते हुए भी यदि अधिक लाभ का व्यापार प्राप्त हो तो निश्चय ही चतुर व्यापारी पहले व्यवसाय को छोड़ कर अधिक लाभ का रोजगार ग्रहण करता है। पृथक् कुटुम्ब बसने में सुविधाएँ हैं, पर वे इतनी नहीं हैं, जितनी कि सम्मिलित कुटुम्ब में।

संघ शक्ति की प्रबलता को वे लोग जानते हैं, जो १ और १ मिल जाने पर ११ बन जाने का अनुभव कर चुके हैं। प्राणी की शारीरिक और मानसिक रचना ऐसी अद्भुत है कि जितने अधिक लोग एक समूह में बढ़ते जाते हैं, उसके अनुपात से दस गुनी शक्ति बढ़ जाती है। एक आदमी यात्रा करने में थकान का अनुभव करता है, पर दो व्यक्ति साथ-साथ चलें, तो थकान नहीं व्यापती उत्साह बना रहता है और दूना काम हो जाता है। चले दोनों अपने-अपने पाँवों से, पैसा दोनों ने अपना-अपना खर्च किया। दोनों के स्वार्थ अलग-अलग हैं, परन्तु केवल कार्यक्रम में एकता हो जाने के कारण यात्रा की सुविधाएँ कई गुनी बढ़ गईं। सिनेमा, सरकस एक दिन आप अकेले अकेले चुपचाप चले जाइये और देख आइये, दूसरे दिन दो मित्रों के साथ जाइये, फिर पहले दिन के मनोरंजन का दूसरे दिन के मनोरंजन का मुकाबिला कीजिए, दोनों में कई गुना अन्तर मिलेगा। पैसा सब ने अपने-अपने पास से खर्च किया, देखा भी अपनी-अपनी अलग आँखों से, परन्तु एक की खुशी दूसरे की खुशी में मिल कर कई गुनी हो गई। इस प्रकार खुशी का फब्बारा फूट निकला। बड़ी सेना में सम्मिलित सैनिक की, सहभोज में भोजन करने वाले की, सामूहिक प्रार्थना करने वाले की, प्रसन्नता, आशा और स्फूर्ति कितनी होती है, इसका अनुमान वे लोग नहीं कर सकते जो अकेले या थोड़े लोगों के बीच रह कर गुजारा करते हैं। सामूहिक आश्रम में एक ऐसी विद्युत शक्ति का आविर्भाव होता है, जो उस समूह के प्रत्येक व्यक्ति के आन्तरिक आनन्द को, मानसिक विकास को कई गुना बढ़ा देता है। यह ठीक है कि मियाँ-बीबी की जोड़ी मौज से रह सकती है, परन्तु जो स्वर्गीय आनन्द भाई, बहिन, भावज, भतीजे, चाचा, चाची, माता, पिता, दादी तथा छोटे-छोटे बाल-बच्चों के भरे-पूरे घर में आता है, भला 'अकेले शूकरे' लोगों को कहीं स्वप्न मे भी प्राप्त हो सकता है ?

लेकिन वह स्वर्गीय आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है, जब त्याग, सेवा और उदारता का उसमे भरपूर समावेश हो, अन्यथा दुख-दारिद्रय से भरा अँधेरा कबूतर खाना ही वह कुटुम्ब रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ में रहकर भी मुक्ति लाभ संभव है

शास्त्रों में बतलाया गया है कि धर्म ही मनुष्य का सब से बड़ा आश्रय और सद्‌गुण है। इसका आशय यह है कि धर्म के द्वारा ही मनुष्य को अपने कर्तव्य का बोध होता है और उसी का पालन करके वह ऊर्द्धगति को प्राप्त हो सकता है। धर्म के द्वारा ही मनुष्य को परमात्मा तथा उसकी लीला का कुछ अनुमान हो सकता है और आध्यात्मिक पथ में प्रगति करके वह जीवन्मुक्त पद प्राप्त कर सकता है।

पर धर्म के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान मनुष्य के लिये सहज नहीं है। क्योंकि संसार में इतने अधिक विभिन्न धर्म और धर्म-गुरु पाये जाते हैं कि मनुष्य का एक निश्चय पर पहुँचना कठिन होता है और वह प्रायः भ्रम में पड़ जाता है। अगर ऐसा नहीं होता है तो मनुष्य कुछ निस्सार कर्म-काण्डों को धर्म का सार समझ बैठता है और सब तरफ से आँखें बन्द करके एक लकीर पर चलते चला जाता है। इस प्रकार के धर्म-पालन को अंध श्रद्धा का नाम दिया जाता है और उससे चाहे मनुष्य को थोड़ा-सा सन्तोष भले ही हो जाय, आध्यात्मिक जीवन से उसे अनजान और वंचित ही रहना पड़ता है।

यों तो धर्म का आविर्भाव मानव-सभ्यता के आदि काल से ही हो चुका है। पर उस समय मनुष्य जो कुछ अद्‌भुत घटना देखता था, उसी में ईश्वर की कल्पना कर लेता था। यदि वह देखता कि कहीं आकस्मिक रूप से पृथ्वी में से या जल में से अग्नि प्रकट हो गई, तो वहीं पूजा-प्रार्थना शुरू कर देता था। इसी प्रकार उल्कापात, तीव्र तूफान, भूकम्प आदि नाशकारी घटनाओं को भी वह ईश्वर का कोप समझ कर उसे भेंट-पूजा द्वारा सन्तुष्ट करने की चेष्टा करता था, इसी प्रकार उसने ईश्वर की सत्ता के विषय में एक मनमानी कल्पना करके उसे धर्म का रूप दे दिया।

पर जैसे-जैसे मनुष्य एक ही प्रकार की घटनाओं को लगातार सर्वत्र देखता गया और उन पर मनन करके उसने प्रकृति के नियमों की एकरूपता को समझ लिया तो वह ब्रह्म और प्रकृति की अखण्डता को अनुभव करने लगा। वह समझने लगा कि संसार में भिन्न-भिन्न रूप और नाम दृष्टि-गोचर होते हैं, वास्तव में उनका उद्‌गम स्थान एक ही है और व्यवहार में पृथक्-पृथक् जान पड़ने पर भी उनके भीतर एक ही सत्ता, एक ही शक्ति कार्य कर रही है। इससे उसके हृदय में ज्ञान, प्रेम, भक्ति के उच्च भावों का उदय होने लगा और उसकी शूद्रवृत्तियाँ दूर होने लगीं।

यह मनुष्य के उत्थान का, ऊर्द्ध गति को प्राप्त होने का वास्तविक मार्ग है। यह मनुष्य के लिये एक स्वाभाविक रास्ता है, जिसमें अस्वाभाविकता की कोई बात नहीं जान पड़ती। पर संसार में ऐसे लोगों का अभाव नहीं जो इस सरल-स्वाभाविक मार्ग को महत्वहीन बतला कर अपना एक निराला पंच-जीवन दर्शन स्थापित करने में ही अपना बड़प्पन समझते हैं। वे कहते हैं कि वही दर्शन और साधन प्रणाली श्रेष्ठ है, जिसमें अपनी कोई विशिष्टता हो। इस विषय की आलोचना करते हुये विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक लेख में कहा है—

"अनेक व्यक्ति स्पर्धापूर्वक यह कहते हैं कि इस प्रकार का एक विशेषभाव रहने वाला दर्शन-शास्त्र प्रकृष्ठ (अति उत्तम) है। सब रूप त्याग कर किसी एक विशेष मनुष्य में, ईश्वर का दर्शन करना ही चरम पूजा है। मुझे मालूम है कि मनुष्य इस प्रकार के कृत्रिम उपाय द्वारा हृदय की किसी एक वृत्ति विक्षुब्ध करके बहुत बड़े परिमाण में लाभ उठा सकता है। किसी एक रस को अत्यन्त तीव्र बनाकर खड़ा कर सकता है, किन्तु, क्या इतना करना ही हमारी साधना का लक्ष्य होना चाहिये। अनेक बार देखा जाता है कि अन्धे होने पर स्पर्श शक्ति आश्चर्यजनक रूप से बढ़ जाती है। परन्तु क्या इस प्रकार से शक्ति एक स्थान से चुरा कर दूसरे स्थान पर उपचय (अति संग्रह) करने से उसे शक्ति की सार्थकता कहा जा सकता है ? जहाँ उसका नाश हुआ है क्या वहाँ का विचार नहीं करना चाहिये ? जहाँ से शक्ति को नष्ट किया गया क्या उस त्रुटि का दुष्परिणाम हमको भोगना नहीं पड़ेगा ?"

हमारे देश में सैकड़ों प्रकार के पंथों और सम्प्रदायों ने ईश्वर और धर्म के जो एक दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रकार के चित्र खींचे हैं और लोगों को नई-नई तरह की साधन-प्रणालियों में लगाया है, उसके फल से उनका कोई विशेष कल्याण हुआ हो ऐसी बात नहीं। जो लोग इस प्रकार के कृत्रिम उपायों से एक विशेष प्रकार की उन्नति करने में लग जाते हैं, उनका जीवन प्रायः असन्तुलित हो जाता है। वे दर्शनीय अथवा चमत्कारी भले ही बन जायँ पर संसार के काम के नहीं रहते और इस कारण उनके जीवन का सर्वांगपूर्ण विकास भी नहीं हो पाता। बिना इस प्रकार के सर्वांगीण विकास के हम मुक्तिमार्ग में अग्रसर नहीं हो सकते। विश्वकवि की यह सम्मति विचारणीय है—

"वस्तुतः स्वभाव का परिपूर्ण लाभ ही धर्म है और धर्म-नीति का श्रेष्ठ लाभ भी यही है। भगवान् की धारणा को संकीर्णता में बाँध कर भक्ति की उत्तेजना को उग्र नशे की तरह बनाने में मनुष्यत्व की सार्थकता नहीं मानी जा सकती है। भगवान को भी उनके स्वभाव (स्वाभाविक रूप) में ही प्राप्त करने की साधना करनी होगी, तभी हमारा कल्याण होगा। भगवान को केवल अपनी किसी विकृति (त्रुटि) को उपयोगी बनाकर, उनको लेकर बहुत-बहुत जोश दिखाने को हम मंगलमय नहीं मान

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

सकते। हो सकता है कि उसमें कहीं सत्य छिपा हो। पर जो शक्तिमान है वह तो उसके द्वारा किसी प्रकार अपना काम चला सकता है, किन्तु उनके दल में जो अन्य साधारण शक्ति के व्यक्ति आकर जमा होते हैं, उनका कुछ ठौर-ठिकाना नहीं। उनका आलाप क्रमशः प्रलाप हो उठता है एवं वे उत्तेजना और उन्माद के पथ पर अपघात (अकाल मृत्यु) को प्राप्त होते हैं।''

सत्य बात यह है कि शुद्ध धर्म कोई गूढ़ रहस्य या कठिन समस्या नहीं है। सीधे से सीधा और अल्प ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी उस पर चलता हुआ अपना और संसार का कल्याण कर सकता है और इस प्रकार आत्मोन्नति के उच्च स्थान पर पहुँच सकता है। पर जो धर्म को अस्वाभाविक बातों में फँसा कर उसे किसी प्रकार सिद्धि, चमत्कार अथवा गुरुडम का साधन बना लेते हैं, वे कभी उसके मर्म को प्राप्त नहीं कर पाते और धर्म के रहस्य की बड़ी-बड़ी बातें करने पर भी वे मुक्ति-मार्ग से दूर बने रहते हैं। सांसारिक राग-दोषों से बचकर मुक्ति पथ का अनुगामी स्वाभाविक धर्म का अनुयायी ही हो सकता है।

www.awgp.org
www.vicharkrantibooks.org

संतान की संख्या नहीं, स्तर बढ़ायें

सन्तान न होना-कोई दुर्भाग्य तो है नहीं

सुख की अनेक मृग-तृष्णाओं में से पुत्र प्राप्ति की लालसा भी बड़ी जबरदस्त है। पुत्र न होना इस अभागे समाज में दुर्भाग्य समझा जाता है। अत: विवाह होने के दो-चार वर्ष बाद ही यदि किसी के बच्चा पैदा नहीं हुआ तो लोग विक्षुब्ध होने लगते हैं। तरह-तरह की मनौतियाँ मनाते हैं। डाक्टरों और देवी-देवताओं की शरण में धन फूँकते रहते हैं। किन्तु परमात्मा के अधिकार की बात यदि पूरी न हुई, पुत्र का जन्म नहीं हुआ तो बेतरह बेचैन होते हैं। कई पुत्र गोद लेने की बात करते हैं, कई दूसरी शादी करते हैं।

प्रजनन प्रकृति को अपनी सृष्टि सञ्चालन व्यवस्था को चलाते रहने के रूप में आवश्यक है। इसलिए उसने प्राणियों को ऐसे जाल-जञ्जाल में जकड़ दिया है कि आमतौर से उन्हें इसी गोरखधन्धे को सुलझाने में अपना जीवनक्रम पूरा करना पड़ता है। पुरुषों में प्रबल कामेच्छा और स्त्रियों में तीव्र मातृत्व की भावना नहीं होती तो सम्भवत: इस सृष्टि का क्रम पहले ही रुक गया होता। विषय-भोग की इच्छायें ही सन्तान के प्रति ममता, नाना प्रकार की तृष्णाओं तथा माया मोह के जाल में मनुष्यों को फँसाये रखती हैं और इस संसार के सारे काम विधिवत् चलते रहते हैं। संसार के बहुत थोड़े से व्यक्ति कोई महान् उद्देश्य लेकर जीवन जीते हैं, अधिकांश लोग तो इसी भूल-भुलैया में पड़े हुए जीवनयापन करते रहते हैं। विषय-भोग, नारी का आकर्षण और संतान-सुख की झूँठी कल्पनाओं में ही मनुष्य जीवन का सारा ताना-बाना चलता रहता है।

जहाँ तक प्राकृतिक जीवन की बात है विषय-वासना और सन्तानोत्पत्ति कोई अपराध नहीं है। बल्कि यह एक प्रकार से कालक्षेप करने का अच्छा मनोविनोद ही है। किन्तु सन्तान के लिए अनुचित मोह मनुष्य के लिए उचित नहीं है। जिसके यहाँ कोई सन्तान नहीं है, उन्हें समझना चाहि कि परमात्मा ने उनके लिए धर्म-कर्म और जीवन लक्ष्य प्राप्त करने के लिए अधिक सुअवसर प्रदान किया है।

पिण्डदान और सन्तान के द्वारा तर्पण आदि से जो स्वर्ग और मोक्ष की अभिलाषा करते हैं, उन्हें यह समझाना चाहिए कि परमात्मा कर्मकाण्ड के बाह्य स्वरूप को देखकर ही किसी के लिए पुण्य-फल और स्वर्ग-मुक्ति की व्यवस्था नहीं कर देता। अपने ही अच्छे-बुरे कर्मों का फल मनुष्य भोगता है। फिर प्रत्येक सन्तान सद्गुणी ही होगी इसका भी तो ठीक-ठीक पता नहीं। सन्तान के द्वारा स्वर्ग-मुक्ति की कल्पना इस दृष्टि से प्रवंचना मात्र है, इसके लिए दु:खी होना मनुष्य के लिए उचित नहीं।

जिस तरह अनियन्त्रित काम-वासना अधर्म है, उसी तरह सन्तान के लिए मोह-भाव बन्धन का कारण है। मनुष्य जीवन का यह तुच्छ-सा उपयोग है। हमारा जीवन इससे ऊँचे उठकर जब विशुद्ध पारमार्थिक कर्मों में प्रवृत्त होता है, तभी स्वर्ग की कल्पना की जा सकती है। इसके लिए सन्तान हो ही यह कोई जरूरी नहीं है। सन्तान-पालन के लिए जो जीवन विविध कर्मों में फँसा देना पड़ता है, वह यदि सन्तान न हो, तो बचाकर श्रेय की साधना पूरी कर सकता है। अत: इन से वैराग्य उत्पन्न करने और इनकी ओर चित्त-वृत्तियों को न भटकने देने में ही कल्याण है। जिनके सन्तान है उन्हें तो अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही चाहिए पर जिन्हें सन्तान उपलब्ध नहीं हुई उन्हें अकारण परेशान नहीं रहना चाहिए। 'पुत्र होता तो सुख मिलता' यह कल्पना सर्वथा निराधार है। अनेक व्यक्तियों को सन्तान के द्वारा कष्ट पाते देखा गया है। इसके विपरीत कितने ही ऐसे हुए हैं जिन्होंने सन्तान न होने पर भी अपेक्षाकृत अधिक आनन्द अनुभव करते हुए सुविकसित जीवन बिताया है।

राजा महेन्द्र प्रताप ऐसे ही व्यक्तियों में से एक थे। कहते हैं उनके कोई सन्तान नहीं थी फिर भी एक दिन उन्होंने सभी नाते-रिश्तेदारों को पुत्र के नामकरण संस्कार में सम्मिलित होने का निमंत्रण भेज दिया। आचार्य के रूप में महामना मदनमोहन मालवीयजी आमन्त्रित थे। उत्सव के सारे-उपक्रम जुटाये जा चुके थे पर सभी को एक ही हैरानी हो रही थी कि राजा साहब के तो कोई सन्तान है ही नहीं फिर नामकरण संस्कार किसका किया जायगा ? सभी कौतूहल में थे तभी मालवीयजी ने घोषणा की कि

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

राजा साहब ने सन्तान के रूप में एक विद्यालय को जन्म दिया है, उसी का नामकरण किया जाना है।

पुत्र रहा होता तो सम्भवत: राजा साहब को कोई जानता भी नहीं किन्तु जिस 'प्रेम-महाविद्यालय' को उन्होंने जन्म दिया, उसके कारण देशविदेश में सर्वत्र उनको लोग श्रद्धा से शिर झुकाते हैं।

बालक आगे चलकर पिता का नाम रोशन करता है, यह सोचना नितान्त भ्रमपूर्ण है। विचार करके देख सकते हैं कि अब तक संसार में कितने लोग मर कर चले गये, इनमें से कितने सौभाग्यवान् ऐसे हैं, जिन्हें पुत्रों के द्वारा यश मिला है ? ऐसे व्यक्ति बहुत ही थोड़े होंगे। यश मनुष्य को तप, त्याग और श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादन से मिलता है। इनके लिए नि:सन्तान होना कोई बाधा नहीं है।

बालक के पालन-पोषण, सेवा-शुश्रूषा में जो झंझट उठाने पड़ते हैं उनमें दाम्पत्य जीवन का सारा आनन्द ही चला जाता है। लोग चाहें तो इस अवसर का लाभ ज्ञान-वृद्धि के रूप में प्राप्त कर सकते हैं। समय का सदुपयोग व्यक्तिगत योग्यता बढ़ाने से लेकर जीवन लक्ष्य की प्राप्ति तक किसी में भी किया जा सकता है। पति-पत्नी आपस में अधिक स्नेह, आत्मीयता और सहानुभूति अनुभव कर सकते हैं।

कई बार मनुष्य अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति पुत्र या पुत्री के माध्यम से पूर्ण हुआ देखना चाहते हैं। जिन्हें परिस्थितिवश अधिक शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला वे सोचा करते हैं कि अपो बच्चे को खूब पढ़ा-लिखाकर विद्वान बना देंगे, ताकि सर्वत्र उसका सम्मान किया जाय। इसमें लोग अपना गौरव भी समझते हैं। पुत्री की अपेक्षा पुत्र से यह सौभाग्य प्राप्त करने की अधिक आशा की जाती है। यह दृष्टिकोण सन्तान के प्रति और भी मोह उत्पन्न करने वाला है। परन्तु यह मनुष्य का बिल्कुल ओछा दृष्टिकोण है। अपने ही बालक हों तो उनकी शिक्षा तथा विकास में सुख देखने की धारणा मनुष्य के स्वार्थीपन का लक्षण है। समाज में कितने ही बालक ऐसे होंगे जो साधनों के अभाव में अविकसित रह रहे होंगे। विकास के लक्षण होते हुए भी उसकी परिस्थितियाँ अनुकूल न बन पाती होंगी। इन बालकों के उत्थान के लिए यदि नि:सन्तान व्यक्ति कुछ योग दे सके, तो यह उनके लिए अधिक सुख तथा सन्तोष की बात होगी। हमें अपने आप तक सीमित नहीं रहना चाहिए। यह सोचना चाहिये कि यह सारा संसार अपना ही घर है। यहाँ सभी अपने भाई, मित्र, पड़ौसी और बालक हैं, यह सोचकर सभी के हित और कल्याण की दृष्टि से जब कर्त्तव्य-पालन किया जाता है तो अपेक्षाकृत अधिक सुख का अनुभव होता है।

वृद्धावस्था मे पुत्र सुख देगा ही अब इसकी भी कोई गारण्टी नहीं रह गई। बालक कुसंस्कारी हो तो मनुष्य तरह-तरह के झंझटों, कलह और मुसीबतों में ही पड़े रहते हैं। यौवन के उन्माद में आजकल युवक प्राय: अशिष्टता का ही बर्ताव करते हैं। अधिकांश बालक तो यही सोचते हैं कब बाप मरे और उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकार प्राप्त हो। शौक और मौज के लिये कई स्वेच्छाचारी तो अपने अभिभावकों के प्राण तक लेने से नहीं चूकते।

संसार में बालकों की भी कोई कमी है। इस सभी को अपना ही अनुभव किया कीजिये और उन्हें वात्सल्य दान कीजिये। इससे आप कहीं अधिक सुख का अनुभव कर सकेंगे। संसार में आत्मा की दृष्टि से सब एक ही हैं। अपने पराये का कहीं कोई भेद-भाव नहीं है। अपने हृदय की विशालता अनुभव कीजिये और पुत्र-प्राप्ति का अनावश्यक मोह छोड़ कर अपना आध्यात्मिक लक्ष्य पूरा कीजिये। सन्तान न होना कोई दुर्भाग्य नहीं है। आप सभी के बालकों को अपना ही समझा करें। इनसे आपको सुख मिलेगा, सन्तोष बढ़ेगा और शांति उपलब्ध हो सकेगी।

क्या सन्तान न होना दुर्भाग्य है ?

विवाह होने के पश्चात् यह इच्छा और आशा की जाती है कि जल्दी से जल्दी सन्तान उत्पन्न हो। मानो विवाह की सफलता सन्तानोत्पादन पर ही निर्भर है। यदि विवाह होने के बाद सन्तान होने में कुछ देर हो जाती है तो पति-पत्नी भी उदास रहने लगते हैं, अपने को भाग्यहीन मानते हैं और पड़ौसी-रिश्तेदार भी दु:ख प्रकट करने लगते हैं। मानो भाग्यवान होने का सन्तान होना ही प्रमाण-पत्र हो। स्त्रियाँ तो अपने को निपुत्री होना एक अभिशाप समझती हैं और बिना बच्चे वाली के बारे में ऐसा सोचती हैं मानो वह बेचारी बहुत ही दु:ख-दरिद्र में डूबी हुई, ईश्वरीय कोप की भाजन, विपत्ति की मारी हुई है। जिन्हें सन्तान नहीं होती वे इसके लिए इतने चिन्तित रहते हैं कि वैद्य-डाक्टरों से लेकर पीर, मुरीद, पंडित ओझा के फेर में उन्हें अपनी गाढ़ी कमाई का एक बहुत बड़ा भाग बर्बाद करते रहना पड़ता है। सफलता न मिलने पर उन्हें अपने दुर्भाग्य का रोना ही हर वक्त याद आता रहता है। कई बार तो निपुत्री नर-नारियों को अपनी जिन्दगी भी भार मालूम पड़ने लगती है।

सन्तान न होने को दुर्भाग्य मानना भी एक नितान्त भ्रमपूर्ण, अज्ञानमूलक मान्यता है। इस मान्यता के पीछे न कोई तर्क है और न वास्तविकता। केवल बात इतनी भर है कि लोगों ने यह मान्यता बना रखी है कि सन्तान ही विवाह की सफलता का प्रमाण-पत्र है।

प्राचीनकाल में जब इस देश में जनसंख्या थोड़ी थी, उर्वरा भूमि, वन और पठारों के रूप में योजनों तक बेकार पड़ी थी, उसका उपयोग करने वाला कोई न था, तब लोगो की यह इच्छा रही होगी कि अपने पुत्र, पौत्र अधिक हों जिनके सहारे अपना बड़ा कुटुम्ब बने और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधिक भूमि पर अधिकार करके अपनी समृद्धि बढ़ाने का अवसर मिले। जातीय संघर्ष भी यहाँ कम न था। असुरों-संस्कृतों और सुरों-संस्कृतों के बीच वैसे ही संघर्ष निरन्तर चलते थे जैसे अभी भी कहीं-कहीं जातीय संघर्ष फूट पड़ते हैं। ऐसे संघर्षों में विजय जनसंख्या पर निर्भर रहती थी। हर कुटुम्ब यह प्रयत्न करता था कि उसका जन-बल बढ़ा-चढ़ा रहे। असुरों से आत्मरक्षा के लिए परिवार वृद्धि एक सैन्य-संगठन की तरह आवश्यक समझी जाती थी। इसी से संतानोत्पादन को अधिक प्रोत्साहन दिया जाता था। आशीर्वाद में धन, सन्तान की प्राप्ति के मंगल वचन बोले जाते थे। सन्तान के गर्भ में आने या जन्म लेने पर भी हर्षोल्लास के उत्सव मनाये जाते थे। कृषि, पशु-पालन और संघर्ष में अधिक उपयुक्त होने के कारण ही शायद पुत्र को कन्या से अधिक महत्व मिला हो। पुरुषों के बहुविवाह की प्रथा भी शायद इसीलिए चली है कि एक कुटुम्ब जल्दी ही बहुत बड़े विस्तार के साथ बढ़ सके। युद्ध में पराजितों की स्त्रियों को भी विजेता लोग शायद इसीलिए अपहरण कर ले जाते हों कि उनके द्वारा वे अपना परिवार जल्दी बढ़ा सकेंगे। ऐसे समय में संतानोत्पादन को कोई बहुत बड़ी सफलता या आवश्यकता माना जाता रहा हो तो यह बात एक हद तक समझ में भी आती है।

किन्तु आज तो स्थिति उस समय की अपेक्षा बिल्कुल ही भिन्न है। अन्न के एक-एक दाने के लिए हम विदेशों के मुहताज हैं। यदि विदेशी लोग कृपापूर्वक हमें अन्न न दें तो लाखों, करोड़ों को भूखा मरना पड़े। सरकार जी तोड़ कर अन्न स्वावलम्बन के लिए हाय-तोवा कर रही है पर लक्ष्य की पूर्ति अभी भी कठिन हो रही है। कृषि के लिए जमीन कम पड़ गई। पशुओं के लिए चरागाह नही रहे। उनको मारकाटकर जल्दी खा जाने की बात सोची जा रही है, ताकि पशुओं के हिस्से की जमीन का भी मनुष्य ही उपभोग कर सके। मकानों की समस्या दुर्लभ हो रही है। सड़कों पर चलने के लिए जगह नहीं, रेल और मोटरों में भीड़ समाती नहीं। दूध भी दुर्लभ हो रहा है। गंदगी साफ नहीं हो पाती। अखाद्य और स्वच्छता की समस्या ऐसी विषय हो गई है कि हैजा, तपेदिक आदि रोगों से लाखों मनुष्यों के मक्खी-मच्छरों की तरह मरने की रिपोर्ट आये दिन अखबारों में छपती रहती है। इन विषम परिस्थितियों में राष्ट्रीय दृष्टि से यह विचारणीय है कि जनसंख्या का बढ़ते जाना—विशेषतया भारत जैसे साधनहीन देश के लिए कहाँ तक उचित होगा ?

हर दम्पत्ति को सन्तान होनी ही चाहिए और विवाह के बाद जल्दी से जल्दी होनी चाहिए, इस आकांक्षा को आज की परिस्थितियों को देखते हुए, एक विशुद्ध अन्धपरम्परा का अनुसरण करना ही कहा जा सकता है।

बहुत सन्तान, जल्दी सन्तान, जरूर सन्तान की रट लगाया जाना अब बन्द करना चाहिए। जो लोग इस सड़ी-गली माँग को महत्त्व दे रहे हैं, उन्हें जनसंख्या वृद्धि की विभीषिका को समझना और समझाया जाना चाहिए। स्वास्थ्य विज्ञान के विश्व विख्यात विशेषज्ञ प्रो० हर्मन की बेटी ने स्वास्थ्य-काँग्रेस में अपना खोजपूर्ण निबंध पढ़ते हुए विश्व को जो चेतावनी दी थी उसे हम लोग ध्यानपूर्वक पढ़ें और सुनें तो ही अच्छा है। उनने कहा—''जिस गति से सन्तानोत्पादन अभी हो रहा है, यदि वह क्रम न रुका तो सन् २०५० में दुनिया की आबादी २० अरब हो जायगी और तब इस धरती पर इतने लोगों के लिए न खाना मिल सकेगा, न शुद्ध वायु, न पानी, न बिजली। प्रति व्यक्ति पीछे केवल १ वर्ग मीटर जगह आवेगी जिसमें केवल खड़े होने भर को जगह मिल सकेगी। जानवरों का नामनिशान तक इस दुनिया में मिट जायगा, क्योंकि जब मनुष्यों के रहने और खाने के लिए ही धरती की शक्ति पर्याप्त न रहेगी तो पशुओं को उसमें से हिस्सा कौन बँटाने देगा ? लोग उन्हें मार-काट कर बहुत पहले ही चट कर जावेंगे।'' इन विषम परिस्थितियों में संतानोत्पादन को जितना निरुत्साहित किया जाय उतना ही उत्तम है।

जिनके कन्धों पर बच्चों का उत्तरदायित्व आ गया है, उन्हें तो वह निवाहना ही चाहिए और अपने पीछे समाज को श्रेष्ठ नागरिक छोड़ जाने का कर्त्तव्य पालन करना ही चाहिए। कहते हैं कि सन्तान से अपना नाम और वंश चलता है। यह 'चलना' यश की शृंखला अविच्छिन्न रूप से चलते रहने के रूप में ही हो, तो उसमें कुछ तथ्य माना जाएगा अन्यथा दो-चार पीढ़ी बाद के लड़के बच्चे भी अपने पूर्व पुरुषों का नाम भूल जाते हैं। जिनका नाम तक अपने नाती, पोतों-परपोतों तक को याद नहीं उनका नाम दुनिया में चल रहा है, यह मान्यता केवल भ्रम मात्र है।

नाम उसी का चलेगा जो अपने पूर्व पुरुषों की भाँति स्वयं भी श्रेष्ठ कार्य करते हुए अपने पूर्वजों का यश बढ़ा रहा है और अपने पीछे ऐसे सभ्य नागरिक छोड़े जा रहा है जो प्राचीन गौरव को कितना भी कष्ट आने पर गिरने न दें। वंश गौरव की यशस्वी परम्परा चलाने वाली सन्तान का निर्माण कर सकना जिनके बल-बूते की बात नहीं है, उन्हें केवल प्रजनन करते रहने मात्र से यह आशा न करनी चाहिए कि हमारा नाम और वंश चलता रहेगा। कुतिया, बकरी और शूकरी हर साल दर्जनों बच्चे पैदा करती है, उनका वंश कहाँ चलता है ? नाम निशान कहाँ रहता है ? जो लोग कीड़े-मकोड़े की तरह कैसे भी शुभ-अशुभ कर्म करके कीट पतंगों की तरह अपनी जिन्दगी के दिन पूरे कर रहे हैं, वे अपना भी नाम अपने हाथ डुबाये जा रहे हैं, फिर उनसे बेचारे पूर्व पुरुषों को ही क्या आशा होनी चाहिए कि उनसे उनका नाम चलेगा ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिन्हें सन्तान प्राप्त है, उन्हें अपने उत्तर-दायित्वों के प्रति सजग होना चाहिए और बच्चों में सद्गुण उत्पन्न करने के लिए वही सद्गुण पहले अपने में उत्पन्न करने चाहिए जिन्हें हम बच्चों में देखना चाहते हैं। यह तथ्य भली प्रकार ध्यान में रखा जाना चाहिए कि "पर उपदेश कुशल" रहने मात्र से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। शिक्षा वही सार्थक होती है जो अपने आचरण के द्वारा दूसरों के अन्त:करण को प्रभावित करके दी जाती है। बच्चे डाँटने, लताड़ने से नहीं वरन् इस बात से प्रभाव ग्रहण करते हैं कि हमारे अभिभावक क्या करते हैं और किस प्रकार अपना जीवन बिताते हैं। परीक्षा के समय निरीक्षक जैसे छात्रों की गतिविधियों पर ध्यान रखते हैं, उसी प्रकार बच्चे अपने घर वालों की क्रियाओं, भावनाओं, दोषों और गुणों को अत्यन्त बारीकी में देखते-समझते रहते हैं और उनका अनुकरण करके प्राय: वैसे ही बन जाते हैं। इसलिये संतानोत्पादन द्वारा नाम और वंश चलाने की इच्छा करने वालों को यह पूरी तरह ध्यान रखना चाहिए कि कुसंस्कारी सन्तान से उनका वंश डूबेगा ही। इसलिए सन्तति को सुसंस्कृत बना सकने वाले सद्गुण सब से पहले अपने में उत्पन्न करें, तब वंश वृद्धि की बात सोचें।

जिन्हें सन्तान प्राप्त नहीं है, वे इस दृष्टि से अधिक भाग्यवान हैं। वे सहज ही ऐसे उत्तरदायित्व से बचे रहते हैं। यदि अपने को बालकों के सुशिक्षण के उपयुक्त नहीं भी बनाया है, अपने दोष नहीं भी सुधर सके हैं, तो उनका प्रतिफल उन्हें ही भोगना पड़ेगा। सन्तान को विरासत में वह दुर्गुण मिलने से बच्चों को तथा समाज को आपत्तियों का सामना तो न करना पड़ेगा। एक आदमी स्वयं भी अपराध करे और दूसरों से भी कराये, तो इन दोनों में वह अधिक अपराधी माना जायगा जो अपने साथ-साथ दूसरों को भी अपराधों की प्रेरणा देता है, नये अपराधी बढ़ाता है। गुरु को शिष्य के और माता-पिता को अपनी सन्तान के पापों का दशांश दण्ड भुगतना पड़ता है। सत्कर्मों का दशांश पुण्य भी उन्हें इसी आधार पर मिलता है कि अपने-अपने उत्तरदायित्व को कितना किस प्रकार निवाहा। पितरों को पिण्डदान देकर सद्गति कराने का रहस्य यही है कि सन्तान के शुभ कर्म रूपी पिण्डों का पुण्यफल पूर्वजों को मिले।

शास्त्रकारों ने पिण्डदान का एक अलंकारिक-भावनात्मक विचार इसलिए दिया है कि लोग परलोक में अपना सद्गति के स्वार्थ से भी सन्तान को पिण्डदान देने का अधिकारी-सत्कर्मकर्त्ता और सुसंस्कृत बनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहें और सन्तान के प्रति अपने कर्तव्य-पालन में भूल न करें। हमें जानना चाहिए कि हर कोई अपने-अपने पाप-पुण्य का फल प्राप्त करता है। स्वयं कर्तव्य-घात कर रहे हैं तो नरक की ही तैयारी कर रहे हैं। संतान को सद्गुणी न बना सकना भी एक कर्तव्यघात है, जिसका प्रतिफल नरक मिलना होना चाहिए। जिनमें यह क्षमता नहीं है, उन्हें सन्तानोत्पादन की जिम्मेदारी से बचे रहने पर एक पाप से तो बचाव हो ही जाता है कि वे सन्तान को सुयोग्य न बना सके। तब उन्हें उतने अंश में नारकीय त्रास कुछ तो कम ही भुगतना पड़ेगा। इस दृष्टि से वे लोग नफे में ही रहेंगे जिनको किसी कारणवश सन्तानोत्पादन का उत्तरदायित्व नहीं उठाना पड़ा है।

जिन्हें ईश्वर के अनुग्रह से सन्तान का उत्तरदायित्व वहन नहीं करना पड़ रहा है, जिन्हें सन्तान प्राप्त नहीं है, उन्हें अपने को दूसरों की अपेक्षा अधिक सुखी एवं अधिक सौभाग्यशाली मानना चाहिए। उन्हें अपने आपको अभागा तो कभी भी नहीं मानना चाहिए।

सच तो यह है कि यह एक सुअवसर और सौभाग्य है कि जो शक्तियाँ बच्चों के लालन-पालन में लगतीं वे बच जाने से मनुष्य अधिक आत्मोन्नति कर सकता है। अधिक समाज सेवा में लग सकता है, आर्थिक दबाव और चिन्ताओं से बचा रह सकता है और बन्धन-मुक्त शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकता है। श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण करने की अपनी योग्यता न होने से कुसंस्कारी बालकों के उत्पादन का पाप भी अपने को नहीं लगता और सन्तान के अपयश में अपने को भी भागीदार बनाने का अवसर नहीं आता। बढ़ती हुई जनसंख्या आज सारे संसार के लिए एक भारी विपत्ति बनी हुई है। सबसे बड़ी सार्वभौम समस्या बढ़ती हुई जनसंख्या की ही है। इस विभीषिका का जैसे-जैसे विकराल रूप बढ़ता जायगा, उतनी ही उतनी मानव सभ्यता खतरे में पड़ती जायगी। इसलिए विचारशील लोग संतति नियमन के विभिन्न पहलुओं पर बहुत ध्यान रहे हैं और जो कुछ बन पड़ रहा है कर भी रहे हैं।

जिन्हें संयोगवश ही सही-सन्तानोत्पादन का उत्तर-दायित्व नहीं उठाना पड़ रहा है, वह अनजाने ही विश्व-मानव की एक भारी सेवा कर रहे हैं। उनके द्वारा खतरे का उतना समाधान तो होता ही है, जितने के लिए कि वे स्वयं उत्तरदायी होते। सन्तानहीनों में से किसी को भी अभागा नहीं मानना चाहिए। वस्तुत: वे दूसरों की अपेक्षा अधिक सौभाग्यशाली हैं उन्हें ऐसा ही मानना चाहिए। इससे दुखी होने का तो रत्तीभर भी कोई कारण नहीं है।

सन्तानहीन होना एक सौभाग्य भी

जिन्हें सन्तान नहीं उन दम्पत्ति को अपने मन में खिन्न तनिक भी नहीं होना चाहिए। वरन् अपने मन में अपेक्षाकृत प्रसन्न होना चाहिए कि ईश्वर ने उन्हे अनेक उत्तरदायित्वों से बचा दिया। बच्चों के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, स्वास्थ-सुरक्षा, विवाह-शादी, धधा-रोजगार आदि की अगणित चिन्ताएँ माता-पिता के सिर पर आती हैं। वे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि ठीक तरह निभाई न जा सकें तो चित्त को भारी ग्लानि और व्यथा होती हैं।

इस युग में ऐसी आशा करना व्यर्थ है कि सन्तान बड़ी होकर हमारी सेवा करेगी, सहारा बनेगी और सुख देगी। इन दिनों जो हवा चल रही है, उसमें पशु प्रकृति का ही बोलवाला है। पशुओं के बच्चे तभी तक अपने माता-पिता का सहारा लेते हैं जब तक कि वे अपने पैरों पर खड़े नहीं हो जाते। जब वे चलने-फिरने लगते हैं तो फिर माँ-बाप से अपना रिश्ता तोड़ लेते हैं और इस बात की परवाह नहीं करते कि उन्हें जन्म देने वाले जनक-जननी का क्या हाल है ? मनुष्य के बच्चे भी अब उसी रास्ते पर चल रहे हैं। जब तक वे अपने पैरों पर खड़े नहीं होते तभी तक उन्हें माता-पिता की जरूरत अनुभव होती है। विवाह हो जाने पर तो उनकी आँखें ही बदल जाती हैं।

कई व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि हमारे बाद हमारी सम्पत्ति, खेती, घर, जायदाद आदि का उपयोग कौन करेगा ? हमारा उत्तराधिकारी कौन बनेगा ? ऐसे विचार अत्यन्त संकीर्ण, अनुदार और स्वार्थी लोगों के लिए ही उपयुक्त हो सकते हैं। भारत जैसे गरीब देश में जहाँ एक-एक दाने के लिए तरसने वाले गरीबों की कमी नहीं, जहाँ बच्चे इसलिए अशिक्षित रह जाते हैं कि उनके माँ-बाप फीस और पुस्तकों के पैसे जमा नहीं कर पाते, जहाँ अगणित मनुष्य उचित चिकित्सा के अभाव में काल कवलित होते रहते हैं, जहाँ सद्भाव के प्रकाश के अभाव में मनुष्य घोर अन्धकार की ओर बढ़ते चले जा रहे हैं, जहाँ हर क्षेत्र में सहायता की पुकार आ रही है, वहाँ यह सोचना कि हमारे पैसे का क्या होगा ? हमारी कमाई कौन खायगा ? यह प्रश्न ही कहाँ उठता है ? बेटा, साला, जीजा, मौसा, भतीजा ही अपनी कमाई को पाये और दूसरे अत्यन्त जरूरतमंद उसका कोई लाभ न लेने पायें, यह कैसी विलक्षण कठोरता है। पत्थर जैसे निर्दय मनुष्य ही ऐसी बात सोच सकते हैं।

हमारे चारों ओर ऐसी निम्न परिस्थितियाँ, आवश्यकतायें बिखरी पड़ी हैं, जिनके लिए यदि कोई व्यक्ति अपनी कमाई खर्च कर डाले तो उससे अनेकों पीड़ितों के आँसू पुछ सकते हैं, जनहित की दृष्टि से बड़ा उपयोगी कार्य हो सकता है। सत्कार्यों के लिए अपनी सम्पत्ति दे जाने वाले लोगों के नाम भी तो अमर होते हैं। उनका यश भी तो फैलता है, उन्हें स्वर्ग और पुण्य फल भी तो प्राप्त होता है, उनके त्याग का अनुकरण करने की दूसरों में इच्छा जाग्रत होने से सत्कार्यों की परम्परा भी तो प्राप्त होती है। इतनी बातों को तुच्छ मानने वाला और केवल अपने बेटे-पोते को ही अपनी कमाई का लाभ लेने की बात सोचने वाला कंजूस वस्तुतः भारी संकीर्णता के गर्त में पड़ा हुआ है। अच्छा हो, ईश्वर ऐसे संकीर्ण लोगों को सात जन्म में भी संतान न दें अन्यथा उनकी यह क्षुद्रता वंश परम्परा के हिसाब से अगली पीढ़ियों में बढ़ेगी तो संसार का सब प्रकार अहित ही होगा।

जर्मनी का अधिनायक सर हिटलर अविवाहित और संतान रहित मरा। सारा जर्मन राष्ट्र उसे फ्यूहरर अर्थात् 'पिता' कहता था। जर्मनी के हर नागरिक को उसने अपना बेटा माना। उदार दृष्टिकोण के सभी सत्पुरुष सारे मानव समाज को अपना परिवार मानते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उनकी दृष्टि होती है। अपने और पराये की आपापूती क्यों करनी, सभी तो अपने हैं। इतने असहाय मनुष्य इस संसार में मौजूद हैं कि अपनी सारी सम्पत्ति भी उनकी एक बहुत छोटी आवश्यकता को पूरी कर पावेगी। ऐसी दशा में यह सोचना कि हमारी सम्पत्ति को कौन खावेगा ? कौन लेगा ? उसका उत्तराधिकारी कौन बनेगा? कैसा उपहासास्पद विचार है।

सन्तान न होने पर किसी को गोद रख लेने का विचार राजगद्दी कायम रखने जैसी मनोवृत्ति कही जायगी। किसी एक ही लड़के को अपना सारा धन दे जाने से क्या तो अपना, क्या उस लड़के का और क्या समाज का लाभ होगा ? वरन् तीनों की ही इसमें हानि है। अपनी हानि इसलिए कि वह धन अपने हाथ से तो चला गया पर न पुण्य मिला, न यश। जिन्दगी भर की सारी कमाई यों ही गुड-गोबर हो गई। उस गोद में आए हुए लड़के की हानि यह कि-मुफ्त में मिला हुआ धन उसे कुमार्ग पर चलने की प्रेरणा देगा। ऐसे लड़के जिन्हें मुफ्त की दौलत मिली है आमतौर से व्यसनी, आलसी, उड़ाऊ और दुर्व्यसनी हो जाते हैं और अन्त में वह धन समाप्त हो जाने पर गरीबों की अपेक्षा भी अधिक दुख पाते हैं। समाज का अहित इसलिए कि वह सम्पत्ति यदि किसी सार्वजनिक सत्कार्य में लगती तो उससे कितनों को कितना लाभ मिलता। जरूरतमन्द उससे कितना लाभ उठाते पर संकीर्णता ने वह कुछ भी न होने दिया। जब अपने खून में पैदा हुए लड़के माँ-बाप की कोई परवाह नहीं करते तो यह आशा करना कि गोद लिए हुए लड़के सेवा करेंगे और नाम चलावेंगे, मूर्खों की दुनिया में सैर करने जैसी बात ही होगी।

कई बार इस संदर्भ में पैशाचिक कृत्य होते देखे गये हैं। कुचाली लोग उन सन्तानहीनों की भावनाएँ भड़का कर घोर जघन्य कर्म कराते हैं। देवी-देवताओं के नाम पर निरपराध मूक पशु-पक्षियों का बलिदान किये जाने की प्रथा जहाँ कहीं प्रचलित है, वहाँ आधे से अधिक जीव सन्तान होने की कामना या हो जाने पर उसकी मनौती चुकाने के लिए मारे जाते हैं। कई बार तो दूसरों के बच्चे चुराकर उनकी बलि भी अपने यहाँ सन्तान होने की कामना से करदी जाती है। ऐसे कितने ही मुकद्दमे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अदालतों में चल चुके हैं और इन अपराधियों को समुचित दण्ड मिला है। घरों में, खलिहानों में आग लगाने से भी कई लोग सन्तान होने की आशा करते हैं। अघोरी तांत्रिक और ऐसे ही पिशाचकर्मी लोग इन भोले किन्तु कामना के पीछे अन्धे लोगों से कुछ भी करा लेते हैं और लोक-परलोक का हर प्रकार नाश करते हैं।

सन्तान की कामना व्यभिचार की प्रवृत्ति को जन्म देती है। कई बार स्त्रियाँ अपने पति में कोई कमी होने की बात सोचकर गुप्त व्यभिचार की ओर उन्मुख होती हैं। पड़ौस के गुण्डे-बदमाश इस प्रकार के जाल उन भोली स्त्रियों पर फेंकते हैं, जो सन्तान के लिए अत्यधिक लालायित हैं। इसी कुचक्र में बहुधा उन्हें अपने सतीत्व से हाथ धोने का पश्चात्ताप भरा अनर्थ करना पड़ता है।

सन्तान न होने पर कई व्यक्ति दूसरा विवाह करने की बात सोचते हैं। उनके मन में यह बात समाई हुई होती है कि स्त्री में कोई दोष होने के कारण ही सन्तान नहीं हो रही है इसलिए दूसरा विवाह कर लेने पर यह उद्देश्य अवश्य पूरा हो जायगा। पर डाक्टरी परीक्षणों की रिपोर्ट इससे भिन्न है। उनके मतानुसार सन्तानहीन लोगों में से तीन-चौथाई पुरुषों का ही वीर्य दोषपूर्ण होता है। ऐसी दशा में बेचारी स्त्री को दोष दिया जाना और उसका तिरस्कार करके दूसरा विवाह करना सरासर अन्याय ही कहा जायगा। जिस घर में दो पत्नी रहती हैं, वह साक्षात नरक ही बना रहता है। जब दशरथ जैसे महापुरुष के घर में दो नारियाँ न निभ सकीं तो साधारण घरों में क्या निभेंगी ? पतिव्रत और पत्नीव्रत को धर्म शास्त्रों में समान महत्त्व दिया गया है। एक पति के रहते कोई स्त्री दूसरा पति रखने लगे तो वह पाप माना जायगा। इसी प्रकार एक पत्नी के रहते दूसरी और ले आना धर्म और न्याय की दृष्टि से घोर पाप ही माना जाता है। मध्यकाल के सामन्तवादी युग की अनेक नृशंसताओं में एक भारी पाप यह भी था कि पुरुष कई-कई स्त्रियाँ एक साथ रखने लगे थे। अब विचारशीलता का उदय होता जा रहा है और इस जघन्य प्रथा को सर्वत्र हेय माना जा रहा है। भारत सरकार ने अपने कर्मचारियों के लिए नियम बना दिया है कि एक पत्नी के रहते दूसरी लाने का अपराध करने वालों को नौकरी से निकाल दिया जायगा। सर्व साधारण के लिए भी ऐसा ही कानून अपेक्षित है। आशा है वह बनकर भी रहेगा।

दूसरा विवाह कर लेने पर यदि पुरुष सन्तानोत्पादन के अयोग्य हुआ तो दूसरी पत्नी को भय होता है कि कहीं तीसरा विवाह न कर ले इसलिए वह पर पुरुषों की ओर आकृष्ट होती है। पहली पत्नी का भी धैर्य टूटता है और वह भी सौत की देखा-देखी अनीति की ओर कदम बढ़ाती है। देखा यह गया है कि जहाँ सन्तान न होने पर आकाश शिर पर उठाया गया है वहाँ व्यभिचार जन्मा है और उस पाप से वह घर बर्बाद होकर रहे हैं सन्तान का सुख मिल भी जाय तो भी दूसरे विवाह के दुष्कर्म से उतनी अशान्ति एवं विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं, जो सन्तानहीन रहने की अपेक्षा हजारों गुनी अधिक होती हैं। कई माता-पिता अपने बच्चों को संतान न होने पर दूसरे विवाह पर जोर देते हैं और नाती को गोदी में खिलाने के लोभ से पुत्र-वधू के गले पर छुरी चलाते हैं। इन हृदयहीन अविवेकी माता-पिता को नरक और पाप का भय बुढ़ापे में भी पैदा नहीं होता, यह देख कर आश्चर्य होता है।

हर अभाव के लिए ईश्वर को कोसना और हर वस्तु प्राप्त हो ही जाय यह आकांक्षा करना, मानव प्राणी की सीमित मर्यादा का उल्लंघन करना ही है। असन्तोष में, जलन में नहीं, सन्तोष की शान्ति में ही चैन मिलता है। सन्तानहीन होने पर ही इसे एक ईश्वरीय कृपा मानकर सन्तोष की विचारधारा ही उपयुक्त और शान्तिदायक हो सकती है। असन्तोष में नष्ट होने वाली मानसिक शक्तियों को यदि रचनात्मक दिशा में मोड़ा जा सके तो सन्तानहीनों को बच्चों के लिए खर्च होने वाली शक्तियों का किसी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य में खर्च कर अधिक उत्कृष्ट जीवन लाभ प्राप्त कर लेने का अवसर मिल सकता है।

सन्तान के लिए अधीरता क्यों ?

बहुत बार बहुत लोगों को विवाह के बहुत समय बाद तक सन्तान नहीं होती। यह कोई आश्चर्य का विषय नहीं है और न खेद अथवा दुःख का। किन्तु लोग विवाह के दो, ज्यादा से ज्यादा तीन साल तक तो प्रतीक्षा करते हैं, फिर बाद में बुरी तरह बेचैन होने लगते हैं। तरह-तरह की शंकायें तथा डर उनके मन में उठने लगते हैं। पत्नी तो बुरी तरह डरी-डरी, लज्जित सी, दबी-दबी रहती है। वह बच्चों वाली नारियों के बीच उठने-बैठने में संकोच अनुभव करने लगती है। उसे ऐसा लगता है मानो सभी उसे प्रश्नसूचक दृष्टि से देखती हैं और मन में उसके प्रति तिरस्कार का भाव रखती हैं। वह अपनी भावनाओं के आधार पर स्वयं अपने आप दूसरों की दृष्टि में गिरा हुआ अनुभव करने लगती है। ऐसी दशा में उसके वे चार-छह साल, जो दाम्पत्य जीवन का स्वर्ण समय हुआ करते हैं, बहुत पहले से ही कुढ़न में बीतने लगते हैं। दो साल के बाद ही दाम्पत्य जीवन का सारा रस, सारा उल्लास और सारा हास-विलास सूखने लगता है। जीवन नीरस, निस्सार मालूम होने लगता है।

ऐसे ही पुत्रेच्छुक जल्दबाजों का घर ठग, मक्कार तथा जालसाज, आडम्बरी ताक लेते हैं और तरह-तरह के लाभ उठाया करते हैं। ऐसे ही मूर्खों के ऊपर ओझा सयाने गुरु बन कर बैठ जाते हैं। ऐसे ही घरों में गृह कलह उत्पन्न करने में प्रवीण औरतों का मंत्रित्व चलने लगता है, ऐसे ही घरों में तरह-तरह के अन्धविश्वास

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपना स्थान बना लेते हैं। ऐसे ही परिवारों की स्त्रियाँ ढीठ, दुःसाहिसिनी, वाचाल हो जाती हैं। इस परेशानी से ऊब कर नई बहुयें तक बड़ी-बूढ़ी बनकर अपनी समस्या हल करने की स्वयं कोशिश करने लगती हैं और सांसारिक अनुभवहीनता के मोटे मूल्य चुकाया करती हैं। पति परिवार की यह संतान विषयक जल्दी उन्हें कभी-कभी कर्त्तव्यान्ध तक बना देती है। पर सन्तानोत्सुक मूर्ख इस सब बातों पर दीर्घ दृष्टि से विचार नहीं कर पाते।

संतान के लिये यह जल्दी और यह बेचैनी उचित नहीं। यदि वह स्वाभाविक रूप से जल्दी हो जाती है, ठीक है, उसका समुचित रूप से पालन होना चाहिए। यदि जल्दी नहीं होती तो इतना विह्वल हो उठने की कोई जरूरत दिखलाई नहीं देती। अन्य देशों में बुद्धिमान लोग सन्तान के लिये जल्दी तो दूर जल्दी विवाह तक नहीं करते। वे पच्चीस के बाद तीस और पैंतीस तक विवाह करते हैं। फिर उसके बाद कोशिश करते हैं कि जल्दी संतान न हो।

इसका कारण यह है कि वे संतान होने की जिम्मेदारी समझते हैं। संतान की आवश्यकता उनके लिये केवल मिथ्या दम्भ अथवा वात्सल्य तुष्टि के लिए नहीं होती। वे संतान को राष्ट्र की अमानत मानते और जानते हैं कि यदि उसके होने पर वे उसे हर प्रकार से योग्य नागरिक न बना सके तो यह एक राष्ट्रीय अपराध होगा। वे इसलिए, इस उत्तरदायित्व से जहाँ तक सम्भव होता है बचने का प्रयत्न किया करते हैं। वे अपने अथवा अपने कुल के लिए संतान का मात्र होना भर ही आवश्यक नहीं समझते। किन्तु अपने समाज में, अपने देश में जहाँ वर्तमान जन-संख्या के लिए ही भोजन, वस्त्र तथा निवास की साधारण समस्या ही हल नहीं होती है, लोग संतान के लिए इतने व्यग्र होते रहते हैं और जल्दी से जल्दी उसे पाने के लिए आकाश-पाताल के कुलावे मिलाते रहते हैं। यह इसलिए कि संतान के महत् उत्तरदायित्व को नहीं समझते और न समुचित रूप से उनके पालन-पोषण की व्यवस्था को अपना कर्तव्य समझते हैं। वे तो सन्तान को उसके अपने भाग्य के आधार पर चाहते हैं। जो पैदा होता है अपना भाग्य, भाग तथा अंश लेकर पैदा होता है—परमात्मा जिसे पैदा करता है, उसका प्रबंध खुद करता है। पैदा हो जायेगा तो किसी तरह उल्टा-सीधा पल और जी जायेगा। इस प्रकार के उनके सिद्धान्त रहा करते हैं। ऐसे मूढ़ देश में यदि संतान पैदा होकर निकलती रहें तो इसमें क्या आश्चर्य ?

जो व्यक्ति दम्भ एवं व्यक्तिगत आत्म तोष को त्याग कर पिता होने के उत्तरदायित्व को ठीक-ठीक अनुभव करे और सोचे कि संतान होने पर उसके जीवन में एक बड़ा मोड़ आ जायेगा, तब वे उस स्वतन्त्रता से दाम्पत्य जीवन का निर्वाह नहीं कर पायेंगे, जिस स्वतन्त्रता से उसके न होने तक रह लेते हैं। सन्तान पर कोई अवांछनीय प्रभाव न पड़े, वह कोई अनुचित संस्कार ग्रहण न करले इसलिए हर कदम खूब सोच-समझ करके तथा फूँक-फूँक कर रखना होगा। अभी जो उनके कदम हिरन की तरह मुक्त तथा चपल हैं, फिर हाथी की तरह भारी तथा विचाराधीन हो जायेंगे। बच्चा होने की भूमिका से लेकर उसके योग्य होने तक न जाने कितनी जिम्मेदारियाँ व परेशानियाँ उठानी होंगी। आरम्भ से ही उसके पालन तथा विकास के लिये साधन जुटाने पड़ेंगे। शिक्षा-दीक्षा, व्याह-शादी और कार-रोजगार की न जाने कितनी समस्यायें सिर पर आ जायेंगी। जिनका निर्वाह हो सका तब तो अच्छा, नहीं तो सिर पर एक मुसीबत आ पड़ेगी।

आज यदि उनको देश के अभावों की भयंकरता और संतानों की असफलता ठीक से दिखाई पड़े और वे उन पर विचार करने की बुद्धिमानी करें, तो संतान के लिए इतने व्यग्र कदापि नहीं हों। किसी भी संतान वाले से जाकर पूछ सकते हैं कि उन्हें उनके होने से क्या सुख मिला ? निश्चय ही अधिकांश लोग रोते और भाग्य कोसते ही मिलेंगे। आज घर-घर जिस प्रकार निकम्मी तथा कार-रोजगार से रहित संतानें देखने में आती हैं, उन्हें देखकर कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति उसके लिए इतना व्यग्र न होगा कि सारा काम-धाम को छोड़कर सारा ध्यान उस ओर लगाये रहे और अपने को अभागा अथवा कुल का भविष्य अन्धकार में मानता रहे। आज की अयोग्य सन्तानें जितनी कुलतारिणी हो रही हैं यह सत्य किसी से छिपा हुआ नहीं है।

यह कितना जुल्म और कितनी ज्यादती है कि बहू के घर में आते ही उससे सन्तान की आशा की जाने लगती है। लोग उसे दो-चार साल भी सुख की श्वाँस लेकर जीने नहीं देना चाहते। उसके शरीर तथा यौवन को सुरक्षित नहीं रहने देना चाहते। क्या नारी का केवल यही उपयोग है कि वह होश सम्भालते ही सन्तानवाहिनी बनने लगे। यदि प्रकृति अथवा परमात्मा उसे कुछ दिन चैन की साँस लेने के लिए स्वतंत्र रखना चाहता है तो परिवार में बड़ी हाय-तोबा मच जाती है। उसकी वह सुविधा, वह सुख छीन लेने के लिए दुश्मन की तरह पीछे पड़ जाते हैं। दवा, टोटका, झाड़-फूँक ही नहीं अनेक आपरेशनों तक से उसका यौवन तथा स्वास्थ्य चौपट कर देते हैं। नारी भी एक सजीव प्राणी होती है कोई मशीन तो होती नहीं, जिससे उत्पादन पाने के लिए उसे काट-छाँट और ठोक-पीटकर ठीक कराया जाये। प्रकृति जब उसे इस योग्य समझती है भार सौंपती रहती है, मनुष्य को अधिकार नहीं उसको इस योजना में दखल देकर नारी का जीवन बर्बाद नहीं कर देना चाहिए । यदि नारी में इस प्रकार का कोई प्रकट रोग हो तो उसका उपचार ठीक है किन्तु सन्तान की जल्दी में उसकी काँट-छाँट करना ठीक नहीं। प्रगतिशील देशों में जो लोग अपने साधनों में जरा भी कमी समझते हैं, संतान उत्पन्न ही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं करते और अनेक बार तो बहुत से दम्पत्ति उपायों द्वारा सन्तान निरोध कर अपना पूरा जीवन समाज तथा राष्ट्र की सेवा में समर्पित कर देते हैं। वहाँ ऐसे लोगों का बड़ा सम्मान व आदर होता है और उन को ऊँची दृष्टि से देखा जाता है। भारत जैसे देश जहाँ एक तो यों ही जनसंख्या बुरी तरह बढ़ती जा रही है, साधनों की कमी भयानक रूप से सामने खड़ी है और समाज-सुधार तथा राष्ट्र की सेवा के लिए अधिकाधिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, वहाँ विवाह के दो चार साल तक सन्तान न हो तो न जाने कितनी व्यग्रता और व्याकुलता होने लगती है। यदि भारत के लोग आज सन्तान सेवा की अपेक्षा समाज सेवा की बढ़ी हुई आवश्यकता समझें और सन्तान का निरर्थक मोह छोड़कर अपना बचा हुआ समय समाज सेवा में लगाने लगें, तो उन्हें आदर-सम्मान के साथ-साथ एक ऐसा आत्मिक सुख मिले जो सन्तान होने से सैकड़ों गुना बढ़-चढ़कर हो। तब उन्हें सन्तान के लिये इस प्रकार की व्याकुलता अथवा व्यग्रता न रहेगी।

अनेक बार तो लोग दो-चार या अधिक से अधिक चार-छह साल तक सन्तान की प्रतीक्षा करने के बाद पत्नी को उसके अयोग्य मान लेते हैं और उसके रहते हुए भी दूसरा विवाह कर लिया करते हैं। नारी पर यह कितना बड़ा अपमान है।

एक सार्थक उदाहरण

आज की सामाजिक परिस्थितियों में सम्पन्न तथा स्वस्थ दंपत्ति सन्तान के उत्तरदायित्वों से मुक्त रहकर कार्य करें, तो वह समाज के लिए वरदान बन सकते हैं। युग निर्माण योजना की विचारधारा से प्रभावित बड़ी संख्या में सद्गृहस्थ इस सार्थकता की ओर चरण बढ़ा रहे हैं। प्रस्तुत उदाहरण से यह तथ्य स्पष्ट हो सकेगा।

भांगौल निवासी श्री गोरखप्रसाद के पिताजी मकान बनाने की ठेकेदारी करते थे। मकान बनाने की कला में वे निपुण थे। उस जमाने में इंजीनियर, ओवरसीयर तो सरकारी काम-काज ही करते थे। जनता के मकानों के नक्शे, उनकी रुचि तथा आवश्यकता के अनुरूप बनाना, मिस्त्री लोगों का ही काम था। वे ही विभिन्न शर्त और रेटों पर बनाने या बनवाने का ठेका लेते थे। मिस्त्रीगीरी आजकल की ठेकेदारी से मिलती-जुलती सर्वसाधारण के लिए सरल एवं उपयोगी क्रिया पद्धति थी। वे मिस्त्रीजी के नाम से प्रसिद्ध थे। इस कार्य से उनने अच्छा यश, विश्वास और पैसा कमाया था।

गोरखप्रसाद उनके इकलौते बेटे थे। दसवीं कक्षा तक पढ़ाकर उन्हें अपने ही साथ काम में लगा लिया। दस-पाँच साल के अनुभव से वे भी पक्के मिस्त्री हो गये। काम अच्छे रेटों पर और पर्याप्त मात्रा में मिल जाता था। इसलिए आर्थिक लाभ पिताजी के सामने से भी अच्छा होने लगा। विवाह अच्छे खानदान की रूपवती लड़की से हो गया। पिता, पत्नी और स्वयं तीन ही प्राणी घर में थे। सम्पन्नता दिन-दिन बढ़ती ही गई। ७० वर्ष की उम्र पर पहुँचते-पहुँचते पिताजी का स्वर्गवास हो गया।

विवाह हुए १५ वर्ष बीत गये। उम्र ३५ के करीब पहुँच गई पर सन्तान कोई नहीं हुई। हमारे देश में गृहस्थ की सबसे बड़ी सफलता सन्तान होना मानने की रूढ़ि चली आती है। सन्तान न होना दुर्भाग्य अथवा पाप दोष माना जाता है, इतनी आयु तक सन्तान न होने की बात गोरखप्रसादजी के मित्रों और सम्बन्धियों में चर्चा का विषय बन गई। दवा-दारू, झाड़-फूँक बहुत हुई पर कोई परिणाम न निकला तो दूसरा विवाह कर लेने अथवा किसी सम्बन्धी का लड़का गोद रख लेने के प्रस्ताव सामने आने लगे। सम्पन्नता को देखकर कितने ही व्यक्ति अपनी लड़कियाँ उनके लिए ब्याहने को और कई अपने बच्चे गोद देने को तैयार फिर रहे थे। पति का मन टूटे नहीं यह सोचकर पत्नी ने भी इन दोनों बातों के लिए भारी मन तथा दु:खी अन्त:करण होते हुए भी शब्दों में ऐसा कर लेने की स्वीकृति दे दी। लोग तरह-तरह का चबैया करें और इस पाप का सारा दोष उसी के मत्थे पर मढ़ें, यह उस बेचारी को भी बहुत खलता था। स्वीकृति देकर वह अपने ऊपर थोपा जाने वाला कलंक धोना चाहती थी।

गोरखप्रसाद चरित्रवान् व्यक्ति हैं। गम्भीर, दूरदर्शी, विचारशील और साहसी। लोग क्या कहते हैं, क्यों कहते हैं, इन सारी बातों का उन पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे केवल उचित को ही महत्त्व देते हैं, दुनिया की बकवास में से वे उतना ही ग्रहण करते हैं जो उचित एवं तथ्य-पूर्ण है। दूसरे विवाह और किसी का बच्चा गोद रखने के दोनों ही प्रस्ताव उन्हें मूर्खतापूर्ण लगे। जबकि देश में न रहने को जगह है और न खाने को अन्न तब यदि किसी को सन्तान नहीं होती तो इसे दुर्भाग्य की नहीं सौभाग्य की बात मानना चाहिए। इस प्रकार जबकि लाखों-करोड़ों अनाथ और अनाथालय के बच्चे अनावश्यक स्नेह और सहायता के बिना शिक्षा तथा प्रगति से वंचित पड़े हैं, तो किसी एक ही लड़के को अपनी सारी सम्पत्ति और भावना देने से क्या लाभ ? अपना बच्चा होता तो उसके कर्तव्य सिर पर आते ही पर जब ईश्वर ने वह झंझट सिर पर नहीं डाला तो अधिक आवश्यकताग्रस्त बालकों की सहायता करके अपना वात्सल्य विकसित क्यों न किया जाय ?

इस प्रकार की विचारधारा उनके मस्तिष्क में घूमने लगी। लोगों के कथन की निस्सारता और अपनी मान्यता की उपयोगिता पर उनका विश्वास जम गया। फलत: उन्होंने सन्तान वाले प्रश्न पर चर्चा चलाने वाले हर व्यक्ति से स्पष्ट और खरे शब्दों में यह कह दिया कि वे न तो दूसरा विवाह करेंगे और न किसी का बच्चा गोद रखेंगे। उन्हें अपनी वर्तमान स्थिति पर पूरी तरह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तोष है। बच्चों के लालन-पालन और झंझट से बचे हुए समय, धन और मस्तिष्क को हम पति-पत्नी अपने मनोविनोद के कार्यों में तथा अध्ययन और सेवा क्रम में व्यवस्थित रूप-रेखा बनाकर उपयोग करेंगे।

जो लोग अपने को हितैषी सिद्ध करने के लिए ऐसे-ऐसे प्रस्ताव करते थे वे गोरखप्रसाद की उच्च भावना को देखकर अवाक् रह गये। पत्नी पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा। वैसे तो वह सदा से ही पति की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता सँजोये रहती थी, पर इस बार उनके निश्चय को सुनकर उसने पति को साक्षात् देवता के रूप में देखा और उसमें परमेश्वर के दर्शन करने लगी। चरित्रवान् और उदार व्यक्ति ही तो इस संसार में नर-नारायण कहे जाते हैं।

पति-पत्नी ने मिलकर भावी-जीवन की एक दीर्घकालीन रूपरेखा बनाई। वे दोनों साथ-साथ मिलकर गृहकार्य निपटाया करेंगे। पति ठेकेदारी पर जाया करेगा। पत्नी स्कूल में भर्ती होकर अपनी आगे की शिक्षा चलावेगी। रात को दोनों मिलकर समाज सेवा के विविध विधि कार्यों में संलग्न संस्थाओं के प्रोग्रामों में भाग लेने जाया करेंगे। रचनात्मक सेवा कार्य करने वाली संस्थाओं को रात के दो घण्टे देने की सूचना उनने दी थी, तो पति को पुस्तकालय में और पत्नी को सिलाई सिखाने वाले स्कूल में समय देने का अनुरोध आ गया, वे दोनों उसमें लग भी गये। पत्नी की शिक्षा तीन वर्ष तक ठीक क्रम से चली, उसने मैट्रिक द्वितीय श्रेणी में पास कर लिया। यह तीन वर्ष दोनों ने इतनी प्रफुल्लता और सात्विक उत्साह के साथ बिताये जितने कि जीवन भर में कभी भी नहीं बीते थे। दोनों का पारस्परिक प्रेम, सहयोग, सन्तोष और उल्लास देखते ही बनता था।

विचारों के परिवर्तन से जीवन का आन्तरिक और बाह्य सारा ही क्रम कैसे बदल जाता है, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण गोरखनाथ दम्पत्ति के क्रिया-कलाप में देखा जा सकता था। पत्नी के मैट्रिक पास करने की खुशी में उनने सत्यनारायण की कथा, गायत्री यज्ञ और मित्रों के प्रीतिभोज का आयोजन किया। इसी अवसर पर उन्हें वह घोषणा भी करनी थी, जो दोनों ने मिलकर काफी विचार-विमर्श के बाद एक वर्ष पूर्व ही निश्चित कर रखी थी।

कुल मिलाकर नकदी तथा जेवर के रुपये साठ हजार की सम्पत्ति उन लोगों के पास थी। मासिक आमदनी करीब ४००/-। रहने के लिये दो बड़े मकान कथा के उपरान्त उपस्थित लोगों के सामने गोरखप्रसादजी ने घोषणा की कि हमारी यह सारी सम्पत्ति परित्यक्ताओं, विधवाओं तथा असहाय महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने की शिक्षा देने वाले विद्यालय के लिए समर्पित है। छोटा मकान अपने रहने के लिए तब तक रखेंगे जब तक जीवित हैं, हम लोगों के न रहने पर वह भी विद्यालय की सम्पत्ति होगी। लगभग ४००/- मासिक की आमदनी में से १००/- अपने खर्च के लिए रखेंगे और जो कुछ बचेगा सो विद्यालय को दिया करेंगे। इस घोषणा को सुनकर उपस्थित सभी मित्र-सम्बन्धियों का मस्तक इनके लिए श्रद्धा से झुक गया।

प्रौढ़ महिलाओं को स्वावलम्बी बनाने के लिए सिलाई आदि उद्योग तथा प्राइवेट मैट्रिक कथा शिक्षा देने वाला यह विद्यालय गत ४ वर्ष से चल रहा है। गोरख प्रसाद की पत्नी इण्टर पास कर चुकी हैं वे स्वयं पढ़ाती तथा सिखाती हैं। उच्च घरों की कई सुशिक्षित ४ महिलाएँ इस विद्यालय के लिए सेवा भाव से समयदान करने आती हैं। इस प्रकार चार अधूरे और एक पूरा समय देने वाली पाँचों महिलाएँ मिलकर बड़ी अच्छी तरह विद्यालय चला लेती हैं। स्थानीय महिलायें पढ़कर घर चली जाती हैं और बाहर से आई हुई उस मकान में रहती हैं। जो अपने घर से भोजन खर्च नहीं मँगा सकतीं, वे विद्यालय की ओर से जो आटा, दाल का भंडार रहता है, उसी में से मिल-जुल कर भोजन बनाकर अपना काम चलाती हैं।

इन दिनों ४२ महिलाएँ विद्यालय में पढ़ रही हैं। गत ४ वर्षों में ३० स्वावलम्बी बनकर अपनी आजीविका कमाने योग्य बन चुकी हैं। गोरखप्रसादजी ने इसे सार्वजनिक संस्था के रूप में रजिस्टर्ड करा दिया है और सरकारी तथा गैरसरकारी सहायता प्राप्त कर इसे एक ऐसे विशाल विद्यालय के रूप में परणित करने जा रहे हैं, जिसमें कम से कम १०० महिलाओं की शिक्षा व्यवस्था सम्भव हो।

सन्तान का न होना अभिशाप न रहकर इस प्रकार का वरदान बनाया जाना हर एक के लिए सम्भव है। आवश्यकता है थोड़े से विचारपूर्ण साहस की।

कन्या की उपेक्षा न हो

किन्हीं माता-पिता को इसलिए खिन्न नहीं होना चाहिए कि उन्हें केवल कन्यायें ही हैं पुत्र नहीं। पुत्र की उपयोगिता एवम् आवश्यकता के पीछे व्यक्तिगत स्वार्थपरता एवम् एक अन्धकारमय भावना की ही प्रधानता है।

सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा के जमाने में परिवार को जब एक स्वतंत्र संगठन के रूप में विकसित होने की गुञ्जाइश थी, तब पुत्रों की अधिकता परिवार की आर्थिक, सुरक्षात्मक एवम् सामाजिक स्थिति मजबूत करने की दृष्टि से उपयोगी होती थी। लोगों में एक दूसरे के प्रति प्रेम, सद्भाव, उदारता एवं सहनशीलता का दृष्टिकोण रहता था। इसलिए पुत्र-पौत्रों से उनकी पत्नियों और पुत्रों से भरा हुआ परिवार सुख-शान्ति के सुगन्धित पुष्पों से भरे उद्यान जैसा दीखता था, उस जमाने में पुत्रों की उत्पत्ति पर हर्ष मनाया जाना उचित भी था। कृषि और पशुपालन को बड़े

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

परिवार अच्छी तरह कर सकते थे, जिनमें पुरुषों की अधिकता रहती थी। माता-पिता को अपने पुत्र-पौत्रों से वृद्धावस्था में जब सेवा, सम्मान प्राप्त होता था, तब आड़े समय के लिए सहारा समझ कर भी उनका महत्त्व माना जाता था।

आज सोचने का ढंग दूसरा हो गया है। जिनके पास बड़ी-बड़ी जोतें हैं, उन कृषकों के अतिरिक्त और कोई वर्ग सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा को अपनाने के लिए तैयार नहीं। भाई-भाई से तो अलग होते ही हैं-विवाह होते ही पत्नी को लेकर माता-पिता से भी अलग हो जाने वाले युवकों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। शिक्षितों को आमतौर से नौकरी करनी पड़ती है, उनकी बदली भी होती रहती है। इसलिए स्वभावतः उन्हें पत्नी को लेकर अलग रहना है। जहाँ इकट्ठे रहते हैं वहाँ भी मत-भिन्नता, असहिष्णुता एवं स्वार्थों की आपाधापी के कारण खींचतान बनी रहती है। बाहर से इकट्ठे रहने का क्रम बनाये रहने पर भी बड़े परिवारों में भीतर ही भीतर अलगाव की भावना भरी रहती है और वे यही सोचते रहते हैं कि वह सुदिन कब आवेगा जब अलग घर बसाकर रहेंगे और स्वच्छन्द जीवन बिताने का अवसर मिलेगा।

ऐसे स्वच्छन्दतावाद के युग में वे कारण, तथ्य और तर्क निरर्थक हो जाते हैं, जो सम्मिलित कुटुम्ब-प्रथा के युग में आदर्श प्रतीत होते थे। पुत्रों की अधिकता किसी जमाने में उपयोगी थी, पर आज वैसा कहाँ है ? भरण-पोषण, शिक्षा, विवाह और फिर आजीविका में लगाने तक का क्रम इतना महँगा और सिर दर्द से भरा हुआ है कि कई पुत्रों की उपस्थिति कन्या से कहीं अधिक महँगी पड़ती है। समर्थ हो जाने पर उनका तथा उनकी बहुओं का जो रवैया रहता है, उससे भी किसी माता-पिता को प्रसन्नता नहीं होती। सच तो यही है कि असन्तोष ही बढ़ता है। जिनको सन्तान नहीं है उनकी और जिनको बहुत बेटे-पोते हैं उनकी तुलना की जाय तो वे लोग हजार गुने अधिक सुखी मिलेंगे, जिन्हें सन्तान नहीं है। तृष्णा का कोई अन्त नहीं, आकाश कुसुम पाने के लिए कोई रोया करे तो इसका कोई उपाय नहीं। पर आज की स्थिति में तथ्य यही है कि जिसे जितने अधिक पुत्र हैं, वह उतना ही अधिक बन्धनों में ग्रसित व्यक्ति की तरह अगणित चिन्ताओं का उत्पीड़न सह रहा होगा। किन्हीं बिरले सौभाग्य-शालियों की बात अलग है, उन्हें अपवाद ही माना जा सकता है।

परिवार की सुसम्पन्नता और सुव्यवस्था से जहाँ तक इस युग की परिस्थितियों का सम्बन्ध है, वहाँ तक सबसे अच्छा वह है जिसे कोई सन्तान नहीं। देश की आर्थिक परिस्थितियों की माँग भी यही है कि अब संतानोपार्जन को सीमाबद्ध किया जाय। व्यक्ति को अपने विकास का अवसर भी छोटे परिवार में ही मिल सकता है। इसलिए उन्हें ईश्वरीय कृपा का विशेष भाजन मानना चाहिए, जिन्हें संतान नहीं है। व्यक्तित्व एवं प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ऐसे व्यक्ति किन्हीं अनाथ-असहाय बालक को अपने घर में रखकर उसका पालन-पोषण कर सकते हैं। इस प्रकार उन्हें सन्तान पालन का सुख मिल सकता है और परमार्थ का श्रेय भी उपलब्ध हो सकता है। निःसन्तानों से कुछ कम भाग्यवान् वे हैं जिन्हें केवल कन्यायें ही कन्यायें हैं। कुछ समय सन्तान पालन का हर्षोल्लास अनुभव करने के बाद उसे ससुराल में भेज देने से जल्दी से अभिभावकों का उत्तरदायित्व हल्का हो जाता है और वे निश्चिन्तता का अनुभव करते हुए वृद्धावस्था को शान्ति प्राप्ति एवं सत्प्रयत्न में लगा सकते हैं।

जिन्हें भगवान् ने पुत्र दिये हैं उनके लिये यही उचित है कि भावनापूर्वक उनका लालन-पालन करें और तत्परतापूर्वक उनकी शिक्षा-दीक्षा के साधन जुटायें। राष्ट्र माता के सुसंस्कृत नागरिक होने का पुण्य-परमार्थ उन्हें मिल सके। अपनी सुन्दर प्रतिकृति के रूप में लोक-सेवी सुसंस्कृत नागरिक पीछे छोड़ जाना किसी सद्गृहस्थ का सच्चा स्मारक हो सकता है। यह सोचकर पुत्रवानों को पूरा-पूरा ध्यान उनके आत्मिक विकास पर देना चाहिये। बच्चों के लिये बहुत धन छोड़ जाना या ऊँची पढ़ाई पढ़ाकर ज्यादा पैसे की नौकरी से लगा देने से कोई पिता-पुत्र ऋण से उऋण नहीं हो सकता। सुसंस्कृत, सज्जन एवं सद्गुणी सन्तान बन सकी तो ही पिता-माता का प्रजनन श्रम सार्थक माना जा सकता है।

जिन्हें पुत्र नहीं केवल कन्यायें हैं उन्हें ईश्वर की इस महान अनुकम्पा को सौभाग्य ही मानना चाहिये। दुःखी या निराश होने का तो इसमें कोई कारण है ही नहीं। जो लोग इसलिए दुःखी हैं कि उन्हें कन्यायें ही क्यों प्राप्त हुईं, उन्हें अविवेकी के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ? चूँकि लोग यह समझते हैं कि पुत्र महत्त्वपूर्ण और कन्या निरर्थक है—इसलिये हम भी वैसा ही समझें यह बिल्कुल भी आवश्यक नहीं।

राष्ट्र निर्माण में नारी का योग अधिक है। पुरुष में कठोरता और दुष्टता अधिक रहती है। आज की परिस्थितियों में यह दोष अपनी चरमसीमा तक पहुँच चुका है। इस समय करुणा और सहृदयता की आत्मदृष्टि ही विश्व शान्ति का उद्देश्य पूरा कर सकती है। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिये युग की पुकार यह है कि पुरुष का वर्चस्व घटना चाहिए और नारी का वर्चस्व बढ़ाना चाहिए। भावनात्मक सन्तुलन का, सच्ची उन्नति का यही मार्ग है। राजनीति, शिक्षा, सेवा, अर्थ का सञ्चालन क्रम यदि पुरुष के हाथ से छीनकर स्त्री के हाथ में दे दिया जाय तो आज की विभीषिकाएँ जो मानव सभ्यता को निगल जाने के लिये मुँह बाये बैठी हैं, देखते-देखते सरल हो सकती हैं। मितव्ययितापूर्वक घर खर्च चलाने वाली नारी जब राष्ट्र कोष की मन्त्राणी होगी तो एक पैसा भी शासन कार्यों में अपव्यय न हो सकेगा। जब ये विदेश मन्त्री होंगी तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरे देशों के नागरिक भी उन्हें वैसे ही प्रिय लगेंगे जैसे ससुराल में रहते हुए पितृग्रह के भाई-भतीजों का उन्हें ध्यान रहता है। ऐसी मनोभावना से शोषण और आक्रमण की नीति कैसे अपनाई जा सकेगी ? अपने सुहाग और बच्चों का निरन्तर मंगल चाहने वाली नारी जब युद्ध मन्त्री होगी तो वह पड़ौसी देश को अपनी बहिनों का सुहाग और बच्चों की रक्त स्नान करने की क्रूरता पर कैसे कटिबद्ध हो सकेगी ? जो कार्य तोपें नहीं कर सकतीं यह उनकी करुणा के द्वारा हल हो सकेगा। सीमा-संघर्ष जैसी समस्यायें तब कहाँ रहेंगी ? महिला शिक्षा मन्त्री बने तो वह सबसे पहले वही वातावरण उत्पन्न करेगी जिसमें पढ़कर बच्चे अपने परिवार के लिये, माता, पत्नी, बहिन और पुत्री के लिये सहृदय एवं उदार बन सकें। राजनीति को धर्म नीति में परिणत करने का प्रयोग पुरुषों द्वारा सफल न हो सका तो अब उसका परीक्षण नारी के हाथों सत्ता सौंप कर किया जाना चाहिये।

साहित्य सृजन का कार्य नारी के हाथों सौंप कर हम अश्लील, निर्लज्ज, वासनात्मक, कुत्सित रचनाओं की समाप्ति के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो सकते हैं। चिकित्सक बनकर वे अपनी स्वाभाविक करुणा से रोगियों के प्रति अधिक सहृदयतापूर्ण व्यवहार कर सकेंगी। शिक्षा का कार्य उनके हाथ में रहे तो बालकों में सहृदयता और सज्जनता के संस्कार ही उत्पन्न होंगे। हमें विश्वासपूर्वक आशा करनी चाहिये कि नारी के हाथों ही मानव-जाति का भविष्य उज्ज्वल बनेगा। उनकी सुसंस्कृति बढ़ने से ही उनके शरीर और मन का रस पीकर उन्नत होने वाले बच्चे सुसंस्कृत बनेंगे। नारी का जितना उत्कर्ष होगा, नर का भविष्य भी उतना उज्ज्वल बनता जायगा। इस उभय पक्षीय प्रगति से ही संसार में सुख-शांति का वातावरण उत्पन्न हो सकेगा।

युग निर्माण परिवार में ईश्वर की उपासना नारी रूप में की जाती है। गायत्री को माता की आकृति में पूजा-अर्चना करने का उद्देश्य नारी मात्र के प्रति अधिक श्रद्धा एवं अधिक समान उत्पन्न करना भी है। अनुष्ठानों के अन्त में तथा नवरात्रियों में कन्या-पूजन, कन्या-भोजन की प्रथा के मूल में भी यही उद्देश्य छिपा हुआ है। वैदिक सभ्यता में नारी को हर दृष्टि से अधिक पूज्य, अधिक पवित्र, अधिक श्रेष्ठ एवं अधिक महान माना गया है।

नव युग की इस निर्माण बेला में नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण ऊँचा उठाना ही होगा ताकि वह अपना समुचित विकास कर सके और उस विकास का महत्त्वपूर्ण लाभ समस्त संसार को मिल सके। यह कार्य हमें पुत्र और कन्या के बीच माने जाने वाले अन्तर को समाप्त करते हुए आरम्भ करना चाहिये।

पुत्र और कन्या की तुलना

यह सृष्टि नर और नारी दोनों के संयोग से चल रहीं है। दोनों की ही समान आवश्यकता, उपयोगिता एवं महत्ता है। इसलिए श्रेय और सम्मान भी दोनों को समान ही मिलना चाहिये। हमारा निज का अस्तित्व माता के बिना सम्भव न हुआ होता। पत्नी के बिना हमारा जीवन क्रम ही अस्त-व्यस्त रहता है। उनकी उपयोगिता हमारी दृष्टि में स्पष्ट है। बाहरी क्षेत्र में कोई मित्र कितने ही उपयोगी क्यों न हों, व्यक्तिगत जीवन में अत्यन्त निकटवर्ती-आत्मीय जैसे समझे जाने वाले सम्बन्धियों में माता और पत्नी ही प्रमुख होती हैं। नारी के बिना नर का तो अस्तित्व ही न सम्भव है और न विकास ही हो सकता है। ऐसी दशा में पुत्री के जन्म पर शोक मनाया जाना, उसे दुर्भाग्य समझा जाना एक मतिभ्रम ही माना जा सकता है।

पुरुष का तीन चौथाई सौभाग्य-दुर्भाग्य नारी से, उसकी माता से या पत्नी से—नापा जा सकता है। मनुष्य जाति का भविष्य नारी की उत्कृष्टता एवं निकृष्टता से सम्बन्धित है। नारी की स्थिति जितनी ही विकसित होगी उतना ही मानव-समाज सुविकसित हो सकेगा। प्रजनन का कठिन उत्तरदायित्व नारी के स्वास्थ्य पर भारी आघात पहुँचाता है, इसलिये उनकी मृत्यु संख्या भी पुरुषों की अपेक्षा अधिक रहती है। जिस तरह का प्रतिबन्धित जीवन उन्हें बिताना पड़ता है, उसमें अकाल मृत्यु एवं अल्पायु का प्रसार भी अधिकतर उन्हीं पर होता है। ऐसी दशा में नर-नारी की संख्या—सृष्टि-संतुलन ठीक रखने की दृष्टि से भी लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का जन्म अधिक होने लगे और लड़कियाँ घट जायँ तो एक ऐसी विश्वव्यापी विपत्ति सामने आ खड़ी होगी, जिसका कोई हल ही न निकल सके।

(१) 'पुत्र का दिया हुआ पिण्डदान पितरों को मिलता है, पुत्री का नहीं।'

(२) 'पुत्र से नाम चलता है पुत्री से नहीं।'—यह मान्यतायें नितान्त मूर्खतापूर्ण हैं। तथ्य यह है कि आपका दिया हुआ अन्न-दान, पिण्डदान अपने को मिलता है, दूसरे का दिया हुआ दूसरे को नहीं मिल सकता। यदि पिता दुष्ट-दुरात्मा रहा है तो उसे दुर्गति प्राप्त होगी। बेटे का किया पुण्य उसके किसी काम न आवेगा, इसी प्रकार यदि मनुष्य सज्जन रहा है तो उसको पुत्र न होने पर भी, पिण्ड न देने पर भी सद्गति ही प्राप्त होती है। अनेकों व्यक्ति ब्रह्मचारी, अविवाहित या सन्तानहीन मरते हैं। क्या वे इसीलिए नरक में पड़ेंगे कि बेटा पिण्ड-श्रद्धा या तर्पण करने के लिए नहीं है ? इन शुभ कर्मों का भी महत्त्व है। पर उनके करने पर मुख्य लाभ श्राद्ध करने वाले श्रद्धालु पुत्र को ही मिलता है। श्रद्धा की सुगन्धि से उन पितरों की आत्मा सन्तोष एवं तृप्ति लाभ करती है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दिया तो जिसने है फल तो उसी को मिलेगा, कोई किसी के पाप-पुण्य में भागीदार नहीं बन सकता। आत्मा अपनी ही सज्जनता-दुर्जनता से सद्गति एवं दुर्गति की भागी बनती है। इस शाश्वत सत्य को समझने वाला इस सभ्यता को कैसे स्वीकार करेगा कि बेटे के पिण्डदान बिना पितरों की सद्गति न होगी।

वंश चलने वाली बात उससे भी परले सिरे की भ्रान्ति है। अपनी दस पीढ़ी के पूर्वजों के नाम तक हमें याद नहीं होते, उनके स्वरूप और कर्मों का तो स्मरण ही किसे होगा ? जब अपने वंशजों को, अपने ही पुरखों को जानकारी इतनी जल्दी विस्मरण हो जाती है तो दूसरों की दृष्टि में किसी वंश का चलना, न चलना महत्त्व ही क्या रखता है ? एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी प्रायः २५ से भी कम वर्षों में उत्पन्न हो जाती है। कई बार तो अठारह वर्ष तक के लड़के पिता बनते देखे गये हैं। औसत २५ मानें तो दस पीढ़ी २५० वर्षों की होती है। नाम और यश तो पाँच पीढ़ी का भी याद नहीं रहता। इस हिसाब से १८ × ५ = ९० वर्षों में ही लोग बाप-दादों को भूल जाते हैं। पर यदि २५ वर्षों में पीढ़ी के होने और १० पीढ़ी में भूलने की बात भी मान ली जाय तो २५ × १० = २५० वर्षों में वंश चलने की बात समाप्त हो जाती है। इतने थोड़े दिन तो कोई कुँआ, बाबड़ी, बरगद या खजूर का पेड भी नाम चला सकता है।

हम स्वयं अपने बाप-दादों का क्या नाम चलाते हैं ? केवल सरकारी कागजों में बल्दियत लिखी जाती है। विवाह के समय शाखोच्चार में तीन पीढ़ी के नामों की चर्चा कर दी जाती है। पितृपक्ष में कोई श्राद्ध-तर्पण करता हो तो भी दो-तीन पीढ़ी के पूर्वजों का स्मरण कर लिया जाता है। इन बातों को इतना महत्त्व नहीं दिया जा सकता है कि इन्हें 'वंश चलाना' कहा जा सके। जहाँ तक पुत्रों द्वारा कुल चलने और परलोक सुधरने की आशा का प्रश्न है, वह भी कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। परलोक केवल अपने सत्कर्मों से ही सुधरता और बनता है। कोई किसी के परलोक को बना-बिगाड़ नहीं सकता। लोक में पिता के नाम पर पुत्र द्वारा जो कुछ दान-पुण्य, पिण्ड-पारायण, तर्पण-श्राद्ध किया जाता है, वह सब पिता के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने का एक ढंग है। पुत्र का अपना सत्कर्म है, जिसका फल वह स्वयं पायेगा, इससे पिता के परलोक का कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार अन्य देवताओं की पूजा-अर्चा की जाती है उसी प्रकार पिण्ड-तर्पण आदि पितरों की पूजा विधि है। क्योंकि हमारे गुरुजन पूजनीय ही होते हैं और शरीरोपरान्त उन्हें देवता की योनि में माना जाता है।

जहाँ तक वंश चलने का प्रश्न है यह तो आये दिन देखा जाता है कि आज के लड़के कितना तो नाम चलाते हैं और कितना वंश ऊँचा करते हैं ? वंश परम्परा का महत्त्व तो तब है कि लड़के सत्कर्म करते हुये आयें और जायें। अयोग्य एवं आचरणहीन पुत्रों की लड़ी से तो कुल के डूबने की ही आशंका रहती है। फिर पुत्रों से नाम एक दो पीढ़ी ही तो चलता है। एक दो पीढ़ी बाद लोग पूर्वजों के नाम तक भूल जाते हैं, तो इस प्रकार दस-बीस या सौ-पचास साल पुत्रों द्वारा बल्दियत या दर बल्दियत विदित कराने के लिए इतना पागल होने में कोई बुद्धिमानी तो नहीं प्रतीत होती और कहीं पुत्र निकम्मे और नालायक हुए, जैसाकि आज की परिस्थितियों में असम्भव नहीं है, तब तो नाम चलवाने की बजाय नाम छिपाते ही बनता है।

कुल को उज्ज्वल करने की इच्छा है, नाम चलाने की भावना है तो पुत्रों की क्यों प्रतीक्षा की जाय और क्यों उस पर निर्भर रहा जाय ? क्यों न स्वयं अपने आप ऐसे सत्कर्म, ऐसे सेवा कार्य, ऐसा लोक मंगल कर जाया जाये, जिससे सदियों तक लोग नाम लेते रहें। क्यों न ऐसे स्मारक, निदर्शन और उदाहरण छोड़े जायें कि लोग सदा सर्वदा याद करते रहें। लड़के होने पर जो पैसा उनके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, शादी-व्याह में खर्च करना होता, उसे कोई भी बुद्धिमान सन्तानहीन सावधानी से बचाकर कोई पाठशाला, धर्मशाला, पुस्तकालय, कुँआ, बाग-बगीचा, संस्था-कोष, मन्दिर आदि कोई भी स्थापना करा सकते हैं, जिससे न जाने कब तक उनका अपना नाम जीवित रहे और न जाने कितना पुण्य लाभ हो जिसमें लोक और परलोक दोनों ही बन सकते हैं।

उन पुत्रों पर अनिवार्य रूप में खर्च होने वाले पैसे से अनेक निर्धन विद्यार्थियों को पढ़ाया जा सकता है, अनाथों का पोषण किया जा सकता है, विधवाओं को उद्योग दिया जा सकता है, गरीबों, बीमारों और अपंगों की मदद की जा सकती है, इस प्रकार न जाने कितनों को पुत्रों की तरह पालकर सुखानुभूति की जा सकती है। नाम लेने वाले कृतज्ञों की शृंखला बनाई जा सकती है सही बात यह है कि मनुष्य के शुभ-अशुभ कार्य ही किसी के वंश और यश को कायम रखते हैं। बुद्ध, शंकराचार्य, हरिश्चन्द्र, प्रहलाद, शिवि, दधीचि, शिवाजी, प्रताप, गाँधी आदि का यश उनकी सन्तानों के कारण नहीं, उनके स्वयं के सत्कर्मों के कारण ही चल रहा है। ऐसी दशा में बेटे के द्वारा वंश चलने की बात में कितना सार है—इसे कोई भी विचारशील भली प्रकार समझ सकता है। कुतिया, शूकरी और बकरी हर साल कई बार प्रसव करती और कई-कई बच्चे देती हैं। उनमें कितने ही पुत्र भी होते हैं। उन पुत्रों ने अपने माता-पिता का कितना वंश चलाया होता है?

जानकीजी कन्या थीं उनने अपने पिता जनक का नाम चलाया और वंश भी। द्रुपद राजा का यश द्रौपदी ने अमर बनाया। सावित्री, मदालसा, सुकन्या, अरुन्धती, अनुसूया, कौशल्या, गार्गी, मैत्रेयी, भारती, शकुन्तला,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पद्मिनी, लक्ष्मीबाई, कस्तूरबा आदि को जिन माता-पिता ने जन्म दिया था, उन्हें सौ पुत्र उत्पन्न करने से बढ़कर यश मिला। शास्त्र का वचन है—**'दस पुत्र समा कन्या या स्यात् शीलवती सुता''** यदि कन्या शीलवती हो तो वह दस पुत्रों से बढ़कर है। सच बात तो यह है कि मनस्वी, तेजस्वी और प्रतिभावती कन्या निकम्मे सैकड़ों पुत्रों से बढ़कर मानी जा सकती है।

कन्या में स्वभावत: सौम्यता, मृदुलता और सात्विकता अधिक होती है। उसकी उपस्थिति से घर का वातावरण बड़ा मृदुल और सौम्य बना रहता है। लड़कों मे उद्दण्डता अधिक पाई जाती है इसलिये उनसे माता-पिता बहुधा खीझते रहते हैं। लड़कियों की कोमलता अभिभावकों के हृदय को शीतल और प्रफुल्लित बनाये रहती है। जिस प्रकार कोमल पुष्पों की मृदुलता उद्विग्न मन को भी शीतलता प्रदान करती है, उसी तरह कन्याओं की स्वाभाविक सात्विकता अभिभावकों की, सांसारिक विक्षोभों की परेशानी का अपनी सरल मुस्कान द्वारा सहज ही शमन कर देती हैं। कन्यायें साक्षात् करुणा एवं स्नेह की प्रतिमा होती हैं। उनकी उपस्थिति से धरा में सौम्य वातावरण का सृजन होता रहता है।

त्याग और दान—अध्यात्म के दो प्रधान आधार हैं जो जितना उदार है, जिसमें जितनी त्याग वृत्ति है, जो अपने प्रयत्न और परिश्रम से दूसरों को जितना सुखी बना सकता है, जिसमें जितनी नि:स्वार्थता रहती है वह उतना ही बड़ा अध्यात्मवादी होता है। इन सत्प्रवृत्तियों को जो जितना चरितार्थ कर सके, उसकी आध्यात्मिक साधना उतनी ही बढ़ी-चढ़ी मानी जायगी। यह उद्देश्य कन्याओं की उपस्थिति से सहज ही पूरा होता है। लड़कों के द्वारा कमाई या सेवा प्राप्त होने का लोभ रहता है। वे सदा घर मे रहेंगे इसलिए उनसे मोह भी बढ़ता है। उद्दण्ड और अवज्ञाकारी होने से उन पर क्रोध भी आता है। पुत्र के द्वारा वे कामनायें पूरी होंगी, जो हम पूरी नहीं कर सके। ऐसा सोचने से भी काम बढ़ता है। बेटे के बाद पोती-पोते बढ़ निकलते है इसलिए उनका काम-धन्धा सिमटता ही नहीं। मरते दम तक उन्हीं की उलझनें सुलझाने में मनुष्य लगा रहता है और तीसरी-चौथी अवस्था में भी वैराग्य एवं परमार्थ साधन नहीं बन पड़ता। लड़के कपूत हुए तो उनके असत् आचरण का क्लेश भी जी को अन्तिम समय तक जलाता ही रहता है। इस प्रकार अधिक पुत्र-पौत्रों की उपस्थिति मनुष्य की आध्यात्मिक सम्भावनाओ को अन्धकारमय ही बनाती चलती है।

कन्या इस प्रकार की एक भी अड़चन उत्पन्न नही करती वरन् आत्मिक प्रगति की मूर्तिमती साधना बन कर ही घर मे रहती है। स्वाभाविक सात्विकता एवं कोमलता के कारण वह जहाँ अभिभावकों के चित्त में स्नेह-वात्सल्य को उमगाती रहती है, वहाँ उन्हें त्यागी और परमार्थी बनाने का अवसर भी प्रदान करती है। सभी जानते हैं कि कन्या विवाह होने पर अपने घर चली जाती है। उसका पालन-पोषण अपने स्वार्थ के लिए नहीं वरन् परमार्थ के लिए किया जाता है। उसकी शिक्षा एवं भरण-पोषण पर जो खर्च किया जाता है, उसका कोई भौतिक प्रत्युपकार मिलने की सम्भावना नहीं रहती। इसलिए उससे अनासक्ति एवं नि:स्वार्थता की भावनाओं का ही विकास होता है। विवाह समय में उसे बहुत कुछ देना पड़ता है। इसके उपरान्त भी जब तक वह जीवित रहती है तभी तक नहीं वरन् उसके बच्चे-कच्चों को भी समय-समय पर कुछ न कुछ देते ही रहना पड़ता है। इस दान में प्रतिदान की कोई गुञ्जायश नहीं रहती। इसलिए उसकी श्रेष्ठता भी बढ़ी-चढ़ी रहती है।

कन्या को समर्थ बनाकर उसे दूसरे व्यक्ति को सौंप देने में धन देने से भी अनेक गुना आत्म-त्याग करना पड़ता है। दशरथजी ने कुछ समय के लिए अपने दो बेटे विश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा के लिए दिये थे। उस दान की बहुत बड़ी प्रशंसा की जाती है। कन्या के माता-पिता अपनी स्नेह-पोषित बालिका को जन्म भर के लिये जब दूसरे को दान करते हैं, तब उनकी आन्तरिक त्याग भावना भी दशरथ की उदारता से कम नहीं होती। कन्या की सुयोग्यता का लाभ उसकी ससुराल का परिवार उठाता है। यह प्रत्यक्ष ही एक महान परोपकारी परम्परा है। कन्यादान जैसा महान दान पूर्ण नि:स्वार्थ भाव से देने के उपरान्त भी उन लेने वालों से प्रत्युपकार पाने की आशा रखना तो दूर, उल्टा सदा और भी जो सम्भव हो देते रहना, हमारा दान स्वीकार किया इसके लिए उन्हें धन्यवाद देना, उनकी कृपा मानना, कृतज्ञ रहना पिता के लिए निरहंकारिता एक श्रेष्ठ आध्यात्मिक साधन ही बन जाता है।

विवाह के बाद कन्याओं का उत्तरदायित्व माता-पिता पर से प्राय: चला ही जाता है। इस प्रकार घर के गोरख-धन्धे से उन्हें जल्दी ही छुटकारा मिल जाता है। ढलती आयु वानप्रस्थ के लिए और जीवन का अन्तिम अध्याय संन्यास के लिए होना चाहिये। यदि किसी के घर में केवल कन्यायें ही हैं तो उसे यह अवसर बड़ी सुगमता से मिल सकता है। बच्चों के उत्तरदायित्व से निवृत्त हुआ मनुष्य लोकहित एवम् आत्मकल्याण की साधना में अपना अधिकाधिक समय लगाकर इस सुर-दुर्लभ मानव शरीर को सार्थक बनाने वाली गतिविधियाँ निश्चिन्त होकर अपना सकता है।

अभिभावकों का कर्तव्य है कि बालकों के रूप में वे राष्ट्र-माता के लिए सुयोग्य, सुविकसित एवं सुसंस्कृत नागरिक प्रदान करने के लिये श्रम करें। आज के वातावरण से हर नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी की तुलना में गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से घटिया ही बनती जाती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। शिक्षा व धन का कोई मूल्य नहीं। धनी या शिक्षित व्यक्ति किसी देश की सच्ची समृद्धि नहीं हो सकते। यदि वे आदर्श की दृष्टि से गये बीते हैं तो वह शिक्षा और सम्पत्ति जितनी ही अधिक होगी, संसार में विपत्ति और विकृति उसी हिसाब से बढ़ेगी। बच्चों को सुसंस्कृत, सद्गुणी एवं समाजसेवी बनाना माता-पिता का कर्तव्य है। यदि वे उसे पूरा नहीं करते तो उन प्राप्त सन्तानों द्वारा संसार को हानि पहुँचाने में वे भी पाप के भागी बनते हैं।

सन्तानोत्पादन हेतु इतनी आतुरता क्यों ?

आज विचारशील वर्ग में सन्तानोत्पादन की निरर्थकता एक स्वर से स्वीकारी जा रही है। केवल अदूरदर्शी व्यक्ति ही उसके लिए लालायित रहते हैं। जिन्हें वैयक्तिक और सामाजिक हित-अनहित का कुछ विवेक-विचार नहीं है, उन्हीं की यह इच्छा रहती है कि उनके यहाँ जल्दी या अधिक संख्या में सन्तानें उत्पन्न हों। सम्भव है प्रारम्भिक काल में जनसंख्या की कमी के दिनों में इसकी कुछ उपयोगिता रही हो पर आज जबकि जनसंख्या भार के कारण प्राकृतिक, सामाजिक सन्तुलन चरमराता जा रहा है, वंश वृद्धि की बात सोचना बिगड़ी मानसिकता का द्योतक माना जायेगा। हैरत इसी बात की है कि हजारों-लाखों वर्षों पूर्व का दृष्टिकोण ही जहाँ का तहाँ बना हुआ है और बदली हुई परिस्थितियाँ हमारी मान्यताओं को प्रभावित नहीं कर रही हैं।

विचारशील समुदाय को स्वीकार करना पड़ रहा है कि सन्तानोत्पादन अब किसी तरह लाभदायक नहीं रहा। इसमें हर दृष्टि से घाटा ही घाटा है। पुरुष सोचता है इससे उसके ऊपर आर्थिक भार बढ़ता है। जिस धन से वह वर्तमान परिवार को अधिक सुविकसित बना सकता है। उसमें नए हिस्सेदार जोड़ लेने से घर में पुराने और नए साझीदार की अभावग्रस्तता ही बढ़ेगी। जो समय-साधन सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं उन्हें और भी अधिक विभाजित करने से सिर्फ कठिनाइयाँ ही बढ़ेंगी। जिन मेहमानों के आतिथ्य की समुचित व्यवस्था नहीं उन्हें आमन्त्रित करते रहने में समझदारी की क्या बात है?

स्त्रियाँ सोचतीं हैं प्रजनन एक प्रकार से मौत से जूझना है। महिलाओं की मृत्यु में एक बहुत बड़ा भाग प्रसव कष्ट में मर-खप जाने वालों का होता है। घोर तड़पाने वाली प्रसव पीड़ा सहने और अपने स्वास्थ्य रस को निचोड़ कर खोखली हो जाने में किस महिला को क्या लाभ हो सकता है ? इतने समय में कोई नारी अपनी ज्ञान वृद्धि, स्वास्थ्य रक्षा, आजीविका उपार्जन, गृह-व्यवस्था, समाज-सेवा जैसे महत्त्वपूर्ण कामों में लगाकर लाभान्वित हो सकती है। उसे इसमें क्या मिलता है ? माता बनने के बाद उसकी व्यक्तिगत प्रतिभा एवम् प्रगति का एक प्रकार से अन्त ही हो जाता है। आजीविका के लिए वे नितान्त पराश्रित हो जाती हैं और इसके लिए उन्हें पग-पग पर अपमानित जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है। बच्चों का बोझ वहन करते हुए वे न तो आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ी रह सकती हैं और न पति की सहयोगिनी बन पाती हैं। स्वयं उनकी सुख-सुविधाएँ और इच्छाएँ-आकांक्षाएँ भी स्वप्न होती चली जाती हैं। क्या मनोरंजन, क्या महत्त्वपूर्ण अवसर सभी प्रकरणों में उनके लिए घर से बाहर जा सकना एक प्रकार से अशक्य हो जाता है। वे जब स्वयं की अपनाई गई बाधित स्थिति की दुर्दशा पर विचार करती हैं तो उन्हें खेद होता है और उन तथाकथित अभिभावकों पर क्रोध आता है, जिनने अपनी कन्या को दुर्गति में धकेलने के लिए किस प्रकार सिर पर आसमान उठाया था और किस प्रकार आर्थिक कठिनाइयाँ सहन की थीं।

सुविधाजनक परिस्थितियों में अधिकतम एक सन्तान की प्राप्ति की बात सोची जा सकती है। पर उसके पीछे वे लाभ नहीं सोचे जाने चाहिए, जो आज सोचे जाते हैं। मरने के बाद बेटे के पिण्डदान देने से स्वर्ग मिलेगा, यह मान्यता घोर मूढ़ता की ही झाँकी कराती है। कोई व्यक्ति अपने ही भले-बुरे कर्मों से स्वर्ग या नरक आ जा सकता है। बेटे का पुण्य बाप को, बाप का बेटे को-भला किस प्रकार मिल सकता है। वंश चलेगा, नाम चलेगा जैसी बात भी अविवेकी सोचते हैं। हर वर्ष बीस बच्चे जनने वाली शूकरी का वंश उसकी सन्तान कहाँ बढ़ा पाती हैं ? हममें से किसे अपनी छठी पीढ़ी के पूर्वजों का नाम याद है ? जब नाम तक वंशजों का याद नहीं रहता तो कोई मूर्ख ही सोच सकता है कि उसका वंश चल रहा है।

उत्तराधिकार में सारी कमाई बेटे-बेटियों को देकर मरा जाय यह अत्यन्त घृणित स्तर की स्वार्थ भरी संकीर्णता है। जिस समाज के सहयोग से सम्पदा कमाई और जोड़ी गई उसे पुण्य-परमार्थ के आधार पर वापिस किया जाना चाहिए, यही धन का औचित्यपूर्ण सदुपयोग है। अपनी श्राद्ध परम्परा के पीछे यही आदर्श है कि उत्तराधिकारी अपने पूर्वजों की सम्पदा को हराम की कमाई न समझे, उसे स्वीकार न करें और किसी परमार्थ कार्य में लगा दें।

कई सन्तानरहित व्यक्ति दूसरा विवाह करने की, दूसरे का बच्चा गोद लेने की बात सोचते रहते हैं ऐसे लोगों को शीर्षस्थ स्तर का स्वार्थी, संकीर्ण और निष्ठुर कहना चाहिए। जिस धन से समाज का हित साधन हो सकता था, उनका लोक-परलोक बन सकता था, उसे मात्र सन्तानों को देने भर की बात सोचना यह स्पष्ट करता है कि यह अत्यन्त निकृष्ट मनोभूमि का व्यक्ति है। उदारता और दूरदर्शिता जैसी सत्प्रवृत्तियाँ उसे छूकर भी नहीं निकलीं। ऐसे लोग सन्तान प्राप्ति के लिए न जाने कितने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कर्मकाण्ड भी करते रहते हैं। उद्देश्यों और संकल्प की दृष्टि से ऐसे दान-पुण्य को शायद ही कोई देवी-देवता स्वीकार कर सके। ईश्वर तो भावना देखता है, कृत्य नहीं, मोहग्रस्त उद्देश्य लेकर किए गये धर्मकृत्य भी ईश्वर की प्रसन्नता का कारण नहीं बन सकते।

हँसने-खेलने के लिए अपने निज के बच्चे ही हों यह जरूरी नहीं। यदि उदारता के कुछ बीजाणु अन्त:करण में जीवित हैं, तो अपने-पराए का भाव भुलाकर किसी के भी बच्चों से हँसा-खेला जा सकता है। मुफ्त में आनन्द उठाया जा सकता है। अनावश्यक चिन्ताओं और जिम्मेदारियों से बचा जा सकता है। ऐसे अनेकों बच्चे मिल सकते हैं जो घोर अभावग्रस्त जीवन जीते हैं, उनकी सहायता करना अधिक श्रेयस्कर है। खुद की सन्तानों को ही पाला-पोसा जाय यह अनिवार्य क्यों होना चाहिए ? जो नहीं हैं, उन्हें जानने के लिए कोई व्याकुल रहे और जो आस-पास अनेकों बालक बिलख रहे हैं, उनकी ओर से निष्ठुर बने रहा जाय तो इससे वात्सल्य की आकुलता कैसे समझी जा सकती है।

बुढ़ापे में सन्तान सेवा करेगी तब काम चलेगा। ऐसा सोचना आत्महीनता का, आत्मविश्वास के अभाव का ही द्योतक है। परावलम्बी जीवन की आकांक्षा करने वाले एक प्रकार से मृतक ही कहे जायेंगे। आज के माहौल में जबकि पारिवारिक कर्त्तव्यों, स्त्री-बच्चों तक का भार ठीक तरह से नहीं निभ रहा है। तब बूढ़े माँ-बाप पर बेटे चँवर डुलायेंगे, इस मूर्खों के स्वप्न से जितनी जल्दी धरातल पर उतर आया जाय उतना ही अच्छा है। मरते समय तक बुड्ढे को अपनी हड्डियाँ कोल्हू में पेलकर उनके तेल से बेटे-पोतों की मालिश करनी पड़ती है। उसमें कमी पड़ती है तो सारे परिवार की आँखें किस तरह लाल-पीली होती हैं, इसे कोई भी आँखों वाला अपने आस-पास भी नजर पसार कर देख सकता है, समय की माँग है कि कामेच्छा और प्रजनन में अन्तर स्थापित कर इन्हें नियंत्रित किया जाय।

कामेच्छा पर नियंत्रण करके सन्तानोत्पादन घटाया जा सकता है। विवाह न करना, विवाहितों द्वारा यथाशक्ति संयम बरतना, ढलती आयु में प्रजनन को लज्जास्पद माना जाना-बहुसन्तान वालों को अविवेकी एवम् असामाजिक ठहराया जाना जैसी विचारणाओं को अब मान्यता मिलनी चाहिए। इससे सन्तान पैदा करने से पहले हर किसी को उसके दुष्परिणामों पर विचार करने का अवसर मिलेगा और अनियंत्रित वृद्धि रुकेगी।

प्राचीनकाल की ही तरह ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ परम्पराएँ अभी भी श्रेष्ठ व वन्दनीय हैं। इन्हें उत्साहपूर्वक अपनाया जाना चाहिए। उचित यही है कि अविवाहित विवाह बन्धन में न बँधकर आत्म-कल्याण व लोक-कल्याण में अपनी क्षमताओं का नियोजन करें। विवाह बन्धन में बँधे हुए व्यक्ति सन्तान पैदा करने की जगह परस्पर सहयोग कर अपनी बढ़ी हुई क्षमताओं को महत्वपूर्ण उद्देश्यों में नियोजित करें। आज इन परम्पराओं को फिर से जीवन्त-जाग्रत करने की जरूरत है। आदर्शवाद के नाम पर न सही आपत्तिकालीन स्थिति का विशेष कर्तव्य समझ कर भी यदि सन्तानोत्पादन के प्रति उपेक्षा या उदासीनता बरती जाय तो उसे प्रशंसनीय ही ठहराया जाना चाहिए।

जन्म-दर आखिर कैसे घटे ?

हमारे देश की जनसंख्या द्रुतगति से बढ़ रही है जिसके कारण देश की प्रगति एवं समृद्धि को एक प्रकार का संकट ही उत्पन्न हो गया है। एक ओर तो प्रति डेढ़ सैकण्ड के बाद एक बालक का जन्म हो रहा है, दूसरी ओर देश में जो स्वास्थ्य योजनायें चली हैं, उनसे मृत्यु दर में काफी कमी आ गयी है। पहले प्रत्येक भारतीय की औसत आयु २३ वर्ष थी किन्तु अब ५५ वर्ष हो गयी है और सम्भावना है कि जैसे-जैसे योजनायें विकसित होती जायेंगी, अगले १० वर्षों में वह ६०-६५ तक बढ़ जायेगी, इसका अभिप्राय यह हुआ कि औसत आयु तो पहले से दुगुनी से भी अधिक बढ़ गयी है परन्तु उसी अनुपात में जन्म दर में कमी नहीं हुई है। अतएव जनसंख्या अविराम गति से बढ़ती जा रही है।

जब तक मृत्यु दर तथा जन्म दर के मध्य सामंजस्य नहीं होगा, जब तक जनसंख्या का नियंत्रण असम्भव है। जन्म दर की बाढ़ को रोकने के लिए अनेक उपाय खोजे गये हैं। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि यदि लड़कियों के विवाह की न्यूनतम आयु २० कर दी जाय तो जन्मदर में ३० प्रतिशत तक की कमी आयेगी। देर से विवाह करने से कम बच्चे होंगे। अतएव इस कानून को निश्चित रूप से लागू कर दिया जाना चाहिए। जो उल्लंघन करें, उन्हें सरकार दण्डित करे।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या विवाह आयु बढ़ा देने से जन्म दर में कमी आ जायेगी ? क्या देश की ग्रामीण जनता को देखते हुए यह कानून बनाना उचित है ? विवाह की आयु बढ़ाना हितकर ही होगा क्योंकि कानून के डर से लोग बाल-विवाह से विमुख होंगे तथा बड़ी आयु में विवाह होने से बालक कम होंगे। विवाह की आयु में वृद्धि ग्रामीणों के हित में भी होगी। छोटी-छोटी आयु में विवाह करने से स्त्री तथा पुरुष दोनों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे दम्पत्ति जिन्होंने छोटी आयु से ही शरीरों का निचोड़ना प्रारम्भ कर दिया, कभी नीरोग एवं स्वस्थ संतति उत्पन्न नहीं कर सकते। किशोरियाँ यदि प्रजनन करती हैं तो उनका स्वयं का जीवन भी संकट में रहता है। अस्पतालों की रिपोर्टों से पता लगता है कि बीस वर्ष से कम आयु की जितनी लड़कियाँ प्रसव पीड़ा में मरती हैं, उससे चौथाई भी बड़ी आयु की स्त्रियाँ इस संकट में प्राण नहीं गँवातीं। अतएव लड़कियों की जान को भी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जोखिम में डालने वाले अभिभावक बुद्धिमान नहीं कहे जा सकते।

प्राय: देखा जाता है कि शिक्षित परिवारों में विवाह अपेक्षाकृत विलम्ब से होता है। कन्या अध्ययन कर रही होती है और आमतौर से कोई कानून न होने पर भी देर से ही वैवाहिक सूत्रों से आबद्ध होती है। शिक्षित युवक तथा युवतियाँ इस बात से परिचित होते हैं कि शिक्षा पूरी किये बिना, अपने पैरों पर खड़े हुए बिना विवाह करने का अभिप्राय है अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों का विघटन करना तथा अर्थाभाव से दाम्पत्य जीवन की खुशियों को नष्ट करना। साथ ही बड़ी आयु में उनका मानसिक स्तर भी विकसित हो जाता है तथा वे वह भी भलीभाँति समझ जाते हैं कि इस महँगाई के जमाने में बच्चे उत्पन्न करने का अर्थ है—दाम्पत्य तथा पारिवारिक जीवन की प्रसन्नताओं पर कुठाराघात, बच्चों के भविष्य के साथ खिलवाड़ तथा राष्ट्र के प्रति द्रोह।

लोगों को परिवार कल्याण, बहु-प्रजनन में रोकथाम तथा वैवाहिक विषयों से सम्बन्धित उत्तम साहित्य उपलब्ध कराया जाना चाहिये, जिससे कि वे अन्धविश्वासों तथा रूढ़ियों से मुक्त हों-स्वतंत्र कार्य-कलाप कर सकें। शिक्षा तथा आजीविका की सुविधा मिलने पर स्त्रियाँ देर से विवाह करेंगी तथा सोच-विचार कर बालकों की संख्या बढ़ायेंगी। कम बालक होने से माता तथा शिशु दोनों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा तथा समाज को स्वस्थ, सबल नागरिक प्रदान किये जा सकेंगे।

सन्तान की अविवेकपूर्ण आकांक्षा

समय के साथ मान्यतायें बदलती ही रहनी चाहिये। उन्हें जिस देश-काल में प्रवर्तित किया जाता है, तब वे उस समय के अनुकूल तथा आवश्यक होती हैं। पर ज्यों-ज्यों परिस्थिति बदलती जाती हैं, उनकी उपयोगिता घटती जाती है और धीरे-धीरे व्यर्थ बन जाती हैं। ऐसा होने पर भी जब उन्हें समय के अनुसार बदला नहीं जाता है, तब वे सामाजिक रूढ़ि बनकर एक बन्धन के रूप में बदल जाती हैं और समाज की प्रगति में बाधक बनती हैं और अनेक प्रकार से हानिकारक सिद्ध होती हैं।

सम्भव है कभी यह मान्यता रही हो कि विवाह की सफलता तथा सार्थकता सन्तान होने में ही है। यदि शीघ्र ही विवाह होने पर सन्तानों की परम्परा नहीं लग जाती तो वह विवाह, वह दाम्पत्य जीवन असफल समझा जाता था। बहुत सन्तान होना सौभाग्य का लक्षण माना जाता था।

कहना न होगा कि जब यह मान्यता रही होगी तब सामाजिक तथा पारिवारिक दृष्टि से इसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता रही होगी। ऐसा न मानने अथवा न करने से समाज को हानि की संभावना रहती होगी। उस समय यह मान्यता समाज में विकास तथा प्रगति में सहायक होती होगी।

उस समय इस मान्यता का कारण क्या रहा होगा इस पर विचार करने से यही समझ में आता है कि उस समय पर जनसंख्या की बहुत कमी थी। भूमि तथा साधन अधिक थे। संसार सूना और बीहड़ दीखता था। साथ ही उस समय एक परिवार के अधिक व्यक्ति मिलकर, दूसरे कम संख्या वाले परिवार को दबा कर उस पर शासन करते थे, उस युग में अधिक सन्तान उपयोगी थी। उस पारिवारिक सेना से आस-पास प्रभाव बढ़ाया जा सकता था, दूसरे का बढ़ता हुआ दबाव रोका जा सकता था। उस समय उर्वरा भूमि वन-पठारों के रूप में योजनों तक बेकार पड़ी थी। उसका उपयोग करने के लिये जनसंख्या की कमी थी। ऐसी स्थिति में स्वाभाविक ही था कि लोग अपने लिये अधिकाधिक बेटे, पोतों तथा नाती, भाई-भतीजों की कामना करते। परिवार बड़ा हो, खूब बच्चे हों जिससे परिवार का प्रसार हो, अधिक से अधिक भूमि पर अधिकार हो तथा प्रभाव बढ़े, ऐसा सोचा जाना उस समय की परिस्थितियों के अनुकूल ही था और लोग वैसा सोचते भी थे और करते भी थे।

उन दिनों जातीय संघर्ष भी कम न था। एक जाति, वर्ग तथा एक कबीले के लोग दूसरे लोगों पर अक्रमण कर अपनी जाति, धर्म तथा आदर्शों को फैलाना चाहते थे। देव और असुर, आर्य एवम् अनार्यों का संघर्ष इसी प्रकार का जातीय तथा सांस्कृतिक संघर्ष था, जो आये दिन युद्ध का रूप धारण करता रहता था। ऐसी दशा में आत्म-प्रसार तथा आत्म-रक्षा दोनोंके लिये एक मत, एक धर्म तथा एक उद्देश्य की अधिकाधिक संख्या होना आवश्यक ही था। ऐसे विश्वस्त लोग अपने रक्त से उत्पन्न सन्तानों से अधिक कौन हो सकते थे ? इसलिये लोग अपना परिवार, कुटुम्ब तथा कुनवा बढ़ाने का हरसम्भव उपाय किया करते थे। अनेक विवाह करना और दूसरों की स्त्रियों को छीन लेना भी इसी उद्देश्य से चलता था। निश्चिय ही उन दिनों स्त्रियों की संख्या कम थी, जिस कुटुम्ब में उनकी संख्या अधिक होती थी, वहाँ सन्तानें भी अधिक होती थीं। दूसरों की स्त्रियाँ छीन लेने से एक परिवार में उनकी संख्या बढ़कर लाभकारी होती थी और दूसरे मे कमी हो जाने से उनके यहाँ सन्तानोत्पादन की प्रक्रिया कम हो जाती थी। बहु-स्त्रियो की प्रथा तथा उनकी यह लूटपाट केवल परिवार और कुटुम्ब-कबीला बढ़ाने के लिये ही थी। इसका भी और कोई उद्देश्य नहीं था।

उस जीवन संघर्ष मे विजय उसकी ही होती थी, जिसमें आदमियो की संख्या अधिक होती थी। उस समय जनबल ही सबसे प्रबल शक्ति थी। युद्ध के आज जैसे विकसित साधन न थे। इस प्रकार सुरक्षा, धर्म-प्रसार जातीय संघर्षों के विषय, शिक्षा तथा विवेक की कमी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और भोजन की यथेष्ठा आदि ऐसे कारण थे, जिससे बहुसन्तान की मान्यता कोई अर्थ रखती थी और यह मान्यता एक ऐसी धारणा में बदल गई, जिससे कि सन्तानों का होना ही विवाह की सफलता समझा जाने लगा। जिसके जितनी अधिक सन्तानें होती थीं, वह उतना ही अधिक भाग्यवान् माना जाता था और समाज में उसकी प्रतिष्ठा रहती थी। वही पूर्वकालिक मान्यता रूढ़ि बनकर आज तक समाज में चली आ रही है और लोग सन्तान न होना दुर्भाग्य का चिन्ह मानते हैं। किन्तु इसकी आज क्या उपयोगिता हो सकती है ? आज तो कम से कम और सन्तान न होना सौभाग्य का चिन्ह माना जाना चाहिए और विवेकशील व्यक्ति ऐसा मानते भी हैं। संसार की मान्यता बदलती जा रही है। सन्तानोत्पादन का विरोध होने लगा है इसलिये हर सामान्य एवम् असामान्य व्यक्ति को अपने मस्तिष्क से यह भ्रान्त, निरुपयोगी तथा हानि-कारक मान्यता निकाल ही देनी चाहिये।

जहाँ पहले जनसंख्या की कमी और साधनों की प्रचुरता थी, वहाँ आज जनसंख्या की अपार वृद्धि तथा जीवन साधनो की बड़ी कमी होती जा रही है। प्राचीन काल की तरह वर्ग संघर्ष का वैसा भय नहीं रहा है और न जातीय युद्धो की कोई सम्भावना रह गई है। आज तो संसार अनेकता से एकता की ओर बढ़ रहा है, द्वैत से अद्वैत की ओर अग्रसर हो रहा है। विवेकशील व्यक्ति विश्व-समाज, विश्व-दर्शन, विश्व-धर्म, विश्व-राष्ट्र, विश्व-आचार, विश्व-विचार, विश्व-परिवार, विश्व-समृद्धि, विश्व-भ्रातृत्व, विश्व-भाषा और एक विश्व-भाव की दृष्टि से सोचने लगे है। ऐसे प्रगतिशीलयुग में अपनी वैयक्तिकशक्ति अथवा कबायली जनबल बढ़ाने के लिये सन्तान की कामना करना सड़ी-गली पुरानी विचार-धारा तथा मान्यता है जो छोड़ ही दी जानी चाहिए। जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि के कारण संसार पर भुखमरी का संकट तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है।

सन्तान सम्बन्धी प्राचीन मान्यता आज के युग के ठीक प्रतिकूल है। आज उसका न कोई औचित्य ही है और न उपयोग ही। आज इस बात की अनिवार्य आवश्यकता है कि समाज के पुराने सोचने-विचारने के गलत ढंग को रोक दिया जाय और उसे स्वस्थ्य, सृजनात्मक, कल्याणकारी और देश के लिए उपयोगी दिशाओं में सोचने के लिये प्रोत्साहित किया जाये। बहुत सन्तान अच्छी होती है, जल्दी सन्तान होना सौभाग्य का लक्षण है, सन्तान जरूर ही हो—यह सब मूर्खतापूर्ण मान्यतायें हैं, थोथी और गलत विचारधारणायें है आज इनको न बदलने से हानि ही हानि है। जो पुराने अल्पज्ञ मूर्ख लोग आज भी इस सड़ी-गली मान्यता को महत्त्व दे रहे हैं वे युग के प्रतिकूल काम कर रहे हैं। ऐसे लोगों की समाज द्वारा भर्त्सना होनी चाहिए और उनकी बात को जरा भी महत्त्व न देना चाहिए। सन्तानों सम्बन्धी प्राचीन विचार-प्रवाह में बहते चले जाने वाले लोगों को आज की विश्वस्थिति पर नजर डाल लेनी चाहिये। ऐसा करने से निश्चय ही उनके मस्तिष्क से यह भ्रान्त धारणा निकल जायेगी।

विश्व-विख्यात लन्दन के जनसंख्या विशेषज्ञ श्री हर्मन वेरी ने संसार को सावधान करते हुए लिखा है—"आगामी सन् २०५० में संसार की हालत महाप्रलय से भी बुरी हो जायेगी। कारण यह है कि बढ़ते-बढ़ते उस समय तक संसार की आबादी लगभग नौ अरब हो जायेगी। तब धरती पर न तो इतने लोगों के लिये पर्याप्त भोजन मिल सकेगा, न शुद्ध वायु, न पानी, न बिजली। मनुष्यों के निवास के लिए जो मकान होंगे, उनमें केवल खड़े रहने भर को जगह मिल सकेगी। आबादी की वृद्धि के कारण जानवरों का नाम निशान तक इस संसार से मिट जायेगा। क्योंकि जब मनुष्यों के निवास और खाने के लिये धरती की शक्ति काफी न होगी, तब पशुओं को उसमें कौन हिस्सा बँटाने देगा ? लोग उन्हें मार काट कर पहले ही चट कर जायेंगे। आगामी कुछ वर्षों में प्रकृति का सारा ईंधन भण्डार समाप्त हो जायेगा। प्रकृति को जितना ईंधन पैदा करने मे पच्चीस करोड़ साल लगे हैं, बढ़ती हुई आबादी और उसकी वर्तमान आवश्यकतायें उसे दो-सौ पचास वर्षों के भीतर समाप्त कर डालेंगी। अणुशक्ति से उत्पादन की बात सोची जा रही है, पर उसे उत्पन्न करने के भी साधन पृथ्वी पर सीमित ही हैं और वे भी कुछ दिन में खत्म हो जायेंगे। धातुओं का भण्डार तब तक चुक जायेगा। अनेक स्थान तो ऐसे होंगे जहाँ एक-एक बूँद पानी के लिये लोगों को तरसना पड़ेगा। ईसा से दस हजार साल पहले दुनिया की आबादी केवल दस लाख थी। पर वही बढ़कर आज लगभग सात अरब हो चुकी है। इस हिसाब से २०५० में दुनिया की आबादी २० अरब हो जायगी। तब प्रति व्यक्ति को केवल चलने-फिरने और उठने-बैठने के लिये एक वर्गमीटर जमीन हिस्से में मिल सकेगी।

भारत तथा उस जैसे कम विकसित देशों में उस आगामी महाप्रलय के लक्षण अभी से दृष्टिगोचर होने लगे हैं। स्थान-स्थान पर भुखमरी तथा पानी की कमी बढ़ती जा रही है। अन्न के लिये विदेशों की कृपा पर निर्भर होना पड़ रहा है। जब जीवन स्तर निम्न तथा केवल उल्टा-सीधा पेट भर जाने भर की ही समस्या है, तब यह दशा हो रही है कि लोगों को पेट भर मोटा अनाज भी नहीं मिलता। यदि आबादी इसी गति से बढ़ती रही तो देश में २०५० से बहुत पूर्व ही महाप्रलय की लीला होने लगेगी। यह आँकड़े और यह सूचनायें भी यदि सन्तानोत्सुक लोगों की आँखें नहीं खोलतीं तो इसे न केवल देश का ही बल्कि मानवता का दुर्भाग्य माना जायेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवाह मानव-जीवन का एक सर्वोत्कृष्ट यज्ञ है। दो आत्मायें अपना स्वतन्त्र अस्तित्व खोकर परस्पर एक दूसरे में विलीन होती हैं और उस संगम से एक सम्मिलित शक्ति का अभिनव आविर्भाव होता है। देवताओं की साक्षी में अग्नि भगवान् को मध्यस्थ बनाकर दो आत्मायें अपने व्यक्तित्वों की अभिन्नता-स्वतन्त्रता समाप्त करके एक सम्मिलित सत्ता का सृजन करती हैं। यह दो प्राणियों का भावनापूर्ण आध्यात्मिक विलय है। इस सम्बन्ध का उद्देश्य केवल जनसंख्या की वृद्धि मानकर उसके मूलभूत भाव का हनन करना है। एकाकी मनुष्य अपूर्ण है। पति-पत्नी दोनों के सम्बन्ध से एक पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सभी स्त्रियों की अपनी और पुरुषों की अपनी कुछ अलग-अलग विशेषतायें होती हैं: इन दोनों के समन्वय से वे अभाव दूर होते हैं, जिनके कारण मानसिक शान्ति सांसारिक सुख-सुविधाओं का द्वार रुका पड़ा रहता है। वैयक्तिक, आत्मिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिये किये गये इस सम्बन्ध को केवल सन्तानोत्पादन का साधन मानना कहाँ तक ठीक हो सकता है ? जिस दिन से सन्तान होना प्रारम्भ हो जाता है, क्या उसी दिन से मनुष्य की समस्याओं तथा कष्टों की वृद्धि प्रारम्भ नहीं हो जाती ? क्या सन्तानों के पालन-पोषण की चिन्ता के कारण मानसिक तथा आत्मिक सुख-शान्ति का प्रयत्न पीछे नहीं पड़ जाता है ? जिनके सन्तानें हैं उनके विषय में तो क्या कहा जा सकता है ? किन्तु जिनके सन्तानें नहीं हैं उन्हें किसी प्रकार भी अपने को अभागा अथवा हेय स्थिति वाला नहीं समझना चाहिये। आज के दिन सन्तान न होना ही सौभाग्य का चिन्ह माना जायेगा। जनसंख्या द्वारा संसार का संकट बढ़ाना विवाह जैसे महान यज्ञ का उद्देश्य किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

सन्तानों के दायित्व से मुक्त दम्पत्ति को आत्मिक विकास, आध्यात्मिक साधना तथा समाज सेवा द्वारा परमार्थ का पुण्य कमा सकने का बहुत अवसर रहता है। ऐसे मुक्त व्यक्ति को सन्तान का तुच्छ तथा निरर्थक खेद छोड़कर समाज-सेवा में लग जाना चाहिये। समाज में ऐसे बच्चों की कमी नहीं है, जिनको प्रेमपूर्ण आश्रय की आवश्यकता है। किसी भी बच्चे को लेकर उसका समुचित पालन-पोषण कर माता-पिता का उदात्त कर्तव्य निभाया जा सकता है। यदि संतान-मुक्त दम्पत्ति, जन-वृद्धि की गलती करने वाले युगल की यह भूल उनकी किन्हीं सन्तानों को अपने आश्रय में लेकर हल्की करने लगे तो नई पीढ़ी का तो नव-निर्माण हो ही साथ ही समाज में बहुत अधिक बन्धुत्व-भाव का विकास होने लगे, जिससे मिलने वाली सुख-शान्ति अनिर्वचनीय ही होगी। संसार-मुक्त दम्पत्ति को भगवान के दिये इस अवसर को परमार्थ कार्यों में उपयोग कर अपने जीवन को सफल तथा विवाह को सार्थक बनाना ही चाहिये।

इस प्रकार एक नहीं, न जाने कितने महापुरुषों ने केवल अपनी क्षमतायें संसार की सेवा में लगाने के मन्तव्य से विवाह और सन्तानों के चक्र से अपने को बचाये रखा, अपनी सुरक्षा-शक्तियों को समाज-सेवा में लगाकर जीवन को सफल बनाया जा सकता है। एकाकी रहकर सेवा करने की अपेक्षा कहीं अच्छा है कि विवाह द्वारा दो स्त्री-पुरुष मिलकर समाज की सेवा करें, इससे जीवन में मधुरता या शक्ति की वृद्धि होगी।

कामुकता की कुदृष्टि

प्रकृति ने प्राणियों में से मात्र मादा को ही यह क्षमता प्रदान की है कि जब उसकी शारीरिक शक्ति नया शिशु उत्पन्न करने की हो, तो ही वह नर को कामुक संदेश दे और वह उस आदेश का पालन करने में रुचि दिखाये। अपनी ओर से प्राणि जगत का कोई भी नर नारी के साथ किसी प्रकार की छेडछाड़ नहीं करता है। दोनों वर्ग इस प्रकार साथ-साथ रहते और संयत जीवन जीते हैं जिसमें नारी और नर बिना किसी प्रकार की उत्तेजना का परिचय दिये स्वाभाविक जीवन जीते हैं। नर को कामुकता प्रदर्शन करने की ऐसी छूट बिल्कुल भी नहीं मिली है कि वह मादा के आदेश या संकेत के बिना किसी प्रकार की अनुपयुक्त छेड़छाड़ करे। अपनी ओर से प्रथम कदम उठाये।

बच्चे को बहुत दिनों तक दूध की आवश्यकता होती है। जब वह साधारण आहार खाने और पचाने योग्य हो जाता है, तब कहीं माता की स्थिति ऐसी बनती है कि वह नया बालक उत्पन्न करने, सँभालने की अपनी क्षमता का परिचय दे और वैसा संकेत करे। मनुष्यों की यह नासमझी ही है कि पशुओं की संतानों को जितने दिनों तक, जितनी मात्रा में दूध मिलने की सहज आवश्यकता रहती है, उससे कहीं पहले वे उस बच्चे को उसके स्वाभाविक आहार से वंचित करके उसकी खुराक को झपटने-हड़पने लगते हैं। यदि ऐसा न किया जाय तो पशुओं के बालक कई वर्ष तक माता के दूध पर निर्भर रहकर अपने शारीरिक विकास को परिपोषित करते रह सकते हैं। पर जब उनकी प्रकृति प्रदत्त खुराक को मनुष्यों द्वारा दुह लिया जाता है तो बच्चों का अविकसित रह जाना तो स्वाभाविक है ही, साथ ही अत्यधिक दबाव से मादा के प्रजनन अंग भी समय से पूर्व विकसित होने लगते हैं। फिर वे जोड़ा मिलाते हैं और जननी पैदा करने की प्रक्रिया से अपनी पीढ़ियाँ दुर्बल बनाती है। दूध सभी का स्वाभाविक भोजन है। जब तक बच्चा माँ के दूध पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

निर्भर रहता है, जब तक उसके लिए दूध पीने का औचित्य भी है। यदि इस नियम का सर्वत्र पालन होने लगे तो संतान वृद्धि की वैसी समस्या उत्पन्न न हो, जैसी कि मनुष्य और पशुओं में देखी जा रही है। उनकी बढ़ती हुई वंशवृद्धि के कारण अनेकों समस्याएँ पैदा हो गयी हैं, उनकी जड़ कामुकता ही है।

नारी के साथ यदि अतिरिक्त छेड़खानी न की जाय तो वह पहला बच्चा चार-पाँच वर्ष का होने से पूर्व शारीरिक दृष्टि से इस तरह कमजोर न बने कि वह संतान को ठीक तरह साज-सँभाल करने के अनुपयुक्त ही बन जाए। ऐसा क्रम चल पड़े तो महिलाओं को आये दिन दुर्बलता और रुग्णता से छुटकारा मिल सकेगा।

बच्चा और जननी दोनों को स्वस्थ रखना हो तो यह आवश्यक है कि दो प्रसवों के मध्य लम्बा समय हो। पिता का स्वास्थ्य, दायित्व और व्यवस्था, आर्थिक देखभाल, सुसंस्कृत बनाने का अवसर इसी आधार पर मिलता है। जल्दी बच्चे जनने में दूने स्तर की हानि ही हानि है। जल्दी बच्चे न हों, इसके लिए अनेक समाधानों की जानकारी अब सर्वसुलभ होती जा रही है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि पुरुष नारी के प्रति कामुकता की दृष्टि न रखे। उसे मात्र अपनी सहचरी समझे। कामुकता के विचार ही मस्तिष्क को खराब करते हैं और यौनाचार के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए नर और नारी के बीच स्नेह-सहयोग तो घनिष्ट रहना चाहिए, पर साथ ही यह ध्यान भी रखना चाहिए कि कामुकता की दृष्टि का सीमा से बाहर हो जाना नर, नारी और बच्चे इन सभी के लिए समान रूप से हानिकारक है। इस व्यवधान को खड़ा कर देने के कारण तीनों ही घाटे में रहते हैं और साथ ही समूचे समाज को हानि पहुँचाते हैं।

शारीरिक और मानसिक स्वस्थता एवं समर्थता के प्रति जिनकी भी रुचि है, उन्हें इस तथ्य को स्मरण रखना चाहिए कि जिस कर्म से हर प्रकार हानि ही हानि हो, सबका अहित ही अहित हो, उससे जितना बचा जा सके उतना ही अच्छा है। कामुकता की कुदृष्टि को यदि मस्तिष्क से हटाया और व्यवहार से मिटाया जा सके तो इसमें हर किसी का हर प्रकार से हित साधन ही है।

पतन के मार्ग पर तो न चलें

परिवार नियोजन के उपायों ने इन दिनों जन्म-दर को थोड़ा घटाया हो, पर यह कहना अत्युक्तिपूर्ण नहीं है कि उसने अमर्यादित यौनाचार को बढ़ावा भी दिया है, जिससे नर-नारी के स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ा है। इन उपायों के बावजूद भी पूरी तरह यह नहीं कहा जा सकता कि अवांछित गर्भाधान से बचा जा सकेगा। इसमें २५ प्रतिशत संभावना गर्भाधारण की बनी ही रहती है। ऐसी स्थिति में गर्भपात कराना पड़ता है, जो स्वास्थ्य की दृष्टि से नारी के लिये बहुत महँगा साबित होता है।

आज कृत्रिम उपायों को न केवल वासना पूर्ति की ढाल बना लिया गया है, वरन् निस्तेज एवं खोखला होकर अकाल वृद्धता को भी आमन्त्रित कर लिया जाता है। सर्वेक्षणों के आधार पर विशेषज्ञों ने बताया है कि पिछले दशकों में एक हजार फ्रांसीसी नागरिकों के पीछे मात्र १७० किशोरों एवं बच्चों को छोड़कर शेष ८३० व्यक्तियों ने समय से बहुत पहले ही बुढ़ापे की शरण ले ली। आश्चर्यचकित करने वाले ये आँकड़े बताते हैं कि अनियंत्रित भोग-विलास एवं अमर्यादित यौनाचार और उसे प्रोत्साहित करने वाले सुविधा-साधनों ने नई पीढ़ी को चूस लिया है।

अमेरिका के 'किंसे आयोग' की रिपोर्ट में कहा गया है कि इन दिनों 'पाश्चात्य देशों में माता-पिता अपनी संतानों के लिये जहाँ पुस्तकों की व्यवस्था करते हैं, वहीं वे उन्हें परिवार नियोजन के साधनों से उन्हें लैस किया करते हैं। इस तरह कामुकता के बीज कच्ची उम्र में ही बो दिये जाते हैं। यही कारण है कि अमेरिका में माध्यमिक स्तर की शिक्षा पूरी करने से पूर्व ही लड़की-लड़के यौनाचार में पूरी तरह लिप्त रहने लगते हैं। होटलों में इसके लिये सारी सुविधायें भी उपलब्ध हैं। इस संदर्भ में 'एलेन गुटमाचेर इन्स्टीट्यूट ऑफ अमेरिका' के मूर्धन्य समाजशास्त्री जार्ज गार्डन ने आँकड़े प्रस्तुत करते हुए कहा है कि इन दिनों अमेरिका की कुल जनसंख्या में से एक करोड़ बीस लाख युवतियाँ कामुकता के इस विकृत जंजाल में फँसी हुई हैं। इनमें से १४ से १९ वर्ष की लड़कियों का अनुपात प्रति हजार पीछे ९६ है, जिन्हें गर्भधारण का खतरा उठाना पड़ता है। इंग्लैण्ड और वेल्स में यह अनुपात प्रति हजार पीछे ४५ है, जबकि कनाडा, फ्रांस, स्वीडेन तथा नीदरलैण्ड में क्रमशः ४४, ४३, ३५ और १४ है। कामुकता का यह प्रवाह दावानल की तरह विस्तृत होकर पूरी दुनिया को अपनी चपेट में लेता जा रहा है।

अविवाहित माताओं एवं अवैध संतानों की इस अभिवृद्धि ने आज समूचे योरोप की सामाजिक एवं पारिवारिक व्यवस्था की नींव को छिन्न-भिन्न कर दिया है। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री लार्ड डेनिंग के शब्दों में आज पारिवारिक जीवन एवं वैवाहिक मर्यादाओं के सभी मानदण्डों-नैतिकताओं को मनुष्य ने तोड़ डाला है। कामुकता की बाढ़ संक्रामक महामारी की तरह सब कुछ स्वाहा कर जाने को समुद्यत है। अविवाहित माताओं एवं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनकी संतानों की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। सांसद डेल्विन के अनुसार ब्रिटेन में तो एक ऐसी विकृत मानसिकता का ही उदय हो गया है कि लड़कियाँ कुँवारी माँ कहलाने में गौरव की अनुभूति करने लगी हैं। १६ वर्ष से कम आयु की हजारों किशोरियों को प्रतिवर्ष इसका दुष्परिणाम गर्भपात कराने के रूप में भुगतना पड़ता है। नारी में बढ़ रही इस दुष्प्रवृत्ति को भड़काने के उनने परिवार नियोजन उपायों के अतिरिक्त अनेकों कारण गिनाये हैं, जिनमें अश्लील साहित्य, कामोत्तेजक फिल्में, भौंड़े विज्ञापन, हिप्पी संस्कृति आदि का बढ़ता पसारा प्रमुख हैं। अभिभावक भी इसके लिये कम दोषी नहीं हैं।

भारत भी इस महामारी से अब अछूता नहीं रहा। अवैध गर्भपातों एवं अविवाहित माताओं की संख्या असाधारण रूप से बढ़ी है। अपने देश में इसे लज्जा का विषय माने जाने से छिपाने की एक कठिनाई और जुड़ जाती है, फिर भी उपलब्ध आँकड़े बताते हैं कि प्रतिवर्ष इस तरह ४० लाख महिलायें गर्भपात कराती हैं। लोक-लज्जा के भय से कितने ही नवजात शिशुओं को नदी-नालों, झाड़ियों, कूड़ेदानों में फेंक दिया जाता है। उच्छृंखलता एवं स्वच्छंदता के प्रवाह ने अपने देश की किशोर एवं युवा पीढ़ी को भी पतन के मार्ग पर चलने के लिए उद्वेलित किया है। समय रहते इसका उपचार न किया गया तो पाश्चात्य संस्कृति की पुनरावृत्ति हो सकती है।

संख्या नहीं; समर्थता जिन्दा रहेगी

सारे विश्व में सबसे अधिक उत्पादन यदि किसी वस्तु का बढ़ रहा है तो वह है मनुष्य का उत्पादन। घड़ी में लगी सेकेण्ड की सुई इधर टिक करती है, उधर संसार में कहीं-न-कहीं तीन बच्चे जन्म ले लेते हैं। एक सप्ताह गुजरता है तब जनसंख्या के पुराने आँकड़ों में २० लाख शिशुओं की वृद्धि हो जाती है। इसीलिए कोई भी जनसंख्या-विशेषज्ञ पृथ्वी की जनसंख्या की शत-प्रतिशत जानकारी कभी दे ही नहीं सकता। कितनी देर में वह एक वाक्य बोलेगा उतनी देर में ही एक सौ बच्चों की संख्या और बढ़ जायेगी।

सृष्टि के आदिकाल से लेकर सन् १८३० तक सारी धरती की जनसंख्या कुल एक अरब हुई, पर इसके बाद से विज्ञान की प्रगति से होड़ लेती हुई जनसंख्या भी इतनी तेजी से बढ़ी कि अगली एक शताब्दी में ही वह दुगुनी अर्थात् २ अरब हो गई। इसके बाद तो वृद्धि और भी तीव्र हुई—१९३० के बाद कुल ३० वर्ष में ही आबादी ३ अरब हो गई। यदि इस क्रम को रोका न गया तो इस शताब्दी के अन्त तक अर्थात् सन् २००० तक विश्व की जनसंख्या १० अरब होगी और तब सारा संसार एक बार विस्फोट के लिये तैयार होगा। महाप्रलय अगले ३० वर्षों में कब हो जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता।

इस बेतहाशा वृद्धि को देखकर ही माल्थस को चिन्ता हुई थी और उन्होंने जनसंख्या पर एक सुविख्यात शोधकार्य किया, जो आज सारे विश्व में 'माल्थस का जनसंख्या सिद्धान्त' (माल्थस थ्योरी) के नाम से प्रसिद्ध है। माल्थस ने जनसंख्या वृद्धि की गम्भीरता का दिग्दर्शन कराते हुए लिखा है—"जनसंख्या गुणोत्तर क्रम (ज्योमेट्रिकल प्रोग्रेशन) की दर से अर्थात् १ से २। २ से ४। ४ से ८। ८ से १६। १६ से ३२। ३२ से ६४। ६४ से १२८ के हिसाब से बढ़ती है, जबकि उत्पादन समान्तर क्रम (अरिथमेटिकल प्रोग्रेशन) अर्थात् १, २, ३, ४, ५, ६, ७, के हिसाब से बढ़ता है। इस हिसाब से पहले वर्ष १ व्यक्ति था, तब उसके लिये १ यूनिट अन्न की आवश्यकता थी जो उसके उदर-पोषण के लिये पर्याप्त था। तीसरे वर्ष व्यक्ति हो गये ८ पर अन्न उत्पादन की यूनिट ३ ही रही। पाँच व्यक्तियों के लिए अन्न का जो दबाव पड़ेगा, उसके लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, वस्त्र, मकान और मनोरञ्जन आदि के साधनों में कटौती करके भरण-पोषण की समस्या पूरी करनी पड़ेगी। प्रत्येक अगले वर्ष यह जटिलता बढ़ती ही जायेगी। ७ वर्ष बाद जहाँ खाने के लिये जनसंख्या १२८ होगी, वहाँ उत्पादन कुल ७ ही यूनिट होगा। तात्पर्य यह कि १२१ व्यक्ति बेरोजगारी, भुखमरी, बीमारी और निरक्षरता की समस्या से जन्मजात पीड़ित होंगे और वह सब मिलकर उनको असुरक्षा की समस्या से पीड़ित कर रहे होंगे। उत्पादन का यह अनुपात अन्न के क्षेत्र में ही नहीं, वस्त्र आदि आत्म-सुरक्षा और आत्म-विकास के क्षेत्र में भी होगा। इस तरह संकट प्रत्येक क्षेत्र में बढ़ेगे। बेरोजगारी, भुखमरी, अशिक्षा और अनुशासनहीनता का वह स्वरूप आज स्पष्ट देखा जा सकता है।

सम्भवत: इन आँकड़ों के आधार पर ही डॉ० वी० आर० सेन (जो पहले भारत के खाद्य मन्त्रालय के सचिव थे, सन् १९६६ में जो संयुक्त राष्ट्रीय खाद्य एवम् कृषि संगठन के महानिदेशक नियुक्त हुए थे) ने कहा था—'यह माना गया है कि संसार में तब तक स्थायी शान्ति और सुरक्षा कायम नहीं हो सकती, जब तक भुखमरी और अभाव को खत्म न कर दिया जाये। वस्तुत: व्यक्तियो का स्वास्थ्य और सुख ही नहीं, वरन् स्वतन्त्र एवम् लोकतन्त्रो समाज का अस्तित्व भी खतरे में है। अगले १४ वर्ष मानवीय इतिहास में अत्यधिक नाजुक होंगे। या तो हम उत्पादकता बढ़ाने और जनसख्या न बढ़ने देने के लिये सब सम्भव प्रयत्न करलें अन्यथा हमें अभूतपूर्व रूप से विशाल विपत्ति का सामना करना होगा।'

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह कथन शेखचिल्ली के विवाह की कल्पना नहीं वरन् एक सत्य है जो हमें आगामी दिनों किसी भयंकर विस्फोट के लिए तैयार रहने को सावधान करता है। प्रकृति के कोष में सीमित सामग्री है, वह असीमित लोगों के पेट नहीं भर सकती। इसलिए उसने एक सिद्धान्त बना लिया है कि जो भी जातियाँ दीवाली में आतिशबाजी के साँप की तरह बढ़ती हैं, उनको नष्ट किया जाता रहे। मक्खी और मछलियाँ संसार में सबसे अधिक बच्चे पैदा करती हैं। यदि प्रकृति भी उनका संहार तेजी से न करती तो आज इन मक्खियों और मछलियों के रहने के लिये १० करोड़ ऐसी ही धरतियों की आवश्यकता पड़ती जैसी अपनी पृथ्वी है।

एक हाथी मरने से पूर्व केवल ६ हाथी पैदा कर जाता है। यदि प्रकृति उन पर नियन्त्रण न करती तो संसार में हाथी ही हाथी होते। आस्ट्रेलिया में खरगोश बहुतायत से पाये जाते हैं। वहाँ छोटे-छोटे गड्ढों में पानी के लिये ही उनमें भयंकर युद्ध होता है और यादवों की सेना की तरह आपसी रक्तपात में ही उनका विनाश होता रहता है।

मनुष्य भी ऐसे ही विनाश के कगार पर आ पहुँचा है। संसार में जो भी जातियाँ अधिक प्रजनन वाली रहीं वह अविकसित और पददलित ही नहीं हुईं, नेस्तनाबूद भी हो गईं। योरोप मे पाई जाने वाली 'डायनोसरस' और 'ब्रान्टोसरान' जातियाँ जिनके पहले राज्यों-के-राज्य बसे थे, अब उनका एक भी आदमी संसार में देखने को भी नहीं मिलता। उनकी स्त्रियों को दूसरी समर्थ जातियों ने हड़प लिया और वे आपस में ही खाने-पहनने के नाम पर लड़-झगड़ कर नष्ट हो गईं। जबकि थोड़े-से संयमी इजरायल और कजाख संख्या में थोड़े होने पर भी संसार में गौरवपूर्ण स्थान बनाये हैं। 'जनसंख्या नहीं—समर्थता जिन्दा रहती है' के सिद्धांत को इन उदाहरणों द्वारा अनुभव किया जा सकता है। अभी युद्ध हुआ और इजराइल जिनकी संख्या कुछ लाख ही है, ने कई करोड़ अरबों को ७ दिन में परास्त करके रख दिया।

सूअर सबसे अधिक बच्चे देने वाला जानवर है। उसे अपना उदर-पोषण घृणित साधनों से ही करना पड़ता है। स्वयं भी बहुत कमजोर होता है दूसरी ओर 'शेर' बहुत ही कम बच्चे देता है, उसकी शारीरिक क्षमता इतनी प्रचण्ड होती है कि जब दहाड़ता है तो अगले पञ्जों से पृथ्वी को जकड़ लेता है तब दहाड़ता है। किंवदन्ती है कि उसे आशंका रहती है कि मेरी दहाड़ से कहीं पृथ्वी न फट जाये। इस विशेष दहाड़ को 'नाकी' कहते हैं—जब वह दहाड़ भरता है तो उस क्षेत्र के सारे पेड़-पौधे और पृथ्वी तक काँप जाती है। भारतीयो की संख्या तब थोड़ी ही थी पर हमने संयमित और ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन के कारण वह शक्ति पाई थी, जब हिमालय पर खड़े होकर दहाड़ते थे तो सारा एशिया काँप जाता था। हमारी वाहिनियाँ अमेरिका तक चली जाती थीं और उन्हें जीतकर लौटती थी। अधिक सन्तान वाली जातियाँ होती हैं वे तो (१) जल्दी ही समाप्त हो जाती हैं। (२) कमजोर होती हैं। (३) अव्यवस्थित होती हैं, इसलिये ये संघर्ष और प्रतिस्पर्धा में सबसे पिछड़ी रहती हैं।

माल्थस ने जनसंख्या रोकने के दो उपाय बताये हैं—(१) पाजिटव चेक (२) प्रिवेन्टिव चेक। पहले का आशय उपर्युक्त कथन से ही है। माल्थस कहते हैं—जनसंख्या बढ़ती है तो लोग पत्ते खाने को तरसते हैं। फिर प्रकृति अकाल, महामारी, भुखमरी आदि से उनका स्वयं संहार कर देती है।

प्रिवेन्टिव चेक का तात्पर्य यह है कि मनुष्य स्वयं विरोध करले। उससे वह सुरक्षित रह सकता है। इसमें प्रतिबन्धात्मक विरोध, जिसमें परिवार नियोजन के सारे साधन आते हैं, पहला उपाय है। दूसरा और सबसे अच्छा उपाय यह है कि मनुष्य संयमित जीवन बिताये पर इसके लिये उसे रचनात्मक दिशा की आवश्यकता होगी अर्थात् उसे मनोरञ्जन के ऐसे साधन देने होंगे, जो काम-सुख की तुलना में कहीं अधिक आकर्षक हों।

प्रतिबन्धात्मक रोक-थाम को माल्थस ने भी बुरा माना है और बताया है कि कृत्रिम साधनों से परिवार-नियोजन करने वाली जातियाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कमजोर होती हैं। लूप, निरोध, नसबन्दी आदि की चर्चा करने से आत्महीनता के भाव आते हैं, जबकि सरकारी मशीनरी के हाथ में यह साधन हो तब उसके दुरुपयोग की और भी आशंका रहती है, जैसा कि इन दिनों हो रहा है। आज का परिवार नियोजन कार्यक्रम चारित्रिक अवस्थाओं को सबसे अधिक चरमरा देने वाला आयोजन है। बिनोवाजी ने तो उसे 'मातृत्व की बिडम्बना' कहकर पुकारा है। यदि इन कृत्रिम साधनों की चर्चा बन्द न हुई तो हम अपना सम्पूर्ण आध्यात्मिक, धार्मिक एवम् सांस्कृतिक गौरव तक खो सकते हैं।

इन साधनों से स्वास्थ्य बिगड़ता है। कृत्रिम साधन नये-नये रोगों को जन्म देते हैं। अनेक महिलायें रक्तस्राव से पीड़ित हुईं, अनेकों को दूसरी बीमारियाँ ।

कृत्रिम साधन कामुकता और अनैतिक आचरण को प्रोत्साहन देते हैं। यौन-समस्या शारीरिक कम मानसिक अधिक है। कृत्रिम साधन लोगों को मानसिक दृष्टि से विभ्रात और विक्षिप्त बनाते हैं। सामान्य चर्चा से कामस्वेच्छावाद भड़कता है। सामाजिक मर्यादायें टूटती हैं। सांस्कृतिक मूल्य बदल जाते हैं।

माल्थस के इस कथन की सत्यता को आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। सिनेमा के भद्दे अभिनय, गन्दे गीत और अश्लील दृश्य यह बताते हैं कि आज समाज की मनोवृत्ति ऐसी ही है। अधिकांश जनता यही देखना चाहती है। इसमें फिल्म-निर्माताओ का उतना दोष नहीं है—उनकी आदर्शवादी फिल्मे लोग देखना पसन्द ही नहीं करते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जबकि सस्ते ड्रामे रिपीट-रिपीट कर देखने में लोगों को प्रसन्नता होती है। यह सांस्कृतिक मूल्य, सामाजिक मनोवृत्ति के कारण ही बदले हैं।

माल्थस ने सबसे अच्छा उपाय समाज और भावी पीढ़ी को रचनात्मक दिशायें देने को माना है। परिवार नियोजन कार्यक्रमों को हटाकर यह शक्ति समाज-कल्याण को दे देनी चाहिए और उनका कार्यक्षेत्र गाँव-गाँव (१) खेलकूद और व्यायामशालायें (२) पाठशालायें (३) लघु कुटीर उद्योग (४) सांस्कृतिक आयोजन आदि तक बढ़ा देना चाहिए। मालवीयजी के मन में यह योजना थी-वे गाँव-गाँव में पाठशालायें और सांस्कृतिक आयोजनों के मण्डल और पीठ स्थापित करने का एक विधिवत् आन्दोलन चलाना चाहते थे। उससे लोगों को स्वस्थ मनोरञ्जन मिलता और वर्तमान काम-प्रवृत्ति से लोगों का ध्यान टूटता।

महामना मालवीयजी की इस आकांक्षा को अब पूरा किया जाय तो हम जनसंख्या रोकने में सात्विक ढंग की सफलता प्राप्त कर सकते हैं और तो न रोकने का परिणाम वही होगा जो इस लेख की प्रारम्भिक पंक्तियों में दर्शाया गया है।

अमर्यादित प्रजनन की विभीषिका हम सबको ले डूबेगी

विकास वाद के जनक डार्विन के सिद्धान्त 'स्ट्रगल फार एक्जिस्टेन्स' के अनुसार प्राणियों को अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ता है। इस संघर्ष में जो विजयी होते हैं वे ही जीवित रहते हैं। जमाने पूर्व डार्विन ने यह बात कही थी, जिसे मनुष्येत्तर जीवों में प्रत्यक्ष रूप से सही उतरते देखा गया है। जिसकी लाठी उसकी भैंस की रीति-नीति आदिम युग के मनुष्य की थी। पर जिस गति से विश्व की जनसंख्या बढ़ रही है, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि अगले दिनों मनुष्य-मनुष्य के बीच जीवन रक्षा के लिए संघर्ष का प्रत्यक्ष दृश्य देखना पड़ सकता है तथा आदिम मनुष्य पुनः अपनी हिंसक प्रवृत्तियों के साथ प्रकट हो सकता है।

सभ्यता की गति सुविकसित अवस्था से आदिम युग की ओर क्यों कर वापिस मुड़ेगी ? कारण स्पष्ट है। प्रकृति के संसाधन सीमित हैं पर उपभोगकर्ताओं की संख्या में असामान्य वृद्धि हो रही है। साधन सीमित और प्रयोगकर्ता असीम। ऐसी स्थिति में आवश्यक साधनों की प्राप्ति के लिए संघर्ष पैदा होगा। फलतः मनुष्य का आदिम स्वरूप पुनः प्रकट होगा। विश्व के मूर्धन्य विचारकों ने यह सम्भावना व्यक्त की है कि जनसंख्या बढ़ोत्तरी का क्रम निर्बाध गति से इसी प्रकार चलता रहा तो निश्चित ही उपरोक्त परिस्थितियों का सामना करना पड़ सकता है।

परमाणु विभीषिका की तरह जनसंख्या वृद्धि की विस्फोटक स्थिति का पता आँकड़ों को देखने से चलता है जैसे ही घड़ी से सेकण्ड की सुई एक सेकण्ड पार करती है, इस न्यूनावधि में ढाई बच्चे संसार में जन्म ले चुके होते हैं। एक मिनट बीतते ही एक सौ पचास शिशुओं का अवतरण हो जाता है। एक घण्टे में नौ हजार तथा २४ घण्टे में दो लाख सोलह हजार की संख्या विश्व आबादी में जुड़ जाती है। एक वर्ष में सात करोड़ ७६ हजार अर्थात् लगभग तीन चौथाई बंगला देश अथवा इंडोनेशिया की आबादी के बराबर का एक नया देश पैदा हो जाता है।

संसार की जनसंख्या चार अरब ५० करोड़ को पार कर चुकी है। विशेषज्ञों का मत है कि सन् १९९७ तक वह सात अरब तक पहुँच जायेगी तथा २००० में साढ़े १० अरब तक। जनसंख्या की वृद्धि सभी देशों में हो रही है पर एशिया में उसकी रफ्तार सर्वाधिक है। वर्तमान गति को देखते हुए यह सम्भावना की जा रही है कि सन् २००० में विश्व का हर दूसरा व्यक्ति एशियन होगा अर्थात् समस्त भूमण्डल पर निवास करने वाले लोगों में से आधे एशिया में होंगे।

चिकित्सा की आधुनिकतम सुविधाएँ उत्पन्न होने के कारण विश्व के हर व्यक्ति की औसत आयु में वृद्धि हुई है। फलस्वरूप मृत्यु दर के अनुपात में भारी गिरावट आयी है, अनुमान है कि अगले बीस वर्षों में संसार में वृद्ध व्यक्तियों की संख्या में ९० प्रतिशत की वृद्धि होगी सन् २००० तक सम्पूर्ण विश्व में ७० वर्ष से ऊपर आयु वाले वृद्धों की संख्या ७० करोड़ के लगभग होगी। वर्तमान में ७० वर्ष से ऊपर आयु वाले वृद्धों में से आधे से अधिक एशिया में रह रहे हैं।

सर्वाधिक आबादी वाले क्षेत्र एशिया में भी भारत की जनसंख्या वृद्धि की रफ्तार अत्यधिक है। जनगणना के अन्तिम आँकड़ों के अनुसार भारत की आबादी ८९ करोड़ को पार कर गयी है। चीन के बाद भारत दूसरा बड़ी आबादी वाला देश है। एक अनुमान है कि संसार की आबादी का १५.५ प्रतिशत भारत में केन्द्रित है। तीस वर्षों में देश की आबादी में ३२ करोड़ २० लाख की वृद्धि हुई है। अनुमान है कि जनसंख्या वृद्धि का समाधान न ढूँढ़ा गया तो सन् २००० तक अकेले भारत की जनसंख्या, एक अरब तक जा पहुँचेगी।

देश की वर्तमान स्थिति यह है कि पचास प्रतिशत से अधिक व्यक्तियों को जीवनयापन के अनिवार्य साधन रोटी, वस्त्र और आवास की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। अभी भी ७५ प्रतिशत जनता निरक्षरता के अभिशाप से ग्रस्त है। चिकित्सा एवं शिक्षा की समुचित व्यवस्था न होने से बच्चों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। उन परिस्थितियों में देश की आबादी में हर वर्ष एक बड़ी संख्या और भी जुड़ती जाय, निस्संदेह यह

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चिन्ता की बात होगी। समय रहते जनसंख्या वृद्धि के कारणों की ढूँढ़-खोज करनी तथा रोकथाम के लिए हर सम्भव उपाय निकाला जाना चाहिए। दूसरे देशों ने अपने-अपने ढंग से आबादी बढ़ोत्तरी को रोकने के लिए प्रयास किये हैं और इसमें उनको सफलता भी मिली है। आसन्न संकट और भी भयावह हो जाय, इसके पूर्व ही कारगर प्रयत्न किया जाना आवश्क है।

प्रस्तुत समस्या के समाधान का एक सुझाव यह भी है कि लड़के-लड़िकयों के विवाह की आयु सीमा बढ़ा दी जाय। चिकित्सकों का मत है कि लड़कियों की प्रजनन क्षमता सर्वाधिक १५ से २५ वर्ष तक होती है। अधिकांश महिलाएँ इस अवधि में तीन, चार बच्चों की माँ बन जाती हैं। पच्चीस वर्ष के बाद प्रजनन क्षमता घट जाती है। अपने देश में लगभग ५० प्रतिशत से भी अधिक लड़के-लड़िकयों की शादी बाईस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह अनुपात अधिक है। बाल विवाह की कुपरम्परा आज भी देश के विभिन्न भागों में विद्यमान है। राजस्थान में आज भी आधे से अधिक लड़के-लड़िकयों का विवाह १५ वर्ष की आयु के पूर्व ही कर दिया जाता है। अपरिपक्व वय के किशोरों में जोश का आवेग तो रहता है। पर होश नहीं होता। अपरिपक्व मस्तिष्क उन हानियों पर विचार कर पाने में असमर्थ होता है। जो अल्पायु में विवाह हो जाने से अपार क्षति पहुँचाते हैं। जब तक ऐसे दम्पत्ति अपना भला-बुरा सोचने योग्य होते हैं, तब तक कितने ही बच्चों के असामयिक भार से दब चुके होते हैं। आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उनके साथ जीवन भर के लिए कितनी ही समस्याएँ जुड़ जाती हैं।

नैतिक दृष्टि से निर्धारित विवाह आयु यों लड़कों के लिए २५ वर्ष तथा लड़कियों के लिए २० वर्ष मानी जानी चाहिए पर बहुत कम ही अभिभावक इन मर्यादाओं का पालन करते हैं। दहेज की कुप्रथा के कारण लड़कियों की किशोरावस्था में ही उनके अभिभावकों के मन में यह चिन्ता सवार हो जाती है कि शीघ्रतिशीघ्र किसी योग्य लड़के के साथ लड़की का सम्बन्ध कर दिया जाय। दूसरी ओर लड़के के अभिभावक को मोटी रकम लेने का भूत सवार रहता है। वे लड़के का भविष्य नहीं सोचते। एक की विवशता दूसरे की लोभी प्रकृति दोनों ही मिलकर अल्पायु में ही लड़के-लड़कियों के विवाह को प्रश्रय देते हैं। कानून के, नीति के निर्धारित नियम एक किनारे रखे रह जाते हैं और समाज की मनमर्जी चलती रहती है।

अपरिपक्व स्थिति में शादी कर दिए जाने के पीछे एक भ्रान्ति यह भी काम करती है कि भारतीय समाज में यह मान्यता लम्बे समय से चली आ रही है कि १२ या १३ वर्ष से कम आयु में लड़कियों का विवाह कर देने से कन्यादान का पुण्य फल प्राप्त होता है। राजस्थान, पूर्वी उत्तर प्रदेश, म० प्र०, बिहार के कितने ही क्षेत्रों में आज भी यह अन्धविश्वास संव्याप्त है। फलस्वरूप लाखों बच्चों की शादी गुड्डे-गुड़ियों के खेल-खिलवाड़ की भाँति कर दी जाती है। इस निराधार भ्रान्ति का उन्मूलन भी उतना ही आवश्यक है जितना कि बाल विवाह को रोकने के लिए कानून पारित कर देना।

उपरोक्त भ्रांति की तरह ही एक और मान्यता समाज में फैली हुई है कि लड़का होना सौभाग्य का चिन्ह तथा लड़की पैदा होना दुर्भाग्य का द्योतक है। लड़की लड़के के बीच भेदभाव करने, एक को कनिष्ठ तथा दूसरे को वरिष्ठ मानने की परम्परा भी इसी पर आधारित है। कितने ही व्यक्ति ऐसे होते हैं जो लड़कियों के होते हुए भी जनसंख्या इस कारण बढ़ाते जाते हैं कि उनके लड़के नहीं हैं। सफलता न मिलने पर वे दूसरी शादी रचाते और वे मूढ़ तब तक चैन नहीं देते, जब तक कि लड़के का मुँह नहीं देख लेते। देश की आबादी में एक बड़ी संख्या इस भ्रान्ति के कारण भी प्रतिवर्ष जुड़ती जाती है। वैचारिक आन्दोलन द्वारा इन मूढ़ मान्यताओं को समाज से उखाड़ फेंकने के लिए भी प्रयत्न होना चाहिए ।

जनसंख्या नियमन की अभीष्ट स्तर की शिक्षा का अभाव भी प्रस्तुत समस्या का एक कारण है। देश की ७० प्रतिशत जनता अशिक्षित है तथा गाँवों में निवास करती है। शिक्षा के अभाव में मनुष्य चिन्तन की दृष्टि से परावलम्बी होता है। उसे अपना दूरगामी हानि-लाभ भी नहीं दिखायी पड़ता है, आँकड़े बताते हैं कि शिक्षितों की तुलना में अशिक्षितों में जनसंख्या वृद्धि की दर कहीं अधिक है। देहाती क्षेत्रों में आबादी वृद्धि की दर अपेक्षा कृत शहरों से अधिक होने का एक कारण यह है कि नगरों में मनोरंजन के अनेकानेक साधन हैं, जबकि गाँवों की स्थिति आज भी अत्यन्त बदतर है। ऐसी हालत में गाँवों में मनोरंजन का एकमात्र माध्यम स्त्री ही रह जाती है। निरीह पत्नी ही निरन्तर कामुकता का शिकार होती रहती है। देखा जाय तो सुदूर क्षेत्रों में भी सिनेमा, साहित्य, संगीत आदि लोकरंजन के श्रेष्ठ माध्यम हो सकते हैं पर गाँवों में ये सुविधाएँ विकृत रूप में उपलब्ध हैं। फलत: पति-पत्नी की चेष्टाएँ शारीरिक धरातल पर काम तृप्ति द्वारा मनोरंजन की आवश्यकता पूरी करती हैं। यह क्षणिक आवेश अन्तत: प्रजनन की दु:खद प्रतिक्रिया, अनेकों बच्चों का भार तथा सारे परिवार के गिरते स्वास्थ्य के रूप में प्रस्तुत होता है।

तथाकथित शहरी पढ़े-लिखे वर्ग की जनसंख्या वृद्धि में प्रमुख भूमिका आज के उस विकृत वातावरण की है जो अश्लीलता और कामुक चिन्तन को बढ़ावा देता है। लोकरंजन के श्रेष्ठ माध्यम सिनेमा, पत्र, पत्रिकाएँ और संगीत हो सकते हैं पर वे समाज की कुत्सित भावनाओं को भड़काने में एक सोथ लगे हुए हैं। अश्लीलता का नग्ननृत्य कला के नाम पर हो रहा है। समाज में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बहुतायत उनकी है जो इनसे प्रेरणा लेते और तदनुरूप चिन्तन तथा गतिविधि अपनाते हैं। सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों ही स्तर पर कला के नाम पर पनपती तथा प्रोत्साहन पाती अश्लीलता की रोकथाम के लिए अविलम्ब प्रयास चलने चाहिए।

समझना बताना ही पर्याप्त नहीं होता। समस्याओं के समाधान के लिए कड़ाई बरतना भी कभी-कभी आवश्यक हो जाता है। स्वेच्छापूर्वक हर व्यक्ति जनसंख्या की विभीषिका की गम्भीरता को समझे इसके लिए कितने ही देशों ने कारगर कदम उठाये हैं। चीन ने कानून पारित करके जनसंख्या को रोकने में असाधारण सफलता पायी है। जो अधिक बच्चे पैदा करते हैं, उन्हें निर्धारित नियमों के अनुसार सरकार को भारी टैक्स अदा करना पड़ता है। उन कर्मचारियों का प्रमोशन, वेतन वृद्धि आदि रोक दी जाती है, जो प्रजनन का नियमन नहीं करते दूसरे के बाद जन्म लेने वाले हर अतिरिक्त बालक की समस्त सुविधाएँ छीन ली जाती हैं। अभिभावकों पर टैक्स बढ़ा दिया जाता है। क्यूबा और ताइवान ने भी इसी तरह के कदम उठाये हैं। कुछ ही वर्षों में इन देशों को आबादी नियमन में भारी सफलता मिली है।

समाज एवं देश की प्रगति के लिए अनेकानेक योजनाएँ बन रहीं तथा कार्यक्रम चल रहे हैं पर उनकी सफलता तब तक संदिग्ध बनी रहेगी जब तक कि जनसंख्या की बाढ़ को रोका नहीं जायेगा। हर समझदार व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि वह प्रस्तुत संकट की गम्भीरता को समझे और दूर करने के लिए व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों ही स्तरों पर प्रयास करे।

निरंकुश भोगवाद की परिणति

यह स्वाभाविक ही है किसी भी प्रवृत्ति में, दिशा में बुरी तरह डूबे रहने के बाद उससे विरति होगी। मीठा खाते-खाते उससे भी जी ऊबने लगेगा और इसके उपरान्त भी यदि कोई मीठा खाने के लिए दबाव डाले, बाध्य करे तो विद्रोह करने का जी हो उठता है।

हिप्पीवाद, इसी निरंकुश और आत्यंतिक भौतिकता के प्रति संवेदनशील युवकों में जन्मा विद्रोह है। समाज में यह स्थिति आ पाना सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति तो संवेदनशील होता नहीं और हुआ भी तो उस सीमा तक नहीं कि वह मान्य व्यवस्था से ही विद्रोह कर उठे।

फिर भी उसके दुष्परिणाम विभिन्न रूपों जन्मते और उत्पन्न होते हैं। कामुकता, अश्लीलता, मुक्त यौनाचार और इसी तरह की उन्मुक्त दुष्प्रवृत्तियाँ निरंकुश भोगवाद के ही परिणाम हैं। इन दुष्प्रवृत्तियों के कारण कई समस्यायें भी उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जनसंख्या की असामान्य वृद्धि उन्हीं समस्याओं में से एक है। लोग बिना सोचे-समझे, आँखें मूँदकर बच्चे पैदा करते चले जा रहे हैं। बच्चे पहले भी पैदा होते थे पर १० में से ९ बच्चे बीमारी, चिकित्सा संसाधनों के अभाव और अन्य कारणों से मर जाते थे। विज्ञान ने उन कारणों पर नियन्त्रण पा लिया है इसलिए अब १० में से ९ बच्चे जीवित रहते हैं और मुश्किल से १ बच्चा मरता है। इस प्रकार जनसंख्या वृद्धि के बढ़ते हुए दबाव से जीवनोपयोगी वस्तुओं का अभाव होने लगा है। निवास, अन्न, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका, यातायात के साधनों के लिए किस बुरी तरह खींच-तान हो रही है, यह किसी से छिपा नहीं है। जिस चक्रवृद्धि क्रम से जनसंख्या बढ़ रही है, उसके जो दुष्परिणाम निकट भविष्य में सामने आने वाले हैं, उनकी कल्पना करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। विशेषज्ञों का अनुमान है कि अब से सौ वर्ष बाद, मनुष्यों की स्थिति मक्खी, मच्छरों जैसी हो जायेगी और वे बेमौत काल के गाल में घुसते चले जायेंगे। जीवन निर्वाह के साधन समाप्त होने के कारण मनुष्यों को भी निर्वाह के हर क्षेत्र में गतिरोध दिखाई देगा और वे बरसाती कीड़ों की तरह चारों ओर रेंगते, गन्दगी फैलाते, मरते-खपते दिखाई पड़ेंगे।

जनसंख्या नियमन आज की खाद्य, शिक्षा, चिकित्सा, आजीविका एवं युद्ध वर्जन से भी बड़ी समस्या है। उस एक समस्या को मूल और अन्यों को पत्ते कहा जा सकता है। जड़ को सींचने, सम्भालने से काम चलेगा पत्ते पोतने से नहीं। जनसंख्या सीमित हो तो धरती के अनुदानों से प्रकृति सम्पदा से लाभान्वित रहा जा सकता है और विभिन्न प्रकार के टकरावों से बचा जा सकता है अस्तु, यदि संसार के विचारशील लोग इस समस्या के—समाधान के विभिन्न उपाय सोच रहे हैं और विवेकवान वर्ग विभिन्न प्रयोग कर रहे हैं तो यह सराहनीय चेष्टा ही कही जायगी।

नैतिक, चारित्रिक और सांस्कृतिक संकटों ने इन दिनों समस्त मानव जाति को उद्विग्न एवं संत्रस्त कर रखा है। इसका कारण है—मानवी दुर्बुद्धि-अदूरदर्शिता। दाम्पत्य-जीवन का उच्चस्तरीय आनन्द लेते हुए ही जनसंख्या वृद्धि को रोका जा सकता है और वैज्ञानिक प्रगति से—संसार से दरिद्रता, रुग्णता, अशिक्षा एवं पिछड़ेपन को दूर किया जा सकता है। यदि मानवी दुर्बुद्धि को रोका जा सके और उसका स्थान सद्भावना को—विवेकशीलता को—मिल सके तो उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझ सकती हैं।

माल्थस ने कहा कि मनुष्य को पहले ही सद्बुद्धि से काम लेना चाहिये और जनसंख्या को इतना सीमित रखना चाहिये कि ऐसी परिस्थिति ही उत्पन्न न होने पाये कि प्राकृतिक अवरोधों के कारण कष्ट उठाने पड़ें। उन्होंने जनसंख्या रोकने के दोनों ही उपाय बताये—(१) बुरे अवरोध—इसमें गर्भ क्षीण करना, आपरेशन कराना एक ही स्त्री से बहुत व्यक्तियों द्वारा काम तुष्टि, छल्ले, लूप, गर्भ निरोधक औषधियाँ आदि। इन उपायों से देखने में भले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ एक तपोवन ४.२५

ही लगता हो कि जनसंख्या वृद्धि का अनुपात कम हुआ पर उससे होने वाली हानियाँ समाज के लिए घातक होंगी जितनी जनसंख्या वृद्धि से भी तत्काल नहीं होगी।

ऐसी स्थिति में केवल—(२) नैतिक संयम ही उचित प्रतिबन्धक अवरोध हो सकता है। माल्थस ने इस पर बहुत जोर दिया है। इसमें ब्रह्मचारी रहना, देर से विवाह करना, सन्तानोत्पत्ति की भावना न रखकर नियन्त्रित जीवन बिताना आदि सम्मिलित हैं। आहार का संयम, अश्लील चित्रों और प्रसंगों से बचना आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं। हमारे लिये उचित यही है कि हम आत्म-संयम का पालन करें और सन्तान की संख्या बढ़ने न दें।

यह किया जाय—इन दिनों प्रबुद्ध वर्ग में यह विचार दिन-दिन जोर पकड़ रहा है कि लोग अविवाहित जीवन व्यतीत करें—यदि विवाह भी करें तो सन्तानोत्पादन न करने का आरम्भ से ही निश्चय कर लें—जिनकी आर्थिक, बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमता सन्तान को समुन्नत बनाने की है, वे न्यूनतम संख्या में बच्चे पैदा करें। एक या दो पर्याप्त माने जाने चाहिए। यह विचार न केवल चिन्तन क्षेत्र में ही वरन् कार्यान्वित भी किये जा रहे हैं। इस दिशा में कई देश बहुत आगे हैं।

जापान क्षेत्रफल की दृष्टि से बहुत छोटा देश है। वहाँ के प्राकृतिक साधन भी स्वल्प हैं। इस वस्तुस्थिति से हर नागरिक परिचित है। वे जानते हैं कि यदि अनियन्त्रित सीमा में बच्चे पैदा किये जाने लगें तो वह छोटा-सा टापू पचास-चालीस वर्ष के भीतर ही टिड्डी दल की तरह मनुष्यों से भर जायगा और वे बरसाती मक्खी, मच्छरों की तरह अभावग्रस्त होकर बेमौत मरेंगे। इस दयनीय दुर्दशा के खतरे को समझकर वहाँ का हर नागरिक इस बात के लिए सचेष्ट रहता है कि जनसंख्या बढ़ने न पाये। यही कारण है कि हजारों वर्षों से समुन्नत स्थिति का वह देश उपभोग कर रहा है और उन खतरों से बचा हुआ है जो भारत जैसे देश के सिर पर नंगी तलवार की तरह नाच रहा है।

जापान के नर-नारी विवाह से बचते हैं। उनमें से प्राय: एक तिहाई लोग आजीवन अविवाहित रहते हैं। जो विवाह करते हैं वे बच्चे न होने की आवश्यक व्यवस्था अपनाये रहते हैं। जो बच्चे पैदा करते हैं, उनकी संख्या कम ही होती है। वे सभी एक दो सन्तान के बाद उस झंझट को समाप्त कर देते हैं। यह किसी से छिपा नहीं है कि पिता की आर्थिक स्थिति पर, माता के स्वास्थ्य पर, देश के विकास पर बढ़ती हुई सन्तान कितना अधिक भार डालती है। जितना बोझ उठाने की कन्धों में सामर्थ्य हो उतना ही उठाना समझदारी है। उस देश में विवाह कमजोरी या मजबूरी का कारण माना जाता है और उसे उपेक्षणीय माना जाता है। वहाँ विवाहों की बधाई नहीं बँटती क्योंकि वह एक प्रतिगामी कदम माना जाता है।

अब विवाहों की आयु बढ़ रही है। भारत जैसे देश के पागल लोग तो दूधमुँह बच्चों के विवाह भी कर सकते हैं और उस सन्तान हत्या की खुशी मना सकते हैं, पर प्रगतिशील देशों के लोग यह सोचते हैं तब तक व्यर्थ का अडंगा उत्पन्न करके अपने विकास प्रयत्नों में अवरोध क्यों खड़ा किया जाय। निश्चित रूप से विवाह के साथ इतने अधिक उत्तरदायित्व सिर पर आते हैं कि आदमी उसके बोझ से दबता, पिसता ही चला जाता है, उस गाड़ी को खींचने में उसका सारा कचूमर निकल जाता है, कोई बड़ी बात सोचना, कोई बड़े कदम उठाना, कोई प्रगति करना उसके लिए समय, शक्ति, चिन्तन और धन के अभाव में सम्भव ही नहीं हो पाता। जो कुछ है वह इसी गृहस्थ की भट्टी में जलता चला जाता है।

विवाह की आयु प्रगतिशील देशों में वह समझी जाती है जिसमें मनुष्य थकान अनुभव करने लगे और महत्त्वाकांक्षाओं की इतिश्री कर दे। जिन्हें विवाह करना होता है वे चालीस वर्ष के पश्चात् करते हैं ताकि अपने परिपक्व अनुभव से एक दूसरे के साथ अधिक अच्छी तरह निर्वाह कर सकें। नई उम्र के जोशीले बच्चे तो भावुकता के घोड़े पर चढ़े होते हैं। अभी प्राणाधिक प्यार, अभी उपेक्षा, अभी आवेश, अभी तलाक, अभी आत्म-हत्या यह उपद्रव नई उम्र वाले ही करते हैं। प्रकृति के अनुसार बच्चे पैदा करने का उभार भी नई उम्र में ही होता है। ढलती आयु में उस उफान से शरीर स्वयं बचता है। स्थिर बुद्धि के अनुभवी लोग अपना सहयोग भी दूरदर्शी सहिष्णु सिद्धान्तों के आधार पर शान्त चित्त से निभा लेते हैं और दूसरे के लिए अधिक उपयोगी—सहायक सिद्ध होते हैं।

राष्ट्रसंघ द्वारा संग्रहीत आँकड़ों की पुस्तक 'डोमोग्राफिक ईयर बुक' के अनुसार संसार भर की औसत गणना के आधार पर महिलाएँ २४ वर्ष की आयु में और पुरुष २७ वर्ष की आयु में विवाह करते हैं। आयरलैण्ड का अनुपात इस दृष्टि से सबसे ऊँचा है। वहाँ विवाह आयु ३१ वर्ष है। उस देश में आमतौर से महिलाएँ ४५ वर्ष बाद और पुरुष ५४ वर्ष बाद विवाह बन्धन में बँधना पसन्द करते हैं। आधे लोग तो आजीवन अविवावहित ही रहते हैं।

यह आँकड़े बताते हैं कि कुछ अनुभवहीन नर-नारी बीस-पच्चीस वर्ष की आयु में विवाह करते होंगे और कुछ दूरदर्शी लोग ४० के आस-पास उस बन्धन में बँधते होंगे तभी तो अनुपात औसत इतना आता होगा। संसार भर की नारियों की औसत आयु जब २४ वर्ष और पुरुषों की २७ वर्ष मानी गई है तो उसमें भारत जैसे बारह-चौदह वर्ष की आयु में ब्याह करने वाले लोगों की गणना भी सम्मिलित होगी। बुद्धिमानी का औसत फैलाया जाय तो वह ३० और ४० वर्ष के बीच ही पहुँचेगा। यह हवा यदि ठीक तरह चलने लगी और लोगों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ने जनसंख्या वृद्धि के खतरे को ध्यान में रखते हुए—व्यक्तित्वों को अधिक विकसित करने की आवश्यकता समझते हुए यदि विवाह की आयु बढ़ाने का ध्यान रखा तो सामने खड़ी सर्वनाशी विपत्ति से जरूर राहत मिलेगी।

अक्सर यह दलील दी जाती है कि अविवाहित असंयमी हो जाते हैं। जहाँ तक शरीर निचोड़ने का सम्बन्ध है विवाहित लोग ही उस प्रकार की क्षति अधिक उठाते हैं। व्यभिचार एक मन:स्थिति है। वह विवाहितों में कम नहीं अधिक ही पनपा हुआ देखा जा सकता है। नैतिक प्रश्न मनुष्य के चिन्तन, दृष्टिकोण एवं चरित्र से जुड़ा हुआ है। यह तथ्य विवाहित और अविवाहित दोनों ही पक्षों को समान रूप से प्रभावित कर सकते हैं। संयमी, सदाचारी रहने और उच्छृंखल, अनाचारी बनने में विवाह न कुछ सहायक होता है न बाधक। एक क्षण के लिए यह मान भी लिया जाय कि विवाह से यौन सदाचार होता होगा तो उससे जितना लाभ है उससे अधिक वैयक्तिक और सामाजिक हानि वे हैं जो शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और राष्ट्रीय समस्याओं को वे-तरह प्रभावित करती हैं। तुलनात्मक विवेचन करने पर—यौन सदाचार को अत्यधिक महत्त्व देने पर भी यह सिद्ध नहीं होता कि उतने भर से व्यक्ति अपने को, अपनी पत्नी को, अपने बच्चों को और अपने समाज को अच्छी स्थिति दे सके।

जहाँ तक साथी, सहचर, मित्र, घनिष्ट या आत्मीय का सम्बन्ध है और मिल-जुलकर जीवन जीने की व्यवस्था का प्रश्न है वहाँ नर-नारी का कोई खास महत्त्व नहीं, क्या दो भाई या दो बहिनें मिलकर साझीदारी की जिन्दगी नहीं काट सकते ? जहाँ तक जीवन व्यवस्था में दो साथी-सहचरों का सम्बन्ध है—दो पुरुष या दो नारियाँ भी इस तरह की साझीदारी बना सकती हैं। यौन आचरण की बात को यदि अलग रख दिया जाय तो विवाह का ८० प्रतिशत प्रयोजन दो घनिष्ट मित्र मिलकर भली प्रकार पूरा कर सकते हैं। मात्र यौन आचरण के लिए विवाह करना वस्तुत: विवाह संस्था को अत्यन्त निकृष्ट स्तर पर पटक देना है, यदि ऐसा ही है तो उसे कानूनी वेश्यावृत्ति से अधिक और क्या कहा जायगा।

आवश्यकतानुसार नर-नारी भी मिल-जुलकर रह सकते हैं और विवाह बन्धन में बँधे रह सकते हैं। यदि उनके सामने पारस्परिक उत्कृष्ट सहयोग का अथवा मिल-जुलकर समाज के लिए उपयोगी काम करने का लक्ष्य हो तो वे बिना सन्तानोत्पादन का उत्तरदायित्व कन्धे पर उठाये अपने आनन्द लक्ष्य यौनाचार से—सन्तानोत्पादन से सहज ही ऊँचा रख सकते हैं।

अब इस तरह के प्रयोग भी कम नहीं चल रहे हैं। उनकी संख्या बढ़ रही है। समान प्रकृति के पुरुष-पुरुष अथवा नर-नारी साझेदारी की जिन्दगी शान्ति और स्नेह पूर्वक जी सकते हैं और एक दूसरे के सुख-दुख में सहयोगी एवं बफादार रह सकते हैं। इससे यौनाचार के अतिरिक्त विवाह की अन्य सभी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं। नर-नारी के बीच भी यदि विवाह होता हो तो क्या आवश्यकता है कि सन्तानोत्पादन को अनिवार्य आवश्यक ही समझें। क्या व्यक्ति और समाज का भार बढ़ाने की अपेक्षा नर-नारी का मिलन किन्हीं अन्य उपयोगी कार्यों में प्रयुक्त नहीं हो सकता ?

क्या पच्चीस साल से भी कम आयु के शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अपरिपक्व और अविकसित बच्चों का विवाह बन्धन में बँधकर अपनी प्रगति के द्वार बन्द कर देना और अनावश्यक दवाब में दबकर अपना भविष्य अन्धकारमय बना लेना उचित है ? इस प्रश्न पर इस तथ्य को भी ध्यान में रखकर विचार करना होगा कि बढ़ती हुई जनसंख्या की दर मानवी अस्तित्व को धरती पर से मिटा देने के लिए एक भंयकर विभीषिका के रूप में सामने खड़ी है।

यौन स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाना ही होगा

प्रगतिशीलता के उजले पहलू जितने आकर्षक हैं, उतने ही कुछ ऐसे पक्ष भी हैं जो लाभ के स्थान पर हानि अधिक पहुँचाते हैं। इन कदमों में लगता तो ऐसा है कि पिछले दिनों किसी प्रतियोगिता के युग में हम सब रह रहे थे और अब ऐसा अवसर मिला है कि स्वतन्त्र चिन्तन को फलित किया जा सकेगा और अधिक सुखी रहा जा सकेगा। किन्तु जब कसौटी पर उन परिकल्पनाओं को कसा जाता है तो प्रतीत होता है कि आकर्षण को उत्तेजना ने भटकाव में उलझा दिया।

ऐसे प्रसंगों में यौन स्वेच्छाचार को अग्रिणी समझा जा सकता है। अब नर और नारी का साहचर्य उतना प्रतिबन्धित नहीं रहा जितना कि कुछ समय पूर्व था। वयस्क छात्रों की सहशिक्षा का अब आम प्रचलन है। लड़के-लड़कियाँ एक ही कालेज में पढ़ते हैं। खेल प्रतियोगिता से लेकर दफ्तरों-कारखानो में भी अब स्त्री-पुरुषों की विभाजन रेखा घटती जा रही है। पर्दा-घूँघट तो मात्र सामन्त वर्ग तक सीमित रह गया । गरीब श्रमिकों में पहले भी नहीं था और न अब है। इसी प्रकार सामन्तों के हरमों को छोड़कर पुरातन काल में पर्दा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता था और न अब दीखता है। यह सब प्रगतिशीलता के चिन्ह हैं। नर और नारी की समता का नारा क्रमश: अपनी परिणति इसी रूप में प्रस्तुत करता चला गया है।

सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अच्छी बात है। व्यवहार में भी यह अच्छा लगता है कि नर और नारी वर्ग के दोनों समुदाय कंधे से कंधा और कदम से कदम मिला कर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलें। इतने पर उस खतरे से बेखबर नहीं रहा जा सकता, जो वर्जनाओं के टूटने के उपरान्त नया अनुशासन उत्पन्न होने की रिक्तता ने उत्पन्न कर दिया है।

कामुकता का माहौल भी अब प्रगतिशीलता का ही एक पक्ष बन गया है। साहित्य, संगीत, सिनेमा, चित्र और दृश्य प्रचलनों में कामुकता की प्रवृत्ति को इन दिनों बढ़ा-चढ़ा प्रोत्साहन मिला है। कला के नाम पर उलट-पुलट कर कामुकता ही नंगी नाचती है। नर-नारी की साहचर्य सुविधा और तथाकथित कला की अभिव्यक्ति की प्रतिक्रिया ने उस पशु प्रवृत्ति को गगनचुम्बी बना दिया है, जो पहले से ही मनुष्य में विद्यमान है। संक्षेप में यही है यौन स्वेच्छाचार की पृष्ठभूमि जो समाज के हर वर्ग में क्रमशः अधिक पनपती बढ़ती जा रही है। अब पतिव्रत धर्म, पत्नीव्रत का ढाँचा-ढकोसला ही खड़ा रह गया है। उनकी जड़ें बेतरह खोखली हो गई हैं। अविवाहितों और विधुरों को ब्रह्मचारी कहने में हर्ज नहीं पर वास्तविक ब्रह्मचर्य व्रत कितनों द्वारा पाला जाता है, यह कहना कठिन है। मानसिक व्यभिचार तो एक फैशन एवं प्रचलन जैसा बन गया है। हर क्षेत्र में हर किसी का मार्गदर्शन करने वाला पाश्चात्य संस्कृति में यौन स्वेच्छाचार भी सिगरेट, चाय की तरह ऐसा व्यसन बन गया है, जिसका मौखिक विरोध भर जब तब सुना जाता है। अप्रकट रूप में उसे लोकमान्यता मिलने लगी है और उसे अपनाने में कोई बहुत बड़ी बुराई या आपत्ति रह नहीं गई है।

इस तथाकथित प्रगतिशीलता के अनेकानेक दुष्परिणाम सामने आ रहे हैं। दाम्पत्य जीवन ही नहीं गृहस्थ जीवन भी इस कारण अनिश्चित बनता जा रहा है। शिशुओं का भविष्य अन्धकारमय बन रहा है। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी और तात्कालिक हानि है, बढ़ते हुए यौन रोगों की। प्रकृति ने प्राणियों की जननेन्द्रियाँ इस प्रकार सृजी हैं कि उनकों प्रजनन की नितान्त आवश्यकता अनुभव होने पर ही यदा-कदा प्रयुक्त किया जाय। यदि उन्हें मनोरंजन का विषय मान कर झुनझुने की तरह उथले मनोरंजन के लिए प्रयुक्त किया जायगा तो निश्चय ही यह अति कोमल अंग क्षतिग्रस्त होंगे और बीमारियों के शिकार बनेंगे। सभी जानते है कि यौन सम्पर्क से छूत की बीमारियाँ एक से दूसरे को और दूसरे से अनेकानेक को लगती है। यह बीमारियाँ ऐसी हैं जो एक बार लग जाने पर जीवन भर कष्ट देती हैं। दवाओं से दब भर जाती हैं और अवसर मिलते ही फिर प्रकट होती हैं। उनका प्रभाव पीढ़ी दर पीढ़ी तक चल जाता है।

पर्दे के पीछे रहने के कारण यह प्रसंग सार्वजनिक चर्चा एवं जानकारी का विषय नहीं बन पाते तो भी जब-तब जो कुछ जानकारियां सामने आती हैं वे भी कम चौकाने वाली और कम दुःखदायी नहीं हैं। ऐसे प्रकटीकरण प्रायः शिक्षित और चौकन्ने अमेरिका जैसे देशों में ही हो पाते हैं। पिछड़े देश तो भीतर ही भीतर सड़ते और घुल-घुल कर नष्ट होते रहते हैं। हमारे अपने ही राष्ट्र में छत्तीसगढ़ का नाम विश्व भर में स्वास्थ्य जगत में एक ऐसे उपखण्ड के रूप में लिया जाता है, जहाँ एक सघन क्षेत्र में गनोरिया, सिफिलिस जैसे रोगों का जितना बाहुल्य है, उतना विश्व के किसी भी हिस्से में नहीं। यही स्थिति बैंकाक, वियतनाम, फिलीपीन्स एवं मध्य अमेरीकन राष्ट्रों की भी है।

फेडेरल सेन्टर फौर डिजीज कन्ट्रोल द्वारा किये गये एक पर्यवेक्षण के अनुसार यूनाइटेड स्टेट्स में लगभग ५० लाख लोग यौन-रोगों से ग्रस्त पाये हैं। सेन्टर के निर्देशक श्री विलियम एच० फोयेज का कहना है कि प्रतिवर्ष २ से ५ लाख यौन-रोगियों की संख्या नवोदित होती हैं। १९६६ से १९७९ की अवधि में ऐसे रोगियों की संख्या ८५० प्रतिशत से बढ़ी हुई पायी गई है। इसका प्रमुख कारण यौन स्वेच्छाचार में दिन प्रतिदिन वृद्धि ही डॉ. फोयेग ने बताया। डॉ० फोयेग ने पुनः यह तथ्य प्रतिपादित किया कि प्रतिवर्ष यौन संक्रमित माताओं के गर्भ से लगभग एक हजार बालकों का जन्म होता है। जिनमें से आधे तो तत्काल मर जाते और शेष मानसिक विक्षिप्तता कैंसरजन्य रोगों का शिकार हो जाते हैं।

वहाँ इन दिनों ऐसे रोगों से ग्रसित छात्र-छात्राओं की संख्या उस देश में दो करोड़ तीस लाख है। ग्रहस्थ इसके अतिरिक्त हैं। फिर यह आँकड़े अस्पतालों की रिपोर्टों के आधार पर संग्रह किये गये हैं। ऐसे भी असंख्य हैं, जो इलाज कराते ही नहीं या गुपचुप प्राइवेट चिकित्सकों से दवादारू लेते रहते हैं।

आँकड़ों के अनुसार अमेरिका में प्रति हजार स्कूलों में पढ़ने वाली अविवाहित छात्राओं में से २० माता बन चुकी होती हैं। जबकि १५ लाख गर्भपात भी उस क्षेत्र में होते हैं। इन छात्राओं में से एक तिहाई तो १८ वर्ष से भी कम थीं।

उन्मुक्त यौनाचार ने पाश्चात्य देशों में रतिक्रिया के प्रति ऊब सी पैदा कर दी है। वहाँ समलिंगी यौन-सम्पर्क के कारण गत ४-५ वर्षों में एक ऐसी बीमारी फैली है जिसका चिकित्सक इतिहास में कहीं अस्तित्व नहीं पाते। एक्यूट इम्यूनॉलाजीकल डेफीसिएन्शी सिन्ड्रोम (ए० आई० डी० एस०) नामक इस रोग से धीरे-धीरे रोगी की जीवनी शक्ति खोखली होते होते ६ से ८ माह के भीतर दर्द-नाक मृत्यु हो जाती है। छूत से फैलने वाले इस रोग ने पुरुषों व स्त्रियों को यूरोप, अमेरिका व आस्ट्रेलिया में बहुसंख्य समुदाय को अपने ग्रास में ले लिया है। यह विभीषिका भरी परिणति मानवी गरिमा के ऊपर एक बहुत बड़ा कलंक है।

प्रजनन युक्त यौनाचार के प्रति बढ़ते हुए उत्साह ने नसबन्दी, लूप, रबड़ थैलियाँ आदि के कई उपाय निकाले हैं और गर्भपात पर लगे प्रतिबन्धों को उठाया है। इतने पर भी गर्भ निरोधक गोलियों का प्रचलन अभी भी कम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नहीं हुआ है क्योंकि अन्य उपायों में रतिक्रिया उतनी उत्साहवर्धक नहीं रहती। इस प्रयोजन के लिए प्रयुक्त की जाने वाली गोलियाँ क्या दुष्परिणाम उत्पन्न करती हैं, उस सन्दर्भ में उपलब्ध जानकारियाँ कम भयावह नहीं।

गर्भ निरोधक गोलियाँ स्टीलबेस्ट्राल (डी० ई० एस०) न सिर्फ माताओं के लिए प्राणघातक होती हैं, वरन् यह उनकी भावी संतति की प्रजनन क्षमता को भी प्रभावित करती हैं। सन् १९७६ में इस सम्बन्ध में वैसी लड़कियों से इन्टरव्यू लिया गया, जिनकी माताओं ने स्टील बेस्ट्राल (डी० ई० एस०) का कभी सेवन किया था। इन्टरव्यू से ज्ञात हुआ कि इनमें से अधिकांश लड़कियों का मासिक धर्म अनियमित था। इसी प्रकार का इन्टरव्यू सामान्य प्रकार से उत्पन्न जिनकी माताओं ने स्टील बेस्ट्राल नहीं लिया, लड़कियों से लिया गया। इनमें भी कुछ का मासिक स्राव अनियमित पाया गया। किन्तु यह संख्या उन अनियमित मासिक वाली कन्याओं की तुलना में अत्यल्प थी, जिनकी माताओं ने डी० ई० एस० का सेवन किया था। अध्ययन से ज्ञात हुआ कि अनियमित मासिकस्राव वाली डी० ई० एस० युक्त कन्याओं की संख्या, उन अनियमित मासिक धर्म वाली लड़कियों से दूनी है, जिनकी माताओं ने स्टीलबेस्ट्राल का सेवन नहीं किया। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि डी० ई० एस० कन्याओं में से कुछ गर्भ धारण कर ही नहीं पातीं। जिन कन्याओं ने गर्भ धारण किया व उनसे बच्चे उत्पन्न हुए, उनमें से आधी संख्या बालकों की थी। इन बालकों की प्रजनन क्षमता एवं जनन अंगों का परीक्षण किया गया, तो पाया गया कि इनमें से एक चौथाई संख्या में बच्चे विभिन्न प्रकार की जनन सम्बन्धी विकृतियों से ग्रस्त थे। ऐसी सन्ततियों की संख्या सारे विश्व में बढ़ती जा रही है।

यही बात प्रजनन निरोधी अन्यान्य उपकरणों के सम्बन्ध में भी न्यूनाधिक मात्रा में लागू होती है। उनके कारण स्वेच्छाचार को प्रोत्साहन मिलता है फलतः जननेन्द्रिय रोगों की वृद्धि के साथ-साथ उस जीवनी शक्ति का भारी अपव्यय भी होता है, जिसकी नींव पर कि आरोग्य और दीर्घजीवन की आधारशिला खड़ी हुई है।

यौनाचार और प्रजनन का दायित्व

विवाह को यौनाचार की खुली छूट या बलात्कार का कानूनी लाइसेन्स माना जाता है। पर वस्तुतः ऐसा है नहीं उसके पीछे अनेकों दायित्व और कर्तव्य जुड़े हुये हैं। उनका निर्वाह किये बिना इस अनुबंध की सफलता नहीं बनती। वरन् एक दूसरे के लिए गले के पत्थर और भार भूत बन जाते हैं। ऐसे झंझट में फँस जाते हैं, जिसे गरम दूध की भाँति न पीते बनता है न उगलते। साँप-छछूँदर की तरह असमंजस, संकोच और लोक-लाज से बाधित होकर किसी प्रकार समय काट लेना और गाड़ी धकेल लेना एक बात है और प्रसन्नता, उल्लास और सहयोग से भरा-पूरा दम्पत्ति जीवन बिताना सर्वथा दूसरी।

यौनाचार की अमर्यादित छूट विवाह के उपरान्त मिल जाने की बात सर्वथा अनुपयुक्त है। इस संदर्भ में दोनों पक्षों को एक दूसरे की शारीरिक और मानसिक स्थिति का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। दूसरे पक्ष को यदि अरुचि या असमर्थता है तो स्वस्थ पक्ष को आग्रह करने तथा दबाव डालने का उपचार नहीं करना चाहिए। स्त्री जननेन्द्रिय की संरचना इतनी कोमल है कि उस पर यदा-कदा ही दबाव पड़ना चाहिए। अति बरतने पर संवेदनशील अति कोमल अंग शीघ्र ही रुग्ण हो लेता है और बहुमूत्र, खुजली, प्रदर आदि से ग्रसित हो जाता है। अस्तु आतुरता व्यक्त करने वाले और इस कृत्य में अपना पौरुष समझने वाले नर को नारी की कठिनाई का ध्यान रखते हुये उसे कम से कम ही बाधित करना चाहिये अन्यथा एक के पीड़ित हो जाने पर दूसरे पक्ष को भी उसका भार वहन करना पड़ेगा। आरम्भिक दिनों में दिखाया गया इस तरह का अत्युत्साह अन्ततः दोनों के लिए पश्चात्ताप का कारण बनता है।

ब्रह्मचर्य का धार्मिक जीवन में महत्त्व है, उसका उद्देश्य दृष्टिकोण में पवित्रता भरना और ऊर्ध्वरिता बन कर मानसिक शक्तियों का परिपोषण करना है। उस क्षेत्र में इसके लिए कठोर अनुबंध भी हैं। पर उनका दाम्पत्य जीवन में धार्मिक या सामाजिक रोकथाम न होने पर भी विवेक का एवं शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य का प्रतिपादन है कि पति-पत्नी इस संबंध में जितनी उपेक्षा बरत सकें जितना मध्यान्तर रख सकें उतना ही उत्तम है।

इसका तात्कालिक लाभ यह मिलेगा कि नारी को परिपक्व आयु होने तक गर्भ धारण के झंझट से बचते हुये वह समय योग्यता संवर्धन में लगने का अवसर मिल जाता है। स्पष्ट है कि प्रजनन कर्म में नारी को ही अपने शरीर में से नया शरीर बनाना पड़ता है। ऐसी दशा में पत्नी का स्वास्थ्य परिपक्व होने का अवसर नहीं मिलता, उलटे उसे वर्तमान स्वास्थ्य में कटौती करने की जिम्मेदारी लद पड़ती है। उन दिनों मितली आना, अपच रहना, नींद घट जाना, शरीर में दर्द होना जैसी कई व्यथायें बढ़ जाती हैं। ऐसी दशा में ज्ञान संवर्धन की, शिक्षा की, आगे बढ़ने की गतिशीलता मात्र रुकती ही नहीं शिशु पालन का नया कार्य सिर पर आ जाने से वैसी संभावना ही एक प्रकार से समाप्त हो जाती है। प्रसव पीड़ा उस समय के स्राव तथा बाद में दूध निचुड़ते रहने के कारण न तो उपार्जित स्वास्थ्य का संरक्षण हो पाता है और न शारीरिक स्वास्थ्य के सुधरने एवं विद्याध्ययन की संभावना ही रहती है। जर्जर शरीर स्वभावतः चिड़चिड़ा हो जाता है एवं उसी दशा में दम्पत्ति जीवन में सरसता भी घटने लगती है। उपेक्षा, अन्यमनस्कता बढ़ती और खीज बढ़ती है। ऐसी दशा में सहयोग के स्रोत ही सूखने लगते हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसका परोक्ष अर्थ यह हुआ कि दाम्पत्ति जीवन की आधी उपयोगिता इस कारण समाप्त हुई कि पत्नी पर बच्चों को जनने और पालने का असाधारण दबाव बढ़ता गया और वह एक चलते-फिरते कंकाल के रूप में अपना अस्तित्व भर बनाये रह सकी।

यौनाचार की नवविवाहित जीवन में इसलिए तो निश्चित रूप से आवश्यकता है कि पितृ गृह की तरह ससुराल का स्नेह, सहयोग एवं प्रशिक्षण भी भावी जीवन को समुन्नत बनाने की दृष्टि से उपलब्ध हो सके। पितृ कुल की कमाई को वह ससुराल में प्रवेश करते ही समाप्त कर दे। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होना नारी के प्रति सहज अत्याचार है। भले ही कानून की दृष्टि में उसे पराधीन माना गया हो और उसके लिए मुकद्दमा चलाने या जेल जाने जैसा प्रावधान न हो।

बच्चा जनने से पूर्व नारी का शरीर परिपक्व व्यवस्था में पहुँच चुका होना चाहिए, वह प्रगति क्रम न्यूनतम पच्चीस वर्ष की आयु तक पहुँचे बिना परिपक्वावस्था तक नहीं पहुँचता।

कानून नारी को अठारह वर्ष की आयु में बालिग मान लेता है और विवाह योग्य ठहरा देता है किन्तु प्रकृति के अनुसार तालाब पूरा भर जाने के बाद ही उसमें से निकासी का सिलसिला चलना चाहिए। बाँध में पूरा पानी भर जाने के उपरान्त नहरों में पानी छोड़ा जाता है। जिस बाँध की तली में पानी जमा हुआ हो, उसमें से नहर बहाना शुरू कर दिया जाय तो भविष्य के लिए न बाँध ही कोई निश्चिन्तता दे सकेगा और नहरें ही सिंचाई के लिए उपयुक्त पानी दे सकेंगी। नारी को पच्चीस वर्ष से पूर्ण इस स्थिति में नहीं माना जाना चाहिए कि वह प्रजनन कृत्य ठीक तरह कर सकेगी और शिशु पालन के साथ-साथ अपना शरीर भी यथावत् बनाये रह सकेगी।

बच्चा उत्पन्न करने का अर्थ बाजार में चूँ-चूँ करने वाला रबड़ का गुड्डा खरीद लाना नहीं है। वरन् सच तो यह है कि उसके जन्मने के साथ ही अभिभावकों के सिर पर सौ जिम्मेदारियाँ आती हैं। कोमल शरीर पर तनिक सी अव्यवस्था का भारी प्रभाव पड़ता है फलतः उसे दुर्बलता और रुग्णता घेरने लगती है। बच्चे अपनी व्यथा को कह तो नहीं सकता इसलिए बुद्धिमान अभिभावकों को ही यह अनुमान लगाना पड़ता है कि बच्चे का स्वास्थ्य क्यों लड़खड़ाया और उसे सुधारने के लिए क्या सुधार परिवर्तन करना चाहिए। डाक्टर तो जल्दी में भीड़ निपटाने के लिए नुस्खे का पर्चा लिख कर छुट्टी पा लेते हैं। उनके पास कारण पूछने और निवारण के लिए रहने सहन का हेर-फेर समझाने के लिए समय भी नहीं होता। अस्तु माता-पिता की नासमझी बच्चे के भावी स्वास्थ्य की नींव हिला देती है।

बच्चों के तनिक बड़े होते ही उसे न केवल खिलौने चाहिए वरन् इतना बड़ा घर-आँगन भी चाहिए जिसमें वह भाग-दौड़ करके अपनी विकास प्रवृत्ति का परिपोषण कर सके। पिंजड़े जैसे छोटे घरों में कैद रहने पर बच्चे वैसे ही हो जाते हैं जैसे कि दरबे में बंद रहने वाले चूजे अपनी उड़ने की क्षमता गँवा बैठते हैं। बच्चों का मन घर से बाहर जाने और प्रकृति के दृश्य देखकर अपनी स्वाभाविक जानकारी बढ़ाने का होता है। पर यदि वह घुटन के वातावरण में कैद ही बना रहे तो आरम्भिक दिनों की उस आवश्यकता से वंचित रह जाता है, जो उसके भावी जीवन में स्फूर्ति और प्रगति का सिलसिला चलाने के लिए आवश्यक है।

स्मरण रहे शिशुपालन यदि ठीक रीति से किया जा सके तो बहुत खर्चीला पड़ता है। उसे शुद्ध दूध, फलों का रस आहार के लिए और खिलाने-सँभालने के लिए एक व्यक्ति की पूरी ड्यूटी अपेक्षित होती है।

प्रजनन का दायित्व लेने से पूर्व कई बार सोचें

पति-पत्नी के बीच प्रायः भावावेश में ऐसे संबोधन चलते रहते हैं, जिनसे महसूस होता है कि दोनों के बीच गहरी घनिष्ठता है। इतनी सघन मित्रता, जिसमें एक-दूसरे के प्रति अनन्य प्रेम भाव बनाये हुए हैं। एक-दूसरे के प्रति बड़ा त्याग कर सकते हैं और साथी को सुखी बनाने के लिए, उसका हित साधने के लिए बड़े से बड़ा उपहार दे सकते हैं।

पर परीक्षा की कसौटी पर कसने के उपरान्त प्रतीत होता है कि इस प्रदर्शन में छद्म ही छद्म भरा है। स्वार्थ साधने के लिए ठग अक्सर मीठी बोली बोलते हैं और अपना हितैषी सिद्ध करने के लिए प्रपंचों पर प्रपंच गढ़ते चले जाते हैं। इसी को कहते हैं मित्रता के नाम पर शत्रुता की घात लगाना। पुराने जमाने में शत्रु के साथ कटु वचन कहने, आक्रमण करने और नीचा दिखाने का रिवाज था। बात समाप्त हो जाती थी। कथनी और करनी एक रहने से कोई धोखे में नहीं रहता था। शत्रु के साथ सावधानी बरती जाती थी, पर इस प्रपंच के युग में तो सब कुछ उल्टा हो गया है। शत्रुता बरतने का सरल तरीका मित्रता की दुहाई देना है और जिसे मित्र कहते हैं उसकी बड़ी से बड़ी हानि करके अपना स्वार्थ सिद्ध करने में चूका नहीं जाता।

इसका एक अति स्पष्ट नमूना देखना हो, तो पति-पत्नी के बीच चलने वाले मधुरालाप को देखकर वस्तुस्थिति को समझा जा सकता है कि स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कैसे मीठे वचन दिये जाते हैं और कैसे प्रपंच भरे व्यवहार किये जाते हैं। आश्चर्य होता है कि छल ने मित्रता का कैसा कपट आडम्बर ओढ़ लिया है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कन्या अपने पिता के घर से ससुराल समस्त जीवन उत्सर्ग करने के लिए आती है। उसका सहज स्वाभाविक अधिकार बनता है कि पितृ गृह में जो स्नेह-सद्भाव उसे मिलता रहा है, उसकी तुलना में ससुराल में उसे अधिक स्नेह, सहयोग और सदव्यवहार हाथ लगेगा। इसका स्वरूप एक ही हो सकता है कि वह पितृ गृह से जैसा स्वास्थ्य, जैसा ज्ञान, जैसा व्यक्तित्व लेकर आई थी, उसकी तुलना में उसे कहीं अधिक उपहार, उपकार हस्तगत होगा। यह तभी हो सकता है, जब दूसरे घर से आई कन्या को हर दृष्टि से समर्थ, सुयोग्य, प्रगतिशील बनने का अवसर मिले। देखा जाता है कि पति-पत्नी को ढेरों समय एकान्त में रहने को मिलता है। इसका सदुपयोग एक ही है कि उतने समय स्वास्थ्य संवर्धन, ज्ञान के विस्तार और व्यक्तित्व को हर दृष्टि से विकसित करने में लगाता रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है, जब कोई किसी को अपनी मजबूरी के लिए उसका शोषण न करे और उस समय को पूरी ईमानदारी के साथ सर्वतोमुखी प्रगति का उपहार देने के लिए लगाता रहे। यह ध्यान रहे कि मेरी तुलना में साथी किसी भी प्रकार अपंग, असमर्थ, पिछड़ी स्थिति में न रहने पाये।

इसके लिए सर्वप्रथम कामुकता पर जितना अधिक अंकुश लगाया जा सकना संभव हो, लगाना चाहिए। स्वास्थ्य संवर्धन इसके बिना नहीं हो सकता। ज्ञान वृद्धि के लिए आवश्यक है कि एकान्त वाला समय साथी को अधिक शिक्षित बनाने में लगाया जाय। स्कूल भेजने, ट्यूशन लगाने जैसी व्यवस्था बन पड़े, तो उसमें किसी प्रकार की कमी न रहने दी जाय। साथी का सच्चा उपकार इसमें है कि उसे हर प्रकार से हर क्षेत्र में पोषण दिया जाय, शोषण कोई उपकार नहीं है। काम का बोझ लाद देना, जिम्मेदारियों को बोझ बढ़ा देना जैसे कार्यों को न तो उपकार की श्रेणी में गिना जा सकता है और न सहयोग की ही। हैरानी बढ़ाना, सामर्थ्य को क्षीण करना ऐसा कार्य नहीं है, जिसकी प्रशंसा की जा सके और जिसे मित्रता की श्रेणी में गिना जा सके।

विवाह होने का अर्थ व्यभिचार की, बलात्कार की कानूनी छूट मिल जाना नहीं है, वरन् यह है कि अपनी अपेक्षा साथी को अधिक सुयोग्य, समर्थ और स्वावलम्बी बनाया जाय। बच्चे उत्पन्न करने में स्त्री की क्षति पुरुष से कहीं अधिक होती है। पिता तो अक्सर बच्चों का आर्थिक भार ही उठाता है, पर माता तो अपना रक्त-माँस, लगातार नौ महीने निचोड़ते रहकर बच्चे का शरीर बनाती है, जनते समय इतनी दुरूह प्रसव पीड़ा सहन करती है, जिसमें कई बार तो उसके प्राणों पर भी आ बनती है। स्तन पान कराते रहने से लाल रक्त सफेद दूध के रूप में ही निचुड़ता है। अबोध स्थिति में शिशु की साज-संभाल करना भी उसी का काम है। हारी-बीमारी हो जाने पर अधिकांश समय सेवा में उसी को लगाना पड़ता है। प्रसव के उपरान्त प्रायः नवयुवतियों को भी बुढ़ापा आ घेरता है और कई प्रकार के रोग भी पीछे पड़ जाते हैं। इतने पर भी बालक की जिम्मेदारी माता की ही रही, पिता की नहीं। वह तो केवल वंश चलने, पिण्डदान मिलने आदि के झूठे सपने देखता रहता है। यदि बालक सुयोग्य न बन सका, तो निन्दा का भागी भी अपेक्षाकृत पिता को ही अधिक बनना पड़ता है।

सन्तानोत्पादन के उपरान्त जननी की प्रायः सभी प्रकार की प्रगति रुक जाती है। यह व्यवधान खड़ा करने में प्रायः पिता ही अधिक बाधक होता है। जहाँ तक कामुकता का संबंध है, लड़कियों को उठती उम्र में ही कुछ फुरहरी आती है, आयु बढ़ने के साथ तो वह अनायास ही चली जाती है। पुरुष ही है, जो इस प्रकार का आग्रह आये दिन करता रहता है।

अपने समय का हर समझदार समझता है कि जन्म दर जिस हिसाब से बढ़ रही है, उसे देखते हुए समाज का सर्वतोमुखी अहित इसके कारण होता जाता है। समस्यायें जितनी सुलझाने में नहीं आतीं, उससे ज्यादा नये प्रजनन के कारण निरन्तर बढ़ती ही जाती हैं। विशेषज्ञों का मत है कि जनसंख्या विस्फोट संसार का इतना बड़ा संकट है कि उसके कारण अगले दिनों महाविनाश का संकट खड़ा हो सकता है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी कमजोर होते जाने के कारण एक दिन ऐसा आ सकता है कि स्वस्थ और समर्थ सन्तानें ढूँढ़ पाना मुश्किल हो जायेगा। स्त्रियाँ तो निरन्तर हीन होती जाती हैं। इन सब विपत्तियों का कारण सन्तान की संख्या बढ़ते जाना है। विशेषतया यह मुसीबत तब और भी अधिक बढ़ जाती है, जब लड़कियों को किशोरावस्था आते-आते घर-गृहस्थी अपने सिर पर लादनी पड़ती है और स्वास्थ्य की बलि उसी अनाचार की बलिवेदी पर चढ़ानी पड़ती है।

इन दिनों संसार भर के मूर्धन्य एक ही मत पर सहमति व्यक्त कर रहे हैं कि स्त्रियों की विवाह-आयु पच्चीस वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए। इसके बाद उन्हें बहुमुखी अनुभव सम्पादन के लिए, समाज सेवा का परमार्थ करने के लिए, व्यक्तित्व के विकसित होने के लिए अवसर मिलना चाहिए। समय को देखते हुए यही औचित्यपूर्ण है और यही हितकर भी। इसके बाद ही जिनकी इच्छा हो, वे सन्तानोत्पादन जैसे कठिन मार्ग पर पैर बढ़ायें, अन्यथा मनुष्य जीवन इतना बहुमूल्य है कि उसे आज की विकट समस्याओं को देखते हुए लोकमंगल से सम्बन्धित प्रयोजनों में ही लगाना चाहिए। यौनाचार को विशुद्ध मनोरंजन कहा जा सकता है। उससे जननी का, पिता का, समूचे समाज का और परिवार का हर दृष्टि से अहित ही अहित है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि इस दिशा में अधिक कठोर संयम बरतने का प्रचलन चल पड़े, तो निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण जो अनेकानेक विपत्तियों की भरमार होती जाती है, उस पर सहज नियंत्रण पाया जा सकता है।

सार्थक गृहस्थी केवल उन्हीं की है, जिनमें पति पत्नी की और पत्नी पति की सर्वतोमुखी प्रगति में सहायक होकर एक-दूसरे के व्यक्तित्व को अत्यधिक सुविकसित बनाने में मदद करे। जहाँ इसके विपरीत प्रचलन चल रहा है, जहाँ एक-दूसरे की जीवनी-शक्ति को बर्बाद करने में लगे हों, हर दृष्टि से हानि ही हानि पहुँचा रहे हों, उन्हें यह कहने का अधिकार नहीं है कि वे मित्रता शब्द के साथ जुड़े हुए कर्तव्यों का पालन कर रहे हैं। दोहन, शोषण, पतन, पराभव के निमित्त ही जो प्रवृत्त हैं, उन्हें यह कहने का अधिकार कैसे मिल सकता है कि वे सच्चे अर्थों में मित्र हैं। इस बहाने-शत्रुता की अनीति ही बरत रहे हैं।

इन दिनों तो ऐसे उपाय भी निकल आये हैं, जिनके सहारे यौनाचार पर प्रतिबन्ध न चलने पर भी सन्तानोत्पादन से बचा जा सकता है। जिनके लिए पूर्ण रूपेण संयम साधना संभव न हो, वह ऐसे उपायों का सहारा ले सकते है, किन्तु जिन्हें बच्चे पालने का शौक हो, वे बेसहारों के, असमर्थों के बच्चे पालने के लिए रख सकते हैं और उन्हें सुयोग्य बनाकर परमार्थ लाभ पा सकते हैं। अनर्थ का भागी तो उन्हें बनना पड़ता है जो दूसरों के बच्चे को गोद लेकर उन पर अपना अधिकार ज़माते हैं और वंश चलने, पिण्ड दान मिलने या बुढ़ापे का सहारा बनने के दिवास्वप्न देखते हैं। यह प्रयोजन तो इन दिनों किसी के भी पूरे नहीं हो सकते।

विवाह और प्रजनन की नई समीक्षा

गृहस्थ व्यवस्था में विवाह, यौनाचार और प्रजनन को प्रमुखता मिलती रही है। यों दाम्पत्य-जीवन का वास्तविक उद्देश्य गंगा-यमुना जैसी थोड़ी अन्तर वाली धाराओं को एक में मिलाकर एक आत्म सम्पदा सम्पन्न संगम बनाना था। पर वह आदर्श व्यवहार में कम ही उतर सका।

इन दिनों विवाह की अभ्यस्त एवं पुरातन परिपाटी पर नये सिरे से विश्लेषण आरम्भ हुआ है। उसकी परिणतियों पर नये दृष्टिकोण से सोचा जा रहा है। इस सन्दर्भ में सबसे अधिक प्रमुखता प्रजनन सम्बन्धी विवाह को मिली है। कभी सन्तानोत्पादन ही दाम्पत्य जीवन की सफलता का चिन्ह माना जाता था। पर अब बात वैसी नहीं रही। सोचा जा रहा है कि प्रजननजन्य असुविधाओं और समस्याओं के रहते विवाह की उपयोगिता भी है कि नहीं।

प्रजनन की उपयोगिता पर प्रश्न चिन्ह पिछले दिनों अर्थशास्त्रियों तथा समाजशास्त्रियों ने लगाया है। इस सम्बन्ध में शुरूआत हुए थोड़ा ही समय हुआ है, पर बात कहाँ से कहाँ जा पहुँची।

माल्थस का ग्रन्थ 'ऐसे आन दि प्रिंसिपल ऑफ पापुलेशन' सन् १७८९ में प्रकाशित हुआ। उसने संसार भर के विचारशील वर्ग को झकझोर कर रख दिया। ग्रन्थ का प्रतिपादन विषय था बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण, गरीबी समेत अनेकानेक समस्याओं का उद्भव। उनने तथ्य, प्रमाण और आँकड़े प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि नियन्त्रण न करने पर जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ेगी कि उसके लिए खाद्य, शिक्षा, वाहन, चिकित्सा जैसे आरम्भिक साधन तक न जुटाये जा सकेंगे। इसलिए जैसे भी हो समय रहते जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम की जानी चाहिए।

आरम्भ में इस प्रतिपादन का धार्मिक क्षेत्रों में विशेष रूप से विरोध हुआ। लेखक को धर्मद्रोही ठहराया गया किन्तु विचारशीलों ने उस पर गम्भीरता से ध्यान दिया और समस्या को वास्तविक बताया।

प्रतिपादन ने जोर पकड़ा तो उसके कार्यान्वयन के लिए भी कदम बढ़ा। डा० चार्ल्स ड्राईस डेल तथा चार्ल्स वाडलाफ ने मिलकर सं० १८६१ में सन्तति निग्रह का प्रचार करने एवं उसके उपाय बताने के लिए एक संस्था स्थापित की और मन्तव्य को व्यावहारिक रूप देने के लिए 'एप्रीवोमित्स बुक' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इसके लेखक थे रिचर्ड कारलाइल। उनने न केवल आर्थिक समस्याओं की अभिवृद्धि का कारण अनियन्त्रित प्रजनन को बताया वरन् नारी की दुर्दशा, अस्वस्थता, पराधीनता के लिए भी इस दबाव को दोषी ठहराया है। उनका कथन है कि यह अनावश्यक भार लादकर नारी का नर द्वारा उत्पीड़न किया जा रहा है। इस पुस्तक की देखते-देखते लाखों प्रतियाँ बिक गईं। उसका प्रभाव शिक्षित नारियों पर गहरा पड़ा। उनने प्रजनन भार से अपने को बचाने के लिए असहयोग और आना-कानी का रुख अपनाना आरम्भ कर दिया।

योरोप की औद्योगिक क्रान्ति से इस आन्दोलन को और भी अधिक बल मिला। १७वीं शताब्दी में तेजी से कल-कारखाने खुले। कितने ही नये उद्योग व्यवसाय आरम्भ हुए। उनमें श्रमिकों की बढ़ी हुई आवश्यकता पूरी करने के लिए पुरुषों से काम न चला तो महिलाओं की भर्ती चल पड़ी। इससे उनमें स्वावलम्बन, स्वाभिमान और साथ ही बराबरी का दावा करने जैसा उत्साह उभरा। इस कारण भी वे प्रजनन से बचने का प्रयत्न करने लगीं। कारखाने, दफ्तर जहाँ थे वहाँ निवास की कमी पड़ती थी। बढ़ा हुआ परिवार वहाँ कैसे रहे ? बिना आजीविका कमाये खर्चीली निर्वाह व्यवस्था की संगति कैसे बैठे ? नित नये बच्चों की बाढ़ को सम्भालने वाली औरत को घर से बाहर निकलने और कुछ कमाने का अवसर कहाँ मिले ? यह सभी प्रश्न ऐसे थे, जिनने व्यक्तिगत कारणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से भी उस आर्थिक प्रतिपादन का समर्थन किया, जिसके अनुसार राष्ट्रीय अर्थ समस्या के समाधान में परिवार नियोजन की अनिवार्य आवश्यकता बताई गई थी।

विवाह में सदा से नर और नारी दोनों की सुविधा मानी जाती रही है। दो की घनिष्ठता एक नई संशक्त इकाई का सृजन करती है। स्थिर सहकारिता लाभदायक परिणाम प्रस्तुत करती है। यह सब सही होने पर भी जब विवाह के उपरान्त उन्मुक्त यौनाचार की छूट मिली और उसके फलस्वरूप बच्चों की भरमार से घनिष्ठता घटी और दरिद्रता-असुविधा बढ़ी तो नये सिरे से विचार आरम्भ हुआ कि कहीं विवाह अवांछनीय तो नहीं है। विशेषतया तब जबकि नारी को बहुप्रजनन के भार से लादकर एक प्रकार से जर्जर, बाधित और अपंग बना दिया जाता है। इस विचार ने पुरुषों की अपेक्षा नारी को अधिक आन्दोलित किया। फलतः वे स्वतन्त्र व्यक्तित्व की रक्षा के लिए बिना विवाह के रहना अधिक पसन्द करने लगीं। नारी स्वतन्त्रता आन्दोलन का आरम्भ तो उनके घटे हुए दर्जे के विरोध में असम्भव हुआ था। प्रथम चरण में इतना ही कहा गया था कि उन्हें भी मनुष्य समझा जाय और नर की तरह उन्हें भी मानवी अधिकारों से लाभान्वित होने दिया जाय। वह माँग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़ गई है। उसमें नारी को अविवाहित जीवन पसन्द पड़ता है। विवाह हो तो वह ऐसा हो जिसमें स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े और प्रजनन की कष्टसाध्य अग्नि परीक्षा में होकर बार-बार न गुजरना पड़े।

इस सन्दर्भ में कुछ पुस्तकें बहुत ही उत्तेजनात्मक वातावरण उत्पन्न करती हैं। वेटी फ्रिडेन की पुस्तक 'फेमिमिनिस्टिक' की योरोप और अमेरिका में बड़ी धूम रही। वह सन् १९६३ में छपी थी। उसमें विवाह को वासना तृप्ति का कानूनी रूप बताकर अनावश्यक ही नहीं अनैतिक भी ठहराया गया था। विवाह को कुआँ बताया गया था और उसमें न गिरने की सलाह दी गई थी।

नारी स्वतन्त्रता की माँग ने उन्हें कई क्षेत्रों में समानाधिकार प्राप्त करने का आँशिक अवसर प्रदान किया है। अमेरिका के श्रमिकों में ४० प्रतिशत महिलाएँ हैं, पर वे सभी कम महत्त्व के और कम वेतन के कामों पर नियुक्त हैं। महत्त्वपूर्ण पदों पर तो उनमें से मात्र ५ प्रतिशत को ही स्थान मिला है। इससे अच्छी स्थिति रूस की है, जिसमें श्रमजीवी महिलाओं में से ७० प्रतिशत को डॉक्टर-इन्जीनियर जैसे बड़े महत्त्वपूर्ण पद मिले हुए हैं।

यों सामान्यतया पुरुष ही हर क्षेत्र में समर्थ समझा जाता है पर नारी में भी अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो पुरुष की तुलना में उसे वरिष्ठ सिद्ध करती हैं। प्रजनन के लिए जिन क्रोमोजोन्स की अनिवार्य आवश्यकता है वे मात्र नारी में ही होती हैं। नारी का हृदय पुरुष की तुलना में अधिक बलवान होता है। दीर्घजीवन की दौड़ में भी वे अनेक असुविधाओं के रहते हुए भी आगे रहती हैं। जीवनी शक्ति की वे धनी होती हैं। महिलाएँ अधिक सम्वेदनशील, सहनशील और कल्पनाशील होती हैं। अध्ययन में वे अग्रिणी रहती और अच्छे नम्बर प्राप्त करती हैं। ये सभी तथ्य बताते हैं कि अपने को श्रेष्ठ समझने वाला पुरुष नारी के सामने कितना बौना है।

नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन आन सोशलाजिकल रिसर्च के फैलो डा० जान्स बर्नार्ड के अनुसार विवाह करके पुरुष नारी की अपेक्षा अधिक नफे में रहता है। इस आधार पर उसे जो सुविधाएँ मिलती हैं इसके कारण वह अविवाहितों की तुलना में अधिक दिन जीता और अधिक स्वस्थ रहता है। उसे बच्चे भी पैदा नहीं करने पड़ते हैं। चौकी-दारिन रसोईदारिन, धाय जैसे अनेकों कार्य वह बीबी से रोटी-कपड़े की कीमत पर वसूल करता है। उनका कथन यह भी है कि अविवाहित नारी की तुलना में विवाहित नारी शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अधिक दुर्बल और दुःखी रहती है।

जार्ज बर्नार्डशा तक ने प्रचलित विवाहों पर कटु व्यंग्य करते हुए उन्हें कानूनसम्मत व्यभिचार की संज्ञा दी थी। क्योंकि उसके पीछे आदर्शों का बुरी तरह अभाव पाया जाता है।

इस शताब्दी के उपरोक्त विचार मन्थन ने कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न की हैं। अमेरिका में नारी मुक्ति आन्दोलन विद्वेष भरा उठ खड़ा हुआ है। उसमें पुरुष से पृथक् रहने और अपनी स्वतन्त्रता तथा प्रतिभा को अपने बलबूते विकसित करने का परामर्श है। विवाह भी वे समलिंगी करने को सुविधाजनक कहती हैं।

इसके विपरीत चीन से दूसरे ही तरह के दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँ लिवास-पोशाक, काम धन्धे, जिम्मेदारी-व्यवस्था आदि में नर और नारी के बीच का भेद समाप्त कर दिया गया है। उत्तेजक वेषभूषा और शृंगारिकता का नाम भी नहीं दीखता। दोनों वर्ग कन्धे से कन्धा मिलाकर निर्धारित कार्यों में जुटे रहते हैं। परिवार नहीं बढ़ाते वरन् हँसते-हँसते दिन गुजारने की सादगी और तत्परता से भरी जिन्दगी गुजारते हैं।

अपने समय की अनेकानेक नव उद्भूत समस्याओं में से एक यह भी है कि नर और नारी के बीच जो खाई चलती आ रही है, पारस्परिक निर्भरता का वर्तमान परिपेक्ष में निर्वाह कैसे हो ? इस सन्दर्भ में सर्वाधिक विचारणीय है, विवाह को न करा जाय अथवा उसे किन अनुबन्धों के साथ स्वीकारा जाय।

उभरती हुई चेतना ने सुझाया है कि विवाह सहकारिता का एक सुविधाजनक समन्वय रहे। दो मित्र मिल-जुलकर जीवनचर्या के विभाजित उपक्रमों में अपनी-अपनी भूमिका निवाहें पर दोनों में से कोई किसी पर हावी न हो। स्वतन्त्रता के साथ भी आत्मीयता निभ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती है। अलग व्यक्तित्व बनाये रहकर भी मित्रता बनाये रहने और मिल-जुलकर काम करने में कोई कठिनाई नहीं होती। इसे नये प्रयोग और अनुभवों से सीखा जा सकता है।

इसके साथ ही प्रजनन की समस्या पर फिर भी विचार करना शेष रह जाता है। उससे जितना बचा जाय उतना ही उत्तम है। न्यूनतम सन्तति रखने से ही स्वास्थ्य रक्षा, सुविधा एवं अर्थ व्यवस्था बनी रह सकती है। बालकों के विकास की दृष्टि से भी यह आवश्यकता है कि जितनों को सही रीति से समुन्नत बनाया जा सकता है। जितने को दुलार और संस्कार दिया जा सकता है उससे अधिक एक इंच भी आगे न बढ़ा जाय। सुसंस्कारिता सम्बर्धन तथा आत्मबल बढ़ाने की दृष्टि से यही उचित है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

सन्तानोत्पादन को निरुत्साहित किया जाय

एक आत्मानुभवी विद्वान का कथन है "सन्तान से मनुष्य के ऊँचे उद्देश्य की पूर्ति में बड़ी बाधा पड़ती है। पिता तो अधिक कमाने के कुचक्र में स्वास्थ्य, यौवन, अपना आनन्द, मनोरंजन और ज्ञान का विकास छोड़ देता है। माता अपने आप आधी भूखी-प्यासी रहकर शरीर का बूँद-बूँद शिशु को रस पिला देती है। दोनों शोषण किये जाते हैं। किसी सामाजिक अथवा उच्च उद्देश्य के लिये बेकार हो जाते हैं। जिन शिशुओं के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था ठीक प्रकार से नहीं हो पाती, उन्हें जन्म देना अपराध है।"

इसी प्रकार एक विश्व-विख्यात वैज्ञानिक श्री हैनरी कैविडिश ने एक स्थान पर कहा है—"विवाह करने का अर्थ है—सन्तान। एक बार सन्तान के कुचक्र में फँसकर मनुष्य का स्वतन्त्र विकास रुक जाता है। उन्हीं के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा, व्याह-शादी तथा अन्य सैकड़ों प्रकार की जिम्मेदारियों में मरकर खत्म हो जाना पड़ता है। बिगड़ी हुई सन्तान प्रत्यक्ष नरकतुल्य होती है। यथासम्भव शादी-व्याह के चक्र में न फँसकर स्वतन्त्र रूप से शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या साहित्यिक सेवा करनी चाहिए। सन्तान का उत्तरदायित्व एक कठिन समस्या के समान मनुष्य की उन्नति रोक देने वाली बाधा है। एक बार विवाह करने या सन्तान को जन्म दे देने पर मनुष्य अधिक महत्त्वपूर्ण बातें छोड़ कर घर-गृहस्थ के कुटिल झंझटों में सदा सर्वदा के लिये फँस जाता है।

इन दोनों उद्धरणों में विवाह तथा सन्तान को झंझट बतलाते हुए उनका निषेध किया गया है। यह गलत नहीं कि विवाह और फिर उसके बाद सन्तान की जिम्मेदारी ऐसी बात है जो मनुष्य के विकास में बाधक होती ही है और यदि उस दायित्व को ठीक प्रकार से न निवाहा जाये तो वह पूरी जिन्दगी को नरकतुल्य बना देता है। मनुष्य का लोक भी बिगड़ता है और परलोक भी। तथापि मनुष्य की प्रकृति को देखते हुए विवाह तथा सन्तान को मानव-जीवन से पूर्णतया बहिष्कृत नहीं किया जा सकता।

हाँ बुरा है—भोग-विलास के दृष्टिकोण से विवाह करना और उसके बाद बिना किसी नीति-नियम अथवा जरूरत के सन्तान-पर-सन्तान पैदा करते जाना। विवाह की परिभाषा करते हुए एक विद्वान ने लिखा है—"विवाह तो एक प्रकार की मैत्री है। एक-से विचार, स्वभाव, आदर्श दृष्टिकोण और शिक्षा-दीक्षा वाले नर-नारी इस मैत्री के लिये ही परस्पर विवाहसूत्र में बँधते हैं। एक-सी रुचि होने के कारण उनकी जीवनरूपी यात्रा आनन्द से कट जाती है। इसी प्रकार सन्तानोत्पत्ति के विषय में कहा जा सकता है कि सन्तान कामोपभोग का परिणाम नहीं होना चाहिए। उसकी उत्पत्ति यथाविधि धर्म-कर्तव्य समझकर ही करनी चाहिए। केवल एक या दो सन्तान ही संसार का क्रम चलाते रहने के लिये पर्याप्त हैं। इसके लिये एक निकम्मी सेना बनाकर खड़ी कर देना कतई उचित नहीं है।

केवल एक सत्सन्तान सौ अयोग्य सन्तानों से बढ़कर है। जो समाज तथा राष्ट्र को एक सुयोग्य नागरिक भेंट करने के लिये सन्तानोत्पत्ति नियमों सहित धर्मपूर्वक किया करता है, वह सन्तान के पुण्य का भागी बनता है, नहीं तो अनियमित अथवा अधर्मपूर्वक, कामक्रीड़ा के फलस्वरूप उत्पन्न सन्तान तो यों भी नरकतुल्य होती है। अयोग्यता पूर्वक उत्पन्न की हुई सन्तान योग्य नहीं हो सकती। यह प्रकृति का एक नियम है। आज मनुष्य का जीवन बड़ा अस्त-व्यस्त तथा अप्राकृतिक हो गया है, ऐसी स्थिति में वांछानुरूप सन्तान पैदा कर सकना कठिन है। कुछ नहीं कहा जा सकता कि कैसी सन्तान पैदा हो जाय। अनियम तथा अप्राकृतिक रहन-सहन के कारण स्वस्थ दम्पत्ति की विकृत तथा रोगी सन्तान हो सकती है। पुत्रों में अपराधवृत्ति के संस्कार हो सकते हैं। अपराधी वृत्ति का बेटा बाप को जीवन भर सताता रहता है। किसी को मार-पीट देना, लड़कियों से छेडखानी करना, समाज में अनुशासनहीनता फैलाना, स्कूल-कालिज में गुण्डागर्दी करना। घर की पूँजी नष्ट करना, शराबखोरी, सिनेमा, सिगरेट, पान तथा मटरगस्ती करना, अपराधी वृत्ति के लड़कों का सहज स्वभाव हो जाता है। यदि किसी के एक दुष्ट अपराधी या मन्द बुद्धि पुत्र जन्म लेले तो उसकी प्रत्यक्ष मृत्यु हो जाती है। उसकी परेशानियों का वारपार नहीं रहता। ऐसी सन्तान से क्या तो परिवार या माता-पिता का हित हो सकता है और क्या समाज को लाभ ? बहुत-सी सन्तानें होने से उनमें से एक-दो का ऐसा निकल जाना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कोई बड़ी बात नहीं है। ऐसी सन्तानों से दु:खी न जाने कितने माता-पिता रोते-कराहते ईश्वर से ये मनाते देखे जा सकते हैं—'हे ईश्वर अच्छा होता कि तू इस प्रकार की विकृत सन्तान देने के स्थान पर नि:सन्तान ही रखता। कुलक्षणी सन्तान ऐसा शत्रु होता है, जो न तो मारा जा सकता है और न छोड़ा ही जा सकता है। सामान्य एवं साधारण मनुष्यों की तो बात छोड़ दीजिए। केवल एक बेटे हीरालाल गाँधी के बिगड़ जाने से महात्मा गाँधी जैसे उच्च मनोभूमि तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति जीवन भर परेशान रहे। हीरालाल को शराब तथा भक्ष्याभक्ष्य का कोई विचार नहीं था और उसने धर्म तक परिवर्तित कर डाला था। उसकी इन सब हरकतों से गाँधीजी जीवन भर कुढ़ते रहे थे और आखिर उन्होंने उसे अपना गलत अंग कहकर सम्बन्ध विच्छेद ही कर लिया था। औरंगजेब जैसे नालायक पुत्र ने पिता शाहजहाँ को बुढ़ापे में कैदखाने में डलवा कर भूखा-प्यासा रखकर मार डाला था। विवाह अथवा सन्तान करना अनुचित नहीं है। अनुचित है उनकी मर्यादा का उल्लंघन करना।

बहुत-से लोगों का कहना है कि विवाह के बाद ब्रह्मचर्य का पालन सम्भव नहीं। पति-पत्नी के एक साथ रहने से संयम कठिन ही नहीं असम्भव-सा ही रहता है। किन्तु यह कथन उन्हीं लोगों का होता है, जिनकी मनोभूमि विकृत, इन्द्रियाँ अनियन्त्रित तथा विवेक शिथिल हो जाता है अन्यथा विवाह के बाद तो ब्रह्मचर्य अधिक सरल हो जाता है। इस पर महात्मा गाँधी का यह कथन निश्चय ही शिक्षाप्रद तथा प्रकाश प्रदान करने वाला है। वे लिखते हैं—

"विवाहित व्यक्ति को भोग-विलास की क्षणभंगुरता, निस्सारता तथा उससे होने वाली सैकड़ों बुराइयों का पता चल जाता है। उसे यह ज्ञान रहता है कि भोग-विलास, कामोपभोग व सन्तानोत्पादन से शारीरिक कमजोरी, असंख्य रोगों और मृत्यु के अलावा कुछ भी हाथ नहीं लगता। उसे काम-सुख की गन्दगी का पता चल जाता है। विलासिता और काम-सुख मृत्यु को पास खींचकर लाते हैं। गुप्त इन्द्रियों तथा मूत्र सम्बन्धी रोगों से ग्रसित हो मनुष्य सड़-सड़ कर मरते हैं। काम-वासना में सुख ढूँढ़ने वाला निपट मूर्ख और अज्ञानी है। वह समय से पूर्व अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है। चालीस-पैंतालीस की अल्पायु ही होते हैं, काम-वासना में सुख ढूँढ़ना महामूर्खता है। वीर्यनाश अवयवों को शिथिल और रोगी बनाकर प्रत्यक्ष मृत्यु को निमन्त्रण देता है। नारियों के गर्भाशय सम्बन्धी गुप्त रोग पैदा कर अकाल मृत्यु लाता है।"

ब्रह्मचर्य का नाश जहाँ मृत्यु लाता है वहाँ सन्तानों की वृद्धि के साथ उनमें विकृति भी भर देता है। वासना से उत्पन्न सन्तान स्वस्थ अथवा सुसंस्कारों वाली होगी, यह सम्भव नहीं। इसलिए विवाहित जीवन में तो काम-वासनाओं से और भी बचने की जरूरत है। उसमें मनुष्य की जिम्मेदारियाँ बढ़ी-चढ़ी रहती हैं। अधिक-से-अधिक परिश्रम तथा पुरुषार्थ करना पड़ता है। शक्ति का आधार वीर्यसंयम ही है। बहुत-सी सन्तानें पैदा करके अकाल में अपनी शक्तियों को क्षीण कर लेने के बाद मनुष्य किसी योग्य नहीं रहता। न तो वह हँसी-खुशी से जी पाता है और न इतना परिश्रम ही कर पाता है कि जिसका उपार्जन उस बढ़े हुए परिवार के लिये पर्याप्त हो सके। सन्तानें बिना पढ़ी तथा बिना विवाह के भी रह जाती हैं, तब वे माता-पिता को तो कष्ट देती ही हैं, समाज की नैतिकता तथा शांति भी भंग किया करती हैं।

संतानोत्पादन की वज्रमूर्खता

कभी मनुष्य जीवन बहुत सस्ता था। पेट भरने को अनाज और तन ढकने को थोड़ा सा कपड़ा और फूँस के झोंपड़े, यह सब हाथ की मेहनत से ही उपलब्ध हो जाते थे। खेती ढेरों थी, जंगल फैले पड़े थे। तब कृषि और पशुपालन के लिये यह सुविधाजनक होता था कि परिवार बड़ा हो अधिक बच्चे हों। तब जनसंख्या ही सम्पदा थी। जिसके कुटुम्ब में अधिक आदमी थे वह उतना ही समर्थ और सम्पन्न माना जाता था। श्रम ही तब वैभव था, घर के श्रमिक हों तो खर्च थोड़ा पड़ता था और उपार्जन अधिक होता था। मर्द-औरतें, लड़के-लड़की सभी श्रम करते थे।

आज की परिस्थितियाँ सर्वथा भिन्न हैं, न खेती है, न पशुपालन, जो है वह बाहर की मजदूरी पर बहुत महँगा पड़ता है, शिक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, विनोद, वाहन, आदि के खर्च अब बहुत बढ़ गये हैं जो पहले नहीं के बराबर थे। ऐसी दशा में सन्तानोत्पादन का धन्धा अतीव महँगा और कष्टकर हो गया है। महँगा इस दृष्टि से कि जो आजीविका सामान्य रीति से कमायी जाती है वह बच्चों के शिक्षण और स्वावलम्बन की दृष्टि से अत्यधिक महँगी है। फिर उनके विवाह-शादी से निपटना हँसी-खेल नहीं है। जिनके अधिक बच्चे हैं वह उतना ही अधिक चिन्तित, दुखी, उद्विग्न पाया जाता है। उनके लिये जो करना पड़ता है वह पड़ौसियों के स्तर का होना चाहिये। कमी रहने पर पत्नी, सम्बन्धी-मित्र और सन्तान सभी के ताने सुनने पड़ते हैं। कुछ दिन पूर्व ऐसा कुछ नहीं था बच्चे बड़ों का कहना मानते थे। इसलिए बुजुर्ग गौरव भी अनुभव करते थे और इच्छानुरूप चलाकर नफे में भी रहते थे। अब पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के दृष्टिकोण मे भी भारी अन्तर आ गया है। लड़का कमाने योग्य होते ही अपनी बीबी को लेकर अलग हो जाता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बाप के मरने के पहले ही घर की सम्पदा में अपना हिस्सा माँगता है। पढ़ाई में, शादी में अन्धाधुन्ध खर्च करने और फिर उत्तराधिकार की पूँजी देने के बाद घर खोखला हो जाता है। जो आशा की गई थी कि लड़के के बड़े होने पर उसकी आमदनी से परिवार का पोषण होगा और लागत की पूँजी ब्याज समेत वापस लौट आयेगी, वह सपने निरर्थक सिद्ध होते हैं और घर के अन्य लोगों के बीच एक नये प्रकार का कलह उत्पन्न होता है। यह पैसे का युग है। गृहपति सोचता है कि सन्तान उसके लिये हर दृष्टि से महँगी पड़ी। शिष्टाचार निर्वाह के स्थान पर आये दिन अपमान सहने पड़ते हैं।

पिछले समय में स्त्रियाँ चक्की पीसने, दही मथने से लेकर कृषि सम्बन्धी काम करने के कारण तन्दुरुस्त भी रहती थीं और अनायास ही व्यायाम होते रहने से प्रसव पीड़ा भी नहीं सहती थी। अब दुबली-पतली बधुएँ बेचारी काम धन्धा क्या करें अपना शरीर भी सम्हाले रहना भारी पड़ता है। ऐसी दशा में पुन: बच्चे उत्पन्न करने पड़ें तो समझना चाहिये कि आधी जिन्दगी कट गई। दो बच्चे होने के बाद बहू बेचारी बुढ़िया हो जाती है, घर के काम धन्धे में हाथ बँटाने की अपेक्षा सास, ननद से करती है कि वे उन पर कोई बजन न पड़ने दें। पति की नादानी उन पर इस जुल्म को और भी बढ़ा देती है। दुर्बल बधुओं को बच्चे जल्दी-जल्दी होने लगें तो उनके प्रसव आपरेशन से होते हैं, स्वयं बीमार रहती हैं, बच्चे बीमार रहते हैं और स्वभाव चिड़चिड़ा होने से आये दिन चैं-चैं होती है। इन परिस्थितियों में कितनों के लिये ही प्रसव प्राणघातक होता है।

विवाह से पूर्व वर-वधू जो रंग-बिरंगे सपने देखते हैं वे कोसों दूर रह जाते हैं। विलासिता की रंगरेलियाँ किसे सूझें जब सब ओर से मुसीबतें घिर कर इकट्ठी होती चली जा रही हों, ऐसी दशा में लड़के दाम्पत्य जीवन के साथ जो जिम्मेदारियाँ आती हैं, उन्हें निवाहने की अपेक्षा कतराने और इधर-उधर झाँकने लगते हैं। यहाँ से कलह की एक और शुरूआत होती है।

पुराने जमाने की स्थिति से आज की तुलना नही हो सकती। कभी अधिक संतान का होना वरदान और प्रसन्नता का कारण रहा होगा। आज की स्थिति ठीक उल्टी है अब वह अभिशाप और दुर्भाग्य का पर्याय अधिक है। जब तक संतान न हो तब तक लगता है घर में इन्द्र कुबेर जन्म लेने वाले हैं पर कुछ ही दिन में जब उनकी जिम्मेदारियाँ वहन करनी पड़ती हैं, तो प्रतीत होता है कि झूठे सपने देखे गये थे। सिर पर हजार मुसीबतें आ धमकने का नाम ही संतानोत्पादन है। पिता का अर्थ संतुलन चौपट होता है। माँ के स्वास्थ्य का सत्यानाश होता है। संतान के नखरे आसमान पर चढ़े रहते हैं। समाज पर असमय बोझ लदता है और देश जाति की बात सोचने वाले इन उत्पादनकर्ताओं को हजारों गालियाँ नित्य देते हैं। कारण कि देश की व्यवस्था का इतना सत्यानाश होता है जितना कि किसी दुर्दान्त शत्रु के आक्रमण से भी नहीं होता। हर साल नये स्कूल खुलते हैं नये अस्पताल बनते, नये कारखाने खड़े होते हैं पर जितना इनका लाभ मिलना चाहिये, उससे दूनी-चौगुनी आवश्यकता बढ़ जाती है। फलत: कमी आगे-आगे बढ़ती जाती है और प्रगति कोसों पीछे छूट जाती है। दोष संस्कार को, भाग्य को, भगवान को किसी को भी दिया जा सकता है। पर वास्तविकता यह है कि बढ़े हुये सन्तानोत्पादन का दैत्य ऐसा है जो प्रगति की सभी योजनाओं को चट कर जाता है और अभाव पहले से भी अधिक दीखने लगता है। शिक्षा का बजट तेजी से बढ़ता जाता है पर अशिक्षा का अनुपात पहले की अपेक्षा बढ़ ही जाता है। गति यही रही तो हम शिक्षा की, चिकित्सा की, बेकारी की मूलभूत समस्याओं को हजार वर्ष में भी हल न कर सकेंगे। परिवारों का स्वरूप बद से बदतर होता जायगा और व्यक्ति चिन्ताओं, उद्विग्नताओं से घिर कर अनिद्रा, रक्तचाप, मधुमेह, तनाव, आदि रोगों से ग्रसित रहकर अकाल में ही काल कवलित होता जायगा। इन मुसीबतों से घबराकर क्षणिक राहत पाने के लिये 'लोग नशों का आश्रय लेते हैं पर वे उल्टे यमदूत बन कर सर्वनाश में जो कमी रह जाती है उसे पूरी करते रहते हैं।' इन परिस्थितियों को देखते हुये जो समझदार हैं वे सन्तानोत्पादन पर अंकुश लगाते हैं। वे अपना दारिद्रय, स्त्री का शरीर, बच्चे का भविष्य नष्ट होने से बड़ी हद तक बचा लेते हैं।

वह समय चला गया जब लड़का होने से वंश चलने, पिण्ड मिलने जैसी बातें सोची जाती थीं। कोई वज्र मूर्ख ही ऐसी ओंधी बातें सोचता होगा। वंश चलने और सद्गति होने की बात अपने सत्कर्मों पर अवलम्बित है। कोई बेटा अपने पूर्वजों को अपने कन्धे पर लादकर स्वर्ग नहीं भेज सका। यह व्यर्थ की बात अब लोगों के सिर से छूटती जाती है। कहीं बची भी हैं तो उनका अन्त होने में अब देर नहीं। शरीर पर गुदना-गुदाना कभी फैशन रहा होगा। पर अब फूहड़पन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ठीक इसी तरह सन्तानोत्पादन पर आज जो खुशियाँ मनायी जाती हैं, अगले दिनों उसे मातम जैसा दुर्भाग्य माना जाने लगे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का होना उत्तम है क्योंकि वे सारी जिन्दगी त्रास नहीं देतीं, विवाह के बाद अपने घर चली जाती हैं। दहेज की फिजूलखर्ची का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झंझट तब तक है जब तक लोग अपनी ही जाति में विवाह करने की बात सोचते हैं, यह मूढ़ मति भी जल्दी ही समाप्त होने जा रही है। अमीरों के घर लड़की ब्याहने से-वह सुखी रहती हैं यह सोचा जाना भी असंगत है। लड़कियों को जला देने, नयी दुलहन से नया दहेज वसूल करने जैसी खुराफातें अमीर घरों में ही होती हैं। लड़के लड़की मिल कर काम करें तो मध्यम श्रेणी के लोग भी अमीरों से कहीं अधिक सुखी रहते हैं। यही बात अधिक पढ़े लड़कों के सम्बन्ध में भी है। उन्हें अफसरी मिलती नहीं, चपरासी बनने में नाक कटती है ऐसी दशा में ससुराल वालों का खून पीने के लिये पत्नी को त्रास देते हैं। ऐसे अमीरों अधिक पढ़ों में जितने खब्ती, जितने दुर्व्यसनी पाये जाते हैं उन्हें देखते हुये लड़कियाँ उनके पल्ले बाँध कर त्रास ही पाती हैं। यदि जाति-पाँति के कुचक्र से बचकर अधिक अमीर अधिक पढ़ा लड़का विवाह के लिये न ढूँढ़ा जाय तो पुत्र की अपेक्षा कन्या का जन्म, कहीं अधिक सौभाग्य सूचक रहेगा।

अन्धाधुन्ध प्रजनन हर दृष्टि से अदूरदर्शितापूर्ण

ब्रह्मचर्य के अधिकाधिक पालन और सन्तान संख्या के नियमन को भारतीय धर्म और संस्कृति में सदा से महत्त्व दिया जाता रहा है। बहुसंख्यक संतान उत्पन्न करने वाले सदा विपत्ति में फँसते रहे हैं। घर में नये मेहमान आमन्त्रित करने से पूर्व यह देखना ही चाहिए कि उनके स्वागत-सत्कार की उपयुक्त सामग्री पास में है या नहीं। जिन महिलाओं के शरीर में अपनी जीवन यात्रा ढोने से बचा हुआ अतिरिक्त रक्त-माँस नहीं, वे अपने ऊपर जीवन संकट ओढ़ कर ही प्रजनन का जोखिम भरा दुस्साहस कर सकती हैं। बच्चे आखिर माता का ही रस-रक्त तो दूध के रूप में पीते हैं। यदि वह पदार्थ शरीर में फालतू नहीं है तो संतान का शौक पूरा करना अपने ऊपर प्राणघातक विपत्ति मोल लेना है।

कई व्यक्ति अपनी पत्नियों के रोगी दुर्बल होते हुए भी संतान के लिए अति उत्साह दिखाते हैं। वे एक प्रकार से किसी काल्पनिक सुख के लिए पत्नी के प्राणघाती हत्यारे ही कहे जायेंगे। शरीरशास्त्रियों के अनुसार प्रसव वेदना का कष्टघाव और रक्त प्रवाह उतना भयंकर होता है जितना दस बार छुरे घोंपने का घातक आक्रमण। इस विपत्ति से जूझते हुए प्रायः पन्द्रह प्रतिशत महिलाएँ अपनी जान प्रसूति काल में ही गँवा देती हैं। संतान की कल्पनात्मक हविस पूरी करने के लिए जिन्होंने अपनी पत्नी को इस वेदना में धकेलने की ठान ठानी हो उन्हें यह नहीं कहना चाहिए कि पत्नी प्रेम भी उनकी दृष्टि में कोई चीज है। उसके जीवन-मरण से भी उनका कोई सहृदयता पूर्ण सम्बन्ध है।

अधिक प्रजनन के पक्ष में कई बार ऐसी लचर दलीलें पेश की जाती हैं जो एक बार तो सारगर्भित भी प्रतीत होती हैं पर जब गहरी दृष्टि से देखते हैं तो प्रतीत होता है कि उनमें भावी परिस्थितियों की कल्पना कर सकने की असमर्थता ही झाँकती दिखाई पड़ती है।

यह कहा जाता है कि पिछड़े हुए लोग जनसंख्या की वृद्धि अधिक करते हैं। उन्हें नियन्त्रण की बात समझ नहीं आती, समझदार लोग ही इस प्रकार का संयम करते हैं। फलतः अच्छे लोगों की सन्तानें घटती जायेंगी और पिछड़े लोग बढ़ जायेंगे फलस्वरूप भविष्य में उन्हीं का बहुमत हो जायगा। यह आशंका इसलिए निरर्थक है कि जो समझदार लोग समाज हित को ध्यान में रखकर सन्तानोत्पादन से हाथ खींचेंगे वे अपनी क्षमता को समाज हित में ही लगावेंगे और पिछड़े वर्ग को सुविकसित बनाने में लगेंगे ऐसी दशा में कोई पिछड़ा रहेगा ही नहीं। विद्वान, धनवान, गुणवान, प्रतिभावान वर्ग के लोग आज तो अपने और अपने बाल-बच्चों के लिए ही अपनी समस्त क्षमता खर्च करते रहते हैं जब वे संकीर्णता की परिधि से ऊपर उठ कर समाज हित की बात सोचने लगेंगे और प्रजनन पर नियन्त्रण स्वीकार करेंगे तो स्वभावतः उनमें उतनी उदारता भी जगेगी कि अपनी विभूतियों को पिछड़े हुए लोगों का पिछड़ापन दूर करने में नियोजित करें। ऐसी दशा में देश के सभी बच्चे उनके अपने बच्चे होंगे और यदि उन पर उच्च वर्ग का ध्यान बना रहा तो फिर वे बालक उसी भूमिका को सम्पन्न करेंगे, जो उच्च परिवारों में उत्पन्न हुए—साधन सुविधाओं में पले बालक कर सकते हैं। सच तो यह है कि अमीरी में जन्मे बालकों की अपेक्षा गरीबी में जन्मने वालों को यदि अवसर मिले तो वे कहीं अधिक तीव्र गति से प्रगति कर सकते हैं।

इसी प्रकार यह सोचना भी बेतुका है कि हिन्दू लोग ही सन्तानोत्पादन सीमित करने की बात पर ध्यान देते हैं। मुसलमान इस आन्दोलन में उतना उत्साह नहीं दिखाते। ऐसी दशा में मुसलमानों की संख्या बढ़ती जायगी, हिन्दू उनकी तुलना में घटते जायेंगे फलस्वरूप कुछ दिनों में आबादी के अनुपात से हिन्दुस्तान को मुसलिमस्तान बनने का खतरा उत्पन्न हो जायगा।

यह आशंका बालिग—मताधिकार के वर्तमान चुनाव ढाँचे को देखते हुए की जाती हैं। निकट भविष्य में न तो यह प्रजातन्त्री ढाँचा रहेगा और न वर्तमान साम्प्रदायिक कट्टरता के लिए कोई आधार शेष रह पायेगा। बौद्धिक, नैतिक और सामाजिक क्रान्ति के कारण विभेद की अनेक दीवारें विस्मार होने जा रही हैं, उनमें विभेद उत्पन्न करने वाला आज का सम्प्रदायवाद भी नष्ट होकर ही रहेगा।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भोजन वस्त्र में भिन्न रुचि के कारण परस्पर कोई द्वेष-दुर्भाव पैदा नहीं होता, ठीक इसी प्रकार धर्म भेद भी सामाजिक वर्ग भेद पैदा कर सकने जैसा विषाक्त न रहेगा, उसके विषदंत तब तक पूरी तरह टूट चुके होंगे। वैसी पूरी सम्भावना एक विश्व धर्म की ही की जानी चाहिए। वर्तमान सम्प्रदायों की तो तब मात्र झाँकी ही रह सकती है। जिस द्वेष-दुर्भाव को देखते हुए आज किसी धर्मवालों की वृद्धि की बात सोची जाती है, उस दुष्टता के लिए अगले दिनों कहीं कोई स्थान न होगा। सभी मनुष्य मात्र बन कर रहेंगे और देश की सीमित भूमि सीमा को तोड़ कर विश्व राष्ट्र में सभी लोग विश्व नागरिक बनकर रहेंगे। इसके अतिरिक्त नई वैज्ञानिक एवं आर्थिक प्रगति के साथ उत्पन्न हुई समस्याओं का और कोई हल नहीं है। हमें उन अगले दिनों की सुनिश्चित संभावना को ही ध्यान में रखना चाहिए कि आज के विषदंश वाले सम्प्रदायवाद के भविष्य में भी इसी रूप में बने रहने की आशंका को मन में से पूरी तरह निकाल देना चाहिए।

संसार में बहुमत सदा पिछड़े और मूर्ख लोगों का रहा है। यदि आज के बालिग मताधिकार वाला प्रजातन्त्र आगे भी बना रहा तो कभी भी समझदार लोगों की सरकार नहीं बन सकेगी। अच्छी सरकार के लिए अच्छे मतदाता होने चाहिए। ऐसे लोग जो राष्ट्रीय उत्तरदायित्व को ठीक तरह समझ सकें और निवाह सकें आगे भी अब की ही तरह अल्पमात्रा में, अल्पमत में होंगे। अगले दिनों प्रजातन्त्र भले ही रहे पर उसकी चुनाव पद्धति में ऐसा हेर-फेर होगा ही कि उत्तरदायित्व को समझने और संभालने करने वाले वाले ही मतदान करें अथवा प्रत्याशी बनें। इसके लिए कसौटियाँ निर्धारित करनी पड़ेंगी। तभी कोई आदर्श सरकार बन सकेगी अन्यथा भीड़ का राज्य जैसा हो सकता है वैसा ही बना रहेगा। आज भले ही यह कुछ अट-पटा लगे पर यदि प्रजातन्त्र को सफल होना है तो उसे इस प्रकार का सुधार-परिवर्तन करना ही पड़ेगा। उस स्थिति में यह आशंका निर्मूल सिद्ध होगी कि द्वेष-दुर्भाव रखने वाले लोग बहुमत में आकर सामाजिक न्याय में विग्रह-विद्वेष उत्पन्न करेंगे। अगले दिनों हर व्यक्ति साम्प्रदायिक स्वार्थों से ऊँचा उठा हुआ होगा और उस प्रकार सोचने का, करने का अभ्यासी बनेगा जिससे न्याय या विवेक के टकराने की किसी को भी सुविधा न रहे। तब अमुक सम्प्रदाय का उल्लेख भी नहीं होगा। सभी मनुष्य होंगे। उस परिवर्तन को लाये बिना तो आज का बहुमत अल्पमत ज्यों का त्यों बना रहे तब भी शान्ति नहीं आ सकती। जब पाकिस्तान बना था तब तो मुसलमानों की संख्या और भी कम थी, हिन्दू और भी अधिक बहुमत में थे। तब भी विग्रह-विद्वेष फूट ही पड़ा था। योरोप के देश प्रायः सभी ईसाई हैं तो भी इनमें आये दिन युद्ध ठनते और विग्रह उत्पन्न होते रहते हैं।

जनसंख्या नियन्त्रण की विश्व विभीषिका का सामना करने में हमें इस विकृत को, आशंकाओं को ध्यान में रख कर असमंजस में पड़ने की जरूरत नहीं है। इन्हें तो अगला समय दूध में मक्खी की तरह निकाल कर फैंकने ही वाला है।

हर प्रकार घाटा ही घाटा

बालकों की संख्या बढ़ाना, ऐसी भूल है, जिसका प्रायश्चित समाज के सभी घटकों को करना पड़ता है। पिता पर अधिक अर्थ उपार्जन का दबाव पड़ता है। अब वह जमाना नहीं रहा कि बच्चे जरा-सा समझदार होते ही पशु चराने, घास खोदने, लकड़ी-गोबर बीनने जैसे छुट-पुट घरेलू काम करते हुए भी अपने लिए निर्वाह साधन कमा लेते थे, पर अब वह समय नहीं रहा। महँगाई ने पौष्टिक आहार प्राप्त करना दुर्लभ बना दिया है। शिक्षा भी कम खर्च में पूरी नहीं कराई जा सकती। तनिक-सी हारी-बीमारी आ घेरने पर उसके उपचार में ढेरों खर्च होता है। विवाह-शादी चाहे लड़के की हो या लड़की की, विपुल खर्च की गंगा बहती है। इसके उपरान्त जमाता की अन्यान्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकना भी इतना महँगा है कि साधारण स्तर का व्यक्ति अपना परिवार का औसत खर्च चलाते हुए, इस भार को वहन करने में कठिनाई से ही समर्थ हो पाता है। इसे जुटाने में ऐड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ता है। साथ ही ऊपरी कमाई के स्रोत तलाश करने की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए अनुचित तरीके भी अपनाने पड़ते हैं। जिसके ऊपर जितने अधिक बच्चों का भार है, वह उतना ही चिन्तित और परेशान पाया जायगा। वे आशायें कदाचित् ही किसी की पूरी होती हों, जिसमें आज्ञाकारी श्रवणकुमार और राम-भरत जैसी संतान प्राप्त करने आशा पूरी हो सके। उनमें से अक्सर इधर-उधर से बुरी आदतें समेट-बटोर लाते हैं और उस बुद्धि के कारण समूचे परिवार को हैरानी का सामना करना पड़ता है।

माता के लिए हर बच्चे का जन्म, अपने लिए नये जन्म के समान भारी पड़ता है। गर्भावस्था का काल एक प्रकार से शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं से भरा रहता है। पेट काम नहीं करता, जी मिचलाता है, नींद घट आती है। इसके अतिरिक्त प्रसव वेदना बिना सुँघाये किये जाने वाले चीर-फाड़ आपरेशन की तरह भारी पड़ती है। यदि उस वैतरिणी से पार उतर लिया जाय, तो समझना चाहिए कि नया जन्म मिला अन्यथा उस अवसर पर अनेकों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है। फिर दिन-रात सेवा में संलग्न रहकर उनकी सुव्यवस्था बनाना भी सामान्य सामर्थ्य का काम नहीं है। पशु-पक्षियों के बच्चे तो आसानी से जन्म के बाद भागने-दौड़ने लगते हैं,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर मनुष्य बालक की साज-संभाल में प्राय: १० वर्ष से भी अधिक समय की तपश्चर्या करनी पड़ती है।

बालकों की शिक्षा-दीक्षा का, आहार-विहार का, स्वावलम्बन-सुसंस्कार का प्रबन्ध न हो सके, तो वे अनाथ रह जाते हैं। बेरोजगारी के, दुर्व्यसनों के कुचक्र में यदि वे फँस जाय, तो समझना चाहिए कि जीवन ही बर्बाद हुआ। ऐसी दशा में बालक अभिभावकों को भी कोसते हैं कि बिना समुचित प्रबन्ध के हमें अनचाहे अतिथि की तरह क्यों बुला लिया गया ? क्यों हमारा भविष्य अन्धकार मय बनाया ?

सर्वविदित है कि जनसंख्या अधिक बढ़ते जाने से राष्ट्रीय प्रगति में कितनी बाधा पड़ती है। जितने साधन किसी प्रकार जुट पाते हैं उससें अधिक संख्या में नवागन्तुक आ विराजते हैं। फलत: कमी को दूर करने की सारी योजनायें निष्फल चली जाती हैं। देश गरीबी की रेखा से ऊँचा उठ ही नहीं पाता। इन परिस्थितियों के रहते, नये बच्चों को जन्म देना प्रसन्नता का नहीं, चिन्ता और हैरानी का कारण ही समझा जाता है।

सन्तानों की संख्या बढ़ाना व्यक्ति और समाज के लिए घातक है

आखिर उन लोगों का इरादा क्या है जो सन्तान पर सन्तान उत्पन्न किये जा रहे हैं। छह-सात बच्चे हो चुके हैं किन्तु प्रजनन अभी बन्द नहीं है। प्रौढ़ावस्था पार कर चुके हैं किन्तु बच्चों का बोझ बढ़ाये चले जा रहे हैं। कभी यह विचार नहीं करते कि आखिर इसका परिणाम क्या होगा ? होगा यह कि या तो वे अपनी विधवा पर, क्योंकि इस प्रयास में उन्हें जीना तो ज्यादा दिन है ही नहीं, अनेक अबोध बच्चों का भार छोड़ जावेंगे, जो बेचारी जीवन भर रो-रोकर, मर-खप कर ढोयेगी या उस बड़े लड़के की जिन्दगी में आग लगा जायेंगे जो उनके शिथिल अथवा महायात्री होने तक किसी प्रकार छोटे-मोटे काम पर लग गया होगा और ज्यों-त्यों विवाह हो गया होगा। जरा सोचने की बात है कि वह विकासोन्मुख तरुण अपना और अपनी पत्नी का ही भरण-पोषण कठिनता से कर पायेगा, वह इतने भाई-बहिनों को कैसे तो पाल पायेगा और कैसे पढ़ा-लिखाकर योग्य बनायेगा। इसको तो अर्थ यही होगा कि वह पिता से भी जल्दी अपनी जवानी चिन्ताओं की भेंट चढ़ा देगा। पिता का पाप पुत्र भोगे यह तो बात कुछ समझ में नहीं आती है।

यह बात सही है कि भले भाई जिस प्रकार भी होगा अपने छोटे भाई-बहिनों को पालें पोसेंगे ही, इसके लिये उन्हें क्योंकि न कोई भी कष्ट सहना पड़े, त्याग करना पड़े, पर पिता को तो समझदारी से काम लेकर संयम बर्तना ही चाहिए। ऐसे परिवारों की भी कमी नहीं है जहाँ एक साथ पिता और पुत्र के सन्तान होती है। पिता के लिये यह प्रतियोगिता कितनी शोभनीय है ? यह बात शोचनीय है। किन्तु क्या कहा जाये पिता के उस उत्साह एवं नैतिक साहस को कि पुत्र और पौत्र का जन्मोत्सव एक साथ मनाकर भी समाज में शान से चलते हैं। कहना होगा कि इस प्रकार प्रजननशील प्रौढ़ों को न तो परवार और न समाज तथा राष्ट्र की कोई चिन्ता होती है। वे यह बात नहीं देख पा रहे हैं कि कुछ ही समय में यदि जनसंख्या की वृद्धि नियन्त्रित न हुई तो संसार में प्रलय के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगेंगे। जिस संसार में हम रहते हैं, जिस देश के हम नागरिक हैं, जिस राष्ट्र का अन्न-पानी खाते-पीते और जिस समाज की सहायता से जीते हैं, उसका हितचिन्तन करना हमारा पुण्य पवित्र कर्तव्य है और आज जनवृद्धि को नियंत्रित करना सबसे बड़ा देशहित साधन है। किन्तु क्या इस प्रकार के लोग इस ओर ध्यान दे पाते हैं ?

कुछ लोग एक पुत्र को पाने के लिए लड़कियों से घर भर लिया करते हैं। दो लड़कियाँ हो गईं। यही जिम्मेदारी काफी थी। लेकिन सन्तोष नहीं। एक लड़का भी हो जाता तो अच्छा था। लेकिन फिर कन्या आई। दु:ख तो हुआ पर आशा-एषणा का त्याग नहीं किया। पुन: लड़की, पुन:लड़की। फिर भी पुत्रेषणा नहीं जाती। देख रहे हैं कि लड़कियाँ ही हो रही हैं। उस अंधे सौदे का कोई विश्वास नहीं। ऐसा कोई साधन नहीं कि ठीक-ठीक लड़का-लड़की के बावत जाना जाये। केवल आशा और शायद के भरोसे प्रजनन नहीं रोकते आखिर नतीजा यह होता है कि जहाँ एक लड़की के विवाह में छक्के छूटते है वहाँ छ:-छ:-सात-सात लड़कियों से घर भर जाता है। इसका नतीजा सिवाय इसके और क्या हो सकता है कि किन्हीं एक-दो लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा और व्याह-शादी ठीक से हो जाये और बाकी सब यों ही अधेड़ों, विधुरों, दूजहा, तीजहा को उचित-अनुचित स्थानों पर फेंका जाये। समाज की अभागी प्रथायें और कुरीतियाँ दो-एक लड़कियों के विवाह में ही कंगाल बना देती हैं तब भला छ:-छ: सात-सात लड़कियों की व्याह-शादी किस प्रकार ठीक से की जा सकती है।

जब दो लड़कियाँ हो गईं तभी सन्तान की प्यास बुझ जानी चाहिए थी और समझ लेना चाहिए था कि जिन्दगी के लिये काफी जिम्मेदारी और काम आ गया है। इन दो कन्याओं को ही सुयोग्य बनाने और अच्छे घर वर को सौंपने में ही इतना रुपया चाहिए जितना कठिनता से ही जमा हो सकेगा। अब अगर लड़का हो भी गया तो उसकी शिक्षा-दीक्षा और ब्याह-शादी के लिये रुपये के लाले पड़ जायेंगे। किन्तु मनुष्य की इस निरर्थक इच्छा को क्या कहा जाये जिसे पूरा करने की आशा में जिन्दगी पर बोझ पर बोझ रखता चला जाता है।

बहुत बार लोग अनेक बच्चे होने पर भी यदि विधुर हो जाते हैं तब भी दूसरी शादी कर लाते हैं और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बच्चों की संख्या ड्यौढ़ी-दोगुनी बना लेते हैं। यदि उन्हें कोई सुधारवादी, समाजसेवी अथवा हितचिन्तक इसका विरोध करता हुआ समझाने का प्रयत्न करता है तो उनका नपा-तुला उत्तर मौजूद होता है—''क्या करें भाई शादी तो दूसरी नहीं करने को था किन्तु इन बच्चों की देख-भाल के लिए तो प्रबन्ध करना ही है। क्योंकि बच्चों की परेशानी मुझसे देखी नहीं जायेगी।'' बड़ा सुन्दर बहाना है। भला ऐसा कौन-सा कठोर होगा जो यह सम्मति दे कि आप शादी न करें भले ही बच्चे परेशान होते रहें। किन्तु इस प्रकार के बहानेवाज इस बात का उत्तर देने में या तो रोष प्रकट करेंगे या फिर दाँत निकालेंगे-कि विधाता भले ही बच्चों को तब तक ठीक से रखें जब तक उसके अपने बच्चे न हों। उसके अपने बच्चे होने पर इन दिवंगता जननी के लाड़िलों का क्या हाल होगा ? जब दूसरा बच्चा होने पर सगी माँ का पहले बच्चे से सिमट कर प्रेम दूसरे बच्चे पर चला जाता है, तब वहाँ तो कुक्षि की विषमता भी है।

स्पष्ट है यदि विशुद्ध रूप से बच्चों की परेशानी का ही विचार हो तो किसी वृद्ध विधवा, रिश्ते-नाते की दादी, बुआ, बहिन, भौजाई ऐसी किसी स्त्री को भी लाया जा सकता है जो बेचारी गरीब और निराश्रिता हो। इससे उपकार का पुण्य भी है और बच्चों की देख-भाल भी। और यदि ऐसा नहीं बन पड़े और दूसरा विवाह करते ही बने तो आगे के लिए परिवार-नियोजन का प्रबन्ध किया जा सकता है। किन्तु सत्य बात तो यह है कि बच्चों की देखभाल तो बहाना मात्र है, प्रेरणा होती है उस विकार की जिसे उन्हें पहली पत्नी से ही एक दो बच्चे हो जाने पर दृढ़तापूर्वक नियन्त्रित कर लेना था। इससे जो पत्नियाँ अधिक प्रजनन के कारण खोखली होकर अकाल में मर जाती हैं वह परिस्थिति न आती और यदि आ भी जाती तो एक-दो बच्चों का जो कि सयाने ही हो चुके होते स्वयं भी प्रबन्ध किया जा सकता था। मुसीबत आती है क्रम से उत्पन्न हुए अनेक छोटे बच्चों के कारण।

अनेक रईस और शौकीन तबीयत लोग दो-दो तीन-तीन शादियाँ करते या शायद कानून के भय से एक को तलाक देकर दूसरी से शादी कर लेते हैं और बिना सोचे-समझे जन-संख्या बढ़ाते चले जाते हैं। वे यह नहीं सोच पाते कि जब हम एक अकेले ने पाँच-सात सन्तानें बढ़ाकर आबादी वृद्धि की है तब यदि इन चार-चार पाँच-पाँच के भी इतनी-इतनी सन्तानें होंगी तो केवल एक पीढ़ी अथवा बीस साल में आबादी कितने गुना बढ़ जायेगी ?

अधिक सन्तानों को सुयोग्य बनाया जाना सम्भव नहीं। निश्चय ही उनमें से अनेक आबारा, अनैतिक, अपराधी तथा अनुशासनहीन हो जायेंगे। इस प्रकार की विकृत सन्तानें अभिभावकों के लिए तो जान का बवाल बन ही जाती हैं, समाज के लिए भी अभिशाप सिद्ध होती हैं। इसी सत्य को ध्यान में रखते हुए आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जबकि जन-संख्या आज की अपेक्षा बहुत कम थी और भोजन, वस्त्र तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तुओं की प्रचुरता थी, दूरदर्शी यूनानी दार्शनिक व विचारक अरस्तू ने अपने देशवासियों को सावधान करते हुए चेतावनी देदी थी—

''जन-संख्या की अतिरिक्त वृद्धि हो जाने पर समाज का आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक पतन हो जाता है। सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था बिगड़ जाती है। निरर्थक मनुष्य राष्ट्र का भोजन खा-खा कर नष्ट कर डालते हैं। धर्माचार का त्याग कर निरंकुश, स्वेच्छाचारी हो जाने से लोग अनैतिक मार्गों पर चलने लगते हैं। उद्दण्ड घोड़ों की तरह किसी कायदे-कानून को नहीं मानते और समाज में अपराधों तथा आतंक का वातावरण उत्पन्न करते हैं, जिससे प्रगति में बाधा पड़ती है। अधिकांश नागरिक अविकसित, अशिक्षित और मूर्ख रह कर पशुओं जैसा जीवन व्यतीत करते और मक्खी-मच्छरों की तरह मरते रहते हैं। मानसिक तथा सामाजिक बुराइयों का प्रधान कारण आबादी अनियंत्रित वृद्धि ही है।''

अरस्तू ही क्यों भारतीय ऋषि-मुनियों ने तो इससे भी पहले जन-वृद्धि के दुष्परिणामों से सावधान कर दिया था। राम को उपदेश देते हुए मुनि वशिष्ठ ने अपने ग्रन्थ 'योग वाशिष्ठ' में कहा है—''जब किसी देश की जन-संख्या बहुत बढ़ जाती है तो अकाल, महामारी, युद्ध या भूकम्प आदि दैवी अथवा मानवीय आपत्तियाँ उठ खड़ी होती हैं, जिससे कीड़े-मकोड़े की तरह मानव-जाति का विनाश हो जाता है।''

पहले जब किसी एक स्थान की जन-संख्या बढ़ जाती थी तो बहुत से लोग दूसरे स्थान पर चले जाते थे। किन्तु आज संसार का कोना-कोना मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ है, किसी को कहीं आने-जाने की सुविधा ही नहीं है। ऐसी दशा में सिवाय इसके कि देश भर की ईति-भीति में बरबादी हो अथवा सबल अपने अस्तित्व के लिए दूसरे निर्बलों को मार-काट कर अपने लिये स्थान बनायें-इसके सिवाय और क्या हो सकता है ? युद्ध का एक बहुत बड़ा कारण संसार में जन-संख्या की वृद्धि भी है।

भारत की बेतहाशा बढ़ती हुई जन-संख्या की चिन्ता संसार भर को है किन्तु स्वयं भारतवासियों को नहीं है। वे बराबर पीढ़ी-दर-पीढ़ी करोड़ों की आबादी प्रतिवर्ष बढ़ाते जा रहे हैं। जन-संख्या की यदि यही रफ्तार रही तो भारतवासियों को शीघ्र ही प्रलय के दृश्य देखने के लिये तैयार रहना चाहिए और अपनी बहुमूल्य सभ्यता एवं संस्कृति का मोह अभी से छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ एक तपोवन ४.४०

जो लोग वैज्ञानिक बल पर जन-संख्या और खाद्य सामग्री में अनुपात बने रहने की आशा करते हैं, उन्हें सावधान करने के लिए विद्वान माल्थस के आधुनिक विज्ञान से सम्मत तथा तर्क व प्रमाणों से पुष्ट यह विचार कुछ कम सत्यपूर्ण नहीं हैं।

"विज्ञान चाहे कितनी ही उन्नति क्यों न करता जाये, जमीन की उपज और उससे मिलने वाले अनाज की पैदावार एक नियत सीमा के भीतर ही बढ़ सकती है। प्रत्येक पौधे की जड़ और पत्तियों को फैलने के लिए जितना स्थान, समय, वायु, धूप व जल इत्यादि की आवश्यकता है, उसे जन-संख्या के अनुपात से खींचतान कर नहीं घटाया-बढ़ाया जा सकता। साथ ही यह भी अनुभव सिद्ध है कि जमीन की पैदावार को जब बहुत अधिक बढ़ाने की चेष्टा की जाती है तो शीघ्र ही ऐसा अवसर आता है कि परिश्रम के अनुपात से पैदावार घटने लगती है क्योंकि अप्राकृतिक ढंग से भूमि के साथ बलात्कार करने से उसकी उर्वरा-शक्ति नष्ट हो जाती है।

इन परिस्थितियों एवं तथ्यों के होते और जानते हुए भी जो लोग सन्तान वृद्धि का संयम नहीं करते, उनके लिए तो यही कहना पड़ेगा कि ऐसे लोग जीवन में सुख-शान्ति, स्वत्य सन्तान और सशक्त समाज का मूल्य, महत्त्व नहीं जानते और चाहते हैं कि जहाँ कल नष्ट होने को हो संसार आज नष्ट हो जाये।

अनियंत्रित प्रजनन-सर्वनाश का आह्वान

जनसंख्या वृद्धि की विभीषिका की ओर संसार के विचारशील लोगों का ध्यान विगत शताब्दी से ही आकर्षित हो गया था और उन्होंने इस खतरे की ओर विश्व नेताओं, सरकारों तथा सर्वसाधारण का ध्यान आकर्षित किया था। उनका कहना था कि समय रहते जनसंख्या वृद्धि की विभीषिका से निपटने का उपाय किया जाय अन्यथा समय निकल जाने पर कुछ करते-धरते न बन पड़ेगा और केवल पश्चाताप ही हाथ रह जायेगा।

इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्री थामस माल्थस ने इस विषय में सप्रमाण बहुत कुछ कहा है। विगत शताब्दी में फ्रांस प्लास, नार्म डायस्टेले, ऐने वेनेट, चार्ल ग्रेडली, मेरी स्टोप्स प्रभृत्ति विचारकों ने जोरदार प्रमाणों के साथ जनसंख्या नियन्त्रण की आवश्यकता सिद्ध की और इंग्लैण्ड की ही नहीं समस्त संसार की जनता ने उन विचारों को ध्यानपूर्वक सुना और उस आवश्यकता को अनुभव किया।

वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में अमेरिका में माडरेट सेंगर अब्राह्म स्टोन ने इस आवश्यकता को भली-भाँति सिद्ध किया। भारत की अपेक्षा पाँच गुनी भूमि और अत्यन्त स्वल्प जनसंख्या के कारण यों अमेरिका की आर्थिक समस्या वैसी नहीं थी, जिसके आधार पर परिवार नियन्त्रण की बात सोचनी पड़े, पर व्यक्तिगत, पारिवारिक और स्वयं शिशुओं के विकास पर इसका जो बुरा प्रभाव पड़ता है, उसे देखते हुए यह भली-भाँति स्वीकार किया गया है कि अवांछनीय गति से बढ़ता हुआ प्रजनन केवल संकट ही उत्पन्न कर सकता है।

विलियम गोडविन, सर वाल्टर रेले, प्रो० जीड, प्रो० ग्वेर्डे, विटरेणु प्रभृति कितने ही सांख्यकी विज्ञों का माल्थस से उन उपायों के बारे में मतभेद है, जिनके आधार पर संख्या नियन्त्रण किया जाना चाहिए, पर वे सभी एक स्वर से इस बात का समर्थन करते हैं कि बढ़ती हुई जनसंख्या की समस्या इस युग की सबसे बड़ी समस्या है और यदि उसे हल नहीं किया गया तो अपनी मूर्खता के दण्डस्वरूप ही मनुष्य जाति को रोते-बिलखते अपने हाथों आत्म-हत्या करने के लिए विवश होना पड़ेगा। अधिक उत्पादन और न्यायोचित वितरण से राहत मिलने की बात पर जोर देने वाले भी यह स्वीकार करते हैं कि यह उपाय सामयिक संकट हल्का कर सकते हैं, पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ क्रम यथावत् चलने देना तो उन्हें भी स्वीकार नहीं।

बढ़ती हुई जनसंख्या का एक बड़ा दोष है कि प्राकृतिक सुविधा के अभाव में तथा खाद्य पदार्थों में जीवन तत्व घटते जाने के कारण पीढ़ियाँ दुर्बल होती चली जाती हैं, वे रुग्ण रहती हैं और काम करने की क्षमता घटती चली जाती है। फलतः हर स्तर का उत्पादन घटता है। शारीरिक और मानसिक बलिष्ठता घटने पर कामों का स्तर तथा परिमाण घटेगा ही। भीमकाय स्वसंचालित यन्त्र जनशक्ति की आवश्यकता तो पूरी कर सकते हैं, पर उनसे बेकारी बेहिसाब बढ़ती है जो और भी अधिक घातक है।

पशुओं को जीवित न रखा जा सकेगा, ऐसी दशा में दूध या माँस की उपलब्धि भी असम्भव हो जायेगी। समुद्र पर भी जब धावा पूरे वेग से बोला जायगा तो बेचारे जल-जन्तु कब तक अपना अस्तित्व बनाये रह सकेंगे। उन्हें भी आधी चौथाई शताब्दी के अन्दर अपना अस्तित्व खो बैठने के लिए विवश होना पड़ेगा। बढ़ता हुआ जल प्रदूषण अभी भी जल-जन्तुओं को समाप्त करने में लगा हुआ है। कल-कारखानों का विषाक्त जल नदी, नालों से लेकर समुद्री जल तक को विषैला किये दे रहा है, जल-जन्तु बेहिसाब मर रहे हैं। अगले दिनों औद्योगिक प्रगति के साथ कल-कारखाने बढ़ेंगे ही, जल प्रदूषण का निर्बाध क्रम चलेगा तब जल-जन्तुओं पर गुजारा करने की बात भी मृग-मरीचिका बनकर ही रह जायगी।

समुद्र से जल-जीव, वनस्पतियाँ तथा पशु-पक्षियों का माँस प्राप्त करने के प्रयास भी एक सीमा तक ही उस आवश्यकता को पूरा कर सकेंगे। माँस के लिए पाले जाने वाले जानवरों के लिए चारा तो चाहिए ही। भूमि की सीमा जब लोगों के निवास-प्रवास की—अन्न की आवश्यकता ही पूरा नहीं कर पाती तो इस माँस या दूध

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के लिए पाने जाने वाले पशुओं के लिए निवास तथा चारे के लिए भूमि कहाँ से आवेगी ? अर्थशास्त्री बताते हैं कि अगले दिनों पशुओं और मनुष्यों में प्रतिद्वन्द्वता होगी। कौन जीवित रहे इस संघर्ष में पशु हार जायगा और भूमि को पशुओं के उपयोग से छीनकर मनुष्यों के लिए प्रयुक्त किया जायगा। अन्न का भूसा तथा घास, कागज, काष्ठ जैसी सभ्यता सामग्री बनाने में खप जायगा।

विवाहित जीवन का मूल प्रयोजन दो समान स्थिति के साथियों का मिलकर जीवनोद्देश्य की दिशा में ठीक तरह गतिशील होने की सुविधा प्राप्त करना है। भिन्न लिंग के सहयोगी प्रकृति प्रेरित आकर्षण की पूर्ति भी करते हैं और उसमें भावनात्मक तृप्ति भी मिलती है। अस्तु जब शारीरिक, मानसिक और आर्थिक सुविधा हो तब विवाह के लिए उपयुक्त साथी ढूँढ़ लिया जा सकता है, किन्तु विवाह की सफलता प्रजनन के साथ नहीं जोड़ी जानी चाहिए। सन्तानरहित दाम्पत्य-जीवन किसी भी प्रकार असुविधाजनक नहीं होता, वरन् उससे प्रगति की दिशा में आगे बढ़ने की ओर भी अधिक सम्भावना रहती है। जो शक्ति नये बालकों को न्योत-बुलाने में और उसका भार वहन करने में खर्च की जाती है यदि उसे पति-पत्नी अपने विकास में खर्च करें तो निस्सन्देह इससे वे लोग अपना और समाज का अधिक हित कर सकते हैं। सन्तान तभी उत्पन्न की जाय जब उसकी जिम्मेदारियाँ उठा सकने की पूर्व तैयारी भली प्रकार कर ली गई हो। जब तक ऐसी स्थिति न आये तब तक विवाहित युग्मों को भी सन्तानोत्पादन से बचना चाहिए।

विवाह योग्य युवकों के लिए भी यही उचित है कि जब वे शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ सन्तानोत्पादन के योग्य परिपुष्ट हो जायँ और आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़े हो जाने योग्य हो जायँ, तभी विवाह की स्वीकृति अभिभावकों को दें। यदि मोहवश समय से पूर्व विवाह के लिए दबाव डाला जा रहा है तो उसके लिए नम्रतापूर्वक किन्तु साथ ही अत्यन्त दृढ़ता के साथ इन्कार ही कर देना चाहिए। इसमें न तो अवज्ञा की बात है और न अशिष्टता की। पेट भरा होने पर प्रियजनों के भोजन आग्रह से इन्कार किया जा सकता है और उसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं होती तो फिर विवाह के सम्बन्ध में यदि कोई लड़का या लड़की अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें तो अभिभावकों को उससे प्रसन्न ही होना चाहिए। बलात् किसी पर अवांछनीय विचार थोपना जितना अनैतिक है उसकी तुलना में इस प्रकार के दबाव से इन्कार कर देना अपेक्षाकृत कम ही अनुचित माना जाना चाहिए।

जो लोग विवाह की आवश्यकता अनुभव करें उन्हें प्रसन्नतापूर्वक वैसा करना चाहिए। घर के लोगों को उनकी रुचि के अनुरूप साथी उपलब्ध कराने में सहायता करनी चाहिए, पर इसके लिए किसी को अपनी सन्तान पर दबाव नहीं डालना चाहिए। यह दबाव अनैतिक, अदूर-दर्शितापूर्ण, असामाजिक और अवांछनीय है। कोई बालक कुमार्गगामी हो रहा हो तो उसे सुधारने के लिए दबाव देने का औचित्य है। पर यदि किसी लड़की या लड़के की इच्छा विवाह की नहीं है, वह वैवाहिक उत्तरदायित्वों को निबाहने में उस समय अपने को असमर्थ पाता है तो उचित यही है कि उसकी अपनी इच्छा को-जीवनयापन करने की रीति-नीति को मान्यता दी जाय और उसे अपने ढंग से अपना मार्ग चुनने दिया जाय। विवाह कौन, कब, किस उम्र या स्थिति में करे, इसके सम्बन्ध में हर किसी को स्वतन्त्रता होनी चाहिए। गलत साथी के चुनाव का खतरा टाला जाना चाहिए, पर अविवाहित रहने की यदि किसी बालक की इच्छा है तो अभिभावकों के लिए यह उचित है कि उस सन्दर्भ में किसी प्रकार का दबाव न डालें। कारण कि इसमें अनौचित्य जैसी कोई बात नहीं है, वरन् सच पूछा जाय तो इस प्रकार का निर्णय वैयक्तिक एवं सामाजिक सुविधाजनक ही है।

अपने समाज में रूढ़िवादी अभिभावक इस बात के लिए अत्यधिक उत्सुक पाये जाते हैं कि वे अपने बालकों का विवाह जितनी जल्दी हो सके निपटा कर निश्चित हो जायँ। इसमें वे धन और श्रम भी बहुत खर्च करते हैं। यदि वह धन या श्रम उन बालकों की शारीरिक, मानसिक उन्नति के लिए खर्च किया जाय तो विवाह की अपेक्षा उन्हें हजार गुना अधिक लाभान्वित किया जा सकता है यह सूझ-बूझ न जाने क्यों अपने समाज में उठती ही नहीं है ?

व्यभिचार अविवाहितों में बढ़ता है, विवाहितों में नहीं यह आशंका व्यर्थ है। व्यभिचार और सदाचार मानसिक स्थिति पर निर्भर है। विवाहित हो जाने पर इस कुकर्म पर कोई बन्धन नहीं बँधता वरन् अविवाहितों के व्यभिचारों की अपेक्षा वह और भी अधिक निरापद हो जाता है। यदि अन्वेषण किया जाय तो इस सन्दर्भ में अविवाहितों की अपेक्षा विवाहित ही अधिक दुराचरण अपनाये हुए पाये जायेंगे। मर्यादाओं का पालन यदि सीखा और सिखाया जाय तो अविवाहित रहना किसी भी दृष्टि से व्यक्ति और समाज के लिए अहितकर सिद्ध नहीं हो सकता। हर किसी का विवाह अवश्य ही होना चाहिए आजकल जो यह मूढ़-मान्यता प्रचलित है उसके पीछे विवेकशीलता नहीं वरन् रूढ़िवादिता की ही प्रधानता रहती है। अपने समाज में कन्याओं को किशोरावस्था में प्रवेश करते-करते कुहराम मच जाता है और हर कोई उनके विवाह की चिन्ता करने लगता है। लड़के बीस-पच्चीस वर्ष तक पढ़ते भी रह सकते हैं और अविवाहित भी रह सकते हैं, पर लड़कियों के लिए इतनी उम्र बहुत भारी पड़ती है। लड़की और लड़कों के बीच इस प्रकार का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

भेद-भाव किया जाना किसी भी प्रकार तर्कसंगत नहीं, इसे रूढ़िवादी पूर्वाग्रह के ढर्रे पर लुढ़कने के अतिरिक्त और किसी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता। अविवाहित जीवन के खतरे अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर हमने अपने मस्तिष्क में जमा लिए हैं यदि विश्लेषण किया जाय तो वे आशंकाएँ बहुत अंशों में निरर्थक और निर्मूल ही प्रतीत होंगी।

संयम ही हमें नष्ट होने से अब बचायेगा

लन्दन के प्रसिद्ध स्वास्थ्य विशेषज्ञ ने दो दशक पूर्व ब्लैकपूल में स्वास्थ्य काँग्रेस की रायल सोसायटी में एक निबन्ध पढ़ा जिसमें उन्होंने बताया—"सन् २०५० अर्थात् अगले ८० वर्षों में संसार की दशा महाप्रलय जैसी हो जायेगी। उस समय अब की तीन अरब की जनसंख्या बढ़कर २० अरब हो जायेगी।" भारतवर्ष में प्रति घण्टा ११०० की जनसंख्या वृद्धि होती है। प्रति वर्ष एक करोड़ बीस लाख लोग बढ़ जाते हैं, केरल जैसे छोटे से प्रान्त में १९७६ तक २४३४७००० हो जायेगी, यहाँ प्रति दिन १५०० नये शिशु जन्म ले लेते हैं।"

जनसंख्या वृद्धि के यह आँकड़े वस्तुतः चिन्ताजनक हैं, जनसंख्या का बढ़ना मानव जाति के लिये भयंकर संकट है, किन्तु क्या इस संकट का हल अप्राकृतिक साधनों से किया जा सकता है, यह प्रश्न भी उतना ही जटिल है, जितना जनसंख्या वृद्धि की समस्या। हमें उन फलितार्थों को आँख मूँदकर स्वीकार नहीं करना चाहिये, जो परिवार नियोजन के अन्तर्गत इन दिनों चल रहे हैं, इनका मनुष्य के स्वास्थ्य, शरीर, समाज पर किस तरह का प्रभाव पड़ रहा है, इसका जब तक अनुमान नहीं कर लेते, यह आयोजन महँगे और भारी पड़ेंगे।

माल्थस ने कहा था कि मनुष्य को पहले ही सद्बुद्धि से काम लेना चाहिये और जनसंख्या को इतना सीमित रखना चाहिए कि ऐसी परिस्थिति ही उत्पन्न न होने पाये कि प्राकृतिक अवरोधों के कारण कष्ट उठाने पड़ें।

माल्थस की उक्त चेतावनी अब सत्य प्रतीत होती जान पड़ रही है। समय अब भी इतना शेष है कि मनुष्य स्वयं को संभाल सके। यदि वह आत्म संयम द्वारा अपनी यह जनसंख्या वृद्धि की समस्या सुलझाने के लिये तैयार नहीं होता तो यह कार्य प्रकृति के लिये छोड़ देना चाहिए। प्रकृति अपने आप इतनी समझदार है कि या तो वह जितने प्राणी पैदा करती है, उनके लिये अवश्य सुविधायें भी देती रहे और यदि मानवीय विवेक निरन्तर असावधानी बरतने का दुःसाहस करे तो वह प्रकृति इस बात के लिये भी समर्थ है कि अपनी शक्ति से उसे नियन्त्रण में ले आये। भले ही वे नियन्त्रण अति कष्टकारक सिद्ध हों।

१७ जनवरी, १९६९ को नई दिल्ली से प्रसारित एक विज्ञप्ति में विश्व स्वास्थ्य संगठन के विशेषज्ञों ने अपना मत व्यक्त करते हुए बताया कि चूहे तथा चुहिया के एक जोड़े से पैदा हुई सन्तानों से तीन वर्षों में ३५ करोड़ चूहे हो सकते हैं। लेकिन प्रकृति ऐसा होने नहीं देती। यदि चूहों की मनमानी चल सकी होती तो तीन वर्षों में पृथ्वी पर अकेले चूहे इतने हो जाते कि चलने वाले व्यक्ति का हर अगला पाँव एक चूहे की देह पर पड़ता। प्रकृति ने चूहों पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया है कि वे प्रति वर्ष अधिक से अधिक ६० बच्चे पैदा करें। मनुष्य भी यदि इसी ढंग से बच्चे पैदा करते रहे तो एक दिन अपने आप उनकी प्रजनन शक्ति समाप्त हो जायेगी। आजकल ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो प्रजनन की क्षमता खो चुके हैं या खो रहे हैं।

मक्खी एक बार में १२० अण्डे देती है। गर्मी के दिनों में वह ६ बार अण्डे देती है। दस दिन में बच्चे भी निकल आते हैं और वह भी १४ दिन की आयु में प्रजनन (पावर ऑफ रिप्रोडक्शन) के योग्य हो जाते हैं। ६ पीढ़ियों में जन्मे, यदि सब बच्चों को किसी प्रकार जीवित रखा जा सके तो वे १/४ मिलियन क्यूबिक घन फीट अर्थात् २५०००० घन फीट जगह एक मक्खी के जोड़े के बच्चों के द्वारा एक मौसम में घेरी जा सकती है। (एक घन फुट का अर्थ एक फुट लम्बा, एक फुट चौड़ा और एक फुट ऊँचा स्थान होता है।) अब यदि संसार में पाई जाने वाली सब मक्खियों का हिसाब लगायें तो मालूम पड़ेगा कि इस पृथ्वी जितनी कई पृथ्वियाँ तो केवल मक्खियों के रहने के लिये ही आवश्यक हो जायेंगी।

प्रकृति उनके लिये अपना संहार अस्त्र प्रयोग करती है। साधारण-सी सर्दी आते ही मक्खियाँ मरकर अपने आप नष्ट हो जाती हैं। मनुष्य समाज के लिये भी यही बात हो सकती है। प्रजनन की गति जितनी बढ़ेगी मनुष्यों के स्वास्थ्य और शारीरिक क्षमतायें गिरती हुई चली जायेंगी और वे मौसम के हल्के से परिवर्तनों को भी सहन करने की स्थिति में नही रहेंगी। तब बीमारियाँ, नये-नये रोग इस तरह बढ़ेंगे कि असमर्थ व्यक्ति अपने आप नष्ट हो जायें, केवल वे लोग बचेंगे जिनके स्वास्थ्य वीर्य नाश की बीमारी से सुरक्षित हों। यदि मनुष्य अपने आप नहीं सँभलता तो प्रकृति को विवश होकर यह सामूहिक दण्ड प्रणाली मानव जाति के लिये भी लागू करनी ही पड़ेगी। आजकल बीमारियों में मृत्यु दर की वृद्धि और नये-नये रोगों की उत्पत्ति उसी का संकेत करती है, आग की स्थिति कितनी भयानक हो सकती है। इसकी तो कल्पना करते भय लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक सीप (आइस्टर) एक वर्ष में ६० मिलियन (एक मिलियन=१० लाख) अण्डे देती है, इस तरह एक जोड़े से पैदा होने वाले पाँच पीढ़ियों से ही जितनी सीपियाँ पैदा हो जायेंगी, उनका यदि एक स्थान पर ढेर किया जा सके तो वह ढेर पृथ्वी के आकार से आठ गुना बड़ा होगा। कार्डफिश नामक मछली एक करोड़ अण्डे देती है, यदि सभी अण्डों में से बच्चे निकल आयें तो उन्हें रहने के लिये समुद्र भी पूरा न पड़े। इनको कम करने के लिए प्रकृति ने ऐसे शत्रु तैयार किये हैं, जो इन्हें खाते रहें, मछलियों को अनिवार्य वन्ध्याकरण का दण्ड भी भुगतना पड़ता है। यदि मनुष्य भी स्वयं सचेत न हो तो एक दिन वह स्थिति अपने आप बन जायेगी, जब या तो जनसंख्या स्वयं एक दूसरे को मार कर खा लेगी। (युद्ध, महामारी, अकाल भी इसी के रूप हो सकते हैं।) या फिर स्त्रियों में बन्ध्यात्व बढ़ जायेगा और वे बच्चे ही पैदा न कर सकेंगी।

हाथी संसार में सबसे धीमी प्रजनन (ब्रीडिंग) वाला जीव है। वह ३० वर्ष की आयु से बच्चे देना प्रारम्भ करता है, यदि वह ३० और ९० वर्ष की आयु के बीच ६ बच्चे पैदा करे और इसी अनुपात से वे बच्चे भी आगे प्रजनन करते रहें तो ५०० वर्ष में ही एक जोड़े हाथी से डेढ़ करोड़ हाथी पैदा हो जायेंगे अर्थात् पृथ्वी पर तब केवल हाथी ही हाथी हों और किसी को रहने, खाने-पीने के लिये स्थान और साधन ही शेष न रहे।

प्रकृति में वह जबर्दस्त समझ और शक्ति है कि वह इस शारीरिक योग्यता वाले पशु की जनसंख्या को भी अनियन्त्रित नहीं होने देती। उन्हें वह हिसाब से मारती रहती है। यह उदाहरण यह बताते हैं कि यदि मनुष्य आत्म-नियन्त्रण के द्वारा जनसंख्या वृद्धि के लिये तैयार नहीं होता, तब या तो उसे अप्राकृतिक परिवार नियोजन प्रणाली भक्षण करेगी अथवा प्रकृति स्वयं ही अपनी संहारक प्रक्रिया द्वारा नष्ट करके रख देगी।

हमारे लिये व्यवहार्य यही है कि हम इन्द्रिय संयम और कामवासना का उद्दात्तीकरण सीखें। अप्राकृतिक प्रतिबन्धक अवरोधों से अपने चरित्र को भी बचायें और अपने स्वास्थ्य, शक्ति और समर्थता को भी बना रहने दें। यदि यह नहीं करते तो प्रकृति के इस नियम और दण्ड के लिये भी तैयार रहना आवश्यक है।

सन्तान सीमित ही रखें

हम सब सामाजिक प्राणी हैं। समाज में रहते उसकी सहायता, सहयोग तथा सम्पर्क से ही उचित विकास करते तथा उसी से अपनी जीविका कमाते और बच्चों की ब्याह शादी करते हैं। समाज के सहयोग के बिना हमारी किसी की जिन्दगी दो कदम भी नहीं चल सकती। समाज का मनुष्य जीवन में बड़ा महत्त्व है।

किन्तु सामान्यत: लोग अपने को सामाजिक न समझकर केवल पारिवारिक ही समझते हैं और उसी की अच्छाई-बुराई तथा सुख-दु:ख का विचार रखते हैं। उसी के लिए सब कुछ सोचना और उसी के लिए सब कुछ करना अपना कर्तव्य समझते हैं तथापि उन्हें समाज के साथ प्रतिकार के रूप में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कुछ न कुछ सेवा देनी ही होती है। ऐसा किये बिना काम नहीं चल सकता। परिवार की सेवा भी समाज की ही सेवा है, मनुष्यों का दृष्टिकोण ही केवल अहंपूर्ण होता है। यदि परिवार को भी समाज का ही एक अंग समझकर समुचित रूप से सेवायें दी जायें, तब भी वह एक प्रकार से समाज की प्रत्यक्ष सेवा हो जाये। किन्तु लोग परिवार को अपना व्यक्तिगत अनुबंध समझकर उसका पालन एवं संचालन मनमाने ढंग से करते हैं, इसलिये उनकी सेवा सामाजिक परिसर तक बढ़कर व्यापक नहीं बन पाती।

परिवार समाज की एक इकाई है, ऐसा मानकर चलने वाले लोग, उसका पालन, संचालन एवं निर्माण इस प्रकार से ही करते हैं, जिससे समाज में सौन्दर्य, स्वास्थ्य तथा सुविधा की वृद्धि हो। ऐसे लोग परिवार को सन्तुलित तथा सुव्यवस्थित रखने का बड़ा ध्यान रखते हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि सन्तुलित परिवारों से जहाँ व्यक्तिगत सुख-शान्ति तथा आत्म-विकास में सहायता मिलती है, वहाँ समाज की व्यवस्था पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अस्तु, प्रत्येक व्यक्ति को यथासम्भव अपने परिवार को सन्तुलित तथा नियोजित रखने का प्रयत्न करना चाहिए। जहाँ असन्तुलित तथा अनियोजित परिवार से अनेक प्रकार के कष्ट-क्लेशों का जन्म होता रहता है, सन्तुलित तथा नियोजित परिवार से सुख-सुविधा की कमी नहीं रहती। इस विषय में अपने अनुभव के आधार पर एक विद्वान ने इस प्रकार बतलाया है—

"यदि आप मेरे सुखी परिवार का रहस्य जानना चाहते हैं तो मैं बतलाता हूँ कि इस सबका श्रेय मेरी बी० ए० पास पत्नी को है। मैं तो वाणिज्य का एक अध्यापक मात्र हूँ। मैं परिवार नियोजन जैसी चीज क्या जानूँ ? मेरी पत्नी संसार और विशेष रूप से हमारे देश में होने वाली अन्धाधुन्ध जन वृद्धि से उत्पन्न होने वाली हानियों से पूर्णतया परिचित हैं। वे इस समस्या पर पढ़ती और विचार करती रहती हैं। साथ ही उन परिवारों की दयनीय दशा भी देखती रहती हैं जो बिना सोचे-समझे संतानों पर सन्तानें उत्पन्न किये जाते हैं। इतना ही नहीं वे जो कुछ करती हैं उसे जीवन में यथार्थ रूप से उतारती भी हैं। हमारे परिवार की सुख-शान्ति का आधार केवल दो श्रेष्ठ, विकसित, स्वस्थ तथा सुन्दर सन्तानें ही हैं। हमारी शिक्षिता तथा यथार्थवादी पत्नी ने परिवार नियोजन के लिए प्राकृतिक से लेकर कृत्रिम तक सारे उपलब्ध साधनों तथा उपायों को काम में लाकर परिवार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सीमा से बाहर बढ़ने नहीं दिया। उनके मस्तिष्क से कभी भी यह विचार तिरोहित नहीं होता कि भारत की जनसंख्या यदि इसी गति से प्रतिवर्ष लाखों-करोड़ों में बढ़ती रहे तो स्थिति कितनी भयानक हो जायेगी ! हम सबको, देश को उस भयावह स्थिति से, जिसमें न भोजन मिले, न वस्त्र और न रहने के लिये स्थान। इन्हें बचाने के लिये अपने घरों में परिवार नियोजन का काम प्रारम्भ कर ही देना चाहिए। जनसंख्या की वृद्धि की इस अनियोजित गति को रोका ही जाना चाहिए और यह काम तभी पूरा होगा जब हम सब परिवार नियोजन में आस्था रखें और उसे यथार्थ रूप में अपने जीवनों में मूर्तिमान करें। हमारी इस आस्था को एक अच्छी गति भी मिल सकती है यदि अनियोजित परिवारों से होने वाली वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय हानियों पर सच्चाई के साथ विचार करें और उन्हें अपने हृदय में अनुभव कर यह समझें कि आज भारत के जो परिवार इस गलती से निकृष्ट जीवन बिता रहे हैं, वह वांछनीय नहीं। इसे बदला ही जाना चाहिए और सरलतापूर्वक बदला भी जा सकता है।''

कितना समीचीन तथा समयानुकूल विचार है। निस्संदेह सन्तुलित तथा नियोजित परिवार में गृहस्थ जीवन की सुख-शान्ति की सारी सम्भावनायें निहित हैं और इसके विपरीत आचरण करने पर ऐसा कोई दुःख नहीं जो गृहस्थ जीवन में न आ जाता हो। तुलनात्मक दृष्टिकोण से विचार करने पर यह सत्य सहज ही स्पष्ट हो जाता है।

नियोजित परिवार माने छोटा परिवार, ऐसा परिवार जिसमें हर विवाहित के एक या दो बच्चे हों और अधिक से अधिक तीन, यदि परिस्थिति स्वीकृति देती हो। परिवार को संक्षिप्त रखने के प्रयत्न में सबसे पहला प्रयत्न यही होगा कि एक के बाद दूसरा बच्चा कम से कम पाँच या छः वर्ष बाद हो। इसका एक लाभ यह भी होगा कि हर बच्चा पूरी तरह स्वस्थ रूप से पैदा होगा। उसका कारण स्पष्ट है कि बार-बार बच्चा न होने के झंझट से बचे रहने से माता का स्वास्थ्य सुरक्षित रहेगा। स्वस्थ सन्तान, स्वस्थ माता के ही गर्भ से उत्पन्न हो सकती। प्रजनन संयम से उनके सारे अवयव तथा अंग नीरोग तथा यथोचित रूप में रहते हैं। उसकी कुक्षि में निर्मित बच्चे के विकृत अथवा रुग्ण होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे बच्चे के जन्म में पाँच-छः वर्ष का अन्तर रहने से पहले बच्चे को पूरे समय भर माँ का दूध मिलता रहेगा। माँ का दूध बच्चे के लिए अमृत की तरह गुणकारी होता है। पूरी तरह प्राप्त होने से वह खूब हृष्ट-पुष्ट तथा सुन्दर हो जायेगा, नींव गहरी और मजबूत होगी, जो आगे चलकर भी उसे पूरे जीवन भर स्वस्थ तथा सुखी रहेगी। जिसने जन्मजात स्वस्थ तथा अरुग्ण बच्चा पा लिया उसने मानो गृहस्थ जीवन का एक बहुत बड़ा सुफल प्राप्त कर लिया।

बच्चा होने के बाद पाँच-छः साल तक के लिए माँ का शरीर बड़ा ही शिथिल तथा कमजोर हो जाता है, जिसको संयम तथा पौष्टिक भोजन की बहुत जरूरत रहती है। परिवार नियोजन के आधार पर उसकी वह आवश्यकता पूरी हो जाती है। पाँच-छः साल तक दूसरे बच्चे की अभिलाषा न रखने वाले बुद्धिमान दम्पत्ति उस दिशा में हर संयम को, यथासम्भव पालन करने का पूरा प्रयत्न करेंगे और अपने पवित्र संकल्प के बल पर उन्हें कोई विशेष कठिनाई नहीं होगी। ऐसा संकल्प वे ही दम्पत्ति करते और निभाते हैं, जो वासना के कीड़े नहीं होते और जीवन के लिये ब्रह्मचर्य का महत्त्व समझते हैं। संयम से रक्षित माँ का ओज तेज वर्धित होकर उसे पुनः स्वस्थ तथा परिपूर्ण बना देगा। साथ ही कितनी ही महँगाई क्यों न हो और कितनी ही सामान्य स्थिति क्यों न हो यदि प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा सा भी पौष्टिक भोजन, घी, दूध, मेवा, फल आदि माता को मिलता रहा तो पाँच-छः साल का समय इतना पर्याप्त होता है कि उसके शरीर की सारी आवश्यकता पूरी हो जायेगी। अनेक बच्चे रहने से यह सम्भव नहीं। सबके लिए व्यवस्था हो न सकेगी और जो व्यवस्था हो भी सके उसका लाभ बच्चों को वंचित कर माता स्वयं उठाती रहे, यह किसी प्रकार भी वह न कर पायेगी। यह सुविधा केवल नियोजित परिवार में ही रह सकती है। स्वस्थ पत्नी गृहस्थ जीवन की सुख-शांति का दूसरा सुफल है।

इसके विपरीत जिन दम्पत्ति को हर साल, दूसरे साल बच्चा होता रहता है, उनके न तो बच्चे ही स्वस्थ रहते हैं और न पत्नी। अस्वास्थ्य के साथ अस्वस्थ अनेक बच्चों की देखभाल और परिश्रम के सथ समुचित भोजन का अभाव उन सबको न जाने और कितने रोगों से बाँध देगा। पत्नी सौन्दर्य नष्ट हो जायेगा, स्वभाव खराब हो जायगा, बच्चे दिन-रात रें-रें करते रहेंगे और गृहस्थ बेचारा उनकी दवादारू के लिये दिन-रात परिश्रम तथा भाग-दौड़ करता रहेगा। ऐसी स्थिति में वह कौन-सा शारीरिक तथा मानसिक क्लेश हो सकता है जो उन सबको विशेषतया गृहस्थ को नहीं मिलेगा।

परिवार नियोजित रहने अर्थात् एक-दो बच्चे रहने से उनके पालन-पोषण, रहन-सहन, शिक्षा-दीक्षा, प्रतिभा तथा विशेषतायें विकसित करने पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जा सकता है। उसके लिये खर्च भी जुटाया जा सकता है। कितना ही हाथ तंगवक्यों न हो फिर भी एक दो बच्चों का लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया ही जा सकता है। ढेरों बच्चों होने से, उन पर जो, उनमें से अधिक होनहार तथा कुशाग्र बद्धि होते हैं और जिन पर विशेष ध्यान की आवश्यकता है, समुचित ध्यान नहीं दिया जा पाता। अनेक बच्चों में किसी एक पर विशेष ध्यान पक्षपात जैसा होगा। जो माता-पिता के लिए कर सकना न तो सम्भव है और यदि कोई ऐसा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं तो गृह-कलह के बीज बोते हैं जो जल्दी ही विष फल उत्पन्न करने लगते हैं। नियोजित परिवार में यह कठिनाई नहीं रहती। एक दो बच्चे होते हैं, उन पर पूरा-पूरा ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है। पारस्परिक वैमनस्य अथवा ईर्ष्या-द्वेष का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि वे दोनों बच्चे कुशाग्र बुद्धि के हैं, तब तो उन्हें हर प्रकार का प्रोत्साहन तथा प्रबन्ध देकर आगे बढ़ाया ही जा सकता है और यदि वे नहीं भी हैं तो प्रयत्न बल पर उन्हें प्रतिभावान तथा होनहार बनाया जा सकता है। इस प्रकार समुचित रूप से पालित तथा विकसित किये गये बच्चे समाज के कितने सुन्दर नागरिक बन सकते हैं, इसका अनुमान भर हृदय में पुलक भर देता है। सन्तान सुयोग्य होकर समाज में प्रतिष्ठा पाये-यह गृहस्थ जीवन का ऐसा तीसरा सुफल है, जिसका सुख माता-पिता से सँभाले नहीं सँभलता।

एक दो बच्चे होने से माता-पिता न उन्हें केवल समुचित लालन-पालन ही दे सकते हैं, बल्कि अपना पूरा प्यार तथा वात्सल्य भी दे सकते हैं, उनकी स्नेह धारा अनेकधा न होकर उन दो बच्चों तक ही केन्द्रित रहकर उन्हें ओत-प्रोत कर देती है। उनके जीवन को सन्तुष्ट तथा शीतल रखती है। माता-पिता का स्नेह बच्चों के लिए किसी भी पौष्टिक पदार्थ से हजार गुना गुणकारी होता है। जिन बच्चों को यह पूरी तरह मिलता रहता है वे यों ही स्वस्थ तथा विकसित होते चलते हैं। साथ ही केन्द्रित होकर उनके स्नेह तथा वात्सल्य का सुख उन्हें भी परितृप्त रखा करता है। प्रेम की अनुभूति ईश्वरीय प्रसार है किन्तु यह हर्ष एवं उल्लास का हेतु बनता तभी है जब कहीं पर केन्द्रित हो, अन्यथा कट-कुटकर और जीर्ण-शीर्ण होकर निष्प्रभाव हो जाता है। माता-पिता से पूरा प्रेम पाकर बच्चे भी उन्हें अपना पूरा आदर तथा श्रद्धा देने लगते हैं। वे अधिकाधिक विनम्र तथा आज्ञाकारी बन जाते हैं। सुयोग्य सन्तानों का आज्ञाकारी होना गृहस्थ जीवन का चौथा सुफल है, जिसका सुख अनिवर्चनीय होता है। इसे कोई विरले बुद्धिमान माता-पिता ही पाते हैं।

इसके विपरीत जिन माता-पिता के अनेक बच्चे होते है, उनका प्रेम किसी बच्चे पर भी केन्द्रित नहीं हो पाता। वह यों ही बूँद-बूँद इससे उस पर और उससे इस पर छितराता हुए बेकार ही चला जाता है। न तो बच्चों को सन्तोष होता है और न माता-पिता को अनभूत। स्नेह के प्यासे रहकर बहुधा अविनम्र तथा अवज्ञाकारी हो जाते हैं। स्नेह न पाने से उनका हृदय भी कठोर तथा कर्कश बन जाता है। वे आपस में लड़ते-झगड़ते और बाहर जाकर दूसरों के साथ उपद्रव उत्पन्न करते हैं। रोज शिकवा-शिकायत भिजवाते और माता-पिता की प्रतिष्ठा गिराते हैं। बच्चों की इन हरकतों के कारण माता को कितनी मार्मिक पीड़ी होती होगी, इसे तो भुक्त-भोगी ही बतला सकते हैं। इसी पीड़ा से कराहकर तो लोग कह उठते हैं कि "नालायक बच्चे होने से कहीं अच्छा है कि परमात्मा बिना बच्चे का ही रखे।"

इस प्रकार किसी भी दृष्टि से क्यों न देखा जाये नियोजित परिवार हर प्रकार से सुख-शान्ति के हेतु तथा अनियन्त्रित परिवार हर प्रकार से कष्ट-क्लेश का कारण होता है। एक दो अथवा अधिक से अधिक तीन बच्चों के नियोजित परिवार में माता-पिता अपना सम्पूर्ण समय, शक्ति, उत्साह, प्रेम, पैसा आदि लगाकर उन्हें श्रेष्ठतम नागरिक बना सकते हैं। उनके शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा शैक्षणिक हर प्रकार के विकास पर पूरा-पूरा ध्यान दे सकते हैं। इससे बच्चे सुयोग्य नागरिक बनकर समाज के सदस्य रत्न तो बनते ही हैं, साथ ही माता-पिता के लिए भी सुख-शान्ति तथा सन्तोष के बड़े आधार बनते हैं। जो बुद्धिमान दम्पत्ति यह बात ठीक से हृदयंगम करके तदरूप व्यवस्था करते हैं, वे जीवन में सन्तुष्ट और सुखी रहते ही हैं। इसमें न कोई बाधा है न कोई सन्देह।

सन्तानोत्पादन का उत्तरदायित्व समझ-बूझ कर ही उठायें

किसी जमाने में अधिक बच्चे उत्पन्न होना सौभाग्य का चिन्ह माना जाता था। वह समय तब था जब जन-संख्या कम थी, भूमि बहुत खाली पड़ी थी, सुरक्षा, कृषि तथा अन्य विकास कार्यों के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता थी।

आज स्थिति बिल्कुल बदल गई। अब जन-संख्या बढ़ते-बढ़ते खतरे के चिन्ह तक आ गई है। जितना अन्न धरती उगा पाती है, खाने वाले उससे अधिक बढ़ गये हैं। निवास की समस्या, यातायात की समस्या दिन-दिन जटिल होती चली जा रही है। स्कूलों में बच्चों के लिए जगह नहीं, अस्पतालों में स्थान नहीं, रेल और बसों में भीड़ का ठिकाना नहीं। इस बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए नौकरी, रोजगार, व्यापार आदि का कुछ प्रबन्ध बन नहीं पड़ रहा है । सबसे जटिल है शिक्षित बेकारों की समस्या ! न तो सरकार के पास देने के लिए नौकरी है और न प्रतिस्पर्धा में व्यापार खड़ा रह पाता है।

दुकानें हजारों की 'पगड़ी' दिये बिना नहीं मिलती। ईमानदारी के धंधे में उतनी बचत कहाँ होती है जिससे उतनी बड़ी रकम 'पगड़ी' में दी जायें और फिर उसके बाद व्यापार में धन लगाया जाय। ऐसी स्थिति सर्वसाधारण की कहाँ होती है ? फिर व्यापार कैसे हो ! नौकरी के द्वार बन्द, व्यापार की गुंजायश नहीं-गृह उद्योगों का न तो प्रचलन है और न शिक्षण का प्रबन्ध, ऐसी दशा में नई पीढ़ी के लिए निर्वाह के रास्ते बन्द या जटिल होते चले जा रहे हैं। कृषि की जोतें पीढ़ी-दर-पीढ़ी छोटी होती

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चलती हैं। छोटी जोतों में बँटी हुई खेती से तो एक भी परिवार का गुजारा नहीं होता।

इस धक्का पेल की भीड़ को और अधिक बढ़ाना समाज के लिए विपत्ति और राष्ट्र के लिए संकट उत्पन्न करना है। व्यक्तिगत जीवन में सन्तानोत्पादन से संकट ही बढ़ सकता है, उससे किसी प्रकार के वैयक्तिक या सामाजिक लाभ की आशा करना, इन परिस्थितियों में व्यर्थ है। जिनके लिए देश में जगह नहीं है, उन्हें बुलाकर केवल संकट में ही धकेला जा सकता है। हर नया बच्चा पहले वालों को मिलने वाली दूध की बूँदों और रोटियों के टुकड़ों में हिस्सा बँटाता है। अस्तु, पहले वालों के लिए कमी पड़ती जाती है। हर बच्चे के हिस्से में जितना दूध आता था—नई वृद्धि के कारण उसका अनुपात घटता ही चला जायेगा। चारागाह न रहने में पशु भी कसाई के घाट उतर रहे हैं। दूध बढ़ाने की गुंजायश तब बने जब पशु पालन के लिए जगह बचे। आदमियों के रहने और खाने की जगह नहीं बच रही है, तो बेचारे पशु कहाँ निर्वाह करें ? उनकी संख्या घटेगी तो दूध भी घटेगा। यही वृद्धि क्रम चलता रहा तो एक-एक बूँद दूध के लिए बच्चों को तरसाना पड़ेगा।

पौष्टिक खाद्य पदार्थों के अभाव में वंश परम्परा की दुर्बलता लेकर जन्मी आजकल की लड़कियाँ वयस्क होने पर अपना ढाँचा ही किसी प्रकार खड़ा रख सकें तो गनीमत समझना चाहिए। उन पर बच्चे उत्पन्न करने का बोझ डालना प्रत्यक्ष अत्याचार है ! न उनके शरीर में रक्त और न उनकी छाती में पर्याप्त दूध होता है। ऐसी दशा में अविकसित बच्चे ही जन्म लेंगे और माता का दूध न मिलने पर असमर्थ होकर ही जियेंगे। ऐसी सन्तानें माता-पिता को कष्ट ही देती हैं। अपने परिवार के लिए, अपने लिए और देश के लिए भार सिद्ध होती हैं। ऐसे दुर्बलकाय प्राणी भावी पीढ़ियों को और भी गई-गुजरी बनाते चलते हैं।

कमजोर माताएँ बच्चों को जन्म देकर अपने लिए प्रत्यक्ष जीवन संकट मोल लेती हैं। हर बार का गर्भ धारण करना उनकी जिन्दगी की अवधि घटाता चलता है। प्रसव कष्ट में कितनों को ही जान गँवानी पड़ती है। जो बची रहती है उनका दूध पीकर बच्चे उन्हें खोखला कर देते हैं। विवाह से पूर्व जो लड़की थोड़ी स्वस्थ लगती थी वह एक दो बच्चों को जन्म देने के बाद ही बुढ़िया बन जाती है ! अपना शरीर संभालना ही कठिन पड़ रहा था, फिर दो-दो तीन-तीन बच्चों को कैसे सँभाला जाय ? बेचारी मौत जिन्दगी के बीच झूलती रहती हैं। सारा जीवन नीरस हो जाता है। रूप, आकर्षण एवं यौवन का उभार ढल जाने से पतियों के व्यवहार में जो अन्तर आता जाता है, वह और भी अधिक निराश करता है।

सन्तानोत्पादन माता के लिए ही विपत्ति बन कर नहीं आता वरन् पिताओं की भी पिटाई करता है। इस महँगाई के जमाने में बच्चे पालना-हाथी पालने जैसा है। भोजन, वस्त्र, दवा, शिक्षा कितनी महँगी हैं, उसका हिसाब लगाने से बच्चे और बड़े आदमी में कोई खास अन्तर नहीं रह जाता। विवाह-शादियों में जो रस्म-रिवाज हैं वे बुरी तरह प्राण खींचते हैं। कन्याओं के विवाह की समस्या मध्यम वर्ग के लिए फाँसी के फँदे जैसी है। लड़कों को काम-धन्धे में लगाना, उन्हें स्वावलम्बी बनाना भी साधारण काम नहीं है।

जब तक बच्चे नहीं होते तब तक लगता है न जाने क्या कमी रह गई और जब होते हैं तो लगता है न जाने क्या सौभाग्य आ धमका। पर जैसे ही वास्तविकता सामने आती है पता लगता है कि मछली के काँटा निगलने जैसी भूल हो गई। इस जंजाल में मनुष्य कुछ ही दिनों में इस बुरी तरह जकड़ जाता है कि आये दिन की समस्याओं से रोज ही रोते-खीजते निपटना पड़ता है। कोई बड़ा काम करने की-किसी महत्वाकांक्षा की पूर्ति की बात तो सपना ही हो जाती है।

किसी जमाने में धार्मिक मान्यता थी कि बच्चे पिण्ड दान देते हैं तो पुरखों की परलोक में सद्गति होती है। कभी सोचा जाता था कि वंश चलता है, नाम रहता है। यह मूढ़ मान्यताएँ ऐसी बेतुकी हैं कि विचार करने पर इनमें रत्ती भर भी तथ्य दिखाई नहीं पड़ता। मनुष्य को अपने ही भले-बुरे का पुण्य-पाप मिलता है। वंश सत्कर्मों के द्वारा उपलब्ध हुए यश से चलता है। कुतिया हर बार चार-छह बच्चे और सुअरिया आठ-दस तक बच्चे जनती है, न उनसे बाप का वंश चलता न माँ का। फिर दो-तीन पीढ़ी के बाद तो वंशधर नाम तक भूल जाते हैं। तीन-चार पीढ़ियाँ अस्सी बरस में बीत जाती हैं। इतने दिनों में ही नाम भुला दिया गया तो उससे बरगद का पेड लगा देना अच्छा जिसे दो सौ वर्ष तो नाम वंश चलें। यह निरर्थक मान्यताएँ हैं जिनमें नासमझ लोग ही उलझे रह सकते हैं। बुढ़ापे में सन्तान सहारा देगी इस मृग तृष्णा की वास्तविकता को अपने चारों ओर दृष्टि पसार कर भली प्रकार देखा, समझा जा सकता है कि आज की औलाद अपने माँ बाप से किस तरह पेश आती है।

हर बच्चे के इच्छुक नर-नारी को वह उत्तरदायित्व उठाने से पूर्व हजार बार विचार करना चाहिए कि उसमें शारीरिक, आर्थिक और बौद्धिक क्षमता इतनी है भी कि भावी सन्तानों का ठीक प्रकार उत्तरदायित्व वहन कर सके ? यदि पूरी तरह अपनी क्षमता दिखाई पड़े तो वह दुस्साहस करना चाहिए, अन्यथा बुद्धिमानी इसी में है कि सन्तानोत्पादन को इस जमाने में एक भारी जोखिम मान कर उससे दूर रहा जाय। बिना सन्तान का दाम्पत्य जीवन अपेक्षाकृत अधिक सुखद और अधिक शान्तिपूर्ण होता है। इस तथ्य की यथार्थता को बिना बच्चे वाले लोग बच्चे वालों की दुर्दशा को देख कर ही-दूसरों के अनुभव के आधार पर ही समझ लें यही श्रेयस्कर है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

नासमझ लोगों को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता पर समझदार लोग इस तथ्य को समझते हैं और अपनी आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक न हो तो सन्तानोत्पादन तो दूर विवाह भी नहीं करते। पाश्चात्य देशों में लगभग एक चौथाई नर-नारी विवाह योग्य होते हुए भी इसी कारण विवाह नहीं करते। हमारा यह दुर्भाग्य ही है कि यहाँ हर नर-नारी का विवाह करना एवं सन्तानोत्पादन अनिवार्य माना जाता है। पहले तो पुत्र कामना से अनेक विवाह करने की मूढ़ता भी प्रचलित थी।

नव निर्माण के संदर्भ में हमें हर किसी को समझाना चाहिए कि संख्या नहीं स्तर बढ़ाना चाहिए। अपने पेट में से निकला बच्चा ही अपना होता है, उस संकीर्णता का अब अन्त होना चाहिए। जिन्हें बच्चों का शौक है वे दूसरों के उधार लेलें और उन्हें पाल पोष कर स्वावलम्बी बना दें। यह संतान सुख का सबसे सरल और सही तरीका है। लोगों की शक्ति संतानोत्पादन और पारिवारिक भार वाहन में कम से कम लगे और उस प्रवाह को लोकमंगल की दिशा में लगाया जाय! व्यक्ति और समाज की कठिनाइयों को हल्का करने की दृष्टि से तो सन्तानोत्पादन को निरुत्साहित किया ही जाना चाहिए।

अधिक बच्चे उत्पन्न कर सिर दर्द न बढ़ाइए

हमारे देश की जनसंख्या दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। अनुमानत: ५५ हजार बच्चे प्रतिदिन उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रतिदिन ५५ हजार बालकों के भरण-पोषण के लिए साधन जुटाने आवश्यक हैं। यदि प्रत्येक को आधा किलो दूध प्रतिदिन दें तो लगभग २७ हजार किलो दूध की आवश्यकता पड़ेगी। फिर आज २७ हजार किलो, कल ५५ हजार किलो, परसों एक लाख किलो और महीने भर बाद ८ लाख किलो दूध की प्रतिदिन आवश्यकता होगी। हमारे यहाँ गायें वैसे भी अधिक अच्छी नस्ल की नहीं हैं अतएव प्रतिदिन इतने दूध का उत्पादन कठिन ही है। दूध का उत्पादन न होने का अभिप्राय है छोटे बच्चों को अपना भोजन-दूध न मिल पाना और ऐसी स्थिति में बालक और माँ-दोनों के स्वास्थ्य पर ही बुरा प्रभाव पड़ता है। फिर समस्या यहीं हल नहीं हो जाती अपितु वस्त्र, भोजन, आवास, शिक्षा, आजीविका आदि से सम्बन्धित अनेकानेक समस्याएँ सुरसा के मुख की भाँति बढ़ती ही जाती हैं। ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों समस्याएँ और सामाजिक असन्तोष भी बढ़ता जायेगा।

इन सब समस्याओं के सुलझाने का तथा परिवार और समाज में सुख-शांति लाने का उपाय है—परिवार नियोजन। यदि प्रत्येक माता-पिता यह निश्चय करलें कि दो या तीन बच्चों से अधिक सन्तान उत्पन्न नहीं करेंगे तो कठिनाइयाँ सुलझ सकती हैं। माँ का स्वास्थ्य सुधरेगा, पिता की चिन्ताएँ कम होंगी, बालकों का पूर्ण विकास हो सकेगा तथा समाज में सुख-शान्ति बनी रहेगी।

बढ़ती हुई आबादी प्रत्येक दृष्टि से हानिकारक है। सर्वप्रथम हम परिवार को और उसमें भी माँ को ही लें माँ के रक्त, मज्जा से बालक का निर्माण होता है, नौ मास कष्ट सहकर वह उसे गर्भ में धारण करती है, दुग्ध रूप में परिणत अपने रक्त से पालती है तथा बड़े होने तक अन्य अनगिनत कष्ट सहन करती है।

ज्यों-ज्यों बच्चे बढ़ते हैं, पिता के उत्तरदायित्व भी बढ़ते जाते हैं। नौकरी या व्यापार से उसे सीमित धन मिलता है परन्तु बच्चे बढ़ने के साथ-साथ उनकी शिक्षा, वस्त्र, भोजन आदि की समस्याएँ बढ़ती जाती हैं। उस पिता की मन:स्थिति को सोचिये, जो अपने बच्चों के लिए घी, दूध तो क्या भोजन भी न जुटा पाता हो, उन्हें अधिक बच्चे होने के कारण किसी को भी समुचित शिक्षा न दिला पाता हो। दुर्भाग्य से कहीं उसके दो-चार लड़कियाँ भी हुयीं, तो उनके विवाह और दहेज की चिन्ता करते-करते उसका मन हीं नहीं अपितु तन भी घुलता जाता है।

अब हम बच्चों को लें। यदि एक बालक होगा तो निश्चित ही उसे अच्छा भोजन, अच्छी देख-रेख मिल सकेगी। माता-पिता का पूरा-पूरा अवधान तथा दुलार उस पर रहेगा जो कि उसके व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निवाहेगा। माता-पिता कष्टों में रहकर भी उसे शिक्षा दिलाने का प्रयास करेंगे। अधिक बालक होने पर न तो सबकी उचित देखरेख ही संभव है और न एक मध्यमवर्गीय तथा निम्नवर्गीय परिवार के लिए उन्हें पौष्टिक भोजन दे पाना ही सम्भव है। अधिक बच्चे तो परिवार में प्राय: उपेक्षित से घास-फूँस की भाँति बढ़ते हैं और माता-पिता का समुचित निर्देशन और स्नेह न पाकर अपराधी भी बन जाते हैं।

सामाजिक पहलू को देखें तो वह और भी अधिक दयनीय है। देश में अन्न की कमी है, खाने वाले अधिक हैं, दूध की बात तो दूर रही पेट भर भोजन पाना भी कष्टसाध्य है। परिणामत: पौष्टिक भोजन के अभाव में शरीर कमजोर होता जा रहा है और नई पीढ़ी दुर्बल और शक्तिहीन-सी होती जा रही है। आबादी अधिक होने के कारण बालकों को न तो अच्छी शिक्षा मिल पाती है और न नौकरी। परिणाम यह होता है कि उनकी विविध उच्छृंखलताएँ अपराधों और विघटनात्मक कार्यों के रूप में फूटती हैं, जिससे समाज की सुख-शान्ति को खतरा उत्पन्न होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अभिभावक हैं, तो उत्तरदायित्व भी निभाइये

जिस पर अपनी सारी हैसियत दाँव पर लगी हो, ऐसे व्यवसाय में हाथ डालते समय समझदार लोग गम्भीरतापूर्वक सोच-विचार करते हैं। ट्रैक्टर सत्तर हजार का आता है। उसके लिए बैंक लोन लेते समय अपनी जमीन गिरवी रखनी पड़ती है, कहीं न कहीं से धन जुटाना पड़ता है। ट्रैक्टर के लायक काम न हो, चलाते ही एक्सीडेन्ट हो जाय तो मशीन कबाड़ी के हाथ बेचनी पड़ती है। जमीन नीलाम होती है। चलाते समय भतीजे के हाथ पैर टूट गए तो ऐसी अपंगता सदा दुःख देती रहती है। सोचा कुछ, हुआ कुछ इसे कहते हैं समझ का या समय का फेर।

सन्तानोत्पादन कृत्य में हाथ डालने वाले आमतौर से ट्रैक्टर खरीदने से भी बढ़े-चढ़े लाभ मिलने के सपने देखते हैं। बेटी नहीं निश्चित रूप से बेटा ही होगा। वंश चलेगा, पितरों को पिण्डदान मिलते रहेंगे, बुढ़ापे का सहारा होगा और नाम रोशन करेगा, सदा सेवा करेगा और आज्ञानुवर्ती रहेगा, रूप और गुण का धनी होगा।'' जिस दिन से भ्रूण स्थापित होता है उसी दिन से इन्हीं सपनों के रंग-विरंगे, सुनहरे चित्र गढ़े जाते रहते हैं। मस्तिष्क पर वे ही छाए रहते हैं। पर वास्तविकता किस रूप में सामने आवेगी, यह कहना कठिन है। काली-कुरूप लड़कियाँ होती चली गईं और उनके लिए वर ढूँढ़ना और दहेज जुटाने का प्रश्न सामने आया तब उसका हल किस प्रकार निकलेगा, यह सब अविज्ञात के अंचल में ही छिपा रहता है।

सन्तान अपने साथ अधिकांश विशेषताएँ वंशानुक्रम के आधार पर लेकर आती है। उनमें जननी और जनक जैसी संरचना, मुखाकृति ही नहीं होती वरन् गुण, कर्म, स्वभाव की भी अनुकृति होती है। रज-वीर्य में माता-पिता की ही नहीं, उनके पूर्वजों की भी महत्त्वपूर्ण थाती का संकलन साथ होता है। इसलिए प्रजनन जैसे कार्य की कल्पना करने, उसकी ओर कदम बढ़ाने वालों को सौ बार सोचना चाहिए कि जो उत्पन्न किया जा रहा है, उसके लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि बनी या नहीं। किसान फसल काटने और उसे जमा करने का प्रबन्ध करने से पूर्व खेत की जुताई, खाद, पानी आदि की व्यवस्था पहले करता है। इस ओर आँखें बन्द किए रहने और कुछ भी किसी भी समय बो देने पर मनचाही फसल के सपने देखना ऐसा ही है, जैसा शेखचिल्ली का परिवार बसाना इस प्रयास को चाहें तो पाँच बीघे वाले का उतावली में ट्रैक्टर खरीद लाना भी कह सकते हैं।

आवश्यक नहीं—कि सन्तानोत्पादन का प्रतिफल इच्छानुरूप ही होगा, उसमें प्रसन्नता लाभ ही मिलता रहेगा। उसका सरंजाम ठीक से न जुटाया गया होता तो जीवन भर उस गलती का दण्ड ही भुगतना पड़ेगा। गर्भवती को समुचित पोषण न मिले पूरे नौ महीने कलह-क्लेश में काटने पड़ें, रुग्णता में कोई चिकित्सा की पूछताछ न करे तो जन्मेगा सो आरम्भ से ही दुर्बल और रोगी पैदा होगा। उसकी साज-संभाल और चिकित्सा इतनी महँगी, इतनी खीज भरी होगी कि बुढ़ापे का सहारा विवाह के एक वर्ष के भीतर ही नासमझी का बदला चुकाने लगेगा।

लड़का हो या लड़की उसे शारीरिक और मानसिक दृष्टि से स्वस्थ तो होना ही चाहिए। यह भाग्य भरोसे नहीं होता। उत्पादनकर्ताओं की अपनी निज की स्थिति कैसी है, इसकी तस्वीर खिंचकर आती है। साँचा जैसा भी होगा, ढली वस्तु वैसी ही शक्ल-सूरत की होगी। गुण भी उसके वैसे ही होंगे। अस्वस्थता और दुर्गुण साथ लेकर जन्मने वाले बालक माँ-बाप से उनकी करतूत का बदला सारे जीवन चुकाते हैं। दुर्गुणी बालक अपने लिए अभिशाप होते हैं, सम्पर्क वालों, सम्बन्धी-कुटुम्बियों को त्रास देने में कमी नहीं छोड़ते। सबसे अधिक वे छोटे रहने तक माता को और बड़े होते ही पिता को सताते हैं और यह सिलसिला आजीवन चलता रहता है। जिनने सब कुछ भाग्य भरोसे ही छोड़ रखा है, जिन्हें प्रजनन के पीछे कोई उत्तरदायित्व दिखाई नहीं पड़ते, काम कौतुक का नशा ही जिन्हें यौनाचार के लिए प्रेरित करता है और प्रकृति की खिलवाड़ के अनुसार बच्चे छप्पर पर से आ टपकते हैं, जिन्हें आगे-पीछे का कोई ज्ञान नहीं है, जिन्हें किसी जिम्मेदारी का भी बोध नहीं है, उनके लिए तो बिल्ली के बच्चे जनने की तरह यह भी एक खिलवाड़ है। बिल्ली जिन्दगी भर ३०-४० बच्चे जनती है पर उनमें से कितनों का क्या भविष्य हुआ, इस सम्बन्ध में कुछ सोचने की उसे आवश्यकता भी प्रतीत नहीं होती। प्रकृति ने अपने सृजन की शृंखला को चलाते रहने के लिए प्राणियों के साथ जो मजाक किया है, उसे पशु-पक्षी, कीट-पतंग ही नहीं ऐसे नर पशु भी वहन करते हैं, जिन्हें बच्चे के स्तर तथा भविष्य के बारे में अपनी जिम्मेदारी का कोई बोध नहीं है। वे कई-कई बच्चे जल्दी घर-आँगन में बिखेर देते हैं, पर यह कदापि अनुभव नहीं करते कि इनके प्रति जनने से पहले और बाद में क्या कुछ करना भी था क्या ? यदि हाँ, तो उस जिम्मेदारी को किस प्रकार, किस सीमा तक निवाहा गया।

माता-पिता का अपना स्वास्थ्य सुदृढ़, आयु परिपक्व और अनुभव समुचित होना चाहिए। जिन विशेषताओं को बालकों में देखना है, उन सबका वर्षों पहले स्वयम् अभ्यास करना चाहिए। बच्चा माता के उदर में अपने स्तर का निर्माण एक बड़ी सीमा तक कर लेता है, अतएव जन्मदात्री के लिए वैसी सुविधा, शिक्षा, प्रसन्नता का प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे उस सम्बन्ध में कोई अभाव रहने के कारण बालक विद्रोही होकर न जन्मे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जन्मने के बाद वह ढेरों तरह की देखभाल की अपेक्षा करता है, चुहिया के और स्त्री के बच्चों में अन्तर है। उसके लिए आहार, वस्त्र, सफाई, सुविधा के ढेरों उपचार चाहिए। एक वर्ष का होने तक वह अधर में लटका होता है। साल भर के भीतर सौ पीछे बीस बच्चे तनिक सी असावधानी के कारण मौत के मुँह में चले जाते हैं। न आप अपने मुँह से वे कठिनाइयाँ-आवश्यकता बता पाते हैं और न इस स्थिति में होते हैं कि चूजों की तरह बिना मुर्गी के किसी प्रकार की सहायता माँगे अपना गुजारा आप करते रह सकें। बबूल के झाड़ और छुई-मुई के पौधों में जो अन्तर होता है, वही अन्य प्राणियों और मनुष्यों के बच्चों में होता है। वे बहुत ही कोमल होते हैं। तनिक सी असावधानी में बीमार पड़ जाते और मौत के मुँह में चले जाते हैं। इनके लिए क्या किया जाना चाहिए, यह तो किसी अच्छी पुस्तक से पढ़ा या नर्स से पूछा जा सकता है। पर प्रश्न जानकारी की कमी का नहीं, लापरवाही का है। गोदी में उठा लेना और खिलौने की तरह हिला-डुला कर यथास्थान रख देने से काम नहीं चलता। किसी लड़की, नौकरानी या दाया के ऊपर उसे लादे फिरने की व्यवस्था से भी काम नहीं चलता। अभिभावकों में इतनी गहरी दिलचस्पी होनी चाहिए कि उस गूँगे, बहरे, अपंग, माँस-पिण्ड की हर आवश्यकता को समझ सकने लायक मनोविज्ञान विकसित कर सकें और ऐसी सन्तुलित व्यवस्था रख सकें कि कमी या अभाव में से किसी का भी दबाव उस कली से कोमल शिशु को मरोड़ कर न रख दे।

जन्म दिन से लेकर एक वर्ष के होने तक तो उन पर सोते-जागते बराबर निगरानी रखनी पड़ती है। इसके बाद स्कूल जाने योग्य पाँच वर्ष का होने तक और भी अधिक सतर्कता बरतनी पड़ती है। क्योंकि इन दिनों बच्चों की अपनी अकल तथा प्रवृत्ति काम करने लगती है अनुभवहीनता के कारण उन दिनों वह जो भी करता है उसमें उचित का अंश कम और अनुचित का अधिक होता है। मारपीट से, डराने से बात और भी बिगड़ती है। इसलिए न केवल दुलार वरन् सुधार का भी ऐसा मिश्रित प्रयोग करना पड़ता है, जिससे वह झगड़े भी नहीं, रूठे भी नहीं किन्तु वह करने-सीखने लगे जो उसके हित में हैं और जो आप कराना चाहते हैं। ऐसा दुटप्पा व्यवहार कर सकने के लिए गहरी चतुरता और सूक्ष्म बुद्धि चाहिए। वह किसी न किसी प्रकार सीखनी और प्रयोग में लानी ही होगी अन्यथा बच्चा आग पकड़ने, बर्र या कील मुँह में दे लेने, सीढ़ियों पर से नीचे फिसल पड़ने, खड़े होने के प्रयास में गिर कर चोट लगा लेने जैसी कुछ करतूतें कर बैठेगा।

माता-पिता ही नहीं, समूचे परिवार की शारीरिक और मानसिक विद्युत शक्ति का प्रभाव बच्चों पर पड़ता है। जो भी उन्हें गोदी में लेते हैं, खिलाते हैं, उनके व्यक्तित्व का असर छोटे बच्चों पर पड़ता है। उनके स्वभावों और संस्कारों को वे तेजी से ग्रहण करते हैं। इसलिए जो सतर्कता पहले माता को बरतनी पड़ती थी, वह अब परिवार के सभी सदस्यों को बरतनी चाहिए। बच्चों से कुछ कहने या पढ़ाने-सिखाने की अपेक्षा अपने आपको इस स्तर का बनाना चाहिए, जिसके सहज प्रभाव से बच्चा प्रभावित होकर अपने व्यक्तित्व में उत्कृष्टता का समावेश कर सके।

जब तक बच्चा स्कूल नहीं जाता, तब तक परिवार के बच्चे तथा बड़े ही उसके सहपाठी हैं। वे जो करते हैं, जो कहते हैं प्रायः उसी की नकल बालक करते हैं। इसलिए उनके खेल-खिलवाड़ का प्रबन्ध करते हुए भी उसमें उपयुक्तता का समावेश होना चाहिए। बालकों को भोजन और खाने का समय अलग-अलग उनकी स्थिति के अनुरूप होना चाहिए। बड़े जब जो खाएँ, उसी में बच्चों को भी साथ रखें, तो बालक के पेट में भारी चीजें अधिक मात्रा में पहुँचेंगी और उसे अपच अन्य बीमारियों का शिकार बनायेंगी। चलने-फिरने लगने के बाद मिट्टी-धूल तथा दूसरे प्रकार की गन्दगियों से उनका सम्पर्क बनता है। अतएव उनके कपड़े बार-बार बदलने चाहिए। खाने पीने के पूर्व एवं बाद हाथ-मुँह धो लेने जैसे सफाई की आदतें इन्हीं दिनों डालनी चाहिए। यह काम स्वयं करने और उनसे नकल कराने की विधि से ही हो सकता है। बच्चों के भविष्य को ध्यान में रखते हुए परिवार के सभी लोगों को अपना रवैया सुधारना चाहिए ताकि उसके अनुकरण का अच्छा प्रभाव पड़े। इन दिनों समूचा परिवार ही बालक का अध्यापक होता है। यह बात उन्हें समझनी या समझाई जानी चाहिए।

छोटे बालकों की बुद्धि तो उतनी तीव्र नहीं होती पर भावनाएँ बड़ों की अपेक्षा कहीं अधिक संवेदनशील होती हैं। मार-पीट, गाली-गलौज, रोना-पीटना तथा अश्लील हरकतों के मूल में जो कारण होता है, उसे वे पकड़ लेते हैं। यही नहीं, उनके पीछे छिपे हुए बुराई वाले अंश को अपेक्षाकृत अधिक जल्दी पकड़ते हैं। जैसे-जैसे बच्चा विकसित होता जाता है, वैसे-वैसे उसका लोगों से सम्पर्क भी बढ़ता जाता है। बराबर के या बड़े बच्चों के साथ खेलता भी है। इसलिए अब इस सारे परिवार पर नजर रखनी चाहिए। इनमें से कोई उजड्ड होगा तो उसकी हरकतें बालक को प्रभावित किए बिना न रहेंगी। इस आयु में जमे हुए संस्कार जड़ पकड़ लेते हैं और बड़े होने पर भी स्थिर बने रहते हैं। इन आदतों को छुड़ाना पीछे बहुत कठिन पड़ता है।

जब तक बच्चा स्कूल न जाने लगे तब तक अधिक सतर्कता का सिलसिला बढ़ता ही जाता है। उन्हें विकसित करने के लिए घर से बाहर ले जाना, मनोरंजन के छोटे-मोटे दृश्य दिखाना और उनके माध्यम से उन्हें सत्प्रवृत्तियों से परिचित कराने का क्रम भी चलाते रहना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिए। इसमें माता ही नहीं पिता को भी अपना सहयोग करना चाहिए और न केवल बच्चों को वरन् इस बहाने पूरे परिवार को सद्गुणों का अभ्यस्त बनाना चाहिए।

जब तक बच्चा स्कूल न जाने लगे तब नया बच्चा माता के गर्भ में न आने पाए। इसकी पूरी सतर्कता रखनी चाहिए अन्यथा स्त्री की शक्ति, परिवार व्यवस्था, बच्चों की बहुमुखी सतर्कता आदि में व्यय होने से उसका उतना योगदान न बन पड़ेगा, जितना कि आवश्यक है। आमतौर से पाँच वर्ष की आयु से स्कूलों में भर्ती होती है पर जहाँ छोटे बच्चों के लिए शिशु मन्दिर हैं वहाँ पहले भी उनकी भर्ती की जा सकती है। उन दिनों पढ़ना-लिखना तो अधिक नहीं हो पाता, पर बुद्धि विकास के लिए चित्रों या खिलौनों के माध्यम से उनकी जानकारी का क्षेत्र बढ़ाया जा सकता है। इस सन्दर्भ में भी यह देखभाल रखनी चाहिए कि वहाँ का वातावरण कैसा है ? घर से बेगार भगाने के लिए कहीं फूहड़ कानवेण्ट के शिशु मन्दिरों में बालक भेजे गए तो वहाँ के अनुपयुक्त रवैये से बालक सुधरने और विकसित होने के स्थान पर कुरुचि को जल्दी पकड़ लेते हैं। यह सभी बातें अभिभावकों के दायित्व से सम्बन्धित हैं एवं ध्यान में रखने योग्य हैं।

उद्धत यौनाचार के भयावह दुष्परिणाम

विवाह के साथ ही नर-नारी के बीच यौन सम्बन्धों की छूट मिलती है और उनमें ही यह प्रतिबन्ध है कि वह पतिव्रत और पत्नीव्रत की मर्यादाओं के अनुरूप ही चलें। जब सन्तानोत्पादन की आवश्यकता दोनों पक्ष समान रूप से अनुभव करें, तभी उस प्रसंग में हाथ डाला जाय अन्यथा हँसी-विनोद, हास-परिहास जैसे क्रीड़ा-कौतुकों से प्रेम प्रदर्शन का उद्देश्य पूरा कर लिया जाय। स्नेह और सहयोग दिनचर्या के प्रत्येक क्रिया-कलाप में समन्वित रखा जा सकता है और उतने भर से दाम्पत्य-जीवन में उल्लास एवं उत्साह बना रह सकता है।

सृष्टि के सभी जीव-जन्तु इस मर्यादा का पालन करते हैं। उनमें से अधिकांश वर्ष में एक बार ही प्रजनन प्रयोजन के लिए इस ओर कदम बढ़ाते हैं। बुद्धिहीन होते हुए भी वे प्रकृति अनुशासन का पालन करते हुए साथ-साथ रहते हुए इस मर्यादा का उल्लंघन नहीं करते।

अकेला मनुष्य ही है। जो इस अनुबन्ध का उल्लंघन करता है और यौनाचार को मनोरंजन का विषय बनाता है। प्रजनन अंगों की संरचना ऐसी है जिनका यौनाचार के निमित्त न्यूनतम उपयोग ही किया जाना चाहिए। सो भी मात्र अपने जोड़ीदार के साथ। इसका उल्लंघन करने से स्वास्थ्य खोखला होता है। तेज और सौन्दर्य घटता है, जीवनी शक्ति में कमी पड़ती है। फिर कहीं यदि इस सन्दर्भ से मर्यादाओं का उल्लंघन चल पड़े। नर नारी अनेकों को अपना साथी बनाने और उच्छृंखलता बरतने लगें तो यौन रोगों की उत्पत्ति होना स्वाभाविक है। पारस्परिक सद्भावना और विश्वासपात्रता घटती है। इतना ही नहीं अनाचार की ओर देखने-सुनने वालों का भी मन चलता है और यह शृंखला बढ़ते चलने पर पारिवारिक ही नहीं सामाजिक जीवन का भी ढाँचा बखेर देती है। सन्तान पर बुरा असर पड़ता है और आर्थिक अपव्यय का एक नया द्वार खुलता है। इन सबमें बड़ी बात है कि अनेकों के साथ दाम्पत्य सम्पर्क स्थापित करने का प्रतिफल भयंकर यौन रोगों के रूप में सामने आते हैं। जो जीवन भर कष्ट देते हैं। उनका स्थायी उपचार भी नहीं हो पाता। एक पक्ष इस प्रकार के रोगों से ग्रसित हो तो उसकी छूत दूसरे पक्ष को लगती है। सन्तानोत्पादन का क्रम चल पड़े तो नवजात शिशु भी उस वंश परम्परा को साथ लेकर आते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी वह अभिशाप त्रास देता रहता है। व्यभिचारी और व्यभिचारिणाँ प्राय: इस प्रकार के रोगों के शिकार पाये जाते हैं। वेश्याओं के यहाँ इस व्यथा का उत्पादन होता है और उसकी बेल इतनी लम्बी चलती है कि वह न जाने कितनों को अपनी चपेट में लेकर विनाशकारी दुष्परिणाम उत्पन्न करती है। जिन देशों या समाज में यौन स्वेच्छाचार पनपता है, उसके पारिवारिक जीवन में आशंका, अविश्वास और कलह के केन्द्र रहते ही हैं साथ ही यह भयंकर रोग परम्परा इस तेजी से पनपती है कि दोषियों के साथ-साथ निर्दोष भी गेहूँ के साथ घुन की तरह पिसते हैं। पाश्चात्य देशों में यह व्यथा बेतरह बढ़ती जा रही है क्योंकि वहाँ दाम्पत्य मर्यादाओं का पालन अनिवार्य नहीं समझा जाता।

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त युवकों और प्रौढ़ों का बहुत बड़ी संख्या में संहार हुआ। फलत: आश्रितों की भावनात्मक और आर्थिक स्थिति को भारी आघात लगा। नारियों की तुलना में नर बहुत कम रह गये। अनाथ महिलाओं के सामने पारिवारिक निर्वाह की एक विकट समस्या के रूप में सामने आयी, फिर वे भावनात्मक सहयोग का अभाव भी अनुभव करने लगीं। इन दोनों कमियों की सहज पूर्ति यौन स्वेच्छाचार अपनाने से होती थी। इसलिए वह अधिक सस्ता और व्यापक होता चला गया। दाम्पत्य मर्यादाएँ नहीं के बराबर रह गईं।

इस कुप्रचलन के जहाँ अन्यान्य दुष्परिणाम सामने आये वहाँ एक महान संकट यौन रोगों के रूप में सामने आया। प्रदर, प्रमेह, स्वप्नदोष जैसे सामान्य रोगों से व्याधि उन महारोगों तक फैली जिन्हें सुजाक या 'सिफलिस' कहते हैं। छोटे रोगों को तो लोग गुपचुप भी सहन करते रहें, पर 'सिफलिस' वैसा रोग नहीं है जो छिपाये छिप सके। उसमें लगभग कोढ़ जैसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इतना ही नहीं उसमें जननेन्द्रियाँ सड़ने-गलने लगती हैं और रक्त में उस रोग के विषाणुओं की अभिवृद्धि से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सारे शरीर में व्रण-विस्फोट होने लगते हैं। इससे भी बड़ी बात है कि वह छूत की बीमारियों में अग्रणी होने से एक से दूसरे को दौड़कर लगता है और निर्दोष भी असावधानी के कारण इस संक्रामक व्यथा के चंगुल में जकड़ जाते हैं और अपने सम्पर्क क्षेत्र इसी आग में झुलसते हैं।

सन् १९१४ से १९१९ तक चले प्रथम विश्व महायुद्ध का दौर प्रायः योरोप के देशों में रहा। विशेषतया जर्मनी के निकटवर्ती देशों में। इसलिए युद्ध के उपरान्त अन्य समस्याओं के अतिरिक्त व्यभिचार की बाढ़ आई। लगे हाथों संक्रामक रोग 'सिफलिस' भी उबल पडा। जिनने उसका दुष्परिणाम देखा वे ऐसे रोगियों को साक्षात् यमदूत समझकर अपना प्राण बचाने के लिए घबराने और दूर रहने लगे।

जेल में एक पादरी की मृत्यु इसी रोग से हुई। एक से दूसरे में इसकी भयंकरता की जानकारी अफवाहों के साथ फैली, फलतः उस जेल के कैदी कहीं अन्यत्र तबादले के लिए आग्रह करने लगे। चूँकि चर्चा दूर-दूर तक फैल चुकी थी, इसलिए जहाँ भी उनके तबादले होने थे, वहाँ के कैदियों ने उन्हें अपने यहाँ न आने देने का हठ ठान लिया। अन्त में उस सिर दर्द से कैदियों को मुक्त करके अधिकारियों ने किसी प्रकार अपना पीछा छुड़ाया।

बात कैदियों की नहीं गली-मुहल्लों की थी। एक ही छोटे कस्बे में करीब २००० रोगी ऐसे पाये गये, जिनकी बीमारी प्रत्यक्ष दीखती थी। उन्हें कोई घर में रखने को तैयार न हो रहा था। अस्पतालों के डाक्टरों ने भी उनका इलाज करने से इन्कार कर दिया। ऐसी दशा में उनके लिए किसी पुराने किले का खण्डहर निवास गृह बनाया गया। डाक्टर वहीं एक जगह खाने और लगाने की दवाएँ रखवा देता था। शासन भी भोजन, वस्त्र का ऐसा प्रबन्ध कर देता था कि एक स्टोर से वे लोग स्वयं ही अपने काम की चीजें निकाल लिया करें। जिन्हें प्रबन्धक नियुक्त किया गया था वे भी अपनी लम्बी छुट्टी लेकर चले गये या स्तीफे भेज दिये।

वैज्ञानिक शोधों ने इसे अच्छा करने की तो नहीं पर किसी सीमा तक दबाने की औषधियाँ निकालीं। प्रतिबन्धों के बीच पीड़ित भारी संख्या में मरे और इसके उपरान्त वर्षा थमने की तरह रोगों की भयंकरता घटी पर उसके बीजाणु एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे।

इस संकट को युद्ध का अभिशाप माना गया। सैनिकों के गली-मुहल्लों में प्रवेश करने पर प्रतिबन्ध लगाये गये। बड़े जन सम्पर्क वाले कारखानों में इसकी डाक्टरी जाँच जल्दी-जल्दी होने लगी। महिलाओं के लिए अलग से अस्पताल बने। जनसाधारण को इस भयंकरता से परिचित कराया गया तो एक शताब्दी में यह तूफान किसी प्रकार रुका और सामान्य स्थिति बनी।

इसके बाद दूसरा महायुद्ध आ धमका। उनने भी वही पुरानी परिस्थितियों को नया जीवन दिया। इस बीच एक और नया व्यसन पनपा 'समलिंगी यौनाचार' का। पुरुष पुरुषों से और स्त्रियाँ स्त्रियों से अपनी उच्छृंखल आदत का किसी प्रकार समाधान करने लगीं। सोचा गया था कि कदाचित् उससे वह पुरानी व्यथा न उभरेगी और व्यसन को भी तृप्ति मिलती रहेगी।

यह प्रयास और अधिक अप्राकृतिक होने के कारण नये रूप में उभरा। इस नये रोग का नाम 'ऐड्स' (ए० आय० डी० एस०) अर्थात् एक्वायर्ड इम्यूनो डेफीशिएन्सी सिन्ड्रोम रखा गया। ऐन्टीबायटिक्सों के नये आविष्कारों ने सिर्फ इतनी ही मदद की कि पुराने लक्षणों को नया रूप दे दिया।

इस रोग का रोगी अपने स्नायु समूहों की क्षमता तथा ज्ञान तन्तुओं की क्षमता खोता चला जाता है और कुछ ही सप्ताह में पक्षाघात पीड़ित की तरह अपंग हो जाता है। इसी स्थिति में उसकी मृत्यु हो जाती है। अच्छाई इतनी ही है कि रोगी को बहुत दिन पैर नहीं पटकने पड़ते। इलाज पर ज्यादा खर्च नहीं कराना पड़ता और जल्दी ही परलोक की टिकट कटा लेता है।

पिछली बार 'सिफलिस' का दौर योरोप तक सीमित रहा क्योंकि तब तक आवागमन के साधन सीमित थे और औद्योगीकरण, पर्यटन भी इतना नहीं बढ़ा था कि उस कारण 'सिफलिस' का क्षेत्र विस्तार हो सके। इसके लिए गोरों को ही चरित्र भ्रष्ट माना जाता था और युद्धोन्माद का दुहरा दण्ड भुगतते हुए देखा जाता था। पर अभी तीसरा युद्ध नहीं आया। जहाँ-तहाँ छुटपुट लड़ाइयाँ ही चलीं किन्तु अन्य कारणों से आवागमन बढ़ गया। यह प्रायः सम्पन्न होते हैं और नई-नई जगहों में नये-नये प्रकार से व्यसन को भुनाना चाहते हैं। फलतः नया रोग 'ए० आई० डी० एस०' अब क्रमशः विश्वव्यापी होता चला जा रहा है। उसने अपनी लपेट में एशिया को ले लिया है। सिंगापुर, थाईलैण्ड एक प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र बनता जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय तस्करी का भी वह अड्डा बनता जाता है, साथ ही व्यभिचार का केन्द्र भी। इसका प्रतिफल स्पष्ट है। उधर से इस रोग के बीज लेकर लोग अपने-अपने यहाँ वापस लौटते हैं और फिर अपने परिवार, पड़ौस को इस उपहार का वितरण करते हैं।

प्लेग-हैजा की तरह द्रुतगति से इसका विस्तार नहीं होता और न लक्षण ही इतने स्पष्ट प्रकट होते हैं। जानकारी तब मिलती है जब पानी सिर के ऊपर होकर उतर जाता है। पोशाकों का फैशन जैसे जल्दी-जल्दी बदलता रहता है और उसकी नकल यहाँ से वहाँ होती रहती है, उसी प्रकार अब रोगों का प्रचलन भी चित्र-विचित्र रूप में आता है। पूर्वकाल में यौन रोग नपुंसकता के तथा दुर्गन्धित स्रावों के रूप में उपजते थे। पीछे वे सुजाक, आतशक के रूप में बदल गये। जब

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इनकी रोकथाम के कुछ उपाय खोजे गये तब तक नये रोग एड्स की भयंकरता सामने आ गई है। उसकी पहुँच संसार के कोने-कोने में पहुँचती जाती है, पर्यवेक्षण से पता चला है कि अब इस रोग के रोगी लाखों की परिधि पार करके करोड़ों में पहुँच चुके हैं और अभी कोई कारगर उपाय इसका नहीं खोजा जा सका। जब तक खोजा जायगा तब तक प्रचलित उद्दण्डता के कारण उसका कोई और रूप सामने आ उपस्थित होगा।

कोलम्बस अमेरिका की खोज में गया था। वहाँ रैड इण्डियन महिलाओं से सम्पर्क साधा और लौटने पर इस प्रकार सड़ा कि जननेन्द्रिय से लेकर पेट तक बुरी तरह सड़ गया था।

अभिनव 'एड्स' रोग पर नियन्त्रण कब तक हो सकेगा। इसका उत्तर एक ही है कि यौन सदाचार को अनिवार्य मानने वाली पुरातन दम्पत्य परम्परा को अपना कर परिवार को स्वर्ग बनाने से इन्कार किया जाता रहा तब तक उस क्षेत्र को नरक की अनेकानेक व्यथाओं वेदनाओं से मुक्त नहीं रखा जा सकता। इन अभिशापों में 'ऐड्स' जैसे रोगों की अभिवृद्धि तो निश्चित ही है। हम अपने दुष्कर्मों का प्रतिफल हाथों-हाथ भुगतेंगे ही।

कामुकता का यह अतिवाद और भी हानिकारक

मनुष्य जिस व्यक्ति या आकृति-प्रकृति का अधिक चिन्तन करता है वह उसी ढाँचे में ढलता जाता है। यह एक प्रसिद्ध एवं सर्वविदित मानसिक तथ्य है। तत्वज्ञानी इस संदर्भ में कीट-पतंगे का उदाहरण देते रहते हैं। इष्टदेव का ध्यान करके उन्हीं विशेषताओं से अपने को ढालने का प्रयत्न किया जाता है।

टिड्डा, जब तक हरी घास रहती है, तब तक हरे रंग का रहता है और जब घास सूखकर पीली पड़ जाती है तो उसका शरीर भी पीला पड़ जाता है। यह दृष्टि के सामने रहने वाले पदार्थ के अनुरूप ढलने की प्रक्रिया है जो सर्वत्र किसी न किसी रूप में देखी जाती है। उदाहरण के लिए कुसंग और सत्संग के कारण मनुष्यों का चिन्तन और चरित्र उसी ढाँचे में ढल जाता है।

यह प्रसंग नर-मादा प्रसंगों में भी अत्यधिक लागू होता है। पुरुष प्रकृति का नारी के ढाँचे में ढलना और नारी का पुरुष स्थान ग्रहण करने का उत्साह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि किसकी मनोदशा पर किसका प्रभाव तन्मयता और किस गहराई तक चढ़ा रहता है।

पति-पत्नी का सहयोगी प्यार एक बात है। नारी का नर के विषय में अत्यधिक चिन्ता करना या नर का नारी के रूप-यौवन विशेषतया जननेन्द्रियों की कल्पना करते रहना आरम्भ में प्रतिपक्ष के प्रति थोड़ा आकर्षण तो बढ़ाता है, पर कुछ ही दिनों में ऐसी मनःस्थिति बन जाती है कि इष्ट के प्रति समर्पित होने की भावना बलवती होने लगती है। हिजड़ों में वही देखा गया है। वे या तो नर होकर नारी वेषभूषा या मनःस्थिति के प्रति अपने को समर्पित करते हैं या नारी अपनी स्थिति को अपर्याप्त मानकर पुरुष के गौरव, वर्चस्व या सौंदर्य के प्रति अपने को समर्पित कर देती है। ऐसी दशा में पुरानी संरचना और नवीन आकर्षण के बीच द्वन्द्व युद्ध चल पड़ता है और स्थिति मध्यवर्ती बन जाती है।

विगत ५० वर्षों में लिंग परिवर्तन के आपरेशन जितने हुए हैं, इतने इससे पहले कभी नहीं हुए थे। नपुंसकता का अनुपात भी बढ़ा है। नारी अपने नारीत्व को हीन मानती है और नर में अपने से विपरीत पक्ष के प्रति इतना आकर्षण बढ़ जाता है कि वह उसी प्रकार की रतिक्रिया में आनन्द की कल्पना करता है। ऐसी स्थिति में आतुरता की परिणति मध्यवर्ती नपुंसकता में होती है।

चूँकि समाज में नर का प्रभुत्व है। मादा की अपेक्षा उसे सुविधाएँ, स्वालम्बन और वर्चस्व अधिक प्राप्त है। इसलिए नारी की महत्वाकांक्षा नर की स्थिति में पहुँचने की होती है। ऐसी महिलाएँ उन कार्यों में रस लेती हैं, जिनमें उन्हें पुरुष जैसा काम करने का अवसर मिले। नौकरियों में भी ऐसे काम ढूँढ़ती हैं जिनमें उन्हें संकोचशीलता के बंधनों में न बँधकर पुरुषोचित पराक्रम दिखाने का अवसर मिले। सेना में, पुलिस में, व्यवसाय में नारी का बढ़ता उत्साह इसी मनोवृत्ति का परिचायक है।

सामान्य रहन-सहन में भी इन दिनों इस तथ्य की झाँकी मिलती है। लड़के दाढ़ी-मूँछ रखना पसंद नहीं करते। बाल भी अपेक्षाकृत ऐसा रखते हैं, जिसे देखने से नर-नारी की पहचान न हो सके। लड़कियाँ इस संबंध में एक कदम और आगे हैं। उनकी अभिरुचि पुरुष वेश की ओर बढ़ रही है और ऐसे खेलों में अपनी वरिष्ठता वह सिद्ध कर रही है, जिनमें पहले पुरुषों का ही एकाधिकार था।

नर-नारी को समानता और नारी मानवीय मौलिक अधिकारों की दृष्टि से इसमें कोई हर्ज नहीं, वरन् अच्छा है कि नर-नारी सभी एक स्तर पर रहें और मिल-जुलकर साथी-सहयोगी की तरह सहकारिता का सिद्धान्त अपनायें।

पर चिन्ता की बात तब बनती है, जब कामुकता की दृष्टि से कोई पक्ष दूसरे पक्ष की ओर इस कदर आकर्षित और चिन्तनरत होता है कि उसे अपनी स्थिति पर असंतोष और दूसरे पक्ष का वर्चस्व प्रतीत होने लगे। ऐसी दशा में मनःस्थिति, शारीरिक स्थिति और सामाजिक व्यवस्था में व्यतिक्रम उत्पन्न होता है और यह अतिवाद बड़ी उपहासास्पद और चिन्ताजनक समस्याएँ उत्पन्न करता है।

अच्छा यही है कि आत्म गौरव को न गँवाया जाय। अपने को हेय और और दूसरे को श्रेष्ठ न माना

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाय। प्रकृति ने जो जिम्मेदारी सौंपी है, समाज परम्पराओं ने आकृति-प्रकृति के अनुरूप जो परम्परा चलाई है, उसे यथावत् चलने दिया जाय।

धरती खिसक जाय तो आश्चर्य नहीं

अमेरिका के एक वैज्ञानिक श्री मार्सटन बेट्स ने भविष्यवाणी की है, "यदि अगली शताब्दियों में विश्व की जनसंख्या वर्तमान गति से ही बढ़ती रही तो विश्व के कुल जन-समूह का वजन उतना हो जायेगा, जितना कि पृथ्वी का वजन है अर्थात् पृथ्वी का भार दूना हो जायेगा।"

ग्रह-नक्षत्र जिस गुरुत्वाकर्षण बल के सहारे आकाश में स्थिर हैं, उसका कम या अधिक होना उनके भार से भी सम्बन्ध रखता है। भार बढ़ने के साथ गुरुत्वाकर्षण बल ढीला पड़े और पृथ्वी अपने कक्ष से खिसक कर कहीं और जा लगे तो कोई आश्चर्य नहीं।

डा० बेट्स के अनुसार १९६० में विश्व की जनसंख्या तीन अरब तीस करोड़ थी, अमेरिकी जनसंख्या अध्ययन व्यूरो द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट में कहा गया है कि विश्व की जनसंख्या प्रतिवर्ष ६ करोड़ पचास लाख बढ़ रही है। १९८० तक ४, अरब ३० करोड़ और सन् २००० तक वह १० अरब अर्थात् १९६० से तीन गुनी से भी अधिक हो जायेगी। अकेले चीन की संख्या तब एक अरब ५० करोड़ होगी और यदि महामारी, युद्ध जैसी विभीषिका न आई और भरण-पोषण के साधन उपलब्ध होते रहे तो भारतवर्ष की ही जनसंख्या १ अरब हो जायेगी।

ईसा से आठ हजार वर्ष पूर्व सारे संसार में कुल लगभग २५ लाख लोग थे। उस समय न कोई अकाल का भय था, न महामारी का। पृथ्वी का वातावरण शुद्ध था, खाने को प्रकृति ही इतना दे देती थी कि कृषि आदि में व्यर्थ परिश्रम न करना पड़ता था। लोग देशाटन और ज्ञानार्जन का आनन्द लेते थे। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ी जटिलता बढ़ती गई और उसी अनुपात से स्वास्थ्य, आरोग्य, आजीविका, संरक्षण, खाद्य पदार्थ, निवास-स्थान, शिक्षा, सामाजिकता, अपराध आदि समस्याएँ भी बढ़ती गईं। आज तो जनसंख्या वृद्धि के कारण सारा संसार ही एक समस्या बन गया है।

ईसा जन्मे तब लगभग ३० करोड़ जनसंख्या थी। १७५० में दुगुनी से भी अधिक ७५ करोड़ के लगभग हो गई। १८५० में ११० करोड़ लोग इस पृथ्वी पर आ चुके थे, १९०० ई० में १६० करोड़ की जनसंख्या थी। १९२० में १८१ करोड़ ९० लाख और १९४० में २२४ करोड़ ६० लाख। १९६१ में यह संख्या बढ़ कर ३०६ करोड़, ९० लाख हो गई। जनसंख्या की यह बढ़ोत्तरी कम होने का नाम नहीं लेती, पृथ्वी में अधिक से अधिक १६०० करोड़ जनसंख्या का भार उठाने की क्षमता है। इससे एक छटांक वजन भी बढ़ा तो पृथ्वी रसातल को चली जायेगी। अर्थात् प्रलय हो जायेगी।

संयम न बरता गया तो यह स्थिति अधिक दूर नहीं। '१.९' यह संख्या लिखने में जितना समय लगा, उतनी देर में १.९ नये बच्चों ने जन्म ले लिया। अब अनुमान करें यह पूरा लेख लिखने तक ऊपर के दिये सब आँकड़े बदल जायेंगे। एक मिनट में २२५ बच्चे जन्म लेते हैं, एक घण्टे में उनकी संख्या २२५×६० =१३५०० हो जाती है। इस हिसाब से एक दिन में १३५००×२४=३२४००० होनी चाहिये पर बढ़ोत्तरी इससे अधिक होगी, क्योंकि अधिक से अधिक २० वर्ष में यह बच्चे भी बच्चे पैदा करने लगते हैं, अर्थात् वृद्धि का क्रम चक्रवृद्धि ब्याज की दर से बढ़ता है। पहले प्रतिदिन वृद्धि का औसत १ लाख ३६ हजार ९८६ था। १ घण्टे में ५ हजार ७०८ और १ मिनट में ९५ आदमी बढ़ते थे, उस हिसाब से १९७५ में ३८२ करोड़, ८० लाख, सन् २००० में ६८० करोड़ २०५० ई० में १३०० करोड़ एवं २०६४ में १६०० करोड़ हो जाने को थी, पर अब २२५ बच्चे प्रति मिनट पैदा होते हैं, यह पहले औसत से दो गुने से भी अधिक है, अर्थात् जनसंख्या से जो विस्फोट १०० वर्ष बाद होने वाला था, वह अब इसी शताब्दी के अन्त में हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं।

बदलती परिस्थितियों में विचार भी बदलें

कुत्ता कभी-कभी जहाँ-तहाँ से सूखी हड्डी उठा लाता है। उसे इतने चाव से चबाता है, मानों उसमें माँस जैसी स्वादिष्ट वस्तुएँ भरी पड़ी हों। सूखी हड्डी चबाते-चबाते जबड़ा छिल जाता है और मसूड़ों से खून बहने लगता है। उसे चखते हुए कुत्ता स्वादिष्ट वस्तुएँ उपलब्ध करने की कल्पना करता है, पर वस्तुतः वैसा कुछ होता नहीं। सूखी हड्डी तो जैसी, है वैसी ही रहेगी। जबड़े के खून-माँस को यदि शिकार मानने लगे तो यह उसकी भ्रमग्रस्तता ही है।

कामुकता एक मनोविकार मात्र है। वह जब तब उन्माद की तरह चढ़ता है और कल्पना के अनुरूप कुछ पाने में कल्पनाओं की झड़ी लगा देता है, पर वस्तुतः ऐसा होता नहीं। अपनी बहुमूल्य जीवन शक्ति का क्षण भर में निचुड़ जाने वाला सार ही ऐसा कुछ प्रतीत होता है, मानो कहीं से नियामत हाथ लग गई हो। होता इतना भर है कि अपना ही प्राण क्षरण होता है और ऐसा दृश्य खड़ा करता है मानो कोई उमंग हाथ लग गई हो। वस्तुतः जिस आनन्द की अनुभूति कामुकता के उन्माद काल में होती है, वह कहीं बाहर से नहीं आती, किसी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दूसरे से उपलब्ध हुई नहीं होती। मात्र अपना ही जीवन रस निचुड़ने से ऐसा प्रतीत होता है। इसे एक आश्चर्य ही कहना चाहिए कि अपने रक्त का स्वाद किसी दूसरे का प्रतीत होता है। इस भ्रान्ति को आश्चर्य के अतिरिक्त और क्या कहा जाय ?

चूहा पिंजड़े में घी से चुपड़ी रोटी को सूँघ कर उस में घुस जाता है। रोटी कितनी खा पाता है, इसका तो एक बार प्रवेश कर जाने पर ही पता चलता है। जीवन का अन्त उसे उसी जंजाल में जकड़े हुए व्यतीत करना पड़ता है।

सरकारी कानून में एक 'दफा' है कि बलात्कार, व्यभिचार करने वाले को लम्बे समय की सजा भुगतनी पड़ती है। ईश्वर के यहाँ कानून तो नहीं, पर कुचक्र एक ऐसा है कि कामुकता को नियति समझकर उस कुचक्र में फँस जाने वाले को हर जुर्म में प्रायः बीस वर्ष की सजा होती है। कामुकता का परिणाम बच्चा उत्पन्न होना होता है। उनके लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा, चिकित्सा, मनोरंजन, पढ़ाई, शादी से लेकर उसके लिए कुछ उत्तराधिकार में छोड़ मरने के लिए दिन-रात ईमानदारी, बेईमानी से किसी भी प्रकार कुछ करते रहना पड़ता है। यह सिलसिला एक के बाद दूसरे के क्रम में से आगे बढ़ने लगता है और एक बच्चा पैदा करने की सजा बीस वर्ष भुगतनी पड़ती है। इस अवधि में शारीरिक, मानसिक श्रम, समझदारी, नैतिक गिरावट आदि के कुचक्र में ही प्रायः सारा समय खप जाता है। इच्छा, आकांक्षा भी प्रायः समूची ही उसी प्रयोजन के लिए लग जाती हैं। जब उत्तरदायित्वों से निपटने का समय आता है, तब वह मनुष्य बुरी तरह खोखला हो चुका होता है। बार्धक्य और मौत इर्द-गिर्द घुमड़ने लगती है। कुछ अतिरिक्त कमा न पाने के कारण घर वाले भी तिरस्कार करते हैं और मरने में कितने दिन बाकी हैं, इसकी गणना करते रहते हैं। भूल का सुधार कर नये सिरे से जीवन को महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगा सकें, इसका अवसर भी निकल चुका होता है। सम्पदा पर से स्वामित्व तो परिवार वाले छीन ही लेते हैं, पर मोह फिर भी बना रहता है कि सम्पदा हमारी है। यद्यपि इसका इच्छित उपयोग कर सकने का अधिकार पहले ही छिन चुका होता है।

औसत आदमी की यही दुर्गति है। उसका मूल कारण खोजने पर कामुकता का वह ललक भरा उन्माद ही आधारभूत कारण होता है, जो जीवनी शक्ति को बुरी तरह निचोड़ लेता है। शरीर और मस्तिष्क को इस योग्य नहीं रहने देता कि वह कुछ संतोषजनक, उत्साहवर्धक काम कर सके। इस अवधि में जो-जो संस्कार एकत्रित कर लिए जाते हैं, वे शरीर के अन्दर शैतान की तरह चढ़े रहते हैं। कल्पनाओं पर तो हावी रहते ही हैं, चौरासी लाख योनियों में परिभ्रमण करने के बाद कहीं एक बार मिलने वाले मनुष्य जन्म को इसी दुर्गति में गँवा देना पड़ता है। नशेबाजी से भी बुरी किस्म की इस मदिरा को तो उत्सुकतापूर्वक पीते रहते हैं, सार तत्व गँवाते रहते हैं और साथ ही यह भी अनुभव करते रहते हैं कि न जाने किसका, कहाँ से, कब वजनदार पर लग गये।

विवाह का अर्थ कभी यह हुआ करता था कि दो व्यक्ति मिलकर एक और एक के अक्षर सघनता के स्तर पर रख लेने पर ११ हो जाते थे। उतनी शक्ति अर्जित कर लेते थे, उतना महत्त्वपूर्ण कार्य कर लेते थे, पर अब विवाह की उल्टी परिभाषा हो गई है। एक है-जीवनी शक्ति को निचोड़कर गन्दी नाली में बहा देना, दूसरा यह कि बच्चों का ऐसा भार लद जाना, जिसकी कोई उपयोगिता तो है नहीं। इसके लिए जिंदगी को पूरी तरह खपा-लुटा देना पड़ता है। यदि इस अनर्थ से किसी प्रकार बचा जा सका होता, तो बहुमूल्य मनुष्य जीवन का ऐसा श्रेष्ठतम उपयोग हो सकता, जिससे कि देवता भी ईर्ष्या करते। मनुष्य जीवन इतना महत्त्वपूर्ण है कि भगवान को भी जब कभी अवतार धारण करना पड़ता है, तो इसी आवरण को धारण करके आते हैं।

कोई समय था, जब कृषि योग्य भूमि पर्याप्त थी। जनसंख्या कम थी। तब खेतों और 'बागों' की साज-संभाल और रखवाली के लिए मनुष्यों की जनसंख्या अपेक्षित थी। तब प्रजनन खुशी का विषय समझा जाता था, पर अब तो परिस्थितियाँ बिल्कुल उल्टी हो गई हैं। जनसंख्या अन्धाधुन्ध बढ़ गई है और मूलभूत साधनों की उतनी ही कमी पड़ रही है, जितनी की जनसंख्या वृद्धि के हिसाब से आवश्यक समझी जाती है और उन्हें जुटाने के लिए आवश्यकता अनुभव की जा रही है। ऐसी दशा में प्रजनन बढ़ाना समाज के लिए अनेक संकट खड़े करना है। आज की सर्वाधिक ज्वलन्त समस्या बढ़ती हुई आबादी को रोके जाने की है। इस निमित्त अनेकों प्रयोग हो रहे हैं कि मनुष्यों का उत्पादन बढ़ने न पाये। ऐसी विपरीत परिस्थितियों में कोई समझदार यह नहीं सोचता कि वंश बढ़ाने से स्वर्ग में सद्गति मिलेगी, वंश चलेगा, पिण्डदान मिलेगा। आज की परिस्थितियाँ हर किसी से यही अपेक्षा करती हैं कि वंश वृद्धि को कठोरतापूर्वक रोका जाय। ऐसी दशा में प्रजनन की अभिवृद्धि खुशी का नहीं, वरन् विपत्ति का, दुर्भाग्य का कारण ही माना जा सकता है। अस्तु, हर समझदार आदमी को देश की, अपनी निज की समस्याओं को समझते हुए जनसंख्या बढ़ाकर देश द्रोह का भाजन नहीं बनना चाहिए। इन दिनों तो जो इस अनर्थ से जितना बच सके, वह उतना ही विचारशील और समाज सेवा में हाथ बँटाने वाला व्यक्ति माना जायगा।

सन्तान बुढ़ापे में सहारा बनेगी, यह सोचना भी वर्तमान परिस्थितियों में सर्वथा भूल है। नये जोड़ों को

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने और अपने प्रजनन की समस्या हल करते ही नहीं बन पड़ती, फिर बड़े-बूढ़ों की सेवा-सहायता करने आशा करना तो और भी व्यर्थ है। वातावरण को देखते हुए यह किसी को भी आशा नहीं करनी चाहिए कि हमारे घर श्रवणकुमार पैदा होंगे। आज का अर्थशास्त्र तो बूढ़े-निकम्मे पशुओं की तरह दुर्बल-रोगी और बिना कमाऊ बूढ़ों को भी किसी प्रकार कहीं ठिकाने लगा देने की ही सोच रहा है। ऐसी दशा में बच्चे से सेवा-सहायता पाने की अपेक्षा यही सोचना चाहिए कि उन पर अपनी जिम्मेदारियाँ लादे बिना ही जीवन से छुटकारा पा लिया जाय, तो अच्छा है। पिण्डदान मिलने पर स्वर्ग जाने जैसी मान्यताओं को तो अब पूरी तरह छोड़ ही देना चाहिए।

जिन्हें एकाकी जीवन में असुविधा होती हो, वह बिना बच्चे का झंझट पाले किसी प्रकार सह-जीवन का रास्ता निकाल लेते हैं। इस प्रकार पुरुष भी सहयोगी की तरह रह सकता है और स्त्रियों को भी सहेलियों की तरह मान सकता है। कामुकता की दुष्प्रवृत्तियों पर विचार करने भर से यह बात सहज ही समझ में आ सकती है कि प्रजनन की व्यथा मोल लिए बिना भी उस तरह रहा जा सकता है जैसे कि संयुक्त परिवार सहजीवन की सुविधाओं का लाभ उठाते रहते हैं और कामुकता के दुष्परिणामों से बचे रहते हैं।

अपने बच्चों के लिए स्वावलम्बन, उत्तराधिकार में सम्पदा छोड़ना और मोहवश आवश्यकता से अधिक खर्च भी करना पड़ता है, पर यदि असहायों के बालक पाल लिए जायँ तो वे सदा कृतज्ञ भी रहेंगे और उस सहायता से अनेक भले आदमियों के द्वारा प्रशंसा सुनने का लाभ मिलेगा, जबकि अपने बच्चे सदा कमी की शिकायत ही करते रहते हैं और यही उलाहना देते रहते हैं कि हमारे लिए यह किस काम का। वे अपना अधिकार मानते हैं कि जिनने जन्म दिया है, उन्हें सम्पन्नता के लिए भरपूर धन भी जुटाना चाहिए, इसमें कमी रहने पर यही उलाहना सुनने को मिलता है कि यदि बच्चों के लिए भरपूर सुविधा नहीं जुटाई जा सकती थी, तो उन्हें पैदा ही क्यों किया ?

जिस प्रकार अनेक कुरीतियों का अब खण्डन होने लगा है, उसी प्रकार अब यह मान्यता भी बदली जानी चाहिए कि बच्चे बढ़ाकर स्त्री का स्वास्थ्य, अपना आर्थिक भार और बच्चे का भविष्य खराब करने की अपेक्षा यही अच्छा है कि प्रजनन से जो जितना बच सके, वह अपने को उतना ही बुद्धिमान माने और अपनी समझदारी को सुसम्पन्नता का निमित्त कारण समझे।

सन्तान की लालसा एक मूर्खतापूर्ण स्वार्थपरता

आज विचारशील वर्ग में सन्तानोत्पादन की निरर्थकता एक स्वर से स्वीकार की जा रही है। केवल अदूरदर्शी व्यक्ति ही उसके लिये लालायित पाये जाते हैं। जिन्हें वैयक्तिक और सामाजिक हित-अनहित का कुछ विवेक-विचार नहीं है, उन्हीं की यह इच्छा रहती है कि उनके यहाँ जल्दी या अधिक संख्या में पुत्र उत्पन्न हों, कैसे आश्चर्य की बात है कि पिछड़े वर्ग का हर व्यक्ति पुत्र की ही आकांक्षा करता है, जबकि सृष्टि के नियमानुसार आधी संख्या कन्याओं की और आधी पुत्रों की होनी चाहिए। नर अपनी जाति की बढ़ोत्तरी सोचे भी तो एक बात है पर जब नारी भी पुत्र की ही आकांक्षा करती है, तो इस अवांछनीय चिन्तन पर अधिक अचम्भा होता है। आदिमकाल में जीवन संघर्ष की जटिलता में नर की उपयोगिता अधिक रही होगी पर आज तो भावना और बुद्धि को महत्त्व मिलने से नारी की ही उपयोगिता अधिक सिद्ध होगी, ऐसी दशा में कन्या जन्म को श्रेय मिलना चाहिए पर हैरत इसी बात की है कि हजारों-लाखों वर्ष पूर्व का दृष्टिकोण ही जहाँ का तहाँ बना हुआ है और बदली हुई परिस्थितियाँ हमारी मान्यताओं को प्रभावित नहीं कर रही हैं।

विचारशील वर्ग को यह स्वीकार करना पड़ रहा है कि सन्तानोत्पादन अब किसी भी प्रकार लाभदायक उद्योग नहीं रहा। उसमें हर दृष्टि से घाटा ही घाटा है। पुरुष सोचता है उससे उसके ऊपर आर्थिक भार बढ़ता है। जिस धन से वह वर्तमान परिवार को अधिक सुविकसित बना सकता है, उसमें नये हिस्सेदार जोड़ लेने से घर में पुराने और नये साझीदार की अभावग्रस्तता ही बढ़ेगी। जो समय, साधन सामयिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं उन्हें और भी अधिक विभाजित करने से मात्र कठिनाइयाँ ही बढ़ेंगी। जिन मेहमानों के आतिथ्य की समुचित व्यवस्था नहीं उन्हें आमन्त्रित करते रहने में समझदारी की क्या बात है ?

स्त्रियाँ सोचती हैं प्रजनन एक प्रकार से मौत से जूझना है। महिलाओं का मृत्यु में एक बहुत बड़ा भाग प्रसव कष्ट में ही मर-खप जाने वालियों का ही होता है। छुरों के गोदे जाने वाली घोर तड़पाने वाली व्यथा सहने और अपने स्वास्थ्य रस को निचोड़ कर खोखली हो जाने में किस महिला को क्या लाभ हो सकता है। जितना समय कोई नारी अपनी ज्ञान वृद्धि, स्वास्थ्य रक्षा, आजीविका उपार्जन, गृह व्यवस्था, समाज सेवा जैसे महत्त्वपूर्ण कामों में लगाकर बहुत कुछ हित साधन कर सकती है, उसे बच्चे जनने और पालने में लगाकर उसे क्या मिलता है? माता बनने के बाद उनकी व्यक्तिगत प्रतिभा एवं प्रगति का एक प्रकार से अन्त ही हो जाता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। आजीविका के लिये वे नितान्त पराश्रित हो जाती हैं और इस के लिए उन्हें पग-पग पर अपमानित जीवन जीने के लिए विवश होना पड़ता है। बच्चों का बोझ वहन करते हुए वे न तो आर्थिक दृष्टि से अपने पैरों पर खड़ी रह सकती हैं और न पति के लिए आकर्षक रह जाती हैं स्वयं उनकी सुख-सुविधाएँ और महत्वाकांक्षायें भी स्वप्न होती चली जाती हैं। घर से बाहर जाने के अवसर तो प्रायः छिन ही जाते हैं। क्या मनोरंजन क्या महत्त्वपूर्ण अवसर सभी प्रकरणों में उसके लिए घर से बाहर जा सकना एक प्रकार से अशक्य हो जाता है। जब अपने आप अपनाई इस बाधित स्थिति की दुर्दशा पर विचार करती है तो उसे खेद ही होता है और उन तथाकथित शुभचिन्तकों, अभिभावकों पर क्रोध भी आता है जिनने अपनी कन्या को दुर्गति में धकेलने के लिये किस प्रकार सिर पर आसमान उठाया था और किस प्रकार आर्थिक कठिनाइयाँ सहन की थीं।

सुविधाजनक परिस्थितियों में सीमित सन्तानोत्पादन किया जा सकता है। पर उसके पीछे वे लाभ नहीं सोचे जाने चाहिए जो आज सोचे जाते हैं। मरने के बाद बेटे के पिण्डदान देने से स्वर्ग मिलेगा, यह मान्यता और मूढ़ता की ही झाँकी कराती है। कोई व्यक्ति अपने ही भले-बुरे कर्मों से स्वर्ग-नरक जा सकता है। बेटे का पुण्य बाप- का—बाप का बेटे को, भला किस प्रकार मिल सकता है। वंश चलेगा, नाम चलेगा जैसी बात भी अविवेकी ही सोचते हैं। हर वर्ष २० बच्चे जनने वाली शूकरी का वंश यश उसकी सन्तान कहाँ बढ़ा पाती है। हममें से किसे अपने छठी पीढ़ी के पूर्वज का नाम याद है ? जब नाम तक वंशजों का याद नहीं रहता तो कोई मूर्ख ही यह सोच सकता है कि उसका वंश चल रहा है। उत्तराधिकार में सारी कमाई केवल बेटे को ही देकर मरा जाय यह अत्यन्त घृणित स्तर की स्वार्थ भरी संकीर्णता है। जिस समाज के सहयोग से सम्पदा कमाई और जोड़ी गई उसे पुण्य-परमार्थ के आधार पर वापिस किया जाना चाहिए, यही पूँजी का सही सदुपयोग है। अपनी श्राद्ध परम्परा के पीछे यही आदर्श है कि उत्तराधिकारी अपने पूर्वजों की सम्पदा को हराम की कमाई समझें, उसे स्वीकार न करें और किसी परमार्थ कार्य में लगा दें। हर दूरदर्शी और नीतिवान अभिभावक को अपनी बची पूँजी का ऐसा ही उपयोग करना चाहिए। बच्चों को सुयोग्य, सुसंस्कृत और स्वावलम्बी बनाने भर की अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। उनके लिये बैठे-बैठे हराम की कमाई खाने के लिए छोड़ जाना, उन्हें हरामी, आलसी व्यसनी एवं दुर्गुणी बनने का रास्ता खोलना है। यह मोह सन्तान के प्रति उपकार नहीं अपकार ही सिद्ध होता है।

कई सन्तानरहित व्यक्ति दूसरा विवाह करने की—किसी दूसरे का बच्चा गोद लेने की बात सोचते रहते हैं, ऐसे लोगों को परले सिरे का स्वार्थी, संकीर्ण और निष्ठुर कहना चाहिए। जिस पूँजी से समाज का बहुत हित साधन हो सकता था उनका लोक-परलोक बन सकता था, उसे किसी एक व्यक्ति को देने भर की बात सोचते रहना यह सिद्ध करता है कि यह अत्यन्त निकृष्ट मनोभूमि का व्यक्ति है। उदारता और दूरदर्शिता जैसी मानवोचित सत्प्रवृत्तियाँ उसे छूकर भी नहीं निकलीं। ऐसे लोग सन्तान, प्राप्ति के लिए तथाकथित धार्मिक कर्मकाण्ड भी करते रहते हैं। उद्देश्य और संकल्प की दृष्टि से ऐसे दान-पुण्य को निकृष्ट स्तर का ही माना जा सकता है। ऐसी पूजा को शायद ही कोई देवी-देवता स्वीकार कर सके। ईश्वर तो भावना देखता है कृत्य नहीं। मोहग्रस्त उद्देश्य लेकर किये गये धर्म कृत्य भी ईश्वर की प्रसन्नता का कारण नहीं बन सकते।

हँसने-खेलने के लिये अपने निज के बच्चे ही हों यह आवश्यक नहीं। यदि उदारता के कुछ बीजाणु अन्तःकरण में जीवित हैं तो अपने पराये का और भाव भुलाकर किसी के भी बच्चों से हँसा-खेला जा सकता है। मुफ्त में आनन्द उठाया जा सकता है, भेद अनावश्यक चिन्ताओं तथा जिम्मेदारियों से बचा जा सकता है। अगणित बालक ऐसे मिल सकते हैं जिन्हें घोर अभावग्रस्त जीवनयापन करना पड़ता है, उनकी सहायता करना अधिक श्रेयस्कर है। अपने बच्चों को ही पाला-पोसा जाय यह अनिवार्य क्यों होना चाहिए ? जो नहीं हैं उन्हें जानने के लिए कोई व्याकुल रहे और अपने आस-पास जो अगणित बालक विलख रहे हैं उनकी ओर से निष्ठुर बने रहा जाय तो इससे वात्सल्य की आकुलता कैसे समझी जा सकती है ?

वृद्धावस्था में संतान सेवा करेगी तब काम चलेगा ऐसा सोचना आत्महीनता का, आत्म-विश्वास के अभाव का ही द्योतक है। परावलम्बी जीवन की आकांक्षा करने वाले एक प्रकार से मृतक ही कहे जायेंगे। आज के वातावरण में जबकि पारिवारिक कर्तव्य स्त्री-बच्चों तक भी ठीक तरह कोई नहीं निभा रहा है, तब बूढ़े माँ-बाप पर बेटे चँवर डुलायेंगे इस मूर्खों के स्वप्न से जितनी जल्दी जमीन पर उतर आया जाय उतना ही अच्छा है। मरते समय तक बुड्ढे को अपनी हड्डियाँ कोल्हू में पेल कर उनका तेल बेटे-पोतों पर चुपड़ते रहना पड़ता है। उसमें कमी पड़ती है तो सारे परिवार की आँखें किस तरह लाल-पीली होती हैं इसे कोई भी आँखों वालों अपने आस-पास भी नजर पसार कर देख सकता है। समय की माँग है कि कामेच्छा और प्रजनन में अन्तर किया जाना चाहिए। यह समय की माँग है।

प्राचीनकाल में यह दोनों परस्पर जुड़ी हुई थीं। एक समय ऐसा भी था जब सघन वन्य प्रदेशों से अन्नोत्पादन तथा पशुपालन का लाभ उठाने के लिए बड़े परिवारों की आवश्यकता थी। वन्य जीवों से अपना उत्पादन तथा अस्तित्व बचाने के लिए भी यह आवश्यक था कि परिवार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के सदस्यों की संख्या बड़ी हो। इस सामयिक आवश्यकता की पूर्ति के लिये सन्तानोत्पादन को प्रोत्साहन दिया जाता था। उसके लिये हर्षोत्सव मनाये जाते थे तथा परलोक में सद्गति और बुढ़ापे में सहारा देने के लिए सन्तान की आवश्यकता समझी जाती थी। उन दिनों अन्न की, स्थान की नहीं, श्रम की कमी थी। उसकी पूर्ति के लिये सन्तानोत्पादन भी एक उद्योग था। इसके लिये सम्पन्न लोग अधिक पत्नी रखते थे और इस व्यवसाय में अधिक लाभ उठाते थे। पर अब परिस्थितियाँ बदल ही नहीं गईं, एक प्रकार से विपरीत हो गई हैं। पृथ्वी का उत्पादन और विस्तार कहाँ तक बढ़ सकता है ? जिस वेग से संख्या वृद्धि हो रही है उस क्रम से साधनों की बढ़ोत्तरी कितना ही प्रयत्न करने पर भी नहीं हो सकती। साधनहीन जनसंख्या को दुर्गति सहन करनी पड़ती है और उस दुर्गति की सड़न एवं दुर्गन्ध से सारा सामाजिक वातावरण विषाक्त होता है। इस स्थिति में व्यक्ति और समाज को समान रूप से दुःख भोगना पड़ता है।

कामेच्छा पर नियन्त्रण करके सन्तानोत्पादन घटाया जा सकता है। बड़ी उम्र में विवाह करना। विवाहितों को यथाशक्ति संयम बरतना—ढलती आयु में प्रजनन को लज्जास्पद माना जाना—बहुसन्तान वालों को अविवेकी एवं असामाजिक ठहराया जाना जैसी विचारणाओं को यदि मान्यता मिले तो सन्तान बढ़ाने से पूर्व हर किसी को उसके दुष्परिणामों पर विचार करने का अवसर मिलेगा और अनयन्त्रित वृद्धि रुकेगी। प्राचीनकाल की तरह अब भी अविवाहित रहने वालों को प्रशंसनीय, विवेकशील एवं आदर्शवादी ठहराया जाना चाहिए और उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाना चाहिये। प्राचीनकाल में ब्रह्मचारी, परिव्राजक, साधु-ब्राह्मण प्रायः अविवाहित ही रहते थे। यदि आदर्शवादी व्यक्ति विवाह बन्धन में भी बँधते थे तो परस्पर सहयोग से अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य करने की क्षमता बढ़ाना ही उसका उद्देश्य रहता था। प्रजनन से तो वे विवाहित होने पर भी बचते रहते थे। आज उस परम्परा को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता है। आदर्शवाद के नाम पर न सही आपत्तिकालीन संकट का विशेष कर्तव्य समझकर भी यदि सन्तानोत्पादन के प्रति उपेक्षा या उदासीनता बरती जाय तो उसे प्रशंसनीय ही ठहराया जाना चाहिए।

संतानहीनता की स्थिति से परेशान न हों

सांसारिक सुखों में एक संतान सुख भी है। अपनी बनाई निर्जीव वस्तुएँ भी प्रिय लगती हैं फिर संतान तो सजीव वस्तु है। बाजार में बिकने वाले खिलौने मनुष्य का मन आकर्षित करते हैं फिर चलता-फिरता, हँसता-बोलता, कोमल भावनाओं का आदान-प्रदान करने वाला खिलौना तो और भी सुन्दर लगता है। पिता का, पालन-पोषण करने वाले का, गौरव भी तो संतान से मिलता है। इस गौरव से मनुष्य के मन में रहने वाली बड़प्पन प्राप्त करने की इच्छा तृप्त होती है। बड़े होने पर यह बालक मेरा नाम चलावेगा, मेरे रिक्त स्थान की पूर्ति करेगा, मेरी सेवा करेगा तथा वृद्धावस्था, बीमारी आदि में सहारा देगा, घर को सुसम्पन्न बनावेगा ऐसी आशाएँ पिता अपने बालक से करता है।

एक और भी मनोवैज्ञानिक कारण सन्तान प्रेम का है वह यह कि मनुष्य अपनी अतृप्त इच्छाओं को तृप्त करने लिए बालक को माध्यम बनाकर तृप्ति लाभ करना चाहता है। जैसे कोई व्यक्ति स्वयं तो धन नहीं कमा सका पर उसके मन में यह आशा लगी रहती है कि मेरा बेटा प्रचुर धन कमावेगा। खुद को कुरूप स्त्री मिली तो वह उस अतृप्त इच्छा को, बेटे की बहू सुन्दर प्राप्त करके करना चाहता है। इसी प्रकार गुजरे हुए बालकपन को वह एक बार फिर पाना चाहता है पर अपने जीवन में यह संभव नहीं, इसलिए सन्तान की बाल लीलाओं में रस लेकर वह उन हशरतों को पूरी करता है। अपने अधूरे काम को पूरा होने की पुत्र या शिष्य से आशा की जाती है। इस प्रकार अपनी असफलताओं की निराशा को पिता, अपनी सन्तान के रूप में पूरा करने की कल्पनाएँ, आशाएँ बाँधता है। यह मानसिक आयोजन पड़ा ही प्रिय लगता है। इन आशा तन्तुओं से अपने को आवद्ध करके, अभागा मनुष्य भी सौभाग्य की सुनहरी किरणों की झाँकी किया करता है। यह मन का महल, सच्चे महल से भी अधिक प्रिय लगता है क्योंकि वास्तविक वस्तु की अपेक्षा उसका चित्र अधिक सुहावना लगता है। इन सब कारणों से सर्वसाधारण की इच्छा होती है कि उसे सन्तान सुख मिले। उपरोक्त कारणों में से कन्या की अपेक्षा पुत्र द्वारा अधिक की पूर्ति होती है। इसलिए लोग कन्या की अपेक्षा पुत्र को अधिक चाहते हैं। अधिक पुत्र होना अधिक सौभाग्यशाली होने का चिन्ह समझा जाता है।

परन्तु कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें पुत्र नहीं है। वे पुत्र प्राप्ति के लिए बड़े चिन्तित रहते हैं। जिनके केवल कन्याएँ हैं, वे बेटे की कामना करते हैं। कितने तो ऐसे हैं जिनके न कन्या है न पुत्र, वे और भी अधिक चिन्तित देखे जाते हैं। इस चिन्ता के निवारण के लिए, देवी, देवता, साधु, सन्त, वैद्य-डाक्टर, मनाये जाते हैं फिर भी कइयों को सफलता नहीं मिलती है। ऐसे लोग प्रायः बहुत दुखी, चिन्तित और निराश देखे जाते हैं। आइए, विचार करें कि क्या यह चिन्ता वास्तविक है ? क्या सन्तान की आवश्यकता इतनी अनिवार्य है कि उसके बिना मनुष्य इतना दुखी रहे ?

इस लेख को आरम्भ करते हुए, हमने सबसे प्रथम ही वे कारण बता दिये हैं जिनके कारण सन्तान प्राप्ति की इच्छा होती है। इन सब कारणों पर गंभीरतापूर्वक विचार करने से यह प्रतीत नहीं होता कि इन सबकी पूर्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

केवल अपने निजी बालकों के द्वारा ही हो सकती है। ममता और मोह से प्रेरित होकर 'अपनी' कहलाने वाली वस्तुओं में ही प्रसन्नता अनुभव करता है। इसलिए उन्हें जमा करता रहता है। घर, मोटर, जायदाद, जेवर, जवाहरात, स्त्री, पुत्र, सब 'अपने' होने चाहिए। यह अपनापन, बहुत संचय की तृष्णा उपजाता है अन्यथा उपयोगिता की दृष्टि से कितनी ही वस्तुएँ निरर्थक होती हैं। फिर भी उनके संचय की तृष्णा बढ़ती ही जाती है। सन्तान के संबंध में भी ऐसी ही बात है। जिन इच्छाओं की पूर्ति के लिए सन्तान चाहते हैं, उनमें से कितनी ही तो ऐसी हैं जो किन्हीं विरलों की ही पूर्ण होती हैं और कितनी ही ऐसी हैं जो दूसरों के बालकों से पूर्ण हो सकती हैं। कितनी ही इच्छाएँ ऐसी हैं जो केवल मात्र भ्रम हैं। तीनों ही प्रकार की इच्छाओं पर सम्मिलित रूप से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वे इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हैं कि उनके बिना इतना दुखी होना चाहिए जितने कि आजकल के सन्तानहीन देखे जाते हैं।

संतान से जो इच्छा किन्हीं विरलों की ही पूर्ण होती हैं, वे गौरव की, कमाई खिलाने की, सेवा मिलने की हैं। आज के समय ऐसे सपूतों के दर्शन दुर्लभ हैं। बुड्ढे माँ-बाप को एक भार समझा जाता है, उसकी मृत्यु की प्रतीक्षा की जाती है। जबान बेटा घर का मालिक होता है, बुड्ढे के हाथ में कोई शक्ति नहीं रहती, वह पराश्रित हो जाता है, अपनी इच्छा पूर्ति के लिए कमाऊ बेटे के मुँह की ओर ताकता है, उसकी टेड़ी भवों को देखकर सहम जाता है। चौपाल की चर्चा में तो बुड्ढे को ही बाप कहा जाता है, पर व्यावहारिक रूप में बेटा-बाप बन जाता है बाप को बेटे की तरह रहना पड़ता है। जवानी के नशे में अक्सर आज के बेटे बाप का सम्मान तो नहीं ही करते हैं अपितु अवसर आने पर अपमान तक करने में नहीं चूकते। जो बड़े-बड़े मनसूबे बाप बाँधा करता था, बेटे से जिस व्यवहार की आशाएँ किया करता था, समय आने पर वह बालू का महल विस्मार हुआ दिखाई देता है। किन्हीं विरलों की ही यह इच्छा पूर्ण होती हैं।

बालकों को तोतली बोली, मधुर मुसक्यान, निष्कपट स्नेह, यह सब तो पड़ौसी के बालक से भी प्राप्त हो सकते हैं। सेवा, उपकार और सद्गुणों से पराये अपने हो जाते हैं। जो प्रत्युपकार बेटे नहीं चुकाते, वह शिष्यों से, अनुयायियों से प्राप्त हो जाता है। आज गाँधीजी के असंख्यों अनुयायी उनके इशारे पर अपना तन, मन, धन न्यौछावर करने को तत्पर हैं, जवाहर लाल नेहरू के आदेश पर लाखों की संख्या में भारतवासी अपने शिर कटवाने को तैयार हैं। अन्धे विरजानन्द की, वेदप्रचार की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए उनके शिष्य दयानन्द ने आजीवन ब्रह्मचारी रहकर जीवन अर्पण करना स्वीकार किया था। गुरुनानक के शिष्यों ने अपने गुरु के आदेश पर क्या क्या नहीं किया ? जो बातें दूसरों के लड़कों ने कर दिखाईं, वह अपने लड़के भी नहीं कर सकते। महात्मा गाँधी के सगे लड़के उनके अनुयायी नहीं हैं, उनके कहने में नहीं चलते पर दूसरों के लड़के उनकी आशा को ईश्वर की आज्ञा की तरह मानते हैं। सेठ जमनालालबजाज अपने को गाँधीजी को गोद धरा पुत्र कहा करते थे। बापू की आज्ञानुसार लाखों रुपयों की सम्पत्ति सेठजी खर्च करते रहते थे। इतनी कमाई उनके किसी सगे बेटे ने उनके आदेश पर खर्च नहीं की। तात्पर्य यह है कि संतान इच्छा के कितने ही कारण ऐसे हैं, जिनकी पूर्ति दूसरों के बालकों में आत्मभाव रखने से हो सकती है।

कुछ कारण ऐसे हैं, जिन्हें केवल भ्रम कहा जा सकता है, जैसे यह ख्याल करना कि बेटे से हमारा नाम चलेगा। इन पंक्तियों के पाठकों से हम पूछते हैं कि—आप कृपा कर अपने पूर्वजों के पीढ़ी-दर-पीढ़ी के हिसाब से नाम बताइये ? तीन-चार-पाँच पीढ़ी से अधिक ऊपर की पीढ़ी के पूर्वजों के नाम शायद ही किसी को याद होंगे। जब अपने ही पोते, पर पोतों को नाम नहीं याद रहा तो दुनिया मे तो संतान द्वारा चलेगा ही कैसे ? यह दुनिया ब्लैक बोर्ड की तरह है, जिस पर बार-बार अक्षर लिखे और मिटाये जाते हैं। खेत में बार-बार बीज बोये जाते हैं और बार-बार फसल काटी जाती है। हर बरसात में असंख्य बूँदें पानी की बरसती हैं और अपने रास्ते चली जाती हैं। क्या इनमें से किसी का नाम चलता है ? कौन किसे याद रखता है ? दुनिया की याददाश्त इतनी फालतू नहीं है कि वह गये-गुजरे आदमियों को याद रखे, उनके नाम चलाये। सृष्टि के आदि से अब तक असंख्यों मनुष्य हुए और मर गये। उनकी संतानें मौजूद हैं पर नाम याद रखने का किसी को अवकाश नहीं है। यह सब देखते हुए जो यह सोचते हैं कि संतान से मेरा नाम चलेगा वह भारी भ्रम है।

इसी प्रकार यह भी भ्रम है कि मरने के बाद भी संतान खाना-पीना परलोक में पहुँचाया करेगी। हर आत्मा स्वतंत्र है। उसे अपने कर्म का ही फल मिलता है। बेटे की रोटी से परलोकवासी आत्मा का पेट नहीं भरता। परमात्मा इतना कंगाल नहीं है कि उसके घर में रोटी का अकाल पड़ जाय और बेटे के पिंडोदक बिना बाप को भूखा-प्यासा रहना पड़े। सद्गति अपने कर्मों से होती है। इसके लिए बेटे का आसरा तकना निरर्थक है।

मेरे पीछे मेरा उत्तराधिकारी कौन होगा ? यह बात भी भला कोई चिन्ता की बात है। लेने के लिए तो हर कोई हाथ पसारे खड़ा है। जिसे भी दे जाइए वही खुशी से फूला न समायेगा। फिर जिनके लिए छोड़ा जाया जायगा वे उसका सदुपयोग ही करेंगे, इसका भी कोई निश्चय नहीं। हम देखते हैं कि कितने ही लड़के बाप के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

माल को लूट का माल समझकर ऐसी बेदर्दी से फूँकते हैं कि देखने वालों को तरस आता है।

इन सब बातों पर विचार करने से पता चलता है कि बेटा हो ही, यह कोई ऐसी अनिवार्य आवश्यकता नहीं है, जिसके बिना किसी को चिन्तित होना पड़े। कई दृष्टियों से तो यह अच्छा भी है। बालकों की भरण-पोषण की काफी जिम्मेदारी पड़ती है। उनके भोजन, वस्त्र, शिक्षा, शादी, व्यापार के लिए पिता को जितनी शक्ति खर्च करनी पड़ती है, जीवन का जितना बहुमूल्य मान उत्सर्ग करना पड़ता है यदि उतना परमार्थ में खर्च किया जाता तो आत्म कल्याण की दिशा में एक भारी मोर्चा फतह हो सकता था। अपने बीमार पड़ते ही, भगवान का ध्यान आने की अपेक्षा यह चिन्ता सवार होती है कि मेरे बाद बच्चों की क्या दशा होगी। मरते वक्त चित्त इसी बेचैनी में जाता है फलस्वरूप उस अतृप्ति के कारण फिर जन्म लेना पड़ता है। बच्चों की आवश्यकता पूर्ति के लिए चिन्तित मनुष्य, न करने योग्य कार्य भी करने लगता है। जिन्हें संतान नहीं है, वे इस प्रकार के झंझटों से आसानी से बचे रह सकते हैं।

चीन और भारत यह दो देश ऐसे हैं जिनकी जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। इस बढ़ी आबादी के लिए अन्न जुटाना मुश्किल पड़ रहा है। चारागाह जोत डाले गये हैं। पशुओं के चरने की जगहें छीनकर खेती की जा रही है पर आवश्यकता भर के लिए अन्न पूरा नहीं होता। फलस्वरूप भुखमरी और बीमारी से एक बड़ी जनसंख्या काल के गाल मे चली जाती है। ऐसी स्थिति में और अधिक आबादी बढ़ाना, देश के लिए भार रूप है। सभी विचारक इस बात की बड़ी आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं कि देश में अर्थ संकट उत्पन्न नहीं करना है तो जिस तेजी से जनसंख्या बढ़ रही है, उसे रोका जाय। महात्मा गाँधी ब्रह्मचर्य द्वारा संतान निरोध की अपील करते हैं। दूसरे विद्वान इसके लिए कृत्रिम उपायों तक का सुझाव पेश करते हैं। जो, हो, इतना निश्चित है कि जनसंख्या की वृद्धि से विश्व की, मानव जाति की कठिनाइयाँ बढ़ती हैं घटती नहीं।

इन बातों पर विचार करते हुए निस्संतानों को दुखी होने का कोई कारण नहीं। उन्हें जो स्थिति प्राप्त है, उसमें उन्हें भगवत् कृपा की झाँकी करनी चाहिए क्योंकि इस स्थिति के कारण वे लाभ में ही हैं घाटे में नहीं। जो समय सन्तान के भरण-पोषण में लगता उसे सत्कर्मों में लगाना चाहिए। जो धन सन्तान के लिए खर्च करना था या उनके लिए छोड़ जाना था उसे शुभ कार्यों के लिए, संसार में धर्म बढ़ाने के लिए लगा जाना चाहिए। शुभकर्म से सच्ची सद्गति प्राप्ति होती है। इसलिए शुभ कर्म को ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर जाना चाहिए। धर्म के लिए लगाई हुई पूँजी, ईश्वर की बैंक में जमा हो जाती है और जन्म-जन्मान्तरों तक मिलती रहती है। इससे अधिक सम्पत्ति की सुरक्षा और क्या हो सकती है ?

इस लेख का तात्पर्य यह नहीं है कि सन्तान व्यर्थ है। जिन्हें ईश्वर ने दी है वे उसे ईश्वर प्रदत्त उत्तरदायित्व समझ कर भली प्रकार निवाहें। सन्तान को प्रभु की अमानत समझ कर उसके पोषण और विकास के लिए ईमानदार माली की तरह उन पौधों की सेवा में लगे रहें। जिन्हें भगवान ने सन्तान नहीं दी है वे आत्मोन्नति में अपनी शक्ति लगावें। सद्गुण बढ़ावें, धर्म सम्पत्ति बढ़ावें, इस संचय से उनका बुढ़ापा आसानी से आनन्द पूर्वक कट जायगा। संतानरहित होना भी संतानवान् होने की तरह ही सौभाग्य का चिन्ह है। हमें दोनों ही स्थितियों में प्रसन्न रहना चाहिए।

अधिक बच्चे उत्पन्न करना सामाजिक अपराध है

विश्व की तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या अनेकों समस्याओं तथा चिन्ताओं का कारण बनी हुई है। विशेषज्ञों का कथन है कि यदि जनसंख्या में इसी गति से वृद्धि होती रही तो २००० ई० तक संसार की आबादी १० अरब हो जायेगी। यदि जन्म दर घटाई न गयी तो एक दिन ऐसा आयेगा कि धरती पर लोगों का खड़े होना भी कठिन हो जायेगा। वस्तुतः जनसंख्या की बाढ़ परमाणु अस्त्रों से भी अधिक घातक है क्योंकि वे तो मानव-देह को ही नष्ट करते हैं परन्तु तीव्रता से बढ़ती हुई आबादी इतनी विकट समस्याएँ उत्पन्न करती है कि वे मानव का आत्मगौरव तथा आत्म-शक्ति ही नष्ट कर देती है।

अन्य देशों की अपेक्षा हमारे देश में जनसंख्या अधिक तीव्रता से बढ़ती जा रही है। इस दृष्टि से चीन के बाद हमारा ही स्थान है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि सभी क्षेत्रों में असंख्य समस्याएँ खड़ी हो गयी हैं। न लोगों को खाने को पौष्टिक भोजन मिलता है, न रहने को शुद्ध जलवायु तथा समुचित स्थान। शैक्षणिक सुविधाएँ भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं हो पातीं। स्कूलों तथा कॉलिजों में अनेकों छात्र-छात्राएँ प्रवेश पाना चाहते हैं परन्तु वहाँ भी स्थान का अभाव है। आर्थिक दरिद्रता बढ़ती जा रही है। आम जनता को तन ढकने को वस्त्र भी पूरी तरह से उपलब्ध नहीं है। हमारे यहाँ साल भर में औसत रूप से एक व्यक्ति १६ गज कपड़े का उपयोग करता है जबकि अमेरिका में प्रति व्यक्ति ४० गज से भी अधिक वस्त्रों की खपत है। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ बेकारी की समस्या भी सुरसा के मुख की भाँति बढ़ती ही जा रही है, जिससे देश की युवा-शक्ति का ह्रास हो रहा है तथा उसमें विविध कुण्ठाएँ तथा अपराध बढ़ रहे हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यदि हम देश के प्रति सच्चे अर्थों में वफादार बनना चाहते हैं तो हमारा प्राथमिक कर्तव्य है कि अधिक बच्चे उत्पन्न कर समस्याएँ न बढ़ाएँ। प्राचीन समय में तो महामारियों तथा प्राकृतिक विप्लवों के द्वारा प्रकृति स्वयं ही जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण कर लेती थी परन्तु आज हमने रोगों पर, अकाल तथा प्राकृतिक बाधाओं पर भी विजय प्राप्त कर ली है। परिणाम यह हुआ है कि एक ओर जहाँ जन्मदर में वृद्धि हो रही है, मृत्यु-दर घटती जा रही है।

किसी भी देश की सम्पन्नता, समृद्धि तथा प्रगति उसके नागरिकों के स्वास्थ्य, शिक्षा, नैतिकता तथा आर्थिक स्थिति और उत्पादन से सम्बद्ध होती है। विश्व के कई देश अपनी इन्हीं शक्तियों के बल पर प्रगति की दौड़ में हम से आगे निकल गये हैं।

हमारे धर्मशास्त्रों में भी परिवार-नियोजन या संतति निग्रह पर बल दिया गया है। ब्रह्मचर्य साधना की बात उसमें पग-पग पर कही गयी है। वृहदारण्यक उपनिषद् में सन्तति निरोध के लिए विशेष मन्त्रों का पाठ वर्णित है। आयुर्वेद के एक प्राचीन ग्रन्थ में भी तुलसी के प्रयोग द्वारा गर्भ-निरोध की बात कहीं गयी है। मनु का भी कथन है कि मनुष्य को एक ही सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये, अधिक नहीं। प्रथम सन्तान ही धर्मज होती है। योग तरंगिणी में भी जन्म-निरोध के उपायों का उल्लेख किया गया है।

वस्तुत: यदि एक सन्तान को ही सर्वगुण सम्पन्न बनाया जाये, तो वही देश के प्रति सबसे बड़ी श्रद्धान्जलि है। इसी में हम सबका हित निहित है। बच्चे उत्पन्न करना आज दो व्यक्तियों का वैयक्तिक विषय नहीं रहा है अपितु इससे समस्त मानव जाति का सुख-स्वास्थ्य प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो रहा है।

देश, काल व परिस्थितियाँ उग्र रूप से प्रत्येक नागरिक से इसी बात की अपेक्षा रखती हैं कि वह अधिक सन्तान का मोह त्यागकर मर्यादित जीवन जीए तथा एक या दो ही बच्चे उत्पन्न कर उन्हें सुयोग्य नागरिक बनाने का लोक हितकारी दृष्टिकोण अपनाये।

संतान बढ़ाना-दु:ख-दारिद्र्य को न्यौत बुलाना

सन्तान की संख्या सीमित रखी जाय, इस बात पर भारतीय मनीषियों ने सदा ही बल दिया है। आज तो जन-संख्या की विभीषिका की विश्व भर में छाया है, किन्तु जनसंख्या की भयावहता मात्र ही सीमित सन्तान के आग्रह का आधार नहीं। प्राचीन शास्त्रीय उद्धरणों एवं पुराण कथाओं का अध्ययन यह स्पष्ट कर देगा कि अतीत में जिन कारणों से सन्तान-संख्या कम ही रखने पर बल दिया जाता था, उनमें जन-संख्या की कोई भी चर्चा नहीं थी। यह स्वाभाविक है, क्योंकि उन दिनों जन-संख्या कम थी। परन्तु सामाजिक व्यवस्था, मनुष्य की सीमाएँ एवं स्वभाव का गम्भीर अध्ययन करने वाले प्राचीन भारतीय समाज के चिन्तकों की दृष्टि में यह तथ्य स्पष्ट था कि अधिक सन्तान पैदा करना पुरुषार्थ नहीं, दुख-कष्टों का आमन्त्रण है। विश्व के सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में भी स्पष्टता से कहा गया है—

''बहु प्रजा निर्ऋतिमाविवेश।।''

(ऋग्वेद १।१६४।३२)

अर्थात् 'अधिक सन्तानें सदा कष्ट का कारण बनती हैं।

बाद में नीतिकारों ने तर्क, उपमा, उदाहरण आदि द्वारा बार-बार सीमित सन्तानोत्पादन की सराहना की। क्योंकि वे जानते थे सन्तान या मनुष्य कोई पदार्थ अथवा वस्तु मात्र नहीं है, जिसके रख-रखाव की व्यवस्था धन या उपकरण के द्वारा कर देना पर्याप्त हो। मनुष्य तो एक अति संवेदनशील सचेतन प्राणी है, उसकी संवेदना को भी पग-पग पर पोषण मिलना चाहिए और संवेदनात्मक पोषण की सामर्थ्य प्रत्येक व्यक्ति यानी माता-पिता में सीमित ही होती है। सन्तान के लिए आहार, वस्त्र एवं सुविधा उपकरण का प्रबन्ध भर पर्याप्त नहीं। प्रत्येक माता-पिता द्वारा प्रत्येक सन्तान को भरपूर समय, सद्भाव, स्नेह, मार्गदर्शन देना एवं उसका नियंत्रण करना आवश्यक है। इसके साथ ही जननी के शरीर की भी प्राकृतिक सीमाएँ हैं। उस पर अधिक बोझ उसके व्यक्तित्व में न्यूनता पैदा करता है। अत: भौतिक समृद्धि होने मात्र से किसी भी नागरिक को यह अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता कि वह चाहे जितनी संतति को जन्म दे। वस्तुत: अधिक सन्तान उत्पन्न कर, फिर उन्हें मात्र वस्तुओं और सुविधाओं की प्रचुरता के बीच छोड़ देना स्वयं में मानवता का अपमान करना है। क्योंकि मनुष्य जीवन में भौतिक उपकरणों का जितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, भाव संवेदनाओं का उससे कम नहीं, अधिक ही है। मनुष्य का भावनात्मक पोषण प्रारम्भिक स्थिति में निजी लगाव, प्रगाढ़ आत्मीयता तथा सतत् मार्गदर्शन की अपेक्षा रखता है। यह काम भृत्यों, धायों आदि द्वारा नहीं हो पाता। माँ का स्नेह, बच्चों के विकास की अत्यावश्यक खुराक है। इसी प्रकार माँ का दूध भी शिशु के लिए सर्वोत्तम पोषक आहार है। दोनों ही दृष्टियों से, एक नारी सीमित सन्तान का ही समुचित पोषण कर सकती है और जिस सन्तान के आरम्भिक पोषण में ही त्रुटि रह जाय, उसके व्यक्तित्व का त्रुटिहीन विकास असम्भव है।

यही कारण है कि पुरातन युग के सर्वाधिपति नरेश भी कम ही सन्तानें पैदा करते थे। इसका यह अर्थ नहीं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि रानियों में सन्तति प्रजनन की क्षमता कुछ न्यून होती थी अथवा राजाओं में ही ऐसी कोई बात रहती थी! यह भी कारण कदापि नहीं कि राजा को भगवान ही कम सन्तान देते थे। भगवान पर पक्षपात का आरोपण उनकी सत्ता का ही उपहास है। आयुर्वेद जैसे सुविकसित चिकित्सा-विज्ञान एवं पर्याप्त पोषक आहार-व्यवस्था के विद्यमान रहने पर सर्वसाधनसम्पन्न राजा-रानियों में शारीरिक न्यूनता की कमी मानना भी युक्तिसंगत नहीं। वस्तुत: वे लोग जिम्मेदारी की भावना यानी दायित्व बोध के ही कारण सीमित सन्तानें उत्पन्न करते थे। फिर जिन राजाओं-रानियों के अधिक सन्तानें होती थीं, उनकी दुर्गति भी इस तथ्य को प्रतिपादित करती थी कि समुचित भावनात्मक देखरेख व पोषण से वंचित सन्तानें विकसित व्यक्तित्व की स्वामिनी नहीं हो पातीं। धृतराष्ट्र गान्धारी के सौ बेटों का व्यक्तित्व पाण्डु-कुन्ती के तीन एवं पाण्डु-माद्री के दो पुत्रों की तुलना में हल्का एवं घटिया था और कौरवों की निकृष्टता ने ही महाभारत युद्ध का आधार विनिर्मित किया। महाराजा सगर की दो रानियाँ थीं। दोनों ने तप किया। वरदान माँगने का अवसर मिलने पर एक ने हजार पुत्र माँगे, दूसरी ने एक। हजार पुत्र समुचित भावनात्मक पोषण के अभाव में झगड़ालू, उपद्रवी, उद्धत और अनाचारी निकले। अन्तत: अपने दर्प एवं दुर्बुद्धि के कारण वे महर्षि कपिल के साथ अन्याय कर बैठे और मारे गये। तब जो दूसरी रानी का एकमात्र पुत्र था। जिसको समुचित भावनात्मक पोषण, मार्गदर्शन प्राप्त हुआ था, उसने अपनी बुद्धि, विद्या, शील एवं सौजन्य से महर्षि कपिल को भी प्रसन्न कर लिया तथा राज्य का समुचित संचालन किया एवं कीर्ति प्राप्त की। भगवान राम कुल चार ही भाई थे और उनमें से प्रत्येक के दो-दो ही पुत्र हुए। सभी यशस्वी एवं श्रेष्ठ चारित्र्य सम्पन्न बने। जबकि रावण के 'इक लख पूत' अपनी अस्त-व्यस्त मन:स्थिति के कारण भीषण विनाशक परिस्थितियों को जन्म देने वाले सिद्ध हुए। नीतिशास्त्रों में इसीलिए कहा गया है—

वरमेको गुणी पुत्रो, निर्गुणैश्च शतैरपि।

एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति, न तु तारा: सहस्रश:॥

अर्थात् सैकडों मूर्ख बेटों की अपेक्षा एक ही गुणी पुत्र श्रेष्ठ है। जैसे अकेला चाँद अन्धकार को दूर करता है, हजारों तारे नहीं। उसी प्रकार एक गुणी पुत्र समाज में अन्धकार दूर करता व प्रकाश फैलाता है।

इसी प्रकार नीतिकारों ने विविध तर्क व उदाहरण देकर संतान-संख्या सीमित रखने का महत्त्व समझाया है। इनमें से एक तर्क यह भी है कि शेरनी एक ही पुत्र उत्पन्न कर वन में निर्भय विचरती है, जबकि गर्दभी दस बेटे जनने पर भी भार ही ढोने को विवश होती है, तात्पर्य यह कि मुख्यत: तो स्वयं का व्यक्तित्व ही काम आता है, फिर यदि संतान द्वारा संरक्षण तथा सहायता की अपेक्षा हो, तो भी एक ही वीर एवं गुणी पुत्र जैसा संरक्षण दे सकता है, गुणहीन या दुर्बल व्यक्तित्व वाले दसों बेटे वैसा नहीं दे सकते।

अधिक संतानों से कष्टों का आरम्भ तो जननी के स्वास्थ्य पर प्रहार से ही हो जाता है। फिर स्नेहपूर्ण मार्गदर्शन की कमी संतानों का व्यक्तित्व अस्त-व्यस्त कर देती है। आज के आर्थिक संकट के युग में अधिक बच्चों का खाने-पहनने, पढ़ाई-लिखाई, चिकित्सा, स्वास्थ्य आदि का खर्च उठा पाना अच्छे-खासे मध्यमवर्गीय परिवार को भी भारी पड़ता है। साथ ही विलासिता का वातावरण संतानों में शौक-मौज की जो उमंगें उछालता है, उनमें तो धन स्वाहा ही होता चला जाता है। बेटी के व्याह और बेटों की आजीविका का प्रबन्ध भी धन की अपेक्षा रखता है। ऐसे में अधिक संख्या में बच्चे हुए तो वे अभाव, अपोषण, असम्मान एवं अपमान के आघात झेलते हुए अविकसित जीवन जीने को विवश होते हैं। हीनता की ग्रन्थियाँ उनमें बढ़ती रहती हैं। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष पनपता है। इससे बच्चों का स्वयं का व्यक्तित्व विकृत रहता है, परिवार में विघटन बढ़ता है और समाज पर भी अनुचित दबाव बढ़ता है। अधिक जनसंख्या होने पर सरकारें आहार, शिक्षा, चिकित्सा, आवास, आजीविका एवं यातायात सम्बन्धी पर्याप्त व्यवस्था नहीं कर पाती। ऐसे में अव्यवस्था, अराजकता, असामाजिकता फैलती है। अत: आज की स्थिति में तो सीमित सन्तानों का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। संतान पैदा करना आसान है, उसके प्रति जिम्मेदारी का समुचित निर्वाह बहुत कठिन है। उस दायित्व को निभा नहीं पाए, तो संतान ऐसी निकलेगी जो कुल को कलंकित करे और समाज पर भार बने। वैसे भी संतान के कारण यश किसको मिला है ? यश तो अपने ही तप-त्याग और सत्कर्मों से मिलता है। वृद्धावस्था में पुत्र से संरक्षण और सुख पाने की आशा भी मृगमरीचिका है। बालक यदि सुसंस्कारी नहीं रहा, तो वह वृद्धावस्था में त्रास ही देगा, सुख नहीं।

स्वयं के समुचित विकास, सामाजिक कर्तव्य-भावना और संतान के सर्वतोमुखी परिपालन-परिपोषण के नैतिक दायित्व—सभी दृष्टियों से उचित यही है कि प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक युग तक के मनीषियों के परामर्श को समझा जाए तथा मर्यादित प्रजनन को ही स्वीकार किया जाय।

सन्तान के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण साफ करें

हमारे देश में प्राय: १८ वर्ष का लड़का तथा १४ वर्ष की कन्या प्रजनन योग्य हो जाते हैं। कुछ का इससे अधिक आयु में भी विवाह हो जाता है और कुछ का

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इससे कम में भी। यद्यपि कानून ने २१ वर्ष से कम आयु के और १८ वर्ष से कम आयु के युवक-युवती का विवाह गैरकानूनी ठहराया है। पर सामाजिक कुरीतियों और बाल विवाह के प्रचलन के कारण लोग इस वय से काफी कम आयु के लड़के-लड़कियों का विवाह कर देते हैं और आशा करते हैं कि हम कब दादा, बाबा, नाना या दादी, नानी बनें।

विवाह के बाद दो-चार वर्ष इतनी आतुरता से प्रतीक्षा की जाती है पौत्र या पौत्री की कि लगता है कोई खजाना मिल जायगा और इसके बाद भी यदि सन्तान नहीं होती तो घर के सब लोगों को बड़ी चिन्ता होने लगती है कि हमारा वंश चलेगा या नहीं, हमारे कुल का दीपक जन्मेगा या नहीं और तरह तरह के टोने-टोटकों से लेकर वैद्य-हकीमों तथा डाक्टरों के यहाँ भाग-दौड़ और जाँच-पड़ताल की जाने लगती हैं कि हम पुत्र रत्न की प्राप्ति की आशा करें या छोड़ दें।

न जाने क्यों सन्तान की सन्तान का मुँह देखने के लिए हम लोग इतना व्याकुल रहते हैं ? तीन-चार वर्ष तक बच्चे न होने पर चिन्ता होने लगती है तथा दौड़-धूप शुरू हो जाती है और आठ दस वर्ष तक सन्तान न होने पर अपना दुर्भाग्य कह कर सिर पीट लिया जाता है। सन्तान के प्रति इतनी उत्सुकता और आतुरता का कारण यह है कि लोग सन्तान को कुल का त्राता मानते हैं। समझा जाता है कि अपने रक्त बिन्दु से उत्पन्न हुई सन्तान ही हमारा उद्धार कर सकती है।

इन दिनों जब परिवार नियोजन को अधिक प्रोत्साहन दिया जाने लगा, संतति निग्रह को अधिक आवश्यक बताया जाने लगा है तो उन लोगों की चिंता और भी बढ़ गयी है जिन्हें सन्तान नहीं है अथवा है भी तो कन्या है। उन्हें अपने वंश चलने की चिन्ता होने लगी है। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि यह कोई जरूरी नहीं है कि वंश की यशोवृद्धि या कुल का नाम सन्तान से ही चले और मान भी लिया जाय कि कुल का नाम सन्तान से ही चले तो इसकी क्या गारण्टी है कि आने वाली पीढ़ी के कारण परिवार की सत्कीर्ति ही बढ़े। यह भी तो हो सकता है कि बच्चे आगे चल कर दुष्ट निकल जायँ और परिवार की, कुल की कीर्ति बढ़ाने के स्थान पर उसे कलंकित ही करें।

सन्तान न होते हुए भी संसार में कितने ही लोगों का यश अभी भी उज्ज्वल और धवल है। कृष्ण को सभी कोई जानते हैं पर उनकी सन्तानों के नाम भी शायद ही किसी को मालूम हों। राम के बाद लवकुश को छोड़कर उनकी अगली पीढ़ी के किन लोगों का नाम दुनिया को मालूम है। महावीर तो वीतराग और गृहत्यागी तपस्वी थे, उनका यश आज भी बढ़ रहा है। बुद्ध को राहुल से अधिक लोग जानते हैं। ईसा ने तो विवाह भी नहीं किया था। शंकराचार्य, रामानन्द, तुलसीदास, सूरदास, मीरा, कबीर, ज्ञानेश्वर, रैदास, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महर्षिरमण, रामतीर्थ आदि कितने ही सन्त महात्मा थे जो या तो अविवाहित रहे अथवा ग्रहस्थ भी रहे तो उनकी कीर्ति सन्तान से नहीं उनके सत्कर्मों से ही अमर हुई। व्यक्ति का नाम और यश और सद्गति सन्तान से नहीं, उसके सद्गुणों और सत्कर्मों से बढ़ता और अमर होता है।

शास्त्रों में इस तरह की बातों पर जोर इसलिए नहीं दिया गया कि वंशवृद्धि से ही सद्गति मिलती है। सद्गति तो मिलती है व्यक्ति को अपने सत्कर्मों से। मनुस्मृति का यह श्लोक द्रष्टव्य है—

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्।

दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम्।।

(अ० २५ श्लोक १५९)

अर्थात्—कइयों हजार कुमार, ब्रह्मचारी ब्राह्मणों ने बिना सन्तान उत्पन्न किये ही अपने उच्च विचारों, सत्कार्यों तथा सेवा व्रतों द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त किया है।

वंशवृद्धि के लिए शास्त्रों में जहाँ भी प्रोत्साहन परक उपदेश आये हैं। उनका कुल अर्थ इतना है कि उस समय एक तो आबादी कम थी और दूसरे समाज को योग्य नागरिक प्रदान करने का कर्तव्य बोध प्रत्येक व्यक्ति को कराया जाता था। यह नहीं कि जिस-तिस को कीड़े-मकोड़ों की तरह सन्तानोत्पादन की छूट दे दी जाती थी। स्मृतियों में दुष्ट, पतित और दुराचारी व्यक्तियों को पुंसत्वहीन करने का स्पष्ट आदेश है। जिसका अर्थ है कि समाज में कुसंस्कारी सन्तान का जन्म रोकने की कड़ी व्यवस्था थी।

समाज को सुयोग्य नागरिक देने के लिए ही प्रजनन किया जाय। न कि अयोग्य और प्रतिभाहीन बच्चों को जन्म दिया जाय। वंशवृद्धि की प्रेरणा का एकमात्र यही आधार है, पर लकीर के फकीर लोग केवल सन्तान की संख्या बढ़ाते चलने को ही वंशवृद्धि समझते हैं।

पूछा जाता है कि वंशवृद्धि के लिए सन्तानोत्पादन नहीं किया जाय तो फिर विवाह का ही क्या उद्देश्य ? विवाह का उद्देश्य प्रजा की वृद्धि ही तो है। यह सोचना गलत है। विवाह का उद्देश्य प्रजनन मात्र ही नहीं है। वह तो एक छोटा-सा दायित्व भर है, जिसे भी निभाया जाता है अन्यथा विवाह तो एक घनिष्ठ, आत्मीय और अन्तरंग साथी के लिए किया जाता है। प्रजनन मात्र ही विवाह का उद्देश्य होता तो फिर सभी जानवारों के विवाह होने चाहिए। पशु-पक्षी तो जब प्रजनन की आवश्यकता अनुभव

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करते हैं तभी एक साथ रहते हैं। अन्य समय में नहीं जबकि मनुष्य पति-पत्नी एक दूसरे से आत्मीयता और प्रेम के तारों से एक दूसरे के प्रति जन्म भर के लिए घनिष्ठ सम्पर्क सूत्रों में बँधे रहते हैं। इस प्रकार विवाह की सार्थकता सन्तानोत्पादन में खोजना व्यर्थ ही नहीं हानिकारक भी है।

कई लोग वृद्धावस्था में संरक्षण और सेवा की आशा से सन्तान का होना आवश्यक मानते हैं। उनका कहना है कि वृद्धावस्था में जब हमारी शारीरिक शक्तियाँ चुक जायेंगी और हम बेकार हो जायेंगे तो हमें रोटी कौन खिलायेगा ? यह निरी मृगतृष्णा है और आज के युग में तो वयस्क सन्तानों से भरण-पोषण तथा सेवा-सुश्रूषा की आशा करना एक भयंकर छलावा है। वर्तमान स्थिति में ही कितने पुत्र अपने माँ-बाप को रोटियाँ देते हैं, उनकी गुजर-बसर का प्रबन्ध करते हैं। अपने सन्दर्भ में ही सोचा जाय तो वस्तुस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता कि हम अपने माँ-बाप को रोटी देते हैं तो हमारी सन्तानें भी हमें देंगी। हम अपने माता-पिता की सेवा-सुश्रूषा करते भी हैं तो भी यह मान कर चलना गलत है कि आने वाली पीढ़ी हमारी रोटी का प्रबन्ध करेंगी। क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य का जीवन जटिल होता जा रहा है वैसे-वैसे उसकी आवश्यकताएँ बढ़ती जा रही हैं और भविष्य की पीढ़ी उन आवश्यकताओं को पूरा करने में ही इतनी व्यस्त होगी कि माँ-बाप की चिन्ता करना उसके लिए कठिन होगा।

बुढ़ापे और असमर्थ अवस्था में सन्तान इसे संरक्षण की आशा मध्यम वर्ग में होती है, तो गरीब परिवारों में यह समझा जाता है कि बच्चे अभी पाँच-सात साल में कमाने लायक हो जायेंगे। कहीं मेहनत-मजदूरी करेंगे। निर्धन तथा मजदूर पेशा लोग आगन्तुक सन्तान को परिवार के लिए दो और कमाऊ हाथ के रूप में देखते हैं। अब्बल तो छोटे बच्चों को काम-धन्धे में लगाया ही नहीं जा सकेता और यदि लगा भी दिया गया हो तो वे कितना क्या कमा कर हाथ पर रखेंगे। तीस-चालीस रुपये महीने कमा भी लिये तो परिवार को उस बच्चे पर जो खर्च करना पड़ा, वह उसकी तुलना में आधा भी नहीं है। फिर बच्चे-आठ-दस वर्ष की उम्र तक ही तो काम पर लगाये जा सकते है। इससे पहले किसी भाव नहीं। तब तक तो परिवार को जो खर्च करना पड़ा, वह कमाने से पहले खाने वाले हाथ बढ़ने की स्थिति ही साकार करता है।

सन्तान के सम्बन्ध में एक अन्धविश्वास यह भी प्रचलित है कि बच्चे भगवान की देन हैं और भगवान बच्चों को पैदा करने से पहले भोजन का प्रबन्ध कर देता है। सब अपनी-अपनी किस्मत लिखा कर लाये हैं और किस्मत का तो मिलेगा ही। यह सोचना गलत है, बच्चे भगवान की देन नहीं हैं। जब उनके जन्म को रोकना सम्भव नहीं था तब तो यह मानना थोड़ा बहुत ठीक भी था, पर अब जबकि सन्तति निग्रह भी सम्भव है और सन्तान को जन्म देना भी अपने हाथ में है, तो यह अन्धविश्वास हमारे रूढ़िग्रस्त मन की एक चालाकी भरी चाल मात्र है।

माना भी जाय कि बच्चे भगवान की देन हैं, वे ईश्वर की इच्छा से जन्म लेते हैं तो फिर जब वे बीमार पड़ते हैं और मरने के करीब होते हैं तो उन्हें ठीक रखने के लिए भागदौड़ नहीं करनी चाहिए। भगवान बच्चों को जन्म देता है, उन्हें आयु देता है, भोजन देता है तो जीवित रखने के लिए हम अपनी इच्छा क्यों चलाते हैं। वहाँ भी हमें सन्तोष करना चाहिए कि ईश्वर ने जन्म दिया है तो ईश्वर ही उसे वापस भी बुला रहा है। लेकिन उसे ठीक करने और स्वस्थ रखने की भाग-दौड़ दृढ़ता के साथ यह सिद्ध करती है कि बच्चों को भगवान की देन बताने के पीछे हमारे अपने निहित स्वार्थ या स्वयं की अनुचित इच्छाएँ ही रहती हैं।

कुछ लोग परिवार को सीमित रखना तो चाहते हैं पर उनकी आकांक्षा यह रहती है कि कम से कम एक पुत्र तो हो ही जाय और पुत्र की आशा में सन्तान की संख्या बढ़ाते चलते हैं। पुत्र और पुत्री में भेद करना हमारे संकीर्ण-स्वार्थी मन की ही कुचाल है। पुत्र प्राप्ति की लालसा के मूल में वही अपेक्षाएँ निहित रहती है, जिनका प्रारम्भ में उल्लेख किया जा चुका है कि कुल का नाम चलेगा, वंश की वृद्धि होगी, बुढ़ापे का सहारा मिलेगा और हमारे पास थोड़ी-बहुत सम्पत्ति है तो उसका पहरेदार तैयार होगा। उपरोक्त अपेक्षाएँ कितनी अविवेकपूर्ण हैं यह विचार किया ही जा चुका है और जहाँ तक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी का प्रश्न है समाज से श्रेष्ठ उत्तराधिकारी कोई और नहीं।

यों तो आज के समय में ईमानदारी से उपार्जन और निर्वाह करने के बाद सम्पत्ति का अर्जन करना वैसे ही कठिन है और यह भी नोट कर रखना चाहिए कि आने वाला युग सम्पत्ति का नहीं-सद्गुणों का होगा, श्रम और सत्कार्यों का होगा। जिनके पास पैतृक सम्पत्ति है, उसे अपनी सन्तानों को सौंप जाने की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। माना कि अब तक उसे सुरक्षित रखा गया पर आगे भी वह सुरक्षित रहेगी इसकी क्या आश्वासना। सन्तान यदि कुकर्मी, अपव्ययी, विलासी या खर्चीली निकल गयी अथवा उसके साथ कुछ ऐसी परिस्थितियाँ जुड़ गयीं जो सम्पत्ति को बेच डाले या हाथ से गँवा दे तो। जब जरा भी निश्चित नहीं है तो हमें सन्तान के लिए इतना लालायित नहीं रहना चाहिए।

समय बदल गया है। अब स्वर्ग सन्तान वालों को नहीं, सीमित सन्तान वालों को मिलेगा। सन्तान के सम्बन्ध में हमें अपना दृष्टिकोण साफ रखना चाहिए तथा विवेक और औचित्य को स्वीकार करने के लिए आगे आना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संतान न होना ईश्वर की कृपा ही समझिये

संसार की तीन एषणाओं में एक पुत्रेषणा भी होती है और शायद सबसे भयंकर। मनुष्य के पास धन-सम्पत्ति, वैभव-विभूति प्रचुर मात्रा में हो किन्तु पुत्र न हो तो उसे संसार सूना दिखाई देता है। इस भाव से कि इसका कोई भोगने वाला नहीं है, यों ही सब ठग-ठगुओं के हाथ लग जायेगी, उसे अपनी सम्पत्ति काँटे-सी खटकने लगती है। इसके विपरीत सन्तानें हों और धन-दौलत न हो तो लोग यह सोच कर संतोष कर लेते हैं कि धन-दौलत नहीं घर तो बच्चों से भरा-पूरा है। इस झूँठे सन्तोष के कारण पुत्रेषणा-वित्तेषणा से भी बड़ी होती है और लोकेषणा तो किन्हीं-किन्हीं उन लोगों में होती है, जिनके पास बहुत कुछ है किन्तु समाज में उनका नाम नहीं रटा जाता, उनकी पूजा नहीं होती।

एषणाओं को विद्वानों ने पिशाचिनी कहा है। इनकी तृप्ति के लिये मनुष्य क्या-क्या कर्म-कुकर्म नहीं कर डालता। घूँसखोरी, ठगी, बेईमानी, अनीति, अत्याचार, शोषण, विश्वासघात, भ्रष्टाचार, हत्या, लूट-पाट, मक्कारी जैसे पापों के पीछे वित्तेषणा की बहुत कुछ प्रेरणा रहा करती है। लोकेषणा भी मनुष्य का कम पतन नहीं करती। किन्तु पुत्रेषणा तो मनुष्य को पागल ही बना देती है।

सन्तान के लिए मनुष्य बुरी तरह लालायित रहा करता है। उसके लिए वह पूजा-पाठ, जप-तप, दान-दक्षिणा, यज्ञ-याग करने के साथ-साथ ओझा, पंडित, ज्योतिषी, सयाने, मन्दिर, मस्जिद, श्मशान, कब्र, पीर मियाँ, मुल्ला, भूत-प्रेत, टोटका-टोना, व्रत-उपवास तन्त्र-मन्त्र, भेंट-बलिदान जैसे न जाने कितने कृत्य-कुकृत्य करने और मानने-पूजने को तैयार रहता है। उसकी पुत्रेषणा उसे यह समझने ही नहीं देती कि वह जो कुछ कर रहा है वह कहाँ तक उचित अथवा अनुचित है। इसमें कोई सार, कोई सत्य, कोई वास्तविकता है भी या नहीं ?

ऐसी घटनायें आये दिन सुनने में आती रहती हैं कि अमुक व्यक्ति ने सन्तान के लिए दूसरे के, अमुक के बच्चे को देवता की भेंट चढ़ा दिया। अमुक स्त्री ने एक बच्चे के कान या उँगलियाँ काटलीं, बाल उखाड़ लिये या उसे आग से दाग दिया। अमुक ने अमुक के मकान में आग लगादी। यह नित्य प्रति की घटनाएँ हैं जो पुत्रेषणा के कारण घटती रहती हैं। आये दिन अखबारों में छपता रहता है कि अमुक स्त्री पुत्र की कामना से चोर-चाण्डालों के चंगुल में फँसकर अपना सर्वस्व गवाँ बैठी। कपड़े, जेवर, रुपये तो साधारण से ज्योतिषी तथा रंगली ठग ले जाया करते हैं। इस एषणा के दुष्परिणाम लोग आये दिन देखते रहते हैं तब भी इसकी भयंकरता से सावधान नहीं होते।

संतान हो बहुत अच्छा है। किन्तु यदि नहीं है तो कोई ऐसी भयंकर बात नहीं है कि जिसके लिये इतना पागल हो जाया जाये। जहाँ तक सन्तान सुख का सवाल है, किसी भी सन्तान वाले से जाकर पूछा जा सकता है कि वह बेटे-पोतों अथवा बेटी-जमाई से क्या सुख पा रहा है। निश्चय ही अधिकांश लोग रोते और अपने भाग्य को कोसते मिलेंगे। आप उनसे सन्तान सुख का प्रश्न कीजिये और वे दुःख-क्लेशों का चिट्ठा खोल कर बैठ जायेंगे, परेशानियाँ और चिन्तायें गिनाने लगेंगे। तब पता नहीं कि लोग संतान के लिए क्यों तो इतने लालायित रहते हैं और क्यों अपने को अभागा समझते हैं।

बहुत से लोगों का विचार रहता है कि संतान न होने से समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है। सम्भव है कोई अविवेकी अथवा अविचारी व्यक्ति ऐसा करते हों। कोई समझदार, सज्जन तथा दूरदर्शी व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है कि संतान का झंझट न होने से इस व्यक्ति के पास आत्म विकास, समाज-सेवा, स्वास्थ्य-निर्माण अथवा अन्य लोकोपयोगी कार्य करने के लिए सन्तानों से बोझिल व्यक्तियों से कहीं अधिक सुविधा तथा अवसर है। अब यह बात दूसरी है कि कोई ऐसी सुविधा पाकर व्यर्थ जीवन खोकर अथवा संतान के चक्कर में पड़ कर लोकोपयोगी कार्य सम्पादित न करे और किसी प्रकार अपवाद अथवा आलोचना का विषय बने। सन्तान नहीं है लोगों की हेय दृष्टि का डर है तो अच्छे काम करिये समाज सेवा में उतरिये, दूसरे के बच्चों को प्यार करिये, उनकी शिक्षा तथा विकास में सहायक बनिए। किसी की क्या मजाल कि हीन दृष्टि से देख सके अथवा सम्पन्न हीनता की ओर संकेत कर सके।

मूढ़ सन्तान वाले ही सन्तानहीनों की ओर उँगली उठाते देखे जाते हैं। इसमें और कोई तत्त्व नहीं होता केवल अपनी परेशानियों को छिपाने और दूसरे की निश्चिन्तता को घटाने अथवा उसका मूल्य कम करने के लिए ही ऐसा किया करते हैं। हाँ, एक कारण संतानहीनों को हेय दृष्टि से देखने का यह हो सकता है कि आये दिन की मूढ़ घटनायें देख-सुनकर सन्तान वाले सन्तानहीन से यह सोचकर घबराते रहते हैं कि यह हमारे बच्चों से ईर्ष्या करता होगा और किसी भी समय उससे प्रेरित होकर अथवा सन्तान पाने की इच्छा से किसी टोने-टोटके द्वारा उन्हें हानि पहुँचा सकता है। पर किसी भी सभ्य तथा समझदार व्यक्ति को इसलिए सन्तान के अभाव में अपने को हीन अथवा अभागा नहीं समझना चाहिए।

जहाँ तक सन्तान द्वारा कुल चलने और परलोक सुधरने की आशा का प्रश्न है, वह भी कोई महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। परलोक केवल अपने सत्कर्मों से ही सुधरता और बनता है। कोई किसी के परलोक को बना-बिगाड़ नहीं सकता ! लोक में पिता के नाम पर पुत्र द्वारा जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कुछ दान-पुण्य, पिण्ड-पारायण, तर्पण-वृद्धि किया जाता है, वह सब पिता के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने का एक ढंग है। पुत्र का अपना सत्कर्म है जिसका फल वह स्वयं पायेगा इससे पिता के परलोक का कोई सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार अन्य देवताओं की पूजा की जाती है, उसी प्रकार पिण्ड-तर्पण आदि पितरों की पूजा विधि है। क्योंकि हमारे गुरुजन पूजनीय ही होते हैं और शरीरोपरान्त उन्हें देवता की योनि में माना जाता है।

संतानहीनता की स्थिति में उनके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा के खर्च में कटौती जैसी सुविधा तथा सम्भावना को छोड़ कर लोग संतान की आशा-एषणा में अपने को घुलाया और कर्म-अकर्म किया करते हैं, यह आश्चर्य ही नहीं खेद का विषय है। अनेक लोग तो पुत्रेषणा की प्रेरणा से ऐसी-ऐसी गल्ती कर जाते हैं कि उनका पूरा जीवन अशांत एवं कंटकाकीर्ण बन जाता है। बहुत बार तो लोग स्त्री के होते हुये भी पुत्र की इच्छा से दूसरा विवाह कर लिया करते हैं। तब उन्हें कुछ समय बाद किस विपत्ति का सामना करना पड़ता है ? यह तो भुक्तभोगी ही जानते होंगे। हाँ देखने वाले इतना जरूर देखते हैं कि उनके घर में दिन-रात कलह मचा रहता है। न रात चैन न दिन चैन। दो प्रचंडकाओं के बीच विचारा पुरुष निरीह घुन की तरह पिसा करता है।

संतान न होने से बहुत से लोग पत्नी का ही तिरस्कार किया करते हैं। घर में सास, ननद चैन नहीं लेने देतीं। सभी सताते और ताने मारते हैं। पति तिरस्कार और उपेक्षा करता है—ऐसी असहनीय स्थिति में अनेक अबोध स्त्रियाँ न जाने क्या-क्या कर बैठती हैं और आत्महत्या की घटनायें तो रोज ही सुनने को मिलती रहती हैं। अनेक क्रूर, कूढ़मग्ज लोग तो संतान के लिए स्त्रियों को चीर-फाड़, दवा-दारू, टटके-टोटकों तथा व्रत-उपवासों द्वारा निर्जीव और पागल ही बना देते हैं।

संतानहीनता को अभाग्य अथवा सामाजिक कमी समझना भारी भूल है। आज के युग में संतान होना और उसके पालन-पोषण का उत्तरदायित्व इतना भयंकर कर्तव्य है कि लोगों से सँभालते नहीं सँभल रहा है। उनकी जिन्दगी का अणु-क्षण केवल इसी चक्कर में बीत जाता है। न तो वे कोई मनोविनोद कर पाते हैं और न पुण्य और न उनसे आत्म-कल्याण की जुगत बन पाती है। संतान है अच्छा है। नहीं तो उससे भी अच्छा है बहुत कुछ कर सकने की सुविधा तथा अवसर पाकर उसे यों ही पुत्रेषणा से संतप्त होकर आहें भरने और रोने-कलपने में बिता देना ठीक नहीं। इस निवृत्ति को भगवान की इच्छा और कृपा समझा जाये और अपनी उस संपन्नता को, सम्पत्ति को तथा निश्चिन्तता को आत्म-कल्याण, समाज-कल्याण, राष्ट्रहित और मानवता की सेवा में लगाना चाहिए। इन सत्कर्मों से मिलने वाली सुख-शान्ति संतान हीनता के झूँठे दुःख से हजार लाख गुना संतोषदायक होगी। पुत्रेषणा की पिशाचिनी से ग्रसित होकर पुण्य परमार्थ का ध्यान त्याग कर पागलों जैसे रोते-कलपते रहना और कर्म-अकर्म करना किसी भी दशा में बुद्धिमानी नहीं है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य और सन्तानोत्पत्ति

जनसंख्या की रिपोर्ट से पता चलता है कि भारतवर्ष के निवासियों की औसत आयु ४५ वर्ष से अधिक नहीं है जबकि अन्य देशवासियों की आयु इससे कहीं अधिक है। हमारे देश में जो बच्चे पैदा होते हैं उनमें प्रति हजार दो सौ बच्चे तो तत्काल मर जाते हैं। यही हालत औरतों की है। जो महिलाएँ कम उम्र में गर्भाधान करतीं हैं वे असमय में ही काल कवलित हो जाती हैं। बहुत सी महिलाएँ तो प्रसूति-गृह के बाहर भी नहीं हो पातीं और इसी बीच उनके जीवन की इति श्री हो जाती है। खोज करने पर पता चला है कि मुस्लिम महिलाओं की अपेक्षा हिन्दू महिलाओं की असामयिक मृत्यु अधिक होती है। इसके दो कारण हैं। पहला कारण कम उम्र में शादी का होना और दूसरा कारण जो इसी कारण के अन्तर्गत ही आ जाता है, कम उम्र में स्त्रियों का गर्भाधान करना है।

सर जान मेगा नामक अँग्रेज समाज विज्ञानी ने बहुत छानबीन के बाद बतलाया है कि भारत में एक हजार औरतों में सौ औरतें प्रसूतकाल में बच्चा पैदा होने के पहले ही मर जाती हैं और दो लाख स्त्रियाँ प्रतिवर्ष बच्चा जनने के बाद मर जाती हैं। कुछ वर्ष पूर्व जनेवा में भाषण करते हुए श्रीमती तरनी सिन्हा ने बतलाया था कि भारत की महिलायें अपने बच्चों को अफीम खिलाया करती हैं, इस कारण एक हजार में २४६ लड़के मौत के शिकार बन जाते हैं और जो शेष रह जाते हैं उनके अवयव अफीम खाने के कारण खराब हो जाते हैं। ५०३०४ आदमी विक्षिप्त, २३०८९५ लूले, ६०१३७० बहरे और १४७९११ आदमी कुष्ट रोग से पीड़ित हैं। सन् १९३० से लेकर सन् १९३९ तक ७७२३३ आदमी चेचक से शिकार हुए। १३३८९१५ आदमी प्लेग से मरे। २२७४३८ आदमी हैजे से मरे। ३८९८३२३ आदमी बुखार आने के कारण मर गये, इससे यह बात स्पष्ट हो गयी कि भारतवासियों के स्वास्थ्य की हालत दिनों-दिन खराब होती जा रही है। हमारे देश की आबादी दिन प्रतिदिन बढ़ रही है, इसी कारण यहाँ अधिकांश बच्चे अस्वस्थ पैदा होते हैं और जीवन भर वे रोगी से ही बने रहते हैं। भले आदमियों की अपेक्षा उन लोगों की आबादी अधिक बढ़ रही है जिनके लिये भर पेट भोजनों की व्यवस्था होना भी कठिन है। फल यह हो रहा है कि भुक्मरों की संख्या बढ़ रही है।

अब प्रश्न यह है कि इस बढ़ते हुए रोग को किस तरह से रोका जाय। किस उपायों का सहारा लेने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

से देश की वर्तमान स्थिति को सुधारा जा सकता है। अन्य देशों ने जिन उपायों के द्वारा अपने देश की आवादी को कम किया है, यदि भारत में उन्हीं उपायों से काम लिया जाय तो बहुत लाभ हो सकता है। अन्य देशों में यदि कोई आदमी मृगी रोग से पीड़ित होता है तो देश की सरकार उसे विवाह करने की अनुमत नहीं देती, लेकिन भारत की दशा इसके सर्वदा विपरीत है। यहाँ सड़क पर भूखे पेट सो जाने वाले भिखारी भी विवाह करते हैं और एक-एक नहीं दो-दो, चार-चार सन्तानें पैदा करते हैं। मोण्टना प्रदेश में यह नियम है कि विवाह के पूर्व वर-वधू की डाक्टरी परीक्षा होती है । जब डाक्टर उन लोगों को पूर्ण स्वस्थ होने का प्रमाण पत्र दे देता है, तब विवाह करने की आज्ञा दी जाती है। जर्मन इस सम्बन्ध में तनिक उदारता से काम लेता है। वहाँ पर केवल उन लोगों के स्वास्थ्य की ही परीक्षा होती है जो कुष्ठ, मृगी या दूसरे प्रकार के किसी अन्य घातक रोग से पीड़ित होते हैं । हमारे देश के लिये यह बड़े दुख की बात है कि यहाँ पर इस प्रकार के विवाह करने वालों पर किसी तरह का प्रतिबन्ध नहीं है।

लोग इस बात का कारण जानना चाहेंगे कि भारतवासी विवाह और सन्तान पैदा करने के लिये क्यों उत्सुक रहते हैं। इसका प्रधान कारण हिन्दुओं की यह धारणा है कि पुत्र के तर्पण किये बिना मृत व्यक्ति की आत्मा को शान्ति नहीं मिलती। जॉन चाटल ने 'भारत में जनसंख्या का प्रश्न' नामक पुस्तक में लिखा है कि यदि किसी उच्च घराने की कोई लड़की अविवाहिता रह जाय तो भारतवासी उसे बहुत बुरा समझेंगे और लड़की के पिता की ३ पुश्त तक को इसका कुफल भोगना पड़ेगा। या तो वे जाति बहिष्कृत कर दिये जायेंगे या किसी अन्य रूप से समाज अपने क्रोध का बुखार उतारेगा।

ऐसे विवाह कदापि न होने देने चाहिए जिनके द्वारा विकृत सन्तानें पैदा होने की सम्भावना हो। यदि यह मालूम हो जाय कि कोई आदमी किसी ऐसे रोग से पीड़ित है कि विवाह के बाद यदि उसके सन्तान होगी तो सन्तान में रोग का अंश रहेगा तो ऐसे आदमी का विवाह हर्गिज न होने दिया जाय। यदि इस पद्धति का अनुसरण किया जाय तो थोड़े ही दिनों में भारत में स्वस्थ्य बच्चे पैदा होने लगें और बेकारी का प्रश्न भी बहुत कुछ मात्रा में हल हो जाय।

इन भ्रान्त विचारधाराओं का निवारण करके अविवाहित जीवन बिताने और अधिक आयु में विवाह करने को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। यदि राष्ट्रीय स्वास्थ्य की उन्नति करनी है तो अधिक बच्चे पैदा करने को बुरा समझने की प्रवृत्ति पैदा करना आवश्यक है।

समय रहते संभलने की समझदारी

बुद्धिमानी का तकाजा यह है कि अगले खाई-खंदकों को खंदेलते हुए उस राह पर चलने का प्रबंध करें, जिसमें जोखिम कम से कम हों। जिन्हें इस प्रकार की शक्ति नहीं मिलती है, वे ही अन्धी भेड़ों की तरह आगे चलने वाले के पीछे-पीछे चलते जाते हैं और खंदक में गिरकर प्राण गँवाते हैं। चूहे पकड़ने वाले पिंजड़े में घी की गन्ध वाला रोटी का टुकड़ा लगा देते हैं। चूहों को वह स्वादिष्ट खाद्य ही सब कुछ प्रतीत होता है। उतावली में यह नहीं सोच पाते कि पिंजड़े का इतना बड़ा जाल-जंजाल किसी धूर्तराज ने किसलिये बनाया और लुभाने का सरंजाम जुटाया है। दूरदर्शिता का अभाव ही है, जो मनमानी करने के लिये उकसाता है, तुरन्त के लाभ को ही सब कुछ बताता है और भविष्य में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों के संबंध में कुछ भी सोचने के लिये अक्ल पर पर्दा डाल देता है।

कोई जमाना रहा होगा जब भूमि की अधिकता थी, जंगल बहुत थे। कृषि और पशुपालन के लिये जिनके पास आदमी अधिक थे, वे अधिक सुरक्षित रहते और अधिक लाभ उठाते थे। इसलिये सन्तानोत्पादन के साथ अनेक कठिनाइयाँ जुड़े रहने के साथ-साथ सुविधा-साधनों का लाभ देखते हुए उसे लाभदायक माना जाता रहा होगा, पर अब तो परिस्थितियाँ सर्वथा उल्टी हो गयी हैं और उस पुराने प्रचलन को यथावत् न अपनाये रहने पर जोर देती हैं। दुधारू पशुओं का सन्तानोत्पादन तो किसी प्रकार लाभदायक भी माना जाता है, क्योंकि बूढ़े होने से पहले ही उनकी चमड़ी-पसली उखाड़ कर जगह खाली करा ली जाती है, पर मनुष्य के संबंध में ऐसी व्यवस्था भी तो नहीं है।

बच्चे पालना कभी माता का छोटा सा खेल-खिलवाड़ स्तर का काम था। थोड़े समझदार होते ही बच्चे पशुपालन में हाथ बँटाने लगते थे। खेतों में भी उनकी कुछ न कुछ भूमिका जुड़ने लगती थी। दायित्व कुछ भी नहीं, शिक्षा आदि का झंझट भी नहीं था। समान स्तर के लोग विवाह-शादी, घरेलू उत्सवों की तरह बिना खर्च कर लियां करते थे। फिर वर-वधू के गृह प्रवेश के उपरान्त भी घर में एक परिश्रमी कार्यकर्ता की तरह आर्थिक सुविधा बढ़ाने में लाभदायक सिद्ध होने लगते थे। उन भूमि बहुलता के दिनों में जो कार्य अति सरल थे, वे अब परिस्थितियाँ बदल जाने से उल्टे कष्टकारक और भारभूत हो गये हैं।

कठोर शारीरिक श्रम की अभ्यस्त महिलाओं का प्रसव कार्य साधारण परिस्थितियों में ही सुलट जाता था। आज काम करने की शक्ति एवं रुचि घट जाने के कारण अधिकांश महिलाओं की श्रमशीलता अत्यधिक घट गई है। फलस्वरूप प्रसव वेदना अपेक्षाकृत अधिक सहनी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पड़ती है और कई बार तो प्राणघातक तक हो जाती है। इन दिनों प्रसव के उपरान्त स्त्री का नया जन्म हुआ समझा जाता है। कामुक दबाव के आगे, भोलेपन या विवशता में सिर झुका देने का दुष्परिणाम महिलाओं को अपने स्वास्थ्य की, रूप-लावण्य की आहुति देने के रूप में चुकाना पड़ता है। शिशुपालन में उन्हें कितना समय एवं मनोयोग लगाना पड़ता है, कितनी कठिनाइयाँ सहनी पड़ती हैं उसे भुक्तभोगी ही जानती हैं। फिर भी प्रचलन तो प्रचलन जो ठहरा। सास, ननद, रिश्तेदार, सखी, सहेली आदि तक ताना मारते हैं कि इतने दिन हो गये फिर भी बच्चा क्यों नहीं हुआ ? इस अवसर से बचने के लिये भोली महिलाएँ भी उसी तरह सोचने और चाहने लगती हैं। पुरुषों के मस्तिष्क पर तो कामुक उत्तेजनाओं के साधन-सरंजाम बढ़ते चले जाने के कारण चिन्तन विकृतियों का लदान बढ़ता ही जाता है। इस माहौल में यौनाचार की प्रवृत्ति बढ़ती है और बच्चे पर बच्चे होने लगते हैं।

प्रकृति दुर्बल प्राणियों पर अधिक बच्चे उड़ेलने की जल्दी करती है कि अशक्तता के कारण वे जल्दी मरेंगे और उनके बच्चे भी कम ही जियेंगे। ऐसी दशा में वंश नाश का अवसर न आने देने के लिये दुर्बलों में उत्तेजना सदा बढ़ी-चढ़ी ही होती है। चूहे, खरगोश, मेंढक, मछली, कीड़े-मकोड़े इसीलिये अधिक बच्चे जनते हैं कि उनका जीवन खतरे से ही भरा रहता है। शूकर, कुत्ते, बिल्ली भी इस दौड़ में आगे रहते हैं। कारण स्पष्ट है कि जन्मदात्री की अशक्तता और सन्तान की दुर्बलता के रहते उस उत्पादन में से अधिकांश विनाश के मुँह में चला जाता है।

इसके विपरीत हाथी, सिंह आदि बलिष्ठ प्राणी न्यूनतम सन्तानोत्पादन ही करते हैं, क्योंकि समर्थता की छाया में स्वयं भी सुरक्षित रहते हैं और बच्चों को भी भली प्रकार सँभाल लेते हैं। जिस प्रजाति में बहुप्रजनन चल पड़े, उसके बारे में यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि प्रकृति ने उसकी दुर्बलता, अशक्तता और अल्प जीवन को भाँप लिया है और इसी हेतु उसने बहुप्रजनन के रास्ते भार हल्का किये रहने का सोच बना लिया है।

मनुष्य की समझदारी इसमें है कि आगे की संभावनाओं पर विचार करते हुए आज की प्रवृत्तियों का निर्धारण करे। सर्दी, गर्मी, वर्षा आने से पहले ही उनका सामना करने योग्य आवश्यक प्रबन्ध कर लिया जाता है। खेती बोते और काटते समय तदनुरूप व्यवस्था बनाई जाती है। मौत, बुढ़ापे में क्या समस्यायें खड़ी होंगी, उनके सम्बन्ध में लोग पहले से ही विचार करना आरम्भ कर देते हैं। कर्ज लेते ही उसके चुकाने की योजना बनाई जाती है। ठीक इसी प्रकार बच्चे उत्पन्न करने जैसे असाधारण उत्तरदायित्व से भरे बोझ को वहन करने से पूर्व सामर्थ्य को तौल लेना चाहिये और तदुपरान्त कदम बढ़ाने का साहस करना चाहिये। इसे खिलवाड़ न समझा जाय। यह खिलौने से घर सजाना नहीं है, वरन् एक दायित्व है, जिससे घर-परिवार का हर सदस्य प्रभावित होता है। उनमें से हर घटक पर नयी जिम्मेदारी बढ़ती है और हर किसी की सुविधा पर, अर्थ व्यवस्था पर उसकी प्रतिक्रिया होती है, जिसमें यदि कमी रही या रखी गयी तो कई प्रकार के संकट एवं अपयश जुड़ जाते हैं।

यह प्रश्न व्यक्तिगत नहीं है। इस नये दायित्व का दबाव अभिभावकों या परिजनों पर ही नहीं, वरन् उससे समूचा देश, समूचा विश्व प्रभावित होता है। बूँद-बूँद मिलने से घड़ा भरने या जलाशय बनने की उक्ति चरितार्थ होती है। प्राय: बीस वर्ष में एक नयी पीढ़ी बन जाती है। एक जोड़ा चार बच्चे पैदा करे तो पाँच पीढ़ियों में वह क्रम १ से ४, ४ से १६, १६ से ६४, ६४ से २५६ हो जाता है, अर्थात एक सौ पचास प्रतिशत। उपक्रम पिछले दिनों अपने ढर्रे पर चलता रहा है और उसका विस्तार इतना अधिक हो गया है कि जमीन की उपज, जलाशयों की जल सम्पदा कम पड़ने लगी है। वायु प्रदूषण भी इसी कारण बढ़ा है। इस प्रकार आवास और निर्वाह की समस्या जटिल हो गयी है। वायु प्रदूषण भी इसी कारण बढ़ा है। इस प्रकार आवास और निर्वाह की समस्या जटिल हो गयी है। घिचपिच से अनेकों कठिनाइयाँ बढ़ती हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा और आजीविका जैसी प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ति कठिन हो जाती है। प्रगति के लिये किये गये जिन प्रयासों से बड़ी-बड़ी आशायें लगायी जाती हैं, वे सभी धूमिल हो जाती हैं।

मनुष्य सर्वथा एकाकी नहीं है। उसकी सामाजिकता पारस्परिक मिलन से सुविस्तृत सामाजिकता उत्पन्न करती है। एक ढेला फेंकने से समूचे तालाब में लहरें उठने लगती हैं। एक की गलती यदि अन्य लोग भी साधारण बात मानकर प्रचलन की तरह अपनाने लगें तो फिर उसका अन्तिम परिणाम सभी के लिये भयंकर विपत्ति बन करे सामने आयेगा।

जनसंख्या की वृद्धि ऐसी ही विनाशकारी दुष्प्रवृत्ति है, जो सीमा का उल्लंघन करने पर समस्त संसार के लिये, प्राणि मात्र के लिये विपत्ति का कारण बन सकती है। इसे समय रहते रोकने में ही समझदारी है।

सन्तानोत्पादन आवश्यक न माना जाए

सैद्धान्तिक दृष्टि से देखा जाय तो सन्तान पैदा करना इतनी जिम्मेदारी का काम है जिसे स्वीकार करने का साहस बिरले लोग ही कर सकते हैं। किन्तु काम वासना के वशीभूत लोग चाहे-अनचाहे सन्तान की जिम्मेदारियाँ सिर पर लादते चले जाते हैं। यह काम वासना हर प्राणी के अन्दर प्रकृति ने सृष्टि का सन्तुलन बनाये रखने के लिये की है। सामान्य स्थिति में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तानोत्पादन के अत्यन्त कठिन कष्टसाध्य और भारी उत्तरदायित्वों भरी प्रक्रिया स्वीकार करने से समझदार मनुष्य सर्वथा इन्कार कर सकते थे। उन्हें जीवन की दूसरी धाराओं में अपनी क्षमताओं का नियोजन स्पष्टत: अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण लग सकता था। ऐसी दशा में प्रकृति की यह इच्छा पूरी न होती कि प्राणियों की पीढ़ियाँ जीवित रहें और वंश चलते रहें। अस्तु, प्रकृति ने एक विचित्र और विलक्षण क्रम प्राणियों के गले बाँध दिया है कि वे काम कौतुक के लिए लालायित होकर अनायास ही उस बोझ को गले से बाँध लें जिसे वे सम्भवत: विवेक पूर्वक स्वीकार न करते।

सन्तानोत्पादन के पक्ष में एक यह मान्यता भी कार्य करती है जिसके अनुसार यह समझा जाता है कि सन्तानोत्पादन हर व्यक्ति का सामाजिक कर्तव्य है, किन्तु यह मान्यता आज सही नहीं है। किसी जमाने में वीरान भूमि ही सर्वत्र फैली पड़ी थी। वन्य प्रदेश योजनों भूखण्ड घेरे हुये थे। वन्य पशुओं का साम्राज्य था। प्रकृति सम्पदा प्रचुर मात्रा में बिखरी पड़ी थी पर उसका उत्खनन एवं उपयोग अल्पसंख्यक मनुष्यों के लिए अति कठिन था। उस जमाने में मानवी जनसंख्या की वृद्धि आवश्यक समझी गई होगी ओर सन्तानोत्पादन को प्रसन्नतादायक सौभाग्य माना गया होगा। तब उत्पन्न हुए मनुष्यों के लिए अन्न एवं अन्य प्रकृति सम्पदाओं की प्रचुर मात्रा उपलब्ध थी और निर्वाह के साधनों में कोई न्यूनता प्रतीत नहीं होती थी। ऐसी दशा में अधिक प्रजनन उपयोगी समझा गया होगा और उसे कई काल्पनिक एव वास्तविक तर्क प्रस्तुत करके उपयुक्त सिद्ध किया गया होगा। उन दिनों सन्तान के द्वारा पिण्डदान मिलने और स्वर्ग पाने की मान्यता गढ़ी गई होगी। सन्तान रहितों की भर्त्सना की गई होगी। उस युग में इस प्रकार की मान्यताओं का कुछ महत्त्व भी हो सकता था।

आज की स्थिति सर्वथा विपरीत है। इन दिनों परिस्थितियाँ ठीक उल्टी हो गई हैं। संसार भर में जनसंख्या चक्रवृद्धि गति से अत्यन्त तेजी से बढ़ी है और इतनी तेजी से बढ़ रही है कि निर्वाह के प्राकृतिक साधनों का पूरे उत्साह के साथ दोहन करने पर भी वहाँ सर्वथा अपर्याप्त सिद्ध हो रहे हैं। अब कृषि योग्य जमीनों का चप्पा-चप्पा कुरेद डाला गया है। खाद्य उत्पादन में सारा कौशल झोंक दिया गया है फिर भी हर दिशा से 'अपर्याप्त' का हा-हाकार सुनाई पड़ रहा है। माँग अधिक और उत्पादन कम होने के कारण महँगाई आकाश चूमने लगी है। घास पर निर्वाह करने और नकली दूध बनाने की तैयारियाँ चल पड़ी हैं। बढ़ती हुई आबादी के लिए अन्न, वस्त्र, निवास, रोजगार, वाहन, शिक्षा, चिकित्सा जैसी अनिवार्य आवश्यकताओं को जुटा सकना कठिन पड़ रहा है। सरकारें अनेक प्रकार की निवास योजनाएँ बनाती हैं किन्तु उनकी सफलता बढ़ती हुई आबादी के कारण जलते तवें पर पानी की बूँदें पड़ने की तरह अपर्याप्त सिद्ध होती हैं।

अर्थशास्त्रियों की दृष्टि में संसार की सबसे बड़ी समस्या बढ़ती हुई आबादी है। दूरदर्शी विचारकों ने मानव समाज को चेतावनी दी है कि यदि प्रजनन का उत्साह न रुका तो एक शताब्दी के भीतर ही आधी जनसंख्या को निर्वाह साधनों के अभाव में तड़प-तड़प कर प्राण देने पड़ेंगे।

धरती की उत्पादन शक्ति सीमित है। वह असंख्य जनसंख्या के लिए आहार नहीं दे सकती। कोई सरकार शिक्षा, यातायात, उद्योग, व्यवसाय, सुविधा-साधनों की सीमित व्यवस्था ही कर सकती है। अमर्यादित सन्तान उत्पादन की सीमा तक उन्हें नहीं बढ़ाया जा सकता। भारी विपत्ति यह है कि वह चक्रवृद्धि गति से बढ़ती है। यदि एक से चार की उत्पत्ति हो तो पहली पीढ़ी में ४, दूसरी में १६, तीसरी में ६४, चौथी में २५६ तथा पाँचवीं में १०२४ हो जाती है। पाँच पीढ़ियाँ प्राय: सौ-डेढ़ सौ वर्ष में पूरी हो जाती हैं। इतनी अवधि में एक व्यक्ति से हजार बन जायँ तो धरती पर खड़े होने को भी जगह न बचेगी। अच्छा इतना ही है कि प्रकृति अपने नृशंस कुल्हाड़े से इस अवांछनीय उत्पादन को काटती, कुचलती, जलाती एवं बर्बाद करती चली जाती है, तब कहीं सन्तुलन बना रह पाता है। महामारी, युद्ध, भूकम्प, बाढ़, अकाल आदि के कष्टदायक कुल्हाड़े चलते हैं और बढ़ी हुई जनसंख्या रोती-रुलाती अपने घर चली जाती है।

अब चिकित्सा आदि के सुविधा साधन बढ़ गये हैं। अस्तु, मृत्यु दर घट रही है और जीवन की औसत आयु बढ़ोत्तरी पर है। फलत: जन्म दर की तुलना में मृत्यु दर कम हो गई है और आबादी तेजी से बढ़ रही है। इस कुचक्र का सामना कर सकना किसी सरकार के लिए सम्भव नहीं हो सकता। आजीविका, शिक्षा, चिकित्सा, यातायात आदि के साधन ऐडी-चोटी एक करने पर भी उतने नहीं जुट सकते जितनी कि आबादी बढ़ जाती है। अस्तु, अभाव और संकट निवारण के लिए किये गये सारे प्रयास बेकार हो जाते हैं—समस्याएँ जहाँ की तहाँ खड़ी रहकर और आगे बढ़ जाती हैं फलत: असन्तोष बढ़ता और अशान्ति फैलती है।

आज की परिस्थितियों की तुलना लाखों वर्ष पहले की स्थिति से नहीं हो सकती। आज उस समय की उन मान्यताओं का समर्थन नहीं किया जा सकता, जिनमें सन्तान वालों को सौभाग्यवान और सन्तानरहित को अभागा कहा जाता था। आज तो ठीक उलटी परिभाषा करनी पड़ेगी। जो जितने अधिक बच्चे उत्पन्न करता है, वह संसार में उतनी ही अधिक कठिनाई उत्पन्न करता है और समाज का उसी अनुपात से भार बढ़ाता है। जबकि करोड़ों लोगों को आधे पेट सोना पड़ता है तब नई

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आबादी बढ़ाना उन विभुक्षितों के ग्रास छीनने वाली नई भीड़ खड़ी कर देना है। आज की स्थिति में सन्तानोत्पादन को दूसरे शब्दों में समाजद्रोह का पाप कहा जाय तो तनिक भी अत्युक्ति नहीं होगी।

अवांछनीय प्रजनन कितने संकट उत्पन्न करता है? इसे गम्भीरता से समझने का प्रयत्न करने पर लगता है, **'मरणं बिन्दु पातेन'**— की उक्ति अक्षरशः सही है। विशेष प्रकार की बिच्छू मादा और एक खास किस्म की मकड़ी प्रजनन के साथ ही मृत्यु के मुख में चली जाती है। मनुष्य को वैसा तो नहीं करना पड़ता पर त्रास लगभग उतना ही मिलता है।

माता के रक्त-माँस से ही बच्चे पैदा होते हैं, उसी का रक्त दूध बनकर सन्तान का पोषण करता है। नौ महीने पेट में रखते समय उसे ही लगभग रुग्ण स्थिति का कष्ट सहना पड़ता है। प्रसव पीड़ा का वर्णन नहीं हो सकता। कई बार तो वह मृत्यु के समय की यातना से भी अधिक कष्टकारक होती है। बहुत बड़ी संख्या में स्त्रियाँ असह्य प्रसव पीड़ा में ही हर साल प्राण त्यागती हैं। जो बच जाती हैं वे शिशु पालन के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले दबाव के कारण चिरस्थायी रुग्णता की शिकार बन जाती हैं। दिन भर काम, रात भर बच्चों की साज-सँभाल उन्हें दिन-दिन थकाती ही चली जाती है। दरिद्रता के कारण अधिकांश माताओं के लिये पौष्टिक भोजन, दवादारू तथा विश्राम का प्रबन्ध नहीं हो पाता। इस प्रकार एक के बाद दूसरे बच्चे के बोझ से लदती जाने वाली नारी अर्ध मृतक बन कर ही मौत के दिन पूरे करती है। संतान उत्पन्न करके नारी के हाथ क्या लगा ? इसका लेखा-जोखा लिया जाय तो दुर्बलता, रुग्णता, पीड़ा, अविश्रान्ति असमय की कुरूप वृद्धावस्था और अकाल मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ उसे मिल सका हो ऐसा प्रतीत नहीं होता।

पिता को इस सन्तानोत्पादन से क्या मिला? उसका आर्थिक भार लगातार बढ़ता गया। बच्चे की बढ़ती हुई आयु अधिक खर्चे की माँग करती है। नवजात शिशु भी लगभग वयस्कों के बराबर ही खर्च करा लेते हैं। उन्हें दूध, खिलौने, आकर्षक कपड़े, साज-संभाल की व्यवस्था, दवादारू आदि में थोड़ा-थोड़ा करके भी ढेरों पैसा चला जाता है। वे बड़े होते हैं तो अधिक दाम के कपड़े, जेब खर्च, शिक्षा खर्च की रकम बढ़ती है। विवाह-शादी, उन्हें काम-धन्धे में लगाना और उत्तराधिकार में कुछ न कुछ छोड़ने का खर्च जोड़ा जाय तो वे आँकड़े चौकाने वाले होते हैं। जिनके कई बच्चे हैं वे अगर हिसाब लगाने बैठें तो पता चलेगा कि जन्म से लेकर स्वावलम्बी होने तक की अवधि में उन पर कितनी बड़ी धन राशि खर्च हो गई है। उनके लिए कितनी अधिक चिन्ता करनी पड़ी है। उनके लिए आवश्यक साधन जुटाने में उपयुक्त आजीविका स्रोत जब कम पड़ते हैं तो अनुपयुक्त तरीके अपनाने के लिए विवश होना पड़ता है। विवाह-शादियों में खर्च होने वाली राशि जुटाने के लिए अधिकतर लोग वे साधन अपनाते हैं, जिन्हें नैतिक नहीं कहा जा सकता।

प्रजनन के लिए आरम्भ में अति उत्साही व्यक्ति कुछ ही समय में अपनी वह मूर्खता अनुभव करते हुए सिर धुनकर पछताते हैं और सोचते हैं कि जिसे लाभ या वरदान समझा गया था वह भारी घाटे से, संकट से लदा अभिशाप भर था।

हर नया बच्चा अपने पूर्ववर्ती भाई-बहिनों की रोटी और उन्नति में हिस्सा बँटाता आता है और उनके उज्ज्वल भविष्य को धूमिल करता है। हर बाप अपने माता-पिता और भाई-बहिनों की सेवा करके पारिवारिक ऋण से मुक्त होने की क्षमता गँवाता चला जाता है। वृद्ध माता-पिता की सेवा करना अपने छोटे भाई-बहिनों को शिक्षा सहायता करने के धर्म कर्तव्यों का पालन उनके लिए सम्भव ही नहीं हो सकता, जो आये दिन बच्चे जनने की मूर्खता करते चले जाते हैं। ऋण चुकाने से मुँह मोड़ना और अवांछनीय अतिथियों को न्यौत-न्यौत कर बुलाते चलना किस प्रकार बुद्धिमानी हो सकती है, इसे वे ही लोग बता सकते हैं जो सन्तानोत्पादन में उत्साह प्रदर्शित करते और उसे प्रसन्नता का कारण मानते हैं।

दरिद्रता के वातावरण में जन्मे बालकों का शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक विकास अधूरा एवं विकृत हो रहता है। इस स्तर की बढ़ती हुई जनसंख्या अपने समय तथा समाज के लिये मात्र कठिनाइयाँ और समस्यायें ही उत्पन्न करती हैं। दुर्बल शरीर वाली पीढ़ियाँ अपने गुजारे भर के लिये पर्याप्त उत्पादन नहीं कर सकतीं फिर राष्ट्रीय समृद्धि में तो उनका योगदान होगा ही क्या? आये दिन बीमार पड़े रहने वाले लोग स्वयं कष्ट पाते हैं, घर वालों पर भार बनते हैं, दवादारू पर पैसा बर्बाद कराते हैं और बीमारी के छूत से दूसरों को बीमार करते हैं। इसी प्रकार मानसिक विकृतिग्रस्त बच्चे आये दिन उपद्रवों और अपराधों की भूमिका बनाते रहते हैं। जिन लोगों के बीच रहते हैं उन्हें चैन से नहीं रहने देते, स्वयं भी कहाँ चैन से रहते हैं। यह उस अविकसित स्थिति का परिणाम है जो अभावग्रस्त परिस्थितियों में जन्म लेने के कारण उनके गले बँध गई है।

वर्तमान परिस्थितियों में प्रजनन कर्म में प्रवृत्त होने से पूर्व हर विवेकशील नर-नारी को हजार बार विचार करना चाहिये कि क्या वह सचमुच समुन्नत स्तर की सन्तान का निर्माण करने की मनःस्थिति और परिस्थिति में हैं? यदि नहीं तो बुद्धिमत्ता इसी में है कि अपनी आर्थिक स्थिति जननी की शारीरिक स्थिति को, बच्चों के भविष्य को और देश की प्रगति को बर्बादी से बचाने के लिए सन्तानोत्पादन पर विराम लगा कर ही रखा जाय।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अमर्यादित प्रजनन की समस्या और समाधान

प्रसिद्ध अँग्रेजी विद्वान माल्थस ने सन् १९७८ में जन-संख्या वृद्धि की विभीषिका पर एक निबन्धावली लिखी। जिसमें विभिन्न प्रकार के भारी संकटों पर प्रकाश डाला गया है। अपने दूरदर्शी विचार प्रस्तुत करते हुए माल्थस ने लिखा है कि "जीवित रहने के लिए प्रकृति के अंचल में उपलब्ध आहार की तुलना में प्राणियों ने अपनी संख्या अधिक बढ़ा ली है। वृद्धि का यह क्रम निरन्तर जारी है। पर जितनी मात्रा आहार की प्रकृति के आँगन में विद्यमान है उसी अनुपात में प्राणी जीवित रह सकते हैं। इस सन्तुलन को बनाये रखने के लिए ही प्रकृति प्रकोपों का संरजाम जुटाती तथा इस माध्यम से अनावश्यक वृद्धि में रोक-थाम करने की व्यवस्था बनाती है।"

सुप्रसिद्ध विद्वान फ्रैंकलिन का कहना है कि जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों में स्वाभाविक रूप से बढ़ने की अद्भुत क्षमता है। यदि वे एक दूसरे की वृद्धि में बाधक न बनें तथा बढ़ने के लिए आहार एवं स्थान की कमी न हो तो उनकी वृद्धि की कोई सीमा न होगी। इस पृथ्वी पर यदि विभिन्न प्रकार की वृक्ष, वनस्पतियाँ न होतीं तथा प्रकृति ने एक प्रकार का एक ही वृक्ष लगाया होता तो भी एक वृक्ष ही अपनी उत्पादन क्षमता से इतना विस्तार कर लेता कि समस्त पृथ्वी उससे भर जाती।" वनस्पति शास्त्र विशेषज्ञ लिनियन लिखते हैं कि यदि एक वृक्ष से केवल दो बीज प्रतिवर्ष उत्पन्न हों तथा वे जीवित रहें तो मात्र बीस वर्षों में एक वृक्ष से दस लाख वृक्ष हो जायेंगे। बरगद, पीपल आदि वृक्षों से कई करोड़ बीज प्रति वर्ष पैदा होते हैं। यदि प्रत्येक को उगने के लिए स्थान, प्रकाश एवं पोषण मिलता रहे तो सभी बड़े वृक्ष बन जायेंगे। किन्तु इनमें से अधिकांश गल जाते हैं। कुछ को पशु-पक्षी खा जाते हैं। जो थोड़े उगते भी हैं उनमें से शक्तिशाली अपने समीपवर्ती कमजोर को दबा देते हैं। इस तरह प्रकृति के नियन्त्रण की स्वसंचालित प्रक्रिया चलती रहती है।

आधुनिक विकासवाद के जनक चार्ल्स डारविन अपनी पुस्तक 'ओरिजन आफ स्पेसीज' में लिखते हैं कि यदि पशु-पक्षियों की वृद्धि नियन्त्रित न हो, मात्र एक जोड़े जानवर के बच्चों से ही कुछ ही सदियों में सारी पृथ्वी भर जायेगी।

पर इस तथ्य के साथ यह सत्य भी जुड़ा हुआ है कि प्रकृति ने जिस उदारता के साथ वनस्पतियों एवं जीव-जन्तुओं को अपनी संतति बढ़ाने की सामर्थ्य दे रखी है, दूसरी ओर आहार आदि साधनों को सीमित करके इस असीम अभिवृद्धि में रोक भी लगाती है। यदि यह व्यवस्था प्रकृति द्वारा न की गयी होती तो कुछ ही वर्षों मे मात्र एक जोड़े पशु अथवा पक्षियों से सारी पृथ्वी भर जाती। किन्तु कठोर प्रकृति नियम व्यवस्था के कारण उतने ही जीवित रह पाते हैं, जितने कि सृष्टि सन्तुलन को बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं। यही बात वृक्ष, वनस्पतियों के संदर्भ में भी है। जीव जगत में अस्तित्व की रक्षा के लिए 'स्ट्रगल फार एक्जिस्टेन्स' ऐण्ड 'सरवाइवल ऑफ दी फिटेस्ट' का डारविनवादी सिद्धान्त चलता रहता है। अनियंत्रित विस्तार के नियमन एवं नियंत्रण का क्रम गतिशील रहता है। सृष्टि संतुलन को कायम रखने के लिए यह व्यवस्था आवश्यक है और उपयोगी भी। वह लाखों को एक क्षण में पैदा करती है पर अधिकांश को नष्ट-भ्रष्ट कर डालती है। करोड़ों को जीवन देती है पर दूसरे ही क्षण छीन भी लेती है।

सृष्टि का मुकुटमणि और सर्वाधिक बुद्धिमान प्राणी होने के नाते अन्य प्राणियों की भाँति मनुष्य प्रकृति के समक्ष पराधीन नहीं है। प्रकृति पर नियमन एवं नियंत्रण की सामर्थ्य भी उसने विकसित करली है। अस्तु, प्रकृति के अवरोध, प्रकोप उसकी अभिवृद्धि को रोकने में एक सीमा तक ही कारगर हो पाते हैं। पहले वैज्ञानिक क्षेत्र में इतना विकास भी नहीं हुआ था। आज जैसे चिकित्सा के साधन भी उपलब्ध नहीं थे। प्रकृति प्रकोपों से बचाव के लिए इतने सुविकसित संसाधन भी न थे। यही कारण था कि जन-संख्या का विस्तार अपरिमित नहीं होने पाता था। प्रकोपों, महामारियों आदि द्वारा प्रकृति अनियन्त्रित वृद्धि को रोकती थी। प्रकृति पर एक सीमा तक नियन्त्रण पा लेने से मनुष्य ने अपनी बुद्धि व कुशलता के सहारे सुरक्षात्मक उपाय अधिक विकसित कर लिए हैं। मृत्यु दर में भारी गिरावट और जन्म दर में असामान्य वृद्धि हुई है।

ऐतिहासिक गवेषणाओं के अनुसार औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व सम्पूर्ण विश्व की कुल जन-संख्या ५० करोड़ थी। चक्रवृद्धि ब्याज की भाँति क्रमशः बढ़ते-बढ़ते १९वीं सदी के मध्य तक एक अरब तक जा पहुँची। १९५६ तक ३ अरब तथा १५ वर्षों में बढ़कर लगभग चार अरब तक पहुँच गयी। ऐसी सम्भावना है कि यदि बढ़ने की गति यही रही तो इस सदी के अन्त तक विश्व की कुल जनसंख्या ६ अरब तक पहुँच जायेगी। इसमें सर्वाधिक वृद्धि एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका देशों में हुई है। पूरे विश्व का तीन चौथाई अर्थात् ३ अरब आबादी मात्र इन देशों में सिमटी है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार सन् २००० तक हर दूसरा व्यक्ति एशिया का होगा।

यों तो जन-संख्या हर देश में बढ़ी है पर विश्व में चीन के बाद दूसरा नम्बर भारत का आता है। मात्र ८० वर्षों के अन्तराल में भारत की जन-संख्या में तीन गुने का अन्तर आया है। सन् १९०१ में भारत की कुल आबादी २३ करोड़ ८३ लाख, १९११ में २५ करोड़ २० लाख, १९२१ में २६ करोड़ १३ लाख, १९३१ में २७ करोड़ ८९ लाख, १९४१ में ३१ करोड़ ८६

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

लाख, १९५१ में ३६ करोड़ १० लाख, १९६१ में ४३ करोड़ ९२ लाख, १९७१ में ५४ करोड़ ८१ लाख से बढ़ते-बढ़ते १९८१ तक ६८ करोड़ ३८ लाख तक जा पहुँची है। मात्र पिछले दस वर्षों में २४-७५ प्रतिशत अर्थात् १३ करोड़ ५० लाख की वृद्धि जनसंख्या में हुई है।

'दी गार्जियन वीकली' २६ अप्रैल, १९८१ में जेम्स कैमरोन ने भारतीय जन-संख्या की बढ़ोत्तरी के विषय में लिखा है कि मात्र दस वर्षों में भारत एक जापान और दो आस्ट्रेलिया पैदा करता है। संयुक्त राज्य अमेरिका यू० एस० एस० आर० तथा इन्डोनेशिया की कुल सम्मिलित आबादी मिलकर भी भारत से कम पड़ती है। कुछ विश्व के क्षेत्रफल का २४ प्रतिशत भारत में है जबकि जनसंख्या का १५ प्रतिशत। इस असन्तुलन की परिणति ही गरीबी, बेकारी, बेराजगारी, अशिक्षा जैसे दुष्परिणामों के रूप में परिलक्षित हो रही है।

बढ़ती हुई जन-संख्या की रोकथाम के लिए अन्य देशों ने अपने-अपने देशों की परिस्थितियों के अनुरूप कार्यक्रम बनाये हैं और उनके क्रियान्वयन के लिए कठोर कदम भी उठाये हैं। अपने यहाँ की परिस्थितियाँ तो जन-संख्या वृद्धि का अतिरिक्त भार सहन कर सकने में सर्वथा अक्षम हैं। अभी जितनी आबादी है उतनी के लिए अन्न, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य की सुविधा जुटा पाना कठिन पड़ रहा है और अधिक बढ़ने से तो स्थिति और भी विकट हो सकती है। फिर रोकथाम की व्यवस्था कैसे बने? अनियंत्रित प्रजनन को किस तरह रोका जाय? इस प्रश्न का हल अभी भी व्यावहारिक स्तर पर नहीं निकल सकता है। सरकारी तंत्र इस दिशा में प्रयत्नशील है और यह प्रयास चलना भी चाहिए। पर इसके साथ ही कुछ ऐसे व्यावहारिक कदम भी उठाये जाने चाहिए जो प्रजनन को बढ़ावा देने की रोकथाम करने में सक्षम हों इस दिशा में कुछ रचनात्मक सुझाव ऐसे हैं, जिनके कार्यान्वित करने पर आशातीत सफलता मिल सकती है।

देश में एक ऐसी विचार क्रान्ति की आवश्यकता है जो कामुक एवं अश्लील चिन्तन की रोकथाम कर सके। नारी के प्रति कामुक एवं अश्लील चिन्तन अधिक प्रजनन का कारण बनता है। अश्लीलता को बढ़ावा देने वाले विज्ञापनों, साहित्यों, पत्र-पत्रिकाओं एवं स्वच्छन्द यौनाचार के प्रतिपादनों पर कड़ाई से प्रतिबन्ध लगे। इसके लिए आवश्यकता पड़े तो विरोध एवं संघर्ष के लिए विचार शील वर्ग का संगठन खड़ा किया जाय। नारी को वासना तृप्ति का साधन नहीं सहयोगी और सहधर्मिणी माना जाय, इसके लिए ऐसे वातावरण निर्माण की आवश्यकता है, जो शृंगारिकता एवं कामुकता के तत्वों से मुक्त हो। साहित्यकार, कवि, कलाकार, गायक प्रभृत्ति प्रतिभाएँ नारी के प्रति पवित्रतम भाव उभारने में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभा सकती हैं। ऐसे चलचित्रों एवं विज्ञापनों पर भी रोकथाम होनी चाहिए जो मस्तिष्क को उत्तेजित करते तथा कामुक चिन्तन को बढ़ावा देते हों।

विवाह की उम्र बढ़ा देने से भी जन-संख्या नियंत्रण में एक सीमा तक सहयोग मिल सकता है। शरीर शास्त्रियों का निष्कर्ष है कि नारियों में प्रजनन सर्वाधिक पन्द्रह और तीस वर्ष के मध्य की अवधि में होता है। उनकी प्रजनन क्षमता सत्तरह और पच्चीस के बीच सबसे अधिक पायी गई। अपने यहाँ कच्ची आयु में ही लड़के-लड़कियों को विवाह में बाँध देने की कितने ही स्थानों परम्परा है। अपरिपक्व मस्तिष्कों के लिए मनोरंजन के लिए सबसे आकर्षक केन्द्र बिन्दु सेक्स बनता है। जिसकी परिणति बच्चों के रूप में होती है। भारत की अधिकांशतः नारियाँ पच्चीस-तीस वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते कितने ही बच्चों की माँ बन चुकी होती है। किशोरावस्था का तूफानी आवेश जब कई बच्चों के रूप में प्रकट होता है तब उन्हें अपनी गलती का भान होता है, तब तक गरीबी और दरिद्रता अपना पल्ला उनके चारों ओर पसार चुकी होती हैं।

शारदा एक्ट के पास होने से बाल विवाह अपराध की श्रेणी में आ गया है पर अज्ञानवश आज भी राजस्थान, म० प्र०, उत्तर प्रदेश जैसे कितने ही प्रदेशों में यह प्रचलित है। इस नियम की उपेक्षा-अवमानना होते इन प्रान्तों में सहज ही देखा जा सकता है। विवाह के लिए लड़के एवं लड़कियों की निर्धारित आयु क्रमशः २१ और १८ वर्ष है। इसे भी बढ़ाया जाना चाहिए। विवाह के लिए पुरुष की आयु २५ और ३० के बीच तथा नारी की २० और २५ के बीच बढ़ा देने से भी प्रजनन में बढ़ोत्तरी को रोका जा सकता है। इसके साथ ही सुशिक्षित, स्वस्थ, अनुभवी, जिम्मेदार, स्वावलम्बी व्यक्तियों को ही विवाह के लिए प्रोत्साहन एवं अनुमति मिलनी चाहिए। यह नियम नर और नारी दोनों पर समान रूप से लागू होता है।

जनस्तर एवं सरकारी स्तर पर इनका क्रियान्वयन हो सके तो ही इस सुरसा के मुँह की भाँति बढ़ती जन-संख्या पर नियन्त्रण कर सकना सम्भव हो सकता है। विश्व के अनेकों देशों ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये हैं। यहाँ भी अविलम्ब जन-संख्या वृद्धि की रोकथाम के लिए ठोस कदम उठने चाहिए। इसके बिना देश की प्रगति के लिए किए जाने वाले अन्यान्य भौतिक प्रयास सफल नहीं हो सकेंगे।

जन्मदर घटाने में इस प्रकार योगदान दीजिए

हमारे देश की जनसंख्या द्रुतगति से बढ़ती जा रही है, जिसके कारण देश की प्राप्ति एवं समृद्धि को एक प्रकार से संकट ही उत्पन्न हो गया है। एक ओर तो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रति डेढ़ सैकिण्ड के बाद एक बालक का जन्म हो रहा है, दूसरी ओर देश में जो स्वास्थ्य योजनाएँ चली हैं उससे मृत्यु दर में काफी कमी आ गयी है। पहले प्रत्येक भारतीय की औसत आयु २३ वर्ष थी किन्तु अब ५० वर्ष हो गयी है और संभावना है कि जैसे-जैसे स्वास्थ्य योजनाएँ विकसित होती जायेंगी, अगले १० वर्षों में वह ५५-६० वर्ष तक बढ़ जायेगी। इसका अभिप्राय यह हुआ कि औसत आयु तो पहले से दुगनी से भी अधिक बढ़ गयी है परन्तु उसी अनुपात में जन्मदर में कमी नहीं हुई है अतएव जनसंख्या अविराम गति से बढ़ती जा रही है।

जब तक मृत्यु-दर तथा जन्मदर के मध्य सामंजस्य स्थापित नहीं होगा, तब तक जनसंख्या का नियन्त्रण असम्भव है। जन्मदर की बाढ़ को रोकने के लिए अनेक उपाय खोजे गये हैं, कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि यदि लड़कियों के विवाह की न्यूनतम आयु २० वर्ष कर दी जाये तो जन्मदर में ३०% तक की कमी आ जायेगी। देर से विवाह करने से कम बच्चे होंगे। अतएव इस कानून को निश्चित रूप से लागू कर दिया जाना चाहिए। जो उल्लंघन करें, उन्हें सरकार दण्डित करे।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या विवाह की आयु बढ़ा देने से जन्मदर में कमी आ जायेगी? क्या देश की ग्रामीण जनता को देखते हुए यह कानून बनाना उचित है? विवाह की आयु बढ़ाना हितकर ही होगा क्योंकि कानून के डर से लोग बाल-विवाह से विमुख होंगे तथा बड़ी आयु में विवाह होने से बालक कम होंगे। विवाह की आयु में वृद्धि ग्रामीणों के हित में भी होगी। छोटी-छोटी आयु में विवाह करने से स्त्री तथा पुरुष दोनों का शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे दम्पत्ति जिन्होंने छोटी आयु से ही अपने शरीरों को निचोड़ना प्रारम्भ कर दिया, कभी नीरोग एवं स्वस्थ सन्तति उत्पन्न नहीं कर सकते। किशोरियाँ यदि प्रजनन करती हैं तो उनका स्वयं का जीवन भी संकट में रहता है। अस्पताल की रिपोर्टों से पता लगता है कि बीस वर्ष से कम आयु की जितनी लड़कियाँ प्रसव पीड़ा में मरती हैं, उससे चौथाई भी बड़ी आयु की स्त्रियाँ इस संकट में प्राण नहीं गँवाती। अतएव लड़कियों की जान को जोखिम में डालने वाले अभिभावक बुद्धिमान नहीं कहे जा सकते।

प्राय: देखा जाता है कि शिक्षित परिवारों में विवाह अपेक्षाकृत विलम्ब से होता है। कन्या अध्ययन कर रही होती है और आमतौर से कोई कानून न होने पर भी देर से ही वैवाहिक सूत्रों में आबद्ध होती है। शिक्षित युवक तथा युवतियाँ इस बात से परिचित होते हैं कि शिक्षा पूरी किये बिना, अपने पैरों पर खड़े हुए बिना—विवाह करने का अभिप्राय है अपनी मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों का विघटन करना तथा अर्थाभाव से दाम्पत्य जीवन की खुशियों को नष्ट करना। साथ ही बड़ी आयु में उनका मानसिक स्तर भी विकसित हो जाता है तथा वे यह भी भलीभाँति समझ जाते हैं कि इस महँगाई के जमाने में अधिक बच्चे उत्पन्न करने का अर्थ है दाम्पत्य तथा पारिवारिक जीवन की प्रसन्नताओं पर कुठाराघात, बच्चों के भविष्य के साथ खिलवाड़ तथा राष्ट्र के प्रति द्रोह। सर्वेक्षण के अनुसार शिक्षित महिलाओं वालें क्षेत्रों में जन्मदर काफी कम पायी जाती है।

लोगों में परिवार नियोजन तथा वैवाहिक विषयों से सम्बन्धित उत्तम साहित्य उपलब्ध कराना चाहिए, जिससे कि वे अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों से मुक्त हों—स्वतन्त्र कार्य-कलाप कर सकें। शिक्षा तथा आजीविका की सुविधाएँ मिलने पर स्त्रियाँ भी स्वभावत: देर से विवाह करेंगी तथा सोच-विचार कर बालकों की संख्या बढ़ायेंगे। कम बालक होने से माता तथा शिशु दोनों का स्वास्थ्य अच्छा रहेगा तथा समाज को स्वस्थ, सबल नागरिक प्रदान किये जा सकेंगे।

अवांछनीय प्रजनन से हाथ खींचें

पिछड़े स्तर की जनसंख्या का बढ़ना किसी भी देश के लिए अभिशाप होता है। आज रोजगार की तुलना में आबादी का बढ़ना संकटपूर्ण तो है ही, साथ ही यदि अनुत्पादक स्तर के लोग बढ़े तो समझना चाहिए कि दुहरी मुसीबत सामने खड़ी हुई। फिर यदि उनमें से भी रोगी, अपंग, असमर्थों की भरमार हो तो उनके निर्वाह देखभाल, सेवा-सुश्रूषा, चिकित्सा आदि पर जो दूसरों का समय तथा धन खर्च होता है, उसे एक दैवी प्रकोप की तरह ही समझा जाना चाहिए। अपना देश ऐसी ही मुसीबत में फँसा है तथा फँसता जा रहा है।

कुजनेट्स रोस्टो, हिगिन्स, सिंगर, करीहारा के अनुसार "जो देश जितना ही अर्द्ध विकसित होता है, उस देश में कृषि पर जनसंख्या का भार उतना ही अधिक होता है।" भारत की, इस दृष्टिकोण से, अर्थ व्यवस्था की अर्द्धविकसित प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। भारत में कार्यशील या उत्पादक व्यक्तियों की मात्रा केवल ४४ प्रतिशत है। शेष में अनुत्पादक ही भरे पड़े हैं।

तीव्रगति से बढ़ती हुई जनसंख्या भारत के आर्थिक विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। जनसंख्या नियन्त्रण के बिना आर्थिक विकास संभव नहीं है। भारत में जनसंख्या का दबाव अभी इतना अधिक है कि इसके विकास की दर में कमी लाना प्रधान आवश्यकता है। जनसंख्या की दृष्टि से हमारे दौड़ने की चाल इतनी तीव्र है कि आर्थिक दृष्टि से परिवर्तनों तथा प्रगति के बावजूद, हम एक ही स्थान पर स्थिर हैं।

देहाती क्षेत्रों में मृत्युदर १३१ प्रति हजार है जबकि शहरी क्षेत्रों में ८१ प्रति हजार है। अनुमान है कि प्रत्येक आठवाँ बच्चा एक वर्ष के भीतर मर जाता है। शिशुओं

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की मृत्यु के अनेक कारणों में मुख्य रूप से कुपोषण है। ५ वर्ष से कम आयु के जिन बच्चों की मृत्यु होती है, उनमें अनुमानत: ४० प्रतिशत की मृत्यु कुपोषण के कारण होती है।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के सर्वेक्षण के अनुसार १ से ६ वर्ष की आयु के बच्चों में न्यूनतम ६० प्रतिशत बच्चे कुपोषण से होने वाली खून की कमी और प्रोटीन, कैलोरी कुपोषण से किसी न किसी प्रकार से ग्रस्त हैं। अनुमानत: प्रत्येक वर्ष में लगभग एक लाख बच्चों की मृत्यु कुपोषण के कारण हो जाती है। अनुमानत: १५ वर्ष से कम आयु के लगभग ५ लाख बच्चे नेत्रहीन होंगे तथा पूर्व स्कूल आयु के १०-१५ प्रतिशत बच्चे विटामिन 'ए की कमी के कारण नेत्रहीन हो गये हैं। ६ से ११ वर्ष आयु के २ करोड़ २० लाख बच्चे लगभग स्कूल नहीं जाते। इनमें से १ करोड़ ८० लाख अथवा ७५ प्रतिशत राजस्थान, उत्तरप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, जम्मू-कश्मीर, मध्यप्रदेश, उड़ीसा और पं० बंगाल में हैं। सर्वेक्षण के अनुसार स्कूल छोड़ने वाले बच्चे अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों के हैं और दुर्बल वर्गों की लड़कियाँ हैं पहली तथा दूसरी कक्षा से पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों की संख्या अनुमानत: ४२.८ प्रतिशत तक है।

जनसंख्या की अधिकतम कार्यशीलता में साक्षरता की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होती है। जिन देशों में साक्षरता अधिक है वहाँ जनसंख्या की किस्म उत्तम व कार्यशीलता अधिक है। शिक्षा की महत्ता स्पष्ट करते हुये चेस्टर वाउल्स ने लिखा है कि "प्राकृतिक शक्तियों के नियन्त्रण और संरूपण करने तथा एक व्यवस्थित गतिशील और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण करने में शिक्षा सभी उपकरणों में सर्वाधिक शक्तिशाली है। अत: शिक्षा का गुणात्मक और मात्रात्मक दोनों प्रकार का विस्तार आवश्यक है। प्रो० आर्थर लीविस ने भी ज्ञान तत्व को आर्थिक विकास का मूल माना है। भारत में साक्षरता १९५१ की जनसंख्या में १९.२ प्रतिशत थी, १९६१ में २४ तथा १९७१ में २९.३५ थी, केरल में ६० प्रतिशत जनसंख्या साक्षर है।

१९७१ में जनसंख्या में २४.६ प्रतिशत की वृद्धि हुई, जिसके फलस्वरूप १०८ मिलियन की वृद्धि हुई और जबकि जापान की कुल जनसंख्या १०३ मिलियन और अमेरिका की २०६ मिलियन। जनसंख्या में जन्मदर मुख्य है। भारत में लड़कियों की औसत विवाह की उम्र १६ वर्ष है। १९-२० वर्ष में वह दो बच्चों की माँ तथा २-३ वर्ष के अन्तराल से बच्चों को जन्म देते हुए ३५ वर्ष में ५-६ बच्चों की माँ बन जाती है। सामान्य रूप से ६-७ बच्चों को जन्म देती है। इसका कारण बाल-विवाह मुख्य है तथा अन्य सामाजिक एवं धार्मिक कारणों से भारत की जन्मदर अन्य देशों की तुलना में अधिक है। कनाडा में जन्मदर २८.७ प्रति हजार, अमेरिका में १८.८ प्रति हजार, ब्रिटेन में १५.६ प्रति हजार और भारत में ३९ प्रति हजार है। यह वृद्धि संख्या चीन से भी अधिक है।

भारत की जनसंख्या में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है और इसमें निरन्तर वृद्धि भी हो रही है। १९२१ में प्रति हजार पर ९५५ स्त्रियाँ थीं, १९६१ में ९४१ तथा १९७१ में ९२२ रह गई। पुरुषों की संख्या ५१.७ प्रतिशत तथा स्त्रियों की संख्या ४८.३ प्रतिशत है। किन्तु यूरोपियन देशों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक हैं। अमेरिका में १९६१ में प्रति हजार पुरुषों पर १०३० स्त्रियाँ, ब्रिटेन में एक हजार ६८ स्त्रियाँ और रूस में १ हजार २२० स्त्रियाँ थीं। अपने यहाँ इसका कारण बाल विवाह के कारण प्रसव में मृत्यु, स्त्रियों की उपेक्षा, गर्म जलवायु, घरेलू काम-काज के झंझट में स्त्रियों का पिसा रहना आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

लड़कियों का जन्म लड़कों की अपेक्षा कम हो रहा है—ऐसी बात नहीं है। किन्तु लड़कों की तुलना में उन्हें हेय समझा जाता है और लालन-पालन से लेकर चिकित्सा तक में वैसा व्यवहार नहीं किया जाता जैसा कि लड़कों के साथ होता है। फलत: वे उनमें से कितनी ही बाल मृत्यु की शिकार होती हैं और कितनी ही दुर्बल स्वास्थ्य लेकर भी बालविवाह की शिकार बनती हैं तथा अविकसित स्थिति में ही मातृत्व का भार वहन करने के कारण प्रसव काल में अथवा उसके कुछ दिन उपरान्त दुर्बलताजन्य रोगों से आक्रान्त होकर बेमौत मरती हैं। स्त्रियों की संख्या पुरुषों की तुलना में कम होने का यही बहुत बड़ा कारण है। दुर्बल महिलाओं के बच्चे तो स्वभावत: दुर्बल और रोगाक्रान्त होते हैं।

भारती समाचार के अनुसार लखनऊ विश्वविद्यालय में जनसंख्या अनुसंधान केन्द्र के डॉ० जगदीश नारायण श्रीवास्तव के एक सर्वेक्षण से यह तथ्य प्रकाश में आया कि सन् १९७१ में उत्तरप्रदेश की प्रति एक हजार बालिकाओं में से ५१.४ प्रतिशत का विवाह १५ वर्ष के पहले ही हो गया। इसकी स्थिति सभी जनपदों में भिन्न है। देहरादून में २२ प्रतिशत कन्याओं का विवाह १५ वर्ष की आयु के पूर्व हुआ तथा वस्ती जिले में ८० प्रतिशत हुआ। बुन्देलखण्ड तथा पूर्वी उत्तरप्रदेश के क्षेत्रों में इसका अधिकांश प्रचलन है। पहाड़ी तथा पश्चिमी क्षेत्रों में कम है।

इस सर्वेक्षण के अनुसार आर्थिक रूप से सम्पन्न जिलों में बाल-विवाह का चलन कम है। पिछड़े वर्ग के लोग अज्ञानतावश कम उम्र में बच्चों के विवाह करते हैं। इतना ही नहीं उनके बच्चे बच्ची भी जल्दी-जल्दी होते हैं। बीस-पच्चीस वर्ष की युवतियाँ प्राय: ४-५ बच्चों की माता बन जाती हैं।

असमर्थ आर्थिक स्थिति के अभिभावक बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा आदि का उत्तरदायित्व निभाने में असमर्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहने के कारण उन्हें छोटी आयु में ही आजीविका उपार्जन के लिए बाधित करते हैं। फलतः जो आयु विकसित होने को थी, वह काम के दबाव में पिस कर गई-गुजरी स्थिति में बन कर रह जाती है। ऐसे बच्चे बड़े होने शारीरिक दृष्टि से रुग्ण, दुर्बल और मानसिक दृष्टि से पिछड़ेपन के अभिशापों से ग्रसित रहकर किसी प्रकार निर्वाह करते हैं। इसका प्रतिफल सारे समाज को भुगतना पड़ता है।

जनसंख्या वृद्धि के अभिशापों को जितनी जल्दी समझा जा सके उतना ही अच्छा है। वर्तमान महँगाई, बेरोजगारी और निर्वाह साधनों की कमी कठिनाई को देखते हुए तो इस अवांछनीय उत्पादन को रोकने के लिए वातावरण बनाया और शक्ति भर प्रयत्न किया ही जाना चाहिए।

अधिक सन्तान या जान की आफत

स्त्री आखिर स्त्री थी—कोई मशीन नहीं थी। बेचारी अप्राकृतिक दबाव कहाँ तक सहन कर पाती। ६ बच्चों को पहले ही जन्म दे चुकी थी। ७वाँ बच्चा गर्भ में था, तभी से उसकी स्थिति नाजुक थी। देखने वालों को पता है कि ३५ वर्ष की स्त्री ६० वर्ष से भी अधिक लगती थी। शरीर का रस-रक्त था, सो ६ बच्चे ले गये। ७वें बच्चे की प्रसव पीड़ा सहन करना काबू से बाहर हो गया। बेचारी अस्पताल से घर भी न आ सकी, वहीं दम तोड़ कर परलोक चली गई।

नाजुक थी तो क्या हुआ, किसी तरह घर का बोझ तो उठाये हुई थी, पर जैसे ही उसकी मृत्यु हुई घर में आफत उठ खड़ी हुई। उसका पति रामप्रसाद रेडी में काँच और चीनी मिट्टी के गिलास-प्याले बेचता है। लोग कहते हैं रामप्रसाद बड़ा सीधा और सज्जन है पर सज्जनता से गृहस्थी की व्यवस्था का क्या सम्बन्ध? दो बच्चे रहे होते तो पत्नी आयुपर्यन्त साथ देती। सारा जीवन-तत्त्व ३५ वर्ष की आयु में ही बँट गया। आमदनी मुश्किल से ३) रोज की होती और आठ व्यक्तियों का पेट-पालन करना पड़ता था। न किसी को पौष्टिक आहार मिल पाया, न तन ढाँपने को साबित कपड़े। ६ बच्चों में एक बच्चा भी ऐसा न हुआ जो किसी तरह प्राइमरी से आगे बढ़ पाता। उनमें भी चार बच्चों को स्कूल का मुँह देखना भी नसीब न हुआ।

अधिक आबादी का अभिशाप आज सम्पूर्ण विश्व की समस्या है, पर उसका असली रूप ऐसे निम्न और मध्यम श्रेणी के परिवारों में ही देखने को आता है। आपका ध्यान इस ओर नहीं है, यह कभी सोचते नहीं कि इस फिजूल की सेना को कौन खिलायेगा-पिलायेगा? अन्धाधुन्ध बच्चे पैदा करने का अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य आज अधिकांश व्यक्ति कर रहे हैं, उसके सामूहिक दुष्परिणाम सबके सामने हैं।

व्यक्तिगत रूप से हमारे लिए रामप्रसाद का लेखा-जोखा ही बहुत है। स्त्री का निधन हुआ, बच्चे को उसकी बुआ ने पाल लिया पर उसको अपनी भी तो सन्तानें थीं। असली माँ की सी परवरिश न दे सकी होगी, सो दूसरे महीने छोटा बच्चा भी चला बसा। इन्हीं दिनों सारी मण्डी में चेचक फैली—एक साथ ही तीन बच्चे उसके शिकार हुए। रामप्रसाद खुद बर्तन बेचने चला जाता है। बड़ा १५ वर्ष का लड़का जिसकी पढ़ने की उम्र थी, वह घर में स्त्री का काम करता है। खाना बनाना, बर्तन धोना, चूल्हा-चौका साफ करना—यहीं तक उसके कार्य सीमित हैं तो संस्कार क्या आकाश से टपकेंगे? दूसरी ११ वर्ष की लड़की है, दोनों दिन भर फू-फू करते हैं तब कहीं घर वालों को खाना मिलता है। बीमारों की सुने कौन?

तीन व्यक्ति मर गये पर घर में रामप्रसाद सहित ६ उम्मीदवार हैं। सही हिसाब फैलाया जाये तो १००) से भी सबकी उदरपूर्ति नहीं कर सकते। कभी ऐसा न हुआ, जब वह कर्जमन्द न रहा हो। दूसरे-तीसरे दिन कोई-न-कोई धौंस जमाने वाला आ ही जाता है। लड़की भी अब सयानी हो रही है, उसकी क्या चिन्ता न होगी? यों कहना चाहिए कि अधिक सन्तान पैदा कर रामप्रसाद ने किसी का भला नहीं किया, स्वयं दुष्परिणाम भुगत रहा है, सो परमात्मा जाने उसका अन्त कहाँ होगा?

रामप्रसाद तो विशाल समस्या का एक बहुत छोटा रूप है। ऐसे सैकड़ों लोग हैं, जो अधिक सन्तान के कष्ट से पीड़ित हैं, पर दोष किसे दें? यह तो अपनी-अपनी समस्या है। सज्जन है, राम का भक्त है—सो तो अच्छी बात है, पर कमाने-धमाने, भोजन-वस्त्र जुटाने का काम तो उसी को करना है। अपने, अपनी स्त्री और बच्चों के प्रति शुद्ध सज्जनता तो तब थी जब घर को व्यवस्थित रख पाता, थोड़े बच्चे पैदा किये जाते। इसमें उसका भी भला था और देश का भी।

सुसंतुलित परिवार-सुखी परिवार

पहला बच्चा हुआ तभी डाक्टर ने कह दिया—"देखो! हिम्मतलालजी, दूसरा बालक पैदा किया तो अपनी पत्नी के जीवित रहने की आशा मत करना। किसी तरह प्रसव-कष्ट झेल भी गई तो इसे टी० बी० हो जायेगी।" उस समय तो अच्छा जी! कह कर हिम्मत लाल जी ठक्कर घर चले आये पर उनकी वास्तविक इच्छा तब भी यही थी कि कम से कम एक दो बालक और हो जाते तो अच्छा था।

विचार-संघर्ष कई दिन तक चला। अन्त में उसने अपने मित्र श्री यशराज धीरू भाई मिस्त्री से परामर्श किया। यशराज ने उसे सलाह दी—भाई मेरी सुनो तो डाक्टर की राय मान लो। अधिक संतान के चक्कर में न पड़ो नहीं तो धर्मपत्नी भी चली जायेगी। डेढ सौ रुपये

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

के साधारण क्लर्क को अधिक संतान का बोझ उठाना इस जमाने में एक बहुत बड़ी आफत है। न किसी को अच्छा खिला सकोगे, न पढ़ा-लिखा सकोगे। स्वस्थ, शिक्षित और भली प्रकार संस्कारों में ढाला गया एक बालक हो तो उसी से सौ बालकों का सुख पा लोगे। अधिक संतान का सुख विडम्बना मात्र ही है।

बात हिम्मतलाल की भी समझ में आ गई। एक सप्ताह की छुट्टी लेकर उसने अपनी नसबन्दी करा ली। इस तरह उसने सर्वप्रथम एक तरह से अपनी धर्मपत्नी को जीवन दान दिया। दुबली-पतली वैसे ही है, कौन जाने दूसरी संतान होने पर बचती भी या न बचती।

आज कोई १६ वर्ष हुये इस बात को कोई आकर घर देखे, स्त्री बालकों देखे तो उनका रहन-सहन देख कर यही कहेगा कोई अच्छे खाते-पीते घर वाले हैं। उनका लड़का कृष्णगोपाल इस वर्ष मैट्रिक की परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण हुआ। बालक के प्रति माता-पिता दोनों का स्वाभाविक स्नेह है। अब तो उन्हें १८०, के लगभग मिलते हैं पर महँगाई और आवश्यकताओं के युग में १८०) से क्या बनता है। तो भी कोई यह अनुमान नहीं लगा सकता कि इतनी आय में यह लोग इतना अच्छा जीवन कैसे बिताते हैं।

बात साफ है। तीन आदमियों का भोजन खर्च जो बिल्कुल मामूली होता, उसमें थोड़ा-ज्यादा खर्च करके अच्छा खाना खाते हैं। दूध, मक्खन और सब्जी की व्यवस्था हो जाय तो पौष्टिकता के लिए और क्या चाहिए। यदि दो बालक और हो जाते और १००) भोजन के लिए रखे जाते तो २०)-२०) एक-एक हिस्से पड़ते। किसी को दूध मिलता किसी को नहीं, सब्जी कभी सप्ताह में दो दिन मिलती। पर तीन व्यक्तियों में ३३ रुपये प्रति व्यक्ति का औसत आता है हर एक के हिस्से में १३ रुपये अधिक। इतने में भोजन की पौष्टिकता बढ़ाना कौन-सी कठिन बात है।

बालक भी स्वस्थ, माँ भी स्वस्थ और हिम्मतलाल को भी कोई चिन्ता नहीं, सब अच्छा पहनते हैं आनन्द से रहते हैं। घर सजा-सजाया रहता। बालक ५ वर्ष में बी० ए० कर लेगा और पढ़ना चाहेगा तो भी दिक्कत नहीं। एक बालक की पढ़ाई का खर्च हर मध्यम श्रेणी का व्यक्ति बखूबी बर्दास्त कर सकता है भले ही भविष्य के लिये अर्जित पूँजी न बचे। बालक पढ़-लिख कर किसी रोजगार से लग जाय तो फिर उसकी आवश्यकता भी क्या?

ऐसे सुखी परिवार की यहाँ सभी प्रशंसा करते हैं और जब कभी परिवार नियोजन की चर्चा होती है तो लोग हिम्मतलाल का उदाहरण देते हैं। है भी बात ठीक, आमदनी तो निश्चित मात्रा में ही बढ़ाई जा सकती है। अधिक लोगों की समुचित व्यवस्था भी एक सिर दर्द है। थोड़े लोग हों तो उनकी देख-रेख, सेवा-सुश्रूषा भी भली बन पड़ती है। ''सुसंतुलित और सुनियोजित परिवार सुखी परिवार'' यह किसी ने झूठ नहीं कहा। इसे कोई भी व्यवहार कसौटी पर कस कर देख सकता है।

भगवान ने दिया बेटा

कमला का विवाह हुए दस वर्ष हुए थे। घर में भगवान का दिया सब कुछ था, पति व्यापार करते थे। खूब आमदनी होती थी, मजे से निर्वाह भी चलता और यथाशक्ति दीन-दुखियों के आड़े भी आया करते। इतना सब होते हुए भी उन दोनों पति-पत्नी तथा परिवार के अन्य वयोवृद्ध सदस्यों को एक अभाव सालता रहता, वह था घर का आँगन बच्चों की किलकारियों से सूना पड़ा था। कमला ने दस वर्षों तक एक भी सन्तान को जन्म नहीं दिया। पति-पत्नी दोनों ने डॉक्टरी जाँच करवायी, इलाज भी करवाया लेकिन कोई परिणाम न निकला, कोख सूनी की सूनी ही रही।

सास-ससुर तो और भी पीछे पड़े हुए थे। चाहते थे कि जान-भोपाओं और देवी-देवताओं की शरण भी ली जाय परन्तु कमला स्वस्थ और प्रगतिशील विचारों की महिला थी। इन क्षेत्रों में घटने वाली दुर्घटनाओं के बारे में पढ़-सुन कर तो वह और भी समझदार हो गयी थी। फिर भी सास-ससुर का आग्रह बना ही रहा और कमला भी विनम्रतापूर्वक अपनी बात रख कर, इस क्षेत्र में चल रही अवांछनीय प्रवृत्तियों की घटनायें सुनाकर वस्तुस्थिति से अवगत कराती रही। इन बातों को सुनकर सास-ससुर ज्यादा दबाव तो नहीं देते फिर भी आग्रह तो बना ही रहता और कमला यह सन्तोष किये हुए थी कि अपने वश के सभी प्रयत्न कर लिये और वे सफल नहीं हुए तो अब व्यर्थ परेशान क्यों हुआ जाय।

एक दोपहर! कमला ने अपने पति के विश्राम कक्ष में देखा—वे किसी पुराने मित्र से बात कर रहे। मित्र की गोदी में एक बच्चा भी था। उसके सम्बन्ध में जब कमला के पति रामदयाल ने पूछा तो मित्र ने बताया इस कमनसीब बच्चे की माँ इसे जन्म देकर ही जाती रही। मेरे कुटुम्ब में मैं अकेला ही हूँ अतः इसकी जिम्मेदारी मुझ पर आ गयी। क्या करूँ? मजबूरी है। बच्चे की ठीक से देखभाल नहीं हो पाती आखिर मैं इसकी माँ तो नहीं बन सकता न।

इसके बाद दो-चार इधर-उधर की बातें चली। फिर रामदयाल ने बच्चे की ही चर्चा छेड़ते हुए कहा अच्छा जय प्रकाश। एक बात पूछूँ।

''हाँ , हाँ पूछो न।''

''यार कहीं तू बुरा तो नहीं मानेगा।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

"अरे मैंने कभी बुरा माना है। रामू !" मित्र ने बढ़े सौहार्द्र से कहा।

"अगर इस बच्चे को कोई स्त्री अपना बेटा समझ कर पाले तो तुम क्या पालने दोगे।"

"पर ऐसी स्त्री कहाँ मिल सकती है?"

"मिले या न मिले। मैं तो इतना पूछना चाहता हूँ कि तुम पालने दोगे या नहीं पालने दोगे?"-रामदयाल ने कहा।

"सचमुच अगर कोई माँ बन कर पाले तो मुझे कोई एतराज नहीं होगा"—जयप्रकाश वर्मा ने कहा। इतना सुनकर कमला का मातृत्व जाग उठा और वह चट से किवाड़ खोल कर अन्दर गयी। बच्चे को उसने हाथ में उठाया और गोदी में लेकर बोली—"मैं इसकी माँ बनूँगी, इसकी सार सम्हाल करूँगी और अपने हृदय का अमृत सींच कर इसे पालूँगी बड़ा करूँगी।"

बच्चा भी कमला की छाती से चिपट गया। जय प्रकाश ने अपने मित्र की ओर हर्षित दृष्टि से देखा और जयप्रकाश ने कमला की ओर "भाभी तुम धन्य हो"-अनायास ही उसके कण्ठ से ये स्वर फूट पड़े।

कमला और रामदयाल के इस निर्णय का पता जब परिवार के अन्य लोगों को चला तो सब बड़े कुपित हुए तब रामदयाल ने समझाया- इस बालक का इस प्रकार घर में आना भगवान द्वारा ही नियोजित था। उसने कमला के उदर से नहीं तो किसी और के उदर से हमारे लिए यह बच्चा भेजा है। क्या जरूरी है कि अपने पेट से ही बच्चे को जन्म दिया जाय। समाज में और भी तो बच्चे हैं जो माँ की गोद को तरसते हैं, उन बच्चों को वे महिलायें सम्हालें जो औलाद के लिए तरसती हैं, तो दोनों की आकांक्षा पूरी हो सकती हैं।

बच्चे यों न बढ़ाइये कि उन्हें पालते-पालते मर जाना पड़े

साइक्लोपटेरस नाम की मछली एक बार में ८०००० से लेकर १३६०००० तक अण्डे देती है। मनुष्यों की तरह उसकी भी यह मूढ़ मान्यता है कि बच्चे सौभाग्य का प्रतीक होते हैं। अपनी इस मूर्खता के कारण ही उसका जीवन सदैव संकट में बीतता है।

मादा अपने पति की कामुक वृत्ति का लाभ लेती है। अण्डे दिये और पति को सौंपे। आप तो घूमने-फिरने निकल गई और पति महोदय पर उस तरह बोझा आ पड़ा, जैसे अन्धाधुन्ध बच्चे करने वाले पुरुषों पर उनके भरण-पोषण, आजीविका, वस्त्र, शिक्षा आदि का दबाव पड़ता है। न तो लड़कों को पौष्टिक आहार मिल पाता है, न विकास की समुचित परिस्थितियाँ। उसका परिवार छाती का पीपल बना उसे ही त्रास देता रहता है।

नर इस बड़े ढेर को कभी सिर, कभी पूँछ से हिलाता रहता है। फिर भी कई बार उन्हें पर्याप्त शुद्ध जल नहीं मिल पाता, आवश्यक ऑक्सीजन नहीं मिल पाती। सैकड़ों अण्डे इसी में मर जाते हैं। जो बच जाते हैं वे भी अधिकांश कमजोर और बीमार ही बने रहते हैं।

शक्तिशाली निर्बलों को खा जाते हैं, किसी को इसका उदाहरण देखना हो तो बहुसंख्य संतानों वाली इस मछली को देख लें। छोटी-छोटी मछलियाँ भी इसे चारों तरफ से सताती रहती हैं। कौवे तथा बगुले आदि पक्षी तो इसके लिये यमराज हैं। वे चोंच मार-मारकर नर को अधमरा कर देते हैं और अच्चे-बच्चे खा-पीकर बराबर कर देते हैं।

फिर भी शायद प्रकृति ने उसे इसलिये पैदा किया है कि मानो वह मनुष्य के लिय उदाहरण छोड़ना चाहती हो—देख लो सन्तान की संख्या बढ़ाने, अपनी समर्थता का बिल्कुल ध्यान न देने का यही परिणाम होता है।

इतना होने पर भी न नर मानता है, न मादा। हर तीसरे महीने फिर वही उतने ही अण्डों की फौज तैयार कर देते हैं। नर अपनी कामुकता का शिकार होता है। मादा तो फिर घूमने निकल जाती है और नर महोदय को फिर वही झंझट और संकट वाला जीवन। सबसे अधिक बच्चे पैदा करने वाला, जीवन भर भय-ग्रस्त, कमजोर और आपत्तियों में डूबा हुआ। उसे न कभी समुद्र में सैर का आनन्द मिल पाता है, न तरह-तरह की वस्तुयें खाने-पीने का। थोड़े ही दिन में परलोक की तैयारी करने लगता है।

कार्डफिश भी ऐसी ही मछली है, एक बार में ६०००,००० अण्डे देने वाली। इस मछली का ही तेल है जो औषधियों के काम में लिया जाता है। कमजोर होने के कारण अपनी सुरक्षा भी नहीं कर पाती। सारे समुद्र में कुल पाँच होतीं पर स्वस्थ और समर्थ होतीं तो क्योंकर यह दशा होती है।

तरबोट मछली ९०००००० अण्डे देती है। बच्चे भोजन के टुकड़ों पर ऐसे लड़ते हैं, जैसे माँस के एक टुकडे के लिये कई चीलें। यादवों की तरह का मुशल पर्व मनता है, सारे बच्चे लड़-झगड़कर मर जाते हैं। यही दशा कमजोर नस्ल वाली लिंग मछली ही होती है, यह एक बार में २८००००० अण्डे देती है।

परिवार नियोजन की चर्चा होती है, तब अनेक भावुक हिन्दू यह आक्षेप लगाते है कि सरकार पक्षपात करती है, मुसलमानों पर वह सन्तान सीमा बंधका दबाव नहीं डालती। ऐसे लोगों को अनुभव करना चाहिये कि संसार में संख्या नहीं समर्थता जीतती है। एक भेड़िया सैकड़ों बकरियों को मार डालता है । कहते हैं कि सिंह के सारे जीवन में दो ही बच्चे होते है पर उनकी शक्ति

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

और सामर्थ्य के आगे जंगल के हाथी, गैंड़े जैसे भीमकाय जीव भी पानी भरते हैं।

भले ही पक्षपात हो पर हमें मुसलमानों की सन्तान-सीमा का भय नहीं करना चाहिये। थोड़ी सन्तान हों पर स्वस्थ और समर्थ हों तो हम विश्व-विजयी बन सकते हैं। पर सत्तर करोड़ चीनी बनने से तो हम अपने आप में ही संकट खड़ा कर लेंगे।

संख्या ही बलवान् होती तो आइस्टर सीप संसार में सबसे शक्तिशाली होती। एक जोड़ा आइस्टर एक वर्ष में ६६०००००००००००००००००००००००००००००० (छासठ के आगे तैतीस शून्य) अण्डे देता है। इनका ढेर बनाया जाय तो वह पृथ्वी के आकार से आठ गुना बड़ा हो पर यह स्थिति आने ही नहीं पाती। समुद्र के छोटे-छोटे जीव भी इनकी असमर्थता का लाभ उठाते हैं, थोड़े ही दिन में वे इन्हें खा-पीकर बराबर कर देते हैं।

यदि इन समुद्री जीवों से हम शिक्षा ले पायें तो फिर संख्या का लोभ न कर अपनी जाति की समर्थता विकसित करने का प्रयत्न करें, उसी से हम संसार में विजयी हो सके हैं। संसार में सिंह के सदृश सिरमौर हो सकते हैं।

सन्तान की संख्या नहीं, स्तर बढ़ाइये

जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों पर विचारक, मनीषियों का सदा से ध्यान रहा है और वे समय-समय पर लोगों को इसके खतरे से आगाह भी करते रहे हैं। अब से कोई दो-ढाई हजार वर्ष पहले यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने अपने देशवासियों को सचेत करते हुए कहा था—"जनसंख्या की अतिरिक्त वृद्धि हो जाने पर समाज का आर्थिक, नैतिक और आध्यात्मिक पतन हो जाता है। सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्था बिगड़ जाती है। निरर्थक रूप से बढ़े हुए लोग राष्ट्र का भोजन खा-खाकर नष्ट कर डालते हैं। ऐसी परिस्थितियाँ विनिर्मित होने लगती हैं कि लोग धर्माचरण का त्याग कर देते हैं और निरंकुश, स्वेच्छाचारी बनकर अनैतिक मार्ग पर चलने लगते हैं। भीड़ उद्दण्ड घोड़ों की तरह किसी कानून-कायदे को नहीं मानती और समाज में अपराध तथा आतंक का वातावरण पैदा हो जाता है, जिससे स्वाभाविक ही प्रगति में बाधा पड़ती है। अधिकांश नागरिक अविकसित, अशिक्षित और मूर्ख रहकर पशुओं जैसा जीवन व्यतीत करते हैं तथा मक्खी-मच्छरों की तरह मरते रहते हैं। मानसिक तथा सामाजिक बुराइयों का प्रधान कारण आबादी की यह अनियमित वृद्धि ही बन जाता है। अरस्तू ही क्यों भारतीय ऋषि-मुनियों ने तो इससे भी पहले जनसंख्या वृद्धि के दुष्परिणामों से सावधान कर दिया था। राम को उपदेश देते हुए मुनि वशिष्ठ कहते हैं कि—'जब किसी देश की जनसंख्या बहुत बढ़ जाती है तो अकाल, महामारी, युद्ध या भूकम्प आदि दैवी विपत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। लोग आपस में ही कुत्ते-बिल्लियों की तरह लड़-झगड़ कर कीड़े-मकोड़ों के समान मरने लगते हैं।'

इन दिनों विश्व की जनसंख्या इतनी अधिक बढ़ी है जितनी पहिले कभी नहीं बढ़ी। अब से डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व बहुत थोड़े से लोग इस पृथ्वी पर निवास करते थे और जब किसी एक स्थान की जनसंख्या बढ़ जाती है तो बहुत से लोग दूसरे स्थानों पर चले जाते थे। किन्तु अब तो संसार का कोना-कोना मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ है। कोई कहीं और जाकर बसने की सोचे तो भी भीड़-भाड़ में जाकर ही बसना पड़ेगा। एकान्त या शान्त स्थान में जाकर बसने की कहीं कोई सुविधा नहीं है। जनसंख्या वृद्धि के क्या दुष्परिणाम हो सकते हैं ? इसके कारण कौन सी विभीषिकाएँ उत्पन्न हो सकती हैं ? यह एक अलग चर्चा का विषय है। यहाँ तो उस समस्या के कारणों और उसके समाधानों पर ही विचार करना अभीष्ट है।

जनसंख्या कहाँ से बढ़ती है ? सरल सा उत्तर है परिवारों से। विवाह होते हैं, परिवार बसते हैं और बच्चे जन्म लेते हैं। जितने बच्चे जन्म लेते हैं, उनकी समग्र संख्या आबादी वृद्धि के रूप में सामने आती है। तो क्या बच्चों को जन्म देना बन्द कर दिया जाय ? परिवार बसाये ही न जाएँ ? विवाह किये ही न जाएँ ? न परिवार बसाना अनावश्यक ठहराया जा रहा है ? न विवाह करना अनावश्यक है। सन्तान की संख्या बढ़ाते चलना—यह न केवल अनावश्यक है वरन् हानिकारक भी। उपयोगिता की दृष्टि से भी देखा जाए तो एक के बाद एक सन्तान को जन्म देते जाने की क्या सार्थकता है ? उससे कौन-सा उद्देश्य पूरा होता है ? और क्या जरूरत है कि सन्तान पर सन्तान जन्म देते चलते हुए परिवार पर तो बोझ बढ़ाया ही जाए, समाज के लिए भी संकट खड़ा किया जाय ? अधिक सन्तान जन्म देने के कारण ही जनसंख्या का सन्तुलन बिगड़ता है।

यह भी होता है कि पहली सन्तान लड़की होती है, दूसरी सन्तान भी लड़की होती है और मन में पुत्र को प्राप्त करने की लालसा इतनी तीव्र होती है कि उसकी आशा में लोग लड़कियों से घर भर लेते हैं। दो लड़कियाँ हो गईं, यही जिम्मेदारी कोई कम नहीं थी लेकिन सन्तोष नहीं। सोचते हैं एक लड़का भी हो जाता तो अच्छा था। लेकिन फिर कन्या आ गयी। दुःख तो हुआ पर आशा, तृष्णा का त्याग नहीं किया। पुनः लड़की, पुनः लड़की, फिर भी पुत्रेषणा नहीं जाती। देख रहे हैं कि लड़कियाँ हो रही हैं। इस अन्धे सौदे का कोई विश्वास नहीं। ऐसा कोई साधन नहीं कि ठीक-ठीक लड़के या लड़की के सम्बन्ध में जाना जाए, केवल आशा और शायद के भरोसे ही प्रजनन का क्रम चलता रहता है और आगे चल कर परिणाम यह होता है कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एक ही कन्या के विवाह में जहाँ छक्के छूट जाते हैं वहाँ छः सात-सात लड़कियों से घर भरा रहता है। इसका परिणाम सिवाय इसके क्या हो सकता है कि घर में किसी बच्चे का ठीक से पालन-पोषण नहीं हो पाता, किसी की भी समुचित शिक्षा दीक्षा नहीं हो पाती।

उचित तो यह था कि एक-दो कन्याओं का जन्म होने पर ही प्रजनन का क्रम रोक दिया जाता और समझ लिया जाता कि अब जिन्दगी के लिए काफी जिम्मेदारी और बड़ा काम आ गया है। इन दो कन्याओं को ही सुयोग्य बनाने और अच्छे घर-वर को सौंपने में इतना धन चाहिए जो कठिनता से जमा ही हो पाता है। अब अगर लड़का हो भी गया तो उसकी शिक्षा-दीक्षा और ब्याह-शादी के लिए अधिक तंगी का सामना करना पड़ेगा। किन्तु भारतीय मानस की इस मूढ़ लालसा को क्या कहा जाए जिसे पूरा करने की आशा में वह जिम्मेदारी पर जिम्मेदारी बढ़ाता चलता है और अपने साथ ही नहीं बच्चों के साथ भी नृशंस खिलबाड़ समाज के प्रति द्रोह करता है।

एक तो अधिकांश परिवारों की आर्थिक स्थिति वैसे ही कमजोर है, कहना नहीं होगा कि अपना देश दुनिया से सबसे गरीब देशों में गिना जाता है। आम आदमी की आर्थिक स्थिति शोचनीय ही है उस पर सन्तान की संख्या बढ़ाते चलना परिवार को और भी अस्त-व्यस्त कर देने जैसा होता है। दो ढाई सौ रुपये की नौकरी करने वाला कोई दुकानदार या कारीगर अपने पाँच-छह बच्चों के पालन-पोषण और पढ़ाई-लिखाई का खर्च उठाने में निश्चित ही असमर्थ होता है। बड़े परिवार का खर्च उसकी कमर ही तोड़कर रख देता है।

अनेक बार बड़े परिवार की बढ़ी हुई आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा कर पाने की स्थिति न होने से कई लोग तङ्ग आकर आत्महत्या तक कर लेते हैं। काश कि वे अधिक बच्चे पैदा करने से पहले इस प्रकार आमन्त्रित की जानेवाली जिम्मेदारियों की गम्भीरता समझ पाते। एक मुसीबत यह भी होती है कि मध्यवर्ग के लोगों को अपने रहन-सहन का स्तर भी ठीक-ठाक ही रखना पड़ता है। बच्चों को नहीं पढ़ाते हैं तो समाज में मुँह उठाकर बात नहीं कर सकते और पढ़ाते हैं तो उतना खर्च नहीं जुटता फलतः परिवार की अन्य आवश्यकताओं में कटौती करनी पड़ती है। खाने-पीने के बजट में कमी करनी पड़ती है। जिसका अर्थ है परिवार के स्वास्थ्य का नाश। इतने पर भी खर्च पूरा नहीं पड़ता तो कर्ज लेना पड़ता है। मध्यवर्ग के परिवारों की आर्थिक स्थिति इसी लिए लड़खड़ाई रहती है कि उसे समाज में अपना स्तर बनाकर रखना पड़ता है और आमदनी इतनी होती नहीं है कि बड़े परिवार की आवश्यकताएँ सुविधापूर्वक सरलता से पूरी की जाती रहें। इस स्थिति में बच्चों को ऊँची शिक्षा दिलाना, उनके मानसिक विकास के लिए उपयुक्त वातावरण और परिस्थितियाँ पैदा करना चाहने पर भी सम्भव नहीं होता। इसलिए दम्पत्ति को चाहिए कि वे उतने ही पैर फैलावें, जितनी लम्बी चादर हो। उतने ही बच्चे पैदा करें, जितनों का ठीक-ढंग से पालन-पोषण किया जा सके।

भलीभाँति पालन-पोषण किये गये बालक ही ठीक ढंग से विकसित हो पाते हैं। वे तभी अच्छे नागरिक बन पाते हैं जबकि उनका मानसिक विकास स्वस्थ दिशा में हुआ हो, उनकी गुप्त शक्तियों के खिलने के लिए उपयुक्त वातावरण मिला हो और इसके लिए केवल, धन ही नहीं समय और सामर्थ्य भी आवश्यक है। आर्थिक दृष्टि से कोई व्यक्ति सम्पन्न, समृद्ध हो तो भी वह अपने सात-आठ बच्चों का समुचित विकास इसलिए नहीं कर पाता कि उसके पास सबकी देखभाल के लिए पर्याप्त समय नहीं है। इस प्रकार सन्तान की संख्या बढ़ाते चलना किसी भी व्यक्ति के लिए उचित नहीं है, बल्कि यह कई तरह से राष्ट्रघाती भी है। क्योंकि बच्चे बढ़ते हैं तो उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए अधिक साधन भी चाहिए। ऐसे समर्थ सम्पन्न व्यक्ति थोड़े से ही हैं, जिनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ कही जा सके। दुर्बल आर्थिक स्थिति के व्यक्ति बढ़ी आवश्यकताओं को सरलता से पूरा नहीं कर पाते। इसलिए उन्हें विवश होकर बेईमानी, अनीति, चोरी और भ्रष्टाचार का मार्ग अपनाना पड़ता है।

नई पीढ़ी में उद्दण्डता, उच्छृंखलता और आपराधिक वृत्तियाँ बढ़ती दिखाई दे रही हैं तो उसका भी यही कारण है कि अधिक संख्या में बच्चे होने के कारण माता-पिता उन पर समुचित ध्यान नहीं दे पाते। उन्हें पर्याप्त लाड़-प्यार और स्नेह-दुलार नहीं मिलता। ठीक से सार-सम्भाल नहीं हो पाती और वे पथभ्रष्ट होकर आपराधिक प्रवृत्तियाँ अपनाने लगते हैं। अधिक सन्तान होने पर सभी को सुयोग्य बना पाना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है और जब उन्हें सुयोग्य बनाने के लिए आवश्यक प्रयास नहीं किये जायेंगे तो स्वाभाविक है कि उनमें से अनेक अवारागर्दी, अनैतिक, अपराधी और उच्छृंखल प्रवृत्तियाँ अपनाने लगेंगे।

अस्तु, सन्तान की संख्या बढ़ाना किसी भी हालत में उचित नहीं है। बल्कि इसे अक्षम्य सामाजिक अपराध करार दिया जाना चाहिए। अब वैसी परिस्थितियाँ नहीं हैं, जिनमें इन शास्त्रीय उपदेशों को व्यावहारिक कहा जा सके जिनमें कि सन्तान का होना सौभाग्य का सूचक कहा गया है। बड़ी-बूढ़ियों के दूधों नहाने और पूतों फलने के आशीर्वाद को आशीर्वाद नहीं अभिशाप ही कहा जाना चाहिए और सन्तान की कामना को मूर्खता से भी आगे विमूढ़ पागलपन कहा जाना चाहिए। सन्तान की संख्या बढ़ाने की बात को परले सिरे की मूर्खता मानते हुए, जो हैं उन्हीं का स्तर बढ़ाने और विकास करने की बात

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सोचनी चाहिए। उल्लेखनीय है कि सन्तान का स्तर और उसकी योग्यता का अभिवर्धन तभी सम्भव है जब वह संख्या में दो-तीन से ज्यादा न हो। इससे अधिक सन्तान बढ़ाना परले दर्जे की मूर्खता ही कही जानी चाहिए क्योंकि यह मूढ़ता अपने लिए, सन्तान के लिए, परिवार के लिए, समाज और देश के लिए, सभी के लिए अनर्थकारी ही है।

अधिकारी व्यक्ति ही सन्तान उत्पन्न करें

विश्व की जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ रही है उसे देखते हुए यह आशंका की जाने लगी है कि जनसंख्या की यही तीव्र बाढ़ कहीं मनुष्य जाति का अन्त ही कर देने का कारण न बन जाय। सुनने और सोचने में यह बात विचित्र अवश्य लगती है पर उतनी ही सच भी है। पृथ्वी के पास निश्चित मात्रा में भोजन है, निश्चित जल भण्डार है और उस पर लहराता हुआ वायुमण्डल भी निश्चित प्राणियों की प्राणवायु को पूरा कर सकता है। उस सम्मिलित पोषण के सामग्री पर केवल मनुष्य का ही एकाधिकार नहीं है। प्रकृति को अन्य प्राणियों की आवश्यकतायें पूरी करनी पड़ती हैं जिनकी संख्या अरबों-खरबों में है, कहना चाहिए असंख्य है।

फिर मनुष्य के लिए आवश्यक आहार भी अलग है जो अन्य पशु-पक्षियों से मेल नहीं खाता। भोजन, आवास और जल, वायु का अभाव तथा प्रदूषण समस्या अभी से अनुभव की जाने लगी है। जबकि इस शताब्दी के अन्त तक जनसंख्या का दूना विस्तार हो जाने की सम्भावना व्यक्त की जा रही है। इतने व्यक्तियों के लिए प्रकृति शायद ही आहार जुटा पाये। ऐसी परिस्थितियों में मनुष्य को जीने के लिए कठोर संघर्ष करना पड़ेगा। न केवल प्रकृति से वरन् अपने ही समान अन्य मनुष्यों से भी। इस जीवन संघर्ष में मनुष्य को ही हारना पड़ेगा। प्रकृति तो एक नियत सीमा तक ही उत्पादन कर सकती है। इस सम्बन्ध में माल्थस का सिद्धान्त सर्वप्रसिद्ध है, जिसमें कहा है कि—'विज्ञान चाहे कितनी भी उन्नति क्यों न करता जाय, जमीन की पैदावार एक नियत सीमा तक ही बढ़ सकती है। प्रत्येक पौधे की जड़ और पत्तियों को फैलाने के लिए जितना स्थान, वायु, धूप, जल इत्यादि चाहिए उसे जनसंख्या के अनुपात से खींचतान कर नहीं बढ़ाया जा सकता। इसी प्रकरण में दूसरी बात माल्थस ने यह कही है कि जमीन की उर्वरा शक्ति को जब बहुत अधिक बढ़ाने की चेष्टा की जाती है, तो शीघ्र ही ऐसा अवसर आ जाता है कि तमाम प्रयत्नों के बावजूद भी उसकी उर्वरा शक्ति अचानक कम होने लगती है। इसका कारण यह है कि इस उद्देश्य से निरन्तर जोती, बोई जाने वाली जमीन सारहीन, शक्तिहीन और अनुत्पादक हो जाती है। क्योंकि उसके सारतत्वों का क्षय होने लगता है। इसी आधार पर मनुष्य जाति के विनाश की आशंका व्यक्त करते हुए ऐलिनाय विश्वविद्यालय के प्रख्यात भौतिकशास्त्री प्रो. हीजवान फोस्टेर ने सन् २०३६ में मनुष्य जाति के नष्ट हो जाने की भविष्यवाणी करते हुए कहा—''उस वर्ष बढ़ती हुई आबादी अपनी चरम सीमा पर पहुँच जायगी। तब जनसंख्या इतनी बढ़ जायगी कि वे अपना भोजन प्राप्त करने और रहने की जगह पर अपना अधिकार रखने के लिए आपस में ही लड़ेंगे। तब भुखमरी, युद्ध और अकाल की आपदाओं का पहाड़ भी टूट पड़ेगा तथा मनुष्य का अस्तित्व ही नष्ट हो जायगा।''

जनसंख्या वृद्धि के कारण सम्भावित विनाश की धारणा को पुष्ट करते हुए प्रो. फोस्टेर ने पुरातात्विक अनुसन्धानकर्ताओं को मिले हजारों वर्ष पूर्व के उन विशालकाय जन्तुओं के अवशेषों का भी उल्लेख किया है। जिनकी नस्ल भी अब समाप्त हो गयी है। उन्होंने कहा है दस लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी पर रह रहे हाथियों से भी पाँच और दस गुने तक बड़े शक्तिशाली पशु इसलिए लुप्त नहीं हो गये कि वे जीवन संघर्ष में हार गये थे वरन् उनके लुप्त होने के कारण यह है कि उनकी संतति इतनी बढ़ गयी जिससे उनके लिए उपलब्ध भोजन कम पड़ना और 'लिविंग स्पेस' भी सिकुड़ने लगा।

मनुष्य जाति के विनाश की सम्भावना को किसी प्रकार टाला भी जाय पर जनसंख्या का विस्तार इसी गति से होता रहा, तो भविष्य में विकासशील मनुष्य की सभ्यता की आशा किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। इसका कारण है भीड़ में व्यक्ति की प्रतिभा का नष्ट हो जाना। विशेषज्ञों का कथन है कि मनुष्य की प्रतिभा खुले स्थान में ही निखरती है, लेकिन उस खुले स्थान में अधिक लोग हो जायँ तो व्यक्ति एक अनजाना भार अनुभव करने लगेगा। कई प्रयोगों द्वारा इन निष्कर्षों पर पहुँचा जा सका। एक कमरे में बहुत से आदमियों को इकट्ठा किया और उन्हें चुप रहने को कहा गया। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद वे एक तनाव महसूस करने लगे।

मानसिक तनाव के बढ़ने के साथ ही साथ व्यक्ति का विवेक भी नष्ट होने लगता है। इस बात को यों आसानी से समझा जा सकता है कि आदमी किसी की हत्या करने की कम ही हिम्मत कर पाता है। जबकि भीड़ आसानी से कर देती है। दंगा-फसाद में अकेले व्यक्ति नहीं—व्यक्तियों के दल ही लड़ते हैं और वे लोग जो मारपीट तक से डरते, हत्यायें कर डालते, आग लगा देते हैं। लूटमार कर लेते हैं। अकेला व्यक्ति यहाँ तक कि जोर से भी चिल्लाने में झिझकता है जबकि जुलूस में लोग गला फाड़-फाड़कर चिल्लाने लगते हैं। एकाकी व्यक्ति पर समूह का प्रभाव असंदिग्ध रूप से पड़ता है और अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से निर्णय लेने की अपेक्षा भीड़ के साथ ही चलने लगता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विवेक के अभाव में प्रतिभा का उदय और विकास भी असम्भव है। बड़े-बड़े महापुरुषों, विद्वानों, साहित्यकारों और वैज्ञानिकों ने अपने महान कार्य, ज्ञानार्जन, साहित्य सृजन तथा अनुसंधान एकान्त में ही किये हैं। जनसंख्या का अनुपात जब इतना बढ़ जायगा कि एकान्त मिलना ही सम्भव न होगा तो मानवी सभ्यता को विकास की ओर अग्रसर करने वाले महत्कार्य सम्पन्न करना असम्भव ही हो जायगा। क्योंकि एकान्त में ही व्यक्ति अपने ध्यान, मानसिक शक्ति और मनायोग केन्द्रित कर पाता है, जो कि सृजन का आधार है। एकान्त मिलना ही जब दूभर हो जायगा तो सभ्यता का विकास करने वाला सृजन भी कहाँ होगा।

प्रतिभा के नष्ट होने के साथ आबादी वृद्धि में सम्पन्नता घटने और निर्धनता बढ़ने का भी खतरा है। विश्व में जितनी पूँजी है, जितना उत्पादन है और जितनी सम्पन्नता है, उसमें वृद्धि की गति एक है जबकि जनसंख्या की वृद्धि अधिक तीव्रगति से होती है। ऐसी स्थिति में उपलब्ध साधन और पूँजी कभी भी संसार की समस्त आबादी के लिए अपर्याप्त हो सकते हैं।

सम्पन्नता की दृष्टि से एक तथ्य और द्रष्टव्य है कि धनवानों की अपेक्षा गरीबों के यहाँ ही ज्यादा बच्चे होते हैं। अधिकांश लोग काम सेवन मनोरंजन के उद्देश्य से करते हैं न कि सन्तानोत्पादन के लिए। गर्भधारण और सन्तान का जन्म तो आकस्मिक और अप्रत्याशित दुर्घटना की तरह हो जाता है। सम्पन्न-समर्थों या मध्यवर्गीय लोग अपनी मनोरंजन की क्षुधा साहित्य पढ़ने, सिनेमा देखने, संगीत सुनने में या और भी इसी प्रकार के अन्य उपायों से शांत कर लेते हैं। पर अलभ्य रहने के कारण निर्धन दूसरे उपाय अपनाने के स्थान पर काम सेवन ही मनोरंजन की तरह करते हैं। उसी में दुर्घटना के समान बच्चों का जन्म हो जाता है। वस्तुतः एक-दो बच्चों के बाद शायद ही कोई और सन्तान चाहता हो। एक तो गरीबी और ऊपर से अप्रत्याशित रूप से जन्मे अनपेक्षित बच्चे। उनका खर्च और भी गरीबी को बढ़ा देता है। न बच्चों को समुचित पोषण और सन्तुलित आहार मिल पाता है तथा न ही माता-पिता का दारिद्रय कम होता है, उल्टे और भी बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में सन्तानोत्पादन अपने लिए तो चिन्ताजनक होता ही है, बच्चों के प्रति भी अपराधपूर्ण बन जाता है। क्योंकि उन्हें बाल्यकाल जो कुछ जितना और जिस तरह मिलना चाहिए वह अलभ्य ही रहता है। अभाव और गरीबी में जन्मे-पले बच्चों का स्वाभाविक विकास कहाँ से हो सकता है ? निस्सन्देह पालन-पोषण और देख-रेख में अक्षम, असमर्थ होते हुए बच्चों को जन्म देना अपराधपूर्ण ही है, जिसका कोई दण्ड न होते हुए भी नारकीय अभिशाप तो भोगना ही पड़ता है।

मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जो माता-पिता कम सन्तान उत्पन्न करते हैं, उनके बच्चे अधिक प्रतिभाशाली होते हैं तथा जिनके बहुत सारे बच्चे वे शारीरिक दृष्टि से ही नहीं मानसिक दृष्टि से भी रुग्ण और प्रतिभाहीन होते हैं। अधिक सन्तान उत्पन्न करने से माता-पिता के सारे गुण, सारी विशेषतायें और सारी क्षमतायें अधिक बच्चों में बँट जाती हैं। जबकि सन्तति यदि सीमित हो तो उनमें माता-पिता के अधिकांश गुण और अधिकांश प्रतिभायें आसानी से आ जाती हैं। अनुभवी माली किसी पौधे में बड़ा या सुन्दर फूल चाहता है, तो वह छोटे-छोटे फूलों को पहले ही काट देता है। सुन्दरता जो सब फूलों में बँट सकती थी वह इसी कारण एक ही फूल में बह कर आ जाती है। यदि उनकी सम्भावना को भी किसी प्रकार क्षीण किया जा सके तो एक ही फूल और अधिक सुन्दर रूप में भी विकसित हो सकता है। फूलों के सम्बन्ध में यह किया जा सके या नहीं पर मनुष्य तो अपनी सन्तति का नियमन करने में समर्थ है। यदि ऐसा किया जाने लगे तो आठ-आठ, दस-दस बच्चों में बँट जाने वाली प्रतिभा जो बाद में कितने ही कारणों से लुप्त हो जाती है को एक या दो बच्चों में ही उत्पन्न की जा सकती है।

अधिक बच्चों को स्वास्थ्य की दृष्टि से भी कमजोर ही पाया जाता है। क्योंकि वे माँ का दूध, उसका स्नेह-ममत्व, पिता का लाड़-प्यार अभी अपेक्षित रूप में भली-भाँति पा भी नहीं सका था कि दूसरे बच्चे का जन्म हो जाता है। माता भी एक बच्चे को जन्म देने के बाद कम से कम पाँच साल तक दूसरे बच्चे की माँ बनने में स्वास्थ्य की दृष्टि से योग्य नहीं हो पाती। वैसी ही स्थिति में—अस्वस्थ और अशक्त दशा में पुनः गर्भ धारण उसके स्वास्थ्य को और भी कमजोर बनाता है, भावी बच्चे को भी इस कारण गर्भावस्था से ही कमजोर, अशक्त और रुग्ण बना डालता है। जन्म के बाद जीवन भर उसके स्वस्थ और सबल होने की सम्भावना नहीं रहती है।

जनसंख्या वृद्धि ने किस प्रकार मनुष्य जाति के अस्तित्व और सभ्यता पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है—यह जानने के बाद उसे अनुत्तरित ही नहीं छोड़ दिया जाना चाहिए। समस्या का समाधान यह है कि सन्तान कम से कम पैदा की जाय और वे लोग तो सन्तति को एकदम नियंत्रित ही नहीं प्रतिबन्धित भी कर दें, जो अपने बच्चों को अच्छा जीवन देने में असमर्थ हैं। अच्छी शिक्षा, पोषक आहार, स्नेह-ममत्व, आवश्यक सुविधाये और अच्छे संस्कार देने में असमर्थ, अशिक्षित, निर्धन, निष्ठुर और कंगाल लोगों को बच्चों के जन्म पर तुरन्त ही रोक लगा देनी चाहिए। बिना यह सोचे-समझे कि हमारा नाम कैसे चलेगा, कुल कैसे बचेगा। नाम और कुल बाद की बात है पहले बच्चों के लिए आवश्यक समुचित जीवन सुविधायें हैं। उन्हें उपलब्ध कराने में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

असमर्थ रहते हुए बच्चों को आमन्त्रण देना उनके प्रति अन्याय है। यह मान्यता भी निराधार है कि सन्तान से नाम चलता है। दो-तीन पीढ़ी पहले के पूर्वजों का नाम शायद ही किसी को याद रहता हो तो यह आशा भी किस आधार पर की जाय कि आने वाली पीढ़ियाँ हमारी याद करेंगी। नाम सन्तान से नहीं अच्छे कार्यों से चलता है। राम, कृष्ण और बुद्ध, महावीर से लेकर राणाप्रताप, शिवाजी, सूरदास, तुलसी, मीरा, ज्ञानदेव की पीढ़ी में पैदा हुए लोगों का किसी को पता नहीं फिर भी वे अमर हैं।

अयोग्य और अनाधिकारी व्यक्तियों को सन्तानोत्पादन के लिए निरुत्साहित करने के साथ-साथ प्रतिभाशाली, बुद्धिमान, योग्य और विकसित व्यक्तियों को ही सीमित सन्तानोत्पादन करने दिया जाय। यहाँ याद रखना आवश्यक है कि अधिक बच्चे वे भी न पैदा करें। क्योंकि इससे उनके संस्कार और क्षमता से बच्चों के वंचित रह जाने की संभावना है। जो अपने बच्चों को उचित शिक्षा, पर्याप्त पोषण और आवश्यक जीवन सुविधायें उपलब्ध करा सकें—मानवता की दृष्टि से उनका ही सन्तानोत्पादन उचित और अधिकारिक है। कम जनसंख्या और अधिक उत्पादन ही आज के शक्ति मापदण्ड हैं। २०-२२ करोड़ का अमेरिका ८० करोड़ के चीन से इसीलिए अधिक शक्तिशाली और सम्पन्न है कि अमेरिका में चीन की अपेक्षा जनसंख्या बहुत कम और उत्पादन उसी अनुपात में काफी ज्यादा है। अतः किसी राष्ट्र की शक्ति और समृद्धि का भी यही एकमात्र आधार है। फिर जब समूची मानव-जाति के विनाश की सम्भावना उठ खड़ी हो, सभ्यता के विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध होने का खतरा सामने हो तब तो अधिकारी व्यक्तियों को ही सन्तानोत्पादन की सीमित छूट देने के सिद्धान्त में और भी वजन बढ़ जाता है।

व्यभिचार से दूर रहो

स्त्री-पुरुषों की जननेन्द्रियाँ शरीर के अन्य समस्त अंगों की अपेक्षा अधिक चैतन्य, सजीव, कोमल, सूक्ष्म प्राण विद्युत से युक्त होते हैं। मानव शरीर के सूक्ष्म तत्वों को जानने वाले बताते हैं कि स्त्री में ऋण (निगेटिव) और पुरुष में धन (पाजटिव) विद्युत का भण्डार होता है। दर्श स्पर्श से भी यह विद्युत स्त्री-पुरुषों में एक विचित्र कम्पन उत्पन्न करती रहती है। परन्तु शरीर के सजीवतम प्राण केन्द्र गुह्य स्थानों का जब दोनों एकीकरण करते हैं, तब तो एक शरीरव्यापी तूफान उत्पन्न हो जाता है। दोनों के शरीर के विद्युत परिमाण दोनों के अन्दर अत्यन्त वेग और आवेश के साथ प्रवेश करते हैं और दोनों में एक शक्तिशाली अंतरंग सम्बन्ध—प्रेम उत्पन्न करते हैं। एक दूसरे के सूक्ष्म तत्वों का एक-दूसरे में बड़ी तीव्र गति से प्रचुर परिमाण में आदन-प्रदान होता है। यही कारण है कि जिन स्त्री-पुरुषों में यौन सम्बन्ध स्थापित हो जाता है वें एक दूसरे के ऊपर आसक्त हो जाते हैं, उनके बीच एक ऐसा आकर्षण और सामंजस्य स्थापित हो जाता है, जिसे हटाना या तोड़ना असाधारण रूप से कठिन होता है। पाँव दावना, सिर मसलना जैसी शारीरिक सेवाओं में ऐसी कोई हलचल नहीं होती किन्तु यौन सम्बन्ध से दो व्यक्तियों के सूक्ष्म प्राण तत्वों में आवेश पूर्ण आदान-प्रदान होता है। इसलिए शरीर सेवा और यौन सम्बन्ध को समान नहीं कहा जा सकता।

पतिव्रत और पत्नीव्रत का समर्थन शास्त्र ने इसी वैज्ञानिक आधार पर किया है। एक पुरुष का एक स्त्री से सम्पर्क होने पर उन दोनों में प्रेम भाव बढ़ता है। एक की शक्ति निश्चित मार्ग से दूसरे को प्राप्त होती है। गुण, कर्म, स्वभाव की दृष्टि से एक दूसरे के निकट आते हैं और एक प्राण दो शरीर बन जाते हैं। यौन सम्बन्ध के द्वारा दोनों के रक्त में सजीव संमिश्रण होता है, किसी बीमारी में किसी रोगी को रक्त का इंजेक्शन देना होता है तो डाक्टर लोग पति-पत्नी के जोड़े में से ही रक्त लेने को महत्व देते हैं। क्योंकि दम्पत्ति के रक्त में सहवास के कारण एक समान तत्व उत्पन्न हो जाते हैं।

पति-पत्नी के बीच सच्चा प्रेम, वफादारी, सेवा, आत्मीयता, विश्वास तभी रह सकता है, जब उनमें 'एकनिष्ठा' का व्रत हो। यदि कोई स्त्री अनेक पुरुषों से या कोई पुरुष अनेक स्त्रियों से गुप्त सम्बन्ध स्थापित करता है तो उसके शरीर में, रक्त में, मन में, मस्तिष्क में अनेकों तत्व मिल जाने के कारण अस्थिरता, खींचतान, आकर्षण-विकर्षण के दौर चलने लगते हैं। ऐसी अवस्था में सच्चा प्रेम, वफादारी एवं आत्मीयता असंभव है। व्यभिचारी स्त्री-पुरुषों का दम्पत्य जीवन कपट, धूर्तता, मायाचार और छल से भरा हुआ होता है। वे अवसर पड़ने पर अपने साथी को धोखा दे सकते हैं।

व्यभिचार चोरी, भय, लज्जा और पाप की झिझक के साथ किया जाता है, उसे छिपाने का प्रयत्न किया जाता है। उपयुक्त अवसर ढूँढ़ने के प्रपंच उनके मन में उठा करते हैं। यह पापवृत्तियों कुछ समय लगातार अभ्यास में आते रहने पर मनुष्य के मन में वे गहरी उतर जाती हैं और जड़ जमा लेती हैं। फिर उसके स्वभाव में वे बातें शामिल हो जाती हैं और जीवन के विविध क्षेत्रों में वे प्रकटित होती रहती हैं यही कारण है कि व्यभिचारी व्यक्ति अक्सर चोर, निर्लज्ज, दुस्साहसी, कायर, झूठे और ठग होते हैं। वे अपने व्यापार तथा व्यवहार मे समय-समय पर अपनी इस प्रवृत्तियाँ का परिचय देते रहते हैं। उनका विश्वास उठ जाता है, लोगों के मनमें उनके लिए प्रतिष्ठा तथा आदर की भावना नहीं रहती, सच्चा सहयोग भी नहीं मिलता, फलस्वरूप जीवन विकास के महत्वपूर्ण मार्ग बन्द हो जाते हैं। पापवृत्तियों के मन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जम जाने से अन्तःकरण कलुषित होता है। प्रतिष्ठा एवं विश्वस्तता नष्ट होती है और हर क्षेत्र में सच्ची मैत्री या सहयोग भावना का अभाव मिलता है। यह तीनों ही बातें नरक की दारुण यातना के समान हैं, व्यभिचारी को अपने कुकर्म का दुष्परिणाम इसी जीवन में उपयुक्त तीन प्रकार से नित्य ही भुगतना पड़ता है।

स्त्री पुरुषों के सम्मिलन से एक का प्रभाव दूसरे पर जाता है। एक के दुर्गुण दूसरे में प्रवेश हुए बिना नहीं रहते। काम भोग करने के साथ दूसरा पक्ष अपनी कुवासनाओं की छाप भी छोड़ता है यह परत दिन पर दिन मजबूत होते जाते हैं और वह दिन-दिन अधिक दुर्गुणी बनता जाता है। व्यभिचार स्त्री और पुरुष दोनों के लिए घातक है, पर स्त्रियों के लिए विशेष रूप से घातक है। कारण यह है कि स्त्रियाँ अपने शरीर के सबसे सूक्ष्म, चेतन एवं प्राण युक्त स्थान गुह्येन्द्रियों में पुरुष का वीर्य ग्रहण करती है। वीर्य पानी की बूँद नहीं है वरन् पुरुष के शरीर और मन का सारभूत प्राण सत्व है। उसकी एक-एक बूँद में मनुष्य उत्पन्न करने की प्रचंड शक्ति भरी हुई है। उस प्रचंड, शक्तिशाली प्राण सत्व के साथ पुरुष की गुह्य और प्रकट शक्तियाँ केन्द्रीभूत होती हैं। इस द्रव प्राण सत्व को योनि मार्ग में धारण करना ऐसा ही है मानों किसी के गुण-अवगुणों के सार भाग का इंजेक्शन लेना। यह निश्चित है कि पापी और पतित स्वभाव के व्यक्ति ही व्यभिचारी होते हैं, उनका पाप एवं पतन प्राण सत्व वीर्य के साथ स्त्री के आत्मिक क्षेत्र में व्याप्त हो जाता है और उसमें भी यह दुर्गुण भर देता है।

कितने ही व्यभिचारी पुरुषों के संयोग से उनके अनेकों प्रकार के दोषों को अपने सूक्ष्म शरीर में संचित कर लेने से स्त्री की निर्बल अन्तःचेतना बहुत ही विकृत हो जाती है। एक म्यान में अनेकों तलवार ठूँसने से भयंकर स्थिति उत्पन्न होती है। वैसे ही एक स्त्री के शरीर में नाना प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव एवं प्रभाव प्रवेश कर जाते हैं तो वे आपस में टकराते हैं उसका प्रभाव मनोभूमि को विकृत कर देता है। व्यभिचारिणी स्त्रियाँ सीधे स्वभाव की नहीं रहतीं, उनमें चिड़चिड़ापन झुँझलाहट, घबराहट, आवेश, अस्थिरता, रूठना, असत्य, छल, अतृप्ति आदि दुर्गुणों की मात्रा बढ़ जाती है, सिर दर्द, कब्ज, दर्द, खुश्की, प्यास, अनिद्रा थकावट, दुःस्वप्न, दुर्गन्धि आदि शारीरिक विकार भी बढ़ने लगते हैं। एक शरीर में अनेकों पुरुषों के प्राण का स्थापित होना, इस प्रकार के अनेकों दुखदायी परिणाम उपस्थित करता है। वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों का सान्निध्य ऐसा अनिष्टकर होता है कि पुरुष को बड़े तीव्र झटके के साथ नारकीय यातनाओं के कुण्ड में धकेल देता है।

कई प्रकार के वीर्यों को एक स्थान पर एकत्रित होने से विषैले रसायनिक पदार्थों का निर्माण होता है। जैसे घी और शहद अमुक मात्रा में मिला देने से हानिकारक रसायन बन जाती है वैसे ही अनेक व्यक्तियों के शुक्र कीट, योनि मार्ग में एकत्रित होकर विष बन जाता है, यह विष सुजाक, आतिशक जैसे योनि रोग उत्पन्न करता है। वे रोग जब बढ़ते हैं तो उस स्त्री के सम्पर्क में आने वाले पुरुषों को लगते हैं। पुरुषों की छूत अन्य स्त्रियों को लगती है, इस प्रकार व्यभिचार के कारण ये सत्यानाशी रोग उत्पन्न होते और फैलते हैं। जिसके पीछे यह रोग लग जाते हैं, उसका पीछा मुश्किल से छूटता है। यह रोग सड़ा-सड़ा कर, और रुला- रुला कर रोगी को मारते हैं। व्यभिचारिणी स्त्रियों का गर्भाशय दूषित हो जाने के कारण या तो उनके सन्तान होती ही नहीं, होती भी है तो पैतृक रोगों को लेकर होती है। माता-पिता की पापमयी मनोवृत्तियों का प्रभाव सन्तान पर निश्चित रूप से होता है। उस सन्तान में अनेक आसुरी दुर्गुण पाये जाते हैं। व्यभिचार से उत्पन्न हुई सन्तान को 'वर्ण शंकर' के अपमानजनक, घृणास्पद नाम से शास्त्रकारों ने पुकारा है। कारण यह है कि उस सन्तान में माता-पिता की प्रवृत्तियाँ सन्निहित रहती ही हैं। ऐसे बालकों की अभिवृद्धि होना संसार के लिए अभिशाप रूप है। इसलिए व्यभिचार सर्वथा निन्दनीय है। धर्म की दृष्टि से तो स्त्री और पुरुष दोनों के लिए वह एक समान पाप है परन्तु शारीरिक दृष्टि से स्त्रियों के लिए वह और भी बुरा है क्योंकि स्त्रियों के गुह्य अंग में पुरुष के वीर्य की स्थापना होती है, इससे उनके ऊपर अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक प्रभाव विशेष रूप से होते हैं। पुरुष-स्त्री के वीर्य को धारण नहीं करता इसलिए किन्हीं अंशों में उसे शारीरिक हानि कुछ कम होती है।

यदि पति-पत्नी में एक निष्ठा न हो, वे व्यभिचार में प्रवृत्त हों तो घर की आर्थिक दशा ठीक नहीं रह सकती। दोनों का ध्यान अपने तुच्छ स्वार्थ में केन्द्रित रहेगा। यदि पति व्यभिचारी हो तो दूसरी स्त्री को धन देकर अपने आश्रितों को अर्थहीन बनावेगा। यदि स्त्री व्यभिचारिणी हो तो कभी जार पति की आवश्यकता होने पर घर का धन गुप्त रूप से उसे दे देगी। यदि जार पति से लेगी तो उसे गुप्त रूप से रखेगी या फैशन आदि में अपव्यय करेगी। व्यभिचार से प्राप्त हुआ धन मुफ्त का सा लगता है वह बुरी तरह फिजूलखर्ची में जाता है। वेश्याएँ इतना धन कमाती हैं पर यौवन ढलने पर दूसरों की मुहताज होकर रोटी खाती हैं। उनके पास जमा कुछ नहीं हो पाता। फिजूलखर्ची की आदत यदि स्त्री या पुरुष एक को भी हो तो घर की आर्थिक व्यवस्था ठीक नहीं रह सकती। वहाँ दरिद्रता और अभाव का ही सदा बोलबाला रहेगा। पति-पत्नी की एकनिष्ठा और आत्मीयता होने पर थोड़ी आमदनी में भी किफायतशारी और सावधानी बरतने से अधिक कठिनाई नहीं आती, परन्तु दोनों के बीच कपट या शिथिलता होने पर अच्छी आमदनी होते हुए भी अर्थ संकट बना रहता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

व्यभिचारी व्यक्तियों को अपने प्रेमी को स्वेच्छापूर्वक प्राप्त करने की सुविधा नहीं होती, जब अवसर भी मिलता है तो थोड़े समय के लिए। वह भी आशंका, भय और झिझक के साथ। ऐसी स्थिति में तृप्तिदायक संयोग सुख, किसी भी प्रकार नहीं मिल सकता। दाम्पत्ति सुख की यह चिन्ह पूजा दोनों में से किसी को तृप्ति नहीं दे पाती। मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार यह प्रकट है कि—अतृप्त संयोग मस्तिष्क सम्बन्धी विकार और मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है। इच्छित तृप्ति की सुविधा न होने से व्यभिचारी व्यक्ति अपने प्रिय पात्र के लिए चिन्तित रहते हैं। विरह दुख पाते हैं, अवसर के लिए आतुर रहते हैं, जी की जलन बुझाने और प्रेमी को आकर्षित रखने के लिए उसकी समीपता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार की चेष्टाओं में उनका सारा ध्यान उलझा रहता है। हर घड़ी वही फितूर सवार रहता है, समय का अधिकांश भाग उन्हीं बातों में खर्च हो जाता है, फलस्वरूप जीवन के अन्य आवश्यक एवं महत्वपूर्ण काम बिगड़ते हैं, अधूरे पड़े रहते हैं, छूट जाते हैं। इस मानसिक उद्वेग में शरीर दिन-दिन घुलता जाता है। ऐसे लोग बीमारी और कमजोरी से ग्रसित होकर अल्पायु में ही काल-कवलित हो जाते हैं। असंयम के कारण अधिक वीर्यपात होता है, इस प्राण सत्व के अधिक व्यय के कारण अनेकों नवयुवक तपैदिक के शिकार होकर जीवन लीला समाप्त करते देख गये हैं।

एकनिष्ठा का बंधन शिथिल हो जाने से समाज का संगठन बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा। स्त्री, बच्चे, माता-पिता आदि के सम्बन्ध एक क्षणिक ठेकेदारी मात्रा रह जावेंगे। स्वस्थता, सुन्दरता, स्वभाव या धन की अधिक मात्रा का जहाँ अवसर मिलेगा, वहाँ पहले सम्बन्ध को छोड़कर लोग दूसरे नये सम्बन्ध की स्थापना किया करेंगे। तब किसी भी स्त्री-पुरुष को अपने साथी पर विश्वास न रहेगा। सदा यही भय लगा रहेगा कि अधिक अच्छा अवसर मिला कि साथी पल्ला छोड़ कर भागा। ऐसी आशंका के बीच किसी सुदृढ़ परिवार की स्थापना किस प्रकार हो सकती है ? सुदृढ़ परिवार की, आधारशिला स्त्री-पुरुष के बीच सच्ची मित्रता, एकता और आत्मीयता ही है और वह तभी हो सकती है जब एक-दूसरे के प्रति वफादार हों, उसके लिए कुछ त्याग करें। इस त्याग और वफादारी की प्राथमिक परीक्षा-एकनिष्ठा, व्यभिचार से बचना ही है। जहाँ एकनिष्ठा न होगी—उन पति-पत्नी के बीच सच्ची आत्मीयता का होना असंभव है। अस्थिर, संशकित और प्रेमरहित परिवारों का समाज संसार के सारे सौन्दर्य का और मानव जाति की महत्ता का नाश ही कर देगा। यदि व्यभिचार पर प्रतिबन्ध न होगा तो एक व्यक्ति दूसरे के और दूसरा तीसरे के घर को ताकेगा और सर्वत्र अशान्ति, अस्थिरता एवं अविश्वास का वातावरण व्याप्त हो जायगा। स्त्री या पुरुष किसी को सच्चा साथी न मिल सकेगा।

इन सब बातों पर विचार करने से पतिव्रत और पत्नीव्रत की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। कामसेवन एक मनोरंजक खेल मात्र नहीं है। यह प्राण विनिमय की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह वह महान रसायनिक क्रिया है जिसके द्वारा दो प्राणों का एकीकरण होता है और उस संयोग से नये प्राणों की बालकों की उत्पत्ति होती है। भावी संतति की पवित्रता, सार्वजनिक स्वास्थ्य, समाज की स्थिरता, परिवार की निश्चिन्तता आदि जीवन की महत्वपूर्ण समस्याओं का सदाचार से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। इसमें शिथिलता आते ही इतनी दुखदायी उलझनें उत्पन्न हो जाती हैं, जिनके सामने कामसेवन का इन्द्रिय सुख बिल्कुल तुच्छ और उपेक्षणीय है। मनुष्य समाज का सामूहिक हित जिन कामों में निहित है, वे धर्म हैं, जिन कार्यों से सामूहिक अहित होता है, वे पाप हैं। चूँकि व्यभिचार से मनुष्य जाति को सामूहिक हानि है इसलिए वह त्याज्य है एवं अधर्म है। पाठकों को व्यभिचार से दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

वरदायी आविष्कार

मातृत्व एक वरदान है पर उस गरीब महिला के लिए एक अभिशाप बन चुका था। सात दशक पूर्व वह अमरीका के एक अस्पताल में चौथी बार प्रसव वेदना से छटपटा रही थी। वह एक ट्रक ड्राइवर की पत्नी थी, नाम था उसका—सैंडी सैम्स। ट्रक चालक पति की कमाई इतनी नहीं थी कि अच्छी प्रकार परिवार का निर्वाह हो सके। तीन बच्चों तथा पत्नी के लिए भोजन, वस्त्र जुटा पाना ही कठिन पड़ रहा था। ऊपर से बच्चों की अतिरिक्त संख्या अलग बढ़ती जा रही थी। बिन चाहे बच्चों का आगमन रोक पाना उनके लिए सम्भव न था। वह मनःस्थिति भी न थी कि गृहस्थ जीवन में ब्रह्मचर्य का कड़ाई से पालन कर सकें।

चौथी बार वह मरणांत्तक पीड़ा से अस्पताल में कराह रही थी। किसी तरह प्राण बच जायँ, इसके लिए मन ही मन ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी। चौथे बच्चे ने जन्म लिया, उसे प्रसव पीड़ा से छुटकारा मिला। सेवा में लगी नर्स से बोली "सिस्टर क्या कोई उपाय है कि मैं बच्चों के झंझट से सदा के लिए छुटकारा पा जाऊँ ?" नर्स स्वयं तीन बच्चों की माँ थी। कष्टकारक प्रसव वेदना से वह भलीभाँति परिचित थी। सैंडी से उसने कहा "मैं इसका हल ढूँढ़ने की कोशिश करूँगी।"

एक वर्ष का समय बीता। नर्स को वह बात याद न रही। स्मृति ताजी तब हुयी जब पुनः सैंडी पाँचवे बच्चे को जन्म देने पुनः उसी अस्पताल में उसी के वार्ड में पहुँची। नरकंकाल सी उसकी स्थिति हो रही थी। शरीर पीला पड़ गया था। असह्य वेदना के चिन्ह उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखायी पड़ रहे थे। अस्पताल में वह भर्ती तो हुई पर बच्चा जनने के तुरन्त बाद चल बसी। सहसा नर्स

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्गरेट के सामने से वे सारे दृश्य गुजर गये, जिनमें वेदना से कराहते-कराहते सैंडी चल बसी।

उसने नर्स की पोशाक उतारकर तथा नौकरी छोड़कर अवांछित मातृत्व की पीड़ा से नारी जाति को छुटकारा दिलाने का संकल्प लिया। उस संकल्प को पूरा करने के लिए वह तन-मन से लग गयी। अनेकों वैज्ञानिकों, चिकित्साशास्त्रियों से परामर्श के लिए सम्पर्क किया। उन दिनों ऐसे प्रयास को असामाजिक तथा अनैतिक भी समझा जाता था। अधिकांश ने उसे निराश किया।

उसके पास धन एवं आविष्कार के लिए आवश्यक साधनों का भारी अभाव था पर उन प्रतिकूलाताओं से जूझते हुए वह अपने निश्चय पर अडिग रही और तब तक खोज करती रही जब तब कि वर्थ कंट्रोल का सूत्र हाथ न लग गया।

पर चर्चों, कानून तथा समाज सभी ने उसकी खोज को अनैतिक बताते हुए विरोध किया। फैमिली प्लानिंग नामक पुस्तक लिखने के जुर्म में उस पर मुकदमा चला पर कुछ ही समय बाद वह उससे बरी हो गयी। सन् १९१६ में जब उसने विश्व का पहला वर्थ कंट्रोल क्लीनिक खोला तो पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। पादरियों ने उसे भ्रष्टा, चुड़ैल, जातिद्रोही की उपाधियाँ दीं। पर उसे विश्वास था कि वह जो कुछ भी कर रही है नारी समाज के हित के लिए ही कर रही है। समाज आज नहीं तो कल उसकी कल्याणकारी खोज को मान्यता देगा। बिना विचलित हुए जेल से छूटने पर वह परिवार नियोजन क्लीनिक चलाती रही तथा लोगों को संतति नियोजन पर परामर्श देती रही।

उसकी आशा सच निकली। अब विश्व के लगभग अधिकांश देशों एवं समाजों ने आधुनिक परिवेश को देखते हुए संतति निरोध के विभिन्न उपायों को मान्यता दे दी है। सरकारों ने स्वयं परिवार कल्याण नियोजन का कार्य अपने हाथों में ले लिया है, जिससे करोड़ों नारियों को अवांछित मातृत्व से छुटकारा मिला है पर इस सफलता का श्रेय उस नारी को है जिसने प्रतिकूलताओं का सामना करते हुए भी इस प्रणाली का आविष्कार किया।

संतति नियमन के कुछ सुलभ उपाय

जनसंख्या पर नियन्त्रण पाने के लिए संसार के अनेक देश प्रयत्न कर रहे हैं। इनमें अमेरिका, फ्रांस, चीन आदि भी सम्मिलित हैं। भारतवर्ष में पिछले आयोजनों में लगभग १ अरब रुपया खर्च हो चुका है। इस योजनाकाल में भी ६० करोड़ रुपये खर्च का अनुमान है।

डॉ. मेरी स्कारलेब, सर रावर्टस आर्म्सस्ट्रांग जोन्स, डा. हेक्टर तथा डा. मैकन आदि विद्वानों को यह कृत्रिम उपकरणों से संतति निरोध पसन्द नहीं। वे इससे उच्छृंखलता एवं अनैतिकता बढ़ने का खतरा देखते हैं और उसके दुष्परिणामों से चिन्तित हैं। सामाजिक जीवन में 'काम' जैसे सर्वथा गोपनीय विषय को इस प्रकार सार्वजनिक चर्चा का विषय बनाना उनकी दृष्टि से उचित नहीं है। इससे मनुष्य का मन सम्भवत: कामेन्द्रियों की ओर आकर्षित होता है, फलस्वरूप संयमी व्यक्तियों का मनोबल भी दुर्बल पड़ जाता है और वे भी कामुकता के शिकार हो जाते हैं।

मातृत्व की विडम्बना—सन्त विनोबा का कथन है—"परिवार नियोजन के कृत्रिम उपकरणों से मैं देश का कल्याण नहीं देखता वरन् इसमें आध्यात्मिक एवं नैतिक मूल्यों की हार है। परिवार नियोजन में मैं मातृत्व की खुली विडम्बना मानता हूँ। इसके अनुकूल सोचने पर भी मेरी राय बनी है कि यह चीज चार आश्रम की हमारी प्रतिष्ठा को उखाड़ेगी और मैं चार आश्रम स्थापना की आशा छोड़ नहीं बैठा हूँ।"

आर्ष-मर्यादा के अनुसार सन्तति निग्रह का आधार सर्वथा नैतिक और सांस्कृतिक है। सन्तान नियोजन की बात करते हुए हमारा लक्ष्य शरीर, आत्मा, मन और अन्त: को बलिष्ठ बनाना होना चाहिये। यह बात वैयक्तिक आचरण और समाज के स्वस्थ रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं से ही सिद्ध होनी चाहिए। यह तभी सम्भव है जब मातृत्व को परिपूर्ण सम्मान मिले, इन्हें भोग और प्रजनन की सामग्री मात्र न समझा जाये। हमारी दृष्टि में कामवासना की सन्तुष्टि गौण और सन्तानोत्पति मुख्य होनी चाहिए।

मरणं बिन्दु पातेन—हमारे पूर्वजों ने बहुत पहले यह चेतावनी दी थी—"**मरणं बिन्दु पातेन जीवनम् बिन्दु धारणात्**"—"ऐ मनुष्यों वीर्य नाश करोगे तो तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। जीवित रहने के लिए वीर्यवान् बनना, संयमी बनना।"

परिवार नियोजन का सच्चा स्वरूप यही है, इसी में मनुष्य जीवन की सद्गति एवम् सामाजिक जीवन की सुव्यवस्था सन्निहित है। सुसंतति भी केवल वे ही प्राप्त कर सकते हैं, जो काम-वासना को नियन्त्रण में रखकर सन्तानोत्पति करते हैं। इस सम्बन्ध में महात्मा गाँधी कहा करते थे—

"हमारे उपनिषदों में कहा है कि जहाँ पति-पत्नी संगम हुआ, वहाँ उस वीर्य के साथ एक जीवात्मा ने अपने जन्म का रास्ता खोजा। ऐसी स्थिति में यदि सम्भोग हो तो उससे एक जीवात्मा को मूर्तिमान होने का अवसर मिलना ही चाहिए। यदि वह वीर्य व्यर्थ चला जाता है, तो यही कहना होगा कि एक जीवात्मा की हत्या कर दी गई।"

'कीथ' नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने वीर्य रक्षा के सम्बन्ध मे लिखा है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''यह वीर्य तुम्हारी हड्डियों का सत्व, तुम्हारे मस्तिष्क का भोजन, तुम्हारे जोड़ों के लिए तेल और तुम्हारे स्वाँस का मिठास है। यदि तुम मनुष्य हो तो तुम्हें ३० वर्ष की आयु से पूर्व उसकी एक बूँद भी नष्ट न होने देनी चाहिए।''

हम संयमी बनें—ब्रह्मचर्य की हमारे शास्त्रों में बड़ी महत्ता बताई गई है। वीर्य रक्षा से अकथनीय सुख मिलते हैं ऐसा वर्णन मिलता है। पर गृहस्थ जीवन में पूर्ण ब्रह्मचर्य सम्भव नहीं। सन्तान के लिए रति का विधान शास्त्र विहित है पर उसे केवल गर्भाधान के लिये ही सीमित रखा गया है।

'भाव-प्रकाश' एवं संस्कार विधि में बताया गया है कि जब स्त्री रजोदर्शन से शुद्ध हो जाय तब केवल सन्तान की कामना से पुरुष को समागम करना चाहिए और इसके बाद उसे सन्तान काफी बड़ी हो जाने तक पूर्णतया संयम धारण कर रहना चाहिए। जिन लोगों की ऐसी धारणा है कि पूर्ण संयम अनिष्टकारी होता है, उनकी धारणा भ्रान्त और काल्पनिक है। रायल कालेज लन्दन के प्रो. सर लीने वीले ने लिखा है—

''आचार-शास्त्र एवं शरीर विज्ञान के नियमों से संयम् और विशुद्ध पवित्रता की पूर्णतया सिद्धि होती है। यदि लोगों की इच्छा-शक्ति दृढ़ हो और वे अपनी जीवन शैली पर पर्याप्त ध्यान रखें तो कठिन से कठिन वासना पर भी नियन्त्रण किया जा सकता है। काम संयम् से, चाहे वह विवशता से किया गया हो अथवा स्वेच्छा से, कंभी किसी को हानि नहीं पहुँची।''

संयम में ब्रह्मचर्य की बात गाँठ बाँध रखने की है। शक्तियों का कोटा सीमित है। उसे बहुत ही सोच-समझ कर खर्च करना चाहिये। आमदनी कम और खर्च अधिक करने वाले दिवालिया बनते हैं। ऐसा न हो कि हम अति उत्साह में असंयम की दिशा में दौड़ पड़ें। इन्द्रिय वासनाओ की अग्नि में अपने बहुमूल्य जीवन तत्वों को जलाने लगें। विशेषतया कामेन्द्रिय और सम्बन्धित मनोविकारों पर तो कड़ाई का अंकुश रखना चाहिए। आहार की तरह विहार पर भी यदि सचमुच ध्यान रखा जा सके तो निःसंदेह हम संतति नियमन के साथ ही शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बहुत हद तक सफल हो सकते हैं।

संयमित जीवन गृहस्थ के लिये प्रत्येक सुख-सुविधा का साधन है। काम की उच्छृंखल प्रवृत्ति से बचने के लिए इस विज्ञान की जानकारी भी होनी चाहिए। यह अनभिज्ञता भी बहुत-सी बुराइयों और त्रुटियों का कारण बन जाती है। पर यह ज्ञान पूर्ण व्यावहारिक तथा समय के नियन्त्रण मे ही रहना चाहिए।

शुद्ध आहार सात्विक विचार—संयम के लिए या ब्रह्मचर्य के लिए एक बार संकल्प ले लेना ही पर्याप्त नहीं है। यदि लोगों के विचार शुद्ध न रहें तो यह सम्भव नहीं कि लोग देर तक संकल्प साध सकें। इसका मुख्य कारण आहार की असावधानी है। मिर्च, मसाले, गरिष्ठ पदार्थ, बासी भोजन, खटाई तथा उत्तेजक पदार्थों का अमर्यादित एवम् अनियमित स्तेमाल बहुत हानिकारक समझा गया है। चाय, काफी, शराब, माँस, अण्डे, भाँग, चरस तथा तम्बाकू आदि मादक पदार्थ कामुकता को बहुत बढ़ाते हैं। व्यसन और वासना का जोड़ा बताया गया है। जनसंख्या विशेषज्ञों का मत है कि जिन परिवारों में अधिक सन्तानें होती हैं, उनमें पुरुषों में अधिकांश नशेबाज होते हैं। यह कथन अक्षरशः सत्य है।

इस प्रकार का दूषित भोजन शरीर की नस-नाड़ियों में उत्तेजना पैदा करता है। फलस्वरूप वासना की ओर अनायास ध्यान खिंच जाता है और धीरे-धीरे वह एक आम-प्रवृत्ति बन जाती है। इसलिए उत्तेजक, तामसिक पदार्थों से जितना बचा जा सके अच्छा है। सात्विक भोजन से जिसमें दाल, रोटी, चावल, दूध, घी, कम मिर्च-मसालों वाली सादी शाक-सब्जी आदि हो, शरीर भी पुष्ट होता है और मानसिक उत्तेजना से भी बचना हो जाता है।

दाम्पत्य जीवन में पवित्रता अनिवार्य—विवाह को जो लोग वासना की पूर्ति का साधन और स्त्री को क्रीत-दासी समझते हैं। उनसे बढ़कर और नीच कोई नहीं हो सकता। भारतीय संस्कृति में स्त्री को पुरुष की अर्द्धांगिनी माना गया है। उसकी सब प्रकार से रक्षा करने की शिक्षा दी गई है। सुन्दर, स्वस्थ और सद्गुणी सन्तान के लिए बहुत आवश्यक है कि स्त्री पुरुष के सम्बन्ध बहुत पवित्र रहें। उन्हें शारीरिक प्रेम की अपेक्षा आत्मिक प्रेम पर अधिक विश्वास होना चाहिए। सन्तति-नियमन का लाभ तो इस तरह एक प्रकार से गौण हो जाता है। पारिवारिक जीवन की पवित्रता अन्य असंख्य सुख-समृद्धियाँ प्रदान करती हैं। ऐसे परिवार सांसारिक दृष्टि से भी खूब समृद्ध होते हैं।

जिनके लड़कियाँ हों उन्हें लड़कों की हठ छोड़ देनी चाहिए। लड़कों से ही वंश चलते हों, ऐसी बात नहीं। न तो उनसे स्वर्ग और मुक्ति की आशा की जा सकती है और न नाम की। सब मनुष्य अपने गुण, कर्मों के अनुसार यश, कीर्ति एवम् मोक्ष का अधिकार प्राप्त करते हैं, इसलिए सन्तान को लड़के-लड़की की भेद दृष्टि से देखना उचित नहीं। लड़कियों का पालन-पोषण भी बच्चों के समान ही करना और उससे आत्मिक सुख अनुभव करना चाहिए। इस प्रकार का कारण बनाकर दूसरा विवाह कभी नहीं करना चाहिए।

सन्तति निरोध का सर्वोत्तम तरीका ब्रह्मचर्य है। इससे अनावश्यक बच्चों की बाढ़ से होने वाले दुष्परिणामों से ही बचा नहीं जाता वरन् शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सम्बर्धन का लाभ होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर जिन्हें, इतना आत्म-संयम न हो और जो अपने को इसमें असमर्थ मानते हों, वे कृत्रिम उपकरणों का भी प्रयोग कर सकते हैं। दो बुराइयों में से एक चुननी ही पड़े तो बड़ी की अपेक्षा छोटी बुराई अपनाने में भी बुद्धिमानी है, अधिक सन्तान का खतरा उठाना बहुत बड़ी बुराई है। इसकी तुलना में कृत्रिम उपकरणों के माध्यम से उसकी रोकथाम करना हल्की बुराई है। जिनको अपने मन पर काबू नहीं, वे कम से कम इतना तो करें ही। प्रजनन बढ़ाकर अपनी स्त्री का स्वास्थ्य, बालकों के शिक्षण, पोषण की असहनीयता और समाज संकट को बचाने के लिए कृत्रिम उपकरणों का सहारा लेना भी एक सीमा तक उचित ही कहा जायगा। अधिक बच्चे पैदा करने की बुराई को पहाड़ माना जाय तो सन्तति निरोध के भौतिक साधन उनकी तुलना में एक रेत के टीले की तरह ही बुरे कहे जायेंगे।

जहाँ तक हो सके ब्रह्मचर्य को ही प्रधानता देनी चाहिए पर देर तक ब्रह्मचर्य रहने पर भी यदा-कदा प्रतिबन्ध तोड़ने पर भी सन्तान उत्पन्न होने का खतरा बना ही रहता है। इसलिए कृत्रिम साधनों का भी उपयोग कभी करना पड़े तो उसे एक हल्की बुराई के रूप में उपयोग किया जा सकता है।

संतान की संख्या बढ़ाना आज की परिस्थिति में अपने व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन में विपत्तियों को सीधा आमन्त्रण देना है। महँगाई और अपर्याप्त जीविका के कारण बच्चों के निवास, खेल-कूद के लिए स्थान कम मिलता है उन्हें पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता। महँगी शिक्षा और चिकित्सा के कारण न उनकी समय के अनुरूप ऊँची पढ़ाई की व्यवस्था बन पाती है और न चिकित्सा का समुचित प्रबन्ध होता है। ऐसी दशा में कौन आशा करेगा कि इन ढेरों बच्चों का समुचित विकास एवं पोषण एक औसत दर्जे का आदमी कर सकता है। उँगलियों पर गिने जाने वाले अमीरों की बात दूसरी है, सर्वसाधारण के लिए तो यह भार जितना बढ़ेगा, उतना ही असह्य बनेगा। समय कम और बच्चे अधिक होने पर उनकी ओर समुचित ध्यान भी तो नहीं दिया जा सकता। उनका स्वभाव, संस्कार, स्वास्थ्य सुविकसित करने के लिए अभिभावकों को पूरा ध्यान देना, समय और श्रम लगाना तथा पर्याप्त खर्च करना चाहिये। पर यह अधिक बालकों में सम्भव नहीं। इसलिये वे बेचारे जंगली घास-फूँस की तरह बढ़ते, अपनी मौत मरते-जीते और संस्कारी, कुसंस्कारी बनते रहते हैं। ऐसे बालक सारे परिवार के लिए—समस्त समाज के लिए एक सिरदर्द ही रहते हैं। कुमार्गगामी या अस्वस्थ हो गए, तब तो उन्हें एक विपत्ति एवं अभिशाप ही कहा जायगा।

काम उतना ही हाथ में लेना चाहिए, जो ठीक तरह निवाहा जा सके। बच्चे उत्पन्न करना क्रीड़ा-विनोद मात्र नहीं है। उसके पीछे भारी उत्तरदायित्व लदे हैं। जो उसे ठीक तरह वहन कर सकने में समर्थ हैं, उन्हें ही यह बोझ उठाने का साहस करना चाहिए। अन्यथा बिना आगे-पीछे सोचे सन्तान बढ़ाते जाना, अपने लिए, बच्चों के लिए और समस्त समाज के लिए संकट प्रस्तुत करने का अपराध ही माना जायगा।

व्यक्तिगत रूप से इस उत्तरदायित्व का पालन तो हम करें ही साथ ही, समाज को भी इस प्रकार की प्रेरणा देने का कार्य हम अवश्य करें। युग निर्माण योजना की क्रियाशील शाखाओं को सामूहिक रूप से समाज को इस सम्बन्ध में नैतिक प्रशिक्षण देने के पुनीत कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। हमारे देश के बच्चे स्वस्थ, शिक्षित और सद्गुणी हों इसके लिए परिवार नियोजन के नैतिक आदर्श और सिद्धान्तों पर प्रचार व प्रसार हम कर सकें तो यह हमारी उत्कृष्ट समाज-सेवा होगी। उसका प्रतिफल आत्म सन्तोष के रूप में हमें मिलेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

असह्य भार, बड़ा परिवार, सीमित सन्तान—सदा बलवान्

अमरीका में ओपोसम नाम का एक बिल्ली की तरह का जीव पाया जाता है। इसके पेट में थैली होती है, जिसमें वह अपने बच्चों को रखती है पर वह काओला और कंगारुओं से भिन्न जाति का जीव है।

लम्बे परिवार की दुर्गति देखनी हो तो इस 'ओपोसम' के पास रह कर कुछ समय बिताना चाहिये। तथाकथित धार्मिक व्यक्ति आजकल साम्प्रदायिक विद्वेष के कारण यह कहा करते हैं कि हिन्दू जाति को सन्तान सीमाबन्ध के लिये बाध्य किया गया तो उनकी संख्या कम रह जायेगी। यदि यह लोग ओपोसम की जीवन पद्धति देख लें तो पता चल जायेगा कि संसार में शासन और प्रभाव उन लोगों का रहता है जो शक्तिशाली और बलवान होते हैं, भले ही उनकी संख्या न्यूनतम क्यों न हो। इसके विपरीत जनसंख्या की वृद्धि एक भार है, जो कि परिवार, समाज, राष्ट्र और जातियों की गरिमा को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता है।

ओपोसम एक साथ ग्यारह-बारह बच्चे देती है। अँगूठे-अँगूठे भर के कमजोर बच्चों को थैली में शरण मिलती है। "कमजोरों को सौ फजीते" वाली कहावत—बेचारे बाहर निकलें तो चील, कौवे, बाज चाहे जिसके शिकार बनें। निर्बलता के शिकार बच्चे थोड़ा बड़े भी हो जाते हैं तो भी बेचारी मादा से ही चिपके रहते हैं। कामुक नर तो कहीं अन्यत्र उच्छृंखलता बरत रहा होता है। मादा की पीठ में नहीं समाते तो कोई पूँछ में लटका रहता है, कोई गर्दन में सबके सब अपने दाँतों से माँ के बाल पकड़े रहते हैं। माँ भी सोचती है क्या मुसीबत पाली-बच्चे हुए या आफत। सारे जिस्म को नोंचते

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहते हैं। बड़े हो जाते हैं तो भी पिण्ड नहीं छोड़ते और इसी बीच ११-१२ बच्चों की एक नई टोली पेट में से आ जाती है। यह भी थैली में घुसने लगते हैं सो जैसे तमाम भाइयों में जमीन, जायदाद के बँटवारों में झगड़ा होता है ऐसे ही यह भाई भी आपस में लड़ने लगते हैं। ओपोसम खीझ जाती है तब पहले वालों को पकड़-पकड़ कर भगा देती है पर तब तक दूसरी टोली तंग करने लगती है। बेचारी का जीवन इसी संकट में बीत जाता है और वह थोड़े ही दिन में मर जाती है।

मनुष्यों के परिवारों में भी अधिक सन्तान के यही परिणाम होते हैं पर समझदार होते हुये भी सन्तति निग्रह की ओर ध्यान नहीं दिया। इसे दुर्भाग्य नहीं तो क्या कहा जा सकता है।

धर्मनिष्ठ, नेक और ईमानदार होना ही काफी नहीं अपना प्रभाव, वर्चस्व और अस्तित्व तक बनाये रखने के लिये शक्तिशाली होना उससे भी अधिक आवश्यक है। प्रकृति के छोटे से छोटे कण भी यही बोलते हैं। मिट्टी के अन्दर अनेक सूक्ष्म जीवाणु होते हैं इनमें से कुछ अच्छे जीवाणु (वैक्टीरिया) होते हैं, जो नम्र भी होते हैं, और फसलों के लिये उपयोगी भी पर इनकी संख्या में असाधारण वृद्धि ही इनके सर्वनाश का कारण बनती है। प्रोटोजोआ, अमीवा, मिक्सो-बैक्टीरिया और मिक्सोमाइसिटीज इन जीवाणुओं को खा जाते हैं। उनके एक कोष-विभाजन के लिये ही ४०००० सत्-जीवाणु मार दिये जाते हैं। यदि अपने गुणों के साथ-साथ उनमें शक्ति भी रही होती तो वे क्योंकर इस तरह ताकतवरों के शिकार होते ?

आज भारतवर्ष की स्थिति कुछ ऐसी ही है। यहाँ की आबादी इन दिनों ९० करोड़ है, जो समूचे संसार की आबादी का लगभग २० प्रतिशत है। उधर भूमि की दृष्टि से शेष विश्व की तुलना में हमारा प्रतिशत कुल २.४ ही है। जमीन थोड़ी खाने वाले बहुत तब यदि ओपोसम और वैक्टीरिया की सी स्थिति यहाँ की भी हो जाये तो आश्चर्य क्या ? यहाँ प्रति सेकेण्ड एक बच्चा पैदा हो जाता है। प्रति वर्ष २ करोड़ नये बच्चे जन्म ले लेते हैं। इनमें से ८० लाख तो अच्छी परवरिश के अभाव में ही मर जाते हैं जो रहते भी हैं वे स्वास्थ्य, खाद्य समस्या, शिक्षा, रोजगार और सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से भार ही होते हैं। यदि यह बाढ़ रोकी न गई तो अगले १० वर्षों में भारतवर्ष की आबादी १ अरब हो जायेगी जबकि खाद्य-उत्पादन की स्थिति वहीं की वहीं रहेगी। उस समय की अवस्था का अनुमान ऊपर के दो उदाहरणों से किया जा सकता है।

इसके विपरीत समर्थता किस प्रकार विजयी होती है उसका सबसे अच्छा उदाहरण इंग्लैण्ड है। इस छोटे से देश का क्षेत्रफल कुल ९४५११ वर्गमील है, इसकी आबादी कुल ५२७००००० है, जबकि अँग्रेज जाति विश्व विजय के लिये निकली तब उसकी संख्या और भी कम रही होगी। अपनी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक सामर्थ्य के द्वारा इन थोड़े से आदमियों ने संसार में अपनी विजय पताका फहरा कर इस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया है कि प्रभुत्व बनाये रखने के लिये जनसंख्या आवश्यक है। यदि ऐसा रहा होता, तो इंग्लैण्ड से भी २९४३६४ वर्ग कि. मी. और २ करोड़ अधिक ७४००००० आबादी वाला उत्तरप्रदेश ही इंगलैण्ड से कहीं बढ़कर काम दिखा सका होता पर उल्टे यह प्रदेश और भी समस्याओं में ग्रस्त पड़ा है।

थोड़े लोगों की परवरिश, शिक्षा-दीक्षा जितनी अच्छी हो सकती है, अधिक लोगों की उतनी अच्छी नहीं, इसीलिये थोड़े लोग बलवान् हो जाते हैं और सैकड़ों कमजोरों को दबाये रखते हैं। शेर और बाघ कम प्रजनन वाले जन्तु हैं इनके बच्चे दो वर्ष तक माँ का दूध पीते हैं। गैंड़ा का बच्चा अपनी माँ के पास ६ वर्ष तक अकेला रहता है और दूध पीकर मोटा-ताजा हो जाता है। उससे लड़ने की हिम्मत शेर-चीते भी नहीं करते। ह्वेल मछली का समुद्र में आतंक रहता है। उसके बच्चे माँ का दूध ६ माह तक पीते हैं। समुद्री वीवर और ओटर को १ वर्ष तक माता का संरक्षण मिलता है, इतना पोषण प्राप्त किये बच्चे ही जब समुद्र में निकलते हैं तो आयु में अधिक किन्तु कमजोर दूसरे जीव उनका आदाब झुकाते और डर कर एक ओर खड़े हो जाते हैं।

यह उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि शक्तिशाली होकर थोड़े होना अच्छा। रोगी, दुर्बल और समस्याग्रस्त लोगों की भीड़ बढ़ाकर एक समर्थ जाति का स्वप्न देखना कोरी मूर्खता है।

संयम बनाम समर्थता बनाम सुनिश्चित जीवन

थोड़ी देर के लिये मनुष्य की बात छोड़ दें और जीव जगत की कल्पना करें तो वहाँ "शक्तिमान के ही जीवित रहने" के अधिकार की पुष्टि होती है। मनुष्य को परमात्मा ने बुद्ध और विवेक के दो विशिष्ट उपहार दिये हैं। इसलिये उसे तो विसंगति श्रेणी में रखना तथा सहयोग और सहकारिता में समृद्धि, सुव्यवस्था का पाठ पढ़ाना पड़ेगा, पर यदि वह अपनी इस ईश्वर प्रदत्त विशेषता का अपने जीवन में उपयोग न कर पशुओं का ही पेट-प्रजनन वाला जीवन जीने लगे तो जो व्यवस्थायें प्रकृति में चल रही हैं, वैसे ही परिणाम से मनुष्य भी बच नहीं सकता।

हाथी संसार का अति सामर्थ्यवान प्राणी है। विश्वास करें या न करें। पर अफ्रीका में मोम्बासा से कीनिया को जो सड़क जाती है उस पर एक प्रवेश द्वार मात्र दो जोड़े हाथी दाँत का बना है। यह दाँत इतने विशाल हैं कि बस और भारी बोझ लदे ट्रक भी उसके नीचे से आसानी से निकल सकते हैं। जिन हाथियों के इतने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विशाल और मजबूत दाँत होंगे, उनके शरीर की सामर्थ्य कितनी होगी उसका अनुमान करना कठिन है। हाथियों में जो सामर्थ्य द्वापर और त्रेता में थी वही आज भी विद्यमान है। इसका कारण प्रकृति का पक्षपात नहीं उसकी अपनी संयम शक्ति है, जिसने इस समूची जाति को युग-युगों तक अपनी सामर्थ्य और अपनी सत्ता बनाये रखने योग्य बना दिया है।

एक हाथी युगल अपने जीवन काल में अधिकतम दो या तीन बच्चों को जन्म देता है। यह उल्लेखनीय है कि प्राकृतिक जीवों में प्राय: एक ही बार के सहजीवन से गर्भाधान की क्रिया सम्पन्न हो जाती है। स्पष्ट है कि उसके सहजीवन की संख्या सारे जीवन में अधिकतम पाँच से अधिक नहीं होती। अपनी इस विशेषता के कारण कहीं भी उनकी जनसंख्या के विस्फोट की समस्या नहीं उठी। इतने जगल कट जाने पर भी उनके लिये कभी खाद्य का अभाव नहीं पैदा हुआ।

यही स्थिति बलशाली दूसरी सभी जातियों की है जिनमें सिंह, चीते, बाघ भी आते हैं। राजहंस पक्षी अपनी इस प्रवृत्ति के कारण कभी भी संख्या के विस्फोट की स्थिति में नहीं पहुँचा, उसे प्रकृति के अत्यन्त प्रिय उपहार के रूप में सम्मानित किया जाता है।

दूसरी ओर जन्मजात तुच्छ कहलाने वाली मक्खी को ही लें। एक मक्खी एक ही ग्रीष्म ऋतु में ४०००००,०००००० (चार नील) मक्खियाँ पैदा कर देती है। रावण की सेना से भी एक लाख गुनी इस सेना का मार्च यदि सूर्य की ओर हो तो २९ करोड़ मील दूर पहली मक्खी सूर्य की २० बार आ जाकर यात्रा पूरी कर लेगी तब आखिरी सिपाही को कहीं पृथ्वी से प्रस्थान का अवसर मिलेगा। समुद्र में पाई जाने वाली मछलियों की प्रजनन क्रिया इतनी तीव्र गति से होती है कि वे यदि सबकी सब जीवित बची रहें तो ६ महीने में समुद्र मछलियों का पहाड़ बन जाये। किन्तु इन असंयमति जीवों पर प्रकृति का क्रूर डंडा इतनी तेजी से फिरता है कि एक ही बार में उनकी करोड़ों की संख्या को मार डालता है, मक्खियों में इतनी भी क्षमता नहीं होती कि मैदानी इलाकों की ही शीत बर्दाश्त कर लें। फलत: उनका बुरी तरह वंश नाश होता रहता है। मछलियाँ तो आत्म-विस्फोट की साक्षात् उदाहरण हैं। बड़ी मछली हर छोटी मछली पर दाँव लगाती और उन्हें चट करती रहती है, उन्हें अपने आप में ही इस तरह द्वन्द्व करते देखकर ही सम्भवत: मनुष्यों ने उन्हें पृथ्वी में अपना जीवन जीने योग्य नहीं समझा और उनका विधिवत् भक्षण करने लगा।

मछली-मछली है मनुष्य-मनुष्य, पर प्रकृति की दृष्टि में दोनों एक हैं। यदि मनुष्य संयमित जीवन जीने के लिये तैयार नही होता तो उसे भी एक दिन ऐसे ही सर्वनाश की तैयारी प्रारम्भ कर देनी होगी। इन दिनों मानवीय सद्भाव में जो व्यापक अभाव दिखाई देने लगा है, उसे विनाश पूर्व की चेतावनी समझा जा सकता है।

सन्तान की संख्या नहीं, उत्कृष्टता बढ़ायें

बालक अपने साथ हमारे लिये अनेक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व लेकर आते हैं। बालक के पैदा होते ही हम उसकी शिक्षा, दीक्षा, शादी आदि तक की कल्पना करने लगते हैं। सभी अपने बच्चे के लिये बचपन से ही राजा बनने की कामना करते हैं किन्तु फिर भी उसके लिये भोजन, वस्त्र तक की व्यवस्था करके हम अपने फर्ज से उऋण हो जाते हैं और सोचते हैं कि बड़े होने पर उसकी शिक्षा की व्यवस्था करेंगे। किन्तु बालक की शिक्षा उसी दिन से प्रारम्भ हो जाती है। जिस दिन से वह गर्भ में आया था। बालक पर उस वातावरण का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, जो वातावरण उसे गर्भ की अवस्था में प्राप्त होता है।

हमारे यहाँ उपनयन संस्कार की व्यवस्था में यही मूल उद्देश्य है। कहा जाता है कि अभिमन्यु ने अपनी माँ सुभद्रा के पेट में ही चक्रव्यूह भेदन की कला सीखी थी।

बुन्देल केसरी महाराज छत्रशाल युद्धभूमि में पैदा हुये थे और तलवारों की झंकारों ने उनका स्वागत किया था। उस वातावरण का उनके जीवन पर जो वीरतापूर्ण प्रभाव पड़ा उसे सभी जानते हैं।

भगवान राम ने गर्भवती होने पर परम प्रिय सीताजी को महर्षि बाल्मीक के आश्रम में भेज दिया था ताकि गर्भस्थ शिशु बाल्मीकि के आश्रम के, तप, त्याग, प्रेम और सहिष्णुता के वातावरण में बढ़ें और संस्कारवान संतति पैदा हो।

अत: हमें बच्चे के गर्भ में आते ही अपने परिवार में हँसी-खुशी व प्रेम का वातावरण पैदा करना चाहिये। यदि हम चाहते हैं कि बच्चे के मस्तिष्क का निर्माण व विकास अच्छी तरह से हो तो उस समय माता को द्वेष, ईर्षा और मस्तिष्क की तनावपूर्ण स्थिति से दूर रहना चाहिये। इसके लिये आवश्यक है कि परिवार में कलह या तनावपूर्ण वातावरण न रहे।

बच्चे के पैदा होते ही उसके भोजन व वस्त्र की व्यवस्था की जाती है। किन्तु बच्चे के शारीरिक विकास के साथ ही साथ उसके मस्तिष्क का भी विकास होता है और इसके लिये उसे शारीरिक आहार के साथ ही मस्तिष्क के विकास के लिये भी आहार की आवश्यकता होती है, जिसे वह अपने आसपास के वातावरण से ग्रहण करता है। बाइबिल में लिखा है, बुरे मुहल्ले में बने छोटे घर में कितनी ही सुविधा क्यों न हों, तुम उसमे न रहो, किसी बड़े घर (उच्च घर) की पर छटी (दालान) में पड़े

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रहना उससे अच्छा है।' इसका संकेत यही है कि वातावरण का व्यक्तित्व के विकास पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अत: बचपन से ही हमारी सन्तान, उत्कृष्ट, व सुसंस्कृत बन सके इसके लिये हमें अपने घर में वैसा वातावरण उत्पन्न करना चाहिये।

आज आवश्यकता है बच्चों को सही दिशा देने की। उन्हें नये सबेरे के, नये उजाले के दर्शन कराने की किन्तु बड़ा दु:ख होता है यह देखकर कि हमारे समाज के और देश के तथाकथित कर्णधार, देशभक्त और नेता कहे जाने वाले व्यक्ति उसके अविकसित मस्तिष्क का नायायज लाभ उठाते हैं। दिशा देने की अपेक्षा उन्हें बहकाते हैं। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिये उन्हें भड़का कर तोड़-फोड़ और अन्य असामाजिक कार्य कराते हैं। अपने छोटे-छोटे स्वार्थों की पूर्ति के लिये जन, धन और राष्ट्र का नुकसान तो करते ही हैं पर सबसे अधिक अहित वह उन बच्चों-विद्यार्थियों का ही करते हैं। उन्हें अपने उद्देश्य से विचलित करते हैं और उन्हें उद्दण्ड और उच्छृंखल बनाते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बच्चे पर परिवार व समाज के संस्कार किस प्रकार प्रभाव डालते हैं। बच्चे ही हमारे समाज, देश और संस्कृति की भविष्य की तस्वीर हैं। इन्हें बनाने के लिये हमें चरित्र का आदर्श प्रस्तुत करना होगा। उनकी भौतिक उन्नति ही नहीं नैतिक स्तर की उन्नति करना भी आवश्यक है। उन्हें किताबी ज्ञान नहीं जीवन जीने की कला सिखाने की आवश्यकता है जिसे सीखकर हमारे बच्चे नया सबेरा, नया उजाला इस धरती पर लाने में समर्थ हो सकें।

बालकों को जन्म ही न दें—उनका निर्माण भी करें

बालक अपने साथ हमारे लिये अनेक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व भी लेकर आते हैं और उन्हें पालन करना अभिभावको के लिए आवश्यक होता है। बच्चे की शरीर रक्षा के लिए उसके भोजन-वस्त्र, सफाई, चिकित्सा, विश्रान्ति आदि का प्रबन्ध करना होता है। बड़े होने पर उनकी शिक्षा, शादी, आजीविका आदि आवश्यकताएँ पूरी करने के साधन भी जुटाने होते हैं। इतना ध्यान आमतौर से सब अभिभावकों को रखना होता है और वे अपने-अपने ढंग से उसकी पूर्ति भी करते हैं।

किन्तु बात यहीं तक समाप्त नहीं हो जाती। इससे भी आगे के कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व अभिभावकों के हैं, जिनके न समझने एवं न निवाहने से बच्चे अनेक दोष-दुर्गणों से घिर जाते हैं और अपने लिये—परिवार के लिए, समाज के लिए एक अभिशाप सिद्ध होते हैं। दुर्गुणों से बचाना और सद्गुणों से अभ्यस्त कराना भी अभिभावकों का कर्त्तव्य है यह बात भुला नहीं दी जानी चाहिए।

बच्चा कुछ जन्मजात भले-बुरे संस्कार लेकर अवश्य आता है पर उनका विकसित अथवा नष्ट होना बहुत कुछ परिस्थितियों पर निर्भर रहता है। अभिभावकों की मनोभूमि और घर की परिस्थितियों पर प्राय: बच्चों का मानसिक विकास निर्भर रहता है। कुछ बिरले ही बालक ऐसे अपवाद देखे जाते हैं जो परिवार की परिस्थितियों से भिन्न प्रकार का व्यक्तित्व निर्माण कर सकें हों। व्यवसाय तो बदलते रहते हैं। गरीबी-अमीरी और रंग-रूप भी बदल जाते हैं पर स्वभाव और संस्कार प्राय: आजीवन वैसे ही बने रहते हैं, जैसे बचपन में उपलब्ध हुए थे इसलिए यदि अपने बच्चों को दुर्गुणों से बचाना हो और सद्गुणी बनाना हो तो उनके जन्म से पूर्व ही यह तैयारी करनी चाहिए कि उन्हें सुसंस्कृत वातावरण मिले, जिसमें पलकर वे सज्जन, सुसंस्कृत एवं सद्गुणी बन सकें।

यह एक रहस्यमय तथ्य है बालक गर्भ में आने के दिन से ही सीखना आरम्भ करता है और पाँच वर्ष का होने तक अपनी मनोभूमि के निर्माण का कार्य तीन चौथाई पूरा कर लेता है। इस अवधि में बालक बहुत संवेदनशील रहता है। किशोर एवं युवा होने पर स्कूली पढ़ाई, व्यावसायिक ज्ञान, कला-कौशल, लोक-व्यवहार, खेल-कूद आदि की शिक्षा प्राप्त की जाती है क्योंकि इन कार्यों के उपयुक्त मस्तिष्कीय विकास बड़ी आयु में ही होता है। किन्तु स्वभाव, संस्कार, चरित्र, आस्थाएँ जिस आयु में सीखी जाती हैं, वह गर्भ में प्रवेश करने वाले दिन से लेकर पाँच वर्ष तक की ही है। उस अवधि में अचेतन मस्तिष्क बहुत संवेदनशील रहता है और निकटवर्ती वातावरण से जो कुछ सोचा या किया जाता है उसका बहुत ही स्पष्ट चित्र अपनी अन्त:भूमिका पर उतरता जाता है। यों यह प्रक्रिया जीवन भर चलती रहती है पर उसका बहुत बड़ा अंश शैशवकाल में पूरा हो चुकता है। इसलिये अभिभावकों को यह अपने बच्चे संस्कारवान और सद्गुणी बनाने हों तो वातावरण ऐसा बनाने का पूरा ध्यान देना चाहिए, जिससे उन्हें सुसंस्कृत बनने का उपयुक्त आधार मिल सके।

यह भली-भाँति समझ रखना चाहिए कि व्यक्ति की सुख-शान्ति के लिए स्वास्थ्य, शिक्षा, शादी, आजीविका आदि की आवश्यकता तो है पर काम इतने से ही नहीं चल सकता। आदतें और अभिलाषाएँ यदि घटिया किस्म की हैं, तो व्यक्ति का दृष्टिकोण, स्वभाव एवं व्यवहार ओछे स्तर का होगा फलस्वरूप वह स्वयं विक्षुब्ध रहेगा। परिवार वालों को अपने दुर्व्यवहार से दु:खी करेगा और समाज के लिये ऐसी विकृतियाँ उत्पन्न करेगा, जिससे क्लेश और द्वेष भरी दुष्प्रवृत्तियों की एक लम्बी शृंखला चल पड़े।

यदि हम अपने बालकों को सचमुच प्यार करते हों और वस्तुत: उनका भविष्य उज्ज्वल देखना चाहते हों तो उचित यही है कि उनको संस्कारवान बनाने की तैयारी में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जुट जायँ। सन्तानोत्पादन की क्रिया आरम्भ करने से पूर्व ही पति-पत्नी को अपने दोष-दुर्गुणों का परिष्कार करना चाहिए और सुसंस्कृत एवम् संभ्रान्त सज्जनों की तरह आचरण, व्यवहार एवं संभाषण की समस्त गतिविधियाँ सुधार लेनी चाहिये। जीव में जो प्रकृति होगी वही पौधे में आवेगी। मक्का से मक्का उगेगा और गेहूँ से गेहूँ। बाप का बीज और माता की जमीन दोनों का ही समान महत्व है, सन्तान रूपी उपवन के निर्माण में। इसलिये केवल नर आकृति के ही नहीं मानव प्रकृति के बालक उत्पन्न करना चाहते हों उन्हें विवाह के बाद तुरन्त इस प्रयत्न में जुट जाना चाहिये कि अपने समस्त दोष-दुर्गुणों को जल्दी से जल्दी निकाल बाहर करें और प्रयत्नपूर्वक समस्त सद्गुणों को अपने आचरण में सम्मिलित कर लें। होनहार बालकों की उत्पत्ति का मूल आधार यहीं से प्रारम्भ होता है। गर्भावस्था में सुने हुये ज्ञान के आधार पर अभिमन्यु ने बड़े होकर चक्रव्यूह का वेधन किया था। अपने बालक भी माता के गर्भ में बैठे हुए बहुत कुछ सीखते, समझते और ग्रहण करते रहते हैं। गर्भवती के आस-पास प्रसन्नता, उल्लास, सद्भावना, आदर्शवादिता एवं उत्कृष्टता का वातावरण बना रहना चाहिये। उसे क्रुद्ध, असन्तुष्ट, खिन्न एवं उद्विग्न रहने की स्थिति सहन न करनी पड़े इसका समुचित ध्यान रखा जाय।

शिशु जन्म के बाद माता-पिता की, समस्त परिवार की, घर की ऐसी परिस्थितियाँ बनानी चाहिए जिससे अस्वच्छता, कुढ़न, मनोमालिन्य, उद्दण्डता एवं अनैतिकता के लिये कोई गुंजायश न हो। सब लोग ध्यान रखें कि—बहुत ही कुशल और संवेदनशील गुप्तचर की तरह नवजात बालक हमारे आचरण और व्यवहार से बहुत कुछ सीख रहा है। इन दिनों जो उसे सिखाया जाय उसी के आधार पर प्रकृति बनेगी और बड़े होने पर उसका भविष्य उसी प्रकार का विनिर्मित होगा। इस तथ्य को समझने वाले लोगों का यह एक अनिवार्य कर्त्तव्य हो जाता है कि अपने दुर्गुणों पर नियन्त्रण करे और घर में सज्जनता की सौम्य परिस्थितियाँ बनाये रखने के लिए जो भी त्याग करना पड़े, उसके लिये खुशी-खुशी तैयार हों। माता-पिता को परस्पर लड़ने-झगड़ने से पूरी तरह बचना चाहिये और काम-क्रीड़ा पर अधिक से अधिक नियन्त्रण रखना चाहिये ताकि बच्चों के विचार कुसमय ही भड़कने का दुष्परिणाम सामने न आये।

बच्चे स्कूल-कालेज में तो केवल भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल, आदि पढ़ते हैं अब वहाँ प्राचीनकाल के स्कूलों जैसा वातावरण कहाँ है जहाँ बालक सुसंस्कार भी प्राप्त करें। बच्चे का शिक्षण उपदेशों पर नहीं अनुकरण पर निर्भर है। उनका अविकसित मस्तिष्क लम्बे-चौड़े उपदेशों या कठोर निर्देशों के समझने में असमर्थ रहता है पर जो कुछ हो रहा है, उसे समझने और अपनाने में उसका अन्तःकरण पूर्ण समर्थ होता है। इसलिये उन्हें जो कुछ सिखाया जाना हो उसका प्रत्यक्ष रूप सामने प्रस्तुत करना चाहिए। आज के स्कूल अध्यापक बच्चों को एक बहुत छोटी सीमा तक ही सुधार सकते हैं। क्योंकि वहाँ न वातावरण है न चरित्र। बालकों के स्वभाव एवं चरित्र का निर्माण तो घर की पाठशाला से ही सम्भव है। इसलिये प्रयत्नपूर्वक यह चेष्टा की जानी चाहिये कि घर का वातावरण बहुत ही निर्मल, शान्तिमय, सदाचारी एवम् सज्जनतापूर्ण हो। घर के सब लोग परस्पर मधुर संभाषण करें—प्रेमपूर्वक रहें और एक दूसरे की भरपूर सहायता करने, उदारतापूर्वक तत्पर रहें तो बिना किसी प्रशिक्षण उपदेश के ही बालक उन सद्गुणों को ग्रहण करते चले जायेंगे और बड़े होने पर वैसे ही बनेंगे जैसा कि उन्हें बचपन में अभिभावकों द्वारा सिखाया एवम् बनाया गया था।

बच्चे उत्पन्न करना व्यक्तिगत क्रीड़ा-विनोद का विषय नहीं है। एक नये व्यक्ति के जन्म एवं उसके व्यक्तित्व को विनिर्मित करने का यह महान् उत्तरदायित्व है। यदि हम इस कर्त्तव्य को भूलते हैं तो स्वयं उद्विग्न रहने वाले परिवार को दुःखी करने वाले और समाज में दुष्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने वाले राक्षसों को उत्पन्न करेंगे और अपने पाप से पाने और सबके लिये नरक का सृजन करेंगे। उचित यही है कि यदि बालक उत्पन्न करने का साहस करते हैं तो उन्हे सुसंस्कृत बनाने का वातावरण भी उत्पन्न करें। तभी विवाह और प्रजनन की सार्थकता है।

सन्तानोत्पादन—भारी दायित्व

जमाने की हवा जिस दिशा में चल रही है, उसे देखते हुए मनुष्य का मन यदि जोड़ी बनाकर रहने और कामुकता का रसास्वादन करते रहने के लिए चले तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मनोरंजन के माध्यमों में प्रकृति ने जननेन्द्रिय को प्रमुख बनाया है। फिर वातावरण ऐसा बन गया है कि साहित्य, सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, गायन, वादन आदि क्षेत्रों में कामुकता का गहरा प्रवेश हो चला है। अश्लील फिल्मों, चित्रों की कानून का बाँध तोड़ते हुए बाढ़ सी आ गई है। एकान्त की पारस्परिक चर्चाओं में इसी संदर्भ का बाहुल्य रहता है। ऐसी दशा में संयमशील ब्रह्मचारी जीवन जी सकना किसी शूरवीर और मनोजयी का ही काम है। जो बात कभी साधारण थी अब वह अपवाद हो गई है। नर-नारी सभी इस तूफान में तिनके पत्तों की तरह उड़ते चले जा रहे हैं।

ऐसी दशा में गुप्त व्यभिचार या अप्राकृतिक कृत्यों से होने वाली हानि तथा अव्यवस्था, अस्तव्यस्तता से बचने के लिए हमें उन उपायों को अपनाना पड़ेगा जिसमें दुराव-पाखण्ड रचने की अपेक्षा यथार्थता को अपनाया और सामान्य रीति से जिया जा सके।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सभी धर्म सम्प्रदायों में उनका नेतृत्व करने वाले पीर-फकीरों, सन्त, महन्तों का एक बड़ा वर्ग होता है, जो एकाकी रहने का अविवाहित समय गुजारने का दम्भ रचता है। इनमें से उँगलियों पर गिनने जितने ही ऐसे होते हैं जो मन, वचन, कर्म से वास्तविक ब्रह्मचर्य का पालन करें। शेष उसमें कहीं न कहीं के छिद्र ढूँढ़ लेते हैं। भेद प्रकट होने पर निन्दा होती है। चर्चा का विषय बनता है। तब एक घोंसले को खाली करके दूसरे जंगल में दूसरे पेड़ पर दूसरा घोंसला बनाते हैं। ऐसे ही उजड़ते-बिगड़ते खेल चलते रहते हैं और वह प्रसंग गौण हो जाता है जिसके लिए उनने अपने को समर्पित करने की घोषणा की थी।

इस विडम्बना की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि लोकसेवी, धर्मसेवी, नर-नारी कार्य संलग्न तो उसी निश्चय से रहें, पर अपने साथी तलाश कर लें। प्राचीनकाल के प्रायः सभी ऋषि-मुनि जोड़ियों में रहते थे। कबीर ने तत्कालीन पाखण्ड को उखाड़कर अपनी पत्नी तलाश ली थी। रामकृष्ण परमहंस भी विवाहित थे। देवताओं में से प्रायः शत-प्रतिशत गृहस्थ हैं। जापान के गाँधी, कागावा ने लोकसेवा का व्रत लिया था, पर उनकी पत्नी सहेली के रूप में उनके कार्य में निरन्तर हाथ बँटाती रही। जिनमें साहस रहा है। अन्तर और व्यवहार को एकाकार बनाकर जीवनयापन करने की हिम्मत रही है, उनने अपने को विशिष्ट प्रदर्शित करने की अपेक्षा सामान्य रहने में सत्य का निर्वाह अधिक अच्छी तरह होते देखा और जोड़ा बना लिया। यदि धर्माचार्यों के मन को परखा जाय और परम्परा के आडम्बर को महत्वहीन होने का तथ्य समझाया जाय तो अपने जैसी आयु तथा भावना वाले साथी आसानी से ढूँढ़ सकते हैं और अपेक्षाकृत अधिक अच्छा और अधिक मात्रा में काम कर सकते हैं। सिख धर्म में गुरुओं की परम्परा के साथ गृहस्थ जीवन जुड़ा रहा है। अच्छा हो अन्य वर्गों के सन्त भी इसी रीति-नीति को अपनायें और निरर्थक आडम्बर को उतार फेंके। 'संभोग से समाधि' की सरंचना करने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि साथी, सेक्रेटरी आदि जो भी नाम रखें पर दाम्पत्य व्यवस्था बनाकर उन लाभों से लाभान्वित हों जो एक सद्गृहस्थ को सुख-दुःख में साथ देने वाले मित्र के रूप मे मिलते हैं।

कार्य में रुकावट तब पड़ती है जब बाल-बच्चों का दायित्व सिर पर आता है और उसे निबाहने के लिए हजार प्रपंच रचने पड़ते हैं। अब यह पूर्णतया संभव है कि बिना बच्चों का वैवाहिक जीवन चल सके। मनीषियों, लोकसेवियों, समाजसुधारकों, धर्मोपदेशकों को ऐसे ही विवाह करने चाहिए। उन्हे ब्रह्मचर्य की परिभाषा बच्चे न उत्पन्न करने के रूप में करनी चाहिए। पत्नी हाथ बँटाती है, पर बच्चे जनने के उपरान्त वह भी निरर्थक हो जाती है और पति को भी भोंड़े तरह के जंजाल में जकड़ देती है। जिनके सामने कोई उद्देश्य नहीं है उन्हें खाली बैठे रहने की अपेक्षा बच्चे पैदा करने और पालने में लगे रहना भी एक मनोरंजक काम है।

आदर्शवादी उद्देश्यों के लिए लोक-मंगल निरत हल्का-फुल्का जीवनयापन करना ही ब्रह्मचर्य का मूलभूत उद्देश्य है। इसके लिए यदि नर या नारी को अपना साथी चुनने की आवश्यकता अनुभव हो तो फिर इतना और दायित्व ओढ़ना चाहिए कि साथी की प्रकृति तथा क्षमता के अनुकूल-अनुरूप बनाने के लिए निर्धारण से पूर्व ही समुचित प्रयत्न कर लिया जाय। शोभा या शिक्षा से प्रभावित न होकर यह देखना चाहिए कि आदर्शवादी रीति-नीति के निर्वाह में जिस सादगी, सज्जनता, श्रमशीलता, संतोष भावना की अनिवार्य आवश्यकता पड़ती है, उसके बीजांकुर पहले से ही मौजूद हैं या नहीं। गाड़ी के दोनों पहिये एक लाइन पर चलें तो ही गति बनती है। यदि एक अड़ जाय या उलट जाय तो फिर बात पैदल चलने से भी महँगी पड़ती है। साधारण गृहस्थ जीवन में भी समन्वय और सहयोग की आवश्यकता रहती है फिर आदर्शवादी गतिविधियों में तो कर्त्ताओं को सर्वतोभावेन एकीभूत होना चाहिए। ऐसा विवाह करके सन्तानोत्पादन से बचा रहने वाला विवाह वस्तुतः ब्रह्मचर्य पालन की आवश्यकता ही पूरी करता है।

सन्त परम्परा का ब्रह्मचर्य ऐच्छिक है। उसे बीच में तोड़ा या छोड़ा भी जा सकता है। पर कुछ बाधित ब्रह्मचर्य भी है। उनमें समाज परम्परा एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखना पड़ता है। बड़ी उम्र के विधुर जिनके कई बच्चे भी हैं, इसी प्रकार कई सन्तानों वाली विधवायें, परित्यक्तायें भी असमंजस की स्थिति में रहती हैं। उन्हें बच्चों के हित को ध्यान में रखना पड़ता है। प्रथम तो ऐसे जिम्मेदारियों से लदे व्यक्ति के साथ रहने के लिए कोई साथी तैयार ही नहीं होता। दूसरे यदि हो भी जाय और नए साथी से सन्तानें होने लगें तो पिछली और अब की सन्तानों के बीच भेद-भाव चल पड़ता है। पैतृक सम्पत्ति को लेकर बँटवारे के प्रश्न पर कलह खड़ा होता है। यह विग्रह सन्तानों की ही नहीं अपने अभिभावकों को भी लपेट में ले लेता है। बच्चे छोटे रहते हैं तब तक गाड़ी चलती रहती है पर जैसे ही वे बड़े होते हैं अभिभावकों से उलझने लगते हैं और आपस में भी कलह से बढ़कर शत्रुता तक जा पहुँचते हैं। आरम्भ में जिस उत्साह से बच्चों को छोटा समझकर उनके भरण-पोषण के लिए सहायता तलाशने की दृष्टि से विवाह किया था, वह ही कुछ समय उपरान्त पश्चाताप का कारण बनता है। गुत्थी सुलझने की अपेक्षा और अधिक उलझ जाती है।

इस प्रकार के विवाह जहाँ करने ही पड़े वहाँ यह पहले से ही निश्चय कर लेना चाहिए कि दूसरे पति या पत्नी से नई सन्तान न पैदा की जायगी। विधवा और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विधुरों के लिए ब्रह्मचर्य पालन की परम्परा है। यदि व्यक्ति साथ-साथ सहयोगी के रूप में रहें किन्तु सन्तानोत्पादन न करें तो बात निभ सकती है, गाड़ी चलती रह सकती है।

ऐसे विवाह सेवक या सेविका नियुक्ति के रूप में भी हो सकते है। निर्धारित वेतन मिलते रहने पर समयानुसार कुछ पूँजी जमा हो जाती है और उससे उस समय का सहारा हो सकता है जब घर के कलह से दोनों को अलग होना पड़े। अथवा स्वयं ही घर छोड़कर अपना स्वतन्त्र ठिकाना बनाना पड़े। वृद्धावस्था के लिए हर समझदार आदमी को ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिए जिससे उन्हें बालकों पर आर्थिक दृष्टि से बोझ बन कर न रहना पड़े। जो लोग हाथ खाली करे पूरी तरह सन्तान पर आश्रित हो जाते हैं उन्हें सन्तान की बेरुखी और उनकी पत्नियों की तानेकशी शूल के समान चुभती हैं। पर मन मसोस कर बैठा रहने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता। अच्छा हो कि सामने आने से पहले ही इस कठिनाई से बचे रहने का मार्ग मोड़ लिया जाय।

परित्यक्ताओं और विधवाओं की स्थिति प्राय: समान होती है। बच्चों का प्रश्न उनके भी आड़े आता है। उनके साथ बच्चे भी भगा दिये जाते हैं। कभी-कभी उन्हें छीन लिया जाता है। दोनों ही परिस्थितियों में उनका मन कचोटता रहता है। पाश्चात्य देशों में सरकारी बालगृहों में अनाथ सन्तान के भरण-पोषण की व्यवस्था है, पर भारत में ऐसे कुछ नहीं है। मातायें अपने बलबूते पर उन्हें सुयोग्य, स्वावलम्बी नहीं बना पातीं। ऐसी दशा में उन्हें बाल श्रमिक-बाल अपराधी या आवारा, भिक्षुक बनना पड़ता है।

अच्छा हो जिनकी सन्तानें नहीं है, जो उत्तराधिकार में सम्पदा सौंपने के लिए किसी सम्बन्धी का बच्चा गोद रखना चाहते हैं, वे अपना दृष्टिकोण बदलें और वंश चलाने, बुढ़ापे का सहारा ढूँढ़ने की अपेक्षा किन्हीं अनाश्रित बालकों को स्वावलम्बी, सुशिक्षित बनाने के लिए अपने पास रख लें और परमार्थ भाव से उनका भरण-पोषण करें।

अपने देश में नारी की दयनीय दशा को देखते हुए ऐसी परमार्थिक संस्थाओं की अतीव आवश्यकता है जो अनाश्रित महिलाओं विशेषकर उनके बालकों के भरण-पोषण की व्यवस्था करें। गौशाला चलाने की अपेक्षा यह पुण्य-परमार्थ किसी भी प्रकार कम सहृदयतापूर्ण नहीं है।

जिन विधवाओं या विधुरों की सन्तान नहीं हैं, उनके विवाह तो परस्पर किसी प्रकार हो भी सकते हैं। पर असली कठिनाई उन परित्यक्ताओं, विधवाओं के सामने है जिन्हें अनाथ होते समय कोई पूँजी नहीं मिली। वरन् बच्चों का दायित्व कन्धे पर आया है। उनके लिए ऐसे महिलाश्रयों की उदारचेताओं को व्यवस्था करनी चाहिए, जहाँ रह कर वे कुछ उद्योग कर सकें और अपने बालकों का पाल सकें। जहाँ ऐसी आशंका हो, वहाँ महिलाओं को पहले से ही सतर्क रहना चाहिए कि उन पर कम से कम सन्तान का दायित्व तो न लदे। निर्धन लोगों को जो नित्य कमाते नित्य खाते हैं। सन्तानोत्पादन को एक अपराध मानकर उससे बचना चाहिए।

सुसंतति प्राप्ति के शाश्वत सिद्धान्त

बाल मनोवैज्ञानिक डा. फाउलर अपनी पुस्तक में लिखते हैं—'मैं एक दिन टहलने जा रहा था। रास्ते में मुझे दो स्वस्थ, सुन्दर बच्चे दिखायी पड़े। खिलते हुए फूलों जैसी उनके चेहरे पर रौनक थी। दोनों ही प्रकृति की सुन्दरता, प्रात:कालीन पक्षियों की चहचहाहट, भौरों के गुँजन का मन्त्र-मुग्ध बने दर्शन कर रहे थे। निकटवर्ती उद्यान के, सौन्दर्य के खिले रंग-बिरंगे पुष्पों के सौन्दर्यावलोकन में वे इस तरह लीन थे कि आस-पड़ौस तक की भी खबर नहीं थी। दोनों की आयु मात्र १० और १२ के लगभग थी। फूलों की सुन्दरता के दर्शन के साथ-साथ वे प्रकृति विषयों पर आपस में अपने बौद्धिक स्तर के अनुरूप चर्चा भी करते जा रहे थे। जाने क्या विशेषता थी कि मैं भी उन्हें देखते ही आकर्षित होकर उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। उनकी चर्चाएँ सुनने का लाभ इसीलिए निकट से मिल रहा था। उनके वार्तालाप में बालसुलभ जिज्ञासा के साथ प्रश्नोत्तरों में तर्क एवं तथ्य का समावेश था। विलक्षण बात यह थी एक प्रश्नोत्तर क्रम में दोनों ही बच्चे परस्पर एक दूसरे के सम्मान का पूरा ध्यान रखते थे। शिष्टता, सौम्यता, सौजन्यता उनके हर क्रिया-कलाप में टपक रही थी। उन बच्चों के विषय में अधिक जानने की मेरी इच्छा बढ़ी। इतने में छोटे ने बड़े बच्चे को याद दिलाया कि 'मौर्निंग वाक' का समय पूरा हुआ। अब वापस घर पहुँचना चाहिए और दोनों ही तुरन्त चल पड़े। मैं भी उनके पीछे चला ताकि यह पता लगा सकूँ कि स्वास्थ्य, प्रतिभा, जीवट एवं सुसंस्कारिता से सुसम्पन्न इन बालकों के अभिभावक कौन हैं ?

उनके माता-पिता से मैंने अनेकों प्रश्न पूछे जो बालकों के विकास से सम्बन्धित थे। उत्तर में यह बात मालूम हुई कि जन्म के बाद बच्चों के स्वास्थ्य, संरक्षण, आयु बढ़ने पर उन्हें समय के सदुपयोग, नियमित दिनचर्या, शिष्टता, शालीनता जैसे सद्गुणों के औपचारिक शिक्षण के अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण बात माँ के गर्भकाल की मन:स्थिति थी, जो प्रसन्नचित, प्रफुल्लित रहकर तथा मस्तिष्क में अभीष्ट स्तर की सन्तान को जन्म देने की प्रबल इच्छा के कारण अपने लक्ष्य में सफल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

हुई। डा. फाउलर लिखते हैं कि बालकों के माता-पिता में अगाध प्रेम एवं सहकार की भावना थी। उनका स्वयं का जीवन इतना पवित्र, संयमित एवं सुसंस्कारी था कि बच्चे को भी उसी के अनुरूप गर्भकाल में संस्कार मिले जो बाद में अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर विकसित होते गये।

डॉ. फाउलर के सम्पर्क में मन:चिकित्सा के लिए एक बालक आया जो अत्यन्त दुर्बल तथा मन्दबुद्धि था। जबकि उसके माता-पिता पूर्णतया स्वस्थ एवं नीरोग तथा मेधावी थे। हर तरह की भौतिक सुविधायें होते हुए भी बच्चे का शारीरिक एवं बौद्धिक विकास समुचित रूप से नहीं हो पा रहा था। डाक्टर ने गर्भकाल की हिस्ट्री मालूम की तो विदित हुआ कि पति-पत्नी के बीच लम्बे समय तक अनबन बनी रही। गर्भिणी की मन:स्थिति उस समय चिन्ता, आशंका, भय, आवेश से बुरी तरह ग्रस्त थी जिसने गर्भस्थ शिशु के कोमल तन्तुओं को असाधारण रूप से दुष्प्रभावित किया। डा. फाउलर ने उपचार के लिए एक ही परामर्श दिया कि दोनों सर्वप्रथम अपने सम्बन्धों को माधुर्यपूर्ण बनायें तथा वह दृश्य सामने न आने दें जो बालक की भावनाओं को ठेस पहुँचाते हों।

भ्रूण शास्त्र के विशेषज्ञ डॉ. डे ने गर्भस्थ शिशु के विकास के लिए आहार-विहार को एक सीमा तक ही महत्व दिया है। वे कहते हैं कि गर्भ में पल रहे शिशु के समुचित विकास के लिए गर्भिणी का खान-पान पौष्टिक, सात्विक होना जितना आवश्यक है उससे भी जरूरी यह है कि उसे अपनी मन:स्थिति सन्तुलित प्रसन्न चित्त एवं उत्कृष्ट स्तर की रखने हेतु अनुकूल वातावरण मिले। वातावरण से उनका अभिप्राय दाम्पत्य जीवन के सम्बन्धो तथा उस परिकर से जिसमें वह रहती है। डॉ. डे. का मत है कि माता-पिता के सम्बन्ध जितने अधिक घनिष्ठ तथा माधुर्य पूर्ण स्नेहसिक्त होंगे, गर्भ में पलने वाला शिशु उतना ही अधिक मनोवैज्ञानिक पोषण प्राप्त करेगा। फलत: जन्म के उपरान्त ऐसे बच्चे उत्साही स्फूर्तिवान और मेधावी होते हैं। यों तो परिवार में अन्य सदस्य भी होते हैं पर पति-पत्नी के आपसी सम्बन्ध एवं उनकी स्थिति सर्वाधिक गर्भ में पल रहे शिशु पर प्रभाव डालते हैं। पति-पत्नी के बीच आकर्षण परिवार के अन्य सदस्यों की तुलना में कहीं अधिक होता है। पत्नी को स्नेह प्यार की अपेक्षा भी पति से ही अधिक रहती है। वह अमृत मिलता रहे तो वह परितृप्त रहती, मानसिक दबावों एवं कुण्ठाओं से बची रहती है। अभावों के बीच रहते हुए भी सन्तुष्ट मन: स्थिति अभीष्ट स्तर की सन्तान जनने में समर्थ है, जबकि हर तरह की भौतिक सुविधाओं के रहते हुए भी, ''माँ की विक्षुब्ध मन:स्थिति के कारण जन्मने वाली सन्तानें कमजोर, रुग्ण, मन्दबुद्धि होती है। गर्भस्थ शिशु माँ के उदर से न केवल शारीरिक पोषण अपने लिए प्राप्त करता है वरन् भावनाओं में घुले विष अथवा अमृत को भी खींचता रहता है। यह विशेष अनुदान नारी को अपने पति से प्राप्त होता है। अस्तु पति से मिलने वाला स्नेह न केवल गर्भिणी की स्वस्थ मन:स्थिति का निर्माण करता है वरन् वह गर्भ में पल रहे शिशु पर भी अनुकूल प्रभाव डालता है।

प्रख्यात मन:शास्त्री डा. बेवर कहते हैं कि दाम्पत्य जीवन की सरसता और सफलता उत्तम, स्वस्थ एवं सुसंस्कारी सन्तति को जन्म देती है। डा. बेवर ने अपने एक सर्वेक्षण के उपरान्त निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि श्रेष्ठ, नीरोग एवं बुद्धिमान सन्तान की आकांक्षा जिन्हें हैं उन्हें सर्वप्रथम अपने दाम्पत्य जीवन को माधुर्यपूर्ण बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। डा. बेवर कहते हैं कि ''मैंने अनेकों परिवारों का अध्ययन गहराई से किया है। उसके आधार पर इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि बच्चे को भला-बुरा बनाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका माता-पिता की होती है। बनाने-बिगाड़ने की यह भूमिका जन्म के बाद नहीं गर्भकाल से ही आरम्भ हो जाती है। यह अवधि शिशु के विकास की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है।''

जिन्हें स्वस्थ, श्रेष्ठ एवं सुसंस्कारी सन्तान की आकांक्षा है, उन्हें इसकी पृष्ठभूमि शिशु के जन्म के बाद से नहीं पूर्व से बनानी चाहिए। भारतीय संस्कृति की यह चिरपुरातन मान्यता है कि अभीष्ट स्तर की सन्तति जनने के लिए माता-पिता को उसी स्तर की मनोभूमि बनानी चाहिए तथा तप की प्रक्रिया अपनानी चाहिए। सूक्ष्म संस्कार गर्भ में पल रहे शिशु पर डालने के लिए अनेकों प्रकार के संस्कारों को निर्धारण किया गया था। शिशु निर्माण के वह पुरातन सिद्धान्त आज भी शाश्वत हैं, जिनका अवलम्बन लेकर गर्भस्थ शिशु पर अनुकूल प्रभाव डाला जा सकता है।

उत्तम संतान कैसे प्राप्त हो ?

बालक के शरीर की उत्पत्ति माता-पिता के शरीर से होती है। जैसी खरी-खोटी धातु लगाई जायगी वैसा ही बर्तन बनेगा। जैसे ईंट-चूने का प्रयोग होगा वैसा ही मकान बनेगा। यदि माता-पिता के शरीर स्थूल या सूक्ष्म् रोगों सें ग्रसित हैं तो सन्तान पर भी उसका प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

शरीर-शास्त्र के ज्ञाता येह भली-भाँति जानते हैं कि कितने की रोग ऐसे हैं जो पीढ़ियों तक चलते हैं। कुष्ठ, उपदंश, मृगी, उन्माद, अर्श, क्षय आदि के बीजाणु माता-पिता के शरीर में विद्यमान हों तो बहुधा उनका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

प्रभाव सन्तान में भी देखा जाता है। माता-पिता के रंग-रूप की छाया भी बालकों पर रहती है। गोरे या काले माता-पिता की सन्तान प्राय: अपने माता-पिता के रंग की ही होती है। माँ बाप के शरीर की कृशता या स्थूलता भी बालकों पर प्रकट होती देखी गई है।

वेष, भाषा, संस्कृति, रुचि, आहार-विहार आदि बातों में भी बच्चे अपने माँ-बाप का अनुसरण करते हैं। छोटा बालक माँ के उदर में ही उन बातों के बहुत कुछ संस्कार ग्रहण कर लेता है और जन्म धारण के पश्चात् उन बातों को सहज ही अपनाने लगता है। इस प्रकार शारीरिक और मानसिक दृष्टि से बालक सत्तर प्रतिशत अपने जन्मदाता शरीरों की प्रतिमूर्ति होता है। वंश, जातियाँ, नस्ल, वर्ण आदि विभागों के मूल में यही तत्व काम करता है। यदि माता-पिता का प्रभाव सन्तान पर न आता तो इस प्रकार का वर्गीकरण दृष्टिगोचर न होता और नीग्रो, चीनी, पंजाबी, बंगाली, मद्रासी, यूरोपियन आदि जातियों में जो आकृति, रंग, स्वभाव आदि का अन्तर दिखाई पड़ता है वह भी न दीखता।

पिता-माता के शरीर, स्वभाव और प्रवृत्तियों का अनुसरण प्राय: अन्य सभी जीव-जन्तुओं की भाँति मनुष्य जाति में भी होता है। साथ ही मनुष्य के मानसिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों का उत्तराधिकार उसके आत्मजों को मिलता है। हम माता-पिता के धन-सम्पत्ति एवं यश-अपयश के ही नहीं उनकी आंतरिक विशेषताओं, आध्यात्मिक संपदाओं के भी उत्तराधिकारी होते हैं। उत्तम ब्राह्मण कुल में बहुधा सात्विक कुल के बालक जन्मते हैं और बधिक, म्लेच्छ एवं कसाइयों के घरों में वैसी ही प्रकृति के बच्चे जन्मते और बनते हैं।

यों हर जीव अपने पूर्व जन्मों के स्वतन्त्र संस्कार और प्रारब्ध साथ लाता है। इसलिए कभी-कभी सन्तान माता-पिता से भिन्न स्वभाव की होती देखी गई हैं, पर ऐसा होता अपवाद स्वरूप ही है। अधिकांश बच्चे अपने जन्मदाताओं के गुण, कर्म, स्वभाव के होते हैं। भारतीय वर्ण व्यवस्था में इस तत्व को प्रमुख आधार मानकर जन्म एवं वंश को प्रधानता दी गई है। एक शरीर त्याग कर जीव एक दूसरे शरीर में आने को होता है, तो वह अपनी संचित रुचि और प्रवृत्ति के अनुकूल स्थान को ढूँढ़ता है। रेलगाड़ी के फर्स्ट क्लास डिब्बे में यात्रा करने वाले यात्री स्टेशन पर उतर कर फर्स्ट क्लास के यात्रियों के लिए बने हुए विशेष मुसाफिरखाने में चले जाते है और तीसरे दर्जे में यात्रा करने वाले उसी दर्जे के निमित्त बने हुए मुसाफिरखाने में जा बैठते हैं। वैसे ही जीव भी अगले जन्म के लिए अपने उपयुक्त वंश में जा पहुँचता है। आकाश में उड़ते हुए पक्षी तथा कीट-पतंग अपनी रुचिकर वस्तुओं को ढूँढ़ते फिरते हैं और जब अनुकूल-अभीष्ट वस्तु मिल जाती है तब उसे प्राप्त करने के लिए नीचे ऊपर आते हैं। गिद्ध मृत माँस को, कौए विष्ठा को, भौंरा फूलों को, बाज चिड़ियों को ढूँढ़ते फिरते हैं। जहाँ उनकी मनचाही वस्तु दिखाई देती है वहीं उतर पड़ते हैं। जीवों को प्रारब्ध तो अपने कर्मानुसार ही भुगतने पड़ते हैं, जो हर कुल और वंश में भुगते जाने संभव हैं, पर जन्म लेने के लिए वे अपनी पूर्ण संचित रुचि के अनुकूल स्थिति ही ढूँढ़ते हैं और दयामय प्रभु उन्हें इच्छित वातावरण में ही जन्मने का अवसर प्रदान कर देते हैं।

माता-पिता की जैसी आध्यात्मिक भूमिका होती है, उसी के अनुरूप प्रारब्ध संस्कार वाले जीवन उनके शरीर में प्रवेश करके उस वातावरण में जन्म धारण करते हैं। इसलिए यदि अपने घर में उत्तम संतान को जन्म देना है तो उसके लिए अपने आपको उत्तम बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जो लोग स्वयं पतित दशा में हैं, जिनकी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्थिति गिरी हुई है, उनकी सन्तान भी दीन-हीन ही रहेगी।

कहा गया है कि संतान के कारण उसके पितरो को नरकगामी होना पड़ता है। कारण स्पष्ट है। संतान को समुचित पूर्ण तैयारी के बिना ही उत्पन्न कर डालना एक भारी पाप है, जिसका दण्ड उसे पारलौकिक जीवन में तो मिलता ही है, लौकिक जीवन में भी उसकी कम दुर्गति नहीं होती। सन्तान की हीनता और नीचता से जो अनुचित कार्य होते हैं, उनसे माता-पिता की भी निन्दा होती है क्योंकि वे सुयोग्य सन्तान उत्पन्न करने का अपना उत्तरदायित्व पूरा करने में सफल न हो सके। जो व्यक्ति अनाधिकार चेष्टा करते हैं। वे निन्दा के पात्र होते हैं। मनुष्योचित गुण जिसमें न हो वह तो पशु ही है। पशुओं की भाँति केवल काम प्रेरणा से गर्भाधान में प्रवृत्त हो जाना और एक असंस्कृत जीवन उत्पन्न कर देना पशु प्रवृत्ति है। यह मनुष्यता के प्रति, देश और जाति के प्रति एक अपराध भी है, क्योंकि उनके पाशविक उद्देश्य के फलस्वरूप जो बालक उपजते हैं, संसार के लिए अहितकर और अवांछनीय कार्य करते हैं। उनसे पृथ्वी का बोझ बढ़ता है और संसार में अनीति तथा अशांति की वृद्धि होती है। इस गड़बड़ी की जिम्मेदारी उन माता-पिता पर है जो संतानोत्पति का महान् उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने से पूर्व उसकी भावी संभावनाओ पर विचार नहो करते। ऐसी गैर जिम्मेदारी किसी व्यक्ति की लौकिक और पारलौकिक दुर्गति का ही कारण हो सकती है। ऐसे पिता नरकगामी नहीं होंगे तो क्या स्वर्गगामी होंगे ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आज हमारे परिवार क्लेश और कलह से भर रहे हैं। उनमें प्रधान कारण असंस्कृत संतान है। घर के मुखिया एवं बड़े-बूढ़े, छोटों की उद्दण्डता, उच्छृंखलता, अनुशासनहीनता, चोरी, स्वार्थपरता, अशिष्टता से परेशान देखे जातें हैं। स्कूलों में अध्यापक सिर धुनते हैं, घर में अभिभावकों की आँतें-पीतें जलती हैं। क्या लड़कियाँ क्या लड़के सभी की चाल बेढंगी है। जब तक बचपन रहता है तब तक उद्दण्डता करते हैं, कुछ समझदार होते हैं तो वासना और विलासिता की ओर झुक पड़ते हैं, बड़े होने पर उनकी कार्य-पद्धति स्वार्थपरता से ओत-प्रोत हो जाती है। माता-पिता के लिए, संस्कृति के लिए, मनुष्यता के लिए यह अभिशाप ही सिद्ध होते हैं। हमारी नई पीढ़ियाँ इसी मार्ग का अनुसरण कर रही हैं। कोई बिरले ही भाग्यशाली घर ऐसे होंगे जिनमें कर्तव्य पालन, शिष्टाचार, सद्भावना, सेवा, त्याग, आत्मीयता एवं सदाशयता का अमृत बरसता हो। प्राचीनकाल में जो स्थिति घर-घर थी वह आज कहीं दिखाई नहीं पड़ती, जो बातें पूर्व काल में कहीं नहीं देखी जाती थीं वे घर-घर में मौजूद हैं। परिस्थितियों में इतना भारी परिवर्तन हो जाने के कारणों में सबसे बड़ा कारण माता-पिता की गैर जिम्मेदारी है, जो संतानोत्पति के लिए आवश्यक योग्यता प्राप्त किये बिना इस भारी उत्तरदायित्व को कंधे पर उठाने का दुस्साहस कर बैठते है। इन्हीं भूलों के कारण आज हमारा पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन विषाक्त बनता चला जा रहा है।

हमे नीतिवान् एवं चरित्रवान् होना चाहिए क्योंकि यह जीवन-यापन की सर्वोत्तम नीति है। हमें अपने गुण, कर्म और स्वभाव को उत्तम बनाना चाहिए। क्योंकि यह सफलता, समृद्धि और उन्नति का सुपरिचित मार्ग है। हमारा यह कर्तव्य है कि हम अपनी मनोभूमि को, अपने दृष्टिकोण को, अपनी विचारधारा को, अपनी कार्य पद्धति को उच्चकोटि के आदर्शों से ओत-प्रोत करें, क्योंकि इस मार्ग पर चल कर लोक और परलोक की सुख-शांति संभव है। आज कुपात्र संतान की बाढ़ आई हुई है और सम्पन्न संतति के दर्शन दुर्लभ हो रहे हैं। यदि हम श्रेष्ठ और सुखी परिवारों का निर्माण चाहते हैं तो हमें इस परिस्थिति को बदलना ही पड़ेगा।

अभ्यागत आत्मा के स्वागत की तैयारी

महाभारत में एक कथा आती है कि एक बार कुपित होकर अश्वत्थामा ने उत्तरा के गर्भस्थ शिशु (परीक्षित) पर आग्नेयास्त्र प्रयोग किया। परीक्षित माँ के उदर में ही असह्य पीड़ा से जलने लगा। माँ ने भी उसे जाना। उन्होंने सम्पूर्ण समर्पण भाव से परमात्मा का स्मरण किया तब उस बच्चे की रक्षा हो पाई।

गर्भस्थ शिशु को कोई अस्त्र तब तक नहीं छेद सकता जब तक माँ का शरीर न छिदे। दरअसल आग्नेयास्त्र मन्त्र शक्ति थी, जो संकल्प शक्ति के द्वारा चलाई गई थी। बाहरी व्यक्ति द्वारा दूर से संकल्प प्रहार से यदि गर्भस्थ बच्चा जल और मर सकता है और फिर परमेश्वर के प्रति अटल विश्वास और रक्षा की भावना से उस बच्चे को बचाया जा सकता है तो उसके शरीर और मनोभूमि में भी इच्छानुवर्ती परिवर्तन लाया जा सकता है।

सती मदालसा के बारे में कहा जाता है कि 'वह अपने बच्चे के गुण, कर्म और स्वभाव की पूर्व घोषणा कर देती थीं फिर उसी प्रकार निरन्तर चिन्तन, क्रिया-कलाप, रहन-सहन, आहार-विहार और व्यवहार-बर्ताव अपनाती थीं, जिससे बच्चा उसी मनोभूमि में ढल जाता था, जिसमें वह चाहती थी। इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि उनके पले सभी बच्चे ज्ञानी, सन्त और ब्रह्मनिष्ठ होते गये। अजात-शत्रु की प्रार्थना पर उन्होंने अन्तिम गर्भस्थ बच्चे को राजनेता के अनुरूप ढाला। उसी ने पिता का राज्य-सिंहासन सम्भाला और कुशल राजनीतिज्ञ हुआ।

आयुर्वेद के विशेष ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में भी आया है—**'पूर्व पश्ये ऋतुस्नना या दर्शं नर मंगला। तादृश्य जनयेत्पुत्र भर्तारं दर्शये तत।'** अर्थात्—ऋतु स्नान के पश्चात् स्त्री जिस प्रथम पुरुष को देखती है, बच्चे का रूप-रंग और मुखाकृति उसी जैसा होता है, इसलिये वह सर्व-प्रथम अपने पति का दर्शन करे।

यह सभी तथ्य भावना विज्ञान से सम्बन्धित है, इस लिये प्रत्यक्ष न दिखाई देने पर भी उनकी सत्यता में कोई सन्देह नहीं है। यह बात अब पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिक, डाक्टर और दूसरे प्रबुद्ध व्यक्ति भी मानने लगे हैं। डा. फाउलर ने इस सम्बन्ध में काफी खोज की है, गर्भावस्था में भी गर्भिणी के हाव-भाव का बच्चे के शरीर और मन पर कैसा प्रभाव पड़ता है, इस सम्बन्ध में उनके कई प्रमाण हैं।

प्रत्यक्षदर्शी घटना का वर्णन करते हुए फाउलर लिखते हैं—''एक स्त्री अपने बच्चे को नींद लाने वाली गोली देकर किसी आवश्यक कार्य से बाहर चली गई। लौटने पर वह बच्चा मरा पाया। स्त्री को इससे बहुत दुःख हुआ और वह शोक-मग्न रहने लगी। उसी अवस्था में उसने दूसरी बार गर्भधारण किया। पहले बच्चे के प्रति उसका शोक ज्यों का त्यों बना रहा, इसलिये दूसरा लड़का रोगी हुआ। दूसरे वर्ष ही उसकी मस्तिष्क रोग से मृत्यु हो गई। अब वह और दुखी रहने लगी। इस अवस्था में तीसरा पुत्र हुआ, वह हठी, सुस्त और कमजोर हुआ। दाँत निकलते समय उसकी भी मृत्यु हो गई। चौथा पुत्र भी ऐसे ही गया। किन्तु पाँचवी बार उसकी परिस्थितियों में सुखद परिवर्तन आये, जिससे उस स्त्री की मानसिक प्रसन्नता बढ़ी। वह पहले की तरह हँसने खेलने लगी। इस बार जो बच्चा हुआ वह पूर्ण स्वस्थ, नीरोग और कुशाग्र बुद्धि का हुआ।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

डा. फाउलर का मत है कि क्रोध, आश्चर्य, घृणा, अहंकार, गम्भीरता आदि के अवसर पर माता की नासिका मुख और आकृति में जैसे परिवर्तन, उठाव, गिराव होते हैं, वैसे ही बच्चे की नाक, मुँह, माथे आदि अवयवों की शक्ल भी बनती है। गर्भाधान के बाद स्त्री प्रसन्न नहीं रहती, शोक या चिन्ताग्रस्त रहती है, तो बालक के मस्तिष्क में पानी की मात्रा बढ़ जाती है। यदि ४ वर्ष के बच्चे सिर का व्यास बीस इन्च से अधिक हो तो मानना चाहिये कि वह जल-संचय का शिकार हुआ है, उसकी माँ गर्भावस्था में दुखी रही है।

भय, विक्षेप, अशुभ चिन्तन, उत्तेजना से जिस तरह अंगों में भद्दापन, बेडौल और खराब मुखाकृति बनती है, उसी तरह शुभ-संकल्प और प्रसन्नतापूर्ण विचारों से बच्चा स्वस्थ, सुन्दर और चरित्रवान् बनता है। इसीलिये कहा जाता है—गर्भावस्था में माँ के सत्य भाषण, उत्साह, प्रेम, दया, सुशीलता, सौजन्य, धर्माचरण और ईश-भक्ति का अनुगमन करना चाहिए। यह बच्चे होनहार और प्रतापी होते हैं, जबकि क्रोध, ईर्ष्या, भय, उद्विग्नता आदि अधम वृत्तियों के बच्चे भी अधम, उत्पाती और स्वेच्छाचारी होते हैं। गलत खान-पान भी उसमें सम्मिलित है।

इसके अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण बातें गर्भस्थ शिशु को प्रभावित करती हैं, उनमें से वातावरण मुख्य है। ध्रुव ऋषि-आश्रम में जन्मे थे। उनकी माँ सुनीति बड़ी नेक स्वभाव और ईश्वरभक्त थीं। ध्रुव के महान तेजस्वी होने में वातावरण भी मुख्य सहायक था, जबकि उत्तानपाद के दूसरे बेटे में वैसी तेजस्विता न उभर सकी।

एक पाश्चात्य डा. ने वातावरण के प्रभाव का अध्ययन इस प्रकार किया—एक बार एक कमरे का फर्श और दीवार सबको नील-पोत कर नीला कर दिया। उस कमरे में श्वेत रंग के खरगोश का एक जोड़ा रखा गया। कुछ समय बाद खरगोश के दो बच्चे हुए, दोनों के बालों में नीले रंग की झलक थी। इससे पता चलता है कि बच्चे के मस्तिष्क में ही नहीं वातावरण का सूक्ष्म प्रभाव स्थूल अंगों पर भी पड़ता है। गर्भवती का निवास ऐसे स्थान पर होना चाहिए, जहाँ चारुता हो, मोहकता और आकर्षण हो। हरे बगीचों, केले, फलों आदि से घिरे स्थान, देवस्थान और विशेष रूप से सजे-सजाये, साफ-सुथरे स्थान गर्भस्थ बच्चों पर सुन्दर प्रभाव डालते हैं।

वातावरण के साथ-साथ गर्भिणी के साथ व्यवहार बर्ताव और बातचीत भी बहुत सौम्य, शिष्ट और उदार होना चाहिये। क्रोध, मारपीट, धमकाना, डाँटना, दबाकर रखना आदि कुटिलताओं का बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कई बार इस प्रकार के आचरण बहुत ही दु:खदायी और स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। एक बार एक व्यक्ति ने समुद्री यात्रा के दौरान किसी बात से अप्रसन्न होकर अपनी गर्भवती पत्नी को जोर का धक्का मारा। गिरते-गिरते जहाज की जंजीर हाथ में पड़ गई। उससे वह गिरने से संभल गई किन्तु वह व्यक्ति बड़ा क्रूर निकला। उसने छुरे का बार किया, जिससे उस स्त्री की जंजीर पकड़े हुये हाथ की तीन उँगलियाँ कट गईं, वह स्त्री समुद्र में चली गई।

जहाज के चले जाने पर कुछ मल्लाहों ने उसकी रक्षा की। बाद में उस स्त्री को जो सन्तान हुई यह देखकर सब आश्चर्यचकित रह गये कि उसकी तीन उँगलियाँ ही नहीं थीं और वह बालक मानसिक दृष्टि से अपूर्ण, क्रोधी तथा शंकाशील स्वभाव का था।

धमाका पैदा करने वाला ऐसा कोई व्यवहार गर्भवती से नहीं करना चाहिए, जिससे मस्तिष्क में तीव्र आघात लगें। इससे बच्चे के शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

बच्चों के मानसिक निर्माण में माता-पिता की घनिष्ठता, प्रगाढ़-प्रेम, परस्पर विश्वास का सबसे सुन्दर प्रभाव पड़ता है। सच बात तो यह है कि माता-पिता का संकल्प बच्चे को उसी प्रकार पकाता है, जिस प्रकार मादा कछुआ पानी में रहकर रेत में रखे अपने अण्डों को पकाती है। दिव्य गुणों का बच्चे में आविर्भाव ही प्रेमपूर्ण भावनाओं से होता है, इसलिये गर्भावस्था में स्त्री पुरुष को अधिकांश समय साथ-साथ बिताना चाहिये। पवित्र आचरण और प्रगाढ़ मैत्री रखनी चाहिए, ऐसे बच्चे शरीर से ही नहीं मिजाज से भी पूर्ण स्वस्थ होते हैं।

अभीष्ट सन्तति कैसे जन्मे

गर्भावस्था की अवधि में एक दिन महारानी मदालसा ने महाराज से पूछा "आपको कैसा पुत्र चाहिए ?" आश्चर्य व्यक्त करते हुए राजा ने कहा प्रजा को इस समय ऐसे संतों की जरूरत है जो उसे धर्माचरण के लिए प्रेरित कर सके, क्या तुम ऐसी सन्तान पैदा कर सकती हो ? रानी मदालसा ने कहा, "राजन ! यह संभव है। केवल संकल्प की दृढ़ता चाहिए, हर क्षण अपनी विचारणा एवं भावना के साथ वह गर्भस्थ शिशु को ऐसी खुराक पहुँचाती रहीं जिससे अभीष्ट साँचे में ढलने में उसे मदद मिल सके।"

गर्भ की अवधि पूरी हुयी। बालक जन्मा दूध पिलाते समय, लोरी सुनाते समय, झूले में झुलाते समय मदालसा मन ही मन यही भाव संप्रेषित करतीं—"पुत्र ! तू शुद्ध बुद्ध है, निरंजन है, शरीर नहीं आत्मा है। संसार माया है। तू सांसारिक आकर्षणों से विरत रहकर अपने जीवन लक्ष्य की प्राप्ति कर !" समझ आते ही बालक में बीजारोपित संस्कार अंकुरित-पल्लवित एवं पुष्पित होने लगे। संत के लक्षण बालक के आचरण में प्रकट होने लगे।

ऐसे चार बच्चे समय के अन्तराल से पैदा हुए। चारों ही संन्यासी बने। निस्पृह, अनासक्त और वैरागी। राज-पाठ की उन्हें कोई चिन्ता नहीं रहती। धर्म-चेतना का अलख जगाने, पीड़ितो को उठाने की मस्ती में ही वे डूबे रहते। तप-तितीक्षा में, साधना और सेवा में उन्हें जो

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

आनन्द आता उसके समक्ष राज्य के वैभव से मिलने वाला सुख तुच्छ जाना पड़ता।

अब महाराज की चिन्ता बढ़ी। अधेड़ आयु हो चली। चारों बच्चे संन्यासी हो गये, राज्य की देखभाल कौन करेगा ? विपुल वैभव को कौन संभालेगा, इस विषय पर वे जितना सोचते चिन्ता उतनी ही बढ़ती जाती। महारानी पाँचवी बार गर्भवती हुयी थी। इस बार भी यदि बालक संत के संस्कार लेकर पैदा होता तो आशा की ज्योति सर्वदा के लिए बुझ जायेगी तथा शासन की बागडोर किसी दूसरे के हाथों में सौंपनी होगी, यह व्यथा वेदना राजा को खाये जा रही थी।

उनकी हालत अधिक समय महारानी से छुपी न रह सकी। एक दिन वे पूछ ही पड़ीं, ''राजन् ! इन दिनों मैं आप को कुछ अधिक ही चिन्तित-व्यथित देख रही हूँ। आपकी चिन्ता को दूर करने में यह अंकिचन क्या कुछ मदद कर सकती है ?'' थोड़ा सकुचाते हुए राजा बोले ''महारानी में यह अच्छी तरह जानता हूँ कि संत किसी देश की आत्मा होते हैं पर शासन की बागडोर संभालने वाला भी तो कोई चाहिए। मेरी चिन्ता इसलिए बढ़ती जा रही है कि भविष्य में इस राज्य का संचालन करने वाले समर्थ हाथ नहीं दिखायी पड़ते।''

अब महारानी ने अपनी विचारणा एवं भावना को नयी दिशा में मोड़ा। गर्भस्थ शिशु को सम्राट बनाने की तैयारी चलने लगी। आहार-विहार से लेकर चिन्तन विचारणा सभी में यह भाव समाया रहता है कि गर्भ में पल रहे शिशु को शासक बनाना है। महारानी स्वयं भी अपना अधिकांश समय ऐसे कार्यों में व्यतीत करती थीं जिससे वीरोचित भावों को पुष्टि मिल सके। घुड़सवारी करना, तीरंदाजी करना, वीरता की गाथाएँ सुनना उनकी दिनचर्या की अंग बन चुकी थी। चिन्तन के एकान्त क्षण ऐसे ही भावों को संप्रेसित करने में व्यतीत होते थे जिससे भीतर पल रहे शिशु को साहस एवं पराक्रम के गुणों का पोषण मिल सके।

निश्चित समय पर शिशु का जन्म हुआ। उसका देदीप्यापन चेहरा ही उसकी तेजस्विता का परिचय दे देता था। बालक बढ़ने लगा। आरोपित संस्कारों को अनुकूल वातावरण में पोषण मिला। प्रशिक्षण की समग्र व्यवस्था बनी। सम्राट के योग्य सभी गुणों को पाकर राजा ने संन्यास ग्रहण कर तप हेतु प्रस्थान कर दिया। सचमुच ही संकल्पनिष्ठ माताएँ मनचाही संतान को जन्म दे सकने में पूरी तरह समर्थ हैं।

मनचाही सन्तान प्राप्त करें

माँ के चिन्तन एवं आचरण का गर्भस्थ शिशु पर गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रायः पोषक आहार पर अधिक जोर दिया जाता है। समझा और समझाया यही जाता है कि भ्रूण में पल रहे नवजात शिशु के समुचित पोषण के लिए यह जरूरी है कि माँ को पर्याप्त पोषक तत्व मिलता रहे। यह उचित है और आवश्यक भी। माँ के उदर से भ्रूण अपने योग्य सीधी खुराक प्राप्त करता है। पोषक तत्व उचित परिमाण में मिलते रहने से भ्रूण का विकास समग्र रूप से होता रहता है। अस्तु, आहार मे उन तत्वों का समावेश करना चाहिए। पर इस तथ्य की भी उपेक्षा नहीं होनी चाहिए कि माँ के उदर में पल रहा शिशु उसकी विचारणा से असाधारण रूप से प्रभावित होता है, भ्रूण की काया जितनी कोमल होती है उतनी ही संवेदनशील भी। गर्भिणी का भला-बुरा चिन्तन शिशु की संवेदनशील स्थिति पर तदनुरूप प्रभाव छोड़ता है। प्रकृति ही नहीं ढल रही आकृति पर भी माँ के मनःस्थिति का, उभरने वाले उतार-चढ़ावों का हर्ष या शोक का, मानसिक संवेगों का असर पड़ते देखा गया है।

नवागन्तुक शिशु के विकास के लिए माँ का अनुकूल आहार-विहार जितना आवश्यक है उतना ही जरूरी यह भी है उसे अभीष्ट स्तर का वातावरण दिया जाय। ऐसा वातावरण जो उसकी मनः स्थिति को सात्विक, पवित्र, प्रसन्नचित्त और प्रफुल्लित रखें। दृश्य, श्रव्य और पठनीय तीनों ही स्रोत श्रेष्ठ हों, जो चिन्तन को श्रेष्ठ अथवा निकृष्ट दिशा देने के लिए जिम्मेदार हैं। सन्तान का निर्माण वस्तुतः उसके पैदा होने के बाद नहीं गर्भकाल से ही आरम्भ हो जाता है और जन्म लेने तक नब्बे प्रतिशत पूरा हो जाता है। यह प्रक्रिया अदृश्य रूप से चलती है। टेपरिकार्डर आवाज को जैसे अंकित कर लेता है ठीक इसी प्रकार गर्भिणी के मन-मस्तिष्क में उठने वाले विचार गर्भस्थ शिशु के संवेदनशील तन्तुओं को झकझोरते रहते हैं। कितनी बार तो मनःसंवेग इतने प्रबल होते हैं कि उनकी गम्भीर प्रतिक्रिया शिशु की काय संरचना पर पड़ती देखी गयी है। वे आवेग स्थायी रूप से शिशु के शरीर पर विभिन्न प्रकार के चिन्हों के रूप में अंकित हो जाते हैं।

आनुवांशिकी के नियमों को झुठलाती हुई एक घटना स्पेन के समाचार पत्रों में बहुचर्चित हुई। स्थायी रूप से स्पेन में निवास करने वाले एक अँग्रेज परिवार में एक स्त्री गर्भवती हुई। वह जिस कमरे में रहती थी उसमें अन्य चित्रों के साथ एक इथोपियन पुरुष का भी चित्र लगा हुआ था। वह चित्र स्त्री को बहुत प्रिय था। इतना सुन्दर और मोहक था कि वह उसे नित्य भावनापूर्वक देखा करती थी। दूसरे काम करते समय भी उसे चित्र का स्मरण बना रहता था। समय पर बच्चा जन्मा। सभी को देखकर भारी अचरज हुआ कि बच्चे की मुखाकृति तथा वर्ण इथोपियन युवक जैसा था। जबकि बच्चे के माता-पिता दोनों ही अँग्रेज थे। मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन के उपरान्त यह बताया कि गर्भवती महिला के निरन्तर के चिन्तन का ही वह परिणाम था जिससे शिशु की आकृति तक बदल गयी।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्राजील की एक लड़की का विवाह एक अँग्रेज से हुआ। लड़की का रंग साँवला था पर उसमें मोहकता अधिक थी। पति-पत्नी में घनिष्ठ प्रेम था पर उनकी कोई सन्तान नहीं हुई। कुछ दिनों बाद पत्नी मर गयी। अँग्रेज ने दूसरी शादी कर ली पर उसे पूर्व पत्नी की याद सदा बनी रहती थी। उसकी दूसरी पत्नी गौर वर्ण की थी। नव विवाहिता में भी वह पहली पत्नी की छवि का दर्शन करता था। थोड़े दिनों बाद दूसरी पत्नी से एक कन्या जन्मी जो रूप लावण्य तथा वर्ण तथा मुखाकृति में ठीक पहली ब्राजीली पत्नी जैसी थी। कारणों की गहरी खोज बीन की गयी तो मालूम हुआ कि अँग्रेज के मस्तिष्क में उसकी विचारणा का प्रभाव पड़ा।

अमरीका से हाल में प्रकाशित हुई पुस्तक 'दि वर्ल्ड आफ दी अनबौर्न' में लेखिका लेनी स्वार्टज ने उपरोक्त तथ्यों पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा है कि मनुष्य की जिन्दगी का सबसे महत्वपूर्ण समय उसके जन्म के पूर्व का होता है। शिशु गर्भ में पूर्ण सचेत प्राणी होता है तथा उसका अवचेतन उस अवधि की स्मृतियों को भली-भाँति सँजोये रहता और माँ के संवेगों को तुरन्त अपनी स्मृति रूप में समेट लेता है।

अमरीका के ही ओहियो स्थित फेल्ज रिसर्च इन्स्टीट्यूट में 'सोनाज नामक एक चिकित्साशास्त्री एवं मनःचिकित्सक पिछले बीस वर्षों से मानव की गर्भावस्था से किशोरावस्था के विकास प्रक्रिया पर शोध कर रहे हैं। उनका निष्कर्ष है कि 'गर्भावस्था में जो महिलाएँ चिन्तित अथवा भयभीत रहती हैं वे एक प्रकार से अनजाने में गर्भस्थ शिशु के साथ अन्याय करती हैं। अध्ययन के दौरान उन्होंने पाया कि दुखी और भयभीत महिलाओं के शिशु अन्य सामान्य महिलाओं के गर्भस्थ शिशुओं से अधिक तीव्र हलचल करते हैं। जनने एवं विकसित होने पर प्रायः ऐसे शिशु अधिक असन्तुलित, गुस्सैल एवं आक्रामक देखे गये। मनःचिकित्सक लेस्टर सोनाज का मत है कि अधिक तनाव की स्थिति गर्भस्थ शिशु के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकती है। सम्भावित दुष्प्रभाव का एक उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया है। एक शरीर से पूर्ण स्वस्थ दीखने वाली अठारह वर्षीय महिला ने एक बच्चे को जन्म दिया: बच्चा दीखने में स्वस्थ लगता था। २४ घण्टे तक शिशु और माँ को चिकित्सकों की विशेष देख-रेख में रखा गया। अचानक बच्चे को खून की तेज उल्टियाँ होने लगीं। थोड़ी ही देर बाद उसने छटपटाते हुए दम तोड़ दिया। कोई कारण इस आकस्मिक घटना के नहीं मालूम पड़ रहे थे। घटना की पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए सर्वप्रथम बच्चे का पोस्टमार्टम कराया गया तो विदित हुआ कि बच्चे की आँत में तीन फोड़े थे। उल्लेखनीय है कि आँत में फोड़े प्रायः वयस्कों को होते हैं। प्रायः उन्हें जो अधिक चिन्तित आवेशग्रस्त रहते हैं। परीक्षणकर्ताओं की रुचि सम्बद्ध कारणों को जानने में और भी बढ़ी। महिला से पूछताछ की गयी तो ज्ञात हुआ कि पति से उसकी अनबन रहती थी। गर्भावस्था अन्तिम छह महीनों में वह अधिक तनाव से ग्रस्त रही। विशेषज्ञों ने निष्कर्ष निकाला कि गर्भावस्था में बेहद मन पर पड़ने वाले दबावों के कारण फोड़ा पैदा करने वाले विजातीय तत्व गर्भनाल से होकर शिशु के भीतर पहुँच गये।

कहना न होगा गर्भावस्था शिशु के विकास की अत्यन्त नाजुक अवधि है। जिसमें गर्भवती को आहार-विहार ही नहीं अभीष्ट प्रकार का वातावरण भी चाहिए। ऐसा वातावरण जो स्नेह, प्यार, सद्भाव, प्रसन्नता प्रफुल्लता उभारने वाले तत्वों से अनुप्राणित हो।

परिष्कृत और समुन्नत पीढ़ियाँ ही नवयुग का आधार बनेंगी

प्रशिक्षण खरादने की तरह है और उत्पादन की मूलभूत सामग्री का मौलिक महत्व है। हीरा असली हो तो खरादने पर उसकी चमक निखरती और कीमत बढ़ती है किन्तु काँच के नग को खराद पर चढ़ाने से कुछ तो शोभा बढ़ेगी ही पर परिश्रम, समय और साधन खर्च करने की तुलना में मिलने वाला लाभ स्वल्प ही रहेगा। कभी-कभी तो दबाव पड़ने पर कच्चे कमजोर काँच के टूटने का भी भय रहता है।

मनुष्य को शिक्षा, आहार, वातावरण आदि के माध्यम से सुयोग्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है और उससे कुछ लाभ भी होता है किन्तु देखना यह है कि व्यक्तित्व की दृष्टि से ओछे और मौलिक तत्वों की दृष्टि से घटिया होने पर क्या इन उपचारों का कोई कारगर प्रभाव भी हो सकता है ? देखा यह जाता है कि विकास के नाम पर किए जाने वाले प्रयासों से मात्र चातुर्य बढ़ता है और उस आधार पर व्यवहार कुशलता और धन उपार्जन भर का लाभ मिल पाता है। जबकि आवश्यकता इस बात की अनुभव की जा रही है कि मौलिक दृष्टि से समर्थ और समुन्नत किस्म का मनुष्य समुदाय उत्पन्न हो।

उत्पादन और परिमार्जन का अन्तर समझा जाना चाहिए। सोना असली होने पर ही आभूषणों का मूल्य आँका जाता है। पीतल से बने जेबरों से तो स्वर्णकार का श्रम भी अलाभकर सिद्ध होता और उपहासास्पद बनता है। व्यक्तित्व मौलिक है। प्रशिक्षण उसकी शृंगार सज्जा। इस तथ्य को गहराई से समझने पर अब विज्ञ क्षेत्रो मे यह विचार चल रहा है कि मनुष्य की ऐसी समुन्नत नस्ल पैदा की जाय जो जन्मजात रूप में वैसी विशेषताएँ साथ लाये, जिनकी नये युग के उपयुक्त वातावरण बनाने में सहायता मिल सके।

इसके लिये अब वैज्ञानिकों का ध्यान जीवकोषों के अन्तराल मे पाये जाने वाले इन गुणसूत्रो को परिष्कृत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने पर केन्द्रित हो रहा है, जो व्यक्तित्व में जन्मजात विशेषताएँ भर सकने में समर्थ हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी चली आने वाली विशिष्टताएँ बड़ी हठीली होती हैं और नयी संतति में अपनी भली-बुरी विशेषताओं को उड़ेलती रहती हैं। वंशजों में प्राय: पूर्वजों की अधिकांश विशेषताएँ भरी रहती हैं और वे सुधार शिक्षण के सामान्य प्रयत्नों से भी टस से मस नहीं होतीं।

वंशानुक्रम को बदल सकने में समर्थ गुण सूत्रों का किस प्रकार सुधार किया जाय ? किस प्रकार उन्हें सुयोग्य जोड़ों के माध्यम से उपयोगी उत्पादन में सफल बनाया जाय ? यही हैं वे प्रश्न जो इस क्षेत्र के मूर्धन्य जनों को उपाय खोजने के लिए बाधित कर रहे हैं। इस सन्दर्भ में दो प्रश्न हैं कि कुसंस्कारी जोड़ों द्वारा जन्माये हुए सन्तानों से उत्पन्न होते रहने वाले दुष्परिणामों से कैसे बचा जाय और समुन्नत स्तर के उत्पादन का सिलसिला किस प्रकार चले ? नये उत्पादन से भी अधिक चिन्ता का विषय यह है कि अनेक दोष-दुर्गुणों से युक्त प्रस्तुत-जन समुदाय जिस स्तर की संतति उत्पन्न कर रहे हैं, उसके द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले दुष्परिणामों से बचाव किस प्रकार बन पड़े।

इन दिनों अनगढ़ जनसमुदाय द्वारा घटिया स्तर का प्रजनन बेहिसाब हो रहा है। जनसंख्या वृद्धि दर २ प्रतिशत वार्षिक (१९६०) में घटकर आज १.८ प्रतिशत है। संभावना है सन् २००० तक यह १.६ प्रतिशत होगी। फिर भी इन २० वर्षो मे २ अरब व्यक्ति इस धरती पर और जुड़ जायेंगे। विडम्बना यह है कि इनमें ९० प्रतिशत (१ अरब ८० करोड़) अर्ध विकसित गरीब देशों में आवेंगे। यह अगले दो दशक की सबसे बड़ी समस्या है। इस विशालकाय जनसमूह का पेट भरने के लिए खाद्यान्न उत्पादन की वार्षिक दर में कम से कम ३.७ प्रतिशत की वृद्धि की आवश्यकता होगी।

युनाइटेड नेशन्स की ओर से हाल ही में प्रकाशित की गई एक रिपोर्ट के अनुसार १९८० मे विश्व की जनसंख्या जो ४४३ करोड़ ७० लाख थी वह सन् २००० में ६१० करोड़, २०१० तक ७०० करोड़ और २०२५ तक ८३० करोड़ हो जायेगी। जबकि सन् १९५० में वह मात्र २५० करोड़ थी।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद विकसित देशों की जनसंख्या वृद्धि दर में कमी शुरू हुई। उसका क्रम यथावत् घटोत्तरी की ओर है। विकासशील देशो में अब ऐसे प्रमाण मिलने लगे हैं कि यहाँ भी जनसंख्या वृद्धि दर मे कमी हो रही है। फिर भी विकासशील देशो में प्रतिवर्ष ७ करोड़ जनसंख्या की वृद्धि होती है जो विश्व की प्रतिवर्ष की जनसंख्या वृद्धि का ९० प्रतिशत है।

इस सकट से बचने के लिए जन्मनिरोध के लिए सर्वत्र आन्दोलन चल रहे हैं और कहा जा रहा है कि जिस प्रकार भी संभव हो प्रजनन पर रोकथाम लगाई जाय। यह निर्वाह संकट दूर करने की दृष्टि से किया गया प्रयास प्रतिपादन है। पर बात इतने से ही समाप्त नहीं हो जाती। बड़ा प्रश्न यह रह जाता है कि 'हम दो हमारे दो' का सिद्धान्त अपनाने पर भी जो संतति उत्पन्न होगी उसका स्तर कैसा होगा ? आवश्यक नहीं कि शिक्षित या सम्पन्न व्यक्तियों में समुन्नत स्तर की सन्तान उत्पन्न कर सकने की क्षमता हो ही। सम्पन्नता एक बात है तो गुणसूत्रों में सन्निहित उष्कृष्टता दूसरी। शिक्षितों या समृद्धों के बालक व्यक्तित्व की दृष्टि से भी ऊँचे हों इसकी कोई गारण्टी नहीं।

जो सुयोग्य सन्तान उत्पन्न कर सकने की स्थिति में नहीं हैं। उन नर-नारियों को विनाशकारी प्रजनन बढ़ाकर समाज को क्षत-विक्षत करने से रोका जाना चाहिए। यह विचार अब दिन-दिन जोर पकड़ता जाता है। इस सन्दर्भ में मौलिक अधिकारों की दुहाई भी समूची मानव जाति के अहित को ध्यान में रखते हुए, दर गुजर की जानी चाहिए। अधिक से अधिक प्रेम मिलन या विवाह की छूट हो सकती है और यहाँ तक मौलिक अधिकारों की बात पूरी हुई समझी जानी चाहिए। सन्तानोत्पादन का प्रसंग विशुद्ध रूप से सामाजिक एवं समष्टिगत है। सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए यदि अवांछनीय सन्तानोत्पदान रोका जाय तो उसे भी स्वेच्छाचारिता रोकने वाले अन्य प्रयत्नों की तरह ही प्रोत्साहन मिलना चाहिए, भले ही इससे किसी के मौलिक अधिकारों में कटौती होती हो।

हक्सले कहते थे कि इस सन्दर्भ में कड़े नियन्त्रण न लगाये गये तो मनुष्य समाज का व्यापक अहित होगा। सुधार एवं उत्कर्ष के सारे प्रयत्नों को वे अनगढ़ लोग चट कर जायेंगे जिनमें पैतृक कुसंस्कारिता कूट-कूट कर भरी है। सन्तानोत्पादन को विशुद्ध राष्ट्रीय, सार्वभौम एवं सार्वजनीन प्रश्न माना जाना चाहिए और उसका समाधान ऐसे अनगढ़ लोगों के हाथों में नहीं सौंपना चाहिए जो न तो अपनी स्थिति ऊँचा उठाने की बात सोचते हैं और न विश्व व्यवस्था बिगड़ने के सम्बन्ध में कुछ सोच पाते हैं।

पुरातन दार्शनिकों में प्लेटो ने इस तथ्य को समझा था और उन्होंने अपने समय में जनमत के विरोध की परवाह न करते हुए जोर-शोर से यह प्रतिपादन किया था कि अनुपयुक्त जोड़ों को सन्तानोत्पादन की छूट न दी जाय।

अनावश्यक प्रजनन को नष्ट-भ्रष्ट करके रख देने की अपनी निर्दय प्रक्रिया प्रकृति ने पहले से ही सँजोकर रखी है। जिनकी जड़ें गहरी नहीं हैं वे पौधे न तो लम्बे समय का आयुष्य पाते हैं और न प्रतिकूलताओ को देर तक सहन करने में सक्षम होते हैं। उथलेपन की यह दुर्बलता ही उन्हें ले बैठती है। इसके अतिरिक्त सृष्टि संतुलन के कुछ नियम ऐसे हैं जो युद्ध, बीमारी, दुर्भिक्ष, बाढ़, ऋतु असन्तुलन की कुल्हाड़ी चलाकर बढ़े हुए अनावश्यक

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सन्तान उत्पादन को तहस-नहस करके रख देते हैं। यदि ऐसा न होता तो संख्या में अधिक और स्तर में घटिया प्रजनन ने अब तक सारे संसार को घेर लिया होता। मक्खी, मछली, दीमक आदि की प्रजनन शक्ति आश्चर्य आश्चर्यजनक है। कुत्ते और सुअर भी इस सम्बन्ध में अग्रणी हैं पर उनकी सन्तानें ऐसे ही जिस-तिस प्रकार ठिकाने लगती रहती हैं और उनकी प्रजनन पुरक अतिवादिता निर्दयतापूर्वक नियन्त्रित होती रहती है। यदि मनुष्य को भी ऐसे दुर्दिन देखने और चीत्कार सुनने हों तो बात दूसरी है अन्यथा समय रहते विवेक का उपयोग करना होगा और देखना होगा कि निर्वाह साधनों की तुलना में अनुपयुक्त सन्तानें तो नहीं सृजी जा रही हैं। यदि ऐसा होगा तो उससे उत्पादितों और उत्पादन कर्ताओं को दुःख, दुर्भाग्य की चक्की में ही पिसना पड़ेगा। यदि भावना और विवेक का राई-रत्ती अस्तित्व रहा होगा तो विचारशीलों को विपत्ति बोने-उगाने की मूर्खता से स्वेच्छापूर्वक ही विरत होना होगा।

यह संख्या की बात हुई। उसके लिए तो प्रकृति प्रकोप से पहले मानवी नियन्त्रण भी काम दे सकते हैं। समाज व्यवस्था और शासन तन्त्र यदि उस सन्दर्भ में कठोरता बरतने पर उतर आये तो अविवेकियों को केवल डंडे के बल पर ही सीधी राह चलने के लिए बाधित किया जा सकता है। यह कार्य उतना कठिन नहीं है। कठिनाई समुन्नत, सद्गुणी, समर्थ और सुसंस्कृत पीढ़ी के उत्पादन की है। उसी के अभाव में साधन-सम्पदा और बुद्धि कौशल के द्वारा उपलब्ध होने वाले लाभों से वंचित ही नहीं होना पड़ रहा वरन् बन्दर के हाथ तलवार पड़ने, साँप को दूध पिलाने जैसी उलटी विपत्ति भी खडी हो रही है। प्रस्तुत विपत्तियों के निराकरण और उज्ज्वल भविष्य के निर्धारण के निमित्त अगले दिनों अधिक उच्चस्तरीय मनुष्यो का उत्पादन करना ही होगा। घटिया समुदाय के रहते तो अगले दिनों क्रमशः अधिकाधिक जटिलताएँ ही पैदा होती चली जायेंगी।

मनीषा इस सन्दर्भ में गम्भीरतापूर्वक किसी निष्कर्ष पर पहुँचने और कारगर कदम उठाने के लिए आतुर है। सोचा यह जा रहा है कि अवांछनीय उत्पादन पर तो रोक लगे ही, साथ ही समुन्नत प्रजनन को न केवल प्रोत्साहन दिया वरन् उसके लिए प्रयत्नपूर्वक साधन भी जुटाये जायें। इस सम्बन्ध में सोचा यह जा रहा है कि ऐसी समाज व्यवस्था बने जिसमें दाम्पत्य प्रेम और प्रजनन के परम्परागत तालमेल को पृथक्-पृथक् कर दिया जाय और दोनों पक्षों की अपनी मर्यादा बाँध दी जाय। कौन नर-नारी किसके साथ रहते हैं यह उनके अपने रुझान और चुनाव पर निर्भर है। पर सन्तानोत्पादन लिए लाइसेन्स दिये जायें और उत्पादनकर्ता नर-नारियों की क्षमता इसके साथ ही जाँच ली जाय। अफीम, शराब, बारूद आदि के उत्पादन पर सरकारी नियन्त्रण है। ठीक इसी प्रकार समाज की प्रजावृद्धि पर समाज का अंकुश भी रहे और प्रोत्साहन भी मिले। इस सन्दर्भ में नर की प्रमुखता मानते हुए भी नारी की क्षमता को भी पूरी तरह ध्यान में रखना होगा। खेत और बीज में से अच्छी फसल उगाने के सम्बन्ध में किसी का भी महत्व कम नहीं है। एक के शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक स्तर से गया गुजरा होने पर दूसरा अकेले ही कुछ ऐसा न कर सकेगा। जिसे सन्तोषजनक कहा जा सके।

प्राचीनकाल में विवाह जोड़े मिलाते समय आज की तरह रूप-यौवन एवं कौशल भर देखना पर्याप्त नहीं माना जाता था वरन् अच्छे खानदान की बात को अधिक ध्यान में रखा जाता था। खानदान से तात्पर्य जाति-उपजाति की रूढ़िवादिता से उलझना नहीं वरन् यह था कि अमुक समुदाय परिवार के सदस्यों में पाये जाने वाले सुसंस्कारिता को देखा जाय। स्वास्थ्य, स्वभाव, शिक्षा, चरित्र, जीवनचर्या, रीति-नीति परम्परा आदि अनेक विषयों का समावेश विकसित समुदायों में पाया जाता है। इसी को खानदान कहते हैं। अच्छे खानदान के लड़की-लड़के सही रीति से परिवार चलाते और सुयोग्य सन्तानोत्पादन मे समर्थ होते हैं। भले ही वे रंग-रूप में साधारण ही क्यों न हों। आज की चयन पद्धति कामुकता प्रधान हो जाने, दान-दहेज को महत्व मिलने के कारण ऐसे जोड़े बन ही नहीं पा रहे हैं जो महामानव स्तर की सुयोग्य पीढ़ी का सृजन कर सकें।

अगले दिनों विवाह का वर्तमान प्रचलन भी जारी रखा जा सकता है किन्तु समुन्नत संतति का उत्तरदायित्व हर किसी पर छोड़ा न जा सकेगा। इसके लिए न केवल इस प्रयोजन के लिए अपितु हर दृष्टि से समर्थ सुयोग्यों को ही विश्व भविष्य को प्रभावित करने वाले इस अत्यन्त महत्वपूर्ण क्षेत्र में प्रवेश करने की अनुमति मिलेगी। डॉक्टर, इन्जीनियर, प्रशासक, कप्तान आदि की कक्षाओं में प्रवेश पाने के लिए भी तो प्रारम्भिक परीक्षा में उत्तीर्ण होना पड़ता हैं यह प्रश्न भी अब उतना ही महत्वपूर्ण माना जाना चाहिये, जितना विश्व स्तर पर खाद्य एवं निर्वाह की सामग्री जुटाना। धरती पर स्वर्ग का अवतरण एक पौराणिक उपाख्यान अथवा दिवा स्वप्न नहीं वरन् सत्य है। पर उसको साकार तभी किया जा सकेगा, जब समुन्नत पीढ़ी के निर्माण की बात सोची जाय तो अगले दिनों विश्व की बागडोर अपने हाथो लेने वाली है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

दाम्पत्य जीवन का स्वर्ग

मनुष्य अपने आप में अपूर्ण है

प्रत्येक जीव के जीवन में यौवन के उभार के समय एक ऐसा अवसर आता है, जब वह धीरे-धीरे इस बात का अनुभव करने लगता है कि उसके पास कुछ वस्तुओं, गुणों, स्वाभाविक विशेषताओं की कमी है। पुरुष में यौवन उभार आने पर जहाँ उसका पुरुषत्व विकसित होता है, वहाँ उसके अन्तर्मन में कामावेग भी उत्पन्न होता है। वह किसी पर अधिकार करने के लिये प्रेमोपासना करने लगता है, पुरुष स्त्री की ओर सहज भाव से रस लेने लगता है। उसमें उसे कुछ अजीब आकर्षण प्रतीत होने लगता है। उसके हाव-भाव उसे आकर्षक लगते हैं। इसी प्रकार नारी जीवन में भी प्रणय की गुप्त इच्छाएँ धीरे-धीरे विकसित होने लगती हैं। अपनी कोमलता, तितिक्षा, कला, लज्जा इत्यादि के कारण वह मनोभावों के आत्म समर्पण के लिये उन्मुख होती है। वह अपने भेद गुप्त रखने में कुशल होती है किन्तु उसका सहज ज्ञान क्रमशः प्रकट होने लगता है। नर-नारी की ये स्वभावगत विशेषताएँ हैं, जो समाज का निर्माण करती हैं।

पृथक्-पृथक् स्त्री-पुरुष अधूरे और अपूर्ण हैं। यदि स्त्री-पुरुष पृथक रहेंगे, तो वे समाज के लिये उपयोगी, अपरिक्व, अविकसित रहेंगे। स्त्री और पुरुष दोनों के मिलने से नर-नारी की स्वाभाविक अपूर्णता दूर होती है। एक-दूसरे की कमी जीवन सहचर प्राप्त करने से हो पाती है। जैसे धनात्मक और ऋणात्मक तत्वों के मिलने से विश्व बनता है, वैसे ही स्त्री तथा पुरुष के मिलने से 'मनुष्य' बनता है। यही पूरा मनुष्य समाज के उत्तरदायित्वों को पूर्ण करता है।

विवाह की उपयोगिता—आधुनिक मनोविज्ञान इच्छाओं को पार करने का मार्ग दर्शाता है, उनका दमन मानसिक बीमारियाँ उत्पन्न करता है। इसी से अनेक बार मानसिक नपुंसकता उत्पन्न होती है। मनुष्य के अन्तस्थल मे अनेक वासनाएँ दब कर अन्तःप्रदेश में छिप जाती हैं। इनसे समय-समय पर अनेक बेढंगे व्यवहार गाली देने की प्रवृत्ति, कुशब्दों का उच्चारण, आत्महीनता की भावना ग्रन्थि की उत्पत्ति, स्मरण-विस्मरण, पागलपन तथा प्रलाप, हिस्टीरिया इत्यादि अनेक मानसिक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। मानसिक व्यापारों में एक विचित्र प्रकार का संघर्ष चला करता है। मन की अनेक भावनाएँ विकसित नहीं हो पातीं, मनुष्य शिकायत करने की मनोवृत्ति का शिकार बना रहता है। दूसरे के प्रति वह अनुदार रहता है, उसकी कटु आलोचना किया करता है। अधिक उग्र या असन्तोषी, नाराज प्रकृति, तेज स्वभाव का कारण वासनाओं का समुचित विकास एवं परिष्कार न होना ही है। इस प्रकार का जीवन गीता में निंद्य माना गया है।

प्रत्येक स्त्री-पुरुष के जीवन में एक समय ऐसा आता है, जब उसे अपने जीवन साथी की तलाश करनी होती है। आयु, विचार, भावना स्थिति के अनुसार सद्ग्रहस्थ के लिये उचित जीवन साथी की तलाश होनी चाहिये। उचित शिक्षा एवं आध्यात्मिक विकास के पश्चात् किया हुआ विवाह मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ठीक है। आजन्म कौमार्य या ब्रह्मचर्य महान है। उनका फल अमित है किन्तु साधारण स्त्री-पुरुषों के लिये यह सम्भव नहीं है। इससे मन की अनेक कोमल भावनाओं का उचित विकास एवं परिष्कार नहीं हो पाता। वासना को उच्च स्तर एवं उन्नत भूमिका में ले जाने के लिये एक-एक सीढ़ी चढ़ कर चलना होता है। एक सीढ़ी को लाँघ कर दूसरी पर कूद जाना कुछ इच्छाओं का दमन अवश्य करेगा, जिसके फलस्वरूप मानसिक व्याधि हो सकती है। अतः प्रत्येक सीढ़ी पर पाँव रख कर उन्नत जीवन पर पहुँचना ही हमारा लक्ष्य होना चाहिये।

एक पिता तथा माता के हृदय में जो नाना प्रकार के स्वर झंकृत होते हैं, उन्हें भुक्त भोगी ही जान सकता है। दो हृदयों के पारस्परिक मिलन से जो मानसिक विकास सम्भव है, वह पुस्तकों के शुष्क अध्ययन से नहीं प्राप्त किया जा सकता। विवाह कामवासना की तृप्ति का साधन मात्र है, ऐसा समझना भयंकर भूल है। वह तो दो आत्माओं के, दो मस्तकों, दो हृदयों और साथ ही साथ दो शरीरों के विकास, एक दूसरे में लय होने का मार्ग है। विवाह का मर्म दो आत्माओं का स्वरैक्य है, हृदयों का अनुष्ठान है, प्रेम, सहानुभूति, कोमलता, पवित्र भावनाओं का विकास है। यदि हम जानते हैं कि पुरुष-प्रकृति तथा स्त्री-प्रकृति का पूरा-पूरा विकास हो, हमारा व्यक्तित्व पूर्ण रूप से खिल सके तो हमें अनुकूल विचार, बुद्धि, शिक्षा एवं धर्म वाली सहधर्मिणी चुननी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

चाहिये। उचित वय में विवाहित व्यक्ति आगे चलकर प्रायः सुशील, आज्ञाकारी, प्रसन्नचित, सरल, मिलनसार, साफ-सुथरे, शान्तचित्त, वचन के पक्के, सहानुभूतिपूर्ण मधुरभावी, आत्म विश्वासी और दीर्घजीवी पाये जाते हैं।

कुँवारा प्रायः अतृप्त वासना, स्वप्नदोष, लड़कपन, संकोची और संकुचित दृष्टिकोण वाला रहता है, वह जिम्मेदारी नहीं लेना चाहता, सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी नहीं रखता, दूसरों के दुर्गुणों तथा न्यूनताओं में आनन्द लेता है। संघर्ष से दूर भागता है, वह विरोधी, वाचाल तथा ईर्ष्या से युक्त होता है, क्रोध, घृणा, भय, वासना और लज्जा से उसकी शान्ति सदैव भंग रहती है। आजन्म कौमार्य देश, धर्म और समाज के लिये हितकर नहीं है।

गृहस्थ धर्म एक योग-साधना

गृहस्थ धर्म एक योग-साधन है, जि. पनुष्य पर पग-पग पर उत्तरदायित्व एवं कर्तव्यों का भार है। यह आश्रम हमें आगे आने वाले कष्टसाध्य जीवन की एक तैयारी कराता है। यदि इसमें रह कर हम इन्द्रिय सुखों की निस्सारता, क्षणभंगुरता एवं नीरसता को न जानें और सीधे वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम ग्रहण कर ले, तो हमारी बड़ी साधना में वासनाओं और क्षुद्र इच्छाओं का ताण्डव चलता ही रहेगा।

गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की पुष्टि के लिए है। दूसरे शब्दों में यों कहा जाता है कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास—यह तीनों ही आश्रम गृहस्थाश्रम को व्यवस्थित और सुख-शान्तिमय बनाने के लिए हैं। ब्रह्मचारी इसलिए ब्रह्मचर्य का पालन करता है कि उसका भावी गृहस्थ जीवन शक्तिपूर्ण और समृद्ध हो। वानप्रस्थ और संन्यासी लोग लोकहित की साधना करते है। इहलोक और संसार का सुख प्रकट करने वाला गृहस्थ धर्म ही है। यदि गृहस्थाश्रम की व्यवस्था बिगड़ जाय, तो अन्य तीनों आश्रम ठीक रीति से नहीं चल सकेंगे।

गृहस्थाश्रम से 'अहं' का विस्तार होता है। आत्म-भाव की सीमा बढ़कर उसमें परिवार के अन्य सदस्य भी आते हैं। छोटे-छोटे शिशुओं की सेवा-सुश्रूषा में निःस्वार्थ भाव से संलग्न होना पड़ता है।

स्त्री, पुत्र, सगे-सम्बन्धी, परिवार, पड़ौसी, घर के पशु-पक्षी आदि में आत्मीयता बढ़ जाती है। क्रमशः उन्नति की ओर हम चलते हैं। अन्त में मनुष्य पूर्ण अथवा आत्म-संयमी हो जाता है। दूसरों के लिए अपने को भूल जाता है। खुदी मिटती जाती है और खुदा मिलता जाता है। गृहस्थ-योग की साधना जब अपनी विकसित अवस्था पर पहुँचती है तो आत्मा-परमात्मा में लीन हो जाती है।

गृहस्थ हमें तुच्छता और संकीर्णता से महानता और उदारता की ओर ले जाता है, स्वार्थ का परिशोधन कर परमार्थी बना देता है। यदि हम गृहस्थ-धर्म के सब उत्तरदायित्वों को पूर्ण करते रहें, स्वार्थ हटाकर परमार्थ की साधना करते रहें, तो ब्रह्म-निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

आत्मीयता की उन्नति का अभ्यास करने के लिए सबसे उत्तम स्थान अपना घर है। आत्मीयता के साधन में अपना दृष्टिकोण, देने और सेवा करने का बनाना पड़ता है। प्रेम की उदार भावनाओं से अपने अन्तःकरण को परिपूर्ण कर सगे-सम्बन्धियों के लिए त्याग करना पड़ता है। इस आत्मीयता के प्रसार से घर स्वर्ग बन जाता है।

गृहस्थ का सोपान पार करने के पश्चात् जीवन यात्रा का एक नया चरण प्रारम्भ होता है। मनुष्य को प्रतीत होने लगता है कि सांसारिक सुखों के आगे भी कोई चीज है। काम, क्रोध, लोभ, मोह से भरे हुए जीवन से उसे परितोष नहीं हो पाता। वह धीरे-धीरे आत्मा के सुखमय प्रदेश में प्रवेश करता है। आत्मा का प्रदेश वह मंगलमय संसार है जहाँ इन्द्रियों की लोलुपता, आकर्षण और प्रलोभन नहीं है।

गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता महान है

भारतवर्ष मे विवाह-बन्धन अत्यन्त पवित्र धार्मिक कृत्य माना गया है। इसमे अनेक उद्देश्यो की प्रतीति और महान् उत्तरदायित्वों की पूर्ति के साधन समाविष्ट हैं। भारत के प्राचीन मुनियों ने इसमें मानव प्रकृति की उद्दाम प्रवृत्तियों को संयमित करने, प्रकृति द्वारा आयोजित प्रजनन तथा सृष्टि विस्तार, सामाजिक सुव्यवस्था, सुदृढ़ नागरिक निर्माण और अन्त में निवृत्ति की चरम सीमा पर पहुँचने की व्यवस्था की है।

धर्म-शास्त्र का प्रवचन है—

''तथातथैव कार्याणि न कालस्तु विधीयते।

अभिन्नेव प्रयुञ्जानो ह्यस्मिन्नेव प्रलीयते।।''

इस संसार के साथ हमारा संयोग है, इसी संसार में हमारा लय हो जायगा, तब हमें जिस समय जो कर्त्तव्य हो, वही करना अनिवार्य है। व्यक्तिगत सुविधा तथा असुविधा को लेकर कर्त्तव्य के पुण्य पथ से परिभ्रष्ट होना उचित नहीं। इसीलिए धर्म ने गृहस्थाश्रम को तपोभूमि कह कर उसकी महत्ता स्वीकार की है। यहाँ तक कि धर्म की दृष्टि मे गृहस्थाश्रम ही चारों आश्रमो का मुख्य केन्द्र है। इस सम्बन्ध में योगिवर वशिष्ठ का निर्देश देखिए—

''गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः।

चतुर्णामाश्रमाणान्तु गृहस्थस्तु विशिष्यते।।''

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अर्थात्—गृहस्थ ही वास्तविक रूप से यज्ञ करते हैं। गृहस्थ ही वास्तविक तपस्वी हैं—इसलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सबका सिरमौर है।

भारतीय धर्म के अनुसार गृहस्थाश्रम प्रकृत तपोभूमि है। इस काल में दो पवित्र आत्माओं का परस्पर सामंजस्य होता है तथा वे जीवन के युद्ध में प्रविष्ट होते हैं। उन्हें पग-पग पर उत्तरदायित्व, कठिनाइयों, सांसारिक संघर्ष, प्रतियोगिताओं में भाग लेना होता है। दोनों आत्माएँ परस्पर सम्मिलित होकर एक दूसरे की सहायता करते हुए, तपस्या और साधना के मार्ग पर अग्रसर होती हैं।

प्रकृति के प्रजनन-क्रिया की सिद्धि के निमित्त जिस उद्दाम वासना को मानव-हृदय में प्रतिष्ठित किया है, उसकी उच्छृंखलता यौवन में आकर इतनी तीव्र हो उठती है कि सामाजिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से उसका संयम आवश्यक है। भारतीय धर्म ने उस उद्दाम प्रवृत्ति को स्वीकार किया है तथा विश्व की संस्थिति और सम्पूर्णता के लिए मनुष्य के विकास के लिए उसे जरूरी माना है। अतएव प्रत्येक नागरिक को इस महायज्ञ में प्रवृत्त होने का आदेश प्रदान किया है।

गृहस्थाश्रम विषय भोग की सामग्री नहीं है, विलास मन्दिर नहीं, वरन् दो आत्माओं के पारस्परिक सहवास द्वारा शुद्ध आत्म-सुख, प्रेम और पुण्य का पवित्र प्रसाद है, वात्सल्य और त्याग की लीलाभूमि है, निर्वाण प्राप्ति के लिए शान्ति-कुटीर है। विवाह से मनुष्य समाज का एक अंग बनता है, अपूर्णता से पूर्णता प्राप्त करता है, निर्बलता से सबलता की ओर अग्रसर होता है। उसे नये सम्बन्ध प्राप्त होते हैं, नये उत्तरदायित्व और नये आनन्द प्राप्त होते हैं। भारतीय ऋषियों ने गृहस्थाश्रम को अनेक व्रत, नियम, अनुष्ठान, आतिथ्य-सत्कार इत्यादि पुण्य कर्त्तव्यों की लीलाभूमि बनाकर उसकी महिमा को द्विगुणित किया है। उन्होंने पारिवारिक व्यवस्था में प्रेम और वात्सल्य तथा दूसरी ओर अपने से छोटों के लिए उन्हीं के हित में त्याग तथा तपस्या के द्वारा इसे तपोभूमि के समान पवित्र बना दिया है।

स्वामी अभेदानन्द लिखते हैं—"इस तपोभूमि के पुण्य स्वरूप और पुण्य साधना का मधुर रहस्य जानने के लिए हम हिमालय की उस तुषार मण्डित शिला पर चले, जहाँ हिमालय की किशोरी पार्वती तपश्चर्या में निमग्न है। यही भारतीय गृहस्थाश्रम के मंगलमय स्वरूप का प्रथम दर्शन है। गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने से पूर्व रमणी को तपोमयी साधना में प्रवृत्त होना पड़ता, क्योंकि जिस मंगलमय उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह अपने पवित्र सुन्दर जीवन को उत्सर्ग करती है, उसके लिए तपस्या और त्याग की परम आवश्यकता है। कुमार की उत्पत्ति तपस्या की सिद्धि का मधुर फल है, क्योंकि विश्व के परित्राण के लिये, देश के मंगल के लिये, समाज के अभ्युदय के लिये और मनुष्यता की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिये ही कुमार के अवतार की आवश्यकता है। पुत्र या कन्या का जन्म भी धार्मिक महत्व रखता है। उसमें रमणी की उत्कृष्ट सिद्धि भी सम्मिलित है।"

भारतीय वैवाहिक जीवन मंगलमय है। उसका प्रत्येक व्रत, नियम, अनुष्ठान, पूजन-चिन्तन इत्यादि विशेष महत्त्व रखता है। सतीत्व तथा एकपत्नीव्रत की पवित्रता से समुज्ज्वल, मातृत्व के मृदुल वात्सल्य से विभूषित, उत्तरदायित्वों के मनोरम भार से परिपूर्ण, प्रेम के प्रवाह से पूर्ण भारतीय विवाहित जीवन त्याग का तेजोमय तीर्थ और पुण्य एवं कर्म की भूमि है। इसी के द्वारा स्त्रियों में स्त्रीत्व तथा पुरुषों में पुरुषत्व का विकास होता है। नर-नारी के मंगलमय चिर सम्मिलिन के समय भारतीय समाज उन दोनों को प्रणय-सूत्र में आबद्ध करने के साथ ही साथ इस जन्म तथा मृत्यु के पश्चात् परलोक में भी परस्पर सहायता, सहानुभूति एवं स्नेहमय व्यापार के प्रतिज्ञासूत्र में आबद्ध करता है।

हमारा हिन्दू धर्म जिस मंगलमयी साधना को लेकर सदा व्यस्त रहता है, वह है "प्रवृत्ति को निवृत्ति के पथ पर परचालित करना।" हमारे यहाँ वासना की प्रवृत्ति को माना है, किन्तु साथ ही साथ इस प्रवृत्ति के परिष्कार, उन्नतिकरण और अन्ततः निवृत्ति में परिणत करना यह फल माना है। वैवाहिक जीवन हमारे जीवन की एक स्टेज है, जो भावी जीवन के निर्माण में सहायक है। हम सदा से यह मानते आये हैं कि असंस्कृत और उच्छृंखल प्रवृत्ति, साधना और तपस्या के द्वारा परम शान्त और त्यागमयी बनाई जा सकती है। विनाश की अपेक्षा वृत्तियों का सही मार्गों में बहाव, स्वार्थ और लालसा से निकल कर प्रेम और त्याग के मार्गों में उनका प्रवाह हमारे लिये विशेष महत्व रखता है।

आदि कवि से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ तक ने अपने साहित्य में गृहस्थाश्रम का मनमोहक रूप प्रतिष्ठित किया है। कौन ऐसा प्रान्त है जिसमें मातृत्व की मंगलमय मूर्ति, सतीत्व का त्याग, सौन्दर्य और वात्सल्य की मन्दाकिनी प्रवाहित न हुई हो ?

गृहस्थ में प्रविष्ट न होने वाला व्यक्ति अनेक प्रकार से मानसिक रोगों का शिकार बनता है। आयु कम रहती है, मानसिक भावनाएँ विकसित नहीं हो पातीं, संसार के महत्त्वपूर्ण कार्यों में जी नहीं लगता, मन पुनः-पुनः सुन्दर स्त्रियों के मानसचित्र बनाता और स्वप्नदोष उत्पन्न करता है। अविवाहित पुरुष की उत्पादन शक्ति क्षीण होती है। विवाह से उसे नया चाव, उत्साह, स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त होती है। इसी प्रकार अविवाहित स्त्री कुढ़न, अनिद्रा, प्रमाद, चिन्ता, हिस्टीरिया, प्रजनन की गुप्त भावना, अतृप्ति, स्वार्थी और क्रोधी हो जाती है। विवाहित स्त्री का सौन्दर्य बढ़ता है। शरीर के सब अंगों का नवीन ढंग से

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विकास होता है। मृदुल भावनाओं—दया, प्रेम, सहानुभूति, वात्सल्य, करुणा की अभिवृद्धि होती है।

डाक्टर जेम्स स्टाक, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ स्काटलैण्ड ने अपनी परिगणना द्वारा सिद्ध किया है कि कुँआरेपन से मनुष्य की आयु क्षीण होती है। विवाहित व्यक्तियों में ४० और २० वर्ष के मध्य १४०७ व्यक्ति प्रति वर्ष मरते हैं, किन्तु इसी अवस्था में कुँआरे एक लाख में से १८३५ प्रति वर्ष मरते हैं। २५ से ४० के मध्य में मरने वाले कुँवारों की मृत्यु का अनुपात विवाहितों से दुगुना है। बीमा कम्पनियाँ अविवाहितों की अपेक्षा विवाहितों को पसन्द करती हैं।

विवाह से पूर्णता की प्राप्ति—पृथक्-पृथक् स्त्री और पुरुष अपूर्ण हैं। उनके गुण तथा स्वभाव भी अपने अन्दर एक प्रकार की कमी, हीनता और किसी अदृश्य वस्तु की कामना करते हैं। जो गुण एक में नहीं हैं, दूसरों में उनकी मौजूदगी आकर्षण का विषय बनती है। स्त्री-पुरुष दोनों के स्वभावों का विश्लेषण करना हो, तो निम्न प्रकार से हो सकता है—

स्त्री में लज्जाशीलता, चारुता, सहजज्ञान, पातिव्रत्य, कोमलता, सूक्ष्मता, भावुकता होती है। वे मानसिक संवेगों को तीव्रता से अनुभव करती हैं। वे स्नेह सरोवर की मीन हैं। उन्हें रूप-लावण्य की अनुपम राशि प्रदान की गई है। शान्तिप्रियता, सहनशीलता और धैर्य भी बहुत होता है। वे बातें बहुत कम करती हैं, पर सुनती बहुत अधिक हैं।

पुरुष पाशविक वृत्तियों, शक्ति क्रोध, कार्य-दक्षता तथा अहंवादी है। क्रियाशीलता और प्रभुता प्रदर्शन उसके प्रमुख गुण हैं। पुरुष का मस्तिष्क पाशविक वृत्तियों के क्षेत्र में अत्यधिक बलवान है। प्रेम, क्रोध और प्रतिशोध के समय कुछ काल के निमित्त उद्भ्रान्त-सा हो जाता है। प्रेम में शीघ्रता करता है। वह स्वभावतः मजबूत, निर्णायक, प्रामाणिक, स्वाभिमानी, प्रचण्ड, उग्र, दांता, उदार, कठिन परिश्रमी, बेलगाम, निग्रहहीन और युद्ध करने वाला है। उसका मन अस्थिर, चंचल-बेकाबू और एक विस्फोटक समान है।

दोनों में स्वतन्त्र यौन प्रभेद मिलते हैं। नर प्रेम करने में उन्मत्त, शीघ्र आवेगपूर्ण काम-स्थिति में प्रचण्ड है। वह प्रेम से पूर्व स्त्री को हर प्रकार से अनुगत करने में सचेष्ट रहते हैं। तत्पश्चात् प्रेमाराधना में लापरवाह से हो जाते हैं। पुरुष के प्रेम में प्रचण्डता है, किन्तु वह शीघ्र ही ठण्डा हो जाने वाला ज्वालामुखी है। पुरुष के लिए प्रेम एक प्रकार का खेल है। इसके विपरीत स्त्री का सम्पूर्ण जीवन ही प्रेम से निर्मित हुआ है। वह प्रेम से ही जीती है और उसी से अपना भविष्य बनाती है। उसके आन्तरिक भावों का विकास प्रेम से ही होता है। किसी कवि ने सत्य ही कहा है—"प्रेम स्त्री का सम्पूर्ण अस्तित्व है।"

स्त्री का प्रेम शान्त पर सतत् प्रवाहित होने वाली सरिता की तरह गम्भीर है। वह इन्द्रियों से प्रारम्भ होकर आत्मिक ज्ञान की ओर अभिवृद्धि को प्राप्त होने वाला है। स्त्री एक बार प्रेम-दान देकर पुरुष को अपना सर्वस्व दान देती है। उसमें भक्तिभाव, पातिव्रत्य और आत्मिकज्ञान अपेक्षाकृत अधिक है। स्टीफन ज्विग ने सत्य ही निर्देश किया है—"पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में मनःक्षेत्र अधिक स्थूल और प्रसारित है, परन्तु उनमें वह उतने प्रधान भाव से व्यक्त नहीं होता। पुरुषों में कामवासना की स्वाभाविक प्रवृत्ति, शक्ति का एक अशान्त स्रोत है। वह उछल-उछल कर सब प्रकार की नालियों में बह जाता है।"

स्त्री प्रेम से शासन करना चाहती है। उसका प्रेम विकेन्द्रित होता है, जिसमें उसके बच्चे, पति, भाई-बहिन इत्यादि सम्मिलित हैं। मातृत्व का भार उठाने पर उसका वात्सल्य विकसित होता है, करुणा, सहानुभूति, दया, प्रेम, की नाना धाराओं में बहने लगता है। वह अपने बच्चे पर तो प्रेम न्यौछावर करती ही है, सभी बच्चों, पशु-पक्षियों तक को भावुक दृष्टि से निहारती है। स्त्री की भावनाएँ तीव्र होती हैं। संवेग तथा भावना का उसके हृदय में राज्य है। सोच में डूबे रहना, प्रतीक्षा करना और सहजज्ञान ये स्त्री के सनातन गुण हैं। वे अपने सहजज्ञान से पुरुष की साधारण और मुख्य आवश्यकताओं को पहले से ही भाँप लेती हैं और उसका प्रबन्ध करती हैं। दूसरों के मनोभावों को भाँपने तथा भविष्य में आने वाली विपत्तियों का अनुमान लगाने के लिए उन्हें विशेष गुप्त मनोवैज्ञानिक शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

मूर्धन्य मनीषी कामू के अनुसार अधिकांश स्त्रियाँ एक तीखी और गहरी दृष्टि से जान लेती हैं कि यह व्यक्ति कैसा है ? धोखेबाज, बदमाश या सज्जन, नैतिक, बुद्धिमान। मूर्ख स्त्रियाँ दुराचारियों के वश में आ सकती हैं किन्तु बुद्धिमती स्त्री बड़ी चतुर होती है। वह उसके चेहरे से अन्दर के मनोभाव पढ़ सकती है। यदि आप अपना दुःख-दर्द स्त्रियों के सामने वर्णन करें तो वे सहानुभूति प्रदर्शित करेंगी। वे पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावुक हैं, अधिक प्रकार से मानसिक भावों का प्रकाश और अनुभव करती हैं। धार्मिक विचार में वे पुराने संस्कारों से चिपकी रह जाने वाली हैं। स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक व्यवहारकुशल हैं, अपने व्यवहार में अधिक उदार होती हैं। पुरुष के प्रेम पर सदा विचार किया करती हैं और उसके प्रशंसायुक्त प्रेम भरे वाक्य सुनने के लिये सदैव लालायित रहा करती हैं। संक्षेप में पुरुष की अपेक्षा वह अधिक सहनशील, शान्त, प्रतिभासम्पन्न उदार एवं सहजज्ञान युक्त होती हैं।

विवाह में स्त्री-पुरुष के उल्टे गुण एक दूसरे से मिलकर पूर्णता की सृष्टि करते हैं। दोनों का संयोग समाज का एक 'यूनिट' बनाता है। यही यूनिट सम्मिलित रूप में समाज को आगे बढ़ाता है। न तो पुरुष स्त्री के बराबर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है, न स्त्री पुरुषों के गुणों का अनुकरण कर अपने अन्दर उन्हें उत्पन्न कर सकती है। सृष्टिकर्त्ता की रचना ऐसी है कि दो विभिन्न गुण वाले प्राणी भाईचारे और पारस्परिक साझेदारी से एक दूसरे के स्वभाव और प्रकृति को समझकर सम्मिलित रूप से आगे बढ़ते हैं। स्त्री तथा पुरुष के गुण-दोष एवं प्रकृति एक स्थान पर मिलने से 'मनुष्य' बनता है। यदि ये दोनों लिंगों के प्राणी एक दूसरे से पृथक् रहेंगे या लैंगिक प्रतियोगिताओं में उलझे रहेंगे, तो गृहस्थों में पारस्परिक कलह की वृद्धि रहेगी, समाज की समस्वरता नष्ट हो जायगी।

मुन्शी प्रेमचन्द ने एक स्थान पर लिखा है—"गृहस्थी एक साझे की दुकान है। इस दुकान के प्रधान साझेदार दो हैं—स्त्री और पुरुष। यह दुकान तभी फलती-फूलती है और लाभप्रद होती है, जब ये दोनों साझेदार एक-दूसरे के स्वाभाव, प्रकृति, गुण, दोष, आवश्यकता और विशेषता को समझते हों। एक दूसरे का सम्पर्क ज्ञात न होने से उनका साझा भली भाँति नहीं चल सकता। विज्ञान ने स्त्री और पुरुष की तुल्यता की घोषणा की है, न कि उनकी समानता की। बात केवल इतनी ही है कि स्त्री और पुरुष दोनों के संयोग से मनुष्य बनता है, ठीक उसी प्रकार जैसे धनात्मक और ऋणात्मक अणुओं के मिलने से विश्व बना है।"

विवाह के पश्चात् पुरुष को स्त्री के सुख के लिये तथा स्त्री को पति के आनन्द के निमित्त कुछ बलिदान करना पड़ता है। दोनों ही एक दूसरे को सुखी देखना चाहते हैं। अपने जीवन-मित्र के लिये अधिक से अधिक त्याग करने को प्रस्तुत रहते हैं। अत: स्वार्थ और संकुचितता नष्ट हो कर उदारता और त्याग की भावनाएँ जाग्रत होती हैं। जीवन का क्रम है "सुख की ओर अग्रसर होना।" इस त्याग का यह फल होता है कि दोनों ही सुखी रहते हैं। एक दूसरे के लिये सुख खोजने की प्रवृत्ति तथा उपकरण प्रस्तुत करने से अपने लिये सुख पाने का राज पथ तैयार किया जाता है। इस प्रवृत्ति का जनक है कर्तव्यनिष्ठ गृहस्थ-जीवन। गृहस्थ-जीवन एक ऐसी पाठशाला है जिसमे स्त्री-पुरुष के स्वभाव एक होकर एक दूसरे के कमी की पूर्ति करते हुये अधिक से अधिक सुख, समृद्धि और समाज हित के लिये अग्रसर होते हैं।

विवाहित स्त्री-पुरुष त्याग और आत्म-समर्पण की प्रतिमूर्ति हैं। पुरुष सिंह के समान बलशाली, क्रोधी और तीव्र मनोविकारो का लड़ाकू जीव है। लेकिन अपनी पत्नी के समक्ष वह दयालु हो उठता है। जिस नारी को वह एक पराये घर से लाता है, अपने गृह की सम्पूर्ण व्यवस्था, गुप्त बातें उसे सौंप कर ठण्डी साँस लेता है। सब रुपया कमा कर उसी लक्ष्मी को अर्पण करता है। वह स्वयं अपने आप कुछ नहीं खाना चाहता। भूखा रह कर पत्नी के लिये अच्छी-से-अच्छी सामिग्री प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार पत्नी स्वयं दु:ख उठा कर घर के कार्यों में लग कर पति को सुखी देखना चाहती है। वह अपना सुख, खान-पान, पहनावा इत्यादि पति के सुख पर उत्सर्ग कर देती है। यह पारस्परिक आत्म-समर्पण ही गृहस्थ जीवन का निर्माण करता है।

दाम्पत्य जीवन की सफलता

पुरुष का स्वभाव है कि जब तक अपनी प्रेमिका को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसे पाने के लिये अत्यन्त इच्छुक रहता है, प्राणपण से चेष्टा करता है, प्रत्येक प्रकार से प्रेम प्रदर्शन करता है और स्त्री के अतिरिक्त अन्य कुछ भी चीज नहीं प्राप्त करना चाहता है किन्तु एक बार मनचाही पत्नी पाने के पश्चात् क्रमश उसके मन:क्षेत्र में भारी परिवर्तन प्रारम्भ होता है। विवाह के तीन चार मास पश्चात् वह पत्नी की ओर से उदासीन सा होने लगता है। आधी उम्र आने पर अर्थात् ३५, ४० वर्ष का होने पर उसे स्त्री में विशेष आकर्षण नहीं रह जाता। वह उसे अपने विचारों का केन्द्र नहीं मानता। प्रत्युत अन्य सांसारिक कार्यों में प्राणपण से जुट जाता है। स्त्री उसके हृदय के एक कोने में पड़ी रहती है। अधिक आयु होने पर वह स्त्री से चिढ़ने लगता है। कितने ही उनसे डरने लगते हैं। दूसरे उनसे सर्वथा उदासीन होने लगते हैं। कुछेक स्त्री को देख कर डर सकते हैं, उनकी फरमाइश पूरी नहीं करना चाहते।

स्त्री का प्रेम प्रारम्भ में बिल्कुल नहीं रहता किन्तु विवाह के पश्चात् या जान-पहिचान होने के पश्चात् धीरे-धीरे विकसित होता है। तीन मील लम्बे बूँटों की रफ्तार से वह नहीं बढ़ती, जरा-जरा सी आगे चलती है। जब वह एक बार प्रेमी प्राप्त कर लेती है तो स्वभावत: उसे छोड़ना नहीं चाहती। उसमें ममता, अहं, करुणा, सहानुभूति की मात्रा अधिक है। विवाह के पश्चात् उसकी यह आकांक्षा रहती है कि पति के प्रति उसका प्रेम बढ़े। वह उसके हाथ में रहे, उसी से प्रेम करे, अन्य किसी को अपने प्रेम में कोई हिस्सा न दे। स्त्री हर प्रकार—आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक दृष्टि से—उसकी स्वामिनी बनने को लालायित रहती है।

स्त्री का हृदय प्रेम, करुणा, ममता एवं सहानुभूति की रंगभूमि है, वह कोमलता एवं सहनशीलता की कल्पलता है, क्षमा एवं त्याग की तपोभूमि है, वह भिन्न-भिन्न भावनाओं का आश्चर्यजनक सम्मिश्रण है। वह चिर सुन्दर है, चिर कोमल है, वह अपने प्रिय के लिए अपने सर्वस्व का त्याग कर सकती है और अपने मान-अपमान एवं निन्दा-स्तुति की भी चिन्ता नहीं करती। वह बड़े से बड़े अपराधी को भी क्षमा कर सकती है।

दो प्रतिकूल तत्वों का सम्मिश्रण—उक्त दोनों प्रतिकूल तत्वों से ही संसार का निर्माण हुआ है। इसी प्रतिकूलता में संसार का आनन्द अन्तर्निहित है। बिना पुरुष के नारी अभाव का अनुभव करती है, बिना स्त्री के पुरुष

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अधूरा ही रहता है। दोनों की न्यूनताएँ दूसरे साथी में पूरी हो जाती हैं।

पुरुष का निर्माण एक युद्ध करने वाले, दृढ़ी, निडर, हृदयहीन सैनिक के समान किया गया है। उसमें जीवन निर्वाह के साधनों को एकत्रित करने का साहस है। दूसरी ओर, स्त्री में लावण्य एवं रूप की अनुपम राशि प्रदान की गई है। यदि पुरुष उद्दण्ड है, तो स्त्री कोमल, सहनशील। पुरुष शक्ति आक्रामक है, तो स्त्री-शक्ति आत्म रक्षक। पुरुष उन्नतिशील होता है, तो स्त्री धैर्यवान। पुरुष अधिकार, शक्ति व दण्ड से शासन करता है, स्त्री अपने प्रेम से, आँसू से और मृदुलता से। यदि पुरुष शब्दों में विनय करता है तो स्त्री दृष्टि की विनम्रता से।

मूर्धन्य नृतत्ववेत्ता एम. मेगरमोंट ने कहा है—"पुरुष वर्तमान में भविष्य को भूल जाता है, स्त्री भविष्य को संभालने व अधिक सुखकर बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहना चाहती है। स्त्री के मातृभाव के लिए पूर्ण त्याग व नि:स्वार्थ परिश्रम की आवश्यकता है। पुरुष अपने प्रेम को केन्द्रित कर सकता है, परन्तु स्त्री जब मातृत्व का भार ग्रहण कर लेती है तो उसकी प्रेम-धारा सर्वतोमुखी होकर प्रवाहित होती है।"

"पुरुष अग्रगामी है किन्तु स्त्री मार्ग प्रदर्शक। पुरुष शीघ्रता से प्यार करता है परन्तु स्त्री का प्रेम इतना प्रबल होता है कि वह अपने प्रेमी के दुर्गुण भी नहीं देखना चाहती। पुरुष प्रेम के प्रमाण नहीं चाहता, स्त्री का आत्म समर्पण ही उसके लिये यथेष्ट प्रमाण है पर स्त्री पुरुष के प्रेम पर हमेशा सोचा-विचारा करती है।"

"पुरुष के जीवन में प्रेम एक छोटा-सा हिस्सा है, वह शीघ्रता से प्यार करता है, जैसे भागता सा हो। किन्तु स्त्री पग-पग पर रुकती है, सोचती है, तब अपना हृदय देती है। वह अपने प्रेमी के प्रेम का सबूत दिन में कई बार उसके मुख से, वाणी से एवं नेत्रों से चाहती है। उसका संसार मोहब्बत से सराबोर है, अन्य बातें उसमें गौण महत्व रखती हैं। स्त्री जीवन प्रेम पर ही अवलम्बित है। प्रेम की प्यासी स्त्री को ठुकरा कर भारी शत्रुता खड़ी की जा सकती है। पुरुष आखिर निश्चयी, मजबूत एवं स्फूर्तिमान होता है, स्त्री अधिक सहनशील प्रेमी, उदार। पुरुष चीर-फाड़ करने वाला निर्दय सर्जन बन सकता है तो सेवा-शुश्रूषा के लिये कोमल हृदय स्त्री की आवश्यकता पड़ती है।"

सफल दाम्पत्य जीवन का रहस्य—दाम्पत्य जीवन का समस्त सुख केवल एक बात में है पति-पत्नी एक दूसरे के मनोभावों को समझ लें। अपने साथी की इच्छाओं, आकांक्षाओं, मनोभावनाओं का विश्लेषण करें। एक-दूसरे के दृष्टिकोण को सहानुभूतिपूर्वक देखें, समझें और एक-दूसरे के सम्मुख सदा सिर झुकाने को तैयार रहें तो उनका जीवन स्वर्गीय प्रकाश से परिपूर्ण हो सकता है। एक-दूसरे के मनोभावों के अनुसार चलने से उनके जीवन में प्रेम की सुखद निर्झरिणी शत-शत धाराओं में बह सकती है। स्मरण रखिये जहाँ पुरुष दुर्बल है वहाँ स्त्री की शक्ति प्रकट होती है। पुरुष सर्वस्व प्राप्त कर सकता है और स्त्री सर्वस्व दान दे सकती है। स्त्री और पुरुष दोनों ही सृष्टि की महान् शक्तियाँ हैं किन्तु पूर्ण होने के लिये दोनों का सहयोग चाहिये। पुरुष एवं स्त्री का पारस्परिक सम्मिलन आत्मा का सम्मिलन है।

स्त्री कल्पलता है। जब पुरुष अकिंचन हो जाता है तो स्त्री की छत्र-छाया में रह कर वह पुन: शान्ति प्राप्त कर सकता है।

विवाह के प्रारम्भ में आप खूब देख-भाल कर पत्नी चुन सकते हैं। खूब टीका-टिप्पणी कर सकते हैं किन्तु विवाह के पश्चात् एक दूसरे के दुर्गुणों को आँख मीच कर टाल देने में ही लाभ है। आपस की आलोचना डराने-धमकाने, मारने-पीटने से गृह कलह बढ़ता है क्योंकि हमारे 'अहं' भाव को भारी धक्का पहुँचता है।

पति को वश में करने का उपाय—जो पत्नी अपने पति का स्थायी प्रेम चाहती है उसे अपने पति के स्वभाव, प्रकृति, विचार, मनोभाव, संवेदनाओं का गहन अध्ययन करना चाहिए। पुरुष पर शासन करने के लिये यह मालूम करना चाहिये कि वह पत्नी से क्या-क्या आशाएँ रखता है ? उसे किस काम में पत्नी की सहायता चाहिये। वह उसे किस रूप में—सहायक, मित्र, प्रेमिका, गृहणी, सेविका—देखना अधिक पसन्द करता है ? किन-किन गुणों, कलाओं को चाहता है ? साथ ही पत्नी को यह भी मालूम करना चाहिए कि पति में कौन-कौन-से दुर्गुण हैं ? क्या-क्या कमजोरियाँ हैं ? क्या-क्या दूसरों की कुसंगति से लग गई हैं ?

पुरुष बल-पराक्रम का पुतला है और किसी न किसी पर शासन करने में आनन्द लेता है अत: उसे अपने ऊपर शासन करने देकर पत्नी उसके 'अहं' को उत्तेजित कर सकती है। पत्नी उसकी प्रेमिका होती है अत: वह उस पर पूरा-पूरा अधिकार रखना चाहता है। अत: उसे अनुशासन का अवसर दीजिये। विवाहित जीवन में छोटी-छोटी बातों पर खड़े होने वाले मतभेदों, गलतफहमियों, झगड़ों से सतर्क रहिये। यदि कोई मतभेद आये तो भी तो अपने साथी के दृष्टिकोण को सहानुभूति पूर्वक समझिये।

पति अपनी पत्नी के मुख से वचन सुनने को लालायित रहता है, जिनसे उसकी श्रद्धा और अगाध विश्वास प्रकट हो। अत: ऐसे वचन कहने में कंजूसी नहीं करना चाहिए। अपने स्वाभाविक गुणों की वृद्धि करें। कोमलता, मधुरता, सौन्दर्य बढ़ायें। पुरुष इन गुणों से अधिक आकर्षित होता है क्योंकि ये उसमें नहीं हैं। स्त्री के लिए हँसमुखी और रसिक होना सुन्दर होने से अधिक आवश्यक है। पुरुष स्त्री की रसिकता, हँसी, बाँकी चितवन पर अधिक आकर्षित होता है। स्त्री का जीवन छोटी-छोटी

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

झंझटों से मुक्त होता है। यदि वह उन्हें हँस कर न टाल सके, तो पागलखानों या तपेदिक के अस्पतालों की ही शोभा बढ़ा सकती है। पति को दास वे ही बना सकती हैं, जो उसके दोषों या विशेषताओं पर चिढ़ने के स्थान पर हँस कर टाल देती हैं।

प्रियतमा को जीतने के मनोवैज्ञानिक सूत्र—हम में जो गुण नहीं हैं उनसे युक्त व्यक्तियों के प्रति हम स्वत: आकर्षित होते हैं। अत: प्रियतमा को जीतने के लिये अपने पुरुषोचित गुणों बल, वीर्य, पराक्रम, साहस, अनुशासन की अभिवृद्धि कीजिए। कोमल, पतले, दुबले, कमजोर, क्षैण पुरुष स्त्रियों को अच्छे नहीं लगते।

स्त्री जितना वीर पुरुष से प्यार करती है उतना धनियों या पण्डितों को नहीं। स्त्री दास एवं दब्बू पुरुष को भी पसन्द नहीं करतीं।

अपने वस्त्रों और वेश पर सदा ध्यान रखें। स्त्री यदि अपने सौन्दर्य की चिन्ता करती है, यदि तुम्हारी प्रसन्नता के लिए, उसकी अभिवृद्धि के लिए वह निरन्तर चेष्टा करती है तो इसका यह अर्थ है कि वह सौन्दर्य का मूल्य समझती है और तूम्हें भी आकर्षक, साफ-सुथरे रूप में देखना चाहती है।

स्त्री की खूबियों बयान करो, उसका आदर करो, उसके उत्तम कार्यों पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करो और इन सबके लिए थोड़ी प्रशंसा भी करो। बार-बार उसे यही भी दर्शाओ कि तुम उसे बहुत प्रेम करते हो। यह समझकर चुप न रह जाओ कि उससे एक बार तो कह ही दिया है। वह आपके मुख से अपने प्रति बार-बार सुनना पसन्द करती है।

दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने वाले स्वर्ण सूत्र

वैवाहिक जीवन में सुख-दु:ख के आर्थिक और सामाजिक कारण अवश्य होते हैं। किन्तु प्रधान कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं। पति-पत्नी में अनेक अज्ञात भावनाएँ प्रसुप्त इच्छाएँ, पुराने संस्कार कल्पनाएँ होती हैं। जो अप्रकट रूप से प्रकाशित हो जाती हैं। प्राय: दो प्रेमी प्रसन्नता से वैवाहिक सूत्र में आबद्ध होते हुए देखे गये हैं। किन्तु विवाह के कुछ काल पश्चात् उनका पारस्परिक आकर्षण न्यून होता देखा जाता है। बाद में तो वे परस्पर घृणा तक करने लगते है। इस घृणा के कारण प्राय: आन्तरिक होते हैं। इसका प्रधान कारण मनुष्य की उभयलिंगता है जिसका अभिप्राय यह है कि हर एक पुरुष में स्त्रीत्व का अंश विद्यमान है तथा हर स्त्री में पुरुषत्व का। बड़े होने पर किन तत्वों की प्रधानता हो जायगी, इस मनोवैज्ञानिक आधार पर स्त्री-पुरुष का मेल निर्भर है।

यदि संयोगवश ऐसे दो प्राणी वैवाहिक सूत्र में आबद्ध हो गये हैं, जिनमें एक ही लिंग की प्रधानता है—जैसे स्त्री में पौरुषत्व और पुरुष में भी पुरुषत्व के गुण बढ़े हुए हैं अथवा स्त्री में तो स्त्रीत्व है ही, उसके पति में भी स्त्री-तत्व की प्रधानता है, तो वैवाहिक जोड़े में साम्य, सुख-समृद्धि और आन्तरिक सन्तुलन न रह पायेगा।

वास्तव में दाम्पत्य जीवन का वास्तविक सुख तभी प्राप्त हो सकता है, जब स्त्री में स्त्रीत्व के गुणों का तथा पुरुषों में पुरुषोचित गुणों का स्वाभाविक और अबाध विकास हो। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उनमें विपरीत गुण बिलकुल ही न हों। इसका आशय केवल इतना ही है कि पुरुष में पुरुषत्व की प्रधानता हो और स्त्री में स्त्रीत्व की प्रधानता हो। पुरुष में स्त्रीत्व के गुण केवल गौण रूप से और स्त्री में पुरुषत्व के गुण गौण रूप से रह सकते हैं।

पुरुषत्व के गुण—पुरुष का प्रधान गुण है पौरुष अर्थात् शक्ति, साहस, निर्भयता, सक्रियता। उनमें १-शरीर बल २-मानसिक बल ३-चरित्र बल ४-संकल्प बल की प्रधानता है। पुरुष का निर्माण सतत् युद्ध करने वाला, कठोरता, दृढ़ता और पाशविक शक्ति से पूर्ण जीव की भाँति हुआ है। पुरुष अहंकारी, क्रोधी, तामसी, मदोन्मत्त, प्रेमोन्मत्त है। उसे शक्ति का अवतार कहना युक्तिसंगत होगा। आदि प्रकृति का बर्बर जंगली पुरुष आज भी उसमें जाग रहा है। पुरुष स्वभाव से ही उपार्जनशील और रमणशील है। वह अपने अन्दर एक शक्ति का अनुभव करता है और उसी से प्रेरित होकर शीघ्रता और आतुरता में काम करता है।

स्त्रीत्व के गुण—स्त्री कोमलता, मृदुता, सौम्यता एवं सहानुभूति की खान है। उसमें भावनाओं की प्रचुरता है, दयालुता, स्नेह, सौकुमार्य, विवेक है। उसका भाव पक्ष पुरुष की अपेक्षा विशेष उन्नत एवं परिपक्व है। वह गम्भीरता से सोचती है, उसके दृष्टिकोण में विशालता है, उसकी अन्तर्दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। स्त्री स्वभाव और शरीर से कोमल है।

स्त्री और पुरुष को अपने अन्दर ही सीमित रहने में सुख का अनुभव नहीं होता, वरन् वे विपरीत सेक्स वाले प्राणी के सहवास में रहकर पूर्णत्व की प्राप्ति के लिए इच्छुक होते हैं। एक दूसरे के प्रत्येक कार्य में सहायता करते हैं और अतृप्त कामनाओं को पूर्ण करते है, पुरुष जब पवित्र त्यागमयी भावनाओं से अपनी पत्नी को अपने समान सीमित कर उच्च आध्यात्मिक भूमि पर लाता है, तो उसे उसके पौरुष में विश्वास होता है। इसी प्रकार स्त्री सहायक, मित्र विपत्तियों में धैर्य प्रदान करने वाली, सहनशील बन कर पुरुष को समुन्नत करती है।

सुखी, सन्तुष्ट, पवित्र भावनाओं वाले, संयमशील और शिक्षित पति-पत्नी के बच्चे प्रारम्भ से ही उच्च संस्कार लेकर जन्मते हैं और पूर्ण गृहस्थ फलता-फूलता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

है। पति-पत्नी की हिंसात्मक क्रियाओं का स्थान रचनात्मक प्रवृत्तियाँ ले लेती हैं। मनोविश्लेषण की दृष्टि से बाँझ स्त्री तथा वह पुरुष जिसके बच्चे न हों, भयानक विषैली भावना ग्रन्थियों से ग्रसित रहते हैं, हिंसात्मक, घृणास्पद और बेरहमी के कार्य करते हैं। जब स्त्री-पुरुष को अपनी उच्चता, पवित्र आध्यात्मिक गुप्त शक्तियों में विश्वास होने लगता है, तब उनकी दबी हुई प्रवृत्तियों का रुझान रचनात्मक कार्यों की ओर अधिक हो जाता है। घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, स्वार्थ नष्ट हो जाते हैं। विवाहित स्त्रियाँ कुँवारियों से अधिक जीती हैं।

गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने के स्वर्ण सूत्र—डेलकार्नेगी ने दाम्पत्य मनोविज्ञान का गूढ़ अध्ययन कर जो निष्कर्ष निकाला है, उसे आज पाश्चात्य देशों में क्रांति हो गयी है। इसमें स्त्री-पुरुष के मन की अपेक्षा गुप्त भेदों का ज्ञान भरा पड़ा है। इनमें से कुछ निम्न हैं—

(१) पतियों को तंग मत करो—यह नियम स्त्रियों के लिए है, जो समय-कुसमय अपने पति से उसकी आर्थिक स्थिति को ध्यान में न रख भाँति-भाँति की फरमायश करती हैं। जीभ पर अधिकार न होना, प्रलोभन, सिनेमा देखना, आभूषण अच्छे वस्त्रों की जिद से पति परेशान हो उठता है। विचार तथा स्वभाव के मतभेद होते हैं, फिर बढ़ कर पारिवारिक जीवन को नष्ट करते हैं।

(२) समालोचना मत करो—पति या पत्नी जब एक दूसरे की कमजोरियों, खराबियों पर ध्यान देने लगते हैं, तो फिर प्रेम-डोर टूट जाती है। प्रेम की उच्च भूमिका में आपको एक दूसरे के दुर्गुणों, कमजोरियों को भी सहन करना है। यदि शीघ्र ही एक दूसरे की त्रुटियों पर ध्यान एकाग्र हो जाय तो एकाग्रता के नियमों के अनुसार उन्हीं की अभिवृद्धि होगी।

(३) निष्कपट भाव से प्रशंसा करो—अपने जीवन-साथी को उत्साहित करना, ऊँचा उठाना, शिक्षित, सुसंस्कृत, सभ्य नागरिक बनाना आपका कर्तव्य होना चाहिए। प्रत्येक अच्छाई की प्रशंसा कीजिए और दिल खोल कर कीजिए। प्रशंसा से उनके और भी गुण, अच्छा स्वभाव विकसित हो सकेगा। मित्रभाव, सहनशीलता, सहयोग बढ़ेगा। अधिकांश पत्नियाँ अच्छी ही होती हैं, पर पति के उत्साहित न करने से, उनका विकास रुक जाता है। झिड़कने, मारने, पीटने, अशिष्ट व्यवहार करने या निर्दयता का व्यवहार करने से पत्नी का हृदय टूक-टूक हो जाता है। गुप्त विश्वास टूटते ही तलाक की नौबत आती है। अतः पति को सदा सर्वदा पत्नी को उच्च गुणों के सजेशन ही देने चाहिए। निष्कपट भाव से उसके प्रत्येक कार्य, घर की सजावट, रसोई, बनाव-शृंगार, शिशुपालन आर्थिक सहयोग की प्रशंसा करनी चाहिए।

(४) छोटी-छोटी बातों का ध्यान रखो—गृहस्थी छोटी-छोटी बातों से टूटती और बनती है। स्त्रियाँ पति को साफ-सुथरा देखना पसन्द करती हैं, अपनी बाबत अच्छे विचार पुनः-पुनः सुनना चाहती हैं, अपने कपड़ों, घरेलू व्यवस्था, भोजन की प्रशंसा सुनना चाहती हैं। यदि आप उनके किये हुए कार्य में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते, तो वह क्यों अच्छी बनेगी।

कुछ व्यक्ति रुपया-पैसा अपने हाथ में रखते हैं और पत्नी को दो-दो चार-चार आने माँगने पड़ते हैं। उसके 'अंह' और गर्व को धक्का पहुँचता है। अपने अन्दर वह हीनत्व की भावना का अनुभव करती है, जिससे पारस्परिक प्रेम में दरार पड़ जाती है। अतः पत्नी के प्रति व्यवहार में सावधानी बरतनी चाहिए। उसकी उचित और नैतिक माँगों की पूर्ति में आलस्य करना घर में झगडे का वृक्ष बोना है।

जो युवक-युवती एक-दूसरे पर अंधाधुन्ध आसक्त होकर विवाह करते हैं, वे एक दूसरे के सुख और आनन्द पाने की बड़ी आशाएँ लेकर आते हैं। यदि दोनों एक दूसरे की छोटी-छोटी बातों का ध्यान न रखें तो शीघ्र ही दाम्पत्य जीवन कंटकाकीर्ण हो जाता है। एक दूसरे का मन रखने के लिए पर्याप्त समझ, साहस और कड़े परिश्रम की आवश्यकता है।

पत्नी से कुछ भी मत छिपाइए अन्यथा वह शक करेगी और गुप्त मानसिक व्यथा से दग्ध होती रहेगी। उसे यह बतला दीजिए कि आप क्या कमाते हैं ? कैसे व्यय करते हैं ? कितना बीमा करा रखा है ? किसके नाम वसीयत है ? आय-व्यय कैसे चलता है ? भविष्य में आपकी क्या-क्या योजनाएँ हैं ? कितना रुपया आपने एकत्रित किया है ? इत्यादि-इत्यादि।

पति को निरन्तर कोमलता और निरन्तर पत्नी की देख-रेख द्वारा उसके प्रति अपने प्रेम का प्रकाश करते रहना चाहिए अन्यथा प्यार की भूखी स्त्री जहाँ भी उसे प्रेम मिलेगा, उसी ओर आकर्षित हो जायगी। विवाह के पश्चात् जब तक जीवित रहें, प्रेम दान करते रहना चाहिए। शिष्टाचार की छोटी-मोटी बातों को इज्जत और नये-नये उपहार लाने की बात भूल नहीं जाना चाहिये। क्योंकि स्त्रियाँ इस बात को बहुत महत्त्व देती हैं। स्त्री प्रेम और प्यार के अभाव में साधारण सुख का जीवन भी व्यतीत नहीं कर सकती। प्रेम उसकी आत्मा का भोजन है।

(५) सुशील बनो—आपको ऐसा चुम्बक बनना चाहिए, जिससे आकर्षित होकर स्त्री अथवा पुरुष आपसे कुछ आध्यात्मिक प्रेरणा, उत्साह, शिक्षा, पथप्रदर्शन प्राप्त कर सके। प्रसन्नता, सौम्यता और सुशीलता से आप घर भर में रस संचार कर सकते हैं। ऐसा पति किस अर्थ का जिसके घर में प्रवेश करते ही सब डर जायँ, बच्चे दुबक जायँ, खामोशी और मुर्दानी छा जाय ? विनयशीलता से आप अपनी पत्नी की इच्छाएँ समझ सकेंगे। उसकी अनुचित फरमायशों को तर्क और बुद्धि द्वारा धीरे-धीरे दूर कर सकेंगे। क्रोध, मारपीट, द्वेष या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

तलाक द्वारा आप कदापि कुछ न कर सकेंगे। समानता, निष्कपटता, शिष्टता का व्यवहार ही सम्मानीय है।

(६) कामशास्त्र की भिज्ञता की अनिवार्यता—मनुष्य के काम-जीवन का क्या तात्पर्य है ? उसकी निगूढ़तम गुत्थियों का अध्ययन प्रत्येक स्त्री-पुरुष के लिए अतीव उपयोगी है। सस्ती बाजारू अश्लील पुस्तकों से सावधान। यह मार्ग बड़े उत्तरदायित्व और आर्थिक परीक्षा का है। अत: इसकी पुस्तकों के चुनाव विवेकपूर्ण ढंग से होना चाहिए।

दाम्पत्य कलह का एक कारण दाम्पत्ति का, विशेषकर पुरुष का काम विज्ञान से अनभिज्ञ होना है। पुरुष स्वभाव से ही ढीठ और स्त्री शीलवती है। इसके अतिरिक्त वह केवल पतित्व की वेदी पर ही अपने को निछावर करने में आनन्द मानती है, वह पतित्व के साथ ही दाम्पत्य प्रेम भी चाहती है। जो पुरुष प्रथम संयोग में ही स्त्री को अपनी कामना का शिकार बनाने की बर्बरता करता है, वह भयंकर भूल करके दाम्पत्य कलह का बीज बोता है। विषय मानसिक विकार एवं शरीर का मल पदार्थ है। किन्तु पवित्र दाम्पत्य प्रेम को हृदय की उच्चतम अभिव्यक्ति है। हृदय के आदान-प्रदान में पर्याप्त समय लगता है। हृदय ही स्त्री की सम्पत्ति है। वह सहज ही पुरुष को नहीं देती और एक बार देकर फिर वापिस नहीं लेना चाहती। अत: कामविज्ञान के शिक्षण से मनुष्य नारी हृदय की निगूढ़तम गहराइयों की शिक्षा पाकर बर्बरता, निष्ठुरता से बच सकता है।

उपरोक्त नियमों के पालन से बहुत लाभ हो सकता है। स्मरण रखिए गृहस्थाश्रम पति और पत्नी की साधना का आश्रयस्थल है। यहाँ जीवन की, धर्म, अर्थ और काम की साधना की जाती है। पति-पत्नी दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, सहायक हैं, मित्र हैं। दोनों का कार्य एक दूसरे के गुणों की अभिवृद्धि करना है, क्षुद्रताओं का उन्मूलन करना है और परस्पर एक अभिन्नता बनाये रखना है। इसके लिए प्रत्येक को संयम, सहनशीलता एवं स्वार्थ त्याग अपने अन्दर विकसित करना चाहिए।

पति का नाम 'भर्त्ता' अर्थात् भरण और पोषण करने वाला है। पत्नी में उसकी शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक, सामाजिक जो विभूतियाँ या न्यूनताएँ हैं, उनकी पूर्ति का उत्तरदायित्व भी उसी के ऊपर है। उसकी शक्तियों का विकास करे, पोषण करे, कुत्सित मार्ग से बचावे तथा सदा सर्वदा सन्तुष्ट रखे।

पत्नी साधिका है। जिस प्रकार एक साधक अपने प्रभु की साधना में अपना सर्वस्व समर्पण कर देता है, उसी प्रकार पत्नी अपने मन में द्वेष की भावना न रखकर पति को अपना आराध्य मानकर अपना भला और बुरा सब कुछ सौंप दे। यदि पति कुमार्गगामी हो, तो प्रेम प्रशंसा और युक्ति द्वारा उसका परिष्कार करे। कुमार्गगामिता एक मानसिक रोग है। अशिक्षा और मूढ़ता की निशानी है। इस रोग के उपचार के लिए समझने, तर्क, बुद्धि तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से कुमार्ग की हीनता प्रदर्शित करने की आवश्यकता है। निराश होने के स्थान पर प्रयास-पुरुषार्थ से अधिक लाभ हो सकता है।

पितृ ऋण के उद्धार का एकमात्र साधन दाम्पत्य जीवन की शान्ति है। सन्तान का उत्पादन और सुशिक्षण योग्य दम्पत्ति के बिना कदापि सम्भव नहीं है। योग्य माता-पिता, उचित वातावरण, घरेलू संस्कार, पुस्तकों तथा सत्संग द्वारा योग्य सन्तान उत्पन होती है। योग्य सन्तान के इच्छुकों को सर्वप्रथम स्वयं अपना परिष्कार एवं सुधार करना चाहिए।

दाम्पत्य जीवन का उद्देश्य 'भोग' नहीं उन्नति है। सब प्रकार की उन्नति के लिए दाम्पत्य जीवन आपको अवसर प्रदान करता है। यहाँ पहले शरीर, फिर सामाजिक जीवन, व्यक्तिगत जीवन और आध्यात्मिक जीवन की उन्नति के साधनों को एकत्रित करना चाहिए। उन साधनों को अपनाना चाहिए जिससे परस्पर का द्वैत नष्ट हो और आत्मरति एवं आत्मप्राप्ति की ओर दोनों जीवन-साथी विकासमान हों। जब दोनों एक दूसरे की उन्नति में सहयोग प्रदान करेंगे, तो निश्चय ही अभूतपूर्व गति उत्पन्न होगी।

भोग का शमन भोग से नहीं होता। भोगने से वासनाएँ द्विगुणित होती हैं और अपने चंगुल से मनुष्य की मुक्ति नहीं होने देतीं। एक के पश्चात् दूसरा प्रलोभन मनुष्य को आकर्षित करता है। अत: जितने से शरीर, मन, आत्मा की उन्नति हो, उतने से ही सम्पर्क करना चाहिये। जीवन में फैशनपरस्ती, अभक्ष पदार्थों का उपयोग, नशीली वस्तुओं, रुपया उधार देना या लेना, व्यर्थ के दिखावे बढ़ाने से मनुष्य उनका गुलाम बन जाता है। इनमें व्यवधान उपस्थित होने से कलह बढ़ता है।

स्त्री-पुरुष का दाम्पत्य सम्बन्ध आत्म-यज्ञ के लिये है। यज्ञ में ईश्वरीय शक्तियों का विकास एवं आत्मभाव का विस्तार होता है। उच्च संस्कारों द्वारा मानव जीवन को परिपुष्टि करने के लिए ही यह दाम्पत्य जीवन का निर्माण किया गया है। इसलिये स्त्री-पुरुष को विषय-वासना का गुलाम नहीं बनना चाहिये। भोग से जितनी दूर रहा जाय, उतना ही उत्तम है।

सौन्दर्य की निस्सारता

"आवश्यकता है—एक सुन्दर पढ़ी-लिखी कन्या की, जो सम्पूर्ण गृहकार्यों में निपुण हो तथा सीना-पिरोना इत्यादि जानती हो।" आजकल छपने वाले विवाह सम्बन्धी विज्ञापनों में सौन्दर्य की माँग उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर है। सौन्दर्य के लिये दौड़-धूप बढ़ रही है। रूप-रंग की चिन्ता माता-पिताओं के लिये एक विषम पहेलिका बनी है। युग की इस बढ़ती हुई माँग को देखते हुए अनेक प्रश्न

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मानस जगत् में उठ आते हैं। एक स्त्री के लिये सुन्दरता का क्या स्थान है ? क्या सुन्दर लड़की सीधी-साधी लड़की की अपेक्षा सुगमता के साथ जीवन यात्रा तय कर सकती है। क्या उसका सौन्दर्य उसके मार्ग को साफ करेगा ? क्या सब लोग सौन्दर्य के कारण उससे मित्रता करेंगे ? उसके चरणों पर लोटेंगे ? ये प्रश्न आधुनिक युग में यूरोप तथा अमेरिका के समाजों में वाद-विवाद के विषय बने हैं। सौन्दर्यशास्त्र के विशेषज्ञों में इस विषय पर मतभेद है।

बर्नार्डशा से एक बार पूछा गया कि स्त्री जीवन में सौन्दर्य का क्या मूल्य है ? तो उनने कहा था कि सुन्दर से सुन्दर स्त्री कुछ दिन पश्चात् साधारण सी प्रतीत होने लगती है। पति के लिये सौन्दर्य भी फीका सा लगने लगता है। वह रहते-रहते यह विस्मृत कर देता है कि उसकी पत्नी में सौन्दर्य नाम की कुछ चीज भी है। उसके लिये वह पत्नी साधारण सी हो जाती है। यही हाल मामूली स्त्रियों का है। प्रारम्भ में सम्भव है सौन्दर्य न होने के कारण वे पति प्रेम से वंचित रहें किन्तु कुछ सम्पर्क से अन्य स्त्री सुलभ गुणों का विस्तार होता है, तथा पारस्परिक दाम्पत्य प्रेम निखर आता है।

अभी हाल ही में चार्ल्स ग्रिफिथ का 'ब्यूटी इन दि इस्ट' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उससे इंग्लैण्ड में खलबली मच गई है। उनका कथन है कि सौन्दर्य का स्थान जीवन में अत्यन्त न्यून है। जो स्त्रियाँ रूपवती नहीं थीं, ऐसी अनेकों ने समाज में सफलता एवं आदर दोनों प्रचुर मात्रा में प्राप्त किये हैं। सुन्दरता चाहे और सब कुछ हो, किन्तु वह व्यक्तिगत सफलता के लिये आवश्यक नहीं है। चार्ल्स ग्रिफिथ का कथन है कि सौन्दर्य का प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव तो पड़ता है किन्तु बुद्धि, शील, चरित्र के अन्य गुणों के बिना वह निरर्थक है।

संसार में शायद ही कभी ऐसा युग आया हो जब सौन्दर्य पर, आकर्षक बनने की विधियों, वस्तुओं तथा साधनों पर इतना रुपया-पैसा लगा हो, जितना इस युग में लग रहा है। आजकल सिनेमा ने तो और भी गजब ढाया है। स्त्रियों को सिनेमा एक्ट्रेस बनने की धुन सवार है। घण्टों सुन्दरता की खोज चलती है। नये-नये वस्त्रों के आविष्कार किये जाते हैं। इसका फल यह है कि आज हमारे ग्रहस्थ जीवन में भयंकर असन्तोष उत्पन्न हो गया है।

स्त्री का स्त्रीत्व ही सबसे सुन्दर है। उसका स्त्री होना, महिलोचित गुणों से सम्पन्न होना उसका प्रधान आभूषण है। उन देशों की महिलाओं को देखिये जो साधारण ही हैं, सुन्दर नहीं, किन्तु जो समाज में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर रही हैं। सब कुछ सौन्दर्य पर ही निर्भर नहीं है। सौन्दर्य एक उन्माद है जो मार्ग में रोड़ा अटकाता है। इसके विपरीत जिस गृह में स्नेह, प्रेम, सौहार्द्र, विद्या-प्रेम आदि सद्गुणों का निवास है, उसमें सौन्दर्य आँधी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

आज के पुरुष केवल कोरे सौन्दर्य से ऊबने लगे हैं। उन्हें सौन्दर्य के खोखलेपन का ख्याल हो उठा है। चकाचौंध करने वाली रूप कुमारी के स्थान पर गुणवती कन्या ही श्रेष्ठ है।

वैवाहिक असफलता के कारण

हमारे समाज में नब्बे फीसदी विवाह केवल इस कारण असफल होते हैं कि पति या पत्नी निरन्तर एक दूसरे में कोई न कोई खराबी, कमजोरी या न्यूनता निकाला करते हैं। विवाह के पश्चात् कटुता का यहाँ तक कि तलाक का प्रमुख कारण है—तीखी आलोचना, निर्मम, हृदय-विदारक टीका-टिप्पणी, पति पत्नी में जरा सी कमी पाते ही झल्ला उठता है और बिगड़कर २-४ उलटी-सुलटी, जली-कटी सुना देता है। उधर सम्भ्रान्त पत्नियाँ तक पति की बात पर तुनक उठती हैं, अपनी स्वतन्त्रता में जरा सा फर्क आते देख कर चिल्ला उठती हैं। भाँति-भाँति के भय दिखा कर पति पर आतंक जमाना चाहती हैं। इसके कारण क्या है ?

कारण है मनुष्य का 'अहं'। प्रत्येक स्त्री-पुरुष बड़ी तत्परता से 'अहं' की रक्षा करता है। वह नहीं चाहता है कि कोई तनिक भी हानि उसे पहुँचाये। जरा सी भी आलोचना 'अहं' पर बड़ा प्रभाव डालती है। कुछ व्यक्तियों का स्वभाव तो इतना ग्रहणशील होता है कि साधारण सी आलोचना का बड़ा विषैला प्रभाव उनके अन्तर्मन पर पड़ता है। उनका मानसिक संस्थान एक दम विक्षुब्ध हो उठता है और वह विद्रोह कर बैठते हैं। 'अहं' की रक्षा के लिये मनुष्य कुछ का कुछ करने को तत्पर रहता है। पचास प्रतिशत विवाहों के असफल होने का एकमात्र कारण अपने जीवन साथी के 'अहं' पर हमला करने का है !

पति-पत्नी को इस सम्बन्ध में बड़ा सतर्क रहना चाहिए। यदि आप पति हैं तो भूल कर भी पत्नी के कामों की आलोचना न कीजिए। दोष निकालना, अधिक टीका-टिप्पणी करना, अपने विवाहित जीवन को काले बादलों से आच्छादित कर लेना है। यदि सम्भव हो तो इस अप्रिय कार्य को बिल्कुल ही न करें। यदि जीवन साथिन में कुछ कमजोरियाँ हैं तो उनकी ओर एक हल्का-सा संकेत यथेष्ट होता है। प्रेमपूर्ण सहानुभूति से स्निग्ध स्वर में, जब कभी आपकी सहधर्मिणी अच्छी मुखमुद्रा में हो, सरलता से उनकी कमजोरियो पर प्रकाश डाल दीजिए। आलोचना ऐसे ढंग से की जाय कि उसका प्रभाव सृजनात्मक हो, वह केवल दूसरे को नीचा दिखाने या मजाक बनाने के लिए न हो, उनमे व्यंग्य-वाण न हो, कडुवाहट न हो, शुष्कता न हो। आलोचना ऐसी हो जो अहं को मर्माहित न करे वरन् उसे सहारा देकर ऊपर उठाये, उन्नत एवं परिपुष्ट होने मे सहायता करे। आपकी आलोचना सुनकर आपकी पत्नी आपसे घृणा करने के

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

स्थान पर आपको अपना हितैषी मान कर आपके कथनानुसार कार्य करने में गर्व का अनुभव करे एवं क्रमशः वह अपनी कमजोरियाँ दूर करती जाय।

उदारहणार्थ मान लीजिये, पत्नी ने भोजन अच्छा नहीं बनाया, रोटियाँ जली हुई हैं, दाल में नमक अधिक है और वह कुछ क्रुद्ध भी है। क्रोध की अवस्था में यदि आप आलोचना करने बैठ जायेंगे, तो कदापि उसका अच्छा प्रभाव न पड़ेगा। उल्टी पत्नी और नाराज होगी। जब उनका क्रोध शान्त हो ले, तब आप आलोचना करने बैठें, वह भी इस प्रकार मानो आप कोई सलाह उनके भले के लिये दे रहे हैं। उन्हें यह भ्रम न हो कि आप उन्हें नीचा समझते हैं और कुछ सिखलाना चाहते हैं। आप कहिए, आज आपका भोजन उस उच्च श्रेणी का नहीं बना है, जैसा प्रायः रहता है। आज शायद कुछ और काम बीच में आ पड़ा हो। आप जैसा भोजन अन्यत्र दुष्प्राप्य है, सायं-काल का भोजन बहुत ही उत्तम बनेगा।

व्यक्तिगत आलोचना, चाहे आप किसी की करें, यह ध्यान रखिए कि कहीं वह 'अहं' पर चोट तो नहीं कर रही है। यदि आपकी आलोचना अहं पर प्रभाव डाल रही है, तो इसका प्रत्यक्ष बुरा प्रभाव होगा। हो सकता है कलह बढ़ती जाय या तलाक का अवसर भी आ जाय। प्रायः स्त्रियाँ भावुक होती हैं और उन पर तनिक-सी भी आलोचना का कटु प्रभाव हो सकता है। प्रत्येक पति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी पत्नी के गर्व का, उसके अहं का रक्षक बने।

प्रश्न है कि इस अहं की रक्षा क्योंकर की जाय ? आप पत्नी के साधारण कार्यों की तारीफ कीजिए। बढ़ावा दीजिए और कभी-कभी उसे प्रोत्साहन देने के लिए उसकी प्रशंसा कीजिए। तारीफ करना, स्तुति के वाक्य कहना, बढ़ावा देना, खुशामद करना, स्त्री के गर्व की रक्षा के लिए वैसा ही जरूरी है, जैसे जीवन के लिए श्वाँस-प्रश्वाँस। यदि पति इस गर्व की रक्षा का ध्यान रखें तो समाज में फैलने वाले अनेक उपद्रव, तलाक, कलह इत्यादि रुक जायँ।

विवाह विज्ञान के एक आचार्य का मत है—'सफल पति' बनने के लिए स्त्री की खूबियों का बखान करो, उसका आदर करो, अपनी प्रसन्नता प्रकट करो और इन सबके लिए उसकी अकारण प्रशंसा भी करो। यह समझकर चुप रह जाने की भूल न करनी चाहिए कि यह तो उसका कर्त्तव्य ही है। अपने कपड़ों और वेश पर सदा ध्यान रखो। स्त्री यदि अपने सौन्दर्य की चिन्ता करती है, अगर तुम्हारी प्रसन्नता के लिए, उसकी वृद्धि के लिए वह निरन्तर चेष्टा करती है, तो इसका यह अर्थ है कि सौन्दर्य का मूल्य समझती है और दूसरे को भी साफ-सुथरे देखना पसन्द करती है।

यदि पति-पत्नी एक दूसरे के मनोभावों को न कुचलें और उनका समुचित आदर करें तो कोई भी विवाह असफल न हो।

अपनी पत्नी से शिष्ट व्यवहार

अपनी पत्नी से भी सभ्यता का व्यवहार ही रखिये। जो पुरुष-कभी-कभी उन पर हाथ उठा बैठते हैं, अपनी समझ कर तिरस्कार करते हैं, उनकी बेइज्जती करते रहते हैं, वे अशील हैं। गुप्त मन में उनकी स्त्रियाँ उन्हें दुष्ट, राक्षस-तुल्य समझती हैं। ऐसा प्रसंग ही मत आने दीजिए कि नारी को मारने-पीटने का अवसर आये। उसे अपने आचार, व्यवहार, प्रेम भरे सम्बोधन से पूर्ण सन्तुष्ट रखिये।

पत्नी की भावनाओं की रक्षा, उसके गुणों का आदर, उसके शील-लज्जा, व्यवहार की प्रशंसा मधुर सम्बन्धों का मूल रहस्य है। पत्नी आपकी जीवन सहचरी है। अपने सद्व्यवहार से उसे तृप्त रखिये।

पत्नी पति की प्राण है, पुरुष की अर्द्धांगिनी है। पत्नी से बढ़कर कोई दूसरा मित्र नहीं। पत्नी तीनों फलों—धर्म, अर्थ, काम को प्रदान करने वाली है और संसार सागर को पार करने में सबसे बढ़ी सहायिका है। फिर, किस मुँह से आप उसका तिरस्कार करते हैं।

उससे मधुर वाणी में बोलिए। आपके मुँह पर मधुर मुस्कान हो, हृदय में सच्चा निष्कपट प्रेम हो, वचनों में नम्रता, मृदुलता, सरलता, प्यार हो। स्मरण रखिए, स्त्रियों का 'अहं' बड़ा तेज होता है, वे स्वाभिमानी, आत्माभिमानी होती हैं। तनिक-सी अशिष्टता या फूहड़पन से क्रुद्ध होकर आपके सम्बन्ध में घृणित धारणाएँ बना लेती हैं। उनकी छोटी-मोटी माँगों या फरमाइशों की अवहेलना या अवज्ञा न करें। इसमें बड़े सावधान रहें। जो स्त्री एक छोटे से उपहार से प्रसन्न होकर दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने को प्रस्तुत रहती है, उसके लिये सब कुछ करना चाहिये।

दाम्पत्य जीवन का सच्चा सार

संसार में एक दूसरे के अनुकूल स्वभाव वाले हर प्रकार से सन्तुष्ट, सन्तुलित, सुखी विवाहित जोड़े बहुत कम हैं। जो युवक विवाह से पूर्व अपनी धर्मपत्नी के विषय में सिनेमा के रोमानी जगत जैसी सुमधुर कल्पनाएँ बना कर गगन-विहार किया करते हैं, उन्हें प्रायः विवाहित जीवन में भारी निराशा का सामना करना पड़ता है। पाश्चात्य देशों में विवाहों की अपेक्षा तलाकों की संख्या उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर है। इसका कारण विवाहित जीवन में पारस्परिक उत्तरदायित्व की कमी और असन्तोष है।

एक शिक्षित युवक जब विवाह करता है तो उसके मन मे अपनी पत्नी का एक आदर्श रूप उपस्थित रहता है। वह उसे पुष्प सी कोमल, चन्द्रमा सी सुन्दर, विद्या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुद्धि में चतुर, संगीत-नृत्य विद्याओं में निपुण, हर प्रकार से सरल, साधु, मीठे स्वभाव की कल्पना करता है। वह सिनेमा के चलचित्रों में कार्य करने वाली नर्तकियों को देखते-देखते एक ऐसा आदर्श मन में बसा लेता है जो कभी पूर्ण नहीं हो पाता। यह बड़ी-बड़ी आशाएँ, स्वप्नों के महल, कपोल कल्पनाएँ, रोमांस, मनोरंजन की आशाएँ वैवाहिक जीवन में प्रविष्ट होते ही टूटने लगते हैं। मनोविज्ञान का यह अटूट नियम है कि दूर से स्त्री को पुरुष तथा पुरुष को स्त्री आकर्षक प्रतीत होती है। विवाह के कुछ मास एक प्रकार के उन्माद में व्यतीत होते हैं। तत्पश्चात् मन ऊबने लगता है। पुरुष स्वभाव से नवीनता का उपासक है। समीप रहने वाली वस्तु उसे पुरानी, नीरस, आकर्षणविहीन, फीकी-सी प्रतीत होने लगती है। यही दाम्पत्य जीवन के असन्तोष का कारण है, जिसकी वजह से तलाक जैसी अप्रिय बातें होती हैं। इस वृत्ति से संघर्ष कर उस पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता है।

विवाह से पूर्व स्त्री को पुरुष तथा पुरुष को स्त्री को देख लेने, परखने, उसके विषय में दूसरों से सलाह लेने, यदि सम्भव हो सके तो परीक्षा करने, हर प्रकार की सतर्कता, दूरदर्शिता बरतने की गुंजायश है। वर-वधू को चाहिए झूठी शर्म त्याग कर एक दूसरे के गुण, कर्म, स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करें। समस्वभाव के विवाहित जोड़े प्रसन्न रहते हैं। यदि स्वभाव एक जैसा न हो, तो दूसरे साथी को उसका सन्तुलन करना होता है। एक सी रुचि के दो व्यक्ति जीवन में सरलता से जी सकते हैं। एक शिक्षित तथा दूसरा अशिक्षित होने से अनेक बार दृष्टिकोण में विभिन्नता तथा कटुता उत्पन्न होकर दाम्पत्य माधुर्य को नष्ट कर देती है। अतएव वर-वधू को प्रारम्भ में अति सावधानी एवं सतर्कता बरतने की आवश्यकता है।

अपने साथी के शरीर, मस्तिष्क, विचार तथा स्वभाव का ज्ञान प्राप्त कीजिये। वह नीरस प्रकृति है या हँसमुख, मजाकिया ? वह गम्भीर अध्ययनशील है या सदैव जल्दबाजी में रहने वाला, तीव्र भावों में बह जाने वाला ? वह उदार है या संकुचित, जिद्दी, निश्चयी, पुरुषार्थी, मत्त या स्फूर्तिवान ? वह किसी कार्य को लगातार करता है या बीच में ही छोड़ भागने का अभ्यस्त है ? उसकी आर्थिक स्थिति तथा आवश्यकताएँ कैसी हैं ? इन तथा इसी प्रकार के अनेक प्रश्नों पर विवाह से पूर्व ही खूब देखभाल तथा विचार-विनियम करने की आवश्यकता है।

उत्तरदायित्व का निर्वाह—विवाह के पश्चात् आप पर एक बड़ी जिम्मेदारी आ जाती है। पति को पत्नी के स्वास्थ्य, आराम, मानसिक तथा शारीरिक सुख का ध्यान रखना है तथा पत्नी को पति के कार्य, पेशे, भोजन, मनोरंजन, बच्चों की देखभाल, गृहप्रबन्ध इत्यादि में अपने पृथक्-पृथक् उत्तरदायित्व का निर्वाह करना है। पति का कार्यक्षेत्र अधिकतर घर के बाहर संघर्षपूर्ण कार्यस्थल है जहाँ उसे जीविका उपार्जन करने के हेतु कठोर परिश्रम, कार्यदक्षता, कौशल प्रदर्शित करना होता है। उसका उत्तरदायित्व अधिक है, क्योंकि उसे जीविका कमाने का कार्य तत्परता से करना होता है। पत्नी अपने गृहप्रबन्ध, मृदुल, सहानुभूति पूर्ण व्यवहार तथा सौन्दर्य से घर को स्वर्ग बनाती है।

"हमें अपने विवाहित जीवन में अपनी जिम्मेदारी निभानी है, अपने जीवन-साथी की निर्बलताओं को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से निकालना है, उसके स्थान पर उत्तम गुणों का समावेश करना है, हम सब तरह के असन्तोषों को दूर करेंगे, परस्पर एक-दूसरे के दृष्टिकोण को समझेंगे, आपसी गलतफहमियों को न बढ़ने देंगे, यह मानकर दाम्पत्य जीवन में प्रविष्ट होना श्रेयस्कर है। यह समझौते की भावना सुखमय दाम्पत्य जीवन का मूल मन्त्र है।

कौन पति-पत्नी नहीं झगड़ते ? विचारों में अन्तर कहाँ नहीं है ? एक से स्वभाव कहाँ मिलते हैं ऐसा कौन है जिसमें कमजोरियाँ, दुर्गुण, शारीरिक या मानसिक दुर्बलताएँ नहीं हैं ? यदि आप एक-दूसरे की दुर्बलताओं पर कलह करेंगे, तो अल्पकाल में असन्तोषदायक महा भयंकर राक्षस आपका विवाहित जीवन कटु बना देगा। आपका सौन्दर्य और प्रेम पिपासु मन एक स्त्री की सुन्दरता छोड़ दूसरी, दूसरी से तीसरी, चौथी न जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरेगा। मन की बागडोर ढीली न कीजिए। अपने जीवन-साथी में ही सरलता, सौन्दर्य, कौशल, चतुरता, माधुर्य खोज निकालिये। उसकी अपूर्णता को पूर्ण बनाइये। अशिक्षित है तो शिक्षित कीजिये, पुस्तकें, समाचार-पत्र, कहानियाँ, उपन्यास पढ़ाइये। यदि स्वास्थ्य खराब है, तो स्वास्थ्य रक्षा, व्यायाम, पौष्टिक भोजन और दुश्चिन्ताओं को दूर कर उसे सुन्दर बनाइये, किन्तु उसे त्यागने का भाव कदापि मन में उदित न होने दीजिये। त्यागने की बात सोचना, एक दूसरे की सहायता न करना, शील-सौन्दर्य की अभिवृद्धि न करना, विद्या प्रदान न करना पति के लिए लज्जा के योग्य है।

दो स्वर्ण-सूत्र

इस स्थिति पर विजय प्राप्त करने के दो मार्ग हैं—प्रथम वह है जो दाम्पत्य जीवन का सच्चा सार है—अर्थात् यह दृढ़ प्रतिज्ञा और उसका निर्वाह कि 'हम दोनों पति-पत्नी एक दूसरे का परित्याग नहीं करेंगे, हम प्रत्येक प्रेम, सहानुभूति, त्याग, शील, आदान-प्रदान, सहायता के टूटे हुए तार को गाँठ लेंगे। हम विश्वास, आशा, सहिष्णुता, अवलम्ब, उपयोगिता की गिरी हुई दीवार के प्रत्येक भाग की निरन्तर प्रयत्न और भक्ति से मरम्मत करेंगे, हम एक दूसरे से माँफी माँगने, सुलह और समझौता करने को सदैव प्रस्तुत रहेंगे।

दूसरा उपाय है पति-पत्नी की एक दूसरे के प्रति अनन्य भाव। पति-पत्नी एक दूसरे को लीन कर दें, समा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जायँ, लय हो जायँ, आधीनता की भावना छोड़ समभाव की पूजा करें। विवाह का आध्यात्मिक अभिप्राय दो आत्माओं का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सम्बन्ध है। इसमें दो आत्माएँ ऐसी मिल जाती हैं कि इस पार्थिक जीवन तथा उच्च देवलोक में भी मिली रहती हैं। यह दो मस्तिष्कों, दो हृदयों, आत्माओं तथा साथ ही साथ दो शरीरों का एक-दूसरे में लय हो जाना है। जब तक यह स्वरैक्य नहीं होता। विवाह का आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। विवाहित जोड़े का परस्पर वह विश्वास और प्रतीत होना आवश्यक है, जो दो हृदयों को जोड़कर एक करता है। जब दो हृदय एक-दूसरे के लिये आत्म समर्पण करते हैं, तो एक-दूसरे का कोई तीसरा व्यक्ति बिगाड़ने नहीं पाता है। केवल इस प्रकार ही वह आध्यात्मिक दाम्पत्य अनुराग सम्भव हो सकता है, जिनका समझना उन व्यक्तियों के लिये कठिन है, जो अपने अनुभव से इस प्रेम और समझौते के, इस पारस्परिक उत्तरदायित्व तथा सम्मान के, आशक्ति और आत्म सन्तोष के मानव तथा दिव्य प्रेरणाओं के विस्मयोत्पादक संयोग को, जिसका नाम सच्चा विवाह है, नहीं जानते।

एक-दूसरे की सहायता करते हुए, कष्टों को दूर करते हुए आर्थिक पूर्णता की ओर चलने से ही पारस्परिक सन्तोष प्राप्त होता है। मनु ने लिखा है कि जिस परिवार में पति और पत्नी सन्तुष्ट रहते हैं, वहाँ नित्य ही कल्याण होता रहता है। जहाँ स्त्रियों की पूजा है वहाँ देवताओं का वास होता है और जहाँ उनका सत्कार नहीं होता वहाँ की प्रत्येक क्रिया निष्फल होती है। जिस कुल की स्त्रियों में शोक होता है अर्थात् जिस कुल में स्त्रियाँ सताई जाती हैं, शोकातुर, दुःखी, संतप्त रहती हैं, वह कुल नष्ट हो जाता है। स्त्रियाँ घर की लक्ष्मी हैं। जहाँ वे प्रसन्न रहती हैं, उस कुल की निरन्तर वृद्धि होती है। पति को पत्नी का तथा पत्नी को पति के सुखवर्द्धन का प्रयत्न करना चाहिये।

झगड़ों का निपटारा शीघ्र करें

पति-पत्नी के झगड़े कभी-कभी थोड़ी-थोड़ी बात में हो जाया करते हैं। छोटे-छोटे झगड़े यदि शान्त न किये जायँ, तो विकट रूप ले लेते हैं। प्रायः पति मन ही मन अपने को बड़ा समझता रहता है। कलह होने पर वह सोचता है कि पत्नी को स्वयं उसे मनाना चाहिए, क्षमा-याचना करनी चाहिए। इसी प्रकार पत्नी का अहं कहता है कि वह पति को प्रेम करती है। पति उसे मनाते, वह क्यों माँफी माँगे—ये दोनों ही दृष्टिकोण व्यर्थ और थोथे हैं। अतएव हर दृष्टि से त्याज्य है।

कभी-कभी पति को पत्नी के, पत्नी को पति के चरित्र पर सन्देह हो जाता है। भ्रम और सन्देह के जड़ पकड़ते ही गलतफहमी बढ़ती है। कालान्तर में वह एक जटिल मानसिक ग्रन्थि बन जाती है। गलतफहमी के कारण अनेक पति पत्नियों की हत्या कर डालते देखे गये हैं। चरित्र पर किया गया सन्देह अनेक बार झूठा सिद्ध होता है। पति-पत्नी को चाहिए कि खुल कर उसका निवारण कर लें। जो दोषी हो दूसरे से माँफी माँग ले। कलह और मनमुटावों को जल्दी से जल्दी तोड़ देने को प्रस्तुत रहना चाहिए। यदि पति-पत्नी में सच्चाई, ईमानदारी, एक दूसरे के प्रति वफादारी का भाव है, तो वे अवश्य अपने झगड़ों का का निवारण कर लेंगे। अपना दृष्टिकोण एक दूसरे के प्रति उदार, सहानुभूतिपूर्ण एवं कोमल रखिए। दूसरे शब्दों में एक दूसरे के लिए त्याग करने के लिए तैयार रहिए। एक दूसरे के सुख-दुःख में साथ देना, झगड़ों को निपटाना, अवगुणों को दूर करना प्रेम का एक आवश्यक अंग है।

स्त्रियों का अहं बड़ी जल्दी घायल होता है। तनिक सी बात उनके मन में लग जाती है। स्वभावतः कोमल, लज्जाशील, सुकुमार होने के कारण वे जरा सी तिरछी बात में बुरा मानने, रूठने और नाराज होने को तैयार रहती हैं। उनकी पसन्द तथा आपकी पसन्द में अन्तर रहता है। संभव है जो बातें आपको प्रिय लगें, जो आपकी दिलचस्पी के विषय हों, उनमें वे तनिक भी दिलचस्पी न लें।

मनोविज्ञान का यह अटल सिद्धान्त है कि बिना चाही हुई राय, आचरण योग्य बातें, शिक्षायें, सम्मतियाँ, योजनाएँ, आलोचनाएँ दूसरा व्यक्ति पसन्द नहीं करता, चाहे वे कितनी ही श्रेष्ठ क्यों न हों। दूसरों की योजना या राय स्वीकार करने में हमारे 'अहं' भाव को चोट लगती है और हम हेठी समझते हैं। अपनी पराजय का भाव किसी को पसन्द नहीं आता।

अतएव कलह दूर करने के लिए आप सावधान रहिये। यदि आप पत्नी के कामों में अधिक हस्तक्षेप करेंगे या पत्नी पति के कार्यों में अनावश्यक टीका-टिप्पणी करेगी, तो उत्तेजना उत्पन्न होगी। तब पति उत्तेजित हो तो पत्नी को और जब पत्नी उग्र हो तो पति को पूर्ण शान्ति, सहानुभूति और सहनशीलता का परिचय देना चाहिए। दो गर्म या तीखी बात आपका जीवन-साथी कह दे तो उसे सहन करने में ही भलाई है। पति-पत्नी के जीवन में सहिष्णुता का मूल्य अत्यधिक है। सहन कीजिए, उखड़िये मत। यदि क्रोध, ईर्ष्या, नाराजगी के भाव को सहन कर कुछ दिन व्यतीत होने दिया जाय, तो समय के प्रभाव पुराने घाव स्वयं अच्छे हो जाते हैं। कटुता घुल जाती है। तनिक सोचकर देखिये, नाराज होने वाली आखिर आपकी पत्नी ही तो है। वह आपको प्रेम करती है, दिन-रात सेवा में जुटी रहती है, आपके बच्चों का पालन-पोषण, शिक्षण इत्यादि करती है यदि वह कुछ कह ही बैठी या उत्तेजना में नाराज हो गई तो लौटकर उसे अपशब्द कहना, मारपीट बैठना, मानहानि करना कैसा अविवेकपूर्ण कार्य है ?

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

इसी प्रकार पत्नी को यह स्मरण रखना चाहिए कि पति उसके तथा बाल-बच्चों की उदर पूर्ति के लिये दिन-रात खून-पसीना एक करके कड़ा परिश्रम करता है, संसार के अनेक संघर्षों को झेलता है, दफ्तर में बीस बाबू खरी-खोटी सुनता है, यदि वह नाराज होकर कुछ कह बैठे तो इसमें उलट कर नाराज होने की कौन-सी बात है ? पत्नी का प्रेम, मृदुलता, सौहार्द्र, सहानुभूति, सज्जनता वे गुण हैं, जिनसे उसका क्रोध स्वयं विलुप्त हो जायगा।

पाणिग्रहण के प्रथम मंत्र से ही स्त्रियों को यह उपदेश दिया जाता है कि वह गृहस्थ धर्म को अच्छी तरह प्रतिपालित करे और पाणिग्रहण करने वाले व्यक्ति के साथ इस संसार में सुख-सौभाग्य की वृद्धि करे। दूसरे मन्त्र का तात्पर्य यह होता है कि पति के घर जाकर अपने क्रोध एवं अमर्ष की संचित वासनाओं को जलाकर दूर कर दें, कभी भूलकर भी क्रोध, ईर्ष्या की दृष्टि से पति के प्रति या पति के स्वजनों के प्रति न देखें, प्रतिकूल आचरण न करें। ऐसा व्यवहार करें कि पति, पड़ौसी, सम्बन्धी यहाँ तक कि पशु आदि की भी मंगलकारिणी बने, क्योंकि पशु ही गृहस्थ पति के घर के सौभाग्यवर्द्धक एवं प्रतिष्ठा के सूचक हैं। नवोढ़ा में यही भावना होनी चाहिये। तीसरे मंत्र में पारिवारिक कठिनाइयों पर पति के साथ मनोयोगपूर्वक सहयोग का संकेत है। एक मन्त्र का संक्षेप में तात्पर्य इस प्रकार है—

"प्रियतमे ! तुम्हें मैं केवल अपने सुख भोग और सेवा के लिए नहीं वरण कर रहा हूँ। तुम मेरे पिता की सेवा करना, मेरी माता-बहिन तथा भाइयों की सुख-सुविधा का भी तुम्हें ध्यान रखना होगा।"

पूर्व काल में स्वार्थत्याग और सेवा का भाव कैसा महत्त्वपूर्ण था, यह उपरोक्त मंत्रों से विदित हो जाता है। इस पुनीत कर्त्तव्यक्षेत्र में कलह, क्लेश, ईर्ष्या, द्वेष के लिए स्थान नहीं होना चाहिए।

पत्नी को चाहिए कि प्रेमिका के रूप में पति से व्यवहार करे। आजकल दाम्पत्य जीवन में जो विषमता और असन्तोष दिखाई देता है उसका कारण यही है कि पति-पत्नी के मध्य वैसा निस्वार्थ, सेवामय, त्यागपूर्ण, प्रेम-पूर्ण व्यवहार नहीं होता जो विवाहोपरान्त कुछ वर्ष तक रहता है। स्त्री प्रेम की देवी है। उसका जीवन प्रेम से ही है। पुरुष बाह्य जगत में उलझा रहता है। वह विशुद्ध भाव से अनुरक्त पत्नी के लिए संसार के सब कष्टों को उसके प्रेम के लिए सहन करता है। अतः सब प्रकार के झगड़ो, मनोमालिन्य और कलह से प्रेमपूर्ण सहानुभूति से ही काम लेकर एक दूसरे की गलतफहमी दूर करनी चाहिए।

अपने हृदय को विशाल कीजिए और ईर्ष्या, क्रोध, द्वेष, संदेह से ऊपर उठिये। विवाहित जीवन एक समझौता है। क्रोध और ईर्ष्या से वह संकुचित होता है। अतएव दूसरों की बुराई देखना, चुगली करना, गुप्तरीति से चरित्रहीनता की चर्चा, पतन या गिरावट में प्रसन्नता इत्यादि दुर्गुणों को त्याग दीजिए। पतित व्यक्ति की टीका-टिप्पणी से आपको कोई लाभ नहीं हो सकता, केवल संकीर्णता ही उत्पन्न होती है। अतः परिवार के अन्य व्यक्तियों तक की बातें स्वीकार करते हुए दूसरों के विचारों एवं भावों की रक्षा करते हुए, सहनशीलता का परिचय देना चाहिए। पतियों को सहनशीलता का पालन करना चाहिए। यदि कभी उग्र बातें भी हो जायँ, तो व्यर्थ मानसिक क्लेश बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है। छोटे-छोटे झगड़े तो चुप रहने और थोड़े समय के प्रवाह से स्वयं विलुप्त हो जाते हैं।

सास-बहू के झगड़े—बहुसंख्यक परिवारों में सास-बहू के झगड़े चल रहे हैं। इसके अनेक कारण हैं। सास-बहू को अपने नियन्त्रण में रखकर अनुशासन करना चाहती है। अपनी आज्ञानुसार उससे कार्य कराना चाहती है। कभी-कभी वह अपने पुत्र को बहका कर बहू की मरम्मत कराती है। प्रायः देखा गया है कि जहाँ कोई पुरुष स्त्री को कष्ट देता है, तो उसके मध्य में अवश्य कोई स्त्री सास, ननद या जिठानी रहती है। स्त्रियों में ईर्ष्या भाव अत्यधिक होता है। बहू का व्यक्तित्व प्रायः लुप्त हो जाता है तथा उसे रौरव (नर्क) की यन्त्रणाएँ सहन करनी पड़ती हैं।

कहीं पर पति बहू के इंगित पर नृत्य करता है और उसके भड़काने से वृद्धा सास पर अत्याचार करता है। वृद्धा से कठिन कार्य कराया जाता है। वह धुँए में परिवार के निमित्त भोजन व्यवस्था करती है, जबकि बहू सिनेमा देखने या टहलने के लिए जाती है।

ये दोनों ही सीमाएँ निंद्य हैं। सास बहू के सम्बन्ध पवित्र हैं। सास स्वयं बहू को देखने के लिए लालायित रहती है। उसके लिए वह दिन बड़े गौरव का होता है, जब घर बहूरानी के पदार्पण से पवित्र होता है। उसे उदार, स्नेही, बड़प्पन से परिपूर्ण होना चाहिए। बहू की सहायता तथा पथ-प्रदर्शन के लिए कार्य करना चाहिए। छोटी-मोटी भूलों को सहृदयता से माफ कर देना चाहिए। इसी प्रकार बहू को सास में अपनी माता के दर्शन करने चाहिए और उसकी वही प्रतिष्ठा करनी चाहिए, जो वह अपनी माता की करती रही है। यदि पुरुष माता को माता के स्थान पर पूज्य माने और पत्नी को पत्नी के स्थान पर जीवन सहचरी, मिष्ठभाषिणी, प्रियतमा माने तो ऐसे संकुचित झगड़े बहुत कम उत्पन्न होंगे।

ऐसे झगड़ों में पुत्र का कर्त्तव्य बड़ा कठिन है। उसे माता की मान-प्रतिष्ठा का ध्यान रखना और पत्नी के गर्व तथा प्रेम की रक्षा करनी है। अतः उसे पूर्ण शान्ति और सहृदयता से कर्त्तव्य भावना को ऊपर रखकर ऐसे झगड़ो को शान्त करना उचित है। किसी को भी अनुचित रीति स दबा कर मानहानि न करनी चाहिए। यदि पति कठोर,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उग्र, लड़ने वाले स्वभाव का है, तो पारिवारिक शान्ति और समृद्धि भंग हो जायेगी। प्रेम और सहानुभूति से दूसरों के दृष्टिकोण को समझकर बुद्धिमत्ता से अग्रसर होना चाहिए।

ननद-भौजाई के झगड़े—प्राय: देखा जाता है कि जहाँ ननदें अधिक होती हैं या विधवा होने के कारण मायके में रहती हैं, वहाँ बहू पर बहुत अत्याचार होते हैं। ननद-भाभी के विरुद्ध अपनी माता के कान भरती है और भाई को भड़काती है। इसका कारण यह है कि बहिन भाई पर अपना पूर्ण अधिकार समझती है और अपने गर्व, अहं और व्यक्तित्व को अन्यों से ऊपर रखना चाहती है। भाई यदि अदूरदर्शी होता है, तो बहिन की बातों में आ जाता है और बहू अत्याचार का शिकार बनती है।

इन झगडों में पति को चाहिए कि पृथक्-पृथक् अपनी बहिन और पत्नी को समझा दे और दोनों के स्वत्व तथा अहं की पूर्ण रक्षा करे। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से दोनों का अध्ययन कर परस्पर मेल करा देना ही उचित है। मेल कराने के अवसरों की ताक में रहना चाहिए। दोनों को परस्पर मिलने, बैठने, साथ-साथ टहलने जाने, एक-सी दिलचस्पी विकसित करने का अवसर प्रदान करना उचित है। यह नहीं होना चाहिए कि पत्नी ही दोनों समय भोजन बनाती, झूठे बर्तन साफ करती, जिठानी के बच्चों को नहलाती-धुलाती, आटा पीसती, कपड़े धोती, दूध पिलाती या झाड़ू-बुहारी का काम करती रहे। चतुर पति को चाहिए कि काम का बँटवारा कर दे। पत्नी को कम काम मिलना चाहिए क्योंकि उसके पास बच्चे भी पालने के लिए हैं। यदि कोई बीमार पड़ेगा, तो उसे उसका कार्य भी करना होगा।

वृद्धों का चिड़चिड़ापन और परिवार के अन्य व्यक्ति—प्राय: देखा गया है कि आयु वृद्धि के साथ-साथ वृद्ध चिड़चिड़े, नाराज होने वाले, सनकी, क्रोधी और सठिया जाते हैं। वे तनिक-सी असावधानी से नाराज हो जाते हैं और कभी-कभी अपशब्दों का भी उच्चारण कर बैठते हैं। ऐसे वृद्ध क्रोध के नहीं, हमारी दया और सहानुभूति के पात्र हैं और हमें उनके साथ वही आचरण करना उचित है, जैसा बच्चों के साथ। उनकी विवेकशील योजनाओं तथा अनुभव से लाभ उठाना चाहिए और उनकी मूर्खताओं को उदारतापूर्वक क्षमा करना चाहिए।

वृद्धो को परिवार के अन्य व्यक्तियों के प्रेम और सहयोग की आवश्यकता है। हमें उनसे प्रीति करना, जितना हो सके आज्ञा पालन, प्रतिष्ठा, उनके स्वास्थ्य का संरक्षण ही उचित है। खाने के लिए, कपड़ों के लिए तथा थोड़े से आराम के लिए वह परिवार के अन्य व्यक्तियों की सहानुभूति की आकांक्षा करता है। उसने अपने यौवन काल में परिवार के लिए जो श्रम और बलिदान किए हैं, अब उसी त्याग का बदला हमें अधिक से अधिक देना उचित है।

परिवार के संचालन की कुंजी उत्तम संगठन है। प्रत्येक व्यक्ति यदि सामूहिक उन्नति में सहयोग प्रदान करे, अपने श्रम से अर्थ संग्रह करे, दूसरों की उन्नति में सहयोग प्रदान करे, सब के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान करता रहे, तो बहुत कार्य हो सकता है।

स्वस्थ दृष्टिकोण—दूसरों के लिए कार्य करना, अपने स्वार्थों को तिलांजिल देकर दूसरों को आराम पहुँचाना सृष्टि का यही नियम है। कृषक हमारे निमित्त अनाज उत्पन्न करता है, जुलाहा वस्त्र बुनता है, दर्जी कपड़े सींता है, राजा हमारी रक्षा करता है। हम अकेले सब काम नहीं कर सकते हैं। मानव-जाति में पुरातन काल से पारस्परिक लेन-देन चला आ रहा है। परिवार में प्रत्येक सदस्य को इस त्याग, प्रेम, सहानुभूति की नितान्त आवश्यकता है। जितने सदस्य हैं सबको आप प्रेम-सूत्र में आबद्ध कर लीजिए। प्रत्येक का सहयोग प्राप्त कीजिए, प्यार से उनका संगठन कीजिए।

इस दृष्टिकोण को अपनाने से छोटे-बड़े सभी झगड़े नष्ट होते हैं। अक्सर छोटे बच्चों की लड़ाई बढ़ते-बढ़ते बड़ों को दो हिस्सों में बाँट देती है। पड़ौसियों में बच्चों की लड़ाइयों के कारण युद्ध ठन उठता है। स्कूल में बच्चों की लड़ाई घरों में घुसती है। कलह बढ़कर मारपीट और मुकदमेबाजी की नौबत आती है। उन सबके मूल में संकुचित वृत्ति, स्वार्थ की कालिमा, व्यर्थ वितंडावाद, दुरभिसन्धि इत्यादि दुर्गुण सम्मिलित हैं।

हम मन में मैल लिए फिरते हैं और इस मानसिक विष को प्रकट करने के लिए अवसरों की प्रतीक्षा में रहते हैं। झगड़ालू व्यक्ति जरा-जरा सी बातों में झगड़ों के लिए अवसर ढूँढ़ा करते हैं। परिवार में कोई न कोई ऐसा झगड़ालू व्यक्ति जिद्दी बच्चा होना साधारण-सी बात है। इन सब को भी विस्तृत और सहानुभूति के दृष्टिकोण से ही निरखना चाहिए।

हमें एक दूसरे के भावों, दिलचस्पी, रुचि, दृष्टिकोण, स्वभाव, आयु का ध्यान रखना अपेक्षित है। किसी को वृथा सताना या उससे अधिक कार्य लेना बुरा है। उद्धत स्वभाव का परित्याग कर प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए। कुटिल व्यवहार के दोषों से जैसे अपना आदमी पराया हो जाता है, अविश्वासी और कठोर बन जाता है, वैसे ही मृदुल व्यवहार से कट्टर शत्रु भी मित्र हो जाता है।

विश्व में साम्यवाद को परिपुष्ट करने के लिए परिवार ही से श्रीगणेश करना उचित है। न्याय से मुखिया को समान व्यवहार करना चाहिए।

परिवार के युवक तथा उनकी समस्याएँ—प्राय: युवक स्वच्छन्द प्रकृति के होते हैं और परिवार के नियन्त्रण में नहीं रहना चाहते। वे उच्छृंखल प्रकृति के पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित, हलके रोमांस के वशीभूत

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

होकर पारिवारिक संगठन से दूर भागना चाहते हैं। यह बड़े परिताप का विषय है।

युवकों के झगड़ों के कारण हैं—१-अशिक्षा, २-कमाई का अभाव, ३-प्रेम सम्बन्धी अड़चनें-घर के सदस्यों की रूढ़िवादिता और युवकों की उन्मुक्त प्रकृति, ४-कुसंग, ५-पत्नी का स्वच्छन्दता प्रिय होना तथा पृथक घर में रहने की आकांक्षा, ६-विचार सम्बन्धी पृथकता-पिता का पुरानी धारा के अनुकूल चलना, पुत्र का अपने अधिकारों पर जमे रहना, ७-जायदाद सम्बन्धी बँटवारे से झगड़े। इन पर पृथक-पृथक विचार करना चाहिए।

यदि युवक समझदार और कर्त्तव्यशील है, तो झगड़ों का प्रसंग ही उपस्थिति न होगा। अशिक्षित, अपरिपक्व युवक ही आवेश में आकर बहक जाते हैं और झगड़े कर बैठते हैं। एक पूर्ण शिक्षित युवक कभी पारिवारिक विद्वेष या कलह में भाग न लेगा। उसका विकसित मस्तिष्क इन सबसे ऊँचा उठ जाता है। वह जहाँ अपना अपमान देखता है, वहाँ स्वयं ही हाथ नहीं डालता।

कमाई का अभाव झगड़ों का एक बड़ा कारण है। निखट्टू पुत्र परिवार में सब की आलोचना का शिकार होता है। परिवार के सभी सदस्य उससे यह आशा करते हैं कि वह परिवार की आर्थिक व्यवस्था में अधिक हाथ बँटायेगा। जो युवक किसी पेशे या व्यवसाय के लिए प्रारम्भिक तैयारी नहीं करते, वे समाज में 'फिट' नहीं हो पाते। हमें चाहिए कि प्रारम्भ से ही घर के युवकों के लिए काम तलाश करलें, जिससे बाद में जीवन-प्रवेश करते समय कोई कठिनाई उपस्थित न हो। संसार कर्मक्षेत्र है। यहाँ हम में से प्रत्येक को अपना कार्य समझना तथा उसे पूर्ण करना है। हम में जो प्रतिभा, बुद्धि, अज्ञात शक्तियाँ हैं, उन्हें विकसित कर समाज के लिए उपयोगी बनना चाहिए।

जरमी टेलर कहते हैं—"जीवन एक बाजी के समान है। हार-जीत तो हमारे हाथ में नहीं है, पर बाजी का ठीक तरह से खेलना हमारे हाथ में है। यह बाजी हमें बड़ी समझदारी से, छोटी-छोटी भूलों से बचते हुए निरन्तर आत्म-विकास और मनोवेगों का परिष्कार करते हुए करनी चाहिए।

बट्रैण्ड रसेल ने लिखा है—"इस जगत् में सब से बड़ी तारीफ की बात यह है कि जिन लोगों में स्वाभाविक शक्ति की न्यूनता रहती है, यदि वे उसके लिए सच्चा साधन और अभ्यास करें, तो परमेश्वर उन पर अनुग्रह करता है।" वर्गसां ने भी निर्देश किया है—"युवा पुरुष बहुत से अंशों में जो होना चाहे हो सकते हैं।" मैक्सिम गोर्की ने कहा है—"जीवन में शारीरिक और मानसिक परिश्रम के बिना कोई फल नहीं मिलता। दृढ़ चित्त और महान उद्देश्य वाला मनुष्य जो चाहे कर सकता है।"

प्रतिभा की वृद्धि कीजिए, आपको नौकरी, रुपया, पैसा, प्रतिष्ठा और आत्म सम्मान प्राप्त होगा। उसके अभाव में आप निखट्टू बने रहेंगे। प्रतिभा आपके दीर्घकालीन अभ्यास, सतत् परिश्रम, अध्यवसाय, उत्तम स्वास्थ्य पर निर्भर है। प्रतिभा हम अभ्यास और साधन से प्राप्त करते हैं। मनुष्य की प्रतिभा स्वयं उसी के संचित कर्मों का फल है। अवसर को हाथ से न जाने दें, प्रत्येक अवसर का सुन्दर उपयोग करें और दृढ़ता, आशा और धीरता के साथ उन्नति के पथ पर अग्रसर होते जायँ। स्वसंस्कार का कार्य इसी तरह सम्पन्न होगा।

पिता के प्रति पुत्र के तीन कर्त्तव्य हैं—१-स्नेह, २-सम्मान तथा आज्ञा पालन। जिस युवक ने पिता, प्रत्येक बुजुर्ग का आदर करना सीखा है, वही आत्मिक शान्ति का अनुभव कर सकता है।

परिवार से युवक का मन तोड़ने में विशेष हाथ पत्नी का होता है। उसे अपने 'स्व' का बलिदान कर सम्पूर्ण परिवार की उन्नति का ध्यान रखना चाहिए। समझदार गृहिणी समस्त परिवार को सम्हाल लेती है।

आज के युवक-प्रेम-विवाह से प्रभावित हैं। जिसे प्रेम-विवाह कहा जाता है, वह क्षणिक वासना का तांडव, थोथी समझ की मूर्खता, अदूरदर्शिता है। जिसे ये लोग प्रेम समझते हैं, वह वासना के अलावा और कुछ नहीं होता। उसका उफान शान्त होते ही प्रेम-विवाह टूक-टूक हो जाता है। चुनावों में भारी भूलें मालूम होती हैं। समाज में प्रतिष्ठा का नाश हो जाता है। ऐसे व्यक्ति को सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है।

अनेक पुत्र विचारों में विभिन्नता होने के कारण झगड़ों का कारण बनते हैं। सम्भव है युवक पिता से अधिक शिक्षित हो। किन्तु पिता को अनुभव अपेक्षाकृत अधिक होता है। पुत्र को उदारतापूर्वक अपने विचार पिता के समक्ष रखने चाहिए और उनसे आवश्यक परामर्श करना चाहिए।

दाम्पत्य मनोरंजन

पति-पत्नी का सम्बन्ध केवल शारीरिक ही नहीं, मानसिक भी होता है। मानसिक क्षुधा के निवारण के लिए मनोरंजन की आवश्यकता है। जब आप एकान्त में रहते हैं, तो क्या बातें करते हैं ?

पति को सबसे अधिक आवश्यकता पत्नी के द्वारा किये गये मनोरंजन की होती है। एक अँग्रेज लेखक ने लिखा है कि उसने निश्चय कर रखा था कि मैं तब तक विवाह न करूँगा, जब तक मुझे रसिक पत्नी न मिलेगी। स्त्री के लिए हँसमुख तथा रसिक होना सुन्दर होने की अपेक्षा कई गुना अधिक अच्छा है। जो स्त्री या

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पुरुष रसिक, आमोदप्रिय, आनन्दी स्वभाव के हैं, वे अपनी गरीबी में भी विवाहित जीवन का आनन्द लूटते हैं।

लड़की के विवाहित जीवन का सुखमय या दु:खमय होना इस तत्व पर निर्भर करता है कि उसमें रसिकता, आमोद-प्रमोद, आशावादिता है या नहीं ? यदि वह अपने पति को एक बहुत ही हँसाने वाले, हँसा-हँसा कर लोट-पोट करने वाले के रूप में देख सकती है, तो समझ लो कि उसका दाम्पत्य जीवन सुखमय होगा। गृहस्थी को नष्ट करने वाली स्त्रियाँ प्राय: वे होती हैं, जो पति की प्रत्येक बात को गम्भीरता से देखती हैं, जो जब कभी भी उनके पति की दृष्टि किसी दूसरी स्त्री पर पड़ जाय या जब वह नियत समय पर घर न पहुँचे तत्काल लड़ना प्रारम्भ कर देती हैं या पति के उनकी कोई चीज लाना भूल जाने पर रोने लगती हैं। इसके विपरीत हँसमुख प्रकृति की स्त्रियाँ वृद्धावस्था तक जीवन का आनन्द लेती हैं।

ऐसे अवसर ढूँढ़िये जिसमें आपको एक दूसरे से मनोरंजन करने का अवसर प्राप्त हो। सायंकाल दोनों हवाखोरी को जाइये और अपने हृदयों के भार को हल्का करते चलिये। भावी जीवन की आनन्ददायक कल्पनाओं में बड़ा रस और आनन्द आता है। यह गम्भीरता का समय नहीं है। अपने दफ्तर की चिन्ताओं को छोड़ कर हँसी-खुशी के दो क्षण व्यतीत कीजिये। उद्यान में, नदी के तट पर प्रात:-सायंकाल टहलने से न केवल स्वास्थ्य ही बनता है प्रत्युत जीवन में रस और ताजगी आती है।

जो दम्पत्ति संगीत में निपुण हैं, उन्हें संगीत द्वारा मन में उल्लास उत्पन्न करना चाहिये। ताश खेलिए, कैरम शुरू कीजिए, चौपड़ या घर के कोई खेल ले सकते हैं। बच्चों में दिलचस्पी लीजिए। अखबार पढ़ कर सुनाइए जिससे एक दूसरे का मनोरंजन हो सके। कहानी, कविता, उपन्यास इत्यादि एक दूसरे को पढ़ कर सुनाइए। कभी-कभी सम्मिलित रूप में सिनेमा भी देखने जा सकते हैं। छोटी-छोटी यात्राएँ मनोरंजन की वृद्धि करती हैं। भोजन पकाने मे दिलचस्पी लेकर आप पत्नी को प्रोत्साहित कर सकते हैं। सम्मिलित चाय मिष्ठान्न या फल खाना सुन्दर है। यथासम्भव एक-दूसरे की आवश्यकताएँ देखकर मनोरंजन की योजना बनानी चाहिए। कला, साहित्य, शिल्प बागवानी, छोटे जानवर पालकर, घर में अच्छी-अच्छी तरकारियाँ, सलाद, मिठाइयाँ बनाकर नए-नए स्थानों की सम्मिलित सैरकर जीवन में सरसता का संचार किया जा सकता है। प्रति वर्ष कुछ धन संचित कर नए-नए स्थानों पर भ्रमण करने की योजना रखनी चाहिए। सप्ताह में इतवार की छुट्टी घर से बाहर किसी सुन्दर प्राकृतिक स्थान पर व्यतीत की जा सकती है।

कुछ व्यक्तियों में यह गलत धारणा बैठ गई है कि काम-सेवन ही दाम्पत्य जीवन का मुख्य मनोरंजन है। विवाह को काम सेवन का पासपोर्ट समझना महा अनर्थकारी विचार है। काम सेवन की मर्यादाएँ निश्चित होनी चाहिए और कम से कम इस ओर प्रवृत्त होना चाहिए।

काम वासना स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण का एक मनोवैज्ञानिक कारण है। पति-पत्नी जितना कम संभोग करते हैं, उतना ही उनका एक दूसरे के प्रति आकर्षण बना रहता है। प्रतिदिन सम्भोग का आनन्द लूटने वाले उस आकर्षण को नष्ट कर देते हैं, जो नियन्त्रित जीवन द्वारा प्राप्त होता है।

काम वासना की पूर्ति के पश्चात् व्यक्ति को मालूम होता है कि क्षणिक समागम के लिए उसने अपने जीवन का सार तत्व बहुमूल्य वीर्य नष्ट कर दिया है। अधिक वीर्यपात का अर्थ अनेक घृणित रोग होते हैं। ऐसा व्यक्ति वेश्यागामी बन जाता है और नपुसंकता, बहुमूत्र, गर्मी, सुजाक, कब्ज, प्रमाद तथा अन्य गन्दे रोगों का शिकार बन अल्पायु में ही काल-कलवित होता है। इस गन्दे मनोरंजन के प्रति सचेत रहना चाहिए।

भगवान् का भजन, पूजन, कीर्तन, गायन, वादन, कविता पाठ, नृत्य, भ्रमण, घरेलू कार्यों में मनोरंजन के आनन्द लिये जा सकते हैं। अपने बच्चों, भाई-बहिनों के साथ खेल कूदकर मन बहलाव किया जा सकता है।

उपयोगी मनोरंजन

हमारे परिवारों में आमोद-प्रमोद का कोई विशेष ध्यान नहीं रखा जा रहा है, फलत: वह दु:ख से भरे हैं। हम अपने परिवार से अनेक प्रकार के काम तो चाहते हैं, उसके लिए पुन:-पुन: उनसे कहते हैं, किन्तु हम यह नहीं सोचते कि परिवार में मनोरंजन के कितने साधन हमने एकत्र किये हैं। सौ में अस्सी प्रतिशत परिवार अशिक्षा के अन्धकार में डूबे हैं। उनमें आमोद-प्रमोद की आवश्यकता ही अनुभव नहीं की जाती। जिन परिवारों में आमोद-प्रमोद का ध्यान नहीं दिया जाता, वहाँ के व्यक्तियों का जीवन बड़ा शुष्क और व्यस्त रहता है। वहाँ के व्यक्ति अल्पायु होते हैं।

अन्न-जल की तरह प्रफुल्लता-सरसता भी जीवन के सम्यक् संचालन हेतु आवश्यक है। इन्हें भी नियमित आहार जैसा ही अनिवार्य मानना चाहिए। इनके अभाव में जीवन शुष्क और बोझिल बन जाता है। इसलिए प्रत्येक परिवार के प्रधान सदस्यों को परिवारिक आमोद-प्रमोद की व्यवस्था हेतु भी निरन्तर सजग-तत्पर रहना चाहिए।

आज सामान्यत: पारिवारिक मनोरंजन का एकमेव माध्यम सिनेमा रह गया है। किन्तु वस्तुत: सिनेमा स्वस्थ

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मनोरंजन अभी नहीं बन सका है और वह भौंड़ा, स्तरहीन, आर्थिक दृष्टि से महँगा तथा मानसिक-बौद्धिक दृष्टि से हानिकर व दूषित माध्यम है। हमारी अधिकांश वर्तमान फिल्ममेकर विषाक्त, विसंगत, विकृत एवं विचित्र कथानकों तथा दृश्यों का एक बेतुका संग्रह भर होती हैं। वे दर्शकों के मस्तिष्क पर न केवल उत्तेजक, अवांछित प्रभाव डालती हैं, अपितु ये चिन्तन-शक्ति और विवेक-बुद्धि को भी दुर्बल बनाने वाली प्रेरणाओं से भरी होती हैं किन्तु हमारे परिवारों में आजकल मनोरंजन की व्यवस्था न किये जाने के कारण फिल्में ही आमोद-प्रमोद का सर्वमान्य माध्यम बन चली हैं। जबकि यह मनोरंजन परिवार और समाज को पतन एवं विनाश के ही पथ पर ढकेलता है। अत: परिवार निर्माण के लिए स्वस्थ मनोरंजन की व्यवस्था करने में चूकना न चाहिए।

मनोरंजन के सामान्य सिद्धान्तों को समझ लेना आवश्यक है। शारीरिक श्रम की प्रधानता वाले व्यवसायों में लगे लोगों के लिए आमोद-प्रमोद के साधन मानसिक होने चाहिए, जबकि मानसिक श्रम की प्रधानता वाले लोगों को शारीरिक हलचलों वाले कार्यों खेल-कूद, दौड़-भाग, टहलना आदि को मनोरंजन के लिये अपनाना चाहिए।

दिन भर शरीर-श्रम कर, पसीना बहाकर आजीविका उपार्जन करने वाले मनोरंजन के ऐसे साधन चुनें जिससे उनके थके-माँदे शरीर को अधिक परिश्रम न करना पड़े। सर्वोत्तम तो यह कि ये लोग अवकाश का समय पुस्तकालय में बिताएँ, समाचार-पत्र, साप्ताहिक-मासिक पत्र-पत्रिकायें पढ़ें, नई-नई पुस्तकें पढ़ें तथा मनोरंजन के साथ ज्ञानवृद्धि भी करें।

इन दिनों सरकार प्रौढ़ शिक्षा को उचित महत्व दे रही है। श्रमिक, मिल-कर्मचारी, मिस्त्री, किसान, फुटकर व्यापारी जिन्हें शारीरिक भाग-दौड़ खूब करनी होती है, मनोरंजन के लिये प्रौढ़-शिक्षा योजना का भी लाभ उठायें। जो साक्षर हैं वे इसके द्वारा आगे ज्ञान-विकास करें। दूसरों को पढ़ायें। पढ़ाने के माध्यम इनमें औपचारिक पाठ्य पुस्तकों जैसे नहीं रखे जाते हैं, अपितु मनोरंजक ढंग से ही अनौपचारिक-शिक्षा पाठ्य-क्रम तैयार होता है। अत: उसे भी अपने मनोरंजन तथा विकास का एक साथ साधन बनाया जा सकता है। कविताएँ, गीत, दोहे, चौपाई, लोकगीत आदि सुलभ एवं सात्विक मनोरंजन है।

इनके सरस अंशों का उच्च-स्वर से पाठ करने से थकान और शुष्कता दोनों दूर हो जाते हैं।

लिखा-पढ़ी, क्लर्की, अफसरी करने वाले सायंकाल कुछ न कुछ खेलने की योजना बनायें। हाकी, फुटबाल, टेबिल-टेनिस, बेडमिंटन आदि जो भी रुचि हो, खेलें, टहलने जायें, भागें-दौड़ें, उछलें-कूदें, शारीरिक व्यायाम अवश्य करें।

सामूहिक मनोरंजन के लिए भोजन के उपरान्त रात्रि में पूरा परिवार एक साथ बैठे। एक व्यक्ति किसी स्वस्थ मनोरंजक पुस्तक, समाचार-पत्र, पौराणिक, धार्मिक ग्रन्थ आदि का उच्च स्वर से पाठ करे, अन्य सुनें। यह क्रम बदलता रहे। यदि सामर्थ्य हो, तो धीरे-धीरे करके घर में एक घरेलू पुस्तकालय खोल लिया जाय व अच्छे साहित्य का आनन्द लूटा जाय। उपयोगी पत्र-पत्रिकायें मँगाई जायें।

प्रयास यह रहना चाहिए कि प्रत्येक परिवार में कम से कम, महिला समस्याओं का सुगम संगीत का अभ्यास हो ही। हारमोनियम, सितार, तानपूरा, तबला, ढोलक जो भी वाद्ययन्त्र रुचे और सुलभ हो। उसी पर गाना चाहिए। अच्छी कवितायें गायीं जायँ। संगीत और वादन, मनोरंजन के श्रेष्ठ सात्विक साधन हैं। रेडियो से भी अच्छी धुनें सीखी जाती रह सकती हैं। एक रेडियो खरीद लेने की व्यवस्था करने का आजकल प्राय: प्रत्येक परिवार प्रयास करता है। इस रेडियो का उपयोग पूरी तरह किया जाये। मात्र फिल्मी गाने सुनते रहने से ही समय न खोया जाये। अपितु रेडियो-कार्यक्रमों को भरपूर उपयोग किया जाये, जिनसे कि मनोरंजन एवं जानकारी दोनों प्राप्त होते हैं। रेडियो में विविध शैक्षणिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम रखे जाते हैं। महिलाओं और बच्चों के अलग-अलग कार्यक्रम भी होते हैं। इनसे सुरुचिपूर्ण मनोरंजन एवं जानकार की वृद्धि दोनों लाभ हुआ करते हैं।

स्त्रियों का जीवन अधिक बँधा हुआ है। अत: उनके लिए छुट्टियों, पिकनिक, सैर आदि की अत्यन्त आवश्यकता है। छुट्टी का दिन सदैव घर से बाहर बिताने का प्रबन्ध करना चाहिए। भोजन लेकर किसी उद्यान, झील, नदी तट, समीपस्थ जंगल या अन्य रमणीय प्राकृतिक स्थानों में जाया जाये। वन-संचार के सामूहिक कार्यक्रम भी रखे जा सकते हैं। शिविर-जीवन का अभ्यास नितान्त आवश्यक है। ऐसे भ्रमण से शरीर और मन, दोनों में नवीन स्फूर्ति का संचार होता है।कुछ लम्बी छुट्टियों में स्थान-परिवर्तन किया जाये। पर्यटन से स्वास्थ्य सँवरता है। प्रफुल्ल चित्त से घर-परिवार में नई ताजगी का संचार होता है। साप्ताहिक अवकाश के दिन भी भोजन के साथ ही खेलने का सामान साथ ले जाकर दिनभर का स्नान, भोजन, खेल संगीत, भ्रमण का कार्यक्रम रखा जा सकता है।

पर्वों-त्यौहारों का वर्तमान बोझिल रूप तो सर्वथा त्याज्य और परिवार के सदस्यों को उनका यही स्वरूप भी भली-भाँति ज्ञात हो चुका है। वर्षों का उल्लास और प्रेरणा के विशिष्ट अवसरों के रूप में ही मनाया जाना चाहिए, ताकि हृदय में उत्साह और मन में आह्लाद का संचार हो उठे।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अपने मिशन के प्रत्येक सदस्य को विभिन्न संस्कार-आयोजनों तथा पर्वों को सर्वोत्कृष्ट रूप में मनाने की दिशायें प्राप्त हैं और ये आयोजन पारिवारिक एवं सामाजिक मनोरंजन तथा लोकशिक्षण के अनूठे माध्यम हैं। इनका समाज में सर्वत्र प्रचलन हो जाये, तो स्वस्थ्य मांगलिक मनोरंजन का अक्षय स्रोत ही सबके सामने खुल जाये और सिनेमा के विषाक्त मनोरंजन का आकर्षण भी उतना प्रबल तथा प्रभावकारी न रहे।

हर घर में विचार गोष्ठियों और छोटे आयोजनों का प्रचलन विस्तार हो। जन्मदिन, विवाह, पुंसवन, नामकरण अन्नप्राशन, मुण्डन, विद्यारम्भ जैसे परिवारिक संस्कारों का समुचित आयोजन हो, जप, हवन, सहगान, प्रवचन का क्रम चले तो प्रत्येक परिवार में श्रेष्ठ परम्पराओं की स्थापना का प्रकाश और प्रेरणा तो मिलेगी ही, उत्कृष्ट, सात्विक मनोरंजन की आवश्यकता भी पूरी होती चलेगी।

इसी प्रकार दीपावली, बसंतपंचमी, शिवरात्रि, होली, रामनवमी, गायत्री जयन्ती, गंगादशहरा, श्रावणी, कृष्णाष्टमी और विजयादशमी के पर्वों के सामूहिक आयोजन मनोरंजन एवं लोकशिक्षण की नई दिशाएँ उद्घाटित करने वाले सिद्ध होंगे। स्वस्थ, सुरुचिपूर्ण, सात्विक, आमोद-प्रमोद की व्यवस्था के अभाव में हमारा पारिवारिक जीवन शुष्क तथा बोझिल हो चला है। इस स्थिति में हम सबका पारिवारिक एवं सामाजिक भूमिका तथा दायित्व और अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठा है। उसका निर्वाह करते हुए हम स्वयं को भी तथा औरो को भी आनन्द तथा नवीन शक्ति से भरते रह सकते हैं।

मित्रता की आवश्यकता एवं उसका निर्वाह

परिवार में अनेक ऐसी अड़चनें आती हैं जिनमें पड़ौसी तथा मित्रों की सहायता के बिना काम नहीं चलता। विवाह, जन्मोत्सव, प्रवास में जाने पर, बीमारी में, मृत्यु के दुःखद प्रसंगों मे, आर्थिक कठिनाइयों के मौकों पर तथा जटिल अवसरों पर राय लेने के लिए मित्रों की अतीव आवश्यकता है।

पर मित्र तथा उत्तम पड़ौसी का चुनाव बड़ा कठिन है। अनेक व्यक्ति आपसे अपना काम निकालने के स्वार्थमय उद्देश्य से मित्रता करने को उतावले रहते हैं किन्तु अपना कार्य निकल जाने पर कोई सहायता नहीं करते। अतः बड़ी सावधानी से व्यक्ति का चरित्र, आदतें, संग, शिक्षा इत्यादि का निश्चय करके मित्र का चुनाव होना चाहिए। आपका मित्र उदार, बुद्धिमान, पुरुषार्थ और सत्यपरायण होना चाहिए। विश्वासपात्र मित्र जीवन की एक औषधि है। हमे अपने मित्रों से यह आशा करनी चाहिए कि वे हमारे उत्तम संकल्पों को दृढ़ करेंगे तथा दोषो एवं त्रुटियों से बचावेंगे, हमारी सत्य, पवित्रता और मर्यादा को पुष्ट करेंगे। यदि हम कुमार्ग पर पाँव रखेंगे, तब हमें सचेत करेंगे। सच्चा मित्र एक पथ-प्रदर्शक, विश्वासपात्र और सच्ची सहानुभूति से पूर्ण होना चाहिए।

पं. रामचन्द्र शुक्ल मित्र का कर्तव्य बताते हुए लिखते हैं—"उच्च और महत्त्वपूर्ण कार्यों में इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिखाना कि तुम अपनी निज की सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ। यह कर्त्तव्य उसी से पूर्ण होगा, जो दृढ़ चित्त और और सत्य संकल्प का हो। हमें ऐसे ही मित्रों का पल्ला पकड़ना चाहिए, जिनमें आत्मबल हो, जैसे सुग्रीव ने राम का पल्ला पकड़ा था।"

मित्र हों तो प्रतिष्ठित और शुद्ध हृदय के हो, मृदुल और पुरुषार्थी हों, शिष्ट और सत्यनिष्ठ हों, जिससे हम अपने को उनके भरोसे पर छोड़ सकें और यह विश्वास कर सकें कि किसी प्रकार का धोखा न होगा। मित्रता एक नई शक्ति की योजना है। मार्कट्वेन ने कहा है—"आचरण, दृष्टान्त ही मनुष्य जाति की पाठशाला है, जो कुछ उससे सीख सकता है वह और किसी से नहीं।"

यदि आप किसी के मित्र बनते हैं तो स्मरण रखिये आपके ऊपर यही जिम्मेदारी आ रही है। आपको चाहिए कि अपने मित्र की विवेक-बुद्धि अन्तरात्मा को जाग्रत करें, कर्त्तव्य बुद्धि को उत्तेजना प्रदान करें और उसके लड़खड़ाते पाँवों में दृढ़ता उत्पन्न कर दें।

जीवन के आवश्यक कार्य—हमारे कर्म चार प्रकार के होते हैं।

(१) पशु तुल्य (२) राक्षस तुल्य, (३) सत्पुरुष तुल्य, (४) देव तुल्य। प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवार में कार्य करते समय इन पर दृष्टि डालनी चाहिए।

वे सब कार्य जिनमें बुद्धि का उपयोग न किया जाय, क्षणिक आवेग या प्रकृति के संकेत पर बिना जाने-बूझे कर डाले जायँ पशु तुल्य कार्य हैं। जैसे—भोजन, कामेच्छा की पूर्ति, गुस्से में मार बैठना, प्रसन्नता में वृथा फूल उठना। जीभ तथा वासनाजन्य सुख इसी श्रेणी में आते हैं।

स्वार्थ की पूर्ति के लिए जो कार्य किये जायँ, वे राक्षस जैसे कार्य होते हैं। राक्षस वृत्ति वाले पुरुष साम, दाम, दण्ड, भेद से अपना ही अपना भला चाहते हैं। दूसरों को मार कर स्वयं आनन्द में मस्त रहते हैं। उन्हें किसी के दुःख-तकलीफ, मरने-जीने से कोई सरोकार नहीं है। ऐसे अविवेकी माँस भक्षण, रति-प्रेम, व्यभिचार, चोरी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार, गुप्त पाप किया करते हैं। 'खाओ-पीओ मौज उड़ाओ' यही उनका आदर्श है। दुर्भोग, व्यभिचार, माँस भक्षण, मद्यपान, भोग उनके आनन्द के ढग है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सत्पुरुष आज की आवश्यकताओं की पूर्ति करता, कल के लिए योजना बनाता, धन, अनाज, वस्त्र इत्यादि का संग्रह करता, अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखता, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और भावी उन्नति का विचार रखता है। वह पृथ्वी पर ही अपनी सद्भावनाओं तथा सद्इच्छाओं द्वारा स्वर्ग का निर्माण करता है। वह जानता है कि जीवन में धन सफलता की कसौटी नहीं है। धर्म ही वह साधन है जिसके द्वारा पुण्यजीविका एकत्र की जाती है।

वह पाप-जीविका, छल-जीविका, जुआ, सट्टा, भिक्षा, ब्याज से दूर रहता है। वह दूसरे को ठगने का प्रयत्न नहीं करता। उसकी जीविका उपार्जन का कार्य सद्उद्देश्य से होता है। सच्चाई और पुण्य की कमाई से खूब फूलता-फलता है। बुराई से खरीदी हुई प्रतिष्ठा क्षणिक होती है। यथाशक्ति वह दूसरों को दान-पुण्य से सहायता करता है। जीवन निर्वाह के बदले वह उचित सेवा भी करता है।

देव तुल्य जीवन का उद्देश्य त्याग तथा साधना द्वारा जन सेवा के कार्य हैं। यह सेवा शरीर, मन या शुभ विचारों के द्वारा हो सकती है। विश्व कल्याण के लिए जीने वाला व्यक्ति मनुष्य होते हुए भी देवता है। वह अपनी बुद्धि एवं ज्ञान को विश्वहित के लिए बलिदान करता है। ज्ञान चर्चा द्वारा वह दूसरों का मन भी उच्च विषयों की ओर फेरता है। उसकी दिनचर्या में उत्तम प्रवचनों का श्रवण, शंकानिवारण, पठन, चिन्तन, आत्मनिरीक्षण, निर्माण और उपदेश होते हैं। वह संसार की वासनाओं के ऊपर शासन करता है।

दाम्पत्य जीवन का सुख यों प्राप्त करें

दाम्पत्य जीवन में आपसी सम्यक बूझ और स्नेह प्रेम न हुआ, तो पारस्परिक क्लेश-कटुता बढ़ने लगते हैं और जीवन जल्दी ही नरक तुल्य बन जाता है। इस नारकीयता से त्राण पाने के लिए पति-पत्नी तलाक की आवश्यकता महसूस करते हैं और जिस जीवन की शुरूआत सुख-सृष्टि की अनन्त संभावनाओं के साथ हुई थी, वह अन्ततः दारुण दुःख के साथ बिखर जाता है। यहाँ कुछ आवश्यक ज्ञातव्य दिये जा रहे हैं, जिनका यदि दाम्पत्य जीवन में पालन किया गया, तो उनसे पति-पत्नी के बीच वास्तविक स्वर्ग-सृजन में सहायता मिल सकती है।

१. पति-पत्नी एक दूसरे को सच्चे हृदय के गहन तल से प्रेम करें। प्यार का अर्थ है प्रियजनों के दोष और त्रुटियों को क्षमा करते रहना। मत-भेद होने पर समझौता करें और गलतफहमी होने पर जल्दी से जल्दी उसे दूर करें। प्रेम मे अहंभाव को भुला देना चाहिए। क्षमाशीलता से सरसता पुनः आ जाती है।

२. पति-पत्नी परस्पर एक-दूसरे में अविचलित विश्वास रखें। दाम्पत्य जीवन में सन्देह के समान कोई बड़ा शत्रु नहीं है। मन को विषमय बनाने के लिए सन्देह से बढ़कर अन्य भावना नहीं है।

३. साथ-साथ रहें। सुख-दुःख में, संपद्-विपद में, हर्ष और आह्लाद में सदा एक-दूसरे के साथ रहें। जीवन में कष्ट आयें, तो साथ रहें, हर्ष के अवसर आयें, तो साथ ही हर्षित होकर खुशी मनावें। बीमारी में एक दूसरे का पूरा साथ दें। धर्म के सब कार्य हमारे यहाँ सम्मिलित मिलकर मनाने की प्रथा है। सम्मिलित दान, स्नान, यात्रा, कर्म इत्यादि से धर्म की सिद्धि मानी गई हैं। पति-पत्नी को चाहिए कि सब कामों में साथ-साथ रहें।

४. एक दूसरे की निस्वार्थ भाव से सेवा करें और उसके लिए अपने स्वार्थों का परित्याग करें। पत्नी पति के लिए और पति पत्नी के लिए अपने संकुचित स्वार्थ का त्याग करें। इस पारिवारिक त्याग से, आदान-प्रदान की नीति से काम लें। इससे वाणिज्य व्यापार तो चलता ही है, पर गृह संसार में भी यही नीति लाभ देती है।

५. एक दूसरे के आचरण की आलोचना न करें। बुराई किसमें नहीं है ? कमजोरियों से कौन बचा है ? सबसे पहले दम्पत्ति को दोषान्वेषण की आदत छोड़ देनी चाहिए। एक दूसरे के दोष दर्शन से दाम्पत्य जीवन में कटुता उत्पन्न होती है और पारस्परिक विश्वास नष्ट हो जाता है। दोष देखने का अर्थ एक दूसरे को नीचा दिखाना है। इससे घृणा उत्पन्न होती है, यह घृणा बड़े-बड़े राज्यों को समाप्त कर देती है। घृणा से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं।

६. मैं अपनी पत्नी की अपेक्षा बड़ा हूँ या मैं अपने पति से ऊँची हूँ, यह सब मन में न आने दीजिये। इससे अहंभाव उत्पन्न होता है, स्वेच्छाचारिता बढ़ जाती है और स्वार्थ की इस खींचा-तानी में दाम्पत्य जीवन की डोर टूट जाती है। दाम्पत्य जीवन में तो दोनों को सदा समानता का ही भाव मन और कर्म में रखना चाहिए।

७. विवाह किया है, इसलिए हमारा दूसरे के ऊपर पूरा-पूरा हर प्रकार का अधिकार है। हम अपने साथी से सब प्रकार की आशा कर सकते हैं—ऐसा कभी भी न सोचें। मनुष्य आखिर मनुष्य ही है, देवता नही है। मनुष्य में चाहे योग्यता और शक्ति कितनी ही बड़ी क्यो न हो, किन्तु दुर्बलता आखिर सब में है—इस बात का स्मरण रखिए। हो सकता है कि अपनी पत्नी से या पति से कोई दुर्बलता सूचक कार्य हो जाय, यदि ऐसा हो तो उदारतापूर्वक उसे क्षमा कर देने में ही दोनों की भलाई है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

८. सदा गम्भीर मत बने रहिए, इससे जीवन नीरस हो जाता है। दोनों मिल-जुलकर हँसी-खुशी के लिए भी समय रखिये, हँसना, बोलना, मनोरंजन करना भोजन से भी अधिक उपयोगी है। हँसमुख आदमी कभी अस्वस्थ नहीं रहता। हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ व्यक्ति ही प्रसन्नचित होते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कथन है कि हँसने से शरीर का रक्त उष्ण होता है और नाड़ी की स्पन्दन क्रिया नियमित होती है। हँसने से शरीर में बल और साहस की वृद्धि होती है। हँसना जीवन की शक्ति को बढ़ाता है, प्रसन्नता और आनन्दी स्वभाव चेतना-शक्ति बढ़ाते हैं। मृदुल हास से स्वभाव, शरीर और आत्मा दृढ़ होते हैं। हास-परिहास, दाम्पत्य जीवन के लिए बहुत आवश्यक है, स्वास्थ्य और सुख का आधार है। हँसते हुए जीवन बिताना एक प्रकार से मानसिक और शारीरिक शक्ति बढ़ाने की चिकित्सा है।

९. पहले प्रियजन बाद में मैं—पहले उसका सुख, इस बात को स्मरण रखते हुए अपने सुख को पीछे रखिये।

१०. पति पत्नी से और पत्नी पति से पूरे शिष्टाचार का पालन करें। अभ्यागत के प्रति भी ऐसा ही व्यवहार उचित है। अशिष्ट व्यवहार दाम्पत्य जीवन में भी सर्वथा निन्दनीय और त्याज्य है।

हमारे उत्सव तथा त्यौहार

वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का उदय—सुखद पारिवारिक जीवन के लिए उत्सव तथा त्यौहार बड़े उपयोगी हैं। इनके द्वारा अनेक लाभ हैं। (१) अच्छा मनोरंजन होता है। इसमें सामूहिक रूप से समस्त परिवार के व्यक्ति सम्मिलित हो सकते हैं। अभिनय, गान, कीर्तन, पठन-पाठन, स्वाध्याय इत्यादि साथ-साथ करने में सबमें भ्रातृ–भाव का संचार होता है। (२) समता का प्रचार त्यौहारों में हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति सामूहिक रूप से उन्हें सफल बनाने का उद्योग करता है। (३) पुराने सांसारिक एवं आध्यात्मिक गौरव की स्मृति पुनः हरी हो जाती है। यदि हम गहराई से विचार करें, तो हमें प्रतीत होगा कि प्रत्येक त्यौहार का कुछ गुप्त आध्यात्मिक अर्थ है। हिन्दू उत्सव एवं त्यौहारों में समता, सहानुभूति तथा पारस्परिक संगठन की पवित्र भावना निहित है। इन गुणों का विकास होता है। (४) आध्यात्मिक उन्नति का अवसर हमें इन्हीं त्यौहारों द्वारा प्राप्त होता है। हमारे प्रत्येक उपवास, मौनव्रत, समारोह का अभिप्राय सब परिवार में प्रेम, ईमानदारी, सत्यता, उदारता, दया, श्रद्धा, भक्ति और उत्साह के भाव उत्पन्न करना होता है। ये सब आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं। यही मनुष्य की स्थायी शक्तियाँ हैं।

ये उत्सव तथा त्यौहार केवल रस्म अदायगी, बाह्य प्रदर्शन या झूठा दिखावा मात्र न बनें, प्रत्युत पारिवारिक भावना, संगठन, एकता, समता और प्रेम की भावना के विकास में सहायक हों। पारिवारिक जीवन का विकास करने के लिए हमें कटुता और विषमता की भावना त्यागनी होगी, स्नेह सरिता प्रवाहित करनी होगी और सहानुभूति का सूर्य उदय करना होगा।

उत्सव तथा त्यौहारों में हम सबको एक ही स्थान पर एकत्रित होने का अवसर प्राप्त हो जाता है, हम मिल-जुल कर परस्पर विचार-विनिमय कर सकते हैं, एक ही विषय पर सोच-विचार कर अपनी समस्याओं का हल सोच सकते हैं। परस्पर साथ रहने से हम एक-दूसरे के गुण-दोषों की ओर भी संकेत कर सकते हैं। ये वे अवसर हैं जो पारिवारिक भेद-भाव भुला कर पुनः स्नेह, सहानुभूति में आबद्ध करते हैं। बड़े उत्साह से हमें इन्हें मनाना चाहिए।

मूर्खतापूर्ण आदतें—वे आदतें कौन सी हैं, जिनसे परिवार का सर्वनाश होता है ? प्रथम तो स्वार्थमय दृष्टिकोण है, जिसकी संकुचित परिधि में केवल मुखिया ही रहता है। जो मुखिया अपने आप अच्छी से अच्छी चीजें खाता, सुन्दर वस्त्र पहिनता, अपने आराम का ध्यान रखता है और परिवार के अन्य सदस्यों को दुःखी रखता है, वह दुर्मति ग्रस्त है। इसी प्रकार अत्यधिक क्रोधी, कामी, अस्थिर चित्त, मारने-पीटने वाला, वेश्यागामी व्यक्ति परिवार के लिए अभिशाप है।

अनेक परिवार अभक्ष्य पदार्थ के उपयोग के कारण नष्ट हुए हैं। शराब ने अनेक परिवारों को नष्ट किया है। इसी प्रकार सिगरेट, पान, तम्बाकू, बीड़ी, गाँजा, भाँग, चरस, चाय इत्यादि वस्तुओं में सबसे अधिक धन स्वाहा होता आया है। इन चीजों से जब खर्चा बढ़ता जाता है तो उसकी पूर्ति जुआ, सट्टा, चोरी, रिश्वत, भ्रष्टाचार से की जाती है। जो व्यक्ति संयमी नहीं हैं, उससे उच्च आध्यात्मिक जीवन की कैसे आशा की जा सकती है ? नशे में मनुष्य अपव्यय करता है और परिवार तथा समाज के उत्तरदायित्व को पूर्ण नहीं कर पाता। विवेकहीन होने के कारण वह दूसरों का अपमान कर डालता है, व्यर्थ सताता है, मुकदमेबाजी चलाता है। समय और धन नष्ट हो जाता है। शराबी लोगों के गृह नष्ट हो जाते हैं। प्रतिष्ठा की हानि होती है। बच्चों और पत्नी की दुर्दशा हो जाती है। जो लोग भाँग, अफीम इत्यादि का नशा करते हैं वे भी एक प्रकार के मद्यपी ही परिगणित किये जायेंगे।

माँस भक्षण भी एक ऐसा ही दुष्कर्म है, जिससे प्राणी मात्र को हानि होती है। इससे हिंसा, प्राणीवध, भाँति-भाँति के जटिल रोग उत्पन्न होते हैं। पशु प्रकृति जाग्रत होती है। अधिक मिठाइयाँ या चाट-पकौड़ी खाना भी उचित नहीं है।

कर्जा लेने की आदत अनेक परिवारों को नष्ट करती है। विवाह, जन्मोत्सव, यात्रा, आमोद-प्रमोद में अधिक व्यय करने के आदी अविवेकी व्यक्ति अनाप-शनाप व्यय करते हैं। कर्जा लेते हैं और बाद में रोते हैं। एक बार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

का लिया हुआ कर्ज कभी नहीं उतरता। सामान और घर तक बिक जाते हैं। आभूषण बेचने तक की नौबत आती है। इसी श्रेणी में मुकदमेबाजी आती है। यथाशक्ति आपस में मेल-मिलाप कर लेना ही उचित है। मुकदमे के चक्र में समय और धन दोनों की बरबादी होती है।

व्यभिचार सम्बन्धी आदतें समाज में पाप और छल की वृद्धि करती हैं। विवाहित जीवन में जब पुरुष अन्य स्त्रियों के सम्पर्क में आते हैं, तो समाज में पाप फैलता है। कुटुम्ब का प्रेम, समस्वरता, संगठन नष्ट हो जाता है। गृह-पत्नी से विश्वासघात होने से सम्पूर्ण घर का वातावरण दूषित और विषैला हो उठता है। शोक है कि इस पाप से हम सैकड़ों परिवारों को नष्ट होते देखते हैं और फिर भी ऐसी मूर्खतापूर्ण आदतें डाल लेते हैं। आज के समाज में प्रेयसी, सखी, फ्रेन्ड के रूप में खुला आदान-प्रदान चलता है। इसके बड़े भयंकर दुष्परिणाम होते हैं।

बचे हुए समय का उपयोग कैसे होना चाहिए ?

परिवार के स्त्री-पुरुष दोनों को कुछ-न-कुछ फालतू समय मिलता है। जिसका उपयोग आलस्य, हँसी-ठट्ठा या चुगली, गप-शप में किया जाता है। हमारे परिवारों में समय का मूल्य नहीं समझा जाता है। पुरुष प्राय: आर्थिक समस्याओं में उलझे हुए गृह से बाहर रहते हैं। स्त्रियाँ भोजनोपरान्त या तो सो जाती हैं या घर में बैठ कर व्यर्थ की टीका-टिप्पणी, परछिद्रान्वेषण, लड़ाई-झगड़ों, चौपड़ खेलने में समय नष्ट करती हैं।

आज का युग हमें पुकार-पुकार कर चेतावनी दे रहा है, 'उठो, तन्द्रा छोड़ो, जागो और अपनी उन्नति के लिए प्रत्येक क्षण का समुचित उपयोग करो। देखो प्रत्येक परमाणु आगे बढ़ रहा है, उन्नति करने के लिए उद्योग कर रहा है। व्यर्थ की सुस्ती, आलस्य या व्यर्थ की टीका-टिप्पणी में समय नष्ट करने का किसे अवकाश है ? यहाँ तो प्रत्येक पल उन्नति के लिए लगाना है। अब विश्व का कण-कण प्रगतिशील है, तो क्या आप व्यर्थ ही सोते रहेंगे ? क्या अपना समय हम व्यर्थ नष्ट कर देंगे ?

दैनिक कार्यक्रम:—परिवार के स्त्री वर्ग का उत्तरदायित्व अधिक है। अब युग उन्नति करने का है। प्रत्येक पल का उचित उपयोग कर निरन्तर अग्रसर होने का है। प्रत्येक प्रगतिशील परिवार के स्त्री-पुरुष को चाहिए कि दिन-भर का कार्य-क्रम दिन प्रारम्भ होने से पूर्व तैयार कर ले। यदि दिन प्रारम्भ हो जायेगा, तो इतना अवकाश प्राप्त न होगा कि यह सोचा जा सके कि आज कौन-कौन सा महत्त्वपूर्ण कार्य करना है। चतुर विद्यार्थी, व्यापारी, अध्यापक, इंजीनियर, ठेकेदार रात्रि में दूसरे दिन के लिए कार्यक्रम तैयार करते हैं। स्त्रियों को भोजन बनाना, नित्य-कर्म, घर की सफाई और शिशु पालन का समय निकालकर कुछ फुरसत का अवकाश निकालना चाहिए।

अवकाश का सदुपयोग— सर्वप्रथम प्रत्येक परिवार का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि घर की जितनी नारियाँ निरक्षर हों, उनको साक्षर बनाया जाय। बेपढ़ा-लिखा होना सबसे बड़ा अभिशाप है। यदि पति, भाई या घर का और कोई सदस्य शिक्षित हो, तो उसे घर में विद्यादान का कार्य करना चाहिए। आज के युग में विद्या प्राप्ति के साधन इतने सुलभ और सस्ते हैं, जितने किसी भी युग में न थे। पुस्तकें, मासिक-पत्र, स्टेशनरी, कागज इत्यादि अत्यन्त सस्ते में ही प्राप्त हो जाते हैं। समाचार-पत्रों की सुविधा थोड़े ही पैसों में हो जाती है। मासिक पत्रिकाएँ प्रत्येक स्थान पर सुलभतापूर्वक ली जा सकती हैं। पास-पड़ौस से माँग कर भी इनका उपयोग किया जा सकता है।

परिवार में आने वाले समाचार-पत्रों का, पत्रिकाओं का चुनाव बड़ी सतर्कता से होना चाहिए। आजकल सिनेमा से सम्बन्धित अश्लील, कुरुचिपूर्ण, कामोत्तेजक पुस्तकें और पत्रिकाएँ ढेर की ढेर मिलती हैं। इनके मायाजाल में कदापि न फँसिये। स्त्रियों के लिए कोई भी सद्विचारपूर्ण, शिक्षा प्रदान करने वाली, उत्तम मासिक-पत्रिका चुनी जा सकती है। परिवार में एक छोटा-सा घरेलू, पुस्तकालय अवश्य होना चाहिए, जिसमें मानव-जीवन को ऊँचा उठाने वाले सद्ग्रन्थ रहें।

जो परिवार अच्छी स्थिति में हैं, उनमें घर के लिए एक मास्टर की योजना रह सकती है, जो अशिक्षितों को अक्षर ज्ञान करा कर उच्च स्थिति में पदार्पण कर सके। परिवार स्वयं एक पाठशाला है, जिसमें प्रत्येक सदस्य को प्रेम और उत्तरदायित्व की शिक्षा प्राप्त होती है। फिर क्यों न शिक्षा का विधिवत् पालन किया जाय?

शिक्षा के जिस महान कार्य को आप पूर्ण करना चाहते हैं, उसे छोटे से प्रारम्भ कीजिए। एक छोटे से भाग को हाथ में लीजिए और उस भाग को पूरी सावधानी से, दिलचस्पी और लगन से दृढ़तापूर्वक करने का प्रयत्न कीजिए। जब आप परिवार से शिक्षा की बात कहेंगे, तो वे सम्भव है इसे पहले न पसन्द करें, पर बाधाओं से मत घबराइये। इस पुण्य कार्य को मत त्यागिये वरन् जैसे भी बन पड़े थोड़ा-बहुत समय इस कार्य के निमित्त नित्य लगाते रहिये। नियमित रूप से कुछ पढ़ाने-लिखाने, कविता पाठ कराने, खेल, कहानी, समाचार-पत्र पढ़ाने से साधारण योग्यता अवश्य प्राप्त की जा सकती है। पहले एक सदस्य को, फिर उसकी सहायता से दूसरे-तीसरे और चौथे को शिक्षित कीजिए। जिस आदमी को एक बार अपनी योग्यता पर विश्वास हो गया, वह बड़े कठिन कामों में हाथ डालने लगता है और बड़े से बड़े कार्यों को सुगमता से सम्पन्न कर डालता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

विद्या ही आत्मा का भोजन है। फालतू समय का उपयोग सात्विक ज्ञान संचय, पुस्तक पढ़ने, अखबारों से संसार की घटनाओं के विषय में जानने, मासिकपत्रों के अध्ययन में व्यतीत होना चाहिए। पहले पुस्तकें, कहानियाँ, कविताएँ, उपन्यास इत्यादि पढ़ने की अभिरुचि उत्पन्न कीजिए। तत्पश्चात् क्रमशः कठिन और गम्भीर विषयों की ओर अग्रसर हूजिए। अध्यात्म, मनोविज्ञान इत्यादि गम्भीर विषयों का अध्ययन करने से मानव जीवन के ज्ञान का सम्पूर्ण भाग प्राप्त किया जा सकता है।

ज्ञान प्राप्ति के अन्य साधन—स्वाध्याय से ज्ञान बढ़ता है। जो व्यक्ति पुस्तकें पढ़ता है, वह उच्चतम ज्ञान के साथ अटूट सम्बन्ध स्थापित करता है। सुशिक्षा, विद्या, विचारशीलता, समझदारी, सुविस्तृत जानकारी, अध्ययन, चिन्तन, मनन, सत्संग तथा दूसरों के अनुभव द्वारा हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको सुसंस्कृत बना सकता है। मनुष्य स्वयं अनेक शक्तियों को लेकर भूतल पर अवतरित हुआ है। जन्म से प्रायः हम सब समान ही हैं। अन्तर केवल विकास का ही है। स्वाध्याय द्वारा ही हमारा विकास सम्भव है। स्कूल-कालिज में भी केवल स्वाध्याय करने के उचित साधन उपस्थित किए जाते हैं। स्वाध्याय अर्थात् स्वयं अपने परिवार और उद्योग से शिक्षित होकर संसार में महात्मा, भक्त, ज्ञानी, तपस्वी, त्यागी, गुणी, विद्वान, महापुरुष, नेता, देवदूत, पैगम्बर तथा अवतार हुए हैं। ज्ञान ने ही मनुष्य को तुच्छ पशु से ऊँचा उठाकर एक सुदृढ़ असीम शक्तिपुंज, नाना दैवी सम्पदाओं तथा कृत्रिम साधनों से सम्पन्न अधीश्वर बनाया है। जीवन का सुख इस विद्याबल पर ही बहुत हद तक निर्भर है। ज्ञान प्राप्ति के कुछ उपाय ये हैं—

१. विद्वानों के प्रवचनों को ध्यान से सुनना और उनके अनुसार आचरण करना।

२. उत्तम ग्रन्थों का पठन-पाठन। उन्हें स्मरण रखना, मस्तिष्क का एक भाग बनाना।

३. ज्ञान का विस्तारण। दूसरे को देने से विद्याबल बढ़ता है।

४. स्वयं विचार करना। जगत, संसार, मानव स्वभाव तथा आदतों पर विचार करना।

५. आत्म-निरीक्षण।

६. उपदेश ग्रहण:—किसी के उपदेश की सत्यता की जाँच लोग उनके आचरण से ही करेंगे। इसलिए यदि ज्ञानी पुरुष स्वयं कर्म न करेगा, तो वह सामान्य लोगों को आलसी बनाने का एक बहुत बड़ा कारण बन जायेगा।

शिक्षित स्त्रियाँ पति को आर्थिक सहायता देने के लिए छोटी-मोटी नौकरी भी कर सकती हैं। उनके लिये (१) अध्यापिका, (२) नर्स, (३) डाक्टरनी, (४) सम्पादिका, लेखिका (५) शिशु संस्थाओं की देखभाल, (६) उद्योग मन्दिरों में कार्य सिखलाने का काम उपयुक्त हैं। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों की नितान्त आवश्यकता है। कुमारी अध्यापिकाओं से विवाहित अध्यापिकाएँ तथा लेड़ी प्रोफेसर अधिक चतुर और अनुभवी समझी जाती हैं। बाल मन्दिरों में शिशुओं की देखभाल के लिए शिक्षित मनोविज्ञानवेत्ता स्त्रियों की बेहद जरूरत है। स्त्रियों के शफाखानों में, प्रसूति-गृहों में लेडी डाक्टरों की तथा चतुर नर्सों की आवश्यकता है। सरकार के दफ्तरों, पोस्टआफिसों तथा रेलवे में टिकट चेक करने के लिए स्त्रियों की आवश्यकता है। जो बहिनें अपने चरित्र की दृढ़ता में विश्वास करती हैं और साधारण से ऊँची हैं, उन्हें विवेकपूर्ण ढंग से घर को आर्थिक सहायता प्रदान करनी चाहिये।

ऐसे भी अनेक उद्योग-धन्धे हैं, जिन्हें आप अपने पति की सहायता से घर में कर सकती हैं। देशी-विदेशी हर प्रकार के सुगन्धित तथा सादे तेल, इत्र, एसेन्स, वेसलीन, स्नो, क्रीम, हैजलीन, फलों के शर्बत इत्यादि की कुछ शिक्षा प्राप्त कर सकती हैं और छोटे पैमाने पर इन्हें तैयार कर सकती हैं। देशी जड़ी-बूटियों से भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग बनाना, कपड़े रंगना, कपड़े सीने का काम, फूल-पत्ती काढ़ना भी चलाये जा सकते हैं। थोड़ी पूँजी से घर में प्रिंटिंग प्रेस चलाया जा सकता है, जिसमें स्त्रियाँ कम्पोजिंग, कटाई, छपाई, जिल्दसाजी, लिफाफे बनाना, लेटरपैड तैयार करने का कार्य कर सकती हैं।

यदि आपके पास थोड़ी-सी भूमि है तो दो पेशे और भी शुरू किये जा सकते हैं। (१) बागवानी-घर के लिए सब्जी उगाना, पुष्प उत्पन्न करना, गमलों में कलम इत्यादि लगाना, छोटे फल उत्पन्न करना बड़ा लाभदायक मनोरंजन है। (२) दूध का व्यवसाय—तीन-चार गाय-भैंस पालकर दूध, घी और मक्खन का काम चलाया जा सकता है। दूध, घी का कार्य तो स्त्रियों के हाथ में सफलता से दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अगरबत्ती बनाना, दियासलाई बनाना इत्यादि के काम भी चलाये जा सकते हैं। दरवाजों तथा खिड़कियों पर लगाने का पेन्ट घर में बनाया जा सकता है। पंजाब में अनेक दुकानें पापड़ का ही व्यवसाय कर हजारों का लाभ उठाती हैं। पापड़ों के साथ वे कुरेरी, बड़ियों तथा अन्य इसी प्रकार की वस्तुएँ घर पर तैयार कर सकती हैं। रंग का काम भी उनके हाथ की बात है। मोमबत्ती का व्यापार थोड़े पैसे से घरों में प्रचलित किया जा सकता है। आतिशबाजी का सामान तैयार करने के लिए थोड़ी-सी सामग्री-शोरा, गन्धक, पोटाश, बारूद इत्यादि की आवश्यकता पड़ती है। इसके अतिरिक्त थोड़े-से परिश्रम से डबल रोटी बनाना सीख सकती हैं। चारपाई बुनना, निवाड़ तैयार करना, चर्खा कातकर सूत तैयार करना, गाले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

बुनना, टोकरियाँ तैयार करना, चिकें, दरियाँ इत्यादि तैयार करना-घरों में किए जाने वाले कुछ उद्योग धन्धे हैं।

आजकल पाश्चात्य देशों की महिलाओं के कार्य-कलाप देखकर दंग हो जाना पड़ता है। हम वहाँ की उच्छृंखलता को खतरनाक समझते हैं, किन्तु सदाचार और नैतिकता हमारे चरित्र के अंग हैं। हमें सतर्कता से उनके परिश्रम तथा सात्विक गुणों को अपनाना चाहिये। परिश्रम की दृष्टि से पाश्चात्य देशों की स्त्रियों को कई भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१)—शिक्षालयों की अध्यापिकाएँ २—गृहपरिचारिका ३—अभिनेत्रियाँ ४—कार्यालयों की लेखिकाएँ ५—उच्च गृह की गृहस्वामिनियाँ ६—दाइयाँ और डाक्टरनियाँ इत्यादि। अभिनेत्री का जीवन निंद्य और वासना-जन्य है। प्रत्येक दृष्टि से वह निकृष्ट एवं त्याज्य है। उसे छोड़कर अन्य पेशों के लिए चुनाव किया जा सकता है।

फालतू समय का एक उपयोग मनोरंजन है। सम्पूर्ण दिन कार्य करते-करते महिलाओं का दिल और दिमाग शिथिल हो जाता है। वे घर के कारावास में बन्द रहती हैं। छुट्टी के दिन उन्हें उद्यानों की सैर करनी चाहिए, सहेलियों के यहाँ मिलने जाना चाहिए, सरिताओं के तट पर तथा पर्वत प्रदेशों की यात्राएँ करनी चाहिए। तैरना-खेलना भी है और व्यायाम भी। फोटोग्राफी, लकड़ी का काम, लेख लिखना, कविता करना या अन्य कोई शौक का कार्य किया जा सकता है। अपने बच्चों को पढ़ाने का कार्य बहुत श्रेयस्कर है। राष्ट्रीय कार्यों में अनेक विजयलक्ष्मियों की आवश्यकता है। यदि प्रयत्न करें तो भारत में रचनात्मक योजनाओं के लिए अनेक राष्ट्रीय विचारों वाली विदुषी नारियाँ तैयार की जा सकती हैं। भारत में अभी देवमाता, अदिति, लोपामुद्रा, मैत्रेयी, गार्गी, जैसी महामान्या नारियों को भुलाया नहीं जा सकता। फालतू समय में शास्त्रों का अध्ययन कर भारतीय ललनाएँ वक्ता, लेखिकाएँ, कवयित्री, विदुषी, ब्रह्मवादिनी बन सकती हैं।

शान्तिमय गृहस्थ जीवन

आपका परिवार का एक छोटा-सा स्वर्ग है, जिसका निर्माण आपके हाथ में है। परिवार एक ऐसी लीला भूमि है जिसमें पारिवारिक प्रेम, सहानुभूति, सम्वेदना, मधुरता अपना गुप्त विकास करते हैं। यह एक ऐसी साधना भूमि है, जिसमें मनुष्य को निज कर्त्तव्यों तथा अधिकारों, उत्तरदायित्वों एवं आनन्द का ज्ञान होता है। मनुष्य को इस भूतल पर जो सच्चा और अकृत्रिम सौख्य और दुःख से मुक्त सुख प्राप्त हो सकता है वह कुटुम्ब का ही सुख है।

कुटुम्ब की देवी स्त्री है। चाहे वे माता, भगिनी या पुत्री किसी भी रूप में क्यों न हो। उन्हीं के स्नेह से, हृदय की करुणा, रस स्निग्ध वाणी और सौन्दर्यशील प्रेम से परिवार सुखी बनता है। वह स्त्री जिसका हृदय दया और प्रेम से उछलता है परिवार का सबसे बड़ा सौभाग्य है। उसकी वाणी में सुधा की-सी शीतलता और सेवा में जीवनप्रदायिनी शक्ति है। उसके प्रेम की परिधि का निरन्तर विकास होता है। वह ऐसी शक्ति है, जिसका कभी क्षय नहीं होता और जिसका उत्साह एवं प्रेरणा, परिवार में नित्य नवीन छटाएँ, पूर्णता में नवीनता उत्पन्न कर मन को मोद, बुद्धि को प्रबोध और हृदय को संतोष प्रदान करती है।

हिन्दू परिवार में पुत्र क्षणिक आवेश में आकर स्वच्छन्द विहार के लिये परिवार का तिरस्कार नहीं करता वरन् परिवार के उत्तरदायित्व को और भी दृढ़ता से वहन करता है। हिन्दू जीवन में पति उत्तरदायित्वों से भरा हुआ प्राणी है। अनेक विघ्नों के होते हुए भी उसका विवाहित जीवन मधुर होता है। यहाँ संयम, निष्ठा, आदर, प्रतिष्ठा तथा जीवन-शक्ति को रोक रखने का सर्वत्र विधान रखा गया है। यदि यह संयम न हो तो विवाहित जीवन गरल-मय हो सकता है। हिन्दू, नारी को भोग-विलास की सामग्री नहीं, नियन्त्रण प्रेरणा, साधना, विघ्नबाधाओं के साथ देने वाली जीवन-संगिनी के रूप में देखता है।

इन दैवी गुणों की वृद्धि कीजिए—पारिवारिक जीवन को मधुर बनाने वाला प्रमुख गुण निःस्वार्थ प्रेम है। यदि प्रेम की पवित्र रज्जु से परिवार के समस्त अवयव सुसंगठित रहें, एक दूसरे की मंगल कामना करते रहें, एक-दूसरे को परस्पर सहयोग प्रदान करते रहें, तो सम्पूर्ण सम्मिलित कुटुम्ब सुघड़ता से चलता रहेगा। परिवार एक पाठशाला है, एक शिक्षा संस्था है, जहाँ हम प्रेम का पाठ पढ़ते हैं।

अपने पारिवारिक सुख की वृद्धि के लिये यह स्वर्णसूत्र स्मरण रखिये कि आप अपने स्वार्थों को पूरे परिवार के हित के लिये अर्पित करने को प्रस्तुत रहें। हम अपने सुख की इतनी परवाह न करें, जितनी दूसरों की। हमारे व्यवहार में सर्वत्र शिष्टता रहें। यहाँ तक कि परिवार के साधारण सदस्यों के प्रति भी हमारे व्यवहार शिष्ट रहें। छोटों की प्रतिष्ठा करने वाले, उनका आत्म-सम्मान बढ़ाने वाले, उन्हें परिवार में अच्छा स्थान देकर समाज में प्रविष्ट कराने वाले भी हमी हैं।

छोटे-बड़े, भाई-बहिन, घर के नौकर, पशु-पक्षी सभी से आप उदार रहें। प्रेम से अपना हृदय परिपूर्ण रखें। सबके प्रति स्नेहसिक्त, प्रसन्न रहें। आपको प्रसन्न देखकर घर भर प्रसन्नता से फूल उठेगा, प्रफुल्लता वह गुण है जो थके-हारे सदस्यों तक में नवोत्साह भर देता है।

आप अपने परिवार में खूब हँसिये, खेलिये, क्रीड़ा कीजिये। परिवार में ऐसे रम जाइए कि आपको बाहरीपन मालूम न हो। आत्मा तृप्त हो उठे। चुन-चुन कर अपने परिवार में मनोरंजन के भी नवीन ढंग अपनायें। लेकिन इन सब के मूल में जो वृत्ति है वह हँसी-विनोद और विश्राम की है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

मार्टिन लूथर ने कहा है—"विचारपूर्ण विनोद, मर्यादापूर्ण साहस वृद्ध और युवक के लिए उदासी की अच्छी दवा है।"

सरसता का अद्भुत प्रभाव—जिनका स्वभाव रूखा, दार्शनिक, चिन्तित है, उन्हें तुरन्त प्रसन्न करने का उद्योग एवं अभ्यास करना चाहिए। रूखापन जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है। कई आदमियों का स्वभाव बड़ा शुष्क, कठोर और अनुदार होता है। उनकी आत्मीयता का दायरा बड़ा संकुचित होता है। उस दायरे में बाहर के व्यक्तियों तथा पदार्थों में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं होती। पास-पड़ौस के व्यक्तियों तक में उन्हें कोई दिलचस्पी नहीं। किसी के हानि-लाभ, उन्नति-अवनति, खुशी-रंज, अच्छाई-बुराई, तरक्की से उन्हें कोई मतलब नहीं होता। ऐसे व्यक्ति प्रसन्नता में भी कंजूस ही रहते हैं। अपने रूखेपन के प्रत्युत्तर में दुनिया उन्हें बड़ी रूखी, नीरस, कर्कश, खुदगर्ज, कठोर और कुरूप प्रतीत होती है।

रूखापन परिवार के लिए रेत की तरह बेमजे है। तनिक विचार कीजिए, रूखी में क्या मजा है, रूखे बाल कैसे अस्निग्ध प्रतीत होते हैं, रूखी मशीन कैसी खड़खड़ चलती है, रूखे रेगिस्तान में कौन रहना पसन्द करेगा ?

प्राणी मात्र सरसता के लिए तरस रहा है। वह आपका प्रेम, सहानुभूति, दया, करुणा, प्रशंसा, उत्साह, आह्लाद चाहता है। पारिवारिक सौभाग्य के लिए सरसता और स्निग्धता की आवश्यकता है। मनुष्य का अन्त:करण रसिक है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही कवि हैं, भावुक हैं, सौन्दर्य उपासक हैं, कलाप्रिय हैं, प्रेममय हैं। मानव-हृदय का यही गुण है, जो उसे पशु जगत से ऊँचा उठाता है।

सहृदय बनिये। सहृदयता का अभिप्राय कोमलता, मधुरता, आर्द्रता है। सहृदय व्यक्ति सब के दु:ख में हिस्सा बँटाता है। प्रेम तथा उत्साह देकर नीरस हृदय को सींचता है। जिसमें यह गुण नहीं है, उन्हें हृदय होते 'हृदयहीन' कहा जाता है। हृदयहीन का अर्थ है 'जड़ पशुओं से भी नीचा।' नीरस गृहस्वामी पूरे परिवार को दु:खी बना देता है।

जिसने अपनी विचारधारा और भावनाओं को शुष्क, नीरस और कठोर बना रखा है, उसने अपने आनन्द, प्रफुल्लता और प्रसन्नता के भण्डार को बन्द कर रखा है। वह जीवन का सच्चा रस प्राप्त करने से वंचित रहेगा आनन्द का स्रोत सरसता एक अनुभूतियों में है।

परमात्मा को आनन्दमय निर्देश किया गया है। क्यों ? क्योंकि वह कठोर और नियन्त्रणप्रिय होते हुए भी सरस और प्रेममय है। श्रुति कहती है—"**रसोवैस:**" अर्थात् परमात्मा रसमय है। परिवार में उसे प्रतिष्ठित करने के लिए वैसी ही लचीली, कोमल, स्निग्ध और सरस भावनाएँ विकसित करनी पड़ती हैं।

नियन्त्रण आवश्यक है—जब हम आप से सरसता को विकसित करने का आग्रह करते हैं, तो हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि आप नियन्त्रण को भी टूट जाने दें। हम नियन्त्रण के पक्षपाती हैं। नियन्त्रण से आप नियमबद्ध, संयमी, अनुशासनबद्ध, आज्ञाकारी परिवार की उत्पत्ति करते हैं। परिवार के नियन्त्रण में आप दृढ़ रहें, गलतियों पर डाटें-फटकारें, सजाएँ दें और पथभ्रष्ट को सन्मार्ग पर प्रतिष्ठित करें। परिवार की उन्नति के लिए आप कड़ा कदम उठा सकते हैं।

पर एक बात कदापि विस्मृत न कीजिए। आप अन्तत: हृदय को कोमल, द्रवित होने वाला, दयालु, प्रेमी और सरस ही रखिये। संसार में जो सरलता का, सौंदर्य का अपार भण्डार भरा हुआ है उसे प्राप्त करना सीखिये। अपनी भावनाओं को जब आप कोमल बना देते हैं, तो आपके चारों ओर आने वाले हृदयों में अमृत-सा झरता हुआ प्रतीत होता है। भोले-भाले, मीठी-मीठी बातें करते हुए बालक प्रेम की प्रतिमाएँ—माता, भगिनी, पत्नी, अनुभव ज्ञान और शुभ कामनाओं के प्रतीक वृद्धजन—ये सब ईश्वर की ऐसी आनन्दमय विभूतियाँ हैं, जिन्हें देख कर परिवार में मनुष्य का हृदय कमल के पुष्प के समान खिल जाना चाहिये।

परिवार एक पाठशाला है जो हमें आत्मसंयम, स्वसंस्कार, आत्मबल और नि:स्वार्थ सेवा की अनमोल शिक्षाएँ देती है। प्रतिदिन हम परिवार की भलाई के लिए कुछ न कुछ करते रहें, अपना निरीक्षण खुद करें।

परिवार के प्रत्येक समझदार व्यक्ति को चाहिए कि प्रति रात को सावधानी के साथ अपने आप का निरीक्षण करें। यह देखें कि आज मैंने कौन-सा कार्य पशु के समान, कौन-सा असुर के समान, कौन-सा सत्पुरुष के समान और कौन-सा देवता के समान किया है। यदि प्रत्येक व्यक्ति सहयोग और नि:स्वार्थ सेवा की भावना से परिवार की सम्पन्नता में हाथ बँटावें, तो गृहस्थ सुख-धाम बन सकता है।

'हमें अधिकार दीजिये'—एक दूषित भावना—आए दिन इस बात का झगड़ा रहता है कि 'हमें अधिकार दीजिए'। नवयुवक-नवयुवतियाँ तथा अन्य सदस्य अधिकारों की रट लगाये हैं। अधिकार माँगने की प्रवृत्ति दूषित स्वार्थ की भावना पर अवलम्बित है। वे दूसरों को कम देकर उनसे अधिक लेना चाहते हैं। यह स्वार्थमयी भावना जिस दिन अंकुरित होती है, परिवार से सुख और शान्ति की भावना का तो उसी दिन तिरोभाव हो जाता है। प्रत्येक मनुष्य छोटे के साथ अनुचित व्यवहार करता है और कहता है कि हमारा अधिकार है। सास-बहू पर अनुचित अधिकार जमाती है। बड़ा भाई छोटे भाई से दुर्व्यवहार करता है।

'अधिकार' माँगने वाला दूसरे से कुछ चाहता है, परन्तु दूसरे को देने की बात विस्मृत कर बैठता है। उसे

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

यह ज्ञान नहीं कि अधिकार और कर्त्तव्य साथ-साथ चलते हैं। इस हाथ दीजिए, उस हाथ ले लीजिए। इस माँग और भूख की लड़ाई में ही गृहस्थ जीवन का सुख विदा होना आरम्भ हो जाता है।

प्रेम, समता, त्याग और समर्पण—ये ऐसी दैवी विभूतियाँ हैं जिनसे गृहस्थ स्वर्ग बनता है। वहाँ अधिकार नामक शब्द का प्रवेश निषेध है। वहाँ तो दूसरा शब्द 'कर्त्तव्य' ही प्रवेश पा सकता है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का उत्तर-दायित्व है, कुछ न कुछ कर्त्तव्य है। वह अपना कर्त्तव्य करता चले। जो तुम्हारा अधिकार है वह तुम्हें अनायास ही प्राप्त हो जायेगा। लेकिन कर्त्तव्य की बात भूल कर केवल अधिकार की माँग लगाना नैतिक दृष्टिकोण से गर्हित है। समस्त बखेड़ों की इस जड़ को काट देना चाहिए।

संसार के सम्बन्धों को देखिए। दुनिया का सब कार्य स्वयं ही आदान-प्रदान से चल रहा है। जब कुछ दिया जाता है, तब तुरन्त ही कुछ मिल जाता है। देना बन्द होते ही, मिलना बन्द हो जाता है। अत: लेने की आकांक्षा होने पर देने की भावना पहले बना लेना जरूरी होता है। अधिकार में केवल लेने की ही भावना भरी रहती है, त्याग, बलिदान, सेवा, सहानुभूति की नहीं। इसलिए पारस्परिक प्रेम का क्षय प्रारम्भ होता है। जिस दिन वह अधिकार की लालसा गृहस्थ-जीवन में प्रविष्ट हो जाती है, गृहस्थ कलह का अखाड़ा बन जाता है। आज पढ़े-लिखे, मदान्ध नवयुवक इसी भावना को मन में भरे पृथक कुटुम्बों की आवाज बुलन्द करते हैं। अपने ही हाथों उन्होंने अपने सुख-सुविधा को लात मार दी है।

अधिकार अभिप्राय है—दूसरों को अपने आधीन रखना, अपने सुख का, भोग का यन्त्र बनाना। जब किसी भावना का प्रवाह एक ओर से चलना प्रारम्भ हो जाता है, तो उसकी प्रतिक्रिया दूसरी ओर से भी प्रारम्भ हो जाती है। तब एक दूसरे को भोग का यन्त्र बनाना चाहता है, तो दूसरा भी पहले को यन्त्र बनाने की धुन में लग जाता है।

इस कुचक्र से बचने का उपाय यही है कि परिवार का हर सदस्य अधिकार की अपेक्षा कर्त्तव्य पर अधिक ध्यान दे। लेने की अपेक्षा देने का अधिक ध्यान रखे।

महापुरुषों का दाम्पत्य-जीवन

महापुरुषों के दो प्रकार हैं। एक वे हैं, जिन्हें अपने दाम्पत्य-जीवन में कोई दिलचस्पी नहीं होती, उनका क्षेत्र ही सब कुछ होता है। वे अपना समग्र जीवन उसी में लगा देते हैं। इसलिए 'कोई उनके दाम्पत्य-जीवन को नहीं जानता। कुछ वे हैं, जो बाहर तथा भीतर दोनों ही क्षेत्रों में समान रुचि रखते हैं, पति-पत्नी में सुख-दु:ख का पूरा साथ होता है। वे अपनी प्रेमिका या पत्नियों से प्रेरणा पाते हैं, यहाँ उनके जीवन से कुछ प्रेरणादायक एवं ज्ञानवर्द्धक झाँकियाँ दी जा रही हैं।

पत्नी—मेरा मूल्यवान खजाना—इटली का भाग्य-विधाता गेरीबाल्डी अपने क्रान्तिकारी साथियों के साथ साम्राज्यवादी सरकार के विरुद्ध युद्ध कर रहा था। उसका जहाज ब्राजील के सागर तट पर नष्ट हो गया, जिससे उसके साथी मारे गये। इस दुर्घटना के बाद उसने सहसा विवाह कर लिया। इसका कारण डूमास द्वारा सम्पादित, 'गेरीबाल्डी के संस्मरण' पुस्तक में इस प्रकार लिखा है—

"स्वप्न में भी मुझे कभी विवाह का विचार नहीं आया था, परन्तु अपने दूसरे साथियों की मृत्यु के बाद मैं अपने आपको संसार में अकेला अनुभव करने लगा।

मुझे एक ऐसी आत्मा की आवश्यकता का अनुभव होने लगा, जो मुझे प्रेम करती हो; मुझे किसी ऐसे व्यक्ति की जरूरत थी जो मुझसे प्रेम करे। मित्रता तो समय का फल होता है। परन्तु इसके विपरीत प्रेम खुद एक महान संबल है और कभी-कभी इसकी अनिवार्य आवश्यकता अनुभव होती है।

मैं उन मनुष्यों में से एक हूँ, जो जीवन के शान्त कालों में भी तूफानों को अधिक पसन्द करते हैं। मेरे मन को ऐसे ही विचारों ने घेर रखा था। तब मैंने अपनी दृष्टि दौड़ाई, तो मुझे कई सुन्दर लड़कियाँ घर के काम-काज में लगी हुई दिखाई दीं। उनमें से एक ने मेरे मन को सबसे अधिक अपनी ओर खींचा। इसके लिए किनारे पर जाने के सिवा मेरे लिए और कोई उपाय न था। मैं किनारे पर पहुँच कर फौरन उस घर की ओर चल दिया, जिस पर इतनी देर से मेरी दृष्टि टिकी हुई थी। मेरा हृदय व्याकुलता से धड़क रहा था।

परन्तु सारे क्षोभ के रहते भी, मुझे अपना निश्चय पक्का मालूम होता था। एक पुरुष ने मुझे भीतर आमंत्रित किया। मेरी दशा तो ऐसी हो रही थी कि यदि वह मुझे भीतर जाने से मना भी करता तो भी मैं भीतर चला जाता।

मैं केवल बहुत थोड़ी-सी पोर्चुगीज भाषा बोल सकता था। मैंने कुछ थोड़े शब्द इटालियन भाषा में कहे। उन शब्दों से मैंने एक ऐसा सम्बन्ध पैदा कर लिया, जिसे केवल मृत्यु ही तोड़ सकती थी। उस स्त्री को पत्नी के रूप में पाकर मैं बहुत खुश हुआ। वह एनिटा थी, जो मेरे बच्चों की माँ थी, जिसने सुख-दु:ख में मेरा साथ दिया था। एनिटा मेरी प्रिय पत्नी थी, जिससे मिलने वाला उत्साह मुझे जीवन में आगे बढ़ाता रहा। उसकी याद मुझे बार-बार आती रही और कठिन क्षणों में प्रेरणा स्रोत बनी।

बहुत कम स्त्रियों को ऐसा पति मिलता है—एण्ड्रयू जेकसन ने अमेरिका के लाल इण्डियनों को छिन-भिन्न कर डाला था। उसने स्पेन तथा ब्रिटिश सेना को बहुत कमजोर किया था और 'न्यू ओर्लियन्स' को बचाया था। वह समृद्ध और चटकीली नगरी उसके चरणों

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पर झुकती थी। बड़े-बड़े प्रसिद्ध पुरुष उसे प्रणाम करने के लिए एकत्र होते थे। सुन्दर स्त्रियाँ उसकी सेविका होने में अपना सौभाग्य समझती थीं।

उसकी पत्नी का नाम रेचल था। वह कभी सुन्दरी, आनन्दी और तरुणी थी। अब उम्र बढ़ जाने से वह वृद्धा, फूहड़ और मोटी हो गई थी। वह सोचती थी कि उस चटकीली-भड़कीली राजधानी में मैं ऐसे यशस्वी के साथ बैठकर उसके लिए लज्जा का कारण तो नहीं बन जाऊँगी। पति को उसने नगर की रूपसुन्दरियों में देखा वह आने में संकोच कर रही थी, पर किसी प्रकार आई। उन फैशनेबल स्त्रियों में रेचल बिल्कुल जंगली मालूम होती थीं। जब उसका पति बाहर युद्ध पर था, वह श्रम करके अपना पेट पालती थी और रातें चिन्ता में काटती थी। वह न केवल घर का और पशु-पालन का काम करती थी, वरन् कपास के खेतों, अस्तबलों और चरागाहों में जाती थी। उसके हाथ कड़े हो गए थे और उत्तम रूप-कुरूप हो गया था।

परन्तु उसके पति जर्नेल को रेचल में कोई कुरूपता नहीं दीखती थी। न्यू ओर्लियन्स ने अपने परित्राता के सम्मानार्थ एक बड़े नृत्य की आयोजना की, तो वह भी पति के साथ वहाँ गयी।

नाचने वाले युवक जोड़े प्रेम के नशे में मधुर-मधुर मुस्कराते थे, परन्तु पति को कुछ परवाह नहीं थी। रेचल उनको देखकर मुस्करा सकती थी। उसने पति को प्रेम-बन्धन में ऐसा जकड़ा था कि कोई भी चीज उसे उस बन्धन से छुड़ा नहीं सकती थी। तब वे अपनी जन्मभूमि नेशतिल्ली को लौट आए और बड़े आनन्द और शान्ति से दिन बिताने लगे। उसका पति उसकी पूजा करता था। ३५ वर्ष बाद तक पति उसका ऐसा भक्त बना रहा कि बहुत-कम स्त्रियों को ऐसा भक्त पति पाने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

प्रेम-भरी उत्कट भक्ति:—डिजराइली ने ३३ वर्ष की आयु में ४० वर्ष की तुच्छ विधवा के साथ विवाह किया था। उसके लिए यह अनमेल विवाह भी सुख-स्वर्ग और स्थायी कोमलता का आश्रय था। वह विधवा, मेरी एन. निरक्षर थी, परन्तु उसमें उत्तम बुद्धि थी। वह ठीक राजनीतिक परामर्श देती थी और लड़ाइयों में उपयोगी साथी थी। उसकी हल्की बातों से डिजराइली का मनोरंजन होता था और थकावट दूर होती थी।

मेरी एन. वस्तुत: अपने पति का बहुत आदर और सम्मान करती थी। उसने पति को घर की और नौकरों की चिन्ता से बिल्कुल मुक्त कर रखा था। पार्लियामेन्ट में सबेरे के पाँच बजे तक वाद-विवाद के बाद घर आकर डिजराइली देखता था कि उसके स्वागत के लिए मेरी एन. ने बिछौने से उठकर लैम्प जला रखा है और अँगीठी में आग जला रखी है। कभी-कभी वह रात को उसके लिए खाना लिए घण्टों प्रतीक्षा में बैठी रहती थी। उसने भी पत्नी की इस भक्ति का कभी निरादर नहीं किया। इसके लिए वह उस भोज में भी जाने से इन्कार कर देता जो पार्लियामेन्ट में उसकी जीत पर दिया जाता था।

पति-पत्नी का सम्बन्ध अटूट और अविच्छेद है। वे दम्पत्ति धन्य हैं जो एक दूसरे में हार्दिक अनुरक्त रहते हुये जीवन-आदर्श के निकट पहुँचते हैं। संसार के विभिन्न क्षेत्रों में धर्म, समाज, राजनीति के सम्बन्ध में लोकोपकारी कार्य करना महानता का द्योतक है, पर यदि उसी महानता का परिचय हम अपने गृहस्थ-जीवन में भी दे सकें तो यह निस्संदेह हमारे उस गौरव को द्विगुणित करने वाली बात होगी।

परिवार छोटा रहे

दाम्पत्य जीवन की सरसता और सफलता बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर है कि परिवार का विस्तार सीमित हो। बड़े परिवार की समस्याएँ और चिन्ताएँ उतनी बढ़ जाती हैं कि पति-पत्नी को इन्हीं के सुलझाने में निरन्तर व्यस्त और चिन्तित रहना पड़ता है। फलस्वरूप पति-पत्नी आपस में एक दूसरे के लिए न तो कुछ सोच पाते हैं और न कुछ कर पाते हैं। पारिवारिक समस्याओं की कठिनाइयों का दोषारोपण एक दूसरे पर करते हैं और कटुता की अभिवृद्धि होने लगती है। बढ़े हुए परिवार के कारण आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ती हैं। न तो परिवार के अन्य सदस्यों की आवश्यकताएँ पूरी हो पाती हैं और न पति-पत्नी ही अपने शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रख पाते हैं। इसलिए आरम्भ में ही इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि परिवार की अनियन्त्रित वृद्धि न होने पाये। सन्तान की अधिक संख्या का होना, जल्दी-जल्दी प्रसव होना दाम्पत्य जीवन की नीरसता और असफलता का एक प्रधान कारण बन जाता है।

सन्तति-निरोध से व्यक्तियों, कुटुम्बों, समाज और जाति की सभी समस्याएँ हल हो सकती हैं। हमारे परिवारों में जो आर्थिक दैन्य दिखाई देता है, उसका प्रधान कारण यह है कि कमाने वाला एक है, तो खाने वाले आठ या दस हैं। औसत परिवार में बच्चों की संख्या ६-७ है। कहीं-कहीं दस बारह तक होते हैं। भारत में अल्प आयु में विवाह की तौक गले में डाल दी जाती है। अत: अनियन्त्रित सन्तानोत्पति के कारण कुटुम्ब की औसत आय न्यूनातिन्यून होती जा रही है। बेचारा पिता क्षणिक भोग के लालच में फँसकर अपनी वासना को नहीं दबा पाता। फलत: प्रति दूसरे वर्ष एक नवीन व्यक्ति का कुटुम्ब में पदार्पण हो जाता है। वह खाने पहिनने की कमी अनुभव करता है। अपना पेट काट कर अपने बच्चों को खिलाता है। स्वयं अपने आप नंगा भूखा रह कर बच्चों को पहनाता है। पिता की आय भी कम होती जाती है। सबसे अधिक दूषित प्रभाव तो माता पर पड़ता है। सन्तति धारण प्रजनन तथा पालन-पोषण की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जिम्मेदारी माता पर अपेक्षाकृत अधिक है। पुरुष को आर्थिक कठिनाइयों का ही अनुभव होता है, किन्तु माता को अपने रक्त और दूध के अतिरिक्त सेवा-ममता और पालन-पोषण रात-रात भर जागना, बीमारी में देख-रेख हजारों छोटी-बड़ी जिम्मेदारियों को सहन करना होता है। उसका स्वास्थ्य क्षिप्रता से गिरने लगता है। अधिक सन्तान उत्पन्न करने वाली नारियाँ यौवन में ही वृद्धावस्था के समीप आ जाती हैं। पुरुष प्राय: स्त्रियों की इच्छा-अनिच्छा, समय-असयम का भी विचार नहीं करते हैं और काम सेवन से विषय-क्षुधा शान्त करने के लिये उन्हें मजबूर करते हैं। फलत: स्त्रियों को अनिच्छापूर्वक मातृत्व प्राप्त होता है। इस प्रकार उत्पन्न बच्चों का मानसिक संस्थापन आरम्भ से ही दुर्बल हो जाता है। वे कमजोर, पागल, अन्धे, लँगड़े-लूले, बदसूरत, बुद्धिहीन होते हैं। जिससे समाज, जाति या राष्ट्र का कोई हित नहीं हो सकता। आजीविका के साधन से जल्दी-जल्दी वृद्धि को प्राप्त नहीं होते, अनावश्यक बच्चों, विशेषत: पुत्रियों की संख्या के साथ दारिद्रय् भी बढ़ता जाता है। दारिद्रय् के साथ-साथ स्त्री-पुरुषों की काम करने और रोजी कमाने की शक्ति भी क्षीण होती है। शक्तिहीनता का प्रभाव सम्पूर्ण परिवार पर है। स्वयं माता-पिता चिड़चिड़े, क्रोधी, निर्बल और निराश हो जाते हैं, पोषक भोजन प्राप्त न होने के कारण चिन्ता रहने लगती है। चिन्ता में न बच्चों का ही लालन-पालन समुचित रीति से हो सकता है, न शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति ही सम्भव है। ऐसे समाज की गति शराब, तम्बाकू तथा नशे की ओर जाती है। व्यभिचारजनित गुप्त रोगों से समाज में व्यक्ति अल्पायु होता जाता है।

सन्तति-निग्रह के साधन होते ही समाज उन्नति करेगा। जो थोड़े से बच्चों के पालन पर उत्तरदायित्व एक परिवार पर पड़ेगा। वह सरलता से वहन किया जा सकेगा। न आवश्यकता से अधिक बच्चों की वृद्धि होगी, न परिवारों और समाज का दारिद्रय् बढ़ेगा। खाद्य समस्या हल हो जायगी। न स्त्रियाँ निर्बल, कमजोर, निराशावादी चिन्तित रहेंगी, न मनुष्य शराबी और व्यभिचारी होगा, न उसे तथा स्त्री को गुप्त रोग होंगे, न रोगी, विकलांग, बुद्धिहीन बच्चे ही उत्पन्न होंगे, न गृह-सौख्य नष्ट होगा। हमारे समाज में जो निर्धनता और आर्थिक कठिनाई फैल रही है, वह सरलता से हल हो जायगी। ये सब लाभ हैं ही, इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य-धर्म अध्यात्म राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से भी अनेक लाभ हैं। इससे (१) माता-पिता की शक्ति और तेजस्विता बनी रहेगी, (२) पुरुष इसी शक्ति को अन्य क्षेत्रों (कला, साहित्य, चित्रकारी, काव्य, देश-सेवा, अध्ययन) में परिवर्तित कर अपने देश को अनेक फायदे पहुँचा सकेंगे। (३) यदि संयम धार्मिक होगा तो उसके द्वारा मनुष्य को असाधारण आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, जो सच्चे सुख और शान्ति का सीधा मार्ग है। (४) जिस देश में स्त्री और पुरुष संचारी होंगे, आत्मविजयी होंगे, उसके लिए सुख और सम्पत्ति साधारण सी बात है। (५) इन मनोविजय के पुरुषों को जो शिक्षा प्राप्त होती है, वह अमूल्य है। (६) आस-पास का वातावरण स्वतन्त्र हो जायगा तथा बच्चों पर उच्च संस्कारों का प्रभाव पड़ेगा। (७) समाज में सन्तोष और भक्ति की वृद्धि हो जायगी क्योंकि ऐसा समय केवल भक्ति की सहायता से ही सुरक्षित रह सकता है।

संक्षेप में संतति निग्रह से माता और बच्चों का स्वास्थ्य सुधर-जायगा, औसत आय, स्वास्थ्य सौन्दर्य की वृद्धि होगी। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उत्तरदायित्व कम रहने से माता-पिता मानसिक स्वतन्त्रता का अनुभव करेंगे। स्वास्थ्य की रक्षा वीर्य की रक्षा के साथ स्वयं ही आ जायगी। आर्थिक दृष्टि से भुखमरी की समस्या हल हो जायगी। कम सन्तानों को कपड़ा और भोजन आसानी से दिया जा सकता है। भारत की जनसंख्या में कमी हो जायगी, नस्ल में सुधार होगा। बच्चे उतने ही होंगे जिनका पालन-पोषण श्रेष्ठ से श्रेष्ठ हो सकता है। जब माता थोड़े से हृष्ट-पुष्ट बच्चों को जन्म देंगी, तो मृत्यु संख्या भी कम हो जायगी। न कमजोर बच्चे उत्पन्न होंगे, न मृत्यु होगी। अत: आज देश में सन्तान निग्रह की नितान्त आवश्यकता है।

संतति निग्रह का सर्वोत्तम उपाय संयम से, ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने से ही स्त्री-पुरुष दोनों का स्वास्थ्य और बल बना रहता है, एक दूसरे में आकर्षण रहता है और प्रेम की डोर टूटने नहीं पाती। गृहस्थों का ब्रह्मचारी रहना सरल है। महात्मा गाँधी ने यह उपाय सर्वश्रेष्ठ बताया है गाँधीजी कहते हैं—

"सम्भोग का एकमात्र उद्देश्य प्रजनन है। यह मेरे लिए एक प्रकार से नयी खोज है। इस विषय को मैं जानता तो पहले ही था, लेकिन जितना चाहिए उतना महत्त्व मैंने इसे पहले नहीं दिया था। अभी तक मैं इसे खाली पवित्र इच्छा मात्र समझता था लेकिन अब तो मैं इसे विवाहित जीवन का ऐसा मौलिक विधान मानता हूँ कि यदि इसके महत्त्व को पूरी तरह मान लिया जाय तो इसका पालन कठिन नहीं। मैं यह जानता हूँ कि कृत्रिम संतति निग्रह के साधनों का प्रतिपादन करने वालों में जो सबसे बुद्धिमान हैं, वे उन्हें उन स्त्रियों तक ही सीमित रखना चाहते हैं, जो सन्तानोत्पति से बचते हुए अपनी और अपने पतियों की विषय वासना तृप्त करना चाहती हैं। लेकिन मेरे ख्याल में मानव प्राणियों में यह इच्छा अस्वाभाविक है और उसे तृप्त करना मानव कुटुम्ब की आध्यात्मिक प्रगति के लिए घातक है।"

गाँधीजी की उक्त विचारधारा में गहरा सत्य है। प्रत्येक व्यक्ति को विषय भोग की निस्सारता समझनी चाहिए और अनावश्यक वीर्यनाश से सावधान रहना चाहिए। कामवासना जीवनदायिनी शक्ति है। इस शक्ति का उपयोग अन्य कार्यों में हो सकता है। हमें चाहिए कि

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ललित कलाओं की साधना में, देशोद्धार समाज सेवा के पवित्र कार्यों में लग कर काम वासना की शक्ति का सदुपयोग करें।

जो व्यक्ति समय और ब्रह्मचर्य के पवित्र साधनों का प्रयोग करेंगे, वे निश्चय ही बड़े भाग्यवान हैं और मानव से बहुत ऊँचे स्तर पर हैं। जो यह पथ अपनाते हैं, वे अपना जीवन दीर्घकाल तक स्थिर रख सकते हैं। उनका तेज, बल, बुद्धि, वीर्य निरन्तर अभिवृद्धि को प्राप्त होता है। आत्म संयम ही विवाह का सच्चा सुख प्राप्त करता है।

जो लोग यह कार्य नहीं कर सकते उन्हें कृत्रिम उपाय काम में लाने चाहिए। ये तीन श्रेणियों में विभाजित हो सकते हैं—(१) यान्त्रिक साधन, (२) रासायनिक उपाय, (३) शल्य क्रिया।

१. यांत्रिक साधन कई प्रकार के होते हैं, जिनका प्रयोग स्त्री-पुरुष दोनों ही कर सकते हैं। इस श्रेणी में रबर की बनी हुई कोमल शीथ इत्यादि आती हैं। जिनका प्रयोग पुरुष करते हैं। स्त्रियों के लिए चैक पेसरी या फीमेंल शीथ है। इनके प्रयोग में सावधानी करनी चाहिए।

२. गर्भ निरोध के रासायनिक उपायों में वे पदार्थ सम्मिलित हैं, जिन्हें नारी की भग में रखा जाता है। इनमें विष मिला रहता है जिससे शुक्रकीट नष्ट हो जाते हैं।

३. शल्य-क्रिया—ऑपरेशन द्वारा संतति निग्रह का कार्य महँगा है किन्तु इससे परेशानी मिट जाती है। पुरुषों में आपरेशन द्वारा वह नलिका जो शुक्राणुओं को वृषण से शिश्न नलिका में ले जाती है, काट दी जाती है। इसी प्रकार स्त्रियों में डिम्ब प्रणाली के एक अंश को शल्य क्रिया द्वारा काट दिया जाता है फलतः गर्भ धारण नहीं होता।

आदर्श सन्तान निग्रह के लिए यह स्मरण रखिए कि रजोदर्शन के पश्चात् दस बारह दिन तक गर्भ धारण की प्रचुर सम्भावना रहती है। अतः प्रारम्भिक दिनों में पूर्ण परहेज करें। जो व्यक्ति प्राकृतिक रीति से सन्तान निग्रह करना चाहते हैं, उन्हें रजोदर्शन का चार्ट रखना चाहिये। और मासिक धर्म के पूर्व सप्ताह में मैथुन कर सकते हैं। जब स्त्रियाँ अधिक कामाशक्त रहती हैं, तभी उनके गर्भ धारण की अधिक सम्भावना होती है। ऐसे अवसरों से बचें। संभोग के पश्चात् तुरन्त ही योनि को जल से धोना चाहिए, जिससे वीर्य गर्भाशय में प्रविष्ट न हो सके। यथासम्भव संयम-पालन करना सर्वोत्तम सन्तान निग्रह का उपाय है।

जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए, बच्चों तथा माताओं के स्वास्थ्य को सुधार कर उन्हें स्वस्थ और दीर्घजीवी बनाने के लिए, देश से गरीबी और भुखमरी दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक नव दम्पत्ति प्रारम्भ से ही कुटुम्ब नियन्त्रण के महत्त्व को समझें। परिवार नियन्त्रण हमारे सामाजिक एवं आर्थिक जीवन की सुखी व समृद्ध बनाने के लिए आवश्यक है। बरट्रेन्ड रसेल ने कहा है—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की भाँति हिन्दुस्तान में भी ऐसे पोंगापंथियों की कमी नहीं है जो जन्म-नियन्त्रण की अपेक्षा गरीबी, भुखमरी और युद्ध को बर्दास्त करना पसन्द करते हैं। आज जिन देशों ने बढ़ती हुई जनसंख्या के खतरे को समझ लिया है और जन्म-नियन्त्रण सम्बन्धी नीति अपना ली है, उनके यहाँ की जनता स्वास्थ्य, शिक्षा, चरित्र, सामाजिक और आर्थिक प्रगति की दृष्टि से अधिक ऊँची उठ गई है। क्या हम विचारशील और दूरदर्शी बनेंगे ?

दाम्पत्य स्वास्थ्य

दाम्पत्य जीवन में वासनाजन्य प्रलोभनों से परिपूर्ण होने के कारण स्वास्थ्य-योजना-सौन्दर्य इत्यादि स्थिर रखने का बड़ा महत्त्व है। पति-पत्नी की हार्दिक यही लालसा रहती है कि वह अपने जीवन संगी के सम्मुख अपने सबसे स्वस्थ एवं आकर्षक रूप में उपस्थित होकर उसे मोह ले और स्वयं आकर्षण का सजीव केन्द्र बना रहे।

इसकी साधना के लिए सबसे मूल्यवान मार्ग आत्म संयम एवं नियन्त्रण का ही है। जो पति-पत्नी पुनः सहवास में निरत रहते हैं, उन्हें बाद में अनुभव होता है कि उन्होंने पारस्परिक विद्युत को नष्ट कर दिया है। मनोविज्ञान का सिद्धान्त है कि दूरी में ही आकर्षण एवं आनन्द है। इस विषय का अतिक्रमण समस्त दाम्पत्य आकर्षण को नष्ट कर देता है। वस्तुतः पति-पत्नी यथासम्भव संयम से रहें, कम से कम सहवास में लिप्त हों और अन्य स्वस्थ एवं स्वच्छ उपायों से जीवन का रस एवं आनन्द लूटें, तो स्वास्थ्य सहज ही में स्थिर रह सकता है।

स्मरण रखिए, वासना का उद्दाम वेग शान्त नहीं होगा। विषय वासना की अग्नि उत्तरोत्तर बढ़ती है। अतः उस मार्ग से हट कर शरीर को सुडौल, आकर्षक, प्राणशक्ति से पूर्ण बनाने, व्यायाम करने, टहलने, यात्राओं, भजन-पूजन, कीर्तन, सद्ग्रन्थावलोकन, मनन, लेखन इत्यादि में रुचि बढ़ानी चाहिए। पवित्र कर्मों में मन लगाने से दाम्पत्य स्वास्थ्य की वृद्धि होती है।

व्यायामों में श्वाँस सम्बन्धी कसरतें सरल और सबके उपयोग की हैं। जो पति-पत्नी दूर तक टहलने, लम्बी यात्राओं या तैरने-खेलने इत्यादि का कार्य नहीं कर सकते, उन्हें दीर्घ श्वाँस-प्रश्वाँस की कसरतें करनी चाहिए। नासिका से गहरा श्वाँस लेकर फेफड़ों में रोकना और फिर धीरे-धीरे निकालना पुष्टिकारक है। इस प्रकार के तनाव से शरीर को पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त हो जाता है। गहरी श्वाँस लीजिये, भरपूर लीजिए और धीरे-धीरे उसका निष्कासन कीजिए।

शरीर की मालिश स्वयं करना एक सरल व्यायाम है, जिसे साधारण सी कसरत के पश्चात् स्त्रियाँ ले

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

सकती हैं। पति-पत्नी भिन्न-भिन्न खेल खेल सकते हैं, प्रतिदिन सायंकाल प्रातः तीव्र गति से टहल कर जीवन-शक्ति की अभिवृद्धि कर सकते हैं। खाद्य पदार्थों के विवेकपूर्ण उपयोग द्वारा भी स्वास्थ्य लाभ किया जा सकता है।

विवाहित जीवन में यदि आपके जीवन-साथी का स्वास्थ्य खराब होता है या कोई रोग आक्रमण करता है तो सर्वप्रथम कर्त्तव्य आपका यह है कि उसे दूर करने में कुछ उठा न रखें। पत्नी को झूठी लज्जा त्याग कर पति के स्वास्थ्य का प्रयत्न करना चाहिए। पति-पत्नी को अनेक गुप्त जननेन्द्रिय सम्बन्धी रोग रहते हैं या हो जाते हैं। यदि दुर्भाग्यवश ऐसा हो, तो एक-दूसरे को इसकी जानकारी प्रदान कर छूत फैलने से बचाना चाहिए, गर्मी, सुजाक इत्यादि घृणित रोगों से पीड़ित पति जिससे दोनों का तथा बच्चों तक का जीवन नर्कमय हो जाता है। इनसे सावधान रहने की आवश्यकता है।

अपने साथी की सुविधा-सामर्थ्य का ध्यान रखिए

विवाहित जीवन एक ऐसी दुकान है जो उत्तरोत्तर अभिवृद्धि पर रहती है। उत्तरदायित्व एक के पश्चात् एक निरन्तर बढ़ते हैं। यदि घर में माता-पिता, भाई-बहिन हुए तब तो जिम्मेदारी की कुछ न पूछिये। अतः भविष्य में आने वाले उत्तरदायित्व के लिए कुछ अर्थ संग्रह अवश्य रखिये। बच्चों के जन्म, बीमारी, विवाह, उत्सव, मेले, मृत्यु, यात्राएँ—इत्यादि के लिए एक फण्ड पृथक् रखिए, जिससे दैनिक जीवन पर इसका कोई प्रभाव न पड़ सके। भविष्य में आने वाली सामाजिक, कौटुम्बिक, आर्थिक जिम्मेदारी के लिए निरन्तर अपने को शक्ति और ज्ञान से युक्त बनाते चलिये।

कुछ पति-पत्नी में एक बड़ी कमजोरी यह होती है कि वे अपने साथी की सुख-सुविधा, सामर्थ्य-शक्ति, बुद्धि इत्यादि का विचार त्याग ऐसी फरमाइशें कर बैठते हैं जो दूसरा पूर्ण नहीं कर पाता। कल्पना कीजिए कि एक पढ़े-लिखे पतिदेव अपनी साधारण पढ़ी पत्नी से राजनैतिक या साहित्यिक चर्चा की इच्छा करते हैं। जब पत्नी योग नहीं दे पाती, तो क्रुद्ध होते हैं। उधर पत्नी सामाजिक विषय में दिलचस्पी लेती है, जो पति को पसन्द नहीं। ऐसी अनेक छोटी-बड़ी बातें कलह का विकराल रूप धारण कर सकती हैं। अतः अपने साथी की सामर्थ्य का ध्यान रख कर ही फरमाइशें कीजिए और उसी अनुपात में उनकी पूर्णता की आशा भी रखिये। भारत में नारी जाति का बौद्धिक स्तर बहुत नीचा है। अतः उनसे उच्च विषयक चर्चा करना मूर्खता होगा। उन्हीं की रुचि के अनुसार कार्य करने या उन्हीं विषयों की चर्चा उन्हें रुचिकर हो सकती है।

झूठी भावुकता से बचिए—पति-पत्नी के जीवन में प्रायः प्रेम के उफान आते हैं, जब भावना निर्बन्ध होकर बहती है। पति-पत्नी के लिये सब कुछ करने को प्रस्तुत रहता है। अनेक मूर्ख पति भावुकता के शिकार होकर ऐसे ऐसे अदूरदर्शितापूर्ण कृत्यों में फँस जाते हैं, जिनसे जीवनपर्यन्त विक्षुब्ध रहते हैं। पत्नी से झूठे वायदे, जो आप पूर्ण नहीं कर सकते, कभी न करो। कल्पना के लोक में वहीं तक विहार करना ठीक है, जहाँ तक आपके भावी जीवन की हानि न हो या ऋण न चढ़ जाय अथवा किसी की मान-प्रतिष्ठा को हानि न पहुँच जाय।

प्रेमचन्द के 'गबन' उपन्यास में एक मूर्ख पति का वृतान्त है, जिसने झूठी भावुकता का शिकार होकर पत्नी के लिए अनेक बहुमूल्य आभूषण बनवाये, फिर कर्ज की अदायगी के लिए सरकारी पैसे का गबन किया। न पत्नी ही प्रसन्न रह सकी, न मान प्रतिष्ठा ही बन सकी। अतएव अपनी आर्थिक जानकारी से एक दूसरे को पूर्ण परिचित रखिये। कोई ऐसी वस्तु, वस्त्र, मनोरंजन इत्यादि न कीजिए, जो आपकी सामर्थ्य के बाहर की वस्तु हो।

वस्तुवादी बनिये। दुनियादारी से काम लीजिये और संसार में भावी जीवन में आने वाली कठिनाइयों के लिए कुछ धन अवश्य एकत्रित रखिए। भावुकता से जो हानि हैं, वे वस्तुवादी, सांसारिक बनने से दूर हो जाते हैं, जो फरमाइश हो, उसे चटपट पूरी कर देने में व्यय अधिक होने की सम्भावना है। अपनी हैसियत, सामाजिक प्रतिष्ठा, आर्थिक अवस्था देखकर ही आय-व्यय कीजिए।

भावुकता में आकर अपनी स्थिति छिपाने या लीपापोती करने से कार्य नहीं चलेगा। आपको सब कुछ स्थिति समझाकर स्वयं आत्मसंयम से काम लेना होगा तथा जीवन-साथी को भी धीरे-धीरे प्रेम, सहानुभूति से उसी की आदत डालनी होगी। ऋग्वेद का यह वचन स्मरण रखिये।

''समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।''

अर्थात्—पति-पत्नी का आचरण समान हो, उनके हृदय समान हों, उनके मन समान हों और वे एक दूसरे की सहायता को सदैव तत्पर रहें।

यही एकात्म्यता, यही तादात्म्य, यही अभि- जीवन की सुख-समृद्धि, सफलता का मूल मन्त्र है।

दाम्पत्य प्रेम का सन्तान पर प्रभाव

विवाहित जीवन में किसी अन्य व्यक्ति से गुप्त प्रेम सम्बन्ध रखना भयंकर मूर्खता है। पिछले दिनों कलकत्ते में एक मकान की सीढ़ियों पर एक नवयुवक की मृत देह ने अभिनव सनसनी की सृष्टि कर दी थी। एक पक्ष का कहना है कि विवाहित होने पर भी उस नवयुवक ने किसी नवयुवती से गुप्त प्रेम सम्बन्ध बनाये रखा। बार-बार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसे रोका गया, मना किया गया, किन्तु तिस पर भी युवक ने रोमांस में भर कर युवती से मिलना-जुलना जारी रखा। इसलिए उसकी हत्या करवा दी गई। दूसरे पक्ष का कहना है कि विवाहित युवक ने असफल प्रेम से खिन्न होकर आत्महत्या की थी। यह घटना सिनेमा द्वारा फैलाये हुए कुत्सित, अश्लील, गन्दे प्रेम सम्बन्धों द्वारा हमारे समाज में फैलाये हुए विष का नग्न चित्र है। नए पति-पत्नी तनिक से प्रलोभन से पड़ कर नये व्यक्तियों के झूठे आकर्षण में फँस जाते हैं और अपने विवाहित जीवन साथी का परित्याग कर देते हैं अथवा अवहेलना करते हैं। कच्ची उम्र वाले दाम्पत्य प्रेम में गम्भीरता नहीं होती, वह विवेकबुद्धि दूरदर्शिता द्वारा परिचालित नहीं होता अत: ऐसे गन्दे, अनुचित प्रेम सम्बन्ध पनपते हैं। ऐसे मनचले भँवरा वृत्ति के युवक-युवती दाम्पत्य जीवन की शान्ति, सुख, निश्चिन्तता और मानसिक सन्तुलन स्थिर नहीं रख पाते।

जो क्षणिक आकर्षण और मादकता आपको किसी नए युवक-युवती में प्रतीत होती है, वह वासना का मैल है, बुद्धि का विभ्रम है, भावना का उद्वेलन है। दाम्पत्य जीवन के स्वर्ग को विनष्ट करने वाला विषैला मनोविकार है। इस प्रलोभन को जड़ मूल से नष्ट कीजिए।

"मेरी जीवन साथी ही समस्त सौन्दर्य का केन्द्र है। उसका सौन्दर्य बाह्य शरीर में न होकर पवित्र, निर्विकार, निश्छल आत्मा में है। वह मुझे हृदय से प्रेम करता है। दूसरे का प्रेम बाह्यमुखी है। उससे कभी मुझे आन्तरिक शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। वह तो मेरा सामाजिक प्रतिष्ठा नष्ट करने वाला है। मेरा मन मेरे जीवन साथी की शक्ति, सौन्दर्य, बुद्धि, वैभव, कौशल में ही रमण करेगा। मैं जीवनपर्यन्त उसे प्रेम करूँगा। मैं उसके प्रति विश्वासघात नहीं करूँगा"—इन पवित्र संकल्पों में निरन्तर रमण कर मन को इधर-उधर के क्षणिक आकर्षणों से हटाकर अपने जीवन साथी में केन्द्रित करना चाहिये।

दाम्पत्य प्रेम केवल आप दोनों के लिए ही मंगलकारी, सुखशान्तिदायक नहीं है, प्रत्युत इसका प्रभाव आपकी सन्तान पर भी विलक्षण रूप से पड़ता है। पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का मनोवैज्ञानिक प्रभाव शिशु के स्वास्थ्य, वर्ण एवं संस्कारों पर पड़ता है।

जो पति-पत्नी निश्चल हृदय से एक-दूसरे को प्रेम दान देते हैं तथा सहानुभूति सहयोग और सुविधाओं का ध्यान रखते हैं, उनके अन्त:करण एवं आत्माएँ पूर्ण रूपेण एक-दूसरे में समा जाते हैं और इस प्रेम के संयोग से उत्पन्न सन्तान में सौन्दर्य, बुद्धि की कुशाग्रता और शारीरिक, मानसिक सुदृढ़ता होती है।

पति-पत्नी के बीच आपसी प्रेम में जितनी अधिक घनिष्ठता होगी, जितना जोश, प्रसन्नता, सौहार्द्र, होगा, उनकी सन्तान उतना ही अधिक उत्साही स्फूर्तिवान और तेजस्वी होगी। कारण यह है कि गर्भ की परिपुष्टि तो माता के उदर में होती है, किन्तु उसका मूल बीज पिता के शरीर से आता है। इसलिए माता के द्वारा प्राप्त होने वाली वस्तुएँ ही उसके लिए पर्याप्त नहीं हैं। मनुष्य स्थूल ही नहीं है। उसका जितना भाग स्थूल दिखाई पड़ता है, उसकी सूक्ष्मता उससे हजार गुनी अधिक है। गुप्त शक्तियाँ सूक्ष्म लोक से प्राप्त होती हैं। चूँकि बालक माता-पिता के बन्धन में होता है, अत: वह अपने योग्य सूक्ष्म तत्व उसी से प्राप्त कर सकता है, जिससे माता-पिता की विद्युत आकर्षण रखती हो। यह आकर्षण आन्तरिक दाम्पत्य प्रेम के द्वारा ही होता है।

स्त्री का यदि अपने पति से पूर्ण प्रेम है तो वह अपनी आकर्षण शक्ति द्वारा पति के सूक्ष्म तत्वों को खींच कर उदरस्थ बालक को देती रहेगी। इसी प्रकार यदि पति का पत्नी से अधिक स्नेह है, तो वह अपने तत्वों को उसकी ओर फेंकता रहेगा।

इस प्रकार के सूक्ष्म आकर्षण द्वारा बालक उन शारीरिक और मानसिक गुणों को प्राप्त कर लेता है, जिनकी उसे आवश्यकता है। स्त्री पुरुष में प्रेम की घनिष्ठता होने पर ही ये अद्भुत गुण सन्तान को प्राप्त हो सकते हैं।

यदि पति-पत्नी में निष्ठा न हों और वे व्यभिचार में प्रवृत्त हों तो सन्तान भी व्यभिचारी बनती देखी जाती है। माता-पिता की पापमयी मनोवृत्तियाँ निश्चित रूप से सन्तान में प्रकट होती हैं। व्यभिचार से उत्पन्न सन्तान को 'वर्णशंकर' के अपमानजनक नाम से पुकारा जाता है। व्यभिचारी पति-पत्नी में चिड़-चिड़ापन, झुंझलाहट, घबराहट, आवेश, अस्थिरता, रूठना, असत्य, छल, अतृप्ति आदि की मात्रा बढ़ जाती है, सिर दर्द, कब्ज, जोड़ों में दर्द, खुश्की, प्यास, अनिद्रा, थकावट, दु:स्वप्न, दुर्गन्धि आदि शारीरिक विकार बढ़ने लगते हैं। ऐसे दम्पत्ति की सन्तान दुर्गुणों से परिपूर्ण, अल्पायु और दरिद्र होती है। मनोविज्ञान के अनुसार अतृप्त व्यभिचारी संयोग मस्तिष्क सम्बन्धी विकार और मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है। इच्छित तृप्ति की सुविधा न होने के कारण व्यभिचारी व्यक्ति हर घड़ी उद्विग्न रहता है। अत: भावी संतति की पवित्रता, सार्वजनिक स्वास्थ्य की महत्ता, समाज की स्थिरता, परिवार की निश्चिन्तता आदि की दृष्टि से पवित्र दाम्पत्य-प्रेम ही श्लाघनीय है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ एक तपोवन है

घर-गृहस्थी मायाजाल या साधना भूमि

भारतीय संस्कृति में पारिवारिक जीवन को एक उच्चस्तरीय योगाभ्यास कहा है। योग साधना का अर्थ है, अपने सीमित और संकुचित अहं को असीम और विराट् चेतना से एकाकार कर देना। गृहस्थाश्रम सीमित से असीम की ओर अग्रसर होने के लिये, क्रमशः आगे बढ़ने का अभ्यास करने के लिये ऋषि प्रणीत एक प्रयोगशाला है। प्राचीनकाल में अधिकांश ऋषि विवाहित ही होते थे। आश्रमों में ऋषि-मुनि ऋषिकुमारों को पढ़ाते थे तो उनकी पत्नियाँ ऋषि कन्याओं को शिक्षा देती थीं। हमारी संस्कृति के अनुसार विवाह एक पवित्र बन्धन और प्रत्येक मनुष्य के लिए आवश्यक धर्मकृत्य है।

इस धर्मकृत्य को सम्पन्न करते हुये ही कोई व्यक्ति अपने 'अहं' का विस्तार आरम्भ करता था और परिवार के अन्य सदस्यों तक अपनी आत्मभावना की परिधि को व्यापक बनाता था। स्वाभाविक ही है कि विवाह के उपरान्त पुरुष या स्त्री की आत्मीयता का क्षेत्र और व्यापक बन जाता है तथा उसमें स्त्री, पति, सन्तान, स्वजन, सगे सम्बन्धी, पड़ौसी और घर के पशु-पक्षी तक सम्मिलित हो जाते हैं। इस प्रकार विवाहित स्त्री या पुरुष यदि विवाह बन्धन के मर्म को समझें तो क्रमशः अपनी उन्नति की ओर बढ़ते चलते हैं। दूसरों के लिये अपने को भूल जाने की, अपने स्वार्थ को कम करने तथा परिवारीजनों की हित चिन्ता को महत्व देने की, अभ्यास साधना से ही गृहस्थ साधक आगे बढ़ सकते हैं और शनैः-शनैः तुच्छता को महानता में, संकीर्णता को उदारता में परिणत करते चल सकते हैं।

भारतीय मनीषियों ने विवाह जैसे पवित्र धर्मकृत्य से और भी कई महान् उद्देश्यों की पूर्ति की कल्पना की थी। मानव प्रकृति की उद्दाम प्रवृत्तियों को संयमित करने, प्रकृति द्वारा आयोजित सृष्टि क्रम के विस्तार को सुव्यवस्थित रूप देने, समाज में स्वस्थ वातावरण बनाने तथा सुयोग्य नागरिकों का निर्माण करने जैसे प्रयोजन भी इस धर्मकृत्य के साथ जोड़ रखे थे। एक कुरूप और बेडौल आकार के पत्थर को मूर्तिकार जिस प्रकार छैनी और हथौड़ी लेकर सुन्दर मूर्ति बनाने में संलग्न होता है और अपने अन्तस् की मूर्ति को पाषाण शिला में साकार कर देता है, उसी स्तर की साधना गृहस्थ धर्म कल्पना करते समय आवश्यकता समझी गई होगी और उस माध्यम से उस साधना को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान किया होगा। प्रकृति के उद्दाम आवेगों को संयत करने का उपाय भी इसी प्रकार किया गया। जिनका निर्बाध प्रकटीकरण मनुष्य को पशु और असभ्य, जंगली बना सकता है। उन आवेगों के साथ ही परिष्कार और शोधन की छैनी चलाकर मनुष्य की असंस्कृत चेतना को सुन्दर आकार भी देने का सहज क्रम बनाया गया।

अन्य साधनाओं में लगे साधकों में अहंकार का भाव भी जल्दी आ सकता है, परन्तु गृहस्थ एक ऐसा योगाभ्यास है, जिसमें सब कुछ सहज ढंग से चलता रहता है और साधक निरहंकार होकर अपने पत्नी-बच्चों, स्वजन-सम्बन्धियों में अपनी आत्मा का दर्शन करता रहता है। सम्भवतः इसी कारण मनीषियों ने गृहस्थाश्रम को चारों आश्रमों से महत्वपूर्ण और उनका मुख्य केन्द्र बनाया है। आप्त वचन है—गृहस्थ ही वास्तविक रूप से यज्ञ करते हैं। गृहस्थ ही वास्तविक तपस्वी हैं। इसलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सबका शिरमौर है।

आधुनिक विचार के कई व्यक्ति विवाह को मात्र वासनापूर्ति का साधन ही मानते हैं। यह भोग प्रधान मान्यताओं की देन है अन्यथा प्राचीन भारतीय मनीषियों ने इसे भोग नहीं योग प्रधान दृष्टि से ही देखा है और माना है कि यह विषय सामग्री नहीं वरन् दो आत्माओं के पारस्परिक सहवास द्वारा एक-दूसरे के विकास की आध्यात्मिक व्यवस्था है, जिसके अन्तर्गत विशुद्ध आत्मवादी दृष्टिकोण अपनाकर एक-दूसरे में अपनी आत्माओं की ही झाँकी देखकर शुद्ध आत्मसुख की प्राप्ति के लिये साधना की जाती है। मनीषियों ने इसे प्रेम और पुण्य का पवित्र प्रसाद तथा वात्सल्य और त्याग की लीलाभूमि बताया है, इसे आत्मिक उत्कर्ष को प्राप्त करने वाली शान्तिकुटीर निरूपित किया है। सर्वविदित है कि विवाह के उपरान्त मनुष्य समाज का एक सक्रिय अंग बनता है। उसे नये सम्बन्ध प्राप्त होते हैं, नये उत्तरदायित्व मिलते हैं और नये कर्त्तव्यों के परिपालन का आनन्द रसपान करने का सुअवसर प्राप्त होता है।

सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्शों की सटीक व्याख्या करने वाले एक लेखक ने गृहस्थाश्रम की महत्ता इन शब्दों में व्यक्त की है—गृहस्थ योग के पुण्यस्वरूप और

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उसकी पुण्य साधना का रहस्य जानने के लिए हम हिमालय की उस तुषार मण्डित शिला पर चलें जहाँ हिमालय की किशोरी पार्वती उग्र तपश्चर्या में निमग्न है। यही भारतीय गृहस्थाश्रम के मंगलमय स्वरूप का प्रथम दर्शन है। गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने से पूर्व रमणी को तपोमयी साधना में प्रवृत्त होना पड़ता है क्योंकि जिस मंगलमय उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह अपने पवित्र जीवन का उत्सर्ग करती है, उसके लिए तप और त्याग की परम आवश्यकता है। कुमार की उत्पत्ति तपस्या की सिद्धि का मधुर फल है, क्योंकि विश्व के परित्राण के लिये, देश के मंगल के लिए, समाज के अभ्युदय के लिए और मनुष्यता की मर्यादा को अक्षुण्ण रखने के लिए ही कुमार जैसे तेजस्वी और महान् व्यक्तित्व के अवतरण की आवश्यकता है और यह आवश्यकता बिना तप, त्याग के पूरी नहीं की जा सकती।

सन्तानोत्पति तो विवाह का एक छोटा-सा उद्देश्य है। वस्तुत: तो इस योग दीक्षा का लक्ष्य अपने व्यक्तित्व की अपूर्णता को जीवनसाथी के व्यक्तित्व से पूरा करना है। संसार में रहने वाला प्रत्येक मानव अपूर्ण है। किसी व्यक्ति में कोई गुण अधिक है तो किसी गुण का अभाव है। विशेषत: स्त्री और पुरुष के व्यक्तित्व की विशेषतायें तो भिन्न ही हैं और उनमें विशिष्ट गुणों का अभाव भी भिन्न है। जीवन साथी को प्राप्त कर उन गुणों की पूर्ति का प्रयास एक-दूसरे के व्यक्तित्व का सम्मिलन करते हुए सरलतापूर्वक किया जा सकता है। दोनों के स्वाभाविक यदि विश्लेषण किया जाय तो विदित होगा कि स्त्री में लज्जाशीलता, भीरूता, सहज ज्ञान, पातिव्रत्य, मृदुता ऋजुता और भावुकता के गुण विशेष हैं। मानसिक संवेगों को वे तीव्रता से अनुभव करती हैं।

इसी प्रकार पुरुष में शक्ति, शौर्य, दृढ़ता, क्रोध तथा कार्यदक्षता के गुण विशेष रूप से विद्यमान रहते हैं। क्रियाशीलता और प्रभुता प्रदर्शन उसके गुण हैं। वह स्वभावत: मजबूत, निर्णायक, स्वाभिमानी, प्रचण्ड, उग्र कठोर पुरुष अपने स्वभाव के विपरीत गुणों को एक-दूसरे से मिलाकर एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का सृजन करता है। दोनों का संयोग समाज की इकाई बनना है और वह इकाई ही सम्मिलित रूप से समाज को आगे बढ़ाती है।

यह एक मान्य और स्वयं सिद्ध सिद्धान्त है कि दो भिन्न या विपरीत गुणों वाली वस्तुएँ एक-दूसरे में जल्दी घुल-मिल जाती है और एक सम्पूर्ण इकाई का सृजन करती हैं, शक्ति का उत्पादन करती हैं। विद्युत की दो विपरीत धारायें मिलकर करन्ट पैदा करती हैं। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति और वस्तु का आकार दोनों मिलकर चराचर जगत् को स्थिर रखते हैं। आग और पानी का संयोग वाष्पशक्ति उत्पन्न करता है। सृष्टि नियंता की रचना ही ऐसी है कि उसमें दो विपरीत गुणों विभिन्न विशेषताओं में भाई-चारे और साझेदारी के सम्बन्ध शीघ्र ही स्थापित हो जाते हैं। स्त्री और पुरुष की चारित्रिक, स्वभावगत, व्यक्तित्व की और शरीर की भिन्न-भिन्न विशेषतायें एक-दूसरे में आबद्ध होकर सम्पूर्ण मनुष्य की सर्जना करती हैं। यदि व्यक्तित्व के समग्र विकास की उपेक्षा कर दाम्पत्य जीवन को क्षुद्र प्राकृतिक आवेगों तक ही सीमित रहने दिया जाय तो गृहस्थाश्रम की सारी महिमा, गरिमा नष्ट होकर रह जाती है।

लौकिक भाषा में यदि गृहस्थ धर्म का मूल्यांकन किया जाय तो यही प्रतीत होता होगा कि गृहस्थी स्त्री और पुरुष का सम्मिलित साधना क्षेत्र है। कहा भी गया है कि गृहस्थी की तुलना साझे की दुकान से की जाती है। इसके दो साझीदार हैं स्त्री और पुरुष। साझे की दुकान तभी सफल होती है, जबकि साझेदार एक दूसरे के स्वभाव, प्रकृति, गुण-दोष आवश्यकता और विशेषता को समझते हों। एक-दूसरे का सम्पर्क और अपने साथी के स्वभाव से अवगत न होने के कारण साझे की दुकान जिस प्रकार चलना मुश्किल हो जाती है, उसी प्रकार पति-पत्नी एक-दूसरे को समझकर अपने व्यवहार की रीति-नीति निर्धारित न करें तो कलह, विग्रह और क्षति जैसे अनर्थ ही उत्पन्न होंगे।

पारिवारिक समझ और आपसी तालमेल बिठा लेने मात्र से गृहस्थ धर्म का परिपालन नहीं हो जाता बल्कि इस आश्रम की महिमा और गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए यह भी आवश्यक है कि वे एक-दूसरे के लिए अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को तिलांजिल देने के लिए तत्पर रहें। सफल दाम्पत्य जीने वाले महापुरुषों के पारिवारिक जीवन का यदि अध्ययन किया जाय तो विदित होगा कि वे अपने जीवन साथी को सुखी और शान्ति देने के लिए अपने स्वार्थ को—अपनी इच्छाओं को बलिदान करने की नीति अपनाते रहे हैं। स्वार्थ, त्याग और जीवन साथी की हित चिन्ता में संलग्न रहते हुए ही औरों के लिए त्याग करने की भावना का विकास होता है। कहना न होगा कि इस दिशा में जो जितना भी प्रगति कर जाता है, वह उतने ही अंशों में महान् बन जाता है। महानता का यही अर्थ है कि अपने संकुचित और क्षुद्र स्वार्थों को महान् बनाना—उनका क्षेत्र व्यापक विस्तृत करना।

गृहस्थ क्षेत्र में विकास की प्रक्रिया अवरुद्ध हो जाती है, इसलिए नहीं कि वह उदारता स्वार्थ त्याग की भावनाओं को नष्ट करता है और मायामोह में बाँध लेता है वरन् महानता की ओर विकास की गति इसलिए अवरुद्ध हो जाती है कि लोग दाम्पत्य जीवन के वास्तविक अर्थ को नहीं समझते हैं और पत्नी बच्चों की सेवा उनके लिए सुख-साधनों की व्यवस्था को ही सद्गृहस्थ होने का लक्षण मान लेते हैं। इस रीति-नीति को अपनाने वाले व्यक्तियों की परिवार के सम्बन्ध में स्पष्ट मान्यता यही होती है कि पति-पत्नी, बच्चे और माता

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पिता एक स्थान पर रहें। साथ-साथ खाये पियें और एक दूसरे की सुख-दुःख में मदद करें। परिवार का भरण-पोषण कर लेने भर ही से उनकी दृष्टि में पारिवारिक कर्त्तव्यों का निर्वाह हो जाता है। यह मान्यता पूर्णतया भ्रान्तिपूर्ण है। थोड़े से लोगों के एक साथ रहने साथ-साथ खाने-पीने और आपस में उठने-बैठने से ही परिवार नहीं बन जाता। साथ-साथ रहना ही परिवार कहलाता था तो होटलों और धर्मशालाओं में कई व्यक्ति एक साथ रहते हैं, वहाँ एक साथ एक हाल में खाते हैं। इसलिए होटल और धर्मशालाओं को ईंट-चूने से बने मकान में रहने वाले कुछ व्यक्तियों के परिवार से बढ़िया परिवार कहना चाहिए।

परिवार के सम्बन्ध में अपनी मान्यता यह होनी चाहिए कि घर की ईंट ही परिवार नहीं है। किसी परिवार के आधे लोग भले ही भिन्न-भिन्न देशों में रहें, हम उन्हें एक आदर्श परिवार कह सकते हैं, यदि उनके सदस्यों में परस्पर प्रेम, सहानुभूति और संवेदना के सूत्र सम्बन्ध हों। पारिवारिक जीवन का प्राण ही प्रेम और परस्पर का सद्भाव है। यदि परिवार में सभी सदस्य परस्पर सद्भाव सम्पन्न हो, आपस में एक-दूसरे के प्रति सच्ची-सच्ची सहानुभूति रखते हों सौजन्यता, बलिदान और सेवा की वृत्ति हो तो ही वह परिवार आदर्श हो सकता है। परिवार साम्राज्य में इन आदर्शों की स्थापना पति और पत्नी के सम्मिलित प्रयासों द्वारा ही हो सकती है क्योंकि वे परिवार साम्राज्य के शासक और शासिका हैं। इन आदर्शों की स्थापना, स्वयं अपने जीवन में उनकी स्थापना करते हुए की जाय तो कौन कह सकता है कि घर गृहस्थी माया जाल है। बल्कि वह तो मोक्ष की, आत्मविकास की और आत्म कल्याण का सहज साध्य साधन है। आश्रम व्यवस्था का निर्धारण आत्म विकास की ही दृष्टि से किया गया था और उसमें गृहस्थाश्रम का विशिष्ट स्थान सदा से रहा है।

आश्रम व्यवस्था पर एक दृष्टि

विचारपूर्वक देखा जाय और मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का गहन अध्ययन किया जाय तो मनुष्य की अवस्था चार भागों में विभाजित होती है। (१) जिज्ञासा और विकास की अवस्था (२) उद्योग और उपभोग की अवस्था। (३) ज्ञान और अनुभव में सामंजस्य काल (४) आत्मकल्याण की धारणा। इन्ही चार बातों को लेकर ही यह जीवन पूर्ण होता है। इन अवस्थाओं में नियन्त्रण न रखा जाय तो मनुष्य की स्वाभाविक प्रकृति अधोगामी बन सकती है। इस विचार से ही यहाँ कर्त्तव्यों की सीमा में बाँधने का प्रयत्न किया गया है। ये विभाग वास्तव में मानव की शक्ति और उसके स्वभाव को ही अनुसरण करके बनाये गये हैं। जीवन पद्धति में कहीं कोई विकार नहीं है। मनुष्य इन चारों अवस्थाओं का रसास्वादन करता हुआ कल्याण की स्थिति प्राप्त कर सकता है। यदि इस तरह से भारतीय जीवन को संस्काररयुक्त न किया गया होता तो यहाँ भी अन्य देशों की तरह ही भोगवाद प्रधान रहा होता। जो शुद्धता, पवित्रता, नैतिकता, उत्कृष्टता, आदर्शवादिता, शक्ति और विशेषता यहाँ के जीवन में रही है वह न होती। यहाँ के लोग वह समृद्धि, सुख और आनन्द प्राप्त कर सके होते जिसके लालच में जीवनमुक्त आत्मायें भी यहाँ लौट-लौटकर आई हैं। इस जीवन पद्धति में कोई त्रुटि नहीं, कोई शिकायत नहीं। सम्पूर्ण व्यवस्थित जीवन का नाम है आश्रम-व्यवस्था। यह जीवन पद्धति की उत्कृष्ट कला का विकास है।

हिन्दू धर्म में मनुष्य जीवन को लक्ष्य सिद्धि का परम पुरुषार्थ माना गया है। इस क्रम में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आते हैं। इन चारों अवस्थाओं का क्रमशः लाभ प्राप्त करता हुआ मनुष्य शाश्वत, बन्धन मुक्ति, सिद्धि स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त कर ले, इस हिसाब से जीवन को भी चार भागों में विभक्त किया गया है, जो अवस्था और विकास से संयुत और क्रमशः हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चार उद्देश्यों का विस्तार ही (१) ब्रह्मचर्य (२) गृहस्थ (३) वानप्रस्थ और (४) संन्यास है। नीचे उस अवस्था और स्थिति पर प्रकाश डालेंगे, जिससे यह पता चलेगा कि भारतीय जीवन पद्धति का विकास कितनी बुद्धिमत्ता के साथ हुआ है और आज की अवस्था में उसकी कितनी आवश्यकता है ?

प्रारम्भ काल में बालक की जिज्ञासायें अशान्त होती हैं। वह संसार और यहाँ के अनेक पदार्थों का रहस्य जानने के लिये उत्सुक होता है। साथ ही चूँकि वह प्रकृति के अत्यधिक समीप होता है। अतः उसे भले-बुरे का ज्ञान भी नहीं होता। इन्द्रियाँ भी विकास की ओर उन्मुख होती हैं इसलिये शक्ति संचय और संयम की भी यही अवस्था होती है। जिज्ञासाओं की तृप्ति के लिये साधन, अवस्था, स्वाभाविक प्रवृत्तियों को सुनियोजित और नियन्त्रण रखने के लिये, शक्तियों के संचय के लिये ब्रह्मचर्य की आवश्यकता होती है। ब्रह्मचर्य का अर्थ केवल इन्द्रिय संयम ही नहीं वरन् ब्रह्म प्राप्ति के सम्पूर्ण आचरणों का नाम ब्रह्मचर्य है। यह साधनावस्था है इसलिये गम्भीर देख-रेख तथा पूर्ण नियन्त्रण की आवश्यकता पड़ती है।

प्रारम्भिक, अवस्था में बालक के विचार, संस्कार और संकल्प बहुत कोमल होते हैं, इसलिये उनके पिछले जीवन के कठिन संस्कारों को भी मोह जाना संभव होता है। किन्तु यह संस्कार यदि स्वभाव की गहराई में धँस गये तो उनको उखाड़कर बाहर निकालना कठिन हो जाता है। बालकों में श्रद्धा की मात्रा इतनी पर्याप्त है कि वह संस्कारों के विकास में गुरुओं के कठोर नियन्त्रण में बने रह सकें और आत्मसिद्धि की कठोर साधनाएँ पूर्ण निष्ठा के साथ करते रहें।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ब्रह्मचर्य का दूसरा उद्देश्य है सांसारिक सुखोपभोग के लिये शक्ति संचय। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर जो विशुद्ध कर्तव्य पालन शेष रह जाता है, उसे सुविधाजनक स्थिति में चलते रहने देने की दृष्टि से शारीरिक शक्ति अपेक्षित है, जीव की शेष जीवन यात्रा शरीर द्वारा ही पूरी होती है इसलिये उसका सुदृढ़ और मजबूत होना नितान्त आवश्यक है। गुरुकुलों के जीवन में इन्द्रिय असंयम के कोई भी कारण शेष नहीं रहते थे। उन वातावरणों को यज्ञादि से और भी बलप्रदायक बनाया जाता था फलस्वरूप एक निश्चित समय तक वहाँ रहने से ब्रह्मचारी का मन, बुद्धि, शरीर सब पूर्ण पुष्ट और परिपक्व हो जाता था। ज्ञान की दृष्टि से, शारीरिक दृढ़ता की दृष्टि से वह पूर्ण होकर आश्रमों से निकलकर आते थे और एक उत्तरदायी जीवन-गृहस्थ जीवन के लिए सारी तैयारियाँ पूर्ण कर लेते थे।

दूसरा आश्रम गृहस्थ है। वह उद्योग, अर्थोपार्जन और सुखोपभोग का जीवन होता है। सांसारिक सुखों का भी एक निश्चित सीमा में औचित्य है। उसका उपभोग किया जाना भी अधर्म नहीं है। सन्तानोत्पति की दृष्टि से पति-पत्नी का संयोग दोषपूर्ण नहीं हैं। इससे वंश चलते हैं, समाज, राज्य और राष्ट्र का निर्माण होता है। लौकिक जीवन में मनुष्य का सहयोगी भी धर्म है। राष्ट्र को सबल और सुशिक्षित, सुदृढ़ और चरित्रवान नागरिक देने की आध्यात्मिक प्रवृत्तियाँ गृहस्थ जीवन में परिपूर्ण होती हैं। ब्रह्मचर्य काल में व्रतधारी को जो शिक्षायें मिली होती है व्यवहार में उनका अनुभव गृहस्थ में होता है। प्रेम, दया, करुणा, मैत्री, सहानुभूति, संगठन, परोपकार, कर्त्तव्यपालन, त्याग, उदारता, क्षमा, सहिष्णुता, कष्ट परायणता आदि की व्यवहारिक रसानुभूति गृहस्थ जीवन में ही पूरी होती है। स्त्री-पुरुष मिलकर निर्माण कार्यों में सहयोग करते हैं गृहस्थ इस बात का प्रतीक है कि मनुष्य की आध्यात्मिक चेतना जागृत है और कर्त्तव्य पालन के लिए उसमें समुचित साहस है। अपनी भावनाओं का विकास भी इसी क्षेत्र में रहकर होता है। कष्ट और कठिनाइयों में मनुष्य की आत्मा विकसित होती चली जाती है।

बोधायन धर्म सूत्र में गृहस्थाश्रम को अनेक प्रयोजनों को पूरा करने वाला सर्वोच्च आश्रम माना है। इसमें सुखोपभोग के साथ-साथ धर्म का भी समन्वय होने से महर्षि गौतम ने गृहस्थाश्रम को सब आश्रमों का मूल कहा है। जिन लोगों का यह कथन है कि गृहस्थ जीवन जंजाल है, इसमें रहकर ईश्वर उपासना का लाभ नहीं उठाया जा सकता, उन्हें जानना चाहिए कि महर्षि कण्व, जमदग्नि, विश्वामित्र, वशिष्ठ, भारद्वाज, गौतम, शंख, दक्ष आदि अनेक ऋषि गृहस्थ ही थे और गृहस्थी में रहकर ही उन्होंने उज्ज्वल तत्वों की शोध की थी। वस्तुत: मनुष्य के विकास में परिवार पहली और सबसे महत्त्वपूर्ण इकाई है। अनेक कष्ट और कठिनाइयाँ भी गृहस्थ जीवन में हँसी-खुशी के साथ काट ली जाती हैं। दूसरे तीनों आश्रमों के संचालन की व्यवस्था भी इसी से पूरी होती है।

तैरना सीखने की आवश्यकता जल में ही पूरी होती है। जमीन में लेटकर कोई तैरना नहीं जान सकता। जमीन में परोपकार और धर्मपालन की आवश्यकता भी इसी तरह पारिवारिक जीवन के अलग रहकर नहीं की जा सकती। अर्थ का आचरण भी उतना ही आवश्यक है, यदि इसका कोई प्रयोग न किया जाय तो यह जो सांसारिक गतिविधियाँ चल रही हैं वह सब बन्द हो जायें और यह संसार बिल्कुल खुश्क, नीरस और जनहीन हो जाय। तब यह संसार ही जड़वत् दिखाई देने लगे।

वानप्रस्थ-गृहस्थ में रहते हुये एक अवस्था ऐसी आती है जब उसके लिए अपनी आवश्यकता घटने लगती है। गृहस्थी के संचालन का उत्तराधिकार सन्तान ले लेती है। अर्थ और काम प्रयोजनों को पूरा कर लेने से इन्द्रियों के विषय भी काफी तृप्त हो चुके होते हैं। शास्त्रों में यह अवस्था ५० के लगभग मानी जाती है, सब लोगों को अपने कन्धों का भार उतारकर परिवार के ज्येष्ठ प्रतिनिधि को सौंप देना चाहिये और लोक हित के कार्यों में अधिक रुचि लेनी चाहिये। अधिक आयु के पुरुषों तथा युवकों के विचारों में प्राय: साम्य नहीं होता इसलिये पारिवारिक जीवन को अकारण कलह से बचाने के लिये भी यह आवश्यक है कि उतरती उम्र के व्यक्ति अपना जीवन समाज के लिये समर्पित कर दें। उदर-पोषण के लिये या जब तक उत्तराधिकारी पूर्ण रूप से विकसित न हो जाय और उस व्यक्ति के मार्गदर्शन की आवश्यकता बनी रहे, तब तक कोई व्यक्ति पारिवारिक सम्पर्क में बना रह सकता है पर उसे केवल अपने आपको व्यवस्थापक रहकर ही चलना चाहिये और जीवन का अधिकांश भाग आत्म चिन्तन तथा लोकोपकारी साधनाओं में खर्च करना चाहिये। अनावश्यक आसक्ति और मोह के कारण प्राय: लोग परिवार को छोड़ना नहीं चाहते, उसी से चिपटे रहना चाहते हैं। उन्हें यह गलतफहमी होती है कि यदि वे नहीं रहेंगे तो शायद बालकों का जीवित रहना कठिन हो जायगा। यह मोह-बुद्धि परिवारों में अनेक बखेड़ों का कारण बनती है। गृहस्थी का संचालन सुरुचिरूप से चलते रहने देने की दृष्टि से अपना शरीर परिवार से हटा लेना कुछ बुरा नहीं, वरन् यह एक नैतिक धर्म कर्त्तव्य है। नये की स्थापना के लिए पुराने को वहाँ से हट ही जाना चाहिए।

संन्यास—संसार में रहते हुए धर्म, अर्थ, काम के त्रिविध प्रयोजन पूरे हो जाने के बाद आत्म कल्याण की स्थिति आती है। मनुष्य शरीर में जीवात्मा का अवतरण बन्धन से मुक्ति या मोक्ष प्राप्ति के लिए होता है। समाज और संसार में रहते हुए मानसिक उलझनें, उत्तेजनायें आदि रहनी स्वाभाविक थीं। अधर्म की पहिचान होते हुए भी कई बार औरों के हित की दृष्टि से उसे करना पड़

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

जाता है, इससे अकारण आत्म-वेदना मिलती है। अत: चौथी अवस्था में प्राणी को संसार के शेष बन्धनों को भी त्यागकर अपने आपको पूर्णतया परमात्मा की इच्छा के सहारे छोड़ देना चाहिए। उस समय मनुष्य का ज्ञान पक जाता है। अकारण पैदा होने वाली दुर्भावनायें सामाजिक सम्पर्क से दूर हो जाने से छूट जाती हैं। न कुछ मोह रह जाता है न आसक्ति। किसी तरह का कोई कर्त्तव्य भी शेष नहीं रह जाता। परमात्मा के चिन्तन में विचरण करता हुआ मनुष्य अन्त में संन्यास की स्थिति में प्राण त्यागकर आनन्द की अन्तिम स्थिति में विलीन हो जाता है।

यह आश्रमों की परम्परा जब तक हमारे देश में जीवित रही तब तक यश, श्री और सौभाग्य में यह राष्ट्र सर्वशिरोमणि बना रहा। श्रेय और प्रेय का इतना सुन्दर सामंजस्य किसी अन्य जाति या धर्म में मिलना कठिन है। हमारी कल्पना है कि मनुष्य आनन्द में जन्म लेता है, आनन्द से जीवित रहता है और अन्त में आनन्द में ही विलीन हो जाता है। मनुष्य का लक्ष्य भी यही है। इस आवश्यकता की पूर्ति आश्रम व्यवस्था में ही सन्निहित है। समाज की सुदृढ़ रचना और मनुष्य के जीवन ध्येय की पूर्ति के लिए आश्रम-व्यवस्था का पुनर्जागरण अत्यन्त आवश्यक है और उस व्यवस्था में गृहस्थाश्रम के महत्व को पुन: ठीक से समझने की आवश्यकता है। वह समझा जा सके, तो घर-गृहस्थी में ही स्वर्ग का अवतरण सम्भव है।

ऋषियों की गृहस्थ-साधना-गृहस्थ योग

प्राचीनकाल में भी गृहस्थ संन्यासी-गृह वैरागी होते थे और अब भी वही प्रक्रिया अध्यात्म मार्ग पर द्रुतगति से आगे बढ़ने वाले साधकों के लिए उपयुक्त है।

भिक्षा का अन्न वही ग्राह्य है जो उच्च, संस्कारवान् व्यक्तियों का है और पूर्ण न्याय नीति युक्त कमाया गया है। आज ऐसा अन्न मिलना प्राय: एक प्रकार से असम्भव ही है। अनीति से उपार्जित धान्य को खाकर साधना करने से साधक की बुद्धि भी वैसी ही कुसंस्कारी बनेगी। उसे न एकाग्रता प्राप्त होगी और न शान्ति। भजन का बहाना भले ही करते रहा जाय, न उसमें मन लगेगा और न सफलता मिलेगी। ऐसी दशा में आज की स्थिति में भिक्षा का अन्न मुफ्त का निर्वाह एक प्रकार से सर्वथा अवांछनीय ही है। जंगलों में कन्द-मूल,फल की प्राचीन सुविधा रही नहीं, अब वे वन कहाँ हैं ? जहाँ थोड़ी कृषि, उद्यान, गो-पालन करके निर्वाह की व्यवस्था की जा सके। ऐसी दशा में यही उचित है कि अपने हाथ-पैर के उपार्जन से गुजारा करते हुए साधनात्मक जीवन जिया जाय।

जिसका अन्न खाया जाता है, उसके बदले अपना तप, उपार्जित पुण्य देना पड़ता है। मुफ्त में यहाँ कहीं कुछ मिलने का नियम नहीं है। भौतिक जीवन का क्रम अवरुद्ध करके भजन-साधन किया और जो कमाया वह अन्न, वस्त्र दाता दानी के लिए चला गया। उसमें अपने लिए क्या बचा। इसमें क्या बुद्धिमानी रही ? भले ही थोड़ा भजन या सेवा कार्य किया जाय पर यह स्वावलम्बी होकर करना चाहिए, तभी उसमें कुछ सफलता मिलेगी।

प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि आज के साधु, बाबाओं से सर्वथा भिन्न थे। उनमें से अधिकांश गृहस्थ संन्यासी—गृही वैरागी थे। प्रकृति के समीप शुद्ध जलवायु का आश्रय लेकर वे विरल प्रदेशों में रहते थे। गोपालन, फल, शाक उत्पादन आदि निर्वाह की उपयुक्त व्यवस्था वहीं बना लेते थे। आश्रम में स्त्री-बच्चों को समेटे रहते थे। अपने परिवार को भी सुसंस्कारी और लोकोपयोगी बनाते थे। साथ ही गुरुकुल, चिकित्सा, तप, चिन्तन, आगन्तुकों को परामर्श, विभिन्न विषयों के शोध-कार्य प्रवृत्तियाँ वहाँ रहकर चलाते थे और आवश्यकतानुसार भ्रमण करके जन-जागरण की आवश्यकता पूरी करते थे। वही ऋषि जीवन था। संन्यास तो जीवन के अन्तिम एवं अशक्त भाग में लिया जाता था। इससे पूर्व तो वानप्रस्थ की—ऋषि-मुनि की भूमिका ही समस्त आत्म-परायण व्यक्ति निबाहते थे।

आज की युवावस्था में संन्यास परम्परा अवैदिक-अशास्त्रीय है। उसका जन्म बुद्धकाल में हुआ। समय-समय पर उस अवांछनीय उभार का खण्डन भी किया जाता रहा है। निम्न स्तर के व्यक्ति यदि उच्चस्तर का वेश धारण कर लें तो भी वस्तुस्थिति का निर्वाह नहीं हो सकता। कोई छोटा बच्चा, वृद्ध जैसी सफेद दाढ़ी, मूँछ लगा ले, अशिक्षित व्यक्ति विद्वान का वेष धारण कर ले, निर्धन होते हुए भी अमीर का स्वाँग बनाये तो यह सर्वथा उपहासास्पद ही होगा। योग्यता के अभाव में ऊँचे पद के उत्तरदायित्वों का निर्वाह हो नहीं सकेगा। फलत: अवांछनीय परिणाम ही सामने आवेंगे। आज की साधु बाबाओं की भीड़ से केवल गड़बड़ी ही उत्पन्न हो रही है, उस पद के अधिकारी पात्र और उत्तरदायित्व का सही निर्माण करने वाले कोई विरले ही कहीं-कहीं दीखते हैं।

अध्यात्म साधनाओं के पथ पर चलने के लिए साहस करने वाले व्यक्तियों को आज की स्थिति में संन्यासी होने की, कपड़े रंगने की, घर छोड़ने की जरूरत नहीं है। यदि युवावस्था हो तो गृहस्थ आजीविका उपार्जित करते हुए इस मार्ग पर चलने का कार्यक्रम बनाना चाहिए। यदि आयु ढल गई है और बच्चे कमाने योग्य हो गये हैं। छोटे बहिन-भाइयों को सँभाल सकते हैं तो फिर वानप्रस्थ की तरह घर में रहते हुए स्वाध्याय, सेवा, संयम, साधना का क्रम निर्धारित करना चाहिए। घर से कुछ दूर निवास किया जा सकता है। पत्नी को भी साथ रखा जा सकता है। पर आजीविका की दृष्टि से स्वावलम्बी ही होना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

संचित आजीविका का प्रबन्ध न हो तो सेवा कार्य के बदले पारिश्रमिक लेकर निर्वाह करना चाहिए पर मुफ्त का भोजन निर्वाह किसी भी दशा में स्वीकार नहीं करना चाहिए। सम्पर्क में कोई उदार दानी हो और सेवा में सहायता करना चाहे तो उस धन को अपने लिए न लेकर लोकमंगल के लिए ही लगा देना चाहिए। प्राचीनकाल में पुरोहित द्वारा जो प्रतिग्रह लिया जाता था वह उनके निजी काम नहीं आता था वरन् सार्वजनिक सत् प्रयोजनों के लिए ही नियोजित होता था। अभी भी उसी परम्परा को अपनाया जाना चाहिए।

ब्रह्मचर्य की मर्यादा जितनी अधिक सम्भव हो उतनी रखी जाय पर दुर्बल मनोभूमि के रहते उस प्रकार की प्रतिज्ञा करना अनिवार्य नहीं। हाँ साधना मार्ग पर चलने वालों को सन्तान की संख्या न्यूनतम रखने का आरम्भ से ही ध्यान रखना चाहिए। ढलती आयु में तो यह सतर्कता अनिवार्य रूप से आवश्यक है। बुढ़ापे में सन्तान पैदा करना अपने साथ और उस सन्तान के साथ एक प्रकार से अत्याचार करना ही है।

प्राचीनकाल में ऋषि-मुनि गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे, उनके स्त्री-बच्चे भी साथ रहते थे उसके कुछ प्रमाण देखिये—

तारावृहस्पतेर्भार्या वशिष्ठस्याप्यरुन्धती।
अहिल्या गौतमस्त्री साप्यनसूयात्रिकामिनी।।
देवहूती कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी।
पितृणां मानसी कन्या मेनका साम्बिकाप्रसूः।।
लोपामुद्रा तथाहूती कुबेरकामिनी तथा।
वरुणानी यमस्त्री च बलेर्विन्ध्यावलीति च।।

—ब्रह्मवैवर्त पुराण

सुरगुरु वृहस्पति की भार्या का नाम तारा देवी है। वशिष्ठ की पत्नी अरुन्धती है। गौतम ऋषि की पत्नी का नाम अहिल्या है। अत्रि की पत्नी अनुसूया नाम वाली है देवहूति नाम वाली कर्दम की पत्नी है तथा दक्ष की पत्नी प्रसूति नामधारिणी है, पितृगण की मानसी कन्या मेनका अम्बिका प्रसू है। लोपामुद्रा तथा आहुति कुबेर की कामिनी हैं। यम की वरुणानी है और राजा बली की पत्नी विन्ध्यावली है।

तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः।।
ब्रह्मणोंऽशौ सुतो पश्चात् प्रादुर्भूतौ महौजसौ।।
वात्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।

—वायु पुराण

महात्मा कश्यप के दो पुत्र उत्पन्न हुए वात्सर और असित। वे दोनों ही ओजस्वी और ब्रह्मवादी थे।

तस्या कन्या त्विडविडा रूपेणाप्रतिमाभवत्
पूलस्त्याय स राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत्।।
ऋषिरिडविडायान्तु विश्रवाः समपद्यत।

—वायु पुराण

तृतीय त्रेता युग के मध्य में राजा हुआ था। उसकी कन्या इडविडा थी जो कि रूप में अप्रतिम थी। उस राजर्षि ने वह परम सुन्दरी कन्या पुलस्त्य के लिये दे दी थी। ऋषि पुलस्त्य ने इडविडा से विश्रवा को जन्म दिया।

वृहस्पतेर्वृहत्कीर्तिर्देवाधार्यस्य कीर्तितः।
कन्यां तस्योपयेये स नाम्ना वै देव वर्णिनीम्।

—वायु पुराण

देवों के आचार्य बृहस्पति को बृहत्कीर्ति कहा गया है। नाम से देव वर्णिनी उसकी कन्या के साथ उसने विवाह किया था।

शुकस्याऽस्याभवन् पुत्राः पञ्चाऽत्यन्ततपस्विनः।
भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भु कृष्णो गौरश्च पंचमः।।
कन्याकीर्तिमतीचैवयोगमातेाधृतव्रता।

—कूर्म पुराण

इन शुकदेव के पाँच अत्यन्त तपस्वी पुत्र हुए थे जिनके नाम भूरिश्रवा, प्रभु, शम्भु, कृष्ण और गौर ये थे। एक कन्या थी जो कीर्तिमति योग माता और धृतवृता थी।

अरुन्धत्यां वशिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत्सुतम्।
शक्तेः पराशरः श्रीमान् सर्व्वज्ञस्तपतां वरः।।
आराध्य देवदेवेशमीशानंत्रिपुरान्तकम्।
लेभे त्वप्रतिम पुत्र कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्।

—कूर्म पुराण

वशिष्ठ ने अरुन्धती पत्नी से शक्तिधारी पुत्र को ही उत्पन्न किया था। शक्ति से श्रीमान् सर्वज्ञ और तपस्वियों में परम श्रेष्ठ पाराशर ने अपना जन्म ग्रहण किया था। उस पाराशर महामुनि ने देवों के भी देवेश्वर त्रिपुरान्तक ईशान की समाराधना करके एक अति अप्रतिम प्रभु श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यास जैसा उत्तम पुत्र प्राप्त किया था।

वशिष्ठस्यूपयेयेऽथ भागिनी नारदस्यतु।
अरुन्धतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत्।।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंश निबोध मे।
यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णु रजायत।।

—मत्स्य पुराण

वशिष्ठ ने नारद की भगिनी के साथ विवाह किया था, जिस वरारोहा का नाम अरुन्धती था। अरुन्धती में उसने शक्ति को समुत्पन्न किया था। शक्ति का पुत्र पाराशर हुआ था। अब उसका जो भी वंश हुआ, उसे मुझसे समझ लो। जिस पराशर का स्वयं विष्णु द्वैपायन पुत्र उत्पन हुआ था।

अंगारेष्वङ्गिरा जातो ह्यार्चिष्योऽग्निस्तथैव च।
मरीचिष्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः।।
केशैस्तु कपिशा जातः पुलस्त्यश्च महातपाः।
केशैप्रलम्बैः पुलहस्ततोजातो महातपाः।।
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः।
भृगुः पुलोम्नस्तुसुतांदिव्यांभार्यामविन्दतः।

—मत्स्य पुराण

अंगरों में अंगिरा उत्पन्न हुये और हुताशन की अर्चियों में अत्रि ऋषि की उत्पत्ति हुई थी और इसके अनन्तर मरीचियों से महान् तपस्वी महर्षि मरीचि उत्पन्न हुए थे। केशों से कपिश और महान तपस्वी पुलस्त्य उत्पन्न हुए। पुलम्ब केशों से फिर महान् तपस्वी समुत्पन्न हुए । वसु के मध्य से तप के ही धन वाले वशिष्ठ ऋषि प्रसूत हुए थे। भृगु महर्षि ने पुलोमा की पुत्री को अपनी दिव्य भार्या बनाया था।

एतानुत्पाद्य पुत्रास्तु प्रजासन्तानकारणात्।
कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहंतपः।।
तस्यैवन्तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौसुताविमौ।
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।

—कूर्म पुराण

कश्यप ऋषि ने पुत्रों की कामना करते हुए इस प्रकार से प्रजा को सन्तान के कारण सपुत्रों को समुत्पन्न करके फिर सुमहान् तप किया था। उनके इस भाँति तप करने पर ये दो सुत समुत्पन्न हुए थे, जिनमें एक वत्सर और दूसरा असित था। वे दोनों ब्रह्मवादी थे।

पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ।
मनस्विन्यां मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो वभूवह।।
प्रजायते पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत।
तुष्टिः पुष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा।।
स्मृतिश्चाङ्गिरस पत्नी जज्ञे तावात्मसम्भवौ।
पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्तस्ता लोकविश्रुताः।।
अनसूयापि जज्ञे तान् पञ्चात्रे यानकल्मषान्।।
कन्याञ्चैव श्रुति नाम माता शंखपादस्य या।
कर्दमस्य तु या पत्नी पुलहस्य प्रजापतेः।।
ऊर्जायान्तु वशिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे।
ज्यावसी च स्वसा तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा।।

—वायु पुराण

पांडु और मृकण्डु ब्रह्मकोश तथा सनातन हुए। मनस्विनी में मृकण्डु से मार्कण्डेय उत्पन्न हुए। मारीचि की पत्नी सम्भूति नाम वाली थी उसने अपत्य पुत्र उत्पन्न किया जो पूर्णमास को उत्पन्न होता है और उसके कन्यायें हुईं उन्हें समझ लो तुष्टि, पुष्टि त्विषा, अत्यचित और शुभा ये कन्याएँ हुईं। अङ्गिरा की पत्नी स्मृति ने दो पुत्र पैदा किए और चार परम पवित्र तथा लोक विश्रुत कन्या उत्पन्न की थी। अनसूया ने भी जिसका नाम श्रुति था और जो शंखपद की माता थी जो प्रजापति पुलह कर्दम की पत्नी थी। ऊर्जा से वशिष्ठ के सात पुत्र उत्पन्न हुए और ज्यायसी (बड़ी) उनकी बहिन सुमध्यमा पुण्डरीका थी।

स्वस्त्यात्रेय इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः
तेषां विख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ सुमहौजसौ।।
दत्तात्रेयस्तस्य ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः।।

—वायु पुराण

स्वस्त्यात्रेय इस नाम से विख्यात वेद के पारगामी ऋषिगण थे, उनमें विख्यात यश वाले महान् ओज से युक्त परम ब्रह्माष्ठ दो पुत्र थे। उनमें दत्तात्रेय सबसे बड़ा था उसका छोटा भाई दुर्वासा था।

गृहस्थ में रहते हुए—स्वावलम्बी आजीविका उपार्जन करते हुए राजा जनक की तरह जल में कमल पत्रवत् रहना सम्भव है। (१) उच्च मनोभूमि (२) सत्कर्म (३) वाणी का श्रेष्ठतम सदुपयोग करना यह तीन दण्ड हैं। उन्हें धारण करने वाला व्यक्ति बिना वेष धारण किये त्रिदण्डी संन्यासी हो सकता है।

वस्तुतः शारीरिक और मानसिक उत्कृष्टता को धारण करना ही योगी यति होने का वास्तविक आधार है। घर छोड़ देना या वेष धारण करना उसके लिए आवश्यक नहीं। प्राचीन परम्परा ऐसी ही साधना की है, जिसमें मन की क्रिया को निर्मल, उत्कृष्ट बनाने पर ही सारा जोर दिया जाता रहा है। ऋषि मुनि इसी स्तर के होते रहे हैं। इसका उल्लेख शास्त्रों में सर्वत्र उपलब्ध है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

एवं निश्चित्य सुधिया गृहस्थोऽपि यदा चरेत्।

तदा सिद्धिमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।।

—शिव गीता

निश्चय आस्था और निर्मल बुद्धि वाला गृहस्थ भी योग साधना करते निःसन्देह सिद्धि प्राप्त करता है।

गृहस्थश्चाप्यनासक्त स मुक्तो योगसाधनात्।

योगक्रियाधियुक्तानां तस्मात्संयतते गृही।।

गेहे स्थित्वा पुत्रदारादिपूर्णः।

संगत्यक्त्वा यान्तरे योगमार्गे।

सिद्धे चिह्नं वीक्ष्य पश्चाद्गृहस्थः।

क्रीडेत्सो वै सम्पतं साधयित्वा।।

—शिव गीता

योग साधना में संलग्न साधक गृहस्थ रहते हुये भी संयमपूर्वक साधना करने से सिद्धि प्राप्त करता है।

घर में रहकर स्त्री-पुत्र आदि की व्यवस्था अनासक्त भाव से करते हुए योग साधना में सफलता प्राप्त कर सकता है।

वाग्दण्डः कर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रयः।

यस्यैतेनियतादण्डाः सत्रिदण्डीमहायतिः।।

—मार्कण्डेय पुराण

जिसके पास (१) वाक् दण्ड (२) कर्म दण्ड (३) मनोदण्ड है वही त्रिदण्डी है। वही महा यति है।

इन्द्रियाणि वशीकृत्य एव वसेन्नरः।

तत्र तस्य कुरुक्षेत्र नैमिषं पुष्कराणि च।।

गंगाद्वारंच केदारं सन्निहत्यां तथैव च।

एतानि सर्वतीर्थानि कृत्वा पापैः प्रमुच्यते।

—व्यास स्मृति

अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाला मनुष्य यदि घर में ही रहे तो उसके लिए वह घर ही नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र एवं पुष्कर के समान है। जिसने अपने मन को जीत लिया, उसके लिये गंगा द्वार, केदानाथ आदि सभी तीर्थों का लाभ अपने पास ही मिल जाता है।

प्रपश्चमखिलं यस्तु ज्ञानाग्नौ जुहुताद्यतिः।

आत्मन्यग्नीन्समारोप्य साऽग्निहोत्री महायतिः।।

—संन्यासोपनिषद् २/१/१९

जो अपनी आत्मा में अग्नि को प्रज्ज्वलित करता है वही सच्चा अग्निहोत्री और महायति है।

साधनात्मक पथ पर अग्रसर होते हुए विचारवान् साधकों को सांसारिक और आत्मिक दोनों भूमिकाओं का समन्वयात्मक निर्वाह करना चाहिए, प्राचीनकाल में भी ऋषि-मुनियों की जीवनचर्या यही थी आज की दृष्टि से यही उचित एवं उपयुक्त है।

गृहस्थाश्रम के उत्तरदायित्व साधना से कम नहीं

गृहस्थ जीवन बहुत बड़ी जिम्मेदारी और उत्तरदायित्वों का है। कौटुम्बिक एवं सामाजिक महत्व के कार्यों का प्रारम्भ गृहस्थाश्रम में ही होता है। इसी जीवन में मनुष्य अपने परिवार, पड़ौस, समाज के प्रति कर्त्तव्य-पालन करने की स्थिति में होता है। गृहस्थाश्रम तो मानो एक तपोभूमि है। सहनशीलता, संयम, उदारता, त्याग, आत्मीयता के सद्गुणों की साधना इसी में होती है। जो लोग गृहस्थ जीवना को मौज-मजा उड़ाने, इन्द्रिय-जनित सुखों को भोगने में थोड़ा बहुत धन, प्रतिष्ठा आदि कमा लेने का अवसर समझते हैं वे इसके महत्व को कम करते हैं। इसके प्रति लापरवाही प्रकट करते हैं।

गृहस्थाश्रम केवल पति-पत्नी के लिये ही नहीं है। उसकी तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा उनके अपने सुखों के लिये यह संस्था नहीं है। मनुष्य की दुर्दम्य, नैसर्गिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये भी गृहस्थ-जीवन नहीं, वैसे ये बातें इसमें आ भी जाती हों तो भी यह मानव-जीवन को अधिकाधिक विकसित करने, महानता की ओर अग्रसर होने का राजमार्ग है। गृहस्थ-जीवन में पति-पत्नी एक-दूसरे के सहायक, सहयोगी बनकर सामाजिक कर्त्तव्यों की पूर्ति में लगते हैं। अपने पूर्वजों से प्राप्त विरासत को बढ़ाकर उसे नई पीढ़ी को देने का, अधिक योग्य बनाने का भार गृहस्थी पर ही होता है। विकास की शृंखला में नव-पीढ़ी के नव निर्माण का महान् उत्तरदायित्व गृहस्थाश्रम में ही है। यह मानव-जाति के संस्करणों को क्रमशः उदात्त और मंगलमय स्थिति तक पहुँचाने की सीढ़ी है।

गृहस्थ-जीवन में पति-पत्नी का जीवन एक सूत्र में बँधता है। मानों दो शरीर में से एक ही चैतन्य बहने लगता हो फिर इन दोनों से सम्बन्धित परिवार आत्मीयता के सूत्रों में जुड़ते हैं। फिर उनसे सम्बन्ध रखने वाले अन्य परिवारों तक यह सम्बन्ध-सूत्र फैलने लगते हैं। परस्पर एक-दूसरे को सहयोग, सद्भावनायें मिलने लगती हैं और एक बहुत बड़ा समाज आत्मीय सम्बन्धों में जुड़ जाता है, जिसका प्रत्येक सदस्य एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य तथा पारस्परिक अधिकारों से बँधा हुआ सा रहता है। इतने बड़े समाज में गृहस्थाश्रम द्वारा सबकी सेवा-सत्कार

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करने का धर्म-कर्तव्य हमारे यहाँ माना गया है। गृहस्थाश्रम एवं पंचमहायज्ञ समाज के प्रति इस कर्त्तव्य-पालन करने के लिए ही बनाये गये हैं। जिनमें देवता, पितर, ज्ञानी, मनुष्य यहाँ तक कि जीवमात्र की सेवा आ जाती है। इतना बड़ा है, हमारा गृहस्थ-धर्म।

गृहस्थ की सफलता तीन बातों पर निर्भर करती है। पहला गृहस्थ जीवन के पूर्व की तैयारी, दूसरे पति-पत्नी के दाम्पत्य-जीवन में आने का ध्येय-तीसरा गृहस्थ-जीवन में एक-दूसरे का व्यवहार और उनका कर्त्तव्य-पालन।

ब्रह्मचर्याश्रम गृहस्थ, जीवन में पैर रखने की तैयारी करने का समय है। संसार में आवश्यक और उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने के लिये ब्रह्मचर्य की आवश्यकता होती है। इसी समय में मनुष्य अनेक कलायें, ज्ञान, विद्यायें अर्जित करता है। तरह-तरह के अच्छे अनुभव संस्कार अर्जित करता है। यह तैयारी ही गृहस्थ-जीवन की सफलता का आधार होती है। जिनका विवाह के पूर्व का जीवन सफल और उपयोगी होता है, वे गृहस्थ-जीवन को भी अधिक सफल बना सकते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम का यद्यपि अब पूर्वस्वरूप तो नहीं रहा फिर भी आज का विद्यार्थी-काल गृहस्थ-जीवन का पूर्व समय ही है। इसे भावी-जीवन को भली प्रकार जीने का उपयोगी आधार बनाया जा सकता है। गृहस्थ-जीवन की बहुत कुछ सफलता इस पर निर्भर करती है कि दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश करने से पहले मनुष्य ने उसके लिये क्या तैयारी की ? शारीरिक, मानसिक, आत्मिक दृष्टि से सामर्थ्यवान्, गुणवान् बनकर गृहस्थ-जीवन में प्रविष्ट होने वाले दम्पत्ति अपना जीवन अधिक सफल बना सकते हैं और इसकी तैयार का समय विवाह के पूर्व का समय ही है। जो अयोग्य, असमर्थ, अविकसित रहकर गृहस्थ में प्रवेश करते हैं उनका जीवन काफी पिछड़ा हुआ, कठिनाई और उलझनों से घिरा हुआ, हीन अवस्था में बीतता है। वे गृहस्थाश्रम का कोई विशेष लाभ नहीं उठा पाते।

गृहस्थ-जीवन की सफलताएँ और असफलताएँ विवाह-संस्कार, स्त्री और पुरुष का दाम्पत्य-जीवन में प्रवेश करने के उद्देश्य, आदर्शों पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है, जहाँ विवाह केवल शारीरिक सुख अथवा एक-दूसरे के लुभावने आकर्षण या किसी क्षुद्र लोभ के कारण होता है, वहाँ विवाह का आदर्श ही नष्ट हो जाता है और ऐसे वैवाहिक सम्बन्ध अधिकतर असफल ही सिद्ध होते हैं, जिन विवाह सम्बन्धों के पीछे कोई महान् आदर्श, उदात्त ध्येय की भावना न हो तो तो गृहस्थ-जीवन में भी निम्न कोटि के भाव अर्थात् आकर्षण, लोभवृत्ति आदि पर ही चलते हैं और फिर गृहस्थ-जीवन में कटुता, क्लेश, अशान्ति का बोलबाला हो जाता है। जो स्त्री-पुरुष परस्पर के दैहिक आकर्षण से, धन-सम्पत्ति के लोभ से अथवा निरुद्देश्य या उनके अभिभावकों की ऐसी इच्छा से दाम्पत्य-जीवन में घुसते हैं उनके लिये आगे चलकर निर्वाह करना कठिन हो जाता है। तब वे भली प्रकार अपने गृहस्थ-धर्म को नहीं निभा पाते और जहाँ इस तरह के विवाह सम्बन्ध स्थापित होते हैं, वह समाज कभी उन्नत नहीं हो सकता क्योंकि गृहस्थाश्रम ही उसकी रीढ़ होती है। इतना तो स्पष्ट ही है कि धन, सुन्दरता या अन्य किसी आकर्षण के आधार पर स्थापित विवाह सम्बन्ध चाहे वर-वधू की इच्छा से हो या उनके अभिभावकों की इच्छा पर, इनसे गृहस्थाश्रम की सफलता सम्भव नही होती। इस तरह की प्रवृत्तियाँ दम्पत्ति के साथ-साथ समाज और मानवता के लिये हानिकर सिद्ध होती हैं।

गृहस्थ-जीवन का आधार भौतिक लाभ तात्कालिक सुखोपभोग का दृष्टिकोण, दैहिक आकर्षण तो हो ही नहीं सकते। गृहस्थाश्रम जीवन के पवित्र और उदात्त-ध्येय की पूर्ति के लिये है। तात्कालिक लाभ और वैयक्तिक सुख को लक्ष्य रखकर चलना गृहस्थ-जीवन की विडम्बना है। इनका परिणाम अन्ततः दुःख, क्लेश, असन्तोष, परेशानियों में ही प्राप्त होता है। गृहस्थाश्रम में ही समाज-संसार की उन्नति साधन का अवसर है। स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के प्रति-व्रतशील बनकर एक निष्ठा के साथ अपने कर्तव्यों का मिलकर पालन करते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इसमें संयम की उपासना करते हुए चंचलता एवं असंयम का पूर्णतया त्याग करके एक दिन गृहस्थ-जीवन को विशुद्ध बनाने की स्थिति में भी पहुँच जाना ही आवश्यक होता है।

आज गृहस्थाश्रम का कोई पवित्र उद्देश्य हमारे समक्ष नहीं रह गया है। अभिभावकों की इच्छा या दहेज के लोभ अथवा दैहिक वासनात्मक आकर्षण आदि से प्रेरित होकर विवाह सम्बन्ध स्थापित होते हैं। फिर गुजारा करने लायक कोई काम-धन्धा कर लेना, बाल-बच्चों का जैसे-तैसे गुजारा कर लेना, थोड़ा बहुत पैसा या पद प्रतिष्ठा अर्जित कर लेना ही गृहस्थ-जीवन का उद्देश्य रह गया है। इससे परे कोई उच्च उद्देश्य, उच्च-विचार, उत्तम संस्कार, उदात्त भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता। अपनी इच्छा, वासना, कामनाओं से प्रेरित होकर आदर्शहीन जीवन बिताने की साधारण-सी जीवन-पद्धति होती है, आज के अधिकांश गृहस्थियों की। लेकिन इससे व्यक्ति और समाज दोनों का कोई हित साधन नहीं होता। हर वर्ष लाखों दम्पत्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं और वे अपने से पहले की पीढ़ी की तरह गलतियों को दुहराकर निरुपयोगी जीवन बिताते हैं। इस गलत परिपाटी को सुधारने की आवश्यकता है। गृहस्थाश्रम को मनुष्य के विकास और उत्कर्ष का आधार बनाने के लिये हमें इसके महत्व को समझना चाहिए।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ धर्म तुच्छ नहीं है

ब्रह्मचर्य का पालन बहुत ही उत्तम, उपयोगी एवं लाभदायक साधना है। यह शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से हितकर है। जो जितने अधिक समय तक ब्रह्मचारी रह सके उसके लिए उतना ही अच्छा है। साधारणत: लड़कों को कम से कम २० वर्ष तक और लड़कियों को १८ वर्ष तक तो ब्रह्मचारी अवश्य ही रहना चाहिए। जो अपने मन को वश में रख सके, वे अधिक समय तक रहें।

ब्रह्मचर्य में मानसिक संयम प्रधान है। यदि मन वासनाओं में भटकता रहे और शरीर को हठपूर्वक संयम से रखा जाय तो उससे लाभ की जगह पर हानि ही है। शारीरिक काम सेवन से जितनी हानि है, उससे कई गुनी हानि मानसिक असंयम से है। वीर्यपात की क्षति आसानी से पूरी हो जाती है परन्तु मानसिक विषय चिन्तन से जो उत्तेजना पैदा होती है वह यदि तृप्त न हो तो कुचले हुए सर्प की तरह क्रुद्ध होकर अपने छेड़ने वालों के ऊपर आक्रमण करती है।

मनोविज्ञान शास्त्र के यशस्वी आचार्य डाक्टर फ्रायड, डाक्टर बाईन, डाक्टर बने प्रभृति विद्वानों का मत है कि वासना कुचली जाने पर सुप्त मन के किसी कोने में एक बड़ा घाव लेकर पड़ी रहती हैं और जब अवसर पाती हैं तभी भयानक, शारीरिक या मानसिक रोगों को उत्पन्न करती हैं। उनका कहना है कि पागलपन, मूर्छा, मृगी, उन्माद, नाड़ी-संस्थान का विक्षेप, अनिद्रा, कायरता आदि अनेक रोग वासनाओं के अनुचित रीति से कुचले जाने के कारण उत्पन्न होते हैं। इसलिये ब्रह्मचर्य की पहली शर्त, 'मन की स्थिरता' मानी गई है। जिनका मन किन्हीं उत्तम विचारों में निमग्न रहता है, विषय वृत्तियों की ओर जिसका ध्यान ही नहीं जाता या जाता है तो तुरन्त ही अरुचि और घृणापूर्वक वहाँ से हट जाता है, वे ही ब्रह्मचारी हैं। जिसका मन वासना में भटकता है, चित्त पर जो काबू रख नहीं पाते, उनके शारीरिक ब्रह्मचर्य को विडम्बना ही कहा जा सकता है।

किसी स्रोत में से पानी का प्रवाह जारी हो किन्तु उसके बहाव के मार्ग को रोक दिया जाय तो वह पानी जमा होकर दूसरे मार्ग से फूट निकलेगा। मन से विषय चिन्तन और बाहर से ब्रह्मचर्य यह भी इसी प्रकार का कार्य है। मन में वासना उत्पन्न होने से जो उत्तेजना पैदा होती है, वह फूट निकलने के लिए कोई न कोई मार्ग ढूँढ़ती है। साधारण मार्ग बन्द होता तो कोई और मार्ग बनाकर बह निकलती है। यह नया मार्ग अपेक्षाकृत बहुत खतरनाक और हानिकारक साबित होता है।

संसार भर की जनगणना की रिपोर्टों का अवलोकन करने से यह सच्चाई और भी अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती है। विवाहित स्त्री-पुरुषों की प्रतिशत जितनी मृत्यु होती हैं विधवा या विधुरों की मृत्यु का अनुपात प्राय: उससे ड्यौढ़ा रहता है। मोटी दृष्टि से देखने पर विवाहितों की जीवनी शक्ति अधिक और अविवाहितों की कम खर्च होती है इससे विवाहितों की अल्पायु और रोगी रहने की सम्भावना प्रतीत होती है परन्तु होता इसका ठीक उल्टा है। विवाहित लोग संभोगजन्य क्षय, बालकों का भरण-पोषण, अधिक चिन्ता तथा अधिक जिम्मेदारी आदि के भार को खींचते हुए भी जितनी आयु और नीरोगता प्राप्त करते हैं। अविवाहित लोग उतनी नहीं कर पाते। इसका एकमात्र कारण वासना की अतृप्ति से उत्पन्न हुआ मानसिक उद्वेग है, जो बड़ा घातक होता है, उसकी विषाक्त ज्वाला से सारे जीवन तत्व भीतर ही भीतर जल-भुन जाते हैं। चित्त की अस्थिरता और अशान्ति के कारण कोई कहने लायक महान् कार्य भी उनसे सम्पादित नहीं हो पाता, कोई बड़ी सफलता भी नहीं मिल पाती। इस प्रकार विवाहितों की अपेक्षा यह अविवाहित अधिक घाटे में रहते हैं।

पाठकों को हमारा आशय समझने में भूल न करनी चाहिए। हम ब्रह्मचर्य की अपेक्षा विवाहित जीवन को अच्छा बताने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। ब्रह्मचर्य एक अत्यन्त उपयोगी और हितकारी साधना है। इसके लाभों की कोई गणना नहीं हो सकती, इन पंक्तियों में हम मानसिक असंयम और विवाहित जीवन की तुलना कर रहे हैं, जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य की साधना में अपने को समर्थ न पावें। जो मानसिक वासना पर काबू न रख सकें, उनके लिये यही उचित है कि विवाहित जीवन व्यतीत करें। होता भी ऐसा ही है, सौ में से निन्यानवे आदमी गृहस्थ जीवन बिताते हैं। इस स्वाभाविक प्रक्रिया में कोई अनुचित बात भी नहीं है।

यह सोचना ठीक नहीं कि गृहस्थाश्रम में बँधने से आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। आत्मा को ऊँचा उठाकर परमात्मा तक ले जाना यह पुनीत आत्मिक साधना अन्त:करण की भीतरी स्थिति से सम्बन्ध रखती है। बाह्य-जीवन से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। जिस प्रकार ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ व संन्यासी आत्म-साधना द्वारा जीवन लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं वैसे ही गृहस्थ भी कर सकते हैं। सदा सनातन काल से ऐसा होता आया है। अध्यात्म साधकों में गृहस्थ ही कम अधिक देखते हैं। प्राचीनकाल के ऋषिगण आज के गैर जिम्मेदारी और अव्यवस्थित बाबाजीओं से सर्वथा भिन्न थे। घनी बस्ती न बसाकर स्वच्छ वायु में दूर-दूर तक घर बनाना, पक्के मकान न बनाकर छोटी झोंपड़ियों में रहना, वस्त्रों से लदे न रहकर शरीर को खुला रखना आदि उस समय की साधारण प्रथायें थीं। उस समय के राजा तथा देवताओं के जो चित्र मिलते हैं। उससे वे सब भी कटि वस्त्र के अतिरिक्त और कोई कपड़ा पहने नहीं दीखते। यह उस समय की परिपाटी थी। आज जिस वेष-भूषा की नकल

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

करके लोग अपने को साधु मान लेते हैं। वह पहनावा-उढ़ाव, रहन-सहन उस समय में सर्वसाधारण का था।

यह एक बिलकुल ही वे सिर-पैर का विचार है कि पुराने समय में ऋषि लोग अविवाहित ही रहते थे, यह ठीक है कि ऋषि-मुनियों में कुछ ऐसे भी थे, जो बहुत समय तक अथवा आजीवन ब्रह्मचारी रहते थे, पर उनमें से अधिकांश गृहस्थ थे। स्त्री बच्चों के साथ होने से तपश्चर्या में, आत्मोन्नति में उन्हें सहायता मिलती थी। इतिहास-पुराणों में पग-पग पर इस बात की साक्षी है कि भारतीय महर्षिगण, योगी, यती, साधु, तपस्वी, अन्वेषक, चिकित्सक, वक्ता, रचयिता उपदेशक, दार्शनिक, अध्यापक, नेता आदि विविध रूपों में अपना जीवन-यापन करते थे और अपने महान् कार्य में स्त्री-बच्चों को भी भागीदार बनाते थे।

आध्यात्मिक मार्ग पर कदम बढ़ाने वाले साधक के सामने आज अज्ञान और अविवेक भरे मूढ़ विश्वासों ने एक भारी उलझन पैदा कर दी है। आत्म-साधना गृहस्थ से नहीं हो सकती, स्त्री-नरक का द्वार है, कुटुम्ब-परिवार माया का बन्धन है। इनके रहते भजन नहीं हो सकता, परमात्मा नहीं मिल सकता, इस प्रकार की अज्ञानजन्य भ्रमपूर्ण कल्पनायें साधक के मस्तिष्क में चक्कर लगाती हैं। -परिणाम यह होता है कि या तो वह आत्ममार्ग को अपने लिए असम्भव समझकर उसे छोड़ देता है या फिर पारिवारिक महान् उत्तरदायित्व को छोड़कर भीख-टूक माँग खाने के लिए घर से निकल भागता है। यदि बीच में ही लटका रहा तो और भी अधिक दुर्दशा होती है। परिवार उसे गले में बँधे हुए चक्की के पाट की तरह भार रूप प्रतीत होता है। उपेक्षा, लापरवाही, गैर-जिम्मेदारी की दृष्टि से बर्ताव करने के कारण उसके हर व्यवहार में कुरूपता एवं कटुता रहने लगती है। स्त्री बच्चे सोचते हैं कि यह हमारे जीवन को दुःखमय बनाने वाला है, शत्रुता के भाव मन में जगते हैं, प्रतिशोध की वृत्तियाँ पैदा होती हैं। कटुता, कलह, घृणा और तिरस्कार के विषैले वातावरण की सृष्टि होती है। उस वातावरण में रहने वाला कोई भी प्राणी स्वस्थता और प्रसन्नता कायम नहीं रख सकता।

वास्तविक बात यह है कि आत्म-साधक में जो विक्षेप पैदा होता है, उसका कारण अपनी कुवासना, संकीर्णता, तुच्छता, अनुदारता और स्वार्थपरता है। यह दुर्भाव, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यास जिस भी आश्रम में रहेंगे उसे ही पापमय बना देंगे। उसके विपरीत यदि अपने मन में त्याग, सेवा, सत्यता, सज्जनता एवं उदारता की भावनायें विद्यमान हों तो कोई भी आश्रम स्वर्गदायक, मुक्तिप्रद, परम पद देने वाला हो सकता है। आध्यात्मिक साधकों को अपने मन में इस भ्रम को पूर्णतया बहिष्कृत कर देना चाहिये कि गृहस्थाश्रम कोई छोटा या गिराने वाला धर्म है। यदि समुचित रीति से उसका पालन किया जाय तो ब्रह्मचर्य या संन्यास की तरह वह भी सिद्धदाता प्रमाणित हो सकता है।

गृहस्थ धर्म जीवन का एक पुनीत आवश्यक एवं उपयोगी अनुष्ठान है। स्त्री और पुरुष के एकत्रित होने से दो अपूर्ण जीवन एक पूर्ण जीवन का रूप धारण करते हैं। पक्षी के दो पंखों की तरह स्त्री और पुरुष का मिलन एक दृढ़ता एवं स्थिरता की सृष्टि करता है। शारीरिक और मानसिक तत्व के आचार्य जानते हैं कि कुछ तत्वों की पुरुष में न्यूनता और स्त्री में अधिकता होती है। इसी प्रकार कुछ तत्व स्त्री में कम होते हैं। इस अभाव की पूर्ति दोनों के सहचरत्व से होती है। स्त्री-पुरुष में एक दूसरे के प्रति जो असाधारण आकर्षण होता है, उसका कारण वही क्षतिपूर्ति है। मन की सूक्ष्म चेतना अपनी क्षति पूर्ति के उपयुक्त साधनों को प्राप्त करने के लिए विचलित होती है, तब उसे संयोग की अभिलाषा कहा जा सकता है। अन्ध और पंगु मिलकर देखने और चलने के लाभों को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे ही लाभ एक-दूसरे की सहायता से दम्पत्ति को मिल जाते हैं।

मूलतः न तो पुरुष बुरा है न स्त्री। दोनों ही ईश्वर की पवित्र कृतियाँ हैं। दोनों में ही आत्मा का निर्मल प्रकाश जगमगाता है। पुरुष का कार्यक्षेत्र घर से बाहर रहने के कारण उसकी बाह्य योग्यतायें विकसित हो गई हैं वह बलवान, प्रभावशाली, कमाऊ और चतुर दिखाई देता है, पर इसके साथ-साथ ही आत्मिक सद्गुणों को इस बाह्य संघर्ष के कारण उसने बहुत कुछ खो दिया है। सरलता, सरसता, वफादारी, आत्म-त्याग, दयालुता, प्रेम तथा वात्सल्य की वृत्तियाँ आज भी स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक देखी जाती हैं। मुद्दतों से शिक्षा, दीक्षा, अनुभव एवं सामाजिक कार्यक्षेत्र से पृथक् एक छोटे पिंजड़े से घर में जीवन भर बन्द रहने और अपने जैसी अन्य मूर्खाओं की संगति मिलने के कारण व्यवहारिक ज्ञान में बहुत कुछ पिछड़ गई हैं, तो भी उनमें आत्मिक सद्गुणों पुरुषों की अपेक्षा बहुत अधिक विद्यमान है। उनके सान्निध्य से नरक, पतन, माया, बन्धन जैसे किसी संकट के उत्पन्न होने की आशंका नहीं है। सच तो यह है कि उनके पवित्र आँचल की छाया में बैठकर पुरुष अपनी शैतानी आदतों से बहुत कुछ छुटकारा पा सकता है। उनकी स्नेह गंगा के अमृत जल का आचमन करके अपने कलुष-कषायों से, पाप-तापों से छुटकारा पा सकता है।

जिनका अन्तःकरण पवित्र है, वे कोमलता की अधिकता से कारण स्त्री में अधिक सत् तत्व का अनुभव करते हैं। हजरत मुहम्मद साहब कहा करते थे कि 'नारी का महत्व मैं इसलिए नहीं मानता कि विधाता ने उसे सुन्दर बनाया है, न उससे इसलिए प्रेम करता हूँ कि वह प्रेम के लिए उत्पन्न हो गई है। मैं तो उसे इसलिए पूज्य मानता हूँ कि मनुष्य का मनुष्यत्व केवल उसी में जीवित है।' दिव्यदर्शी टेलर ने अपनी अनुभूति प्रकाशित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

की थी कि—'स्त्री की सृष्टि में ईश्वरीय प्रकाश है। वह एक मधुर सरिता है, जहाँ मनुष्य अपनी चिन्ताओं और दुःखों से त्राण पाता है।' दार्शनिक प्लेटो ने कहा है—'सृष्टि के आदि में मनुष्य अपंग था, वह पृथ्वी के एक कोने में पड़ा सिसक रहा था। स्त्री ने ही उसे उठाया और पालकर बड़ा किया । आज वही कृतघ्न उन स्त्रियों को पैर की जूती समझता है।' कवि हालग्रच की अनभूति है कि 'स्त्रियाँ भूलोक की कविता हैं। पुरुष के भाग्य का विस्तार उन्हीं के हाथ में है।' कार्लाइल कहा करते थे—'यदि तुम प्रेम के साक्षात् दर्शन करना चाहते हो तो माता के गद्‌गद् नेत्रों को देखो।' सृष्टि के आरम्भ काल का दिग्दर्शन कराते हुए सन्त केववैल ने कहा कि 'जब तक आदमी अकेला था तब तक उसे स्वर्ग भी कण्टकाकीर्ण था। देवताओं के गीत शीतल, समीर और ललित वाटिकायें उसके लिए सभी व्यर्थ थीं, यह सब होते हुये भी उदास रहता था और आहें भारता था, परन्तु जब उसे हब्बा मिल गई तो सारा दुःख दूर हो गया। काँटे फूलों में बदल गये।

जिन सन्तों ने अपने पवित्र नेत्रों से नारी को देखा है, उन्हें उसमें ईश्वर की सजीव कविता मूर्तिमान दिखाई दी है। जिनकी आँखों में पाप है उनके लिए बहिन, बेटी और माता की समीपता में ही नहीं, प्रत्येक जड़ चेतन की समीपता में खतरा है। जिनके आँचल में आग बँधी हुई है। उसके लिए सर्वत्र अग्निकाण्ड का खतरा है, जिसकी आँखों पर हरा ठण्डा चश्मा है, उसके लिए कड़ी धूप भी शीतल है। पाठकों ! अपना दृष्टिकोण पवित्र बनाओ। विश्वास रखो, राजा जनक की भाँति आप भी गृहस्थ में रहते हुये सच्चे महात्मा बन सकते हैं।

धन्यो गृहस्थाश्रमः

गृहस्थ-धर्म अन्य सभी धर्मों से अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। महर्षि व्यास के शब्दों में **'गृहस्थ्येमेव हि धर्माणां सर्वेषां मूल-मुच्यते'** गृहस्थाश्रम ही सभी धर्मों का आधार है। **'धन्यो गृहस्थाश्रमः** चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम धन्य है। 'जिस तरह समस्त प्राणी माता का आश्रय पाकर जीवित रहते हैं, उसी तरह सभी आश्रम गृहस्थाश्रम पर आधारित हैं।'

परिवार-संस्था सहजीवन के व्यावहारिक शिक्षण की प्रयोगशाला है। इसीलिये कुटुम्ब समाज संस्था की इकाई माना जाता है। गृहस्थ में बिना किसी संविधान, दण्ड-विधान, सैनिक शक्ति के ही सब सदस्य परस्पर सहयोगी सहजीवन बिताते हैं, माता, पिता पुत्र, पति-पत्नी, नाते-रिश्तों के सम्बन्ध किसी दण्ड के भय अथवा कानून की प्रेरणा पर कायम नहीं होते, वरन् वे स्वेच्छा से कुल कर्म, परम्परा, आनुवंशिक संस्कारों पर निर्भर करते हैं। प्रत्येक सदस्य अपनी-अपनी मर्यादाओं का पालन करने में अपनी प्रतिष्ठा, कल्याण गौरव की भावना रखकर खुशी-खुशी उन्हें निभाने का प्रयत्न करता है कुटुम्ब के साथ सहजीवन में आवश्यकता पड़ने पर प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तिगत सुख-स्वार्थों का त्याग करने में भी प्रसन्नता अनुभव करता है। यही सहजीवन की सर्वोपरि आवश्यकता होती है। बिना अपने स्वार्थों का त्याग किये, कष्ट सहन किये सहजीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती और उसमें भी विशेषता यह है कि यह त्याग-सहिष्णुता-स्वेच्छा से खुशी के साथ वहन की जाती है। सह-जीवन के लिए ऐसा शिक्षण और कहाँ मिल सकता है ?

कुटुम्ब के निर्माण के लिए फिर किसी कृत्रिम उपाय, संकल्प विधान की आवश्यकता नहीं होती। परिवार अपने आप में 'स्वयं-सिद्ध' संस्था है। माता-पिता, भाई-बहिन, चाचा-ताऊ, पुत्र आदि के चुनाव करने की आवश्यकता नहीं होती। जहाँ गृहस्थ है, वहाँ ये सब तो हैं ही और इन सम्बन्धों को स्थिर रखने के लिए किसी कृत्रिम उपाय की भी आवश्यकता नहीं होती। कुटुम्ब तो सहज आत्मीयता पर चलते हैं।

कहावत है—''पानी की अपेक्षा खून अधिक गाढ़ा होता है, इसीलिये एक ही जलाशय के पास बसने वालों की अपेक्षा एक कुटुम्ब में बँधे लोगों के सम्बन्ध अधिक प्रगाढ़ आत्मीय, अभेद्य होते हैं।'' कितना ही बैर क्यों न पैदा हो जाय लेकिन खून का असर आदमी के दिल और दिमाग से हट नहीं सकता। एक खून का व्यक्ति अपने साथी से स्वयं लड़ लेगा लेकिन दूसरे का आक्रमण बर्दाश्त नहीं करता। दुनिया में सब सम्बन्ध परिस्थितिवश टूट सकते हैं लेकिन खून का नहीं। कोई पुत्र अपने पिता से यह नहीं कह सकता कि मैं तुम्हारा बेटा नहीं। कोई भाई अपनी बहिन से यह सिद्ध नहीं कर सकता कि मैं तुम्हारा भाई नहीं।'' खून का सम्बन्ध स्वयं सिद्ध है। एक माता-पिता अपने पुत्र के लिए जितना सोच सकते हैं, उतना हृदयपूर्वक अन्य नहीं सोच सकता। इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक ही खून से सींची हुई कुटुम्ब संस्था गृहस्थ जीवन का अलौकिक चमत्कार है।

गृहस्थ का आधार है, वैवाहिक जीवन। स्त्री और पुरुष विवाह संस्कार के द्वारा गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते हैं। जब वे गृहस्थाश्रमी कहलाते हैं। स्मरण रहे विवाह संस्कार का अर्थ दो शरीरों का मिलन नहीं होता। हमारे यहाँ विवाह स्थूल नहीं, वरन् हृदय की, आत्मा की, मन की एकता का संस्कार है। जो विवाह को शारीरिक निर्बाध कामोपभोग का सामाजिक स्वीकृति-पत्र समझते हैं, वे भूल करते हैं। वे अज्ञान में हैं। विवाह का यह प्रयोजन कदापि नहीं है। भारतीय जीवन पद्धति में उसका उद्देश्य बहुत बड़ा है, दिव्य है, पवित्र है। विवाह के समय वर कहता है—

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

''द्यौरहं पृथ्वी त्वं सामाहमृक्त्वम्।

सम्प्रिदौ रोचिष्णु सुमनस्यमानौजीवेम शरदः शतम्।।

''मैं आकाश हूँ, तू पृथ्वी है। मैं सामवेद हूँ, तू ऋग्वेद है। हम एक-दूसरे पर प्रेम करें। एक-दूसरे को सुशोभित करें। एक-दूसरे के प्रिय बनें। एक-दूसरे के साथ निष्कपट व्यवहार करके सौ वर्ष तक जियें।

यह कहीं नहीं कहा गया है कि पति और पत्नी दो शरीर हैं। उन दोनों शरीरों का मिलन ही विवाह है अथवा भोगासक्त जीवन बिताकर अल्पमृत्यु प्राप्त करना ही विवाह है।

आकाश और पृथ्वी का सहज मिलन, पति-पत्नी के सम्बन्धों का अपूर्व आदर्श है। विवाह ज्ञान और कला का संगम है। प्रेम के लिए एक-दूसरे को अर्पण कर देने का विधान है, दो हृदयों को निष्कपट—खुले व्यवहार सूत्र में पिरोने का विधान है। विवाह संयमपूर्वक लेकिन आनन्दमय जीवन बिताकर पूर्ण आयु प्राप्त करने का सहज मार्ग है।

गृहस्थ का उद्देश्य स्त्री-पुरुष एवं अन्य सदस्यों का ऐसा संयुक्त जीवन है, जो उन्हें शारीरिक सीमाओं से ऊपर उठाकर एक-दूसरे के प्रति निष्ठा, आत्मीयता, एकात्मता की डोर में बाँध देता है। यह डोर जितनी प्रगाढ़-पुष्ट होती जाती है, उतनी ही शारीरिकता गौण होती जाती है। ऐसी परिस्थिति में शरीर भले ही रोगी, कुरूप हो जाय लेकिन पारस्परिक निष्ठा कम नहीं होती।

एक स्त्री ही संसार में सबसे सुन्दर गुणवती नहीं होती, लेकिन पति के लिए सृष्टि में उसके समान कोई नहीं। संसार में सभी माँ एक-सी नहीं होती लेकिन प्रत्येक माँ अपने बच्चे के लिए मानों वात्सल्य की साकार प्रतिमा है। एक गरीब कंजर अशिक्षित माँ के अंग में बालक को जो कुछ मिल सकता है, वह किसी दूसरे स्त्री के पास नहीं मिल सकता। प्रत्येक बालक के लिए माँ उसकी जननी ही हो सकती है और काना, कुरूप, गन्दा अविकसित बालक भी माँ के लिए सबसे अधिक प्रिय होता है। धर्म की बहिन कितनी ही बना ली जायें लेकिन भाई के लिए जो उमड़ता-घुमड़ता हृदय एक सहोदर बहिन में हो सकता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इस तरह हम देखते हैं कि गृहस्थाश्रम शारीरिक सम्बन्धों पर टिका हुआ है अपितु स्नेहमय, दिव्य, सूक्ष्म आधार स्तम्भों पर इस पुण्य भवन का निर्माण होता है। पारिवारिक जीवन में परस्पर सम्बन्धों की यह दिव्यता ही गृहस्थ जीवन की आत्मा है।

गृहस्थाश्रम वृत्तियों का शोधन करने, जीवन की साधना करने की एक रचनात्मक प्रयोगशाला है। मनुष्य की काम वासना को पति-पत्नी में एक-दूसरे के प्रति कर्तव्य निष्ठा, प्रेम में परिवर्तित करके कामोपभोग को एक सांस्कृतिक संस्कार बनाकर सामाजिक मूल्य में बदल देना गृहस्थाश्रम की ही देन है। स्मरण रहे गृहस्थाश्रमी शरीरनिष्ठा अथवा रूपनिष्ठ नहीं होता। कर्तव्य, उत्तरदायित्व, प्रेम की निष्ठा ज्यों-त्यों बढ़ती है, शारीरिकता नष्ट होने लगती है और क्रमशः पूर्णरूपेण शारीरिकता का अन्त होकर उक्त दिव्य आधार मुख्य हो जाते हैं। कामुकता भी नष्ट हो जाती है। इसलिए गृहस्थाश्रम कामोपभोग का प्रमाण पत्र नहीं, अपितु संयम-ब्रह्मचर्य मूलक है। संयम का एक क्रमिक लेकिन व्यावहारिक साधना स्थल है। सेवा-सुश्रूषा, पालन-पोषण, शिक्षण तक दूसरे के प्रति प्रेम, त्याग, सहिष्णुता के माध्यम से मनुष्य की काम शक्ति संस्कारित, निर्मल होकर मनुष्य को व्यवस्थित, संयत, दिव्य बनाने का आधार बन जाती है।

गृहस्थ तप और त्याग का जीवन है। गृहस्थ के निर्वाह पालन के लिए किये जाने वाला प्रयत्न किसी तप से कम नहीं है। कुटुम्ब् का भार वहन करना परिवार के सदस्यों को सुविधापूर्ण जीवन के साधन जुटाना, स्त्री, बच्चे, माता-पिता अन्य परिजनों की सेवा करना बहुत कठिन तपस्या है। गृहस्थ में स्वयंमेव मनुष्य को अपनी अनेकों प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना पड़ता है। कोई भी गृहस्थ स्वयं का कम खा लेता है, पुराना कपड़ा पहन लेता है, लेकिन परिवार के सदस्यों की चिकित्सा, वस्त्र, भोजन, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए सब प्रबन्ध करता है। पेट काटकर भी माँ-बाप बच्चों को पढ़ाते हैं। फटा कपड़ा स्वयं पहनकर बच्चों को अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनाते हैं। गृहस्थ में जिम्मेदार व्यक्ति के सामने अन्य सदस्यों को सुखी-सन्तुष्ट रखने का ध्यान प्रमुख होता है, स्वयं का गौण। उधर गृहिणी सबसे पीछे जो बच जाता है वह खा लेती है। सबकी सेवा में दिन-रात लगी रहती है। बिना किसी प्राप्ति के इच्छा से सहज रूपेण। सचमुच गृहस्थाश्रम एक यज्ञ है—तप और त्याग का। प्रत्येक सदस्य उदारतापूर्वक सहज ही एक-दूसरे के लिए कष्ट सहता है, एक-दूसरे के लिए त्याग करता है।

गृहस्थाश्रम समाज को सुनागरिक देने की खान है। भक्त, ज्ञानी, सन्त, महात्मा, महापुरुष, विद्वान, पण्डित गृहस्थाश्रम से ही निकलकर आते हैं। उनके जन्म से लेकर शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण, ज्ञान-वर्धन गृहस्थाश्रम के बीच ही होता है। परिवार के बीच ही मनुष्य की सर्वोपरि शिक्षा होती है।

गृहस्थाश्रम की सर्वोपरि उपलब्धि है उसका आतिथ्य धर्म। कितना बड़ा सामाजिक मूल्य है जिसे कहीं भोजन न मिले, जो संयोग से ही पहुँच जाये उसे भोजन कराये बगैर गृहस्थी भोजन नहीं करता। गाँव में, पास पड़ौस में, कोई भूखा न रह जाय, इसके लिए प्रतिदिन नियमपूर्वक किसी अतिथि को भोजन कराये बिना कुछ भी न खाना, हमारे यहाँ गृहस्थाश्रम की परम्परा है। अन्य उच्च कार्यों में लगे त्यागी, तपस्वी, संन्यासी, सेवकों का जीवन गृहस्थाश्रम से ही होता है।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थाश्रम समाज के संगठन, मानवीय मूल्यों की स्थापना, समाज निष्ठा, भौतिक विकास के साथ-साथ मनुष्य के आध्यात्मिक—मानसिक विकास का क्षेत्र है। गृहस्थाश्रम ही समाज के व्यवस्थित स्वरूप का मूलाधार है।

ब्रह्मचर्य और निरालस्य का व्रत धारण

मानव तुच्छ नहीं महान् है। वह महान तत्त्व से अवतरित होता है, महान् लक्ष्य लेकर इस पृथ्वी पर आता है और महानता की शानदार जिन्दगी जीते हुए, महान् आदर्श उपस्थित करते हुए महान् तत्व को उपलब्ध करने के लिए ही उसकी जीवन यात्रा चलती है। इस राजमार्ग पर वह चलता रहे तो उसे पग-पग पर आनन्द, सन्तोष और उल्लास भरी परिस्थिति अनुभव होगी। अपने परिवार का सारा वातावरण उसे सज्जनता और सौम्यता से ओत-प्रोत दिखाई देगा। जहाँ बदमाशी और गन्दगी है, वहाँ उसे हटाने और मिटाने को एक परीक्षा या कसौटी की तरह समझकर सुलझे हुए दृष्टिकोण का व्यक्ति खिन्न होने की अपेक्षा कठोर कर्तव्य पालन को एक चुनौती के रूप में स्वीकार करेगा।

महानता के इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये हमें छोटी बातों से अपना प्रयत्न आरम्भ करना पड़ता है, उनके मिलने से सर्वांगपूर्ण महानता विकसित होती है। छोटे-छोटे पिण्डों से मिलकर यह विशाल ब्रह्माण्ड बना है और हर पिण्ड सूक्ष्म अण्डों का, अणुओं का समूह मात्र है। इसी प्रकार छोटी-छोटी अच्छी आदतें, अच्छी भावना, अच्छी मान्यता, अच्छी श्रद्धा, अच्छी प्रवृत्ति, अच्छी आकांक्षा मिलकर एक सर्वतोमुखी श्रेष्ठता विकसित होती है। कोई महापुरुष सन्त या ऋषि और कुछ नहीं, केवल छोटी-छोटी अच्छाइयों का एक समूह है। यह छोटी अच्छाइयाँ यदि समाप्त हो जायँ तो उसका सारा वैभव, बुद्धिबल और पुरुषार्थ, मिलकर भी महानता की रक्षा न कर सकेगा, वह फिर तुच्छ का तुच्छ बन जावेगा। छोटी अच्छाइयाँ देखने में तुच्छ लगती हैं। पर वस्तुतः इन्हीं ईंटों को चुनकर महानता का विशाल भवन खड़ा किया जाता है।

छोटी-छोटी अच्छी या बुरी आदतें विकसित होने पर मनुष्य के जीवन को बनाने और बिगाड़ने में भारी योगदान करती हैं चोरी, जुआ, नशा व्यभिचार, आलस आदि की बुरी आदतें आरम्भ में बहुत छोटे रूप में ही उत्पन्न होती हैं पर जब मनुष्य के मस्तिष्क पर पूरी तरह छा जाती और उसे अपना गुलाम बना लेती हैं तो फिर वह बेचारा ऐसा वेवश हो जाता है कि इन घृणित बातों से ऊपर उठ ही नहीं पाता। अपने सर्वस्व को इन्हीं दुष्प्रवृत्तियों की वेदी पर बलिदान कर देता है।

जिस प्रकार छोटी बुराइयाँ आरम्भ होकर भयंकर रूप धारण करती हैं, उसी प्रकार अच्छाइयों का छोटा आरम्भ यदि क्रमबद्ध रूप से अग्रसर होता रहे तो उसका अन्तिम परिणाम ऐसा महान् हो सकता है जिस पर गर्व और सन्तोष व्यक्त किया जा सके। वासना पर नियन्त्रण होते चलने से गृहस्थ की श्रेष्ठता बढ़ाने के लिये बहुत ही सहायक हो सकते हैं। वासना और तृष्णा की डाकिनों में से एक को, वासना को यदि कुछ काबू में रखा जा सके तो निःसंदेह इस संसार की आधी विपत्ति हल हो सकती है। मानवीय शरीर और मन का सत्यानाश करने वाली डाकिन वासना है, जिससे समाज में अगणित प्रकार के पाप, द्वेष, अनाचार, अत्याचार, उत्पन्न होते हैं। इन दोनों को सीमित किये बिना आत्मिक सद्गुणों का असीम विस्तार हो सकना सम्भव नहीं। इसलिये अध्यात्म विद्या के आचार्य विविध साधनाएँ बताकर मानव अन्तःकरणों को इन कषाय-कल्मषों से विमुक्त करने का प्रयत्न किया करते हैं। यह दो प्रयत्न भी इस दिशा में उठाये गये आरम्भिक कदम हैं, जिनका सत्परिणाम, सादगी, सन्तोष, सौम्यता और सज्जनता के रूप में कुछ ही समय में प्रस्फुटित हुआ देखा जा सकता है।

गृहस्थ जीवन में जड़ जमाने, बुराइयों से लड़ने के लिए कष्टसाध्य प्रयास साधक को करना पड़ता है, उसे तप कहते हैं। इसे आहार की तपश्चर्या और विहार की तपश्चर्या दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। आहार की तपश्चर्या को अस्वादव्रत और पदार्थ सीमाबंध के रूप में प्रस्तुत कर चुके हैं। विहार की तपश्चर्या में (१) ब्रह्मचर्य और (२) निरालस्य इन दो बातों को रखा गया है। काम सेवन की समस्या व्यक्तिगत मानी जाती है पर वस्तुतः वह पूर्णतया सामाजिक है। व्यक्तियों के स्वास्थ्य से उसका सीधा सम्बन्ध है और सन्तान की दुर्बलता से हमारी भावी पीढ़ियों का सत्यानाश होना भी एक ऐसी महत्त्वपूर्ण बात है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। व्यक्तिगत जीवन में शरीर का खोखलापन, दुर्बलताजन्य कायाकष्ट, मूत्ररोग, जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियाँ, अल्पायु, जवानी में बुढ़ापा, औषधियों का खर्च, उपार्जन में अशक्तता, चित्त में खिन्नता, पीड़ा, घर वालों की परेशानी, स्वजनों की घृणा और झुंझलाहट, दीनता, चिड़चिड़ापन, विचार शक्ति का अभाव, चंचलता आदि अगणित व्यथाएँ ऐसी हैं, जो अव्यवस्थित, अनियंत्रित काम सेवन करने वालों के पीछे लग जाती हैं और जीवन के रस से ही उन्हें हाथ धोकर निराशा और उदासीनता भरा निकृष्ट जीवयापन करने के लिये विवश होना पड़ता है।

ब्रह्मचर्य की महत्ता का आरोग्यशास्त्र और अध्यात्मशास्त्र एक स्वर से गुणगान करते हैं। दोनों ही यह मानते हैं कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिये ब्रह्मचर्य को अमृत ही मानना चाहिए। **'मरणं विन्दुपातेन, जीवनं विन्दु धारणात्।''** की उक्ति में ऋषि ने यही

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कहा है कि ब्रह्मचर्य को ही जीवन और उसके नाश को ही मरण मानना चाहिये। जिन्हें जिन्दगी से प्यार नहीं, जो मौत के मुँह में जाने के लिये आतुर हैं, उन्हें अनियन्त्रित काम सेवन का रास्ता अपना लेना चाहिये। सर्वनाश कुछ ही समय में उनके सामने आ खड़ा होगा। महापुरुषों में, महानता में सदा से ब्रह्मचर्य का बड़ा योग रहा है।

हनुमान, भीष्म, शंकराचार्य, दयानन्द आदि में ब्रह्मचर्य का तेज किस प्रकार प्रस्फुटित हुआ था यह सर्व विदित है। पहलवानों को इस सम्बन्ध में काफी सावधानी बरतनी पड़ती है। बुद्धिजीवी लोगों में से जो उत्कृष्ट श्रेणी के हैं वे ऊर्ध्वरिता रहकर ही देर तक अपनी बौद्धिक प्रतिभा को स्थिर रख पाते हैं। काम वासना में नष्ट होने से जो शक्ति बचा ली जाती है वह ओज, तेज, सौन्दर्य-उल्लास, शौर्य, साहस, स्फूर्ति आदि महत्वपूर्ण तत्वों में परिणत होकर शरीर में छलकने लगती है, तो मानव शरीर की शोभा और स्थिरता पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ जाती है। रोगों को मुकाबिला करने वाली जीवनी शक्ति उन्हीं शरीरों में रह पाती है, जो अपना सार निचोड़ते रहने में सावधानी बरतते हैं। भजन, ध्यान श्रद्धा, भक्ति और ईश्वर प्राप्ति के योग्य मनोभूमि बनाने वालों को वासना की ओर से अपना मुँह मोड़ना ही पड़ता है, जिसे इन्द्रिय लोलुपता घेरे रहती है, उसके लिए उच्च श्रेणी के व्यक्तियों में अपनी गणना करा सकना कठिन है।

अविवाहित-अखण्ड ब्रह्मचारी रहना सब के बस की बात नहीं है। कोई विशिष्ट व्यक्ति उस आदर्श का पालन करें तो उनकी प्रशंसा करनी चाहिए पर सर्व साधारण के लिए विवाहित जीवन सरल, सुविधाजनक और सुव्यवस्थित प्रगति की दृष्टि से उचित ही है। चार वर्णाश्रमों की पद्धति वैज्ञानिक भी है और व्यावहारिक भी। नर और नारी में जो अपूर्णता है वह एक-दूसरे के साथ एकात्म होकर पूर्ण करें यह उचित है और आवश्यक भी। किन्तु विवाह होने का मतलब यह नहीं है कि दोनों सर्वनाश के खड्डे में औंधे मुँह गिरने के लिए अन्धी दौड़ लगाने लगें। महात्मा गाँधी ने 'अनीति की राह पर' नामक अपनी पुस्तक में विवाहित जीवन में रहते हुए अधिकाधिक ब्रह्मचर्य पालन करने पर बहुत जोर दिया है। वे स्वयं ३६ वर्ष की आयु से अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने लगे थे। पति-पत्नी की आत्मीयता, प्रेम भावना और प्रसन्नता बढ़ाने में अन्धी वासना सहायक नहीं वरन् हानिकारक ही सिद्ध होती है। सुसन्तति की प्राप्ति और सौन्दर्य की रक्षा की दृष्टि से तो यह और भी अधिक आवश्यक है कि दाम्पत्य जीवन में ब्रह्मचर्य को समुचित स्थान मिले। यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि महानता के ऊँचे मार्ग पर चढ़ने के लिए जिस पेट्रोल की आवश्यकता है वह इन्द्रिय संयम के द्वारा बचाकर ही एकत्रित किया जा सकता है। जिनका जीवन रस इन घृणित छिद्रों में होकर अमर्यादित रूप से टपकता रहेगा उनके पास वह पूँजी बच न सकेगी जिसके मूल्य पर महानता को उपलब्ध कर सकना सम्भव होता है।

अपने दाम्पत्य जीवन से बाहर की वासना के बारे में कल्पना करना, सोचना, उत्पन्न होना, उसके लिये कदम उठाना तो नियत काम सेवन की अपेक्षा अनेकों गुना अधिक हानिकारक है। शास्त्रों में मानसिक और शारीरिक व्यभिचार को पाप और पतन का कारण एवं नरक में ले जाने वाला अपराध बताया गया है। नैतिकता और कानून की दृष्टि से भी वह हेय है। आरोग्य, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं अध्यात्म की दृष्टि से विचार किया जाये तब तो व्यभिचार एक बहुत ही भयानक कुकर्म सिद्ध होता है। अनेकों प्रकार की अशान्तियाँ उत्पन्न करना इस हेय कर्म का प्रत्यक्ष फल सर्वत्र देखा जा सकता है।

गायत्री उपासना की उच्चस्तरीय साधना का क्रम ब्रह्मचर्य की उपेक्षा करके आगे नहीं बढ़ सकता। पाठक जानते हैं कि गायत्री के छोटे-बड़े अनुष्ठानों के समय ब्रह्मचर्य का अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता है। अन्नमय कोश की साधना सारे जीवन चलने वाली है इसलिए वैसा निषेधात्मक प्रतिबन्ध तो इसमें नहीं है पर इतना प्रत्येक साधक को मानकर चलना पड़ेगा कि वह अपनी काम सेवन सम्बन्धी गतिविधियों पर आगे क्रमशः अधिक ध्यान देगा और उसे अधिक सीमाबद्ध करेगा। सृष्टि के सभी जीव-जन्तु सन्तानोत्पादन की प्रचण्ड स्फुरणा होने पर ही नियत समय पर एक बार काम सेवन करते हैं और जब तक दूसरे बच्चे की आवश्यकता न हो नर-मादा का संयोग नहीं होता। मादा की प्रेरणा पर ही नर उत्तेजित होता है अपनी ओर से वह कभी मादा से छेड़छाड़ नहीं करता। मनुष्य को पशु-पक्षियों से अधिक विवेकवान और संयमी होना चाहिए न कि अधिक मूर्ख और अधिक असंयमी।

इस सम्बन्ध में आज की जो स्थिति है, उसे सुनने समझने से हर विचारशील व्यक्ति की आँखें बरसने लगती हैं। वासना का मन्द बिष खाकर लोग किस प्रकार आत्मघात करते चले जा रहे हैं, यह करुण कथा सब प्रकार चिन्ताजनक है ? इस दिशा में नियन्त्रण न रखा जा सका तो उसका परिणाम व्यक्ति और समाज के लिये सब प्रकार घातक ही होने वाला है। जन-साधारण को इस दुष्प्रवृत्ति से बचना ही चाहिए पर गायत्री उपासकों के लिये तो यह आत्मिक प्रगति का प्रधान आधार ही माना है। गृहस्थ योग के साधकों को वासना पर नियन्त्रण कायम करने के लिये बड़े और साहसपूर्ण कदम उठाने चाहिये। सप्ताह में एक बार से गिरी हुई मर्यादा तो किसी की भी न रहे। इस स्तर से भी नीचे उतर पड़ना आत्मिक प्रगति के लिये ही नहीं शारीरिक सुरक्षा और मानसिक स्थिरता के लिये भी घातक है। यह न्यूनतम

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

अवधि इस गये गुजरे जमाने और लोगों के दुर्बल मानसिक स्तर को देखते हुये ही मानी जा सकती है। वस्तुतः इससे अधिक बड़ी मर्यादायें ही बनाना किसी विचारशील या आध्यात्मवादी सद्ग्रहस्थों के लिए सन्तोष की बात हो सकती है। जिनका विवाह नहीं हुआ है, जोड़ा बिछुड़ चुका है या दूर देश में रहने के कारण संयोग का अवसर नहीं है, उन्हें तो अपने ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रखते हुए शक्ति संचय के लिए ही तत्पर रहना चाहिये।

हर व्यक्ति यह पसन्द करता है कि उसे सुसंतति प्राप्त हो। पूर्वकाल में तो इसके लिये कितनों ने ही कठिन तपस्या की थी और देवताओं से सन्तान का वरदान पाया था। सचमुच जिनके घर में स्वस्थ, सुन्दर, दीर्घजीवी, बुद्धिमान, होनहार, सदाचारी बालक जन्मते हैं वे सब प्रकार धन्य हैं। ऐसी बाल-विभूतियों की उपलब्धि में जहाँ माता-पिता की शिक्षा-दीक्षा, सुसंस्कार, स्वभाव, बुद्धिमता, आर्थिक स्थिति आदि कारण हैं, यहाँ सबसे बड़ा कारण उनका ब्रह्मचर्य है। शरीर की अन्तिम सार धातु परिपक्व और परिपुष्ट होने पर ही इस योग्य होती है कि उससे उत्कृष्ट कोटि का प्रजनन हो सके। बालकों में ओज, तेज, साहस, पुरुषार्थ, शौर्य, धैर्य, आदर्शवाद उच्चगुणों का सीधा सम्बन्ध माता-पिता के ब्रह्मचर्य से है। कामवासना के कीड़े अपना शरीर और मनोबल तो खोते ही हैं। सन्तान भी दुर्बल, रोगी, अल्पायु, मन्दबुद्धि, आलसी, कायर और ऐसे ही अन्य दुर्गुणों से ग्रसित उत्पन्न होती है। अपराधी मनोवृत्ति के बालक आमतौर से असंयमी और दुराचारी माता-पिता की सन्तान होते हैं।

सन्तान के लिये लोग इच्छुक तो बहुत रहते हैं, उनके लिये खर्च भी खूब करते हैं और उत्तराधिकार में छोड़ भी बहुत जाते हैं पर वे श्रेष्ठ सद्गुणों से सम्पन्न होकर जन्में इनके लिए तप-त्याग कुछ भी नहीं करते। ब्रह्मचर्य का अधिकाधिक पालन करना अपनी भावी सन्तान की सबसे बड़ी सेवा है। पोशाक, जेवर, दहेज, शिक्षा, भोजना, जायदाद देकर हम बच्चों का उतना भला नहीं कर सकते जितना उन्हें सुदृढ़ जीवनतत्व और सद्गुणों का आत्मिक उपहार देकर सुखी और समृद्ध बना सकते हैं। बच्चों के लिये माता-पिता बहुत कष्ट सहते हैं और त्याग भी करते हैं। क्या ही अच्छा होता यदि उतने ब्रह्मचर्य की साधना करके उनके लिये सर्वश्रेष्ठ तप त्याग किया होता। हर तपस्या का एक श्रेष्ठ वरदान मिलता है, ब्रह्मचर्य की तपस्या से शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति के अनेकों लाभ, वरदानों के साथ एक ईश्वरीय उपहार यह भी है कि ऐसी होनहार संतान मिले जो पिता-माता के गौरव एवं यश को बढ़ाकर सच्चे अर्थों में वंश चलाने वाली सिद्ध हो।

दूसरा व्रत निरालस्य का है। आलस में पड़े-पड़े हम अपना बहुमूल्य बहुत-सा समय आये दिन नष्ट करते रहते हैं। मन्द गति से, हल्का-हल्का बेमन काम करने से समय पूरा नष्ट हो जाता है पर काम एक चौथाई भी दिखाई नहीं देता, जो होता है वह भी फूहड़पन से भरा हुआ, अधूरा आदि अनुपयुक्त ऐसे कामों को समय और श्रम की बर्बादी ही कहा जा सकता है। लोग समझते हैं। हम दिन भर काम करते हैं और फुरसत नहीं पाते। आलस और ढीलेपन की प्रवृत्ति बहुत ही बुरी है। ईश्वर से समय रूप सम्पत्ति प्रचुर मात्रा में देकर ही मनुष्य को उसके मूल्य पर चाहे जो विभूति उपलब्ध कर सकने की सुविधा दी है पर जो लोग समय का मूल्य ही नहीं समझते और जिन्दगी के दिन ज्यों-त्यों काटते रहते हैं उन्हें निम्न कोटि का असफल और अभावग्रस्त जीवन व्यतीत करने के लिये ही विवश होना पड़ता है।

समय रूपी दैवी सम्पत्ति को आलस्य से बर्बाद करना ऐसा ही है जैसे परसी हुई थाली में लात मारकर छितरा देना। आलसी मनुष्य अपने आपका सबसे बड़ा शत्रु है। शरीर के भीतर प्रत्येक अंग-प्रत्यंग अपनी नियत क्रियाशीलता में अहिर्निश कार्यरत रहता है फिर बाहर की देह को ही क्यों आलसी होना चाहिये ? क्यों काम से घृणा करनी चाहिए ? क्यों परिश्रम से जी चुराना चाहिए। आलस और दरिद्रता एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। लक्ष्मी सदा उत्साही, उद्योगी और पुरुषार्थी लोगों का आश्रय ढूँढ़ती है। आलसी तो अनायास प्राप्त हुई पैतृक सम्पत्ति तक को सुरक्षित नहीं रख सकते। अध्यात्म का अर्थ है प्रबल पुरुषार्थ।

सबेरे जल्दी उठने की आदत निरालस्यता का पहला चिन्ह है। जिन्हें रात की कोई खास ड्यूटी करनी पड़ती है उनकी बात दूसरी है। इन अपवादों को छोड़कर हममें से प्रत्येक को सूर्योदय से कम से कम एक घण्टा पूर्व तो उठ ही बैठना चाहिए। नित्य-कर्म से निवृत्त होकर अपने उस कार्य में लग जाना चाहिए, जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है प्रातःकाल की परिस्थिति और मनःस्थिति ऐसी होती है कि उसमें जो भी काम किया जाय वह सफल होता चला जायगा।

जल्दी उठने के लिये जल्दी सोना आवश्यक है। अपना कार्य-क्रम ऐसा बनाना चाहिए कि सूर्य अस्त होने से तीन-चार घण्टे के भीतर सोने की व्यवस्था बन जाय। यह कहावत ही नहीं तथ्य भी है कि जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ, बुद्धिमान और सम्पत्तिवान बनाता है। जिनका ब्राह्ममूहूर्त सोते रहने और सुस्ती में पड़े ऐंड़ते रहने में बीतता है उन अभागों का आधा जीवन व्यर्थ ही बर्बाद हो जाता है। सबेरे के दो-तीन घण्टे इतने मूल्यवान होते हैं कि उनकी तुलना में पूरे दिन भर के सारे घण्टे मिलकर भी कम सिद्ध होते हैं। लेखकों, कवियों, वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों, बुद्धजीवियों, साधकों और सत्पुरुषों को प्रातः-काल का समय प्राणप्रिय होता है। वे उसे किसी भी मूल्य पर खोने और गँवाने

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

को तैयार नहीं होते। समय का ठीक तरह विभाजन करके उस कार्यक्रम पर चलते हुए मनुष्य आसानी से दूना काम कर सकता है। हममें से प्रत्येक को अपनी दिनचर्या बनाते रहना चाहिये और कठोरतापूर्वक उसे पालन करते हुए अपने जीवन को क्रमबद्ध बनाना चहिये।

अध्यात्म की एक पुण्य परम्परा

प्राचीनकाल के सभी ऋषि-महर्षि अपने समय का एक-एक क्षण क्रिया संलग्न रखते थे और अपने शिष्यों को, छात्रों को और जनसाधारण को ऐसी ही प्रेरणा देते थे कि वे समय रूपी ईश्वरीय अमूल्य उपहार का एक क्षण भी आलस और प्रमाद में नष्ट न करें। क्रम-बद्ध, व्यवस्थित और प्रोग्राम बनाकर समय का विभाजन करते हुए नियत समय पर नियत कार्य पूरे मनोयोग और दिलचस्पी से करना ही श्रम और समय का सदुपयोग कहा जाता है। हममें से प्रत्येक को अपनी गतिविधियाँ इसी प्रकार नियमित करनी चाहिए। एक क्षण भी बिना आलस में बिताये रोटी कमाना, शरीर व्यवस्था, मनोरंजन, परिवार निर्माण, लोकसेवा, ईश्वर उपासना आदि आवश्यक कार्यों में हमारा समय बँटा हुआ हो और जब भी जो भी काम करें पूरे उत्साह, पूरे मनोयोग, पूरे परिश्रम और पूरी दिलचस्पी के साथ एक खेल समझ कर पूरा करें। इस प्रक्रिया से कार्य की उत्कृष्टता बढ़ती है और थकान पास भी नहीं फटकने पाती।

श्रम और समय को जो लोग प्यार करते हैं वस्तुत: वे ही उसका लाभ उठा पाते हैं। गृहस्थ जीवन के पथिकों को, असंयम से लड़ना चाहिए और आलस से भी। इस मोर्चे को फतह करके ही आगे की प्रगति के द्वार खुलते हैं।

गृहस्थ की समुन्नति के लिए समय का सदुपयोग

धन गृहस्थ जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है। परिजनों की योग्यता बढ़ाने के लिये, उन्हें खुशहाल रखने, अच्छा खाने और अच्छा पहनने का एकमात्र साधन धन है। धन के अभाव में गृहस्थी की अनेकों आवश्यकतायें अधूरी रह जाती हैं। अविकसित परिवार में किसी तरह की चेतना नहीं होती, किसी तरह का आनन्द नहीं होता। पारिवारिक प्रसन्नता के लिए भी धन की अत्यन्त आवश्यकता है, इसकी कमाई की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये।

निर्धारित व्यवसाय से कई बार मध्यम श्रेणी के लोगों की आवश्यकतायें पूरी नही हो पातीं। किसान, मिलों में काम करने वाले मजदूर, कारीगर, कार्यालय में काम करने वाले कर्मचारियों की आय इतनी नहीं होती कि जीवनयापन की आवश्यक वस्तुओं से कुछ आगे बढ़कर अपनी योग्यता का विकास करने की सुविधायें प्राप्त कर सकें। कई बार तो यहाँ तक होता है कि भोजन, निवास की समस्या ही कठिनाई से सुलझ पाती है। ऐसी अवस्था में न तो बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था बन पाती है, न लोगों के रहन-सहन का स्तर ही ऊँचा उठ पाता है।

इस देश में कुटीर-उद्योग धन्धों का भी विकास नहीं हो पाया। फलस्वरूप कोई सहायक धन्धा न होने के कारण लोगों का दैनिक व्यवसाय के अतिरिक्त अधिकांश समय बेकार चला जाता है। इस प्रकार समय में लोगों में फालतू झगड़े-फिसाद, मारपीट, दंगे आदि की शिकायतें बढ़ जाती हैं जिससे मुकदमेबाजी बढ़ती है। लोग ऋणी हो जाते हैं। वैसे ही निर्धनता थी, कार्य क्षमता भी घट गई, कर्जदार भी हो गये। सारी कमाई ब्याज के रूप में सेठ, साहूकारों के हाथों लुट जाती है। औसत दर्जे का परिवार इन्हीं कठिनाइयों से घिरा रहता है।

अनिवार्य दिनचर्या के अतिरिक्त पुरुषों के पास कम से कम दो घण्टे और स्त्रियों के पास आठ घण्टे फुरसत के बच जाते हैं। पुरुष इस समय को मटरगश्ती, ताश, चौपड़ आदि में गँवा देते हैं, स्त्रियाँ बेकार की गपशप, सोने और बच्चों की देख-रेख में इस समय को बर्बाद करती रहती हैं। आर्थिक कठिनाई के इस युग में समय की बरबादी नितान्त अविवेकपूर्ण है। इस समय का सदुपयोग किया ही जाना चाहिए।

इन आठ और नौ-दस घण्टों से कोई पूरक धन्धा चलाने में प्रत्येक परिवार को सुविधा मिल सकती है। इसके लिये अपनी दिनचर्या को कार्यक्रमबद्ध बनाना चाहिये। अपने जीवन की एक निश्चित रूपरेखा बनाकर चलने में इस समय का सुन्दर उपभोग हो सकता है और स्वजनों की योग्यता बढ़ाने का अवसर प्राप्त किया जा सकता है। यह चुनाव अपनी परिस्थितियों के अनुरूप सभी को कर लेना चाहिये।

इस समय का पहला सदुपयोग प्रौढ़ प्रशिक्षण हो सकता है। घर में जितने लोग निरक्षर हैं उनको साक्षर बनाने के लिये कुछ समय नियत कर दिया जाय। घर के जो व्यक्ति पढ़े-लिखे हों उन्हें चाहिए कि नियमित रूप से प्रतिदिन उतने समय घर के सभी अशिक्षित स्त्री-पुरुषों की पाठशाला चलाया करें। धीरे-धीरे इनमें मनोरंजक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं किन्तु पहला काम साक्षरता का भी होना चाहिये। जो लोग बुड्ढे हों और शिक्षा को अपने लिये अनावश्यक बताते हों उन्हें भी समझना चाहिये कि शिक्षा का प्रभाव संस्कार रूप में दूसरे जन्मों में भी साथ रहता है इसलिये यह कार्यक्रम तो सभी को अपनाना ही चाहिए। घर-घर ऐसी पाठशालायें चलने लगें तो अविद्या का अन्धकार दूर होते देर न लगे।

जो लोग पढ़ने से आनाकानी करें उनके लिए भी इतना तो होना ही चाहिये कि किसी विचारपूर्ण पुस्तक का कुछ अंश प्रतिदिन पढ़कर सुनाया जाया करे। मनोरंजक,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

शिक्षाप्रद कहानियाँ, रामायण आदि का स्वरमय पाठ भी होता रहे। इन कृत्यों को सामूहिक धर्मानुष्ठान का रूप भी दे सकते हैं। शिक्षा के साथ सामूहिक प्रार्थना, पूजा और उपासना के कार्यक्रम भी चलते रहें तो स्नेह-बन्धनों को मजबूत बनाने में तथा आत्मिक परिष्कार में सुविधा ही मिलेगी।

पठन-पाठन की सामग्री का चयन धार्मिकता पर आधारित हो तो अधिक अच्छा है पर ध्यान बना रहे कि सिनमा जैसे गन्दे साहित्य का समावेश कदापि न होने पावे। जो शिक्षा उच्छृखंल प्रवृत्ति जगाती हो उसे छुपाकर ही रखना श्रेयस्कर हो सकता है। समाचार-पत्र माँगकर भी लोगों का ज्ञान बढ़ाया जा सकता है।

जो भी काम करें उसे मात्र खिलबाड़ समझकर न करें। पूरी दिलचस्पी और लगन के साथ। यदि एक व्यक्ति को साक्षर बनाया जा सके तो श्रम को सार्थक ही कहेंगे। किन्तु "काम बहुत किया हासिल कुछ न हुआ" वाली कहावत हुई तो यह भी समय का अपव्यय ही रहा। सम्पन्न परिवार के व्यक्ति बाहर से भी अध्यापक की व्यवस्था कर लें तो इससे यह काम जिम्मेदारी का बन जायगा और फिर आनाकानी करने या उपेक्षा दिखाने का कोई कारण ही शेष न रहेगा। जैसे भी बने इस समय का उपयोग यदि साक्षरता बढ़ाने में कर सकें तो इसे बुद्धिमत्ता का कार्य माना जायगा।

दूसरी तरह से समय का सदुपयोग सहायक धन्धे चलाकर किया जा सकता है। ग्रामीण-क्षेत्रों में रहने वाले पशु-पालन तथा सनकी रस्सी बनाने का धन्धा चला सकते हैं, इससे खेती के अतिरिक्त थोड़ी और भी आय हो जाती है। स्त्रियाँ चरखा चलाकर सूत निकालने का काम कर सकती हैं। इसमें सरकारी सुविधायें भी हैं। अम्बर चर्खे के द्वारा चार घण्टा, पाँच घण्टा प्रतिदिन काम करके स्त्रियाँ साठ रुपया मासिक तक की आमदनी कर लेती हैं। जो रुपया न लेना चाहें वे घर भर के लिये शुद्ध कपड़ा ही तैयार कर सकती हैं और दुकानों में जाने वाले पैसे को बचा सकती हैं।

पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ दस्तकारी सीखें। हाथ की मशीन कोई भी गृहिणी चलाकर थोड़ी-सी पूरक आय भी कमा सकती है। घर के कपड़ों की सिलाई इसमें बचती है और फटे कपड़ों की मरम्मत करके उन्हें कुछ दिन और उपयोग में लाने योग्य बना सकते हैं।

पढ़े-लिखे लोग फुरसत के समय लेखन सम्पादन का काम करके अपनी योग्यता भी बढ़ा सकते हैं और सहायक पूँजी भी कमा सकते हैं। जिनमें इतनी योग्यता हो कि पुस्तकें लिख सकें वे ऐसा भी कर सकते हैं। अपनी सामर्थ्य और योग्यतानुसार कोई न कोई काम जरूर चला सकते हैं।

एक किसान के बेटे के पास कुल पाँच बीघे जमीन थी, इससे उसके परिवार का किसी तरह गुजारा न चलता था। बालक ने एक युक्ति निकाली। एक बीघे खेत में बाग लगाना शुरू कर दिया। किनारे-किनारे पपीते और केले के पौधे रोप दिये और बीच में नीबू, नारंगी, मुसम्मी, अमरूद आदि के पेड़ लगा दिये। इससे एक बीघा खेती तो कम हो गई पर पपीते आदि के कुछ पौधे दूसरे ही वर्ष से फल देने लगे और उनकी काफी आमदनी होने लगी। बाग लगाने का काम वह हमेशा किसानी से बचे हुए समय में करता था। जब भी थोड़ा समय मिलता उस बगीचे को सींचने, खाद देने, काँटे लगाने का काम करने लगता। इस समय उस बगीचे से किसान को इतनी आमदनी है जितनी उन चार बीघे-खेतों से भी नही हो पाती। फुरसत के समय का यह भी सदुपयोग हो सकता है।

जिन्हें कुछ भी काम न मिले वे संगीत का अभ्यास, स्वास्थ्य सुधार के लिये मालिश, प्राणायाम, आसन तथा घूमने, टहलने का ही कार्यक्रम बना सकते हैं। कथा-प्रवचन द्वारा भी फालतू समय में ज्ञानदान की परम्परा चला सकते हैं।

अपनी इच्छा, योग्यता और परिस्थितियों के अनुरूप किसी भी पूरक व्यवसाय का चुनाव हर दृष्टि से लाभदायक ही रहेगा। सम्पन्न व्यक्तियों के लिये समय श्रेष्ठ संस्कार पैदा करने, सांस्कृतिक मनोरंजन प्राप्त करने के भी काम आ सकता है। इस तरह निर्धन परिवार अपनी आजीविका बढ़ाकर, धनी परिवार अपनी योग्यता बढ़ाकर अपने गृहस्थी को सुव्यवस्थित रखने में सहयोग दे सकते हैं। इन रचनात्मक प्रवृत्तियों को हमें अपने जीवन में कोई न कोई स्थान देना ही होगा।

सद्गृहस्थ और असद्गृहस्थ में अन्तर

अधिकांश लोग गृहस्थ ही होते हैं। साधु, संन्यासी तथा त्यागी-विरागी तो विरले ही हो पाते हैं। गृहस्थ होना जहाँ अपने लिये एक सुख-सुविधा की बात है, वहाँ सृष्टि का यह चक्र भी गृहस्थ जीवन पर चलता है। समाज की रचना और सभ्यताओं का उदय भी गृहस्थ जीवन पर निर्भर है। भारतीय संस्कृति में जिन चार आश्रमों की व्यवस्था की गई है, उनमें गृहस्थ जीवन को न केवल सर्वोपरि बतलाया है बल्कि अन्य तीन आश्रमों का आधार भी घोषित किया गया है। सदाचारी गृहस्थ को तपस्वी के समान आदरणीय माना जाता रहा है।

इसका कारण भी कोई बड़ा रहस्य नहीं है। सीधी सी बात है कि गृही व्यक्ति परिवार बसाता है। विवाह करता और सन्तानों की सृष्टि कर प्रजा की वृद्धि करता, और साथ ही उनके विकास तथा भरण-पोषण के लिये कठोर से कठोर श्रम रूपी तपस्या किया करता है। सच्चा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृही, कर्त्तव्य निष्ठा से एक नारी को शिरोधार्य करता, उसे फलवती बनाता और आजीवन उसका तथा उसकी प्रजा का साथ देता, उनको जीवन यात्रा में सहयोग करता है। यदि कोई बुद्धिमान गृहस्थ इस दायित्व को निस्पृह भाव से ग्रहण कर ईश्वरीय आज्ञा की तरह पालन करता है तो निश्चय ही वह गृहवासी होते हुए भी संन्यासी और भोगी होते हुए भी योगी है। गृही और गृहस्थाश्रम की बड़ी महिमा है।

जीवन-यापन की विशेष पद्धति, की जिसे सभ्यता, संस्कृति भी कह सकते हैं, आवश्यकता भी गृहस्थ को अधिक होती है। वह ही इसको स्थिर भी करता है और रक्षा भी। गृहस्थों की दशा से ही किसी देश अथवा समाज की दशा का अनुमान लगता है। यह अधिकतर गृहस्थ ही होते हैं, जो व्यापार, व्यवसाय एवं उद्योग को प्रश्रय देकर समाज का आर्थिक ढाँचा तैयार करते हैं। गृहस्थ ही अपने तथा अपने परिवार के रहने के बहाने आवासीय व्यवस्था का विकास अग्रसर करते हैं। संसार का शिल्प, साहित्य, कला तथा कौशल आदि सारा वैभव गृहस्थ के कारण और अधिकतर उन्हीं के लिये होता है। समाज का विकास और संसार की शोभा गृहस्थ पर ही अवलम्बित है। हम में से अधिकतर गृहस्थ हैं और उसकी गरिमा, गौरव के अधिकारी भी हैं।

"गृहस्थेव हि धर्माणांसर्वेषांमूलमुच्यते" तथा **"धन्यो गृहस्थाश्रम:"**—कहकर ऋषियों ने गृहस्थ जीवन की गरिमा स्थापित की है। किन्तु उन्होंने यह व्यवस्था दी उन्हें गृहस्थों के लिये है जो सदाचारपूर्वक इसे धर्म, कर्त्तव्य समझकर पालन किया करते हैं। असद्गृहस्थों के लिये इस प्रकार व्यवस्था दी भी कैसे जा सकती है ? असद्गृही तो समाज का शत्रु माना गया है। समाज में जो भी अशान्ति, असन्तोष तथा संघर्ष दिखाई देता है उसका मूल कारण असद्गृहस्थ ही हुआ करते हैं।

विवाह सद्गृहस्थ भी करता है और असद्गृहस्थ भी। अन्तर यह है कि जहाँ सद्गृहस्थ के दाम्पत्य सूत्र का उद्देश्य सृष्टि-संचालन तथा प्रजा-पालन होता है, वहाँ असद्गृहस्थ का उद्देश्य इंद्रिय भोग रहता है। जहाँ सद्गृहस्थ अपने परिवार की सहायता से परमार्थरत होकर अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के लिये प्रयत्नशील होता है वहाँ असद्गृहस्थ परिवार और बाल-बच्चों के बहाने स्वार्थरत होकर लोक-परलोक का पतन किया करता है। सद्गृहस्थ की सन्तानें स्वभावत: शिष्ट एवं शालीन होकर समाज में सुख-शान्ति की वृद्धि का कारण ही सिद्ध होती हैं। इसका कारण यह है। यह यों ही निसंग-भाव से नहीं हो जाता। सद्गृहस्थ सन्तानोत्पति का प्रयोजन जानता है। वह नैतिक एवं आध्यात्मिक उद्देश्य से प्रेरित होकर समाज को एक सुन्दर तथा हितकारी सदस्य सन्तान रूप में उपहार देने के विचार से गृहस्थ जीवन में प्रवृत्त होता है। विवाह उसके लिये काम-क्रीड़ा अथवा इन्द्रिय भोग का साधन न होकर एक धार्मिक कर्त्तव्य होता है। वह उसकी पवित्रता तथा गरिमा को काम कौतुक की प्रणालियों में यों ही व्यर्थ बहा देता।

गृहस्थ जीवन का पुण्य तथा उसकी महिमा तभी है जब सद्गृहस्थ बन कर अपने कर्त्तव्य का सर्वतोमुखी पालन किया जाये अन्यथा गृहस्थ जीवन से अधिक कष्टदायक, लोक-परलोक को नष्ट करने वाली अन्य कोई स्थिति नहीं होती। सद्गृहस्थ ही वास्तव में गृहस्थ और समाज का हितैषी होता है, बाकी के सारे पारिवारिक अपने नरक के शिल्पी हुआ करते हैं, जो परिजनों की सहायता से उसका निर्माण करने में लगे रहते हैं। इसलिये हर गृही का कर्त्तव्य है कि वह सद्गृहस्थ बने, उसके सारे सात्विक सुख भोगे और परिणामस्वरूप परलोक एवं परमगति का अधिकारी बने। वह अपना जीवन इस प्रकार पवित्रतापूर्वक यापन करे जिससे कि वह अपने गृहस्थ और गृहस्थ उसके लिये वरदान रूप सिद्ध होकर सार्थक बने।

सद्गृहस्थ का पहला कर्त्तव्य तो यह है कि वह अपने परिवार में कलह का प्रवेश न होने दे। इस बुराई का प्रवेश तब ही होता है, जब घर के सारे सदस्यों के बीच पारिवारिकता तथा परस्परता का अभाव रहता है। हर व्यक्ति निरंकुश रूप से, मनमाने ढंग से रहना और मनमाने ढंग से बर्ताव करना चाहता है। यह अप्रिय स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब परिजनों के बीच स्वार्थ भाव की प्रधानता हो जाती है। स्वार्थपरता के दो-तीन मुख्य कारण होते हैं। एक तो स्पष्ट अभाव, दूसरा अधिक सम्पन्नता और तीसरा विषम व्यवहार। जो गृहस्थ आलसी, अकर्मण्य तथा कामचोर होते हैं, वे निश्चित ही उतना उपार्जन नहीं कर पाते जितने की आवश्यकता होती है। फल यह होता है कि जो कुछ थोड़ा-बहुत घर में आ पाता है, उसमें से अपनी आवश्यकता पूर्ति करने के लिये हर सदस्य अधिक से अधिक चाहने और पाने का प्रयत्न किया करता है। इस छीना-झपटी में स्वार्थपरता को प्रश्रय मिलना स्वाभाविक ही है। इसको किसी प्रकार भी नहीं रोका जा सकता।

अधिक सम्पन्नता होने अथवा आवश्यकता से अधिक आय की स्थिति में भी सदस्य स्वार्थ परायण हो जाते हैं। अधिकता के कारण हर सदस्य अपने लिए मनमाना भोग चाहने लगता है। विलासिता, व्यसन तथा फैशनपरस्ती बढ़ जाती है। आलस्य, अहंकार तथा अकर्मण्यता घर बना लेती है। सब कोई एक-दूसरे पर हुक्म चलाने और अपनी प्रधानता के लिये प्रयत्नशील हो उठता है। एक-दूसरे की हिर्स तथा स्पर्धा उनका स्वभाव बन जाता है। ऐसी अस्त-व्यस्त तथा अव्यवस्थित दशा मे स्वार्थपरता तथा कलह-परायणता की वृद्धि हो जानी स्वाभाविक ही है।

परिवार में एक-दूसरे सदस्यों द्वारा और विशेषतया परिवार प्रमुख द्वारा किसी एक सदस्य को मुख्यता देना,

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उस पर अधिक व्यय करना अथवा अधिक स्नेह रखना, और दूसरों के प्रति उदासीनता अथवा उपेक्षा का भाव रखना उनमें ईर्ष्या-द्वेष की वृद्धि करने लगता है। ऊपर से भले ही सारे सदस्य एक सूत्र में आबद्ध दीखते रहें किन्तु अन्दर ही अन्दर वे विशृंखल होकर एक-दूसरे से फूट जाते हैं। इस प्रकार की विशृंखल स्थिति में पारिवारिक शान्ति तथा प्रसन्ता का रह सकना कठिन है।

इस सत्य को दृष्टिगत रखते हुए सद्गृहस्थ आलस्य अथवा अकर्मण्यता को कभी प्रश्रय नहीं देते। वे परिवार को अभाव के प्रभाव से बचाये रखने के लिये अधिक से अधिक परिश्रम करते और पसीना बहाते हैं। वे परिवार का अभाव दूर करने के लिये अपनी सीमा में कोई भी प्रयत्न उठा नहीं रखते।

परिश्रमी गृहस्थों के पास आवश्यकता से कुछ अधिक पैसा हो जाना कोई आश्चर्य नहीं। ऐसी स्थिति में वे सबका सब सदस्यों के सम्मुख लूटने-उड़ाने के लिये ढेर नहीं लगा देते। वे उनको उतना ही देते हैं, जिससे उनकी आवश्यकता सरलतापूर्वक पूरी हो सके और वे अभाव की अनुभूति कर सकें। शेष आय उनके आगे के लिये, भविष्य के लिये सुरक्षित रखते अथवा ऐसे उद्योगों में लगा देते हैं, जिससे पूँजी सुरक्षित भी रहे और कुछ लोगों की आजीविका का साधन भी बन जाये, साथ ही वे अपनी बचत का कुछ भाग धार्मिक तथा सामाजिक सेवा में भी व्यय करते हैं, जिससे परिवार के सदस्यों पर शुभ संस्कार पड़े, लोगों की दृष्टि में उनका सम्मान बढ़े और इस प्रकार परिवार के सदस्य गरिमा के भाव से बुराइयों तथा अनुत्तरदायित्व पूर्ण कामों से बचे रहें।

सद्-गृहस्थ अपने परिवार के सदस्यों के बीच असमानता का व्यवहार नहीं करते। एक तो गुणी होने से उनमें समभाव यों भी बना रहता है दूसरे पारिवारिक शान्ति के लिये वे वैसा करने से यों बचते भी रहते हैं। वे पहनाने, खिलाने तथा अन्य सुविधा-साधन देने में न्यायनिष्ठ ही रहा करते हैं। जिसकी जो आवश्यकता तथा स्थिति होती है, उसी के अनुसार उस पर खर्च करते और ध्यान देते हैं। किन्तु भोजन एवं वस्त्र के विषय में वे सब को एक बराबर ही रखते हैं। वे वस्त्रों तथा भोजन का ऐसा माध्यमिक स्तर स्थिर कर देते हैं, जो उपयोगी, भद्र तथा सदा निभ सकने वाला हो। इसके लिये न तो वे स्वयं फैशनेबुल बनते हैं और न किसी दूसरे सदस्य को इसकी छूट देते हैं। वे अपने एम. ए. में पढ़ने वाले लड़के के लिये उसके कालिज व्यय के अनुसार दूसरों की अपेक्षा अधिक खर्च तो कर सकते हैं किन्तु खाने-पीने के सम्बन्ध में उसका स्तर अनावश्यक रूप में बढ़ने नहीं देते। इस प्रकार वे समभाव तथा नियमन के आधार पर अपने परिवार को कलह-क्लेश के नारकीय वातावरण से सुरक्षित किये रहते हैं।

सद्गृहस्थ शिष्टाचार को बहुत महत्व देते हैं। वे न तो स्वयं घर में अथवा बाहर किसी से अशिष्ट व्यवहार करते हैं और न अपने परिजनों को ऐसा करने देते हैं। वे स्वयं अनुशासित रहकर दूसरों को भी मर्यादित रहने के लिये विवश करते हैं। शिष्टाचार को सभ्यता का लक्षण मानने वाले सद्गृहस्थ बच्चों तक से, मधुर तथा आदरपूर्ण भंगिमा तथा भाषा में बोलते, बात करते हैं तब दाम्पत्य मर्यादा का उनसे उल्लघंन हो ही किस प्रकार सकता है ? शील, संकोच, शालीनता तथा शीलता उनके स्वभाव के अलंकार हुआ करते हैं।

सद्-गृहस्थ शिक्षा को जीवन में सर्वोपरि स्थान देते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि यदि उनका परिवार अशिक्षा के अन्धकार में पड़ा रहा तो लाख प्रयत्न करने पर भी सदस्यों में सद्गुणों का विकास नहीं किया जा सकता। अशिक्षित तथा अपढ़ व्यक्तियों पर सदाशयता के सारे प्रयत्न विफल चले जाते हैं। इसलिये वे हर मूल्य पर बच्चों तथा यथासम्भव प्रौढ़ सदस्यों को शिक्षित एवं साक्षर बनाने के प्रयत्न से कभी विरत नहीं होते। यदि वे सबके लिये पाठशाला का प्रबन्ध नहीं कर सकते तो शेष सदस्यों को नित्य की पारिवारिक गोष्ठी में सद्शिक्षा एवं सद्ग्रन्थों द्वारा बौद्धिक शिक्षण दिया करते हैं। यदि वे उन्हें साक्षर नहीं बना पाते तो विचारवान् तो बना ही देते हैं।

सद्गृहस्थ नियोजित परिवार में अखण्ड विश्वास रखते हैं। वे अपनी, समाज की तथा राष्ट्र की स्थिति के अनुसार उतने बच्चों में ही सन्तुष्ट हो जाते हैं, जिनको शिक्षित, दीक्षित करके सभ्य तथा सफल नागरिक बना सकें। आवारा, निकम्मे, अपढ़ तथा अपराधी बच्चों की शृंखला बढ़ाकर अपराध नहीं करते। स्थिति के अनुसार दो या तीन बच्चों के बाद विराम लगाकर शेष जीवन संयम तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक बच्चों को समुचित विकास करने तथा आत्मोद्धार के लिये लगाकर सदा-सर्वदा के लिये सुखी तथा सन्तुष्ट हो जाया करते हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि अधिक सन्तानों में अधिकांश अविकसित, अशिक्षित तथा असभ्य ही रह जाती हैं, ऐसी सन्तानें जीवन के लिये कितना बड़ा अभिशाप सिद्ध होती हैं, इसका प्रमाण अनियन्त्रित एवम् असद्गृहस्थों की दशा देखकर पाया जा सकता है।

गृहस्थ जीवन सर्वोपरि जीवन है, किन्तु कब तक ? जब तक सद्गृहस्थ बनकर पारिवारिक शान्ति, शिष्टाचार, शिक्षित परिवार नियोजन तथा बाल विकास की शर्तों को पूरा करते हुए पारमार्थिक जीवन-यापन किय जाये और दाम्पत्य जीवन को भोग का माध्यम नहीं एक धार्मिक तथा आध्यात्मिक कर्त्ता समझकर निभाया जाये।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

गृहस्थ में वैराग्य

गृहस्थ आश्रम की निन्दा करते हुए कोई-कोई सज्जन ऐसा कहते हुए सुने जाते हैं कि—''घर गृहस्थी में पड़ना माया के बन्धन में फँसना है।'' उनकी दृष्टि में घर गृहस्थी माया का पिटारा है और बिना गृहस्थी रहना स्वर्ग की निशानी है। परन्तु विचार करने पर प्रतीत होता है कि उपरोक्त कथन का कुछ विशेष अर्थ नहीं है। कारण यह है कि माया का बन्धन बाहरी वस्तुओं या बाहरी मनुष्यों में नहीं वरन् अपनी मनोवृत्तियों में है। यदि मन अपवित्र है, काम, क्रोध, लोभ से भरा हुआ है तो जो बातें गृहस्थ में होती हैं वही संन्यास से बाहर भी हो सकती हैं। हमने देखा है कि बहुत से बाबाजी कहलाने वाले महाराज भिक्षा-माँग-माँगकर धन जोड़ते हैं, मरने पर उनके पास प्रचुर धनराशि निकलती है। हमने देखा है कि गृह-विहीन लोगों की इन्द्रियाँ भी लोलुप होती हैं शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श में वे लोलुप रुचि प्रकट करते हैं, उनके आकर्षण से आकर्षित होते हैं। अपनी वस्तुओं से कुटी, वस्त्र, पुस्तक, पात्र, शिष्य, साथी आदि से ममता रखते हैं। यही सब बातें ही दूसरे रूप में गृहस्थ में होती हैं।

वैराग्य, त्याग, विरक्ति इन महातत्वों का सीधा सम्बन्ध अपने मनोभावों से है। यदि भावनायें संकीर्ण हों, कलुषित हों, स्वार्थमयी हों तो चाहे जैसी उत्तम सात्विक स्थिति में मनुष्य क्यों न रहे, मन का विकार वहाँ भी पाप की दुराचार की सृष्टि करेगा। यदि भावनायें उदार एवं उत्तम हैं तो अनगिन और अनिष्टकारक स्थिति में भी मनुष्य पुण्य एवं पवित्रता उत्पन्न करेगा। महात्मा इमर्सन कहा करते थे कि ''मुझे नरक में भेज दिया जाय तो भी मैं वहाँ अपने लिए स्वर्ग बना लूँगा।'' वास्तविक सत्य यही है, हर आदमी अपनी भीतरी स्थिति का प्रतिबिम्ब दुनिया के दर्पण में देखता है। यदि उनके मन में माया है, तो घर-बाहर, वन, आरण्यक, मन्दिर, स्वर्ग सब जगह माया है, माया के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। यदि मन साफ है, पवित्रता, प्रेम और परमार्थ की दृष्टि है तो घर का एक कोना पुनीत तपोवन से किसी भी प्रकार कम न रहेगा। राजा जनक प्रभृति अनेकों ऋषि हुए हैं, जिन्होंने गृहस्थ में रहने की साधना की और परम पद पाया।

वीरता भागने में नहीं, वरन् लड़ने में है। यदि गृहस्थाश्रम में अधिक कठिनाइयाँ हैं तो उनसे डरकर दूर रहना उचित नहीं। पानी में घुसे बिना तैरना कैसे सीखा जायेगा ? कोई व्यक्ति यह कहे कि मैं अखाड़े में जाकर व्यायाम करने की कठिनाई में पड़ना नहीं चाहता। परन्तु पहलवान बनना चाहता हूँ, तो उसकी यह बात बालकों जैसी अनगढ़ होगी। काम, क्रोध, लोभ मोह के दाव-घातों को देखना, उनसे परिचित होना, उनसे लड़कर, विजय प्राप्त करना, इन्हीं सब अभ्यासों के लिए वर्णाश्रम धर्म-तत्वदर्शी, आचार्य गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ सर्वोपरि आश्रम बताते हैं। सम्पूर्ण देवर्षि इसी महान गुफा में से उत्पन्न और विकसित हुए हैं। जरा कल्पना तो कीजिए—यदि गृहस्थ धर्म जिससे निर्बुद्धि लोग माया या बन्धन तक कह बैठते हैं न होता तो राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, गाँधी कहाँ से आते हैं ? सीता, सावित्री, अनुसूया, मदालसा, दमयन्ती, पार्वती आदि सतियों का चरित्र कहाँ से सुन पड़ता ? इतिहास के पृष्ठों पर जगमगाते हुए उज्ज्वल हीरे किस प्रकार दिखाई देते ? अन्य तीनों आश्रम बच्चे हैं गृहस्थ उनका पिता है। पिता को बन्धन कहना, नरक बताना, त्याज्य ठहराना एक प्रकार की विवेकहीनता है।

उत्तरदायित्वों का भार पड़े बिना कोई व्यक्ति वास्तविक गम्भीर, जिम्मेदार और भारी भरकम नहीं होता। अल्हड़ बछड़े बहुत कूदते-फाँदते और दुलत्तियाँ उड़ाते हैं परन्तु जब कन्धे पर भार पड़ता है तो सावधानी से एक-एक कदम रखना पड़ता है। हाथी जब गहरे पानी में धँसता है तो अपना एक पैर भली प्रकार जमा लेता है तब दूसरे को आगे रखता है। उसकी सारी सावधानी और होशियारी उस समय एक स्थान पर केन्द्रीभूत हो जाती है। जिस चित्तवृति निरोध को, एकाग्रता को पातंजलि ने योग बताया है वह एकाग्रता कोरी बातूनी जमाबन्दी से नहीं आती, उसके लिए एक प्रेरणा जिम्मेदारी चाहिए। गृहस्थाश्रम का बोझ पड़ने पर मनुष्य जिम्मेदारी की ओर कदम बढ़ाता है। अपना और अपने परिवार का बोझ पीठ पर लादकर उसे चलना पड़ता है इसलिए उच्छृंखलता को छोड़कर वह जिम्मेदारी अनुभव करता है। यह जिम्मेदारी ही आगे चलकर विवेकशीलता में परिणत हो जाती है। राजा को एक साम्राज्य के संचालन की बागडोर हाथ में लेकर जैसे संभल-संभलकर चलना पड़ता है वैसे ही एक सद्गृहस्थ को पूरी दूरदर्शिता, विचारशीलता, धैर्य सहनशीलता और आत्म संयम के साथ अपना हर एक कदम उठाना पड़ता है। चाबुक सवार जैसे घोड़े को अच्छी चाल चलना सिखाकर उसे हमेशा के लिये बढ़िया घोड़ा बना देता है, वैसे ही गृहस्थ धर्म भी ठोक-पीटकर कड़ुवे मीठे अनुभव कराकर एक मनुष्य को आत्म-संयमी, दूरदर्शी, गम्भीर एवं स्थिरचित्त बना देता है, यह सब योग के लक्षण हैं। जैसे फल पककर समयानुसार डाली से स्वयं अलग हो जाता है वैसे ही गृहस्थ की डाल से चिपका हुआ मनुष्य धीरे-धीरे आत्म निग्रह और आत्म त्याग की शिक्षा पाता रहता है अन्ततः एक प्रकार का योगी हो जाता है।

लिप्सा, लालसा, तृष्णा, लोलुपता, मदान्धता, अविवेक आदि बातें त्याज्य हैं, यह बुरी बातें गृहस्थ आश्रम में भी हो सकती हैं और अन्य आश्रमों में भी। इसीलिये गृहस्थ आश्रम त्यागने योग्य नहीं वरन् अपनी कुवासनाएँ ही त्यागने योग्य हैं।

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

दृष्टिकोण का परिवर्तन

इस बात को भली प्रकार समझ रखना चाहिए कि योग का अर्थ अपनी तुच्छता, संकीर्णता को महानता, उदारता और विश्व-बन्धुत्व में जोड़ देना है अर्थात् स्वार्थ को परिशोधन करके उसे परमार्थ बना लेना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये असंख्य प्रकार के योगों की साधनायें की जाती हैं, उन्हीं में से एक गृहस्थ योग की साधना है। अन्य साधनाओं की अपेक्षा यह अधिक सुखद और स्वाभाविक है। इसलिये आचार्यों ने गृहस्थ योग का दूसरा नाम सहज योग भी रखा है। महात्मा कबीर ने अपने पदों में सहज योग की बहुत चर्चा और प्रशंसा की है।

किसी वस्तु को समुचित रीति से उपयोग करने पर वह साधारण होते हुए भी बहुत बड़ा लाभ दिखा देती है और कोई वस्तु उत्तम होते हुए भी यदि उसका दुरुपयोग किया जाय तो वह हानिकारक हो जाती है। दूध जैसे उत्तम पौष्टिक पदार्थ को भी यदि अविधिपूर्वक सेवन किया जाय तो वह रोग और मृत्यु का कारण बन सकता है। इसके विपरीत यदि जहर को भी उचित रीति से शोधन मारण करके काम में लाया जाय तो वह अमृत के समान रसायन का काम देता है। गृहस्थाश्रम के सम्बन्ध में भी यही बात है। यदि उचित दृष्टिकोण के साथ आचरण किया तो गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी ब्रह्म निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है जैसा कि अनेक ऋषि, महात्मा, योगी और तपस्वी पूर्वकाल में प्राप्त कर चुके हैं। आजकल गृहस्थों को दुःख, चिन्ता, रोग, शोक, आधि व्याधि-पाप-ताप में ग्रसित अधिक देखा जाता है, इससे ऐसा अनुमान न लगाना चाहिए कि इसका कारण गृहस्थाश्रम है, यह तो मानसिक विकारों का कुविचार और कुसंस्कारो का फल है। दूषित मनोवृत्तियों के कारण हर एक आश्रम में, हर एक वर्ण में, हर एक देश में ऐसे ही संकट, दुःख उपस्थित होंगे। इसके लिये बेचारे गृहस्थाश्रम को दोष देना बेकार है। यदि वह वास्तव में ही दूषित त्याज्य या तुच्छ होता तो संसार के महापुरुषों, अवतारों और युग निर्माताओं ने इससे अपने को अलग रखा होता, किन्तु हम देखते हैं विश्व की महानता का करीब-करीब, समस्त इतिहास गृहस्थाश्रम की धुरी पर केन्द्रीभूत हो रहा है।

आत्मीयता की उन्नति के लिए अभ्यास करने का सबसे अच्छा स्थान अपना घर है। नट अपने घर के आँगन में कला खेलना सीखता है। बालक अपने घर में खड़ा होना और चलना-फिरना सीखता है। योग की साधना भी घर से ही आरम्भ होनी चाहिए। प्रेम, त्याग और सेवा का, अभ्यास करने के लिये अपने घर का क्षेत्र सबसे अच्छा है। इन तत्वों का प्रकाश जिस स्थान पर पड़ता है वही चमकने लगता है। जब तक आत्मीयता के भावों की कमी रहती है तब तक औरों के प्रति दुर्भाव, घृणा, क्रोध, उपेक्षा के भाव रहते हैं किन्तु जब अपनेपन के विचार बढ़ते हैं तो हल्के दर्जे की चीजें भी बहुत सुन्दर दिखाई पड़ने लगती हैं। माता अपने बच्चे के प्रति आत्म भाव रखती है इसलिये यदि वह लाभदायक न हो तो भी उसे भरपूर स्नेह करती है, पतिव्रता पत्नियों को अपने काले कलूटे और दुर्गुणी पति भी इन्द्र जैसे सुन्दर और वृहस्पति जैसे गुणवान लगते हैं।

दुनिया में सारे झगड़ों की जड़ यह है कि हम देते कम हैं और माँगते ज्यादा हैं। हमें चाहिए कि दें बहुत और बदला बिलकुल न माँगें या बहुत कम पाने की आशा रखें। इस नीति को ग्रहण करते ही हमारे आस-पास के सारे झगड़े मिट जाते हैं। आत्मीयता की महान् साधना में प्रवृत्त होने वाले को अपना दृष्टिकोण देने का, त्याग और सेवा का बनाना पड़ता है। आप प्रेम की उदार भावनाओं से अपने अन्तःकरण को परिपूर्ण कर लीजिए और सगे-सम्बन्धियों के साथ त्याग एवं सेवा का व्यवहार करना आरम्भ कर दीजिए। कुछ ही क्षणों के उपरान्त एक चमत्कार हुआ दिखाई देने लगेगा। अपना छोटा-सा परिवार जो शायद बहुत दिनों से कलह और क्लेशों का घर बना हुआ है—सुख-शान्ति का स्वर्ग दीखने लगेगा। अपनी आत्मीयता की प्रेम भावनाएँ परिवार के आस-पास के लोगों से टकराकर अपने पास वापिस लौट जाती हैं और वे आनन्द की भीनी सुगन्धित फुहार से छिड़ककर मुरझाये हुए अन्तःकरण को हरा कर देती हैं।

माली अपने ऊपर जिस बगीची की जिम्मेदारी लेता है, उसे हरा-भरा बनाने, सरसब्ज रखने का जी जान से प्रयत्न करता है। वही दृष्टिकोण एक सद्गृहस्थ का होना चाहिये। उसे अनुभव करना चाहिये कि परमात्मा ने इस थोड़े से पेड़ों को सींचने, खाद देने सँभालने और रखवाली करने का भार विशेष रूप से मुझे दिया है। यों तो समस्त समाज और समस्त जाति के प्रति हमारे बहुत से कर्त्तव्य हैं, परन्तु इस छोटी बगीची का भार तो विशेषरूप से अपने ऊपर रखा हुआ है। अपने परिवार के हर एक व्यक्ति को स्वस्थ रखने, शिक्षित बनाने, सद्गुणी सदाचारी और चतुर बनने की पूरी-पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर समझते हुए इसे ईश्वर की आज्ञा का पालन मानते हुए अपना उत्तरदायित्व पूरा करने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने परिवार के सदस्यों की सेवा भी परमार्थ, पुण्य, लोक सेवा, ईश्वर पूजा से किसी प्रकार कम नहीं है।

स्वार्थ और परमार्थ का मूल बीज अपने मनोभाव, दृष्टिकोण के ऊपर निर्भर है। यदि पत्नी के प्रति उसे अपनी नौकरानी, दासी, सम्पत्ति, भोग सामग्री समझ कर अपना मतलब गाँठने, सेवाएँ लेने, शासन करने का भाव हो तो यह भाव ही स्वार्थ, नरक, कलह, भार, दुःख की

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

ओर ले जाने वाला है। यदि उसे अपने उपवन का एक सुरम्य, सुरस वृक्ष समझकर उसके प्रति सात्विक त्यागमय सेवा का पुनीत उदारतामय प्रेम का भाव हो, अपने स्वार्थ की अपेक्षा उसके स्वार्थ को महत्व देने का भाव हो तो यह भाव दाम्पत्य जीवन को, पत्नी सान्निध्य को परमार्थ स्वर्ग, स्नेह और आनन्द का घर बनाया जा सकता है। देना कम और लेना ज्यादा यह नीति झगड़े की, पाप की कटुता की, नरक की जड़ है। "देना ज्यादा और लेना कम से कम" यह नीति-प्रेम, सहयोग, पुण्य और स्वर्ग की जननी है। बदला चाहने, लेने, स्वार्थ साधने, सेवा कराने की स्वार्थ दृष्टि से यदि पत्नी, पुत्र, पिता, भाई, माता, बुआ, बहिन, को देखा जाय तो यह सभी बड़े स्वार्थी, खुदगर्ज, बुरे, रूखे, उपेक्षा करने वाले उद्दण्ड दिखाई देंगे, उनमें एक से-एक बड़ी बुराई दिखाई पड़ेगी और ऐसा लगेगा मानो गृहस्थ ही सारे दुखों, स्वार्थों और पापों का केन्द्र है। कई व्यक्ति गृहस्थी पर ऐसा ही दोष लगाते हुए कुढ़ते रहते हैं, खिन्न रहते हैं एवं घर छोड़कर भाग खड़े होते हैं असल में यह दोष परिवार वालों का नहीं वरन्, उनके अपने दृष्टिकोण का दोष है, पीला चश्मा पहनने वाले को हर एक वस्तु पीली ही दिखाई पड़ती है।

प्रत्येक मनुष्य अपूर्ण है। वह अपूर्णता में पूर्ण की ओर यात्रा कर रहा है। ऐसी दशा में यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि हमारे परिवार के सब सदस्य स्वर्ग के देवता, हमारे पूर्ण आज्ञानुवर्ती होंगे। जीव अपने साथ जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों को साथ लाता है, यह संस्कार धीरे-धीरे, बड़े प्रयत्नपूर्वक बदले जाते हैं। एक दिन में उन सबका परिवर्तन नहीं हो सकता, इसलिये यह आशा रखना अनुचित है कि परिवार वाले पूर्णतया हमारे अज्ञानुवर्ती ही होंगे। उनकी त्रुटियों को सुधारने में, उन्हें आगे बढ़ाने में, उन्हें सुखी बनाने में सन्तोष प्राप्त करने का अभ्यास डालना चाहिए। अपनी इच्छाओं की पूर्ति से सुखी होने की आशा करना इस संसार से एक असंभव माँग करना है। दूसरे लोग हमारे लिये, यह करें, परिवार वाले इस प्रकार का हमसे व्यवहार करें, इस बात के ऊपर अपनी प्रसन्नता को केन्द्रित करना एक बड़ी भूल है, ऐसी भूल को जो लोग करते हैं, उन्हें गृहस्थ के आनन्द से प्राय: पूर्णतया वंचित रहना पड़ता है।

स्मरण रखिये गृहस्थ का पालन करना एक प्रकार के योग की साधना करना है। इसमें परमार्थ, सेवा, प्रेम, सहायता, त्याग, उदारता और बदला पाने की इच्छा से विमुखता-यही दृष्टिकोण प्रधान है। जो इसको धारण किये हुए हैं वही ब्राह्मी स्थिति में है। वह घर में रहते हुए भी संन्यासी है।

भोग से योग तक

पुण्य और पाप किसी कार्य के बाह्य रूप के ऊपर नहीं वरन् उस काम को करने वाले की भावना के ऊपर निर्भर हैं। किसी कार्य का बाहरी रूप कितना ही अच्छा, ऊँचा या उत्तम क्यों न हो परन्तु यदि करने वाले की भीतरी भावनायें बुरी हैं तो ईश्वर के दरबार में वह कार्य पाप में शुमार होगा। लोगों को धोखा दिया जा सकता है, दुनिया को भ्रम या भुलावे में डाला जा सकता है। परन्तु परमात्मा को धोखा देना असम्भव है। ईश्वर के दरबार में काम के बाहरी रूप को देखकर नहीं वरन् करने वाले की भावनाओं को परखकर धर्म-अधर्म की नाप-तौल की जाती है।

आज हम ऐसे अनेक धूर्तों को अपने आस-पास देखते हैं जो कहने को तो बड़े-बड़े अच्छे काम करते हैं पर उनका भीतरी उद्देश्य बड़ा दूषित होता है। अनाथालय, विधवाश्रम, गौशाला आदि पवित्र संस्थाओं की आड़ में भी बहुत से बदमाश आदमी अपना उल्लू सीधा करते हैं। योगी, महात्मा, साधु, संन्यासियों का बाना पहने अनेक चोर, डाकू, लुच्चे, लफंगे घूमते रहते हैं। यज्ञ करने के नाम पर, पैसा बटोरकर कई आदमी अपना घर भर लेते हैं। बाहरी दृष्टि से देखने पर अनाथालय, विधवाश्रम गौशाला चलाना, साधु, संन्यासी, महात्मा, उपदेशक बनना यज्ञ, कुआँ, मन्दिर बनवाना आदि अच्छे कार्य हैं। इनके करने वालों को पुण्यफल मिलना चाहिए, परन्तु वास्तविक बात यह है कि यदि करने वाले की भावनायें विकृत हैं तो यह अच्छे काम भी उसकी मुख्य सम्पदा में कुछ वृद्धि न कर सकेंगे। वह व्यक्ति अपने पापमय विचारों के कारण पापी ही बनेगा, पाप का नरकमय दण्ड ही उसे प्राप्त होगा।

यदि कोई आदमी साधारण काम करता है। मामूली व्यक्तियों की तरह जीवनयापन करता है, किन्तु उन साधारण कार्यों में भी उद्देश्य, मनोभाव और विचार ऊँचे रखता है तो वह साधारण काम भी तपस्या जैसा पुण्य फलदायक हो जाता है। यहीं तक नहीं बल्कि यहाँ तक भी होता है कि बाहर से दीखने अधर्म युक्त कार्य भी यदि सद्भावना से किये जाते हैं तो वे भी धर्म बन जाते हैं। जैसे हिंसा करना, किसी के प्राण लेना, हत्या या रक्तपात करना प्रत्यक्ष पाप है। परन्तु आततायी, दुष्ट और दुरात्माओं से संसार की रक्षा करने की सद्भावना से यदि दुष्टों को मारा जाता है तो वह पाप नहीं वरन् पुण्य बन जाता है। भगवान कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करके हजारों मुनष्यों को मरवा डाला पर इससे अर्जुन या कृष्ण को कुछ पाप नहीं लगा। राम-रावण युद्ध में बड़ा भारी जन संहार हुआ परन्तु उन दुष्टों को मारने वाले पापी या हत्यारे नहीं कहलाये। यहाँ हिंसा प्रत्यक्ष है तो भी हिंसा करने वाले सद्भावना युक्त थे इसलिए

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उनके कार्य पुण्यमय ही हुए। इसी प्रकार झूठ, चोरी, छल आदि भी समयानुसार—सद्उद्देश्य से किये जाने पर धर्ममय ही होते हैं। उन्हें करने वाले को पाप नहीं लगता वरन् पुण्य फल ही प्राप्त होता है।

उपरोक्त पंक्तियों को पढ़कर पाठकों को किसी भ्रम में न पड़ना चाहिए। हम सत्कर्मों की निन्दा या असत् कार्यों की प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। हमारा तात्पर्य तो केवल यह कहने का है कि काम का बाहरी रूप कैसा है, इससे दुनिया की स्थूल दृष्टि ही कुछ समय के लिए चकाचौंध में पड़ सकती है। पर परमात्मा प्रसन्न नहीं हो सकता। आत्मा और परमात्मा के समक्ष तो भावना प्रधान है। संसार के लोगों की सूक्ष्म बुद्धि भी भावना को महत्व देती है। यदि किसी ने अपने किसी स्वार्थ साधन के लिए कोई प्रीतिभोज दिया हो या और कोई ऐसा काम किया हो तो जब लोगों को असली बात का पता चलता है तो लोग उसकी चालाकी के लिए मन ही मन मुस्कराते हैं, कनखियाँ लेते हैं और मसखरी उड़ाते हैं, धर्मात्मा की बजाय उसे चालाक ही समझा जाता है। अब दूसरी ओर चलिये किसी आदमी द्वारा भूल से, मजबूरी से या गैर जानकारी से कोई अनुचित बात हो जाती है और जानकारी होने पर पता चलता है तो उसे अनुचित बात के लिए भी क्षमा कर दिया जाता है। अदालतें भी अपराधी की नीयत पर मुख्यतया ध्यान रखती हैं। यदि अपराधी की नीयत बुरी न साबित हो तो अपराधी को कठोर दण्ड का भागी नहीं बनना पड़ता।

जीवन के हर काम की अच्छाई, बुराई कर्ता की भावना के अनुरूप होती है। जीवन भले ही सादा हो पर यदि विचार उच्च है तो जीवन भी उच्च माना ही जायेगा। रुपये-पैसे या काम के बड़े आडम्बर से पुण्यफल या विशेष सम्बन्ध नहीं है। एक अमीर आदमी रुपये के बल से बड़े-बड़े ब्रह्म-भोज, पूजा, पाठ, तीर्थयात्रा, कथा-पुराण, मन्दिर मठ, कुआ-बावड़ी, सदावर्त यज्ञ-हवन आदि की व्यवस्था आसानी से कर सकता है। दस लाख रुपया अनुचित रीति से कमाकर दस हजार रुपया इस प्रकार के कार्यों में लगाकर धर्मात्मा बनता है। दूसरी ओर गरीब आदमी जो ईमानदारी की मेहनत-मजदूरी करता है, वह थोड़े-से पैसे कमाता है, जिससे कुटुम्ब का भरण-पोषण कठिनाई से हो पाता है बचता कुछ नहीं, ऐसी दशा में वह बेचारा भला ब्रह्मभोज, तीर्थ यात्रा, यज्ञ-अनुष्ठान आदि की व्यवस्था किस प्रकार कर पावेगा ? यदि वह नहीं कर पाता है तो क्या वह धर्महीन ही रह जायेगा ? क्या दुनिया की भौतिक चीजों की भाँति ही पुण्यफल भी रुपयों से ही खरीदा जाता है ?

इन प्रश्नों की मीमांसा करते हुए पाठकों को यह बात भली प्रकार हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि पुण्य का पैसे से कोई सम्बन्ध नहीं है। पुण्य तो भावना से खरीदा जाता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में रुपये की तूती नहीं बोलती वहाँ तो भावना की प्रधानता है। दम्भ, अहंकार, नामबरी, बाहवाही, पूजा-प्रतिष्ठा के प्रदर्शन के लिए धर्म के नाम पर करोड़ रुपये खर्च करने पर भी उतना पुण्यफल नहीं मिल सकता जितना कि आत्म-त्याग, श्रद्धा एवं सच्चे अन्तःकरण से रोटी का टुकड़ा देने पर प्राप्त होता है। स्मरण रखिये—सोने की सुनहरी चमक और चाँदी की मधुर चमचमाहट आत्मा को ऊँची उठाने में कुछ विशेष सहायक नहीं होती। आत्मिक क्षेत्र में गरीब और अमीर का दर्जा बिलकुल बराबर है, वहाँ सबके पास समान वस्तु है—समान साधन हैं। भावना हर गरीब-अमीर को प्राप्त है, उसी की अच्छाई-बुराई के ऊपर पुण्य-पाप की सारी दारोमदार है। घटनाओं का घटाटोप, चौंधिया देने वाला प्रदर्शन बड़े-बड़े कार्यों के विराट आयोजन, रंगीन बादलों से बने हुए आकाश चित्रों की भाँति मनोरंजक तो हैं पर उनका अस्तित्व कुछ नहीं। सच्चे हृदय से किये हुए एक अत्यन्त छोटे और तुच्छ दीखने वाले कार्य का जितना महत्व है उतना दम्भपूर्वक किये हुए बड़े भारी आयोजन का किसी प्रकार नहीं हो सकता। भावना को सच्चाई और सात्विकता के साथ आत्म त्याग और कर्त्तव्य पालन यही धर्म का पैमाना है। इस भावना से प्रेरित होकर काम करना ही पुण्य है। सद्भावना जितनी ही प्रबल होगी आत्म-त्याग उतना बड़ा होगा। पैसे वाला अपने पैसे को जी खोलकर सत्कार्य में लगावेगा, उसी प्रकार गरीब के पास जो साधन है, उनको वह ईमानदारी के साथ खर्च करेगा।

लोग ऐसा समझते हैं कि धर्म-भावना के लिए, पुण्यफल प्राप्त करने के लिए, आत्मोन्नति के लिए, ईश्वर प्राप्ति के लिए स्वर्ग या मुक्ति की उपलब्धि के लिए, किन्हीं विशिष्ट, विचित्र या असाधारण कार्यों का आयोजन करने की आवश्यकता होती है। अमुक प्रकार की वेश-भूषा, अमुक प्रकार का रहन-सहन, अमुक प्रकार साधन भक्तिप्रद है, यह मानना बिलकुल गलत है। वेश-भूषा, रहन-सहन, साधक की सुविधा के लिए हैं, उसे जिससे आसानी रहे, इनके द्वारा सिद्ध किसी को नहीं मिलती। यदि वेष या रहन-सहन से ही सिद्ध मिलती होती तो आज जो साधु नामधारी लाखों कर्महीन भिखमंगे इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, मुफ्त के अधिकारी हो गए होते। अनेक प्रकार की आत्मिक साधनायें, अनेक प्रकार के मानसिक व्यायाम हैं जिनके द्वारा मनोभूमि को, भावना क्षेत्र को निर्मल, पवित्र एवं सात्विक बनाया जाता है। आत्मोन्नति की असंख्यों साधनायें हैं सभी लाभप्रद हैं, क्योंकि किसी भी रास्ते से सही भावना को उच्च बनाना है, यदि मनोभूमि उच्च न बने तो साधना निरर्थक है। साधना एक औजार मात्र है। उसको विवेकपूर्वक काम में लाने से इच्छित वस्तु का निर्माण हो सकता है। पर यदि विवेकपूर्वक न किया हो तो साधना निरर्थक है। अमुक पुस्तक का पाठ करने, मन्त्र जपने या अभ्यास करने से यदि मनोभूमि निर्मल बनती हो तो आत्मोन्नति होगी पर

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

रूढ़ि की तरह अन्ध-विश्वासपूर्वक अविवेक के साथ किसी मन्त्र या पुस्तक को रटते रहा जाय। अमुक प्रकार से काया कष्ट सहते रहा जाय तो उससे कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। जीवन लक्ष्य को प्राप्त करना आत्मिक पवित्रता द्वारा ही सम्भव है। उस पवित्रता के लिए अनेकों, असंख्यों साधन हैं। जिनमें से देश, काल, पात्र को देखते हुए बुद्धिमान व्यक्ति अपने लिए उपयुक्त वस्तु चुन लिया करते हैं। जैसे एक ही कसरत सबके लिए अनिवार्य नहीं है, उसी प्रकार एक ही साधन हर मुमुक्षु के लिए आवश्यक नहीं है। शरीर, ऋतु, खुराक, पेशा आदि को देखकर ही चतुर व्यायाम विशारद अपने शिष्यों को भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यायाम कराते हैं। उसी प्रकार आत्म-तत्वदर्शी आचार्य भी असंख्यों योगों में से उपयुक्त योग का अपने अनुयायियों के लिए चुनाव करते हैं।

कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़कर साधारण श्रेणी के सभी लोगों के लिए गृहस्थ योग की साधना को बहुत ही उपयुक्त, उचित, सुलभ एवं सुखसाध्य समझते हैं। गृहस्थ योग की साधना भी राजयोग, लययोग आदि की ही श्रेणी में आती है। उचित रीति से इस महान् व्रत का अनुष्ठान करने पर मनुष्य जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है और घर के वातावरण में स्वर्ग का अवतरण कर स्वयं उल्लसित आनन्दित रह सकता है तथा दूसरों को प्रसन्नता एवं हर्ष प्रदान कर सकता है।

गृहस्थ योग के कुछ मन्त्र

पिछले पृष्ठों पर बताया जा चुका है कि परमार्थ और स्वार्थ, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म यह किसी कार्य विशेष पर निर्भर नहीं, वरन् दृष्टिकोण पर अवलम्बित है। दुनिया का, स्थूल बुद्धि-कार्यों का रूप देखकर उसकी अच्छाई-बुराई का निर्णय करती है परन्तु परमात्मा के दरबार में काम के बाहरी रूप का कुछ महत्व नहीं वहाँ तो भावना ही प्रधान है। भावना का आरोपण मनुष्य की आन्तरिक पवित्रता से सम्बन्धित है। बनावट, धोखेबाजी और प्रवंचना बाहर तो चल सकती है पर अपनी आत्मा के सामने नहीं चल सकती। अन्तःकरण स्वयमेव जान लेता है कि अमुक कार्य किस दृष्टिकोण से किया जा रहा है, वहाँ कोई छिपाव या दुराव काम नहीं दे सकता। वरन् जो बात सत्य है वह ही मनोभूमि में, स्वच्छ पट्टिका पर स्पष्ट रूप से अंकित होती है। जिस कार्य प्रणाली के द्वारा अन्तःकरण में आत्म त्याग, सेवा, प्रेम एवं सद्भाव का संचार होता हो वह कार्य सच्चा और पक्का परमार्थ है। वह कार्य निस्संदेह स्वर्ग और मुक्ति की ओर ले जाने वाला होगा, चाहे उस कार्य का बाह्य रूप कैसा ही साधारण या असाधारण, सीधा या विचित्र, छोटा या बड़ा क्यों न हो ?

गृहस्थ संचालन के सम्बन्ध में भी दो दृष्टिकोण हैं। एक तो ममता, मालिकी, अहंकार और स्वार्थ का। दूसरा आत्म-त्याग, सेवा, प्रेम और परमार्थ का। पहला दृष्टिकोण बन्धन, पतन, पाप और नरक की ओर ले जाने वाला है। दूसरा दृष्टिकोण मुक्ति, उत्थान, पुण्य और स्वर्ग को प्रदान करता है। शास्त्रकारों ने, सन्त पुरुषों ने, जिस गृहस्थ की निन्दा की है, बन्धन बताया है और छोड़ देने का आदेश दिया है वह आदेश स्वर्गमय दृष्टिकोण के सम्बन्ध में है। परमार्थमय दृष्टिकोण का गृहस्थ तो अत्यन्त उच्चकोटि का आध्यात्मिक साधना है। उसे तो प्रायः सभी ऋषि, मुनि, महात्मा, योगी, यती तथा देवताओं ने अपनाया है और उसकी सहायता से आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त किया है। इस मार्ग को अपनाने से उनमें से न तो किसी को बन्धन में पड़ना पड़ा और न नरक को जाना पड़ा। यदि गृहस्थ बन्धन कारक, नरकमय होता तो उससे पैदा होने वाले बालक पुण्यमय कैसे होते। बड़े-बड़े योगी यती इस मार्ग को क्यों अपनाते ? निश्चय ही गृहस्थ धर्म एक परम पवित्र, आत्मोन्नति कारक, जीवन को विकसित करने वाला, धार्मिक अनुष्ठान है, एक सत् समन्वित आध्यात्मिक साधना है। गृहस्थ का पालन करने वाले व्यक्ति को ऐसी हीन भावना मन में लाने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है कि वह अपेक्षाकृत नीचे स्तर पर है या आत्मिक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ है या कमजोर है। अविवाहित जीवन और विवाहित जीवन में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। यह अपनी-अपनी सुविधा, रुचि और कार्य प्रणाली की बात है, जिसे जिसमे सुविधा पड़ती हो वह वैसा करे। जिसका कार्यक्रम देशाटन का हो उन्हें स्त्री-बच्चों का झंझट पालने की आवश्यकता नहीं परन्तु जिन्हें एक स्थान पर रहना हो उसके लिये विवाहित होने ही में सुविधा है। इसमें पिछड़े हुए और बढ़े हुए की कुछ चीज नहीं, दोनों का दर्जा बिल्कुल बराबर है। मानसिक स्थिति और कार्य प्रणाली के आधार पर तुच्छता और महानता होती है। जहाँ भी ऊँचा दृष्टिकोण होगा वहाँ ही महानता होगी।

जीवन का परम लक्ष्य आत्मा को परमात्मा में मिला देना है, व्यक्तिगत स्वार्थ को प्रधानता न देते हुए लोकहित की भावना से काम करना, यही आध्यात्मिक साधना है। इस साधना को क्रियात्मक जीवन में लाने के लिये भिन्न-भिन्न तरीके हो सकते हैं। उन तरीकों में से एक तरीका गृहस्थ योग भी है। बालक घर में से ही प्रारम्भिक क्रियायें सीखता है। जीवन के लिये जितने काम चलाऊ ज्ञान की आवश्यकता है, उनका आधे से अधिक भाग घर में ही प्राप्त होता है। हमारी आत्मिक साधना भी घर से आरम्भ होनी चाहिये। जीवन को उच्च, उन्नत, संस्कृत, संयमित, सात्विक सेवामय एवं परमार्थपूर्ण बनाने की सबसे अच्छी प्रयोगशाला अपना घर ही हो सकता है। स्वाभाविक प्रेम, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य पालन, परस्पर अवलम्बन, आश्रय स्थान, स्थिर क्षेत्र, लोक लाज आदि अनेक कारणों से यह क्षेत्र ऐसा सुविधाजनक हो जाता है

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कि आत्मत्याग और सेवामय दृष्टिकोण के साथ काम करना इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक सरल होता है।

गृहस्थ योग के साधक के मन में यह विचारधारा चलती रहनी चाहिए कि "यह परिवार मेरा साधन क्षेत्र है। इस वाटिका को सब प्रकार सुन्दर, सुरभित और पल्लिवत बनाने के लिये सच्चे हृदय से सदा शक्ति भर प्रयत्न करते रहना मेरा कर्मकाण्ड है। भगवान ने जिस वाटिका को सींचने का भार मुझे दिया है, उसे ठीक तरह सींचते रहना मेरी ईश्वर परायणता है। घर का कोई भी सदस्य ऐसा हीन दर्जे का नहीं है, जिसे मैं तुच्छ समझूँ, उपेक्षा करूँ या सेवा से जी चुराऊँ, मैं मालिक, नेता, मुखिया या कमाऊ होने का अहंकार नहीं करता, यह मेरा आत्म-निग्रह है। हर एक सदस्य के विकास में अपनी सेवायें लगाते रहना मेरा परमार्थ है। बदले की जरा-सी भी इच्छा न रखकर विशुद्ध कर्त्तव्य भाव से सेवा में तत्पर रहना मेरा आत्म-त्याग है। अपनी सुख-सुविधाओं की परवाह न करते हुए औरों को सुख-सुविधा बढ़ाने को प्रयत्न करना मेरा तप है। घर के हर सदस्य को सद्गुणी, सत् स्वभाव का, सदाचारी एवं धर्म परायण बनाकर विश्व की सुख शान्ति में वृद्धि करना मेरा यज्ञ है। सबके हृदयों पर जिसका मौन उपदेश हो, अनुकरण से सुसंस्कार बनें, अपना आचरण ऐसा पवित्र एवं आदर्शमय रखना मेरा व्रत है। धर्म उपार्जित अन्न से जीवन निर्वाह करना और कराना यह मेरा संयम है। प्रेम, उदारता, सहानुभूति की भावना से ओत-प्रोत रहना और रखना, प्रसन्नता, आनन्द और एकता की वृद्धि करना मेरी आराधना है। मैं अपने गृह-मन्दिर में भगवान की चलती-फिरती प्रतिमाओं के प्रति अगाध भक्ति-भावना रखता हूँ। सद्गुण, सत् स्वभाव और सत् आचरण के दिव्य शृंगार से इन प्रतिमाओं को सुसज्जित करने का प्रयत्न ही मेरा पूजा है। मेरा साधन सच्चा है, साधना के प्रति मेरी भावना सच्ची है, अपनी आत्मा के सम्मुख मैं सच्चा हूँ। सफलता-असफलता की जरा भी परवाह न करके सच्चे निष्काम कर्मयोगी की भाँति मैं अपने प्रयत्न की सच्चाई में सन्तोष अनुभव करता हूँ। मैं सत्य हूँ, मेरी साधना सत्य है। मैंने सत्य का आश्रय ग्रहण किया है, उसे सत्यतापूर्वक निवाहने का प्रयत्न करूँगा।"

उपरोक्त मन्त्र हर गृहस्थ योगी को भली प्रकार हृदयंगम कर लेना चाहिए। दिन में कई बार इस मन्त्र को दुहराना चाहिए। एक छोटे कार्ड पर सुन्दर अक्षरों में लिखकर इस मन्त्र को अपने पास रख लेना चाहिए और जब भी अवकाश मिले एक-एक शब्द का मनन करते हुए इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए। हो सके तो अक्षरों में लिखकर सुन्दर चित्र की भाँति इसे अपने कमरें में लगा लेना चाहिए। प्रातः निद्रा त्यागने पर पलंग पर पड़े-पड़े ही कई बार इस मन्त्र को मन ही मन दुहराना चाहिए और निश्चय करना चाहिए कि आज दिन भर इन भावनाओं को अधिक से अधिक मात्रा में कार्यरूप में परिणित करने का प्रयत्न करूँगा। परिवार वालों के साथ व्यवहार करते समय मन्त्र की भावना का सतर्कतापूर्वक ध्यान रखूँगा। इस निश्चय के साथ शैय्या त्याग करने का असर दिन भर रहता है। प्रातःकाल जो आदेश अन्तर्मन को दिये हैं अधिक गहरे उतर जाते हैं, वे जल्दी विस्मरण नहीं होते और यथा अवसर वे ठीक समय पर स्मरण हो आते हैं। इसलिए प्रातःकाल इस मन्त्र को नियमित रूप से अवश्य ही दुहराना चाहिए—

"मैं गृहस्थ योगी हूँ। मेरा जीवन साधनामय है। दूसरे कैसे हैं, क्या करते हैं, क्या सोचते हैं, क्या कहते हैं ? इसकी मैं तनिक-सी परवाह नहीं करता। अपने आप में सन्तुष्ट रहता हूँ, मेरी कर्त्तव्य पालन की सच्ची साधना इतनी महान है, इतनी शान्तिदायिनी, इतनी तृप्तिकारक है कि उसमें मेरी आत्मा आनन्द में सराबोर हो जाती है। मैं अपनी आनन्दमयी साधना को निरन्तर जारी रखूँगा, गृह क्षेत्र में परमार्थ भावनाओं के साथ ही काम करूँगा।" यह संकल्प दृढ़तापूर्वक मन में जमा रहना चाहिए। जब भी मन विचलित होने लगे, जब भी पैर पीछे डिगने की संभावना प्रतीत हो तभी इस संकल्प को मनोयोगपूर्वक दृढ़ करना चाहिए।

रात्रि को सोने से पूर्व दिन भर के कार्यों पर विचार करना चाहिए। (१) आज परिवार से सम्बन्ध रखने वाले क्या क्या कार्य किये ? (२) उसमें क्या भूल हुई ? (३) स्वार्थ से प्रेरित होकर क्या अनुचित कार्य किया ? (४) भूल के कारण क्या अनुचित काम हुआ ? (५) क्या-क्या कार्य अच्छे, उचित और गृहस्थ योग की मान्यता के अनुरूप हुए ? इन पाँच प्रश्नों के अनुसार दिन भर के पारिवारिक कार्यों का विभाजन करना चाहिए और आगे से त्रुटियों के सुधार का उपाय सोचना चाहिए। (१) भूल की तलाश करना, (२) उसे स्वीकार करना, (३) गलती के लिए लज्जित होना और (४) उसे सुधारने का सच्चे मन से प्रयत्न करना यह चार बातें जिसे पसन्द हैं, जो इस मार्ग पर चलता है, उसकी गलतियाँ दिन-दिन कम होती जाती हैं और वह शीघ्र ही दोषों से छुटकारा पा लेता है।

गृहस्थ योग की साधना के मार्ग पर चलते हुए साधक के मार्ग में नित नई कठिनाइयाँ आती रहती हैं। कभी अपनी भूल से, कभी दूसरों की भूल से ऐसी घटनाएँ घटित हो जाती हैं जिनका नियत सिद्धान्त से मेल नहीं खाता। इच्छा रहती है कि अपना हर एक आचरण ठीक रहे, हर एक क्रिया सिद्धान्तानुकूल हो, परन्तु अक्सर भूलें होती रहती हैं, साधक कुछ दिन तक सोचता है कि दस-बीस दिन में या महीने में यह दूर हो जायगी और मेरी सम्पूर्ण क्रियाएँ सिद्धान्तानुकूल होने लगेंगी, पर जब काफी समय बीत जाता है और तब भी भूलें समाप्त नहीं होतीं तो चिन्ता, निराशा और पराजय की भावनाएँ मन में

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

घूमने लगती हैं। साधक सोचता है, इतने दिन से प्रयत्न कर रहा हूँ, पर स्वभाव पर विजय नहीं मिलती, नित्य गलतियाँ होती हैं, ऐसी दशा में साधना चल नहीं सकती। कभी सोचता है हमारे घर वाले उजड्ड, गँवार, मूर्ख और कृतघ्न हैं यह लोग मुझे परेशान एवं उत्तेजित करते हैं और मेरे जीवन को साधन की नियत दिशा में नहीं चलने देते तो साधन व्यर्थ हैं, इस प्रकार निराशाजनक विचारों से प्रेरित होकर वह अपने व्रत को छोड़ देता है।

उपरोक्त कठिनाई से हर साधक को आगाह हो जाना चाहिए। मनुष्य स्वभाव में त्रुटियाँ और कमजोरियाँ रहना निश्चित है। जिस दिन मनुष्य पूर्णरूपेण त्रुटियों से परे हो जायेगा उसी दिन वह परम पद को प्राप्त कर लेगा, जीवन मुक्त हो जायगा। जब तक उस मंजिल तक नहीं पहुँच जाता, जब तक मनुष्य योनि में है, देव योनि से पीछे है, तब तक यही मानना पड़ेगा कि मनुष्य त्रुटिपूर्ण है। जहाँ कई ऐसे व्यक्तियों का सम्मिलन है, जिसमें कोई तो आत्मिक भूमिका में बहुत आगे, कोई बहुत पीछे हैं ऐसे क्षेत्र में नित नई त्रुटियों का, कठिनाइयों का सामने आना स्वाभाविक है। इनमें से कुछ अपनी गलती के कारण उत्पन्न हुई होंगी कुछ अन्यों की गलती से। यह क्रम धीरे-धीरे दूर होता जाता है पर यह कठिन है कि अपना परिवार पूर्णरूपेण देव परिवार हो जाय, इसके लिये बहुत कठिनाई से डरने घबराने या विचलित होने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। साधना का अर्थ ही—"त्रुटियों के सुधार का अभ्यास" है। अभ्यास को निरन्तर जारी रखना चाहिए। योगीजन नित्य प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा-ध्यान आदि की साधना करते हैं, क्योंकि उनकी मनोभूमि अभी दोषपूर्ण है, जिस दिन उनके दोष सर्वथा समाप्त हो जायेंगे उसी दिन उसी क्षण वे ब्रह्म निर्वाण को प्राप्त कर लेंगे। दोषों का सर्वथा अभाव, यह अन्तिम सीढ़ी का, सिद्ध अवस्था का लक्षण है। वहाँ तक पहुँच जाने पर तो कुछ करना ही बाकी नहीं रह जाता। साधकों को यह आशा न करनी चाहिये कि थोड़े ही समय में इच्छित भावनाएँ पूर्ण रूप से क्रिया में आ जायेंगी। विचार क्षण भर में बन जाता है पर उसे संस्कार का रूप धारण करने में बहुत समय लगता है। हथेली पर सरसों नहीं जमती। पत्थर पर निशान करने के लिए रस्सी की रगड़ बहुत समय तक जारी रहनी चाहिए। स्मरण राखिए दोषों से सर्वथा मुक्ति-लक्ष्य है, ध्येय है, सिद्ध अवस्था है। साधक का आरम्भिक लक्षण यह नहीं है। आम का पौधा उगते ही यदि मीठे आम तोड़ने के लिए उसके पत्तों को टटोलेंगे तो मनोकामना पूर्ण न होगी।

गृहस्थ योग की अपनी साधना आरम्भ करते हुए आप इस बात के लिए कमर कसकर तैयार हो जाइए कि भूलों, त्रुटियों, कठिनाइयों और असफलताओं को आपको नित्य सामना करना पड़ेगा, नित्य उनसे लड़ना पड़ेगा, नित्य उनका संशोधन और परिमार्जन करना होगा, और अन्त में एक न एक दिन सारी कठिनाइयों को परास्त कर देना होगा। जैसे भूख, निद्रा, मल त्याग आदि नित्य कर्मों को रोज करते हैं तो भी दूसरे दिन फिर उनकी जरूरत पड़ती है। इस रोज-रोज के झमेले से कोई निराशा या अनुत्साहित नहीं होता वरन् धैर्यपूर्वक नित्य ही उसकी व्यवस्था की जाती है। इसी प्रकार गृहस्थ योग की साधना में अपनी या दूसरों की कमजोरी से जो भूलें हों उनसे डरना या निराश न होना चाहिए वरन् अधिक दृढ़ता एवं उत्साह से परिमार्जन का धैर्यपूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए।

पूर्ण रूप से सुधार हुआ है या नहीं यह देखने की अपेक्षा यह देखना चाहिए कि पहले की अपेक्षा सात्विकता में कुछ वृद्धि हुई है या नहीं ? यदि थोड़ी बहुत भी बढ़ोत्तरी हुई हो तो यह आशा, उत्साह प्रसन्नता और सफलता की बात है। बूँद-बूँद से घड़ा भर जाता है, कन-कन-जोड़ने से मन जमा हो जाता है, राई-राई इकट्ठा करने से पर्वत बन जाता है, यदि प्रति दिन थोड़ी थोड़ी सफलता भी मिले तो हमारे शेष जीवन के असंख्य दिनों में वह सफलता बड़ी भारी मात्रा में जमा हो सकती है। यह सम्पत्ति किसी प्रकार नष्ट होने वाली नहीं है। यह जमा होने का क्रम अगले जन्म में भी जारी रहेगा और लक्ष्य तक एक न एक दिन पहुँच ही जाया जायगा, धीरे धीरे सफलता मिले तो अधिक उत्साह से काम करना चाहिए। निराश होकर छोड़ बैठने की कोई आवश्यकता नहीं है।

आप जब आत्म निरीक्षण द्वारा अपनी भूलों को देखें तो देखकर निराश न हों वरन् इस भावना को मन: क्षेत्र में स्थान दें—"वीर योद्धा की तरह मैं जीवन युद्ध में रत हूँ। चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते समय के जो बुरे संस्कार अभी हम लोगों में लगे हुए शेष रह गये हैं, वे बार-बार मार्ग में विघ्न उपस्थित करते हैं, गलती कर बैठता हूँ, कभी दूसरे गलती कर देते हैं, आये दिन ऐसे विघ्न सामने आते रहते हैं, परन्तु मैं उससे जरा भी विचलित नहीं होता, मैं नित्य इन कठिनाइयों से लड़ूँ। ठोंकर या चोट खाकर भी चुप न बैठूँगा। गिर पड़ने पर फिर उठूँगा और धूलि झाड़कर फिर युद्ध करूँगा। लड़ने वाला ही गिरता और घायल होता है, कुसंस्कार यदि मुझे गिरा देते हैं तो भी मुझे उनके विरुद्ध युद्ध जारी ही रखना चाहिए। मैं सत्य मार्ग का पथिक हूँ, सच्चिदानन्द आत्मा हूँ, अपने और दूसरों के कुसंस्कारों से निरन्तर युद्ध जारी रखना और उन्हें परास्त कर देने तक दम न लेना ही मेरा कर्त्तव्य है। मैं अपने संकल्प, व्रत, साधन और उद्देश्य के प्रति सच्चा हूँ। अपनी सच्चाई की रक्षा करूँगा और इन कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करके रहूँगा। भूलों को नित्य परखने, पकड़ने और उन्हें हटाने का कार्य मैं सदा एक रस उत्साह के साथ जारी रखूँगा।"

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

उपरोक्त मन्त्र को सफलता के निरीक्षण के साथ मनन करना चाहिए। इससे निराशा नहीं आने पाती। गृहस्थ योग के मूलभूत सिद्धान्तों का बीज मन्त्र, दृढ़ता का संकल्प और त्रुटियों से धर्म युद्ध जारी रखने की प्रतिज्ञा यह तीनों ही महामन्त्र साधक की मनोभूमि में खूब गूँजने चाहिये। अधिक से अधिक समय इन विचारधाराओं में ओत-प्रोत रहना चाहिये।

गृहस्थ योग से परम पद

'योग' का अर्थ है—जोड़ना-मिलना। मनुष्य की साधारण स्थिति ऐसी होती है, जिसमें वह अपूर्ण होता है। इस अपूर्णता को मिटाने के लिए वह किसी दूसरी शक्ति के साथ अपने आपको जोड़कर अधिक शक्ति का संचय करता है, अपनी सामर्थ्य बढ़ाता है और उस सामर्थ्य के बल से अपूर्णता को दूर कर पूर्णता की ओर तीव्र गति से बढ़ता जाता है, यही योग का उद्देश्य है इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हठयोग, राजयोग, जपयोग, लययोग, तन्त्रयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, स्वरयोग, ऋजुयोग, महायोग, कुर्डलिनीयोग, बुद्धियोग, समत्वयोग, प्राणयोग, ध्यानयोग, सांख्ययोग, जड़योग, सूर्ययोग, चन्द्रयोग, सहजयोग, प्रणवयोग, नित्ययोग आदि ८४ प्रसिद्ध योग और ७०० अप्रसिद्ध योग हैं। इन विभिन्न योगों की कार्यप्रणाली, विधि व्यवस्था और साधना पद्धति एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न है तो भी इन सबकी जड़ में एक ही तथ्य काम कर रहा है। माध्यम सबके अलग-अलग हैं पर उन सभी माध्यमों द्वारा एक ही तत्व ग्रहण किया जाता है—तुच्छता से महानता की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर, असत् से सत् की ओर, तम से प्रकाश की ओर मृत्यु से अमृत की ओर, जो प्रगति होती है उसी का नाम योग है। अणु आत्मा को परम आत्मा बनाने का प्रयत्न ही योग है। यह प्रयत्न जिन-जिन मार्गों से होता है, उन्हें योग मार्ग कहते हैं।

एक स्थान तक पहुँचने के लिए विभिन्न दिशाओं से विभिन्न मार्ग होते हैं, आत्मविस्तार के भी अनेक मार्ग हैं। इन मार्गों में स्थूल दृष्टि से भिन्नता होते हुए भी सूक्ष्म दृष्टि से पूर्णरूपेण एकता है। जैसे भूख बुझाने के लिए कोई रोटी, कोई चावल, कोई दलिया, कोई मिठाई, कोई फल कोई माँस खाता है। यह सब चीजें एक दूसरे से बिलकुल प्रथक् प्रकार की हैं तो भी इन सबसे 'भूख मिटाना' यह एक ही उद्देश्य पूर्ण होता है। इसी प्रकार योग के नाना रूपों का एक ही प्रयोजन है—आत्म भाव को विस्तृत करना तुच्छता को महानता की पूँछ के साथ बाँध देना।

अनेक प्रकार के योगों में एक 'गृहस्थ योग' भी है। गम्भीरतापूर्वक इसके ऊपर जितना ही विचार किया जाता है। यह उतना ही अधिक महत्वपूर्ण, सर्वसुलभ तथा स्वल्प श्रमसाध्य है। इतना होते हुए भी इससे प्राप्त होने वाली जो सिद्धि है, वह अन्य किसी भी योग से कम नहीं वरन् अधिक ही है। गृहस्थाश्रम अन्य तीनों आश्रमों की पुष्टि और वृद्धि करने वाला है, दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास यह तीनों ही आश्रम गृहस्थाश्रम को व्यवस्थित और सुख-शान्तिमय बनाने के लिए हैं। ब्रह्मचारी इसलिए ब्रह्मचर्य का पालन करता है कि उसका भावी गृहस्थ जीवन शक्तिपूर्ण और समृद्ध हो। वानप्रस्थ और संन्यासी लोग लोक हित की साधना करते हैं, संसार को अधिक सुख-शान्तिमय बनाने का प्रयत्न करते हैं। यह 'लोक' और संसार क्या है ? दूसरे शब्दों में गृहस्थाश्रम ही है। तीनों आश्रम एक ओर और गृहस्थाश्रम दूसरी ओर। यह दोनों पलड़े बराबर हैं। यदि गृहस्थाश्रम की व्यवस्था बिगड़ जाय तो अन्य तीनों आश्रमों की मृत्यु ही समझिये।

गृहस्थ धर्म का पालन करना धर्मशास्त्रियों के अनुसार मनुष्य का आवश्यक कर्त्तव्य है। लिखा है—सन्तान के बिना पितर नरक को जाते हैं, उनकी सद्गति नहीं होती। लिखा है कि सन्तान उत्पन्न किये बिना पितृ ऋण से छुटकारा नहीं मिलता। कहते हैं कि जिसके संतति न हो उनका प्रातःकाल मुख देखने से पाप लगता है। इस प्रकार के और भी अनेक मन्तव्य हिन्दू धर्म में प्रचलित हैं जिनका तात्पर्य यह है कि गृहस्थ धर्म का पालन करना आवश्यक है कि इतना जोर क्यों दिया गया है ? इस बात पर जब तात्विक दृष्टि से गम्भीर विवेचना की जाती है, तब प्रकट होता है कि गृहस्थ धर्म एक प्रकार की योग साधना है जिससे आत्मिक उन्नति होती है, स्वर्ग मिलता है, मुक्ति प्राप्त होती है और ब्रह्म निर्माण की सिद्धि मिलती है। प्राचीन समय में अधिकांश ऋषि गृहस्थ थे। वशिष्ठजी के सौ पुत्र थे, अत्रिजी की स्त्री अनसूया थीं, गौतम की पत्नी अहिल्या थी, जमदग्नि के पुत्र परशुराम थे, च्यवन की स्त्री सुकन्या थी, याज्ञवल्क्य की दो स्त्री गार्गी और मैत्रेयी थीं, लोमश के पुत्र शृंगी ऋषि थे। वृद्धावस्था में संन्यास लिया हो यह बात दूसरी है परन्तु प्राचीनकाल में जितने भी ऋषि हुए हैं। वे प्रायः सभी गृहस्थ रहे हैं। गृहस्थ में ही उन्होंने तप किये हैं और ब्रह्म निर्माण पाया है। योगिराज कृष्ण और योगेश्वर शंकर दोनों को ही हम गृहस्थ रूप में देखते हैं। प्राचीनकाल में बाल रखने, नंगे बदन रहने, खड़ाऊ पहनने, मृगछाला बिछाने का आम रिवाज था। घनी आबादी होने के कारण छोटे गाँव और छोटी कुटियाँ होती थीं। इन चिन्हों के आधार पर गृहस्थ ऋषियों को गृहत्यागी मानना अपने अज्ञान का प्रदर्शन करना है।

आत्मोन्नति करने के लिए गृहस्थधर्म एक प्राकृतिक, स्वाभाविक, आवश्यक और सर्वसुलभ योग है। जब तक लड़का अकेला रहता है, तब उसकी आत्म भावना का दायरा छोटा रहता है। वह अपने ही खाने, पहिनने, पढ़ने, खेलने तथा प्रसन्न रहने की सोचता है। उसका

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

कार्य क्षेत्र अपने आप तक ही सीमित रहता है। जब विवाह हो जाता है तो यह दायरा बढ़ता है, वह अपनी पत्नी की सुख-सुविधाओं के बारे में सोचने लगता है अपने सुख और मर्जी पर प्रतिबन्ध लगाकर पत्नी की आवश्यकतायें पूरा करता है। उसकी सेवा सहायता और प्रसन्नता में अपनी शक्तियों को खर्च करता है। कहने का तात्पर्य यह कि आत्म भाव की सीमा बढ़ती है, एक से बढ़कर दो तक आत्मीयता फैलती है। इसके बाद एक छोटे शिशु का जन्म होता है। इस बालक की सेवा-शुश्रूषा और पालन-पोषण में निःस्वार्थ भाव में इतना मनोयोग लगाता है कि अपनी निज सुख-सुविधाओं का ध्यान मनुष्य भूल जाता है और बच्चे की सुविधा का ध्यान रखता है। इस प्रकार यह सीमा दो से बढ़कर तीन होती है। क्रमशः यह मर्यादा बढ़ती है पिता कोई मधुर मिष्ठान्न लाता है तो उसे खुद नहीं खाता वरन् बच्चों को बाँट देता है, खुद कठिनाई में रहकर भी बालकों की तन्दुरुस्ती, शिक्षा और प्रसन्नता का ध्यान रखता है। दिन-दिन खुदगर्जी के ऊपर अंकुश लगता जाता है—आत्म संयम सीखता जाता है और स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी, परिजन आदि में अपनी आत्मीयता बढ़ाता जाता है। क्रमशः आत्मोन्नति की ओर चलता है।

भगवान् मनु का कथन है—"पुरुष उसकी पत्नी और सन्तान मिलाकर ही एक 'पूरा मनुष्य' होता है। जब तक यह सब नहीं होता तब तक वह अधकचरा, अधूरा और खण्डित मनुष्य है। जैसे प्रवेशिका परीक्षा पास किये बिना कालेज में प्रवेश नहीं हो सकता, उसी प्रकार गृहस्थ की शिक्षा पाये बिना वानप्रस्थ, संन्यास आदि में प्रवेश करना कठिन है। आत्मीयता का दायरा क्रमशः ही बढ़ता है। अकेले से, पत्नी-पति दो में, फिर बालक के साथ तीन में, सम्बन्धियों में, पड़ौसियों में गाँव, प्रान्त, प्रदेश, राष्ट्र, विश्व में यह आत्मीयता क्रमशः बढ़ती है। आगे चलकर सारी मनुष्य जाति में आत्म भाव फैलता है फिर पशु-पक्षियों में, कीट-पतंगों में, जड़ चैतन्य में यह आत्मभाव विकसित हो जाता है। जो प्रगति एक से बढ़कर दो में, दो से तीन में हुई थी, वही उन्नति धीरे-धीरे आगे बढ़ती जाती है और मनुष्य सम्पूर्ण चर-अचर में आत्म सत्ता को ही समाया देखता है, उसे परमात्मा की दिव्य ज्योति सर्वत्र जगमगाती दीखती है। एक अपने मन को जितने अंशों में फैलाया जाता है, उतने अंशों में अपनी खुदगर्जी पर संयम होता है। बाल-बच्चों के होने पर यह आत्म संयम और अधिक बढ़ता है, अन्त में जीव पूर्णतया आत्म संयमी हो जाता है। दूसरे के लिए अपने आप को भूलने का अभ्यास क्रमशः इतना अधिक पुष्ट हो जाता है कि अपना कुछ रहता ही नहीं, सब कुछ बिराना हो जाता है। 'मेरा मुझको कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर' की ध्वनि उसके अन्दर से निकलने लगती है। खुदी मिटती जाती है और खुदा मिलता जाता है। 'मैं' का अन्त होने से 'तू' ही शेष रहता है। गृहस्थ योग की छोटी-सी सर्वसुलभ साधना जब अपनी विकसित अवस्था तक पहुँचती है तो आत्मा, परमात्मा बन जाती है। अपूर्णता से छूटती है और पूर्णता उपलब्ध करती है और योग का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो जाता है।

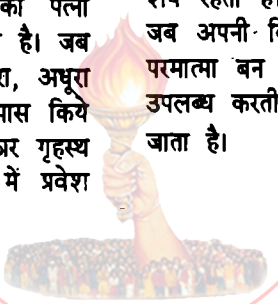

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँच स्थापनाएँ

युगदृष्टा के स्तर की अवतारी सत्ता के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में जितना भी कुछ किया, उसकी मिसाल कहीं देखने को नहीं मिलती। करोड़ों व्यक्तियों के मनों का निर्माण, उनके सोचने के तरीके में बदलाव एवं युग निर्माण की पृष्ठभूमि बनाकर रख देने का कार्य इन्हीं के स्तर की सत्ता कर सकती थी, जो लाखों वर्षों में कभी-कभी धरती पर आती है। उनके द्वारा की गयी स्थापनाओं का जब प्रसंग आता है तब ईंट-गारे-चूने-सीमेंट से बने भवनों से पहले उनकी स्नेह-संवेदना से सिक्त हुए, ममत्व में स्नानकर उनके अपने हो गये लाखों व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, जिनने उनके एक इशारे पर अपना सब कुछ उनको अर्पित कर दिया। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में कभी ऐसा ही वातावरण भारत के कोने-कोने में दिखाई देता था, जब हर घर से सत्याग्रही निकलकर आ रहे थे। भावनाओं का आवेग चिरस्थायी नहीं रहता। वे ही लोग जो कभी राष्ट्र निर्माण के लिए अपना सब कुछ छोड़, पढ़ना-लिखना छोड़ देश को आजाद बनाने के लिए कूद पड़े थे, कभी गड़बड़ाने न पाएँ, उसी के लिए बापू ने आजादी के बाद काँग्रेस भंग कर देने व सभी को एक आदर्श स्वयं-सेवक की तरह दरिद्र नारायण का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में लग जाने की सलाह दी थी।

सभी इस तथ्य को जानते हैं कि ऐसा नहीं हुआ, राष्ट्र का कीर्ति-स्तम्भ रूपी वह महापुरुष भी एक वर्ष के अंदर ही शहादत को प्राप्त हो चला गया। गिने-चुने उनके आदर्शों पर चलने वाले रह गये, अवसरवादियों को राजनेतृत्व भाने लगा एवं राष्ट्र आजाद होकर भी उनके हाथ में आ गया जो ब्रिटिश तो नहीं थे किन्तु, उसी रंग में रँगे सत्ता के उन्माद में काम करने वाले शासक थे- सृजेता नहीं। जिंदा रहा तो मात्र बापू का दर्शन बुनियादी आधार पर टिका- मानव को बनाने का तंत्र-आश्रम तंत्र जो सेवाग्राम-साबरमती आश्रम के रूप में कार्य करता रहा और वह भी शीर्ष-पुरुष के न रहने, बिनोवाजी के चले जाने के बाद अस्तित्व व महत्व की दृष्टि से गौण हो गया। परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी दिव्य-दृष्टि से यह सब पूर्व में ही देख लिया था कि कोई भी भव्य निर्माण, आश्रम या तंत्र बनाने से पूर्व राष्ट्र को सांस्कृतिक, भौतिक, आध्यात्मिक आजादी दिलाने वाले अगणित व्यक्ति तैयार करने पड़ेंगे। १९११ में आज से ८४ वर्ष पूर्व वि.संवत् २०८६ में जन्मे, राष्ट्र की आजादी में उन्मत्त बने श्रीराममत्त कहलाने वाले, आचार्यश्री ने पहले स्वयं को तपाया, वैचारिक क्रान्ति के निर्माण का आधारभूत तंत्र स्वयं व परमवंदनीया माताजी के रूप में खड़ा किया, 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका अपनी लेखनी से लिखी, ममत्व भरी चिट्ठियों व छोटी-छोटी एक आने की किताबों से जन-जन के मन को छुआ, तब जाकर अपने एक लक्ष के २४ गायत्री महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर उन्होंने गायत्री तपोभूमि, मथुरा की स्थापना की बात १९५२-५३ में सोची। सबसे पहली मंत्र दीक्षा वहीं पर १९५३ में दी व यह मानते हुए कि बिना आध्यात्मिक आधार बनाये, मनोभूमि में, भावनाओं के स्तर पर बदलाव लाये कोई क्रान्ति सफल नहीं हो सकती, धीमी खुराक देते हुए हर व्यक्ति को गायत्री व यज्ञ के तत्त्वदर्शन से जोड़ते हुए चले गये। गायत्री परिवार रूपी विराट वृक्ष का मूल आधार वह स्थापना है जो जन-जन के मनों में पहले हुई- उनकी भाव संवेदनाओं के उदात्तीकरण के रूप में सम्पन्न हुई व उनके अंदर अपनी गुरुसत्ता को त्याग करने की, यज्ञीय जीवन अपनाने की प्रेरणा बलवती होने लगी। उन्होंने सर्वमेध के रूप में अपना सर्वस्व बलिदान एवं नरमेध के रूप में अपने आप को समाज के हित न्यौछावर करने की भावना से दो यज्ञ किये। अपनी जमींदारी के बाण्ड बेचकर एवं परमवंदनीया माताजी के कीमती सोने के जेवर (ढाई सौ तोले) बेचकर जो स्वेच्छा से सम्पन्न हुआ, एक स्थापना भवन के रूप में जो हुई- वह थी **गायत्री तपोभूमि, मथुरा** जो वृन्दावन रोड पर ऋषि दुर्वासा की जन्मस्थली पर बनी आज से ४२ वर्ष पूर्व १९५३ में। प्रारंभिक स्थापना यों अखण्ड ज्योति संस्थान को माना जा सकता है जहाँ अखण्ड दीपक अपनी जन्मभूमि आँवलखेड़ा से जो वहाँ से मात्र ४० मील दूर थी, स्थापित किया गया था एवं प्रारंभिक तप-तितिक्षा वहीं पर १९४१ से, तपोभूमि की स्थापना से भी १२ वर्ष पूर्व आरम्भ हो गयी थी। इस प्रकार जन-जन के मनों का निर्माण उनके अंतःस्थल में प्रवेश कर उनके अंदर देवत्व के जागरण की ललक पैदा करने वाली पृष्ठभूमि पर स्थापनाओं का क्रम बना। किराये की ऐसी हवेली जिसे भुतहा हवेली कहा

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

जाता था, में अखण्ड दीपक की स्थापना, उसके समक्ष तप, **अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा** के रूप में विकसित हुआ एवं एक और दूसरा निर्माण मथुरा में ही गायत्री तपोभूमि के रूप में हुआ जो कि ३ मील दूर वृन्दावन रोड पर १९५३ में बनाई गई। १९५३ में क्रमशः सुसंगठित गायत्री परिवार के बनने की प्रक्रिया चल पड़ी।

इस प्रारंभिक भूमिका को समझने के बाद ही परमपूज्य गुरुदेव की पाँच मूल स्थापनाओं एवं बाद में देश के कोने-कोने में बनी भव्य इमारतों के रूप में शक्तिपीठों, प्रज्ञा संस्थानों, भारत व विश्वभर में घर-घर में स्थापित स्वाध्याय मण्डलों व गायत्री परिवार की शाखाओं, प्रज्ञापीठों, चरणपीठों का महत्त्व समझा जा सकता है। नहीं तो जैसे अन्यान्य आश्रम-संस्थान बनते हैं, ऐसे इनका भी वर्णन किया जा सकता था व यह कहा जा सकता था कि यह वैभवपूर्ण स्थापनाएँ पूज्यवर ने कीं। उनमें यदि प्राण फूँके गये हों, प्राणवान व्यक्ति वहाँ रहते हों व उस शक्ति के महा-अवसान के बाद भी वे सतत् उसी दिशा में चल रहे हों तो माना जाना चाहिए कि प्रारंभिक पुरुषार्थ जो किया गया, वह औचित्यपूर्ण था।

परमपूज्य गुरुदेव की महत्त्वपूर्ण पाँच स्थापनाएँ इस प्रकार हैं–

(१) युगतीर्थ आँवलखेड़ा (२) अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा (३) गायत्री तपोभूमि, मथुरा (४) शान्तिकुंज, गायत्री तीर्थ, सप्तसरोवर, हरिद्वार तथा (५) ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, सप्तसरोवर, हरिद्वार ।

युगतीर्थ आँवलखेड़ा का नाम सबसे पहले इसलिए लिखा कि यहीं पर वह युगपुरुष संवत् १९६८ की आश्विन कृष्ण त्रयोदशी तिथि के दिन, ब्राह्ममुहूर्त में, जो अँग्रेजी तारीख से २० सितम्बर, १९११ के दिन आती थी, में जन्मा। एक श्रीमंत ब्राह्मण परिवार में, जहाँ धन की कोई कमी नहीं थी, पूरा परिवार संस्कारों से अनुप्राणित, पिता भागवत के प्रकाण्ड पंडित, बहुत बड़ी जागीर के मालिक। आज जहाँ पूज्यवर की स्मृति में एक विराट स्तंभ की, एक चबूतरे की तथा उनके कर्तृत्व रूपी शिलालेखों की स्थापना हुई है- वहीं पूज्यवर ने शरीर से जन्म लिया था। समीप बनी दो कोठरियाँ जो काल प्रवाह के क्रम में गिर सी गयी थीं, जीर्णोद्धार कर वैसी ही निर्मित कर दी गयी हैं- जैसी उनके समय में थीं। जन्मभूमि का कण-कण उस दैवीसत्ता की चेतना से अनुप्राणित है। उनके हाथ से खोदा कुँआ जिसे पूरे गाँव का एकमात्र मीठे जल वाला कुँआ माना गया- वह अभी भी है, उनके हाथ से रोपा नीम का पेड़ एवं वह बैठक जहाँ स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में सब बैठकर चर्चा करते थे, आज भी उन दिनों की याद दिलाते हैं। पास में ही दो कोठरियाँ हैं जिनमें से एक कक्ष में वह स्थान है जहाँ दीपक के प्रकाश में से सूक्ष्म शरीरधारी गुरुसत्ता प्रकट हुई थी तथा जिसने उनके जीवन की दिशाधारा का १९२६ के बाद के क्रम का निर्धारण कर दिया था। यह सब देखकर मस्तिष्क-पटल पर वह दृश्य उभर आता था, जिसे गुरुसत्ता ने कभी देखा था व जो गायत्री परिवार की स्थापना का मूल आधार बना। आँवलखेड़ा में ही उनकी माताजी की स्मृति में स्थापित माता दानकुँवरि इण्टर कालेज है जो उनके द्वारा दान दी गयी जमीन में प्रदत्त धनराशि द्वारा विनिर्मित है। १९६३ से चल रहे इस इंटर कालेज से कई मेधावी छात्र निकल कर आत्म-निर्भर बने हैं व उच्च पदों पर पहुँचे हैं।

१९७९-८० में गायत्री शक्तिपीठ एवं कन्या इंटर कॉलेज की स्थापना का ताना-बाना बुना जाने लगा जो एक विशाल शक्तिपीठ तथा आसपास के दो सौ ग्रामों की बालिकाओं के पठन-पाठन की व्यवस्था करने वाले, उन्हें सुशिक्षित, संस्कारवान, आत्मावलम्बी बनाने वाले कन्या महाविद्यालय का अब रूप ले चुका है। प्रथम पूर्णाहुति हेतु इसी भूमि को जो शक्तिपीठ-जन्मभूमि-ग्रामीण क्षेत्र के चारों ओर है, इसीलिए चुना गया कि यहाँ से उद्भूत प्राण ऊर्जा से यहाँ आने वाला हर संकल्पित साधक अनुप्राणित होकर जाए व राष्ट्र के नव-निर्माण की सांस्कृतिक व भावनात्मक क्रान्ति की पृष्ठभूमि रख सके। यहाँ पूज्यवर १९३६-३७ तक ही रहे, कुछ दिन आगरा रहकर १९४०-४१ में मथुरा चले गये, जहाँ दो-तीन मकान बदलने के बाद वर्तमान मकान किराये पर लिया जिसे आज अखण्ड-ज्योति संस्थान कहते हैं।

अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामण्डी, मथुरा में स्थित है। परमपूज्य गुरुदेव सीमित साधनों में अपने अखण्ड दीपक के साथ यहीं रहने लगे एवं यहीं से क्रमशः आत्मीयता विस्तार की जन-जन तक अपने क्रान्तिकारी चिंतन के विस्तार की प्रक्रिया 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका, जो आगरा से ही आरम्भ कर दी गयी थी, की 'गायत्री चर्चा' स्तम्भ व अन्यान्य लेखों की पंक्तियों के माध्यम से सम्पन्न होने लगी। व्यक्तिगत पत्रों द्वारा उनके अंतःस्थल को स्पर्श कर एक महान स्थापना का बीजारोपण होने लगा। यहीं पर अगणित दुःखी, तनावग्रसित

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org

व्यक्तियों ने आकर उनके स्पर्श से नये प्राण पाये तथा उनके व परमवंदनीया माताजी के हाथों से भोजन-प्रसाद पाकर उनके अपने होते चले गये। हाथ से बने कागज पर छोटी ट्रेडिल मशीनों द्वारा यहीं पर अखण्ड ज्योति पत्रिका छापी जाती थी व छोटी-छोटी किताबों द्वारा लागत मूल्य पर उसे निकालने योग्य खर्च निकलता था। बगल की एक छोटी-सी कोठरी में जहाँ अखण्ड दीपक जलता था, आज पूजाघर विनिर्मित है। पूरी बिल्डिंग को खरीद कर उनके सुपुत्र ने एक नया आकार व मजबूत आधार दे दिया है किन्तु यह कोठरी अंदर से वैसी ही रखी गयी है जैसी पूज्यवर के समय में १९४२-४३ में रही होगी। तब से लेकर आगामी ३० वर्ष का साधनाकाल-लेखनकाल पूज्यवर का इसी घीयामण्डी के भवन में छोटी-छोटी दो कोठरियों में गहन तपश्चर्या के साथ बीता। तपोभूमि निर्माण की पृष्ठभूमि यहीं बनी, १९५८ में सहस्र कुण्डी यज्ञ की आधारशिला यहीं रखी गयी, यहीं सारी योजना बनी एवं विधिवत-गायत्री परिवार बनता चला गया। रोज आने वाले पत्रों को स्वयं परमवंदनीया माताजी पढ़ती जातीं एवं पूज्यवर इतनी ही देर में जवाब लिखते जाते, यही सूत्र संबंधों के सुदृढ़ बनने का आधार बना। हर परिजन को तीन दिन में जवाब मिल जाता, शंका-समाधान होता चला जाता एवं देखते-देखते एक विराट गायत्री परिवार बनता चला गया। गायत्री महाविज्ञान के तीनों खण्ड, युग निर्माण परक साहित्य, आर्ष-ग्रन्थों के भाष्य को अंतिम आकार देने का कार्य यहीं सम्पन्न हुआ। जनसम्मेलनों, छोटे-बड़े यज्ञों एवं १००८ कुण्डी पाँच विराट् यज्ञों में पूज्यवर यहीं से गये एवं विदाई सम्मेलन की रूपरेखा बनाकर स्थायी रूप से इस घर से १९७१ की २० जून को विदा लेकर चले गये। इस संस्थान के कण-कण में जहाँ आज १० लाख से अधिक संख्या में हिन्दी सहित सभी भाषाओं में अखण्ड ज्योति पत्रिका के प्रकाशन, विस्तार, डिस्पैच आदि का एक विराट तंत्र स्थापित है, परमपूज्य गुरुदेव की चेतना संव्याप्त अनुभव की जा सकती है। भले ही बहिरंग का कलेवर बदल गया हो, अंदर प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की सतत विद्यमान प्राणचेतना के स्पन्दन वहाँ विद्यमान हैं, यह प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है।

गायत्री तपोभूमि, मथुरा को परमपूज्य गुरुदेव की चौबीस महापुरश्चरणों की पूर्णाहुति पर की गयी स्थापना माना जा सकता है, जिसे विनिर्मित ही गायत्री परिवार रूपी संगठन के विस्तार के लिए किया गया था। इसकी स्थापना से पूर्व चौबीस सौ तीर्थों के जल व रज को संग्रहीत करके यहाँ उनका पूजन किया गया, एक छोटी किन्तु भव्य यज्ञशाला में अखण्ड अग्नि स्थापित की गयी तथा एक गायत्री महाशक्ति का मन्दिर विनिर्मित किया गया। चौबीस सौ करोड़ गायत्री मंत्रों का लेखन जो श्रद्धापूर्वक नैष्ठिक साधकों द्वारा किया गया था, यहाँ पर संरक्षित कर रखा गया है। पू. गुरुदेव की साधनास्थली व प्रातःकाल की लेखनी की साधना की कोठरी यदि अखण्ड ज्योति संस्थान में थी तो उनकी जन-जन से मिलने, साधनाओं द्वारा मार्गदर्शन देने की कर्म-भूमि गायत्री तपोभूमि थी। यहीं पर १०८ कुण्डी गायत्री महायज्ञ में १९५३ में पहली बार पूज्यवर ने साधकों को मंत्र दीक्षा दी। यहीं पर १९५६ में नरमेध यज्ञ तथा १९५८ में विराट सहस्रकुण्डी यज्ञायोजन सम्पन्न हुए। श्रेष्ठ नररत्नों का चयन कर गायत्री परिवार को विनिर्मित करने का कार्य यहीं व्यक्तिगत मार्गदर्शन द्वारा सम्पन्न हुआ। हिमालय प्रवास से लौटकर पूज्य आचार्यश्री ने युग निर्माण योजना के शत-सूत्री कार्यक्रम एवं सत्संकल्प की तथा युग निर्माण विद्यालय के एक स्वावलम्बन प्रधान शिक्षा देने वाले तंत्र के आरम्भ होने की घोषणा की। यह विधिवत् १९६४ से आरम्भ किया गया एवं अभी भी सफलतापूर्वक चल रहा है। जिस कक्ष में परमपूज्य गुरुदेव सभी से मिला करते थे, अभी भी यहाँ देखा जा सकता है। भव्य निर्माण परमपूज्य गुरुदेव की १९७१ की विदाई के बाद यहाँ हो गया है किन्तु, कण-कण में उनकी प्राणचेतना का दर्शन किया जा सकता है। विराट प्रज्ञानगर, युग निर्माण विद्यालय, साहित्य की छपाई हेतु बड़ी-बड़ी ऑफसेट मशीनें तथा युग निर्माण साहित्य जो पूज्यवर ने जीवन भर लिखा, उसका वितरण-विस्तार तंत्र यहाँ पर देखा जा सकता है।

शान्तिकुंज, हरिद्वार ऋषि परम्परा के बीजारोपण केन्द्र के रूप में १९७१ में स्थापित किया गया था, जब परमपूज्य गुरुदेव मथुरा स्थायी रूप से छोड़कर परमवंदनीया माताजी को अखण्ड ज्योति दीपक की रखवाली हेतु यहाँ छोड़कर हिमालय में चले गये। गुरुसत्ता के निर्देश पर वे पुनः एक वर्ष बाद लौटे व तब शांतिकुंज को उनने एक बड़ा विराट रूप देने, सभी ऋषिगणों की मूलभूत स्थापनाओं को यहाँ साकार बनाने का निश्चय किया। इससे पूर्व परमवंदनीया माताजी ने २४ कुमारी कन्याओं के साथ अखण्ड दीपक के समक्ष २४० करोड़

गायत्री मंत्र का अखण्ड अनुष्ठान आरंभ कर दिया था। पूज्यवर ने प्राण प्रत्यावर्तन सत्र, जीवन साधना सत्र, वानप्रस्थ सत्र आदि के माध्यम से विभिन्न क्षेत्र में सक्रिय कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता यहीं गढ़े। यह सत्र शृंखला कल्प साधना, संजीवनी साधना सत्रों के रूप में तब से ही ९ दिवसीय सत्रों व एक माह के युग शिल्पी प्रशिक्षण सत्रों के रूप में चल रही है, अभी भी अनवरत उसमें आने वालों का ताँता लगा रहता है। पहले से ही सब अपनी बुकिंग इसमें करा लेते हैं।

शांतिकुंज को गायत्री तीर्थ का रूप देकर सप्तऋषियों की मूर्तियों की स्थापना १९७८-७९ में की गयी, एक देवात्मा हिमालय विनिर्मित किया गया एवं यहाँ सभी संस्कारों को सम्पन्न करते रहने का क्रम बन गया जो सतत् चल रहा है। नित्य यहाँ दीक्षा, पुंसवन, नामकरण, विद्यारम्भ, यज्ञोपवीत, विवाह, श्राद्ध-तर्पण आदि संस्कार सम्पन्न होते हैं। इस बीच परमवंदनीया माताजी ने जागरण सत्र शृंखलाएँ सम्पन्न करना आरम्भ रखा। देव कन्याओं को प्रशिक्षित कर पूरे भारत में जीप टोलियों में भेजा गया। इनके माध्यम से तीन वर्ष तक भारत के कोने-कोने में तुमुलनाद होता रहा।

शांतिकुंज का गायत्री नगर जो आज एक विराट स्थापना के रूप में, एक एकेडमी के रूप में नजर आता है व जिसमें एक बार में एक साथ दस हजार व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं, १९८१-८२ में बनना आरम्भ हुआ । विलक्षण, दुर्लभ जड़ी-बूटियों के पौधे यहाँ लगाये गये तथा प्रखर प्रज्ञा-सजल श्रद्धा रूपी तीर्थस्थली का पूज्यवर ने अपने सामने निर्माण कराया। यहीं उनके निर्देशानुसार उनके शरीर छोड़ने पर दोनों सत्ताओं को अग्नि समर्पित की जानी थी। स्वावलम्बन विद्यालय से लेकर एक विशाल चौके का निर्माण एवं गायत्री विद्यापीठ से लेकर भारत के सभी सरकारी विभागों के प्रशिक्षण के तंत्र की स्थापना यहाँ पर की गयी है एवं यह एक जीता-जागता तीर्थ अब बन गया है, जहाँ पर उज्ज्वल भविष्य की पूर्व झलक देखी जा सकती है। कम्प्यूटरों से सज्जित विशाल कार्यालय से लेकर पत्राचार विद्यालय जहाँ नित्य हजारों पत्रों के द्वारा पूरे तंत्र का मार्गदर्शन किया जाता है, यहाँ की विशेषता है।

ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान परमपूज्य गुरुदेव की अभिनव पाँचवीं स्थापना है, जहाँ पर विज्ञान और अध्यात्म के समन्वय का अभिनव शोध कार्य चल रहा है। इसे १९७१ की गायत्री जयंती पर आरम्भ किया गया था। वर्तमान शांतिकुंज- गायत्री तीर्थ से आधा किलोमीटर दूरी पर गंगातट पर स्थित यह संस्थान अपनी आकर्षक बनावट के कारण सहज ही सबके मनों को मोहकर आमंत्रित करता रहता है। इसमें तीन मंजिलों में प्रथम तल पर एक विज्ञान के उपकरणों से सुसज्जित यज्ञशाला विनिर्मित है तथा चौबीस कक्षों में गायत्री महाशक्ति की चौबीस मूर्तियाँ बीजमंत्रों व उनकी फलश्रुतियों सहित स्थापित हैं। द्वितीय तल पर एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला है, जहाँ ऐसे उपकरण स्थापित हैं जो यह जाँच-पड़ताल करते हैं कि साधना से पूर्व व पश्चात्, यज्ञादि मंत्रोच्चारण के पूर्व व पश्चात् क्या-क्या परिवर्तन शरीर-मन की गतिविधियों व रक्त आदि संघटकों में देखने में आये। इनके आधार पर साधकों को साधना संबंधी परामर्श दिया जाता है। यहाँ पर वनौषधियों का विश्लेषण भी किया जाता है तथा यज्ञ ऊर्जा-मंत्र शक्ति का क्या प्रभाव साधक की मस्तिष्कीय तरंगों, जैव विद्युत आदि पर पड़ा, यह देखा जाता है। विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक परीक्षण भी यहाँ किये जाते हैं। तृतीय तल पर एक विशाल ग्रंथागार स्थापित है, जहाँ विश्वभर के शोध प्रबंध वैज्ञानिक अध्यात्मवाद पर एकत्रित किये गये हैं। यहाँ प्रायः ४५००० से अधिक ग्रंथ हैं, जिनमें कई पुरातन पाण्डुलिपियाँ हैं। यह अपने आप में एक अनूठा संकलन है जो और कहीं एक साथ देखने में नहीं मिलता।

परमपूज्य गुरुदेव की उपरोक्त पाँच स्थापनाएँ किसी को भी यह परिचय दे सकती हैं कि किस विलक्षण दृष्टास्तर की वह महासत्ता थी जो हम सबके बीच अपना लीली संदोह रचकर चली गयी। प्रत्यक्ष तो यह केन्द्रीय पाँच स्थापनाएँ नजर आती हैं किन्तु ४८०० से अधिक अपने भवनों वाले प्रज्ञा संस्थान ४०००० से अधिक प्रज्ञामण्डल व स्वाध्याय मण्डल तथा अगणित गायत्री परिवार की शाखाएँ यदि इनमें मिलाई जाएँ तो इनका मूल्य राशि में आँका नहीं जा सकता। यही वह सब है जो उस महापुरुष को एक अवतारी स्तर की सत्ता के रूप में प्रतिष्ठापित करता है व जिसके कर्तृत्व पर श्रद्धावनत होने का मन करता है। ❑❑❑

www.awgp.org www.vicharkrantibooks.org

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य का जीवनदर्शन : समग्र वाङ्मय

परमपूज्य गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य ने जीवन भर जो अपनी लेखनी से लिखा, औरों को प्रेरित कर उनसे सृजनात्मक लेखन करवाया, पुस्तकों-पत्रिकाओं में जो प्रकाशित हुआ, समय-समय पर उनने अमृतवाणी के माध्यम से जो विचारों की अभिव्यक्ति की, विचारसार व सूक्तियाँ जो वे लिख गये या अनायास कभी कह गये तथा पत्रों के माध्यम से जो अंतरंग स्पर्श जन-जन को दिया, वह समग्र इस वाङ्मय के खण्डों में है । जिनके नाम इस प्रकार हैं :-

१. युगद्रष्टा का जीवन-दर्शन
समग्र वाङ्मय का परिचय
२. जीवन देवता की साधना-आराधना
३. उपासना-समर्पण योग
४. साधना पद्धतियों का ज्ञान और विज्ञान
५. साधना से सिद्धि-१
६. साधना से सिद्धि-२
७. प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर
८. ईश्वर कौन है, कहाँ है; कैसा है ?
९. गायत्री महाविद्या का तत्वदर्शन
१०. गायत्री साधना का गुह्य विवेचन
११. गायत्री साधना के प्रत्यक्ष चमत्कार
१२. गायत्री की दैनिक एवं विशिष्ट अनुष्ठान-परक साधनाएँ
१३. गायत्री की पंचकोशी साधना एवं उपलब्धियाँ
१४. गायत्री साधना की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि
१५. सावित्री, कुण्डलिनी एवं तंत्र
१६. मरणोत्तर जीवन : तथ्य एवं सत्य
१७. प्राणशक्ति : एक दिव्य विभूति
१८. चमत्कारी विशेषताओं से भरा मानवी मस्तिष्क
१९. शब्द ब्रह्म-नाद ब्रह्म
२०. व्यक्तित्व विकास हेतु उच्चस्तरीय साधनाएँ
२१. अपरिमित संभावनाओं का आगार मानवी व्यक्तित्व
२२. चेतन, अचेतन एवं सुपर चेतन मन
२३. विज्ञान और अध्यात्म परस्पर पूरक
२४. भविष्य का धर्म : वैज्ञानिक धर्म
२५. यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान
२६. यज्ञ : एक समग्र उपचार प्रक्रिया
२७. युग-परिवर्तन कैसे और कब ?
२८. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-१
२९. सूक्ष्मीकरण एवं उज्ज्वल भविष्य का अवतरण-२
(सतयुग की वापसी)
३०. मर्यादा पुरुषोत्तम राम
३१. संस्कृति-संजीवनी श्रीमद्भागवत एवं गीता
३२. रामायण की प्रगतिशील प्रेरणाएँ
३३. षोडश संस्कार विवेचन
३४. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व
३५. समस्त विश्व को भारत के अजस्र अनुदान
३६. धर्मचक्र प्रवर्त्तन एवं लोकमानस का शिक्षण
३७. तीर्थ सेवन : क्यों और कैसे ?
३८. प्रज्ञोपनिषद्
३९. नीरोग जीवन के महत्त्वपूर्ण सूत्र
४०. चिकित्सा उपचार के विविध आयाम
४१. जीवेम शरदः शतम्
४२. चिरयौवन एवं शाश्वत सौन्दर्य
४३. हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ
४४. मरकर भी अमर हो गये जो
४५. सांस्कृतिक चेतना के उन्नायक : सेवाधर्म के उपासक
४६. भव्य समाज का अभिनव निर्माण
४७. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता
४८. समाज का मेरुदण्ड सशक्त परिवार तंत्र
४९. शिक्षा एवं विद्या
५०. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-१
५१. महापुरुषों के अविस्मरणीय जीवन प्रसंग-२
५२. विश्व वसुधा जिनकी सदा ऋणी रहेगी
५३. धर्मतत्त्व का दर्शन व मर्म
५४. मनुष्य में देवत्व का उदय
५५. दृश्य जगत् की अदृश्य पहेलियाँ
५६. ईश्वर विश्वास और उसकी फलश्रुतियाँ
५७. मनस्विता प्रखरता और तेजस्विता
५८. आत्मोत्कर्ष का आधार- ज्ञान
५९. प्रतिगामिता का कुचक्र ऐसे टूटेगा
६०. विवाहोन्माद : समस्या और समाधान
६१. गृहस्थ : एक तपोवन
६२. इक्कीसवीं सदी : नारी सदी
६३. हमारी भावी पीढ़ी और उसका नवनिर्माण
६४. राष्ट्र समर्थ और सशक्त कैसे बने ?
६५. सामाजिक, नैतिक एवं बौद्धिक क्रान्ति कैसे ?
६६. युग निर्माण योजना-दर्शन, स्वरूप व कार्यक्रम
६७. प्रेरणाप्रद दृष्टान्त
६८. पूज्यवर की अमृतवाणी (भाग एक)
६९. विचारसार एवं सूक्तियाँ (प्रथम खण्ड)
७०. विचारसार एवं सूक्तियाँ (द्वितीय खण्ड)

वाङ्मय के आगे प्रकाशित होने वाले ३८ खण्ड निम्न विषयों पर होंगे--

७१. मनोविकारों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि
७२. तनाव के कारण एवं उनके निवारण के उपाय
७३. चिन्तन का विधेयात्मक-निषेधात्मक स्वरूप
७४. पुरुषार्थ और मानवी जिजीविषा
७५. संकल्प बल का अनूठा प्रभाव
७६. बाल-विकास के विविध सोपान
७७. बाल मनोविज्ञान का सही उपयोग
७८. पारिवारिकता में सुसंस्कारों का योगदान
७९. पारिवारिक पंचशील और परिवार-निर्माण
८०. व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया
८१. विचार-विज्ञान का महत्त्व
८२. सामाजिक समस्याएँ और उनका समाधान
८३. समाज-निर्माण के विभिन्न चरण
८४. सामाजिक जीवन में सद्गुणों की भूमिका
८५. नर-नारी की सामान्य समस्याएँ और उनका समाधान
८६. नारी जागृति की बाधाएँ एवं उनके निराकरण के उपाय
८७. पारिवारिक जीवन: एक तप-साधना
८८. दाम्पत्य जीवन के संयुक्त दायित्व
८९. नीति-विज्ञान और नैतिकता
९०. कृषि, व्यवसाय और उद्योग की उन्नति के आधार
९१. पूज्य गुरुदेव के स्फुट विचार
९२. पूज्यवर की अमृतवाणी-२
९३. पूज्य गुरुदेव की दिव्य अनुभूतियाँ
९४. पूज्य गुरुदेव के लिखे स्मरणीय पत्र
९५. तंत्र महाविज्ञान विवेचन
९६. मंत्र महाविज्ञान विवेचन
९७. महापुरुषों के प्रेरक जीवन-प्रसंग
९८. प्रेरणाप्रद कथा एवं गाथाएँ
९९. हृदयस्पर्शी विविध कथाएँ
१००. शान्तिकुंज का प्रज्ञा अभियान
१०१. युग निर्माण मिशन का क्रमिक इतिहास
१०२. वेद-सार-चिन्तन
१०३. पुराण-शोध-सार
१०४. उपनिषद् और आरण्यकों की दार्शनिक विषयवस्तु
१०५. काव्य-गीत-मंजूषा
१०६. मिशन के रचनात्मक कार्यक्रमों का क्रमिक इतिहास
१०७. मिशन की लोक-व्यवहार संहिता
१०८. गुरुदेव की अपने आत्मीय जनों से अपनी बातें

Complete work of Yugrishi Pt. Sriram Sharma Acharya (Founder of All World Gayatri Pariwar, Shantikunj, Haridwar) www.awgp.org
Free Download Life Chaning 3000+ Books, Magazines, Articles, Stories, Great Personalities, Poems and Many More www.vicharkrantibooks.org